CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इति.पु. ५ १२

श्री काशी संस्कृत ग्रन्थमाला १७४

॥ श्रीः ॥

अग्निपुराणम्

श्रीमन्महर्षिकृष्णद्वैपायनव्यासप्रणीतम्

सम्पादकः

आचार्यः श्रीबलदेवोपाध्यायः

चौखम्बा संस्कृत संस्थान

भारतीय सांस्कृतिक साहित्य के प्रकाशक तथा विक्रेता

पो० आ० चौखम्भा, पो० बा० नं० १३९

जड़ाव भवन, के. ३७/११६, गोपाल मन्दिर लेन

वाराणसी (भारत)

मूल्य रु० २५-००

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पञ्चम पत्र - नं ४० =

मण्डप विधि प्रसाद अ. ४१ - ५५

लक्षण भास्कर

स्थालीपाकनिर्णय २४५ - २५२

षष्ठ पत्र नं ५० =

पशुचिकित्सा २६४ - ३००० तक

३३६ - ३८६ तक

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हैं—सर्ग (सृष्ट), प्रतिसर्ग (प्रलय), वंश, मन्वन्तर और वंशानुचरित।

काव्यमीमांसा के दूसरे अध्याय में यह लक्षण कुछ व्यत्यय के साथ उपस्थित है। वहां का पाठ इस प्रकार है—

सर्गः प्रतिसंहारः कल्पो मन्वन्तराणि वंशविधिः।
जगतो यत्र निबद्धं तद्विज्ञेयं पुराणमिति॥

राजनीति के ग्रन्थ में पुराण का एक दूसरा ही पञ्चलक्षण उपस्थित किया गया है। कौटिल्य अर्थशास्त्र (१।५) की जयमङ्गला टीका में एक प्राचीन श्लोक उदाहृत किया गया है जिसमें पुराणों का पञ्चलक्षण इस प्रकार बताया गया है—

सृष्टिप्रवृत्तिसंहारधर्ममोक्षप्रयोजनम्।
ब्रह्मभिर्विविधैः प्रोक्तं पुराणं पञ्चलक्षणम्॥

इसमें यह बात स्पष्ट कर दी गई है कि पुराण का धर्म भी अविभाज्य अङ्ग है।

किन्तु भागवत महापुराण तथा ब्रह्मवैवर्त पुराण के अनुसार पञ्चलक्षण तो उपपुराणों में अन्वित होता है। महापुराणों के दश लक्षण होते हैं या दश से भी अधिक हो सकते हैं।

भागवत का दश लक्षण इस प्रकार है—

सर्गश्चाथ विसर्गश्च वृत्ती रक्षान्तराणि च।
वंशो वंशानुचरितं संस्था हेतुरपाश्रयः॥

इसमें दशलक्षणों में सर्ग, विसर्ग, वृत्ति, रक्षा, अन्तराणि, वंश, वंशानुचरित, संस्था, हेतु और अपाश्रय गिनाये गये हैं।

श्रीमद्भागवतपुराण में प्रत्येक शब्द की व्याख्या प्रस्तुत की गई है।

(१) सर्ग की परिभाषा इस प्रकार है—

अव्याकृतगुणक्षोभात् महतस्त्रिवृतोऽहमः।
भूतमात्रेन्द्रियार्थानां सम्भवः सर्ग उच्यते॥—१२।७।११

अर्थात् मूलप्रकृति में लीन गुणों के क्षुब्ध होने पर महत् उत्पन्न होता है, उससे तीनों अहङ्कार उत्पन्न होते हैं जिससे पञ्चतन्मात्रा, इन्द्रिय तथा भूतों की उत्पत्ति होती है। इसी का नाम सर्ग है।

(२) प्रतिसर्ग के स्थान पर भागवत में संस्था शब्द का प्रयोग है और उसके नैमित्तिक, प्राकृतिक, नित्य, तथा आत्यन्तिक चार प्रकार बताये गये हैं (१२।७।१७)।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(३) वंश का परिचय इस प्रकार दिया गया है—

राज्ञां ब्रह्मप्रसूतानां वंशस्त्रैकालिकोऽन्वयः (१२।७।१६)

अर्थात् ब्रह्मा द्वारा प्रसूत राजाओं की भूत, वर्तमान तथा भविष्य परम्परा का वर्णन ।

(४) मन्वन्तर का परिचय इस प्रकार दिया है—

मन्वन्तरं मनुर्देवा मनुपुत्राः सुरेश्वरः ।
ऋषयोंऽशावताराश्च हरेः षड्विधमुच्यते ॥ (१२।७।१५)

मनु, देवता, मनुपुत्र, इन्द्र, सप्तर्षि, और भगवान् के अंशावतार—इन छः विशेषताओं से युक्त मन्वन्तर होता है ।

(५) वंश्यानुचरित वह है जिसमें पूर्वोक्त वंश में उत्पन्न तथा मूल पुरुष राजाओं का विशेष विवरण वर्णित हो—

वंशानुचरितं तेषां वृत्तं वंशधराश्च ये । (१२।७।१६)

अष्टादश महापुराण

महापुराणों के अन्तर्गत अठारह महापुराणों की गणना की गई है । यह संख्या अत्यन्त प्राचीन तथा परम्परागत है । यद्यपि शिवपुराण में एक स्थान (उमासंहिता १३।४१) पर यह संख्या २६ बतायी गयी है और पुराणों का नामनिर्देश नहीं किया गया है पर वस्तुतः अत्यन्त प्राचीनकाल से पुराणों की संख्या निर्विवादरूप से १८ मानी जाती रही है । देवीभागवत (१।३।२१) में सभी पुराणों के नामों के आद्य अक्षरों के निर्देश द्वारा उनका नाम इस प्रकार बताया गया है—

मद्वयं भद्वयं चैव ब्रत्रयं वचतुष्टयम् ।
अनापलिङ्गकूस्कानि पुराणानि पृथक् पृथक् ॥

मकारादि दो पुराण (मार्कण्डेय तथा मत्स्य), भकारादि दो पुराण (भागवत तथा भविष्य), ब्रकारादि तीन पुराण (ब्रह्म, ब्रह्माण्ड और ब्रह्मवैवर्त), वकारादि चार पुराण (विष्णु, वामन, वाराह और वायु), अ (अग्नि), ना (नारदीय), प (पद्म), लिङ् (लिङ्ग), ग (गरुड), कू (कूर्म) तथा स्क (स्कन्द)—ये अष्टादश पुराणों के पृथक्-पृथक् नाम हैं ।

पुराणों के नाम विभिन्न पुराणों में दिये गये हैं और कहीं-कहीं तो एक ही पुराण में एक से अधिक बार भी यह नाम तथा संख्या

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बतायी गयी है। विष्णुपुराण (३।६।२०-२४) तथा श्रीमद्भागवत (१२।१३।३-८) में अष्टादश पुराणों का नाम-निर्देश मिलता है। मत्स्यपुराण के ५३ वें अध्याय में इन पुराणों का नामनिर्देश तथा संक्षेप में उनके वर्ण्य विषय का भी निर्देश मिलता है। मत्स्य, स्कन्द, नारद तथा अग्निपुराणों में चतुर्थ स्थान पर वायु की गणना की गई है। पर अन्य पुराणों की नाम-सूची में चतुर्थ स्थान पर शिव या शैवपुराण माना गया है।

इन दोनों पुराणों के महापुराणत्व के विषय में विद्वानों में मतभेद है, यथा कोई वायुपुराण को अष्टादशपुराणों में गिनता है तो कोई शिव-पुराण को। इस विषय में विद्वानों का निष्कर्ष है कि वस्तुतः शिव और वायु एक ही पुराण के दो नाम थे। यह पुराण दो भागों में विभक्त था तथा इसमें २४ सहस्र श्लोक हैं। यह वायुप्रोक्त होने से वायुपुराण तथा शिवप्रोक्त होने से शिवपुराण कहा जाता था।[1]

अष्टादशपुराणों के नाम तथा श्लोकसंख्या की सारणी इस प्रकार है—

श्लोक संख्या

पुराण नाम (सहस्र में) (विष्णुपुराणानुसार)		देवीभागवत (भागवत)	अग्नि	मत्स्य	वर्तमान संख्या
१ ब्रह्म	१०	१०	२५	१३	१३७८१
२ पद्म	५५	५५	—	५५	४८४५२
३ वैष्णव (विष्णु)	२३	२३	२३	२३	६३७३
४ शैव (या वायु)	२४	२४	१४(वायु)	२४	१०६६१
		सहस्र ६ सौं (वायु)			
५ भागवत	१८	१८	१८	१८	१४५७६
६ नारदीय	२५	२५	२५	२५	१७५४६
७ मार्कण्डेय	९	९	९	९	६४४७
८ आग्नेय(अग्नि)	१५ सहस्र ४ सौ	१६ सहस्र	१२	१६	११४५७

१. इन दोनों पुराणों के विषय में विस्तृत विमर्श के लिये देखिये—पं० बलदेव उपाध्याय, नागरीप्रचारिणी पत्रिका (१९६४); श्री आनन्दस्वरूपगुप्त, पुराण पत्रिका १९६५ (७।२), तथा डा० ए० डी० पुसालकर 'स्टडीज इन एपिक्स एण्ड पुराणाज।'

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

९ भविष्य	१४ सहस्र ५ सौ	१४ सहस्र	१४	१४ ५ सौ	२५६५६
१० ब्रह्मवैवर्त	१८	१८	१८	१८	२०६६४
११ लैङ्ग (लिङ्ग)	११	११	११	११	६१८५
११ वाराह	२४	२४	१४	२४	६७२०
१३ स्कन्द	८१ सहस्र १ सौ	८१	८४	८१	९३३४३
१४ वामन	१०	१०	१०	१०	५८१५
१५ कौर्म	१७	१७	८	१८	५६२५
१६ मात्स्य	१४	१४	१३	१४	१४०६२
१७ गारुड	१९	१९	८	१९	८७३८
१८ ब्रह्माण्ड	१२	१२ सहस्र १ सौ	१२	१२ सहस्र २ सौ	१४२६८

पुराणों का वर्गीकरण

पद्मपुराण में सात्त्विक, राजस तथा तामस तीन प्रकार के पुराणों के वर्ग किये गये हैं। यहां तीनों वर्गों में छः-छः पुराण रखे गये हैं। सात्त्विक पुराण वे बताये गये है जिनमें भगवान् विष्णु का माहात्म्य अधिक रूप से वर्णित हो, राजस पुराणों में ब्रह्मा का प्राधान्येन वर्णन होता है और तामस पुराणों में भगवान् शङ्कर का—

सात्त्विकेषु पुराणेषु माहात्म्यमधिकं हरेः।
राजसेषु च माहात्म्यमधिकं ब्रह्मणो विदुः।
तद्वदग्नेश्च माहात्म्यं तामसेषु शिवस्य च।
संकीर्णेषु सरस्वत्याः पितॄणां च निगद्यते ॥

मत्स्य ५३।६८-६९

इस प्रकार मत्स्यपुराण के अनुसार सात्त्विक, राजस और तामस के अतिरिक्त कुछ मिश्रित पुराण भी हैं।

पद्मपुराण के अनुसार इन तीन कोटियों में निम्नलिखित प्रकार से पुराण विभक्त है—

सात्त्विक—

१. विष्णु
२. नारद
३. भागवत
४. गरुड़
५. पद्म
६. वाराह

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

राजस

१. ब्रह्माण्ड	२. ब्रह्मवैवर्त
३. मार्कण्डेय	४. भविष्य
५. वामन	६. ब्रह्म

तामस—

१. मत्स्य	२. कूर्म
३. लिङ्ग	४. शिव
५. स्कन्द	६. अग्नि

मात्स्यं कौर्मं तथा लैङ्गं शैवं स्कान्दं तथैव च ।
आग्नेयं च षडेतानि तामसानि निबोधमे ॥
वैष्णवं नारदीयं च तथा भागवतं शुभम् ।
गारुडं च तथा पाद्मं वाराहं शुभदर्शने ॥
सात्त्विकानि पुराणानि विज्ञेयानि शुभानि वै ।
ब्रह्माण्डं ब्रह्मवैवर्तं मार्कण्डेयं तथैव च ।
भविष्यं वामनं ब्राह्मं राजसानि निबोध मे ।

—पद्मपुराण, उत्तरखण्ड २६३।८१-८४

स्कन्दपुराण में कहा गया है कि दस पुराणों में शिवकी स्तुति है। चार में ब्रह्मा की और दो में देवी तथा विष्णु की वर्णन है।

अष्टादशपुराणेषु दशभिर्गीयते शिवः ।
चतुर्भिर्भगवान् ब्रह्मा द्वाभ्यां देवी तथा हरिः ॥

अग्नि पुराण

पौराणिक वर्गीकरण की दृष्टि से अग्निपुराण तामस कोटि में आता है अर्थात् यह शिव भक्ति परक ग्रन्थ है। भागवत में इसे १५ सहस्र ४ सौ, देवी भागवत में १६ सहस्र, स्वतः अग्निपुराण में १२ सहस्र, मत्स्य पुराण में १६ सहस्र और नारदीय पुराण में १२ सहस्र श्लोकों का बताया गया है। वर्तमान मुद्रित आनन्दाश्रम संस्करण में लगभग ११४५७ श्लोक है। यह श्लोक संख्या अग्निपुराण में दी संख्या के समीप है।

अग्निपुराण, गरुड़पुराण तथा नारदपुराण ऐसे पुराण हैं जिनके विषय पुराणपञ्चलक्षण या दश लक्षण तक ही सीमित नहीं है। यह बात बहुत स्पष्ट है कि पञ्चलक्षण तक कम ही पुराण सीमित रहते हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उसमें भी अग्नि पुराण तो और व्यापक है। वस्तुतः यह बहुविध विषयों को समाविष्ट किये है। कोष, व्याकरण, छन्द, अलङ्कार, ज्योतिष, आख्यानोंपाख्यान इत्यादि नाना विषय इस पुराण में सन्निविष्ट हैं।

वर्तमान अग्निपुराण में ३७२ अध्याय हैं जिनका विषय विभाग इस प्रकार है।

अध्याय	विषय	श्लोक संख्या
१	ग्रन्थप्रस्तावना-विषय प्रवेश	१८
२	मत्स्यावतार वर्णन	१७
३	कूर्मावतार वर्णन	२२
४	वराह, नृसिंह, वामन, परशुराम अवतार वर्णन	२०
५	रामावतार वर्णन	१४
६	,,	४६
७	,,	२२
८	,,	१६
९	,,	३१
१०	,,	३४
११	,,	१३
१२	हरिवंश वर्णन	५५
१३	कौरव-पांडव-कथा	२९
१४	कौरव-पांडव-युद्ध	२७
१५	कृष्ण, पांडवादि-अन्तवर्णन	१४
१६	बुद्ध-अर्हत्-कल्कि वर्णन	१३
१७	सृष्टि वर्णन	१६
१८	स्वायम्भुव वंश वर्णन	४४
१९	कश्यपवंश वर्णन	२८
२०	सर्ग कथन	२२
२१	पूजा वर्णन	२७
२२	स्नानविधि वर्णन	८
२३	पूजा विधि वर्णन	२३
२४	कुण्डनिर्माणादि विधि	५९
२५	मंत्र वर्णन	५०
२६	मुद्रालक्षण वर्णन	७

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अध्यय	विषय	श्लोक संख्या
२७	दीक्षा विधि	१६
२८	अभिषेक विधि	५
२९	सर्वतोभद्रमण्डल वर्णन	५०
३०	मण्डल विधि	३५
३१	मार्जन विधि	४८
३२	संस्कारादि कथन	१२
३३	पवित्रारोहण	५३
३४	होमादि वर्णन	४१
३५	पवित्राधिवासन	१८
३६	पवित्रारोपण	२२
३७	सर्वदेव पवित्रारोहण विधि	१४
३८	देवालयनिर्माण फल	५०
३९	भूपरिग्रह विधान	२१
४०	अर्घ्यदान विधान	३१
४१	शिलाविन्यास वर्णन	३६
४२	प्रासादलक्षण कथन	२५
४३	प्रासाददेवता स्थापन	२९
४४	प्रतिमालक्षण विधि	४९
४५	पिण्डिका लक्षण	१४
४६	शालग्रामादि मूर्तिलक्षण	१३
४७	शालग्राम पूजन	१३
४८	चतुर्विंशतिमूर्ति स्तोत्र	१४
४९	मत्स्यादिलक्षण वर्णन	२७
५०	देवीप्रतिमा लक्षण	४२
५१	सूर्यादिप्रतिमा लक्षण	१७
५२	देवीप्रतिमा लक्षण	१६
५३	लिङ्ग लक्षण	२२
५४	लिङ्गमानादि कथन	४८
५५	पिण्डिका लक्षण	६
५६	दिक्पालयाग	३१
५७	कुम्भाधिवास विधि	२६
५८	स्नानादि विधि	३४

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अध्याय	विषय	श्लोक संख्या
५९	अधिवास कथन	५७
६०	वासुदेवप्रतिष्ठादि विधि	३५
६१	द्वारप्रतिष्ठाध्वजारोहणादि विधि	५०
६२	लक्ष्मीप्रतिष्ठा विधि	१४
६३	सुदर्शनचक्रादिप्रतिष्ठा	२१
६४	कूपादिप्रतिष्ठा कथन	४४
६५	सभास्थापन	२३
६६	साधारण प्रतिष्ठा विधान	३०
६७	जीर्णोद्धार विधि	५
६८	यात्रोत्सवविधि कथन	१८
६९	स्नान विधान	२३
७०	वृक्षादिप्रतिष्ठा वर्णन	९
७१	गणेशपूजा विधि	७
७२	स्नानविशेषादि कथन	५०
७३	सूर्यपूजा विधि	१७
७४	शिवपूजा कथन	८३
७५	अग्नि स्थापनादि प्रतिष्ठा	६६
७६	चण्डपूजा कथन	१४
७७	कपिलादिपूजा विधान	२४
७८	पवित्रारोहण कथन	६९
७९	,,	४१
८०	दमनकारोहण	१३
८१	समयदीक्षा विधान	९३
८२	संस्कार दीक्षा	२४
८३	निर्वाण दीक्षा	५३
८४	,,	५८
८५	प्रतिष्ठाकला शोधन	३१
८६	विद्या विशोधन	२१
८७	शान्ति शोधन	२३
८८	निर्वाण दीक्षा	५२
८९	एकतत्त्व दीक्षा	५
९०	अभिषेकादि कथन	१८

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अध्याय	विषय	श्लोक संख्या
६१	विविधमन्त्र वर्णन	१७
६२	प्रतिष्ठा विधि	५६
६३	वास्तुपूजा विधान	४२
६४	शिलाविन्यास	१८
६५	प्रतिष्ठा सामग्री	६०
६६	अधिवासनविधि	१२४
६७	शिवप्रतिष्ठा कथन	८६
८८	गौरी प्रतिष्ठा	३ + गद्यभाग
६९	सूर्यप्रतिष्ठा	५
१००	द्वारप्रतिष्ठा	६
१०१	प्रासादप्रतिष्ठा	१३
१०२	ध्वजारोपण	३०
१०३	जीर्णोद्धार	२१
१०४	प्रासादलक्षण	३४
१०५	नगरादिवास्तु कथन	३८
१०६	,,	२३
१०७	स्वायम्भुवसर्ग	१८
१०८	भुवनकोश	३३
१०९	तीर्थमाहात्म्य	२४
११०	गङ्गामाहात्म्य	६
१११	प्रयाग माहात्म्य	१४
११२	वाराणसी माहात्म्य	७
११३	नर्मदादि माहात्म्य	६
११४	गयामाहात्म्य	४१
११५	गयायात्रा विधि	७४
११६	,,	४२
११७	श्राद्धकल्प	६३
११८	भारतवर्ष	८
११९	महाद्वीपादि	२८
१२०	भुवनकोश	४१
१२१	ज्योतिःशास्त्र	७९
१२२	कालगणना	२४

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अध्याय	विषय	श्लोक संख्या
१२३	युद्धजयार्णव योग	३२
१२४	ज्योतिः शास्त्रसार	२३
१२५	,, चक्र	५१
१२६	नक्षत्र निर्णय	३६
१२७	नानाबलानि	१९
१२८	कोटचक्र	१३
१२९	अर्घकाण्ड	५
१३०	घातचक्र	९
१३१	घातचक्रादि	२०
१३२	सेवाचक्र	२५
१३३	नानाबलानि	४१
१३४	त्रैलोक्यविजयविद्या	२ + गद्य
१३५	संग्रामविजयविद्या	६ + गद्य
१३६	नक्षत्रचक्र	६
१३७	महामारी विद्या	१८
१३८	षट्कर्म	१४
१३९	षष्टिसंवत्सर	१३
१४०	वश्यादि योग	१७
१४१	३७ पदार्थ ज्ञान	१६
१४२	मन्त्रौषधादि	१९ + गद्य
१४३	कुब्जिका पूजा	१७
१४४	,,	३७
१४५	मालिनी मंत्र	३०
१४६	अष्टाष्टकदेवी	३१
१४७	त्वरिता पूजा	९
१४८	संग्रामविजयपूजा	७
१४९	लक्षकोटिहोम	१५
१५०	मन्वन्तर	३१
१५१	वर्णेतरधर्म	१८
१५२	गृहस्थवृत्ति	५
१५३	ब्रह्मचर्याश्रम धर्म	१७
१५४	विवाह	१९

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अध्याय	विषय	श्लोक संख्या
१५५	आचार	३१
१५६	द्रव्यशुद्धि	१५
१५७	अशौच	४१
१५८	स्रावाद्यशौच	६९
१५९	असंस्कृतादिशौच	१४
१६०	वानप्रस्थाश्रम	५
१६१	यतिधर्म	३१
२१६	अर्थशास्त्र कथन	१८
१६३	श्राद्धकल्प	४१
१६४	नवग्रहहोम	१४
१६५	नाना धर्म	२८
१६६	वर्णधर्मादिकथन	२१
१६७	अयुतलक्षकोटिहोम	४४
१६८	महापातक वर्णन	४०
१६९	प्रायश्चित्त	४१
१७०	प्रायश्चित्त	४५
१७१	प्रायश्चित्त	१७
१७२	सर्वपापप्रायश्चित्त	२१
१७३	प्रायश्चित्त	५४
१७४	प्रायश्चित्त	२४
१७५	व्रतपरिभाषा	६२
१७६	प्रतिपद्व्रत	६
१७७	द्वितीयाव्रत	२०
१७८	तृतीयाव्रत	६८
१७९	चतुर्थीव्रत	२
१८०	पञ्चमीव्रत	२
१८१	षष्ठीव्रत	२
१८२	सप्तमीव्रत	४
१८३	अष्टमीव्रत	१६
१८४	अष्टमीव्रत	२३
१८५	नवमीव्रत	१५
१८६	दशमीव्रत	१
१८७	एकादशीव्रत	९
१८८	द्वादशीव्रत	१४

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अध्याय	विषय	श्लोक संख्या
१८९	श्रवणद्वादशीव्रत	१५
१९०	अखण्डद्वादशीव्रत	७
१९१	त्रयोदशीव्रत	१०
१९२	चतुर्दशीव्रत	१०
१९३	शिवरात्रिव्रत	६
१९४	अशोकपूर्णिमादिव्रत	७
१९५	वारव्रत	५
१९६	नक्षत्रव्रत	२२
१९७	दिवसव्रत	१६
१९८	मासव्रत	१५
१९९	नानाव्रत	१०
२००	दीपदानव्रत	१९
२०१	नवव्यूहार्चन	१६
२०२	पुष्पाध्यायकथन	२२
२०३	नरकस्वरूप	२३
२०४	मासोपवासव्रत	१८
२०५	भीष्मपञ्चकव्रत	९
२०६	अगस्त्यार्घ्यदान	२०
२०७	कौमुदव्रत	५
२०८	सामान्यव्रत दानादिकथन	१२
२०९	दानपरिभाषा	६३
२१०	महादान	३४
२११	नानादान	७२
२१२	मेरुदान	३५
२१३	पृथ्वीदान	९
२१४	मन्त्रमाहात्म्यकथन	४१
२१५	सन्यासविधि	४९
२१६	गायत्रीनिर्वाण	१२
२१७	,,	१२
२१८	राज्याभिषेक कथन	३३
२१९	अभिषेक मंत्र	७२
२२०	सहायसम्पत्ति	२४
२२१	अनुजीविवृत्त	१४

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अध्याय	विषय	श्लोक संख्या
२२२	दुर्गसम्पत्ति	२५
२२३	राजधर्म	३३
२२४	राजधर्म	४३
२२५	राजधर्म	३३
२२६	राजधर्म	२०
२२७	,,	६६
२२८	युद्धयात्रा	८
२२९	स्वप्नाध्याय	३२
२३०	शकुन	१२
२३१	,,	३६
२३२	,,	३७
२३३	यात्रामण्डलचिन्ता	२५
२३४	षाड्गुण्य	२५
२३५	दैनन्दिन राजकर्म	१७
२३६	रणदीक्षा	६५
२३७	श्रीस्तोत्र	१९
२३८	रामोक्त नीति	२२
२३९	रामोक्त राजधर्म	४८
२४०	षाड्गुण्य	३२
२४१	सामदानादि	६८
२४२	राजनीति	७३
२४३	पुरुषलक्षण	२६
२४४	स्त्रीलक्षण	६
२४५	चामरादिलक्षण	२७
२४६	रत्नपरीक्षा	१५
२४७	वास्तुलक्षण	३१
२४८	पुष्पादिपूजाफल	६
२४९	धनुर्वेद	३७
२५०	,,	१९
३५१	,,	१२
२५२	,,	३३
२५३	व्यवहार कथन	६७
२५४	,,	२७

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अध्याय	विषय	श्लोक संख्या
२५५	दिव्य-प्रमाण-कथन	५०
२५६	दायविभाग	३६
२५७	सीमाविवादनिर्णय	४३
२५८	वाक्पारुष्यादिप्रकरण	८४
२५९	ऋग्विधान	९९
२६०	यजुर्विधान	८४
२६१	सामविधान	८४
२६२	अथर्वविधान	२५
२६३	उत्पातशान्ति	३२
२६४	देवपूजा वैश्वदेवबलि	२८ + गद्य
२६५	दिक्पालादिस्नान	१८
२६६	विनायकस्नान	२०
२६७	माहेश्वरस्नान लक्षकोटि होमादि	२३
२६८	नीराजना विधि	३०
२६९	छत्रादि मन्त्र	३८
२७०	विष्णुपञ्जर	१५
२७१	वेदशाखादिकीर्तन	२२
२७२	पुराणदान माहात्म्य	२९
२७३	सूर्यवंश वर्णन	३९
२७४	सोमवंश वर्णन	२३
२७५	यदुवंश वर्णन	५१
२७६	यदुवंश वर्णन तथा द्वादश देवासुर संग्राम	२५
२७७	राजवंश वर्णन	१६
२७८	पुरुवंश वर्णन	४१
२७९	सिद्धौषध	६३
२८०	सर्वरोगहारी औषध	४८
२८१	रसादि लक्षण	३३
२८२	वृक्षायुर्वेद	१३
२८३	नानारोगहारी औषध	५१
२८४	मंत्रौषध वर्णन	१३
२८५	मृतसञ्जीवनीकर सिद्धयोग	७७
२८६	कल्पसागर	२४

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अध्याय	विषय	श्लोक संख्या
२८७	गजचिकित्सा	३३
२८८	अश्ववाहनसार	६६
२८९	अश्वचिकित्सा	५५
२९०	अश्वशान्ति	८
२९१	गजशान्ति	२४
२९२	शान्त्यायुर्वेद	४४
२९३	मंत्रपरिभाषा	५१
२९४	नागलक्षण	४१
२९५	दष्टचिकित्सा	२९ + गद्य
२९६	पञ्चाङ्गरुद्र विधान	१९
२९७	विषहारी मन्त्रौषध	८ + गद्य
२९८	गोनसादिचिकित्सा	२१
२९९	बालग्रहहारी बालतन्त्र	५२
३००	ग्रहहारी मंत्रादि	३३
३०१	सूर्यार्चन	१८
३०२	नाना मंत्र	२६
३०३	अङ्गाक्षरार्चन	१६
३०४	पञ्चाक्षरादि पूजा	४१
३०५	पचपन विष्णुंनाम	१७
३०६	नारसिंहादि मन्त्र	१८
३०७	त्रैलोक्यमोहन मंत्र	२६
३०८	त्रैलोक्यमोहनी लक्ष्म्यादि पूजा	२३
३०९	त्वरिता पूजा	१७
३१०	त्वरिता मंत्रादि	४१
३११	त्वरिता मूलमंत्र	३६
३१२	त्वरिता विद्या	२५
३१३	नाना मन्त्र	२८
३१४	त्वरिता ज्ञान	२३
३१५	स्तम्भनादि मन्त्र	१४
३१६	नाना मन्त्र	५
३१७	सकलादि मंत्रोद्धार	३४
३१८	गणपूजा	२१

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अध्याय	विषय	श्लोक संख्या
३१९	वागेश्वरीपूजा	१०
३२०	मण्डल	४८
३२१	अघोरास्त्रादि शान्तिकल्प	१५
३२२	पाशुपत शान्ति	३ + गद्य
३२३	षडङ्ग अघोरास्त्र	२१ + गद्य
३२४	रुद्रशान्ति	१३ + गद्य
३२५	अंशकादि	२३
३२६	गौर्यादिपूजा	२६
३२७	देवालय माहात्म्य	१९
३२८	छन्दःसार	३
३२९	छन्दःसार	५
३३०	छन्दःसार	२२
३३१	छन्दोजातिनिरूपण	१९
३३२	विषम कथन	१०
३३३	अर्धसमनिरूपण	६
३३४	समवृत्तनिरूपण	३०
३३५	प्रस्तारनिरूपण	४
३३६	शिक्षानिरूपण	२१
३३७	काव्यादिलक्षण	३८
३३८	नाटकनिरूपण	२७
३३९	रसनिरूपण	५४
३४०	रीतिनिरूपण	१०
३४१	नृत्यादि में अङ्गकर्मनिरूपण	२०
३४२	अभिनयादिनिरूपण	३३
३४३	शब्दालङ्कार	६५
३४४	अर्थालङ्कार	३२
३४५	शब्दार्थालङ्कार	१८
३४६	काव्यगुणविवेक	२५
३४७	काव्यदोषविवेक	४०
३४८	एकाक्षराभिधान	२४
३४९	व्याकरण	३ + गद्य
३५०	सन्धि	१३

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अध्याय	विषय	श्लोक संख्या
३५१	सुब्विभक्ति	७३
३५२	स्त्रीलिङ्ग	१३
३५३	नपुंसकलिङ्ग	६
३५४	कारक	२५
३५५	समास	१८
३५६	तद्धित	३०
३५७	उणादि	११
३५८	तिङ्विभक्ति	३०
३५९	कृत्सिद्धि	८
३६०	स्वर्गपातालादिवर्ग	९५
३६१	अव्ययवर्ग	३८
३६२	नानार्थवर्ग	४०
३६३	भूमिवनौषध्यादिवर्ग	७८
३६४	नृब्रह्मक्षत्रविट्शूद्रवर्ग	२९
३६५	ब्रह्मवर्ग	११
३६६	क्षत्रविट्शूद्रवर्ग	४८
३६७	सामान्यनामलिङ्ग	२७
३६८	नित्यनैमित्तिक प्राकृत प्रलय	,,
३६९	आत्यन्तिकलयगर्भोत्पत्तिनिरूपण	४५
३७०	शरीरावयव	४३
३७१	नरकनिरूपण	३९
३७२	यमनियम	३६
३७३	आसनप्राणायामप्रत्याहार	२१
६७४	ध्यान	३४
३७५	धारणा	२२
३७६	समाधि	४४
३७७	ब्रह्मज्ञान	२४
३७८	ब्रह्मज्ञान	२२
३७९	ब्रह्मज्ञान	३२
३८०	अद्वैतब्रह्मविज्ञान	६६
३८१	गीतासार	५८
३८२	यमगीता	३७
३८३	आग्नेयपुराण माहात्म्य	७१

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इस विषयक्रम को देखने से यह सुस्पष्ट अवभाति हो जाता है कि अग्निपुराण में उन सभी विषयों का विस्पष्ट विवेचन व निर्देश है जिसे मानव जानता-सुनता था और जिससे इसका व्यवहार था। इस प्रकार यह सच्चे अर्थों में विश्वकोश है। विषयों का वर्णन करते समय अग्निपुराण ठोस एवं प्रामाणिक विवरण देता है—सारात्सारम्। इस पुराण को आरम्भ में ही विद्याओं का सार कहा गया है।

विष्णुः कालाग्निरुद्रोऽहं विद्यासारं वदामि ते।
विद्यासारं पुराणं यत्सर्वं सर्वस्य कारणम्॥—अग्नि १।१३

आगे भी इस पुराण की प्रशस्ति करते हुये कहा गया है कि अग्निपुराण विष्णु का ही रूप है। इसके कर्ता और श्रोता साक्षात् जनार्दन हैं। इसीलिये यह पुराण सर्ववेदमय है, सर्वविद्यामय है :

वेदेषु सपुराणेषु यज्ञमूर्तिश्च गीयते।
आग्नेयाख्यं पुराणं तु रूपं विष्णोर्महत्तरम्॥
आग्नेयाख्यपुराणस्य कर्ता श्रोता जनार्दनः।
तस्मात् पुराणमाग्नेयं सर्ववेदमयं महत्॥
सर्वविद्यामयं पुण्यं सर्वज्ञानमयं वरम्।

अग्नि २७१।१६–१८

इस प्रकार वर्तमान अग्निपुराण अपने को महापुराण की कोटि में गिनता है तथा अपने विषयक्रम की दृष्टि से भी यह नितान्त महनीय तथा व्यापक है। परन्तु विद्वानों ने इसकी प्राचीनता के विषय में सन्देह प्रकट किया है और इसे मूल अग्नि वा वह्निपुराण नहीं माना है। यहाँ हम संक्षेप में इस विषय पर विवेचन करेंगे।

अग्निपुराण तथा वह्निपुराण

विभिन्न पुराणों में अग्निपुराण का अभिधान अग्नि, आग्नेय, अग्नि-उक्त, वह्निपुराण आदि हुआ है। यद्यपि ये सभी नाम एकार्थवाची ही हैं और उसी प्रकार एक ही पुराण के अभिधायक हो सकते हैं जैसे गरुड, गारुड, तार्क्ष्य, वैनतेय आदि संज्ञायें गरुडपुराण की परिचायक हैं तथा विष्णु, वैष्णव आदि विष्णुपुराण की। परन्तु वह्निपुराण नामक एक दूसरा भी हस्तलेख प्राप्त हुआ है जो वर्तमान अग्निपुराण से सुतरां भिन्न है। पुराणशास्त्र के प्रसिद्ध विद्वान् डा० हाजरा ने सप्रमाण इस वह्निपुराण को ही मूल अग्निपुराण माना है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इस विषय में उन्होंने बड़ौदाजर्नल के ५ वें खण्ड के चतुर्थ अङ्क तथा 'अवर हेरिटेज' पत्रिका के प्रथम-द्वितीय अङ्कों में विस्तृत विमर्श किया है।[1] इस वह्निपुराण का हस्तलेख भी हाजरा महोदय के पास है। उनके मतानुसार प्राचीन निबन्धकारों ने अग्निपुराण से जो वचन उद्धृत किये हैं वे समग्रतः वह्निपुराण में ही उपलब्ध होते हैं। वस्तुतः वर्तमान अग्निपुराण अग्नि-पाञ्चरात्रों के द्वारा प्रतिसंस्कृत वैष्णव पूजा का अवबोधक तंत्रप्रधान पुराण है। जिन आधारों पर डा० हाजरा ने वह्निपुराण को मूल अग्निपुराण माना है उनका संक्षेप में यहाँ उपन्यास किया जाता है।[2]

(१) मूल अग्निपुराण वह्निपुराण के नाम से ही प्रथित था जो अग्नि की महिमा से विशेषरूप से सम्बद्ध था।[3] जैसा कि स्कन्दपुराण के शिवरहस्य में उक्त है। यह लक्षण विशेषतः वह्निपुराण में ही घटित होता है, अतः इसी को मूल अग्निपुराण मानना संगत है।

वर्तमान अग्निपुराण कर्मकाण्ड एवं तन्त्र-बहुल है। यही कारण है कि बल्लालसेन ने अपने निबन्धग्रन्थ 'दानसागर' में इसका ग्रहण नहीं किया है उनका कथन इस प्रकार है—

तार्क्ष्यं पुराणमपरं ब्राह्ममाग्नेयमेव च।
त्रयोविंशतिसाहस्रं पुराणमपि वैष्णवम्॥
षट्साहस्रमिति लिङ्गं पुराणमपरं तथा।
दीक्षाप्रतिष्ठापाषण्डमुक्तिरत्नपरीक्षणैः॥
मृषावंशानुचरितैः कोषव्याकरणादिभिः।
असङ्गतकथाबन्धपरस्परविरोधितः॥
तन्मीनकेतनादीनां भण्डपाषण्डलिङ्गिनाम्।
लोकवञ्चनमालोक्य सर्वमेवाव्रधीरितम्॥

इस प्रकार यह सुस्पष्ट है बल्लालसेन ने इसके प्रामाण्य को स्वीकार नहीं किया है—इसमें दीक्षाविधि, रत्नपरीक्षण, कोषव्याकरणादि का

---

१. द्रष्टव्य : Dr. R. C. Hazra : Discovery of the Genuine Āgneya-Purāṇa (Journal of the Oriental Institute, Baroda Vol. VI. No. 4. and Studies in the Genuine Āgneya Purāṇa. Our Heritage, Vol. V. II.

२. पं० बलदेव उपाध्याय पुराण विमर्श, पृ०।

३. डा० रामशङ्करभट्टाचार्य, अग्निपुराण विषयानु० पृ० ९१-९२।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सन्निवेश है जो पुराण की पुराणता से अवरकोटिक हैं। यहाँ यह भी प्रश्न हो सकता है कि यह अग्निपुराण ही अधिक क्यों प्रचलित हो गया और इसका मूलरूप दब गया। वस्तुतः इसके प्रचार में इस पुराण के अन्तर्गत लौकिक विषयों का समावेश ही प्रमुख कारण है। तन्त्र, पूजा और घरेलू विद्याओं की व्यापकता के कारण यह नितान्त स्वाभाविक था कि भावुक जन-मन इसकी ओर ललक जाता और इसे यहाँ विश्रान्ति मिलती।

मूल अग्निपुराण में तान्त्रिक और व्यावहारिक विषयों का प्रधान था अतः उसका प्रचार क्षीणतर हो गया और वह केवल हस्तलेख के रूप में ही यत्र-तत्र सुरक्षित रहा। बहुत से उद्धरण जो वह्नि या अग्निपुराण के नाम से उपलब्ध होते हैं वे प्रचलित अग्निपुराण में न मिलकर वह्निपुराण में ही उपलब्ध होते हैं। वह्निपुराण के बहुत से श्लोक अग्निपुराण में भी समाविष्ट हो गये हैं। किन्तु कुछ विचिकित्सा तो वह्निपुराण के बारे में भी उत्पन्न हो जाती है। वह्नि या अग्निपुराण का जो विषय मत्स्यपुराण (५३।२८–३०) और स्कन्द के प्रभास खण्ड (२।४७–४८) में मिलता है वह पूर्णतः दोनों में किसी में भी घटित नहीं होता अतः सम्भव है मूल अग्निपुराण का कुछ और ही रूप रहा हो। वर्तमान अग्निपुराण में लगभग १२ सहस्र (जैसा कि पहले सारणी में प्रदर्शित है) श्लोक है जो वह्निपुराण के अनुसार पूरी कर दी गई होगी। वह्निपुराण का काल-क्रम ईसा की चौथी-पाँचवीं सदी अनुमानित की गई है। वह्निपुराण के संग्रथन क्रम में तीन रूप दर्शाये गये हैं। प्रथम रूप यजुर्वेदीय अग्निहोत्री ब्राह्मणों ने किया, द्वितीय वैष्णवों ने किया और तृतीयतः बहुविध विषयों का एकत्र समावेश कर दिया गया।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विषय-विमर्श

(१) अन्य पुराणों में अग्निपुराण का विषय-वर्णन

विभिन्न पुराणों में अग्निपुराण के वर्ण्य विषयों की संक्षिप्त सूचियां प्रस्तुत की गई हैं। स्वतः अग्निपुराण के उपक्रम में उसके विषय वस्तु में निम्न निर्देश किया गया है :

विद्यासारं पुराणं यत् सर्वं सर्वस्य कारणम् ॥ १३ ॥
सर्गस्य प्रतिसर्गस्य वंशमन्वन्तरस्य च।
वंशानुचरितादेश्च मत्स्यकूर्मादिरूपधृक् ॥ १४ ॥
द्वे विद्ये भगवान् विष्णुः परा चैवापरा च ह।
ऋग्यजुः सामाथर्वाख्या वेदाङ्गानि च षड् द्विज ॥ १५ ॥
शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं ज्योतिषां गतिः।
छन्दोऽभिधानं मीमांसा धर्मशास्त्रं पुराणकम् ॥ १६ ॥
न्यायवैद्यकगान्धर्वं धनुर्वेदोऽर्थशास्त्रकम्।
अपरेयं परा विद्या यया ब्रह्माऽभिगम्यते ॥ १७ ॥
यत्तदद्दश्यमग्राह्यमगोत्रचरणं ध्रुवम्।
विष्णुनोक्तं यथा मह्यं देवेभ्यो ब्रह्मणा पुरा ॥ १८ ॥

(अग्निपुराण १।१३-१८)

पुनः अग्निपुराण में अपने विषयों का प्रतिपादन इन शब्दों में किया है :

आग्नेये हि पुराणेऽस्मिन् सर्वविद्याः प्रदर्शिताः।
सर्वे मत्स्यावताराद्या गीता रामायणं त्विह ॥ ५२ ॥
हरिवंशो भारतं च नवसर्गाः प्रदर्शिताः।
आगमो वैष्णवो गीतः पूजा-दीक्षा-प्रतिष्ठया ॥ ५३ ॥
पवित्रारोहणादीनि प्रतिमा-लक्षणादिकम्।
प्रासादलक्षणाद्यं च मंत्रा वै भुक्तिमुक्तिदाः ॥ ५४ ॥
शैवागमस्तदर्थश्च शाक्तेयः सौर एव च।
मण्डलानि च वास्तुश्च मन्त्राणि विविधानि च ॥ ५५ ॥
प्रतिसर्गश्चानुगीतो ब्रह्माण्डपरिमण्डलम्।
गीतो भुवनकोशश्च द्वीपवर्षादिनिम्नगाः ॥ ५६ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

गयागङ्गाप्रयागादितीर्थ-माहात्म्यमीरितम् ।
ज्योतिश्चक्रं ज्योतिषादि गीतो युद्धजयार्णवः ॥ ५७ ॥
मन्वन्तरादयो गीता धर्मा वर्णादिकस्य च ।
अशौचं द्रव्यशुद्धिश्च प्रायश्चित्तं प्रदर्शितम् ॥ ५८ ॥
राजधर्मा दानधर्मा व्रतानि विविधानि च ।
व्यवहाराः शान्तयश्च ऋग्वेदादिविधानकम् ॥ ५९ ॥
सूर्यवंशः सोमवंशो धनुर्वेदश्च वैद्यकम् ।
गान्धर्ववेदोऽर्थशास्त्रं मीमांसा न्यायविस्तरः ॥ ६० ॥
पुराणसंख्या माहात्म्यं छन्दो व्याकरणं स्मृतम् ।
अलङ्कारो निघण्टुश्च शिक्षाकल्प इहोदितः ॥ ६१ ॥
नैमित्तिको प्राकृतिको लय आत्यन्तिकः स्मृतः ।
वेदान्तं ब्रह्मविज्ञानं योगो ह्यष्टाङ्ग ईरितः ॥ ६२ ॥
स्तोत्रं पुराणमाहात्म्यं विद्या ह्यष्टादश स्मृताः ।
ऋग्वेदाद्याः परा ह्यत्र परा विद्याक्षरम् परम् ॥ ६३ ॥
सप्रपञ्चं निष्प्रपञ्चं ब्रह्मणा रूपमीरितम् ।
इदं पञ्चदशसाहस्रं शतकोटिप्रविस्तरम् ॥ ६४ ॥
(अ० ३८३।५२-६४)

ये विषय अग्निपुराण में प्रधानतः उपलब्ध हैं यद्यपि कहीं-कहीं कुछ भेद पड़ता है।[1]

नारदपुराण (पूर्व भाग अ० ९९) में अग्निपुराण या आग्नेयपुराण के विषयों का वर्णन इस प्रकार मिलता है :

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि तवाग्नेयपुराणकम् ।
ईशानकल्पवृत्तान्तं वसिष्ठायानलोऽब्रवीत् ॥ १ ॥
तत्पञ्चदशसाहस्रं नानाचरितमद्भुतम् ।
पठतां शृण्वतां चैव सर्वपापहरं नृणाम् ॥ २ ॥
प्रश्नः पूर्वः पुराणस्य कथा सर्वावतारजा ।
सृष्टिप्रकरणं चाथ विष्णुपूजादिकं ततः ॥ ३ ॥
अग्निकार्यं ततः पश्चान्मन्त्रमुद्रादिलक्षणम् ।
सर्वदीक्षाविधानं च अभिषेकनिरूपणम् ॥ ४ ॥

१. इस सूची में वर्णित विषयों और उपलब्ध अग्निपुराण के विषयों में जो थोड़ा अंतर पड़ता है उसके लिये दे० डा० रामशंकर भट्टाचार्य, अग्निपुराण विषयानुक्रमणी पृ० ७३ ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

लक्षणं मण्डलादीनां कुशापामार्जनं ततः ।
पवित्रारोपणविधि-देवालयविधिस्ततः ॥ ५ ॥
शालग्रामादिपूजा च मूर्तिलक्ष्म पृथक्-पृथक् ।
न्यासादीनां विधानं च प्रतिष्ठापूर्वकं ततः ॥ ६ ॥
विनायकादिपूजा च नाना दीक्षाविधिः परम् ।
प्रतिष्ठा सर्वदेवानां ब्रह्माण्डस्य निरूपणम् ॥ ७ ॥
गंगादितीर्थमाहात्म्यं द्वीपवर्षानुवर्णनम् ।
ऊर्ध्वाधोलोकरचना ज्योतिश्चक्रनिरूपणम् ॥ ८ ॥
ज्यौतिषं च ततः प्रोक्तं शास्त्रं युद्धजयार्णवम् ।
षट्कर्म च ततः प्रोक्तं मन्त्रमन्त्रौषधीगणः ॥ ९ ॥
कुब्जिकादिसमर्चत्वं षोढा न्यायविधिस्तथा ।
कोटिहोमविधानं च मन्वन्तरनिरूपणम् ॥ १० ॥
ब्रह्मचर्यादिधर्मोश्च श्राद्धकल्पविधिस्ततः ।
ग्रहयज्ञस्ततः प्रोक्तो वैदिकस्मार्तकर्म च ॥ ११ ॥
प्रायश्चित्तानुकथनं तिथीनां च व्रतादिकम् ।
वारव्रतानुकथनं नक्षत्रव्रतकीर्तनम् ॥ १२ ॥
मासिकव्रतनिर्देशो दीपदानविधिस्तथा ।
नवव्यूहार्चनं प्रोक्तं नरकाणां निरूपणम् ॥ १३ ॥
व्रतानां चापि दानानां निरूपणमिहोदितम् ।
नाडीचक्रसमुद्देशः सन्ध्याविधिरनुत्तमः ॥ १४ ॥
गायत्र्यर्थस्य निर्देशो लिङ्गस्तोत्रं ततः परम् ।
राज्याभिषेकमन्त्रोक्तिर्धर्मकृत्यं च भूभुजाम् ॥ १५ ॥
स्वप्नाध्यायस्ततःप्रोक्तः शकुनादिनिरूपणम् ।
मण्डलादिकनिर्देशो रत्नदीक्षाविधिस्ततः ॥ १६ ॥
रामोक्तनीतिनिर्देशो रत्नानां लक्षणं ततः ।
धनुर्विद्या ततः प्रोक्ता व्यवहारप्रदर्शनम् ॥ १७ ॥
देवासुरविमर्दाख्या ह्यायुर्वेदनिरूपणम् ।
गजादीनां चिकित्सा च तेषां शान्तिस्ततः परम् ॥ १८ ॥
गोनरादिचिकित्सा च नानापूजास्ततः परम् ।
शान्तयश्चापि विविधाश्छन्दः शास्त्रमतः परम् ॥ १९ ॥
साहित्यं च ततः पश्चाद् एकार्णादिसमाह्वयाः ।
सिद्धशब्दानुशिष्टिश्च कोशः सर्गादिवर्गकः ॥ २० ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रलयानां लक्षणं च शारीरकनिरूपणम् ।
वर्णनं नरकाणां च योगशास्त्रमतः परम् ॥ २१ ॥
ब्रह्मज्ञानं ततः पश्चात् पुराणश्रवणे फलम् ।
एतदाग्नेयकं विप्र पुराणं परिकीर्तितम् ॥ २२ ॥
तल्लिखित्वा तु यो दद्यात् सुवर्णकमलान्वितम् ।
तिलधेनुयुतं चापि मार्गशीर्ष्यां विधानतः ॥ २३ ॥
पुराणार्थविदे सोऽथ स्वर्गलोके महीयते ।
एषानुक्रमणी प्रोक्ता तवाग्नेयस्य भक्तिदा ॥ २४ ॥
शृण्वतां पठतां चैव नृणां चेह परत्र च ॥ २५ ॥

(२) विषय विवेचन

(क) पौराणिक विषय (सर्गप्रतिसर्गादिक)

पुराणों के प्रधानतः वर्ण्य विषय पाँच माने गये हैं—

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च ।
वंशानुचरितञ्चैव पुराणं पञ्चलक्षणम् ॥

प्रायः सभी पुराणों में यह विषय पाठान्तर के साथ उपलब्ध होता है । राजशेखर ने काव्यमीमांसा के द्वितीय अध्याय में भी इसी प्रकार का एक श्लोक दिया है :

सर्गः प्रतिसंहारः कल्पो मन्वन्तराणि वंशविधिः ।
जगतो यत्र निबद्धं तद्विज्ञेयं पुराणमिति ॥

अर्थात् जगत के सर्ग-प्रतिसर्ग आदि विषय यहाँ वर्णित हैं । अग्निपुराण में यद्यपि अन्य विषयों का प्राधान्य है तथापि इस पञ्चलक्षणात्मक विषय का भी यथास्थान सन्निवेश है । अग्निपुराण में १७ से २० अध्यायों में सृष्टिकथन है । प्रतिसर्ग अथवा प्रलय का वर्णन ३६८ अध्याय से और आगे वर्णित है । वंश का आशय यद्यपि राजवंश से लिया गया है ऋषिवंश से नहीं जैसा कि भागवत में अभिहित है :

राज्ञां ब्रह्मप्रसूतानां वंशस्त्रैकालिकोऽन्वयः ।

तथापि ऋषिवंश को भी इसके अन्तर्गत मानना अनुचित नहीं । पुराणों में वंश-परम्परा तो दोनों की ही वर्णित है । वंशानुचरित के अन्तर्गत वंश में उत्पन्न राजाओं के चरित्र और क्रियाकलाप वर्णित

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

होते हैं। वस्तुतः वंश और वंशानुचरित परस्पर आश्रित हैं। अग्निपुराण में राजवंश और उनका चरित अनेक स्थलों पर उपलब्ध होते हैं।

कल्पमन्वन्तर खण्ड का वर्णन अग्निपुराण में यत्र-तत्र सन्निहित है। १५० वें अध्याय में चतुर्दश मन्वन्तर का वर्णन है।

मुख्य-मुख्य स्थलों को छोड़कर ये विषय अन्यथा भी उल्लिखित मिल सकते हैं। यद्यपि वहाँ वे संक्षिप्त होंगे और प्रकरणवशात् उल्लिखित हैं।

(ख) लौकिक विषय

साहित्यशास्त्र—

अग्निपुराण में ३३७ अध्याय से ३४७ अध्याय तक साहित्यशास्त्र के विषय वर्णित हैं। अध्याय ३३७ में काव्यादि का लक्षण निरूपण तथा भेदोपभेद वर्णित किये गये हैं। इसमें गद्य के भी भेदोपभेदों का उल्लेख है तथा महाकाव्य का विस्तृत विवेचन किया गया है। इसमें काव्य के तीन भेद बताये गये हैं—गद्य-पद्य और मिश्र।

गद्यं पद्यं मिश्रं च काव्यादि त्रिविधं स्मृतम्। ३३७।८

काव्य की परिभाषा करते हुये बताया गया है इसमें अलङ्कार स्फुट होना चाहिये, यह गुणयुक्त तथा दोषविहीन होना चाहिये—

काव्यं स्फुटदलङ्कारं गुणवद्दोषवर्जितम्॥ ३३७।७

३३८ वें अध्याय में नाटक का निरूपण किया गया है। इसमें नाटक के अनेक भेदोपदों को प्रदर्शित कर आमुख, नान्दी इत्यादि का लक्षण भी बताया गया है। बीज, बिन्दु, पताका, प्रकरी और कार्य इन पाँचों अर्थ प्रकृतियों का निर्देश कर आरम्भ, प्रयत्न आदि पञ्चकार्याव-स्थाओं का भी निर्देश कर पञ्च सन्धियों को बताया गया है। यहाँ पुराणकार ने देश-काल के उचित सन्निवेश को भी अपेक्षित बताया है।

३३९ वें अध्याय का वर्ण्यविषय रस है। इसके अन्तर्गत रस, आलम्बन, स्थायीभाव, उद्दीपन आदि का विस्तृत विवेचन कर नायिका भेद का भी निरूपण किया गया है। रस की संख्या यहाँ १० बतायी गई है:

श्रृङ्गारहास्यकरुणा रौद्रवीरभयानकाः।
वीभत्साद्भुतशान्ताख्याः स्वभावाच्चतुरो रसाः॥ ३३९।९

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रस के निर्माण में कवि की चित्तवृत्ति को ही प्रधान बताया गया है। यदि कवि रसिक है तो प्रकृत्या शृङ्गाररसपरक वर्णना होगी और यदि वह विरक्त हुआ तो नीरस ही रचना होगी। आखिर अपने इस निर्माण का वही तो प्रजापति है :

अपारे काव्यसंसारे कविरेव प्रजापतिः।
यथा वै रोचते विश्वं तथेदं परिवर्तते॥
शृङ्गारी चेत् कविः काव्ये जातं रसमयं जगत्।
स चेत् कविर्वीतरागो नीरसं व्यक्तमेव तत्॥ ३३९।१०-११

नायक की चार कोटियाँ बतायी गई हैं धीरोदात्त, धीरोद्धत, धीरललित तथा धीरप्रशान्त। नायिकाओं के प्रति अनुरक्ति के प्रकार से भी नायक चार प्रकार के ही होते हैं—अनुकूल, दक्षिण, शठ और धृष्ट। विदूषक के तीन प्रकार बताये गये हैं—पीठमर्द, विट और विदूषक। नायिकाओं के मुख्यतः तीन भेद बताये गये हैं—स्वकीया, परकीया और पुनर्भू।

३४० वाँ अध्याय रीतिवृत्ति-निरूपणात्मक है। प्रथमतः बताया गया है कि वाणी के पूर्ण ज्ञान के लिये रीति का ज्ञान परमावश्यक है। रीति के चार प्रकार हैं—पाञ्चाली, गौडी, वैदर्भी और लाटी या लाटजा—

वाग्विद्यासंप्रतिज्ञाने रीतिः सापि चतुर्विधा।
पाञ्चाली गौडदेशीया वैदर्भी लाटजा तथा॥ —३४०।१

पाञ्चाली अल्पसमासों वाली, कोमल तथा अलङ्कृत होती है, गौडी में दीर्घसमास होते हैं, वैदर्भी में न अधिक अलङ्कार और न अलङ्कार-विहीन भाषा होती है। न तो अधिक कोमल शब्द वाली होती है और न समासों का एकदम अभाव ही। लाटी में भाव स्पष्ट होना चाहिये और भाषा का अनावश्यक अलङ्करण न ही होता है। रीति के अनन्तर वृत्ति के चार भेदों को दर्शाया गया है। भारती, आरभटी, कौशिकी तथा सात्त्वती इन चारों वृत्तियों को बताकर कहा गया है कि भरतमुनि-प्रणीत होने से एक वृत्तिका नाम भारती है। भारती के अंगों—वीथी, प्रहसन और नाटक की प्रस्तावना को बताकर वीथी के उद्घातक, लपित आदि त्रयोदश भेदों को दर्शाया गया है।

३४१ वें अध्याय में नृत्यादि में अङ्गक्रियाओं का निरूपण किया गया है। नायिकाओं की चेष्टाओं का भेद दर्शाकर नृत्यकला में प्रयुक्त होने वाले अङ्गों की चेष्टाओं तथा हाव-भावों को बताया गया है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

३४२ वाँ अध्याय अभिनयनिरूपणात्मक है। अभिनय की परिभाषा देकर उसके सत्त्वाश्रय, अङ्गाश्रय, वागाश्रय और आहरणाश्रय इन चार भेदों को प्रदर्शित किया गया है। पुनः शृङ्गारादि रसों को प्रदर्शित किया गया है और रसों के भेदोपभेदों का विमर्श है। रस-विमर्श के अनन्तर अलङ्कार-विमर्श है। अग्निपुराण ने अलङ्कार की परिभाषा देते हुये कहा है—

काव्यशोभाकरान्धर्मानलङ्कारान्प्रचक्षते ॥ ३४२।१७

पुनः अलङ्कार के शब्द, अर्थ और उभय भेद से शब्दालङ्कार अर्थालङ्कार और शब्दार्थलङ्कार—ये तीन भेद किये गये हैं। पुनः शब्दालङ्कारों का विवेचन प्रारम्भ किया गया है।

३४३ वें अध्याय में शब्दालङ्कारों का विवेचन है। प्रथमतः अनुप्रास और यमक का निरूपण कर चित्र अलङ्कार का भेदोपभेदों के साथ प्रदर्शन है।

३४४ वें अध्याय में अर्थालङ्कारों का निमर्श है। इस पुराण के अनुसार अर्थालङ्कार से विहीन वाणी विधवा है।

अर्थालङ्काररहिता विधवेव सरस्वती ॥ ३४४।२

३४५ वें अध्याय में शब्दार्थालङ्कारों का विवेचन है। शब्दार्थालङ्कारों की उपयोगिता बताते हुये कहा गया है कि जिस भाँति स्त्रियों का हार वक्ष और ग्रीवा दोनों को एकही साथ अङ्कलत करता है उसी प्रकार ये अलङ्कार भी शब्द और अर्थ दोनों को समान रूप से अलङ्कृत करते हैं :

शब्दार्थयोरलङ्कारो द्वावलङ्कारुते समम्।
एकत्र निहितो हारः स्तनं ग्रीवामिव स्त्रियाः ॥ ३४५।१

शब्दार्थालङ्कार के छः भेद बताये गये हैं : प्रशस्ति, कान्ति, औचित्य, संक्षेप, यावदर्थता और अभिव्यक्ति और इन छहों अलङ्कारों का विवेचन किया गया है।

३४६ वें अध्याय में माधुर्यादि काव्यगुणों का विवेचन किया गया है। काव्यगुणों के होने पर ही अलङ्कारादि की उपयोगिता है अन्यथा वे व्यर्थ हैं। जिस प्रकार कुरूपा स्त्री अच्छी प्रकार अलङ्कृत कर देने पर भी सुन्दर नहीं लगती उसी भाँति गुणविहीन कविता सालङ्कार होने पर भी ठीक नहीं होती—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अलङ्कृतमपि प्रीत्यै न काव्यं निर्गुणं भवेत् ।
वपुष्यललिते स्त्रीणां हारो भारायते परम् ॥ ३४६।१

गुण की परिभाषा करते हुये कहा गया है कि जो काव्य में महती शोभा का आधान करे वह गुण है। इसके सामान्य और विशेष दो भेद होते हैं :

यः काव्ये महतीं छायामनुगृह्णात्यसौ गुणः ।
संभवत्येष सामान्यो वैशेषिक इति द्विधा ॥ ३४६।३

सामान्य के तीन भेद हैं—शब्दगुण, अर्थगुण तथा शब्दार्थगुण। शब्दगुण के सात भेद हैं—श्लेष, लालित्य, गाम्भीर्य, सुकुमारता, उदारता, सत्य और यौगिकी। पुनः अर्थगुण के छः भेद बताये गये हैं : माधुर्य, संविधान, कोमलता, उदारता, प्रौढि और सामयिकत्व। शब्दार्थ या उभयगुणों के छः भेद हैं : प्रसाद, सौभाग्य, यथासंख्य, प्रशस्ति, पाक और राग। इन सामान्य गुणों के अतिरिक्त वैशेषिकगुण का लक्षण देते हुये कहा गया है जो किसी रचना के अपने निजीगुण है वे वैशेषिक गुण कहलाते हैं।

३४७ वें अध्याय में दोष का विवेचन है। सहृदयों को उद्विग्न करने वाली बात ही दोष है। दोषों के वर्णन के अतिरिक्त दोष परिहार भी बताया गया है। कवि-समय का निरूपण भी यहाँ उपलब्ध है।

साहित्यशास्त्रीय अंश का महत्त्व—अग्निपुराण का काव्यशास्त्रीय भाग किसी सम्प्रदाय-विशेष से सम्बद्ध नहीं है अपितु वह समस्त सिद्धान्तों का सार-संकलन है। पुराणों में अग्नि, गरुड तथा नारद में सर्वाधिक विषय समाविष्ट हैं और इसी कारण ये तीनों पुराण विश्वकोश से माने गये हैं। वस्तुस्थिति यह थी कि अग्निपुराण किसी सिद्धान्त का परिपोषक नहीं है अपितु मान्य एवं प्रचलित सभी सिद्धान्तों का परिचायक है। अग्निपुराण के इस साहित्यशास्त्रीय भाग की कुछ अपनी विशेषतायें हैं जिनका संक्षेप में हम इस प्रकार निर्देश कर सकते हैं :

१. यह प्राचीन सिद्धान्तों का सार-संकलन है।

२. संक्षिप्त होते हुये भी कहीं-कहीं अलङ्कारादि के भेदोपभेद इतनी सूक्ष्मता से प्रदर्शित किये गये हैं कि इसके लेखक की सूक्ष्म और तीव्र पकड़ की प्रशस्ति किये बिना नहीं रहा जाता है। अग्निपुराण के साहित्यशास्त्रीय भाग का संकलनकर्ता साहित्यशास्त्र का गम्भीर विद्वान् था। उसने साहित्य के विभिन्न अङ्ग-उपाङ्गों का सम्यक् आलोडन कर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उनके सार अंश का यहाँ रूप खड़ा किया ! भरत, भामह और दण्डी की परम्परा को पुराणकार ने चालू रखा और साहित्यशास्त्र के प्रवर्धन तथा संरक्षण में योगदान दिया। डा० काणे ने अग्निपुराण के साहित्यशास्त्रीय भाग का उपजीव्य दण्डी के काव्यादर्श और भामह के काव्यालङ्कार को माना है।[1] इसके अतिरिक्त अग्निपुराण में स्वयं 'भरतेन प्रणीतत्वाद् भारती वृत्तिरुच्यते' कहकर भरत का प्राग्भाव स्वीकार किया गया है। इस विषय में डा० एस० के० दे का मत है कि अग्निपुराण का लेखक स्वयं सिद्धान्तकार नहीं है और न तो वह किसी सम्प्रदाय-विशेष से सम्बद्ध ही है। यह प्राचीन सामग्री का सार-संकलन है।[2]

२. आयुर्वेद :—अग्निपुराण में आयुर्वेद का विवेचन विस्तृत रूप में मिलता है। आयुर्वेद-शास्त्र के प्रणेता के रूप में धन्वन्तरि और सुश्रुत नामक आचार्यों का उल्लेख है। शारीरिक, मानसिक और बाह्यप्रभाव-जन्य रोगों का बड़ी प्रामाणिकता और विशदता के साथ विवेचन है। रोगों के निरसन निमित्त उपयोगी औषधियों का भी वर्णन मिलता है। ये औषधियाँ मृतकों को भी जीवित करने में समर्थ हैं। इनका प्रतिपादन भगवान् धन्वन्तरि ने सुश्रुत से किया था :—

आयुर्वेदं प्रवक्ष्यामि सुश्रुताय यमब्रवीत्।
देवो धन्वन्तरिः सारं मृतसञ्जीवनीकरम् ॥—२७४।१

इसमें सिद्धयोगों, सिद्धमन्त्रों का वर्णन है।

आयुर्वेदं मम ब्रूहि नराश्वेभरुगर्दनम्।
सिद्धयोगान् सिद्धमन्त्रान् मृतसञ्जीवनीकरान् ॥—२७६।२

रोगों का वर्गीकरण करते हुये उन्हें चार कोटियों में विभक्त किया गया है : शारीर, मानस, आगन्तुक और सहज। शारीर में ज्वरादि, मानस में क्रोधादि, आगन्तुक में विघातोत्थ तथा सहज में वृद्धावस्थादि हैं। रोगों से मुक्ति के लिये विभिन्न प्रकार के दानों का भी वर्णन है (अ० २८०)। रोगों के कारण के विषय में भी पुराण ने विवेचन किया है। रोगों की उत्पत्ति किन कारणों से होती है। किस कारण से किस रोग की उत्पत्ति होती है (२८०।१७–२०)। वात, पित्त

---

१. द्रष्टव्य काणे, Introduction to Sāhitya darpaṇa P. 5.
२. S. K. De, History of Sanskrit Poetics, Part 2, P. 254.
३ अ० पु० भू०

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

और कफ की उत्पत्ति तथा वृद्धि का विवेचन यहाँ मिलता है। वात, पित्त और कफ की वृद्धि से किन-किन विकारों की उपस्थिति होती है तथा इनकी पहचान क्या है इसका उल्लेख भी मिलता है। रोगों के कारण, पहिचान के अनन्तर उनकी चिकित्सा का विधान है। इसके लिये उपयुक्त औषधि और पथ्यादि का विवेचन यहाँ मिलता है। औषधि निर्माण विधि का विवेचन भी उपलब्ध है। सदा सभी रोगों के शमन के लिये विष्णु का ध्यान और पूजन विहित किया गया है :

सर्वरोगप्रशान्त्यै स्याद् विष्णोर्ध्यानञ्च पूजनम् ॥
—२८०।४८-३०

आरोग्य के सिद्धान्तों का प्रतिपादन यहाँ किया गया है। यहाँ बताया गया है कि आहार, मैथुन और निद्रा के विषय में सदा सचेष्ट रहना चाहिये। इनके अत्यन्त सेवन और अत्यन्त असेवन दोनों से हानियाँ हैं :

आहारो मैथुनं निद्रा तेषु यत्नः सदा भवेत् ।
असेवनात् सेवनाच्च अत्यन्तं नाशमाप्नुयात् ॥—२८१।१८

क्षीण शरीर का पोषण, मध्यम का रक्षण और स्थूल का कर्षण आवश्यक है :

क्षयस्य बृंहणं कार्यं स्थूलदेहस्य कर्षणम् ।
रक्षणं मध्यकायस्य देहभेदास्त्रयो मताः ॥ २८१।१६

व्यायाम से कफ नष्ट होता है, मर्दन से बात और स्नान से पित्त नष्ट होता है :

व्यायामश्च कफं हन्याद् वातं हन्याच्च मर्दनम् ।
स्नानं पित्ताधिकं हन्यात्तस्यान्ते चातपाः प्रियाः ॥
—२८२।३२-३३

वस्तुतः अग्निपुराण 'विद्यासागर' है और 'सारात्सारतरम्' का कथन करता है। यद्यपि यहाँ आयुर्वेद का वर्णन उतना क्रमबद्ध तथा वैज्ञानिक नहीं, जितना आयुर्वेद के ग्रन्थों में, पर सुश्रुत, चरक आदि आचार्यों द्वारा वर्णित सिद्धान्तों एवं विषयों का सार यहाँ उपलब्ध होता है।

अश्वायुर्वेद—अश्वायुर्वेद का वर्णन २२८ वें अध्याय से २९० वें अध्याय तक है। अश्वलक्षण-चिकित्सादि के प्रवर्तक के रूप में शालिहोत्र नामक आचार्य क निर्देश है। शालिहोत्र अश्वायुर्वेद के

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रसिद्ध विद्वान् माने जाते हैं। अग्निपुराण में अश्व के लक्षण, वाहन-प्रक्रिया तथा अश्वचिकित्सा का समुचित वर्णन है। वस्तुतः घोड़े और हाथी प्राचीनकाल के प्रचलित वाहन रहे हैं और इनका बहुत महत्त्व रहा है। ये शुभाशुभ के प्रदायक भी माने जाते रहे हैं। इस दृष्टि से अश्वायुर्वेद का बड़ा महत्त्व रहा है।

गजायुर्वेद—अश्व के ही समान गज की सवारी भी बहुत प्रसिद्ध रही है। गजायुर्वेद के प्रवर्तक के रूप में पालकाप्य नामक आचार्य का निर्देश है। इस प्रकरण में गज-परीक्षण तथा गजचिकित्सा दोनों वर्णित हैं। अन्त में गजशान्ति का वर्णन है। गजविद्या का उपदेश पालकाप्य आचार्य ने लोमपाद को ही दिया था :

गजलक्ष्म चिकित्साञ्च लोमपाद ब्रवीमि ते।—२८७।१

वृक्षायुर्वेद—२८२ वें अध्याय में धन्वन्तरि ने वृक्षायुर्वेद का वर्णन किया है। इसमें १३ श्लोकों में वृक्षों की चिकित्सा वर्णित है।

३. रत्नपरीक्षा—अग्निपुराण में रत्नपरीक्षा के विषय में भी एक अध्याय (२४६ में वर्णन) उपलब्ध होता है। प्रारम्भ में रत्नों का नाम गिनाया गया है और बताया गया है कि किस प्रकार के रत्न धार्य तथा अधार्य हैं। रत्न परीक्षा प्रकरण गरुड़पुराण में भी वर्णित है।

४. वास्तुविद्या—अग्निपुराण में वास्तुविद्या बहुत वर्णित है। इस विद्या से सम्बद्ध कई अध्याय हैं (यथा ३८-४१, ६३-६४, १०४-६, २४७)। इसमें विभिन्न देवताओं के मन्दिरों की स्थिति, मन्दिर निर्माण विधि, मूर्ति निर्माण के नियम, शालग्राम, मूर्ति परिमाण, गोपुर निर्माण, इत्यादि वर्णित हैं। प्रासाद निर्माण, नगर निर्माण आदि का विवेचन भी विस्तार से मिलता है (१०४-१०६)। वस्तुतः वास्तुविद्या का वर्णन यत्र-तत्र कई स्थानों पर बिखरा हुआ है। मन्दिरों के वैराज, पुष्पक, कैलास, माणिक और त्रिविष्टप पांच प्रकार बताये गये हैं।

प्रतिमा निर्माण और स्थापन विधि का वर्णन भी बड़ी व्यापकता के साथ हुआ है। इसमें देवी देवताओं की मूर्तियों के प्रकार, परिमाण, लक्षण आदि का कथन कर उनके पूजन का भी सविस्तर वर्णन है।

५. राजनीति—अग्निपुराण में राजनीति का भी व्यापक वर्णन है। यह दो स्थानों पर उपलब्ध होती है, प्रथम २१८-२३७ अध्यायों में और दूसरी २३८–२४२ अध्यायों में। प्रथम पुष्करोक्त राजनीति है जिसे

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पुष्कर ने राम से कहा था और दूसरी रामोक्ता नीति है जिसे राम ने लक्ष्मण से कहा था। विद्वानों की राय में पुष्करोक्ता नीति परवर्ती रचना है।[1] मत्स्यपुराण के राजधर्म से यह साम्य रखता है। मत्स्यपुराण २१५-७, २२०, २२७ अग्निपुराण के प्रथम विवरण (पुष्करोक्त राजधर्म) का आधार प्रतीत होता है। द्वितीय विवरण कामन्दकीय नीतिसार से गृहीत है। पुष्करनीति में अभिषेक, सहायसम्पत्ति, अनुजीविवृत्त, दुर्गसम्पत्ति, राजधर्म, दण्ड, युद्ध, यात्रा, षाड्गुण्य तथा राजा के दैनन्दिन कृत्य वर्णित हैं। रामोक्तनीति में भी प्रायः ये ही विषय हैं। रामोक्त नीति में राज्यतन्त्र के मुख्य विषयों का विवेचन है और राजा के कर्त्तव्य तथा गुणों का वर्णन है। राज्य के सप्त अंग बताये गये हैं—स्वामी, अमात्य, राष्ट्र, दुर्ग, कोश, बल और सुहृद् :

स्वाम्यमात्यञ्च राष्ट्रञ्च दुर्गं कोशो बलं सुहृत् ।
परस्परोपकारीदं सप्ताङ्गं राज्यमुच्यते ॥—२३९।१

राज्यवृत्त को चतुर्विध बताया गया है :

न्यायेनार्जनमर्थस्य वर्धनं रक्षणं चरेत् ।
सत्पात्रप्रतिपत्तिश्च राज्यवृत्तं चतुर्विधम् ॥ २३८।२

राजनीति का षाड्गुण्य प्रधान अङ्ग है। षाड्गुण्य में सन्धि, विग्रह, यान, आसन और द्वैधीभाव आते हैं। इनका विस्तृत वर्णन (२४०।६-३२) हुआ है। शत्रुपराजय के लिये सात उपायों का वर्णन किया गया है। वे सात उपाय साम, दान, भेद, दण्ड, उपेक्षा, इन्द्रजाल और माया हैं :

साम दानञ्च भेदश्च दण्डोपेक्षेन्द्रजालकम् ।
मायोपायाः सप्त परे निक्षिपेत्साधनायतान् ॥—२४१।४६

इस प्रकार हम देखते हैं कि अग्निपुराण में राजधर्म का विस्तृत और तथ्यपूर्ण विवेचन है। इसके अध्ययन से पता चलता है कि राजनीति से सम्बद्ध साहित्य व्यापक रूप से निर्मित हो चुका था और राज्यशासन की प्रवृत्ति बद्धमूल हो चुकी थी।

६. शस्त्रविद्या—अग्निपुराण में शस्त्रविद्या का भी वर्णन उपलब्ध होता है। सैनिक शिक्षा का वर्णन अग्निपुराण २४९-२५२ अध्यायों में करता है। इसमें विस्तृतरूप से धनुर्वेद, शस्त्रपूजा, शस्त्र प्रयोग, अश्व

---

१. द्रष्टव्य ज्ञानी : अग्निपुराण—ए स्टडी पृ० २५४।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

या हाथी पर चढ़े हुए रहकर शस्त्र का उपयोग, युद्ध की हर कलायें इत्यादि वर्णित हैं। उस समय युद्ध में हाथियों का उपयोग भी बहुत होता था। अतः शत्रु-अवरोधार्थ हाथियों का उपयोग भी प्रशस्त माना गया है।

(३) अग्निपुराण का रचनाकाल

पुराणों के रचनाकाल के विषय में निश्चयात्मक दृष्टि से कुछ कहना सुतरां असम्भव है। वस्तुतः पुराण जीवन्त साहित्य था जो जनता और विद्वान् दोनों में समानरूप से प्रचलित था। सूत इसे घूम-घूम कर जनता को सुनाया करते थे। विद्वानों की राय में वंश परम्परा का धारण सूतों का प्रधान कार्य था। शास्त्रीय विषयों का संकलन व्यास ने किया और इस प्रकार पुराण लिखित रूप में प्रकट हुये। पर, वस्तुतः पुराण साहित्य निश्चित रूप से सर्वाधिक प्राचीन साहित्य है और इसका उद्भव और विकास हिन्दू जाति और सभ्यता के उद्भव तथा विकास से सम्बद्ध है।

अग्निपुराण, विषय-विस्तार की दृष्टि से बहुत व्यापक है। इसे विश्वकोश जैसा माना जाता है। इस दृष्टि से विचार करने पर प्रतीत होता है कि विभिन्न विषयों की रचना समय-समय पर होती रही और तत्तद् अंश पुराण-वाङ्मय में समाविष्ट होते रहे। अग्निपुराण के काव्य-शास्त्रीय अंश की विवेचना के प्रसङ्ग में विद्वानों ने उसके निर्माण काल के विषय में ऊहापोह किया है। विद्वानों की सम्मति में अग्निपुराण का साहित्यशास्त्रीय भाग दण्डी के काव्यादर्श की अपेक्षा अर्वाचीन है। दण्डी का समय सातवीं सदी माना जाता है फलतः यह सातवीं सदी से बाद का निर्माण है। उधर भोजराज के सरस्वतीकण्ठाभरण का प्रधान उपजीव्य ग्रन्थ है। भोजराज का समय ग्यारहवीं सदी का मध्यभाग माना जाता है। अतः अग्निपुराण के इस भाग की रचना सातवीं सदी के बाद और ग्यारहवीं से पूर्व हुई थी। बहुत संभव रूप में नवीं सदी में या उसके बाद अग्निपुराण के इस अंश की रचना हुई।[1]

---

१. द्रष्टव्य पी० वी० काणे, History of Sanskrit Poetics, p. 9, S. K. De, J. R. A. S. 1923 pp, 523 ff.; बलदेव उपाध्याय, पुराण विमर्श पृ० ५५२, रामशंकर भट्टाचार्य, अग्निपुराणविषयानुक्रमणी पृ० १३।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इसके विपरीत कुछ लोग इसकी रचना दण्डी से पूर्व मानते हैं और पाँचवीं या छठी सदी इसका रचनाकाल निश्चित करते हैं।[1] पुराणों के प्रसिद्ध विद्वान् डा० आर० सी० हाजरा महोदय अग्निपुराण की रचना नवीं सदी में स्वीकार करते हुये कहते हैं कि मतभेद होते हुए भी इसमें कोई विशेष मतभेद नहीं हो सकता कि वर्तमान अग्निपुराण की निर्मिति नवीं सदी में किसी समय हुई।[2] एस० डी० ज्ञानी की राय में इसका संकलन तीन चार शताब्दियों में हुआ और साम्प्रदायिक विचारधारायें जुड़ती गईं। मुख्यांश में परवर्ती रचनाओं का अन्वेषण किया जा सकता है। यह विकास-विस्तार की प्रक्रिया ७०० ई० या ८०० ई० से १००० या ११०० ई० तक हुई और इस अवधि में वह पुराण अपने वर्तमान रूप में आ गया।[3] एस० बी० चौधुरी इसकी रचना आठवीं सदी के मध्य से ९ वीं सदी के मध्य तक मानते हैं। इस प्रकार विद्वानों की राय में अग्निपुराण नवीं सदी के आस-पास अपने वर्तमान रूप में बन गया।

---

१. कन्हैयालाल पोद्दार, संस्कृत साहित्य का इतिहास पृ० ८२।

2. Purāṇic Records, p. 138.

3. The Agni-Purāṇa belongs to that phase of Purāṇic development when the Purāṇic literature was by the addition of secterian and other matter. It is a summarisation and compilation of works on various subjects spread over three or four centuries. As a result of the critical study of Agni-Purāṇa the process of its development may easily be discerned. With the subsequent additions to the original Kernal the Purāṇa assumed its extant form. This process of development may roughly have spread over about three centuries from A. D. 700 or 800 to A. D. 1000 or 1100. Agni-Purāṇa—A Study by S. D. Gyani p. 288.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विषयसूची

अ०	विषय	पृष्ठाङ्क
१	ग्रन्थप्रस्तावना-विषय-प्रवेश	१
२	मत्स्यावतार वर्णन	२
३	कूर्मावतार वर्णन	३
४	वराह, नृसिंह, वामन, परशुराम अवतार वर्णन	५
५	रामावतार वर्णन	६
६	"	७
७	"	९
८	"	१०
९	"	११
१०	"	१२
११	"	१३
१२	हरिवंश वर्णन	१४
१३	कौरव-पाण्डव-कथा	१६
१४	कौरव-पाण्डव-युद्ध	१७
१५	कृष्ण, पाण्डवादि-अन्तवर्णन	१९
१६	बुद्ध-अर्हत्-कल्कि वर्णन	"
१७	सृष्टि वर्णन	२०
१८	स्वायम्भुव वंश वर्णन	२१
१९	कश्यपवंश वर्णन	२३
२०	सर्ग कथन	२५
२१	पूजा वर्णन	२६
२२	स्मानविधि वर्णन	२७
२३	पूजा विधि वर्णन	२८
२४	कुण्डनिर्माणादि विधि	२९
२५	मन्त्र वर्णन	३२
२६	मुद्रालक्षण वर्णन	३४
२७	दीक्षा विधि	३५
२८	अभिषेक विधि	३९
२९	सर्वतोभद्रमण्डल वर्णन	"
३०	मण्डल विधि	४१
३१	मार्जन विधि	४३
३२	संस्कारादि कथन	४५
३३	पवित्रारोहण	"
३४	होमादि वर्णन	४८
३५	पवित्राधिवासन	५०
३६	पवित्रारोपण	५१
३७	सर्वदेव पवित्रारोहण विधि	५२
३८	देवालयनिर्माण फल	"
३९	भूपरिग्रह विधान	५५
४०	अर्घ्यदान विधान	५६
४१	शिलाविन्यास वर्णन	५७
४२	प्रासादलक्षण कथन	५८
४३	प्रासाददेवता स्थापन	६०
४४	प्रतिमालक्षण विधि	६१
४५	पिण्डिका लक्षण	६३
४६	शालग्रामादि मूर्तिलक्षण	६४
४७	शालग्राम पूजन	६५
४८	चतुर्विंशतिमूर्ति स्तोत्र	"
४९	मत्स्यादिलक्षण वर्णन	६६
५०	देवीप्रतिमा लक्षण	६७
५१	सूर्यादिप्रतिमा लक्षण	६९
५२	देवीप्रतिमा लक्षण	७०
५३	लिङ्ग लक्षण	७१
५४	लिङ्गमानादि कथन	७२
५५	पिण्डका लक्षण	७४
५६	दिक्पालयाग	७५
५७	कुम्भाधिवास विधि	७६
५८	स्नानादि विधि	७७
५९	अधिवास कथन	७९
६०	वासुदेवप्रतिष्ठादि	८१
६१	द्वारप्रतिष्ठाध्वजारोहणादि विधि	८३
६२	लक्ष्मीप्रतिष्ठा विधि	८५
६३	सुदर्शनचक्रादिप्रतिष्ठा	८६

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इसके विपरीत कुछ लोग इसकी रचना दण्डी से पूर्व मानते हैं और पाँचवीं या छठी सदी इसका रचनाकाल निश्चित करते हैं।[१] पुराणों के प्रसिद्ध विद्वान् डा० आर० सी० हाजरा महोदय अग्निपुराण की रचना नवीं सदी में स्वीकार करते हुये कहते हैं कि मतभेद होते हुए भी इसमें कोई विशेष मतभेद नहीं हो सकता कि वर्तमान अग्निपुराण की निर्मिति नवीं सदी में किसी समय हुई।[२] एस० डी० ज्ञानी की राय में इसका संकलन तीन चार शताब्दियों में हुआ और साम्प्रदायिक विचारधारायें जुड़ती गईं। मुख्यांश में परवर्ती रचनाओं का अन्वेषण किया जा सकता है। यह विकास-विस्तार की प्रक्रिया ७०० ई० या ८०० ई० से १००० या ११०० ई० तक हुई और इस अवधि में वह पुराण अपने वर्तमान रूप में आ गया।[3] एस० बी० चौधुरी इसकी रचना आठवीं सदी के मध्य से ९ वीं सदी के मध्य तक मानते हैं। इस प्रकार विद्वानों की राय में अग्निपुराण नवीं सदी के आस-पास अपने वर्तमान रूप में बन गया।

१. कन्हैयालाल पोद्दार, संस्कृत साहित्य का इतिहास पृ० ८२।

2. Purāṇic Records, p. 138.

3. The Agni-Purāṇa belongs to that phase of Purāṇic development when the Purāṇic literature was by the addition of secterian and other matter. It is a summarisation and compilation of works on various subjects spread over three or four centuries. As a result of the critical study of Agni-Purāṇa the process of its development may easily be discerned. With the subsequent additions to the original Kernal the Purāṇa assumed its extant form. This process of development may roughly have spread over about three centuries from A. D. 700 or 800 to A. D. 1000 or 1100. Agni-Purāṇa—A Study by S. D. Gyani p. 288.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विषयसूची

अ०	विषय	पृष्ठाङ्क
१	ग्रन्थप्रस्तावना-विषय-प्रवेश	१
२	मत्स्यावतार वर्णन	२
३	कूर्मावतार वर्णन	३
४	वराह, नृसिंह, वामन, परशुराम अवतार वर्णन	५
५	रामावतार वर्णन	६
६	"	७
७	"	९
८	"	१०
९	"	११
१०	"	१२
११	"	१३
१२	हरिवंश वर्णन	१४
१३	कौरव-पाण्डव-कथा	१६
१४	कौरव-पाण्डव-युद्ध	१७
१५	कृष्ण, पाण्डवादि-अन्तवर्णन	१९
१६	बुद्ध-अर्हत्-कल्कि वर्णन	"
१७	सृष्टि वर्णन	२०
१८	स्वायम्भुव वंश वर्णन	२१
१९	कश्यपवंश वर्णन	२३
२०	सर्ग कथन	२५
२१	पूजा वर्णन	२६
२२	स्मानविधि वर्णन	२७
२३	पूजा विधि वर्णन	२८
२४	कुण्डनिर्माणादि विधि	२९
२५	मन्त्र वर्णन	३२
२६	मुद्रालक्षण वर्णन	३४
२७	दीक्षा विधि	३५
२८	अभिषेक विधि	३९
२९	सर्वतोभद्रमण्डल वर्णन	"
३०	मण्डल विधि	४१
३१	मार्जन विधि	४३
३२	संस्कारादि कथन	४५
३३	पवित्रारोहण	"
३४	होमादि वर्णन	४८
३५	पवित्राधिवासन	५०
३६	पवित्रारोपण	५१
३७	सर्वदेव पवित्रारोहण विधि	५२
३८	देवालयनिर्माण फल	"
३९	भूपरिग्रह विधान	५५
४०	अर्घ्यदान विधान	५६
४१	शिलाविन्यास वर्णन	५७
४२	प्रासादलक्षण कथन	५८
४३	प्रासाददेवता स्थापन	६०
४४	प्रतिमालक्षण विधि	६१
४५	पिण्डिका लक्षण	६३
४६	शालग्रामादि मूर्तिलक्षण	६४
४७	शालग्राम पूजन	६५
४८	चतुर्विंशतिमूर्ति स्तोत्र	"
४९	मत्स्यादिलक्षण वर्णन	६६
५०	देवीप्रतिमा लक्षण	६७
५१	सूर्यादिप्रतिमा लक्षण	६९
५२	देवीप्रतिमा लक्षण	७०
५३	लिङ्ग लक्षण	७१
५४	लिङ्गमानादि कथन	७२
५५	पिण्डका लक्षण	७४
५६	दिक्पालयाग	७५
५७	कुम्भाधिवास विधि	७६
५८	स्नानादि विधि	७७
५९	अधिवास कथन	७९
६०	वासुदेवप्रतिष्ठादि	८१
६१	द्वारप्रतिष्ठाध्वजारोहणादि विधि	८३
६२	लक्ष्मीप्रतिष्ठा विधि	८५
६३	सुदर्शनचक्रादिप्रतिष्ठा	८६

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अ०	विषय	पृष्ठाङ्क
६४	कूपादिप्रतिष्ठा कथन	८८
६५	सभास्थापन	८९
६६	साधारण प्रतिष्ठा विधान	९१
६७	जीर्णोद्धार विधि	९२
६८	यात्रोत्सवविधि कथन	"
६९	स्नान विधान	९३
७०	वृक्षादिप्रतिष्ठा वर्णन	९४
७१	गणेशपूजा विधि	९५
७२	स्नानविशेषादि कथन	"
७३	सूर्यपूजा विधि	९७
७४	शिवपूजा कथन	९८
७५	अग्निस्थापनादि प्रतिष्ठा	१०२
७६	चण्डपूजा कथन	१०५
७७	कपिलादिपूजा विधान	१०६
७८	पवित्रारोहण कथन	१०७
७९	"	११०
८०	दमनकारोहण	११२
८१	समयदीक्षा विधान	११३
८२	संस्कार दीक्षा	११७
८३	निर्वाण दीक्षा	११८
८४	"	१२१
८५	प्रतिष्ठाकला शोधन	१२४
८६	विद्याविशोधन	१२७
८७	शान्ति शोधन	१२८
८८	निर्वाण दीक्षा	१२९
८९	एकतत्त्व दीक्षा	१३२
९०	अभिषेकादि कथन	"
९१	विविधमन्त्र वर्णन	१३३
९२	प्रतिष्ठा विधि	१३४
९३	वास्तुपूजा विधान	१३८
९४	शिलाविन्यास	१४१
९५	प्रतिष्ठा सामग्री	१४२
९६	अधिवासनविधि	१४६
९७	शिवप्रतिष्ठा कथन	१५६
९८	गौरी प्रतिष्ठा	१६२
९९	सूर्यप्रतिष्ठा	१६३
१००	द्वारप्रतिष्ठा	"
१०१	प्रासादप्रतिष्ठा	१६४
१०२	ध्वजारोपण	१६५
१०३	जीर्णोद्धार	१६८
१०४	प्रासादलक्षण	१६९
१०५	नगरादिवास्तु कथन	१७२
१०६	"	१७५
१०७	स्वायम्भुवसर्ग	१७६
१०८	भुवनकोश	१७७
१०९	तीर्थमाहात्म्य	१७९
११०	गङ्गामाहात्म्य	१८१
१११	प्रयाग माहात्म्य	"
११२	वाराणी माहात्म्य	१८२
११३	नर्मदादि माहात्म्य	१८३
११४	गयामाहात्म्य	"
११५	गयायात्रा विधि	१८६
११६	"	१८९
११७	श्राद्धकल्प	१९१
११८	भारतवर्ष	१९५
११९	महाद्वीपादि	"
१२०	भुवनकोश	१९७
१२१	ज्योतिःशास्त्र	१९९
१२२	कालगणना	२०२
१२३	युद्धजयार्णव योग	२०४
१२४	ज्योतिः शास्त्रसार	२०५
१२५	" चक्र	२०७
१२६	नक्षत्र निर्णय	२१०
१२७	नानावलानि	२११
१२८	कोटचक्र	२१३
१२९	अर्घकाण्ड	"
१३०	घातचक्र	२१४
१३१	घातचक्रादि	२१५
१३२	सेवाचक्र	२१६
१३३	नानावलानि	२१७
१३४	त्रैलोक्यविजयविद्या	२२०
१३५	संग्रामविजयविद्या	"
१३६	नक्षत्रचक्र	२२२
१३७	महामारी विद्या	"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अ० विषय	पृष्ठाङ्क	अ० विषय	पृष्ठाङ्क
१३८ षट्कर्म	२२४	१७६ प्रतिपद्व्रत	२७५
१३९ षष्टिसंवत्सर	२२५	१७७ द्वितीयाव्रत	,,
१४० वश्यादियोग	,,	१७८ तृतीयाव्रत	२७६
१४१ ३७ पदार्थ ज्ञान	२२६	१७९ चतुर्थीव्रत	२७८
१४२ मन्त्रौषधादि	२२७	१८० पञ्चमीव्रत	२७९
१४३ कुब्जिका पूजा	२२९	१८१ षष्ठीव्रत	,,
१४४ ,,	२३०	१८२ सप्तमीव्रत	,,
१४५ मालिनी मंत्र	२३२	१८३ अष्टमीव्रत	२८०
१४६ अष्टाष्टकदेवी	२३४	१८४ अष्टमीव्रत	२८१
१४७ त्वरिता पूजा	,,	१८५ नवमीव्रत	२८२
१४८ संग्रामविजयपूजा	२३७	१८६ दशमीव्रत	२८३
१४९ लक्षकोटिहोम	,,	१८७ एकादशीव्रत	२८४
१५० मन्वन्तर	२३८	१८८ द्वादशीव्रत	,,
१५१ वर्णेतरधर्म	२३९	१८९ श्रवणद्वादशीव्रत	२८५
१५२ गृहस्थवृत्ति	२४०	१९० अखण्डद्वादशीव्रत	२८६
१५३ ब्रह्मचर्याश्रम धर्म	२४१	१९१ त्रयोदशीव्रत	२८७
१५४ विवाह	२४२	१९२ चतुर्दशीव्रत	,,
१५५ आचार	२४३	१९३ शिवरात्रिव्रत	२८८
१५६ द्रव्यशुद्धि	२४४	१९४ अशोकपूर्णिमादिव्रत	२८९
१५७ अशौच	२४५	१९५ वारव्रत	,,
१५८ स्रावाद्यशौच	२४७	१९६ नक्षत्रव्रत	२९०
१५९ असंस्कृतादिशौच	२५०	१९७ दिवसव्रत	२९१
१६० वानप्रस्थाश्रम	२५१	१९८ मासव्रत	२९२
१६१ यतिधर्म	२५२	१९९ नानाव्रत	२९३
१६२ धर्मशास्त्र कथन	२५३	२०० दीपदानव्रत	,,
१६३ श्राद्धकल्प	२५४	२०१ नवव्यूहार्चन	२९४
१६४ नवग्रहहोम	२५६	२०२ पुष्पाध्यायकथन	२९५
१६५ नाना धर्म	,,	२०३ नरकस्वरूप	२९६
१६६ वर्णधर्मादिकथन	२५८	२०४ मासोपवासव्रत	२९७
१६७ अयुतलक्षकोटिहोम	२५९	२०५ भीष्मपञ्चकव्रत	२९८
१६८ महापातक वर्णन	२६१	२०६ अगस्त्यार्घ्यदान	२९९
१६९ प्रायश्चित्त	२६३	२०७ कौमुदव्रत	३००
१७० प्रायश्चित्त	२६४	२०८ सामान्यव्रत दानादिकथन	३०१
१७१ प्रायश्चित्त	२६७	२०९ दानपरिभाषा	,,
१७२ सर्वपापप्रायश्चित्त	,,	२१० महादान	३०४
१७३ प्रायश्चित्त	२६९	२११ नानादान	३०५
१७४ प्रायश्चित्त	२७१	२१२ मेरुदान	३०९
१७५ व्रतपरिभाषा	२७२	२१३ पृथ्वीदान	३१०

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अ० विषय	पृष्ठाङ्क
२१४ मन्त्रमाहात्म्यकथन	३११
२१५ सन्यासविधि	३१३
२१६ गायत्रीनिर्वाण	३१५
२१७ "	३१६
२१८ राज्याभिषेक कथन	३१७
२१९ अभिषेक मन्त्र	३१८
२२० सहायसम्पत्ति	३२१
२२१ अनुजीविवृत्त	३२२
२२२ दुर्गसम्पत्ति	३२३
२२३ राजधर्म	३२४
२२४ राजधर्म	३२६
२२५ राजधर्म	३२८
२२६ राजधर्म	३२९
२२७ "	३३०
२२८ युद्धयात्रा	३३३
२२९ स्वप्नाध्याय	३३४
२३० शकुन	३३५
२३१ "	३३६
२३२ "	३३७
२३३ यत्रामण्डलचिन्ता	३३९
२३४ षाड्गुण्य	३४०
२३५ दैनन्दिन राजकर्म	३४१
२३६ रणदीक्षा	३४२
२३७ श्रीस्तोत्र	३४५
२३८ रामोक्त नीति	३४६
२३९ रामोक्त राजधर्म	३४७
२४० षाड्गुण्य	३५०
२४१ सामदानादि	३५१
२४२ राजनीति	३५४
२४३ पुरुषलक्षण	३५७
२४४ स्त्रीलक्षण	३५८
२४५ चामरादिलक्षण	"
२४६ रत्नपरीक्षा	३६०
२४७ वास्तुलक्षण	"
२४८ पुष्पादिपूजाफल	३६२
२४९ धनुर्वेद	"
२५० "	३६४
२५१ "	३६५

अ० विषय	पृष्ठाङ्क
२५२ धनुर्वेद	"
२५३ व्यवहार कथन	३६७
२५४ "	३६९
२५५ दिव्य-प्रमाण-कथन	३७१
२५६ दायविभाग	३७३
२५७ सीमाविवाद निर्णय	३७४
२५८ वाक्पारुष्यादिप्रकरण	३७६
२५९ ऋग्विधान	३७९
२६० यजुर्विधान	३८३
२६१ सामविधान	३८६
२६२ अथर्वविधान	३८८
२६३ उत्पातशान्ति	३८९
२६४ देवपूजा वैश्वदेवबलि	३९०
२६५ दिक्पालादिस्नान	३९२
२६६ विनायकस्नान	३९३
२६७ माहेश्वरस्नान लक्षकोटि होमादि	३९४
२६८ नीराजना विधि	३९५
२६९ छत्रादि मन्त्र	३९६
२७० विष्णुपञ्जर	३९८
२७१ वेदशाखादिकीर्तन	३९९
२७२ पुराणदान माहात्म्य	४००
२७३ सूर्यवंश वर्णन	४०१
२७४ सोमवंश वर्णन	४०३
२७५ यदुवंश वर्णन	४०४
२७६ यदुवंश वर्णन तथा द्वादश देवासुर संग्राम	४०६
२७७ राजवंश वर्णन	४०७
२७८ पुरुवंश वर्णन	४०८
२७९ सिद्धौषध	४१०
२८० सर्वरोगहारी औषध	४१३
२८१ रसादि लक्षण	४१४
२८२ वृक्षायुर्वेद	४१६
२८३ नानारोगहारी औषध	४१७
२८४ मन्त्रौषध वर्णन	४१९
२८५ मृतसञ्जीवनीकर सिद्धयोग	"
२८६ कल्पसागर	४२२
२८७ गजचिकित्सा	४२४
२८८ अश्ववाहनसार	४२५

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अ०	विषय	पृष्ठाङ्क
२८९	अश्वचिकित्सा	४२८
२९०	अश्वशान्ति	४३०
२९१	गजशान्ति	४३१
२९२	शान्त्यायुर्वेद	४३२
२९३	मंत्रपरिभाषा	४३४
२९४	नागलक्षण	४३६
२९५	दष्टचिकित्सा	४३८
२९६	पञ्चाङ्गरुद्रविधान	४४०
२९७	विषारी मन्त्रौषध	४४१
२९८	गोनसादिचिकित्सा	४४२
२९९	वालग्रहहारी वालतन्त्र	४४३
३००	ग्रहहारीमंत्रादि	४४५
३०१	सूर्यार्चन	४४७
३०२	नाना मन्त्र	४४८
३०३	अङ्गाक्षरार्चन	४४९
३०४	पञ्चाक्षरादि पूजा	४५०
३०५	पचपन विष्णुनाम	४५२
३०६	नारसिंहादि मन्त्र	४५३
३०७	त्रैलोक्यमोहन मंत्र	४५४
३०८	त्रैलोक्यमोहनी लक्ष्म्यादि पूजा	४५६
३०९	त्वरिता पूजा	४५७
३१०	त्वरिता मंत्रादि	४५८
३११	त्वरिता मूलसंत्र	४६०
३१२	त्वरिता विद्या	४६२
३१३	नाना मन्त्र	४६३
३१४	त्वरिता ज्ञान	४६५
३१५	स्तम्भनादि मन्त्र	४६६
३१६	नाना मन्त्र	४६७
३१७	सकलादि मंत्रोद्धार	४६८
३१८	गणपूजा	४६९
३१०	वागेश्वरीपूजा	४७०
३२०	मण्डल	४७१
३२१	अघोरास्त्रादि शान्तिकल्प	४७३
३२२	पाशुपत शान्ति	”
३२३	षडङ्ग अघोरास्त्र	४७५
३२४	रुद्रशान्ति	४७७
३२५	अंशकादि	४७८
३२६	गौर्यादिपूजा	४७९
३२७	देवालय माहात्म्य	४८१
३२८	छन्दःसार	४८२
३२९	छन्दःसार	”
३३०	छन्दःसार	४८३
३३१	छन्दोजातिनिरूपण	४८४
३३२	विषम कथन	४८५
३३३	अर्धसमनिरूपण	”
३३४	समवृत्तनिरूपण	४८६
३३५	प्रस्तारनिरूपण	४८७
३३६	शिक्षानिरूपण	४८८
३३७	काव्यादिलक्षण	४८९
३३८	नाटकनिरूपण	४९०
३३९	रसनिरूपण	४९२
३४०	रीतिनिरूपण	४९४
३४१	नृत्यादि में अङ्गकर्मनिरूपण	४९५
३४२	अभिनयादिनिरूपण	४९६
३४३	शव्दालङ्कार	४९७
३४४	अर्थालङ्कार	५००
३४५	शव्दार्थालङ्कार	५०१
३४६	काव्यगुणविवेक	५०२
३४७	काव्यदोषविवेक	५०३
३४८	एकाक्षराभिधान	५०५
३४९	व्याकरण	५०६
३५०	सन्धि	५०७
३५१	सुब्विभक्ति	५०८
३५२	स्त्रीलिङ्ग	५११
३५३	नपुंसकलिङ्ग	५१२
३५४	कारक	५१३
३५५	समास	५१४
३५६	तद्धित	५१५
३५७	उणादि	५१६
३५८	तिङ्विभक्ति	५१७
३५९	कृत्सिद्धि	५१९
४६०	स्वर्गपातालादिवर्ग	”
३६१	अव्ययवर्ग	५२३
३६२	नानार्थवर्ग	५२४
३६३	भूमिवनौषध्यादिवर्ग	५२६

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अ०	विषय	पृष्ठाङ्क
३६४	नृब्रह्मक्षत्रविट्शूद्रवर्ग	५२९
३६५	ब्रह्मवर्ग	५३१
३६६	क्षत्रविट्शूद्रवर्ग	"
३६७	समान्यनामलिङ्ग	५३४
३६८	नित्यनैमित्तिक प्राकृत प्रलय	५३५
३६९	आत्यन्तिकलयगर्भोत्पत्तिनिरूपण	५३६
३७०	शरीरावयव	५३८
३७१	नरकनिरूपण	५४०
३७२	यमनियम	५४२
३७३	आसनप्राणायामप्रत्याहार	५४३
३७४	ध्यान	५४४
३७५	धारणा	५४६
३७६	समाधि	५४७
३७७	ब्रह्मज्ञान	५४९
३७८	ब्रह्मज्ञान	५५०
३७९	ब्रह्मज्ञान	५५१
३८०	अद्वैतब्रह्मविज्ञान	५५२
३८१	गीतासार	५५६
३८२	यमगीता	५५९
३८३	आग्नेयपुराण महात्म्य	५६०

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ओं नमो भगवते वासुदेवाय

अग्निपुराणम्

प्रथमोऽध्यायः

ग्रन्थ-प्रस्तावना ।

श्रियं[1] सरस्वतीं गौरीं गणेशं स्कन्दमीश्वरम् । ब्रह्माणं वह्निमिन्द्रादीन्वासुदेवं नमाम्यहम् ॥१॥
नैमिषे हरिमीजाना ऋषयः शौनकादयः । तीर्थयात्राप्रसङ्गेन स्वागतं सूतमब्रुवन् ॥२॥

ऋषय ऊचुः

सूत त्वं पूजितोऽस्माभिः सारात्सारं वदस्व नः । येन विज्ञानमात्रेण[2] सर्व्वज्ञत्वं प्रजायते ॥३॥

सूत उवाच

सारात्सारो हि भगवान विष्णुः सर्गादिकृद्विभुः । ब्रह्माहमस्मि तं ज्ञात्वा सर्व्वज्ञत्वं प्रजायते ॥
द्वे ब्रह्मणी वेदितव्ये शब्दब्रह्म परं च यत्[3] । द्वे विद्ये वेदितव्ये हि इति चाथर्वणी श्रुतिः ॥५॥
अहं शुकश्च पैलाद्या गत्वा बदरिकाश्रमम् । व्यासं नत्वा पृष्टवन्तः सोऽस्मान् सारमथाब्रवीत् ॥

व्यास उवाच

शुकाद्यैः शृणु सूत त्वं वशिष्ठो मां यथाऽब्रवीत्[4] । ब्रह्मसारं हि पृच्छन्तं मुनिभिश्च परात्परम् ॥

वसिष्ठ उवाच

द्वैविध्यं ब्रह्म[5] वक्ष्यामि शृणु व्यासाखिलानुगम्[6] । यथाऽग्निर्मां पुरा प्राह मुनिभिर्दैवतैः सह ॥
पुराणं परमाग्नेयं ब्रह्मविद्याक्षरं परम् । ऋग्वेदाद्यपरं ब्रह्म सर्वदेवसुखावहम्[7] ॥६॥
अग्निनोक्तं पुराणं यदाग्नेयं ब्रह्मसम्मितम्[8] । भुक्तिमुक्तिप्रदं दिव्यं[9] पठतां शृण्वतां नृणाम् ॥
कालाग्निरूपिणं विष्णुं ज्योतिर्ब्रह्म परात्परम् । मुनिभिः पृष्टवान् देवं पूजितं ज्ञानकर्म्मभिः ॥

---

१. लक्ष्मीमिति घ, चिह्नितपुस्तकपाठः ।
२. विज्ञातमात्रेण इति घ, चिह्नितपुस्तकपाठः ।
३. अपरञ्च परञ्च यदिति ख, चिह्नितपुस्तकपाठः ।
४. यदब्रवीदिति ख, घ, चिह्नितपुस्तकपाठः ।
५. द्वे विद्ये ब्रह्म इति घ, चिह्नितपुस्तकपाठः ।
६. अखिलात्मगमिति ख, चिह्नितपुस्तकपाठः ।
७. सर्ववेदमुखं परमिति ख, चिह्नितपुस्तकपाठः ।
८. वेदसम्मितमिति ख, घ, चिह्नितपुस्तकपाठः ।
९. पुण्यमिति ख, चिह्नितपुस्तकपाठः ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वसिष्ठ उवाच

संसारसागरोत्तारनावं ब्रह्मेश्वरं वद। विद्यासारं यद्विदित्वा[1] सर्वज्ञो जायतेनरः ॥१५॥

अग्निरुवाच

विष्णुः कालाग्निरुद्रोऽहं[2] विद्यासारं वदामि ते। विद्यासारं पुराणं[3] यत्सर्वं सर्वस्य कारणम् ॥
सर्गस्य प्रतिसर्गस्य वंशमन्वन्तरस्य च। वंशानुचरितादेश्च, मत्स्यकूर्म्मादिरूपधृक् ॥१४॥
द्वे विद्ये भगवान् विष्णुः परा चैवापरा च ह। ऋग्यजुःसामाथर्वाख्या वेदाङ्गानि च षड् द्विज[4]॥
शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं ज्योतिषाङ्गतिः। छन्दोऽभिधानं मीमांसा धर्म्मशास्त्रं पुराणकम् ॥
न्यायवैद्यकगान्धर्वं धनुर्वेदोऽर्थशास्त्रकम्। अपरेयं परा विद्या यया ब्रह्माभिगम्यते[5] ॥१७॥
यत्तदद्दश्यमग्राह्यमगोत्रचरणं ध्रुवम्[6]। विष्णुनोक्तं यथा मह्यं देवेभ्यो ब्रह्मणा पुरा ॥
तथा ते कथयिष्यामि हेतुं मत्स्यादिरूपिणम् ॥ १८ ॥

इत्यदिमहापुराणे आग्नेये प्रश्नो नाम प्रथमोध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः

मत्स्यावतारवर्णनम् ।

वसिष्ठ उवाच

मत्स्यादिरूपिणं विष्णुं ब्रूहि सर्गादिकारणम्।
पुराणं ब्रह्म चाग्नेयं यथा विष्णोः पुरा श्रुतम् ॥ १ ॥

अग्निरुवाच

मत्स्यावतारं वक्ष्येऽहं वसिष्ठ शृणु वै हरेः। अवतारक्रिया दुष्टनष्ट्यै सत्पालनाय हि ॥२॥
आसीदतीतकल्पान्ते ब्राह्मो नैमित्तिको लयः। समुद्रोपप्लुतास्तत्र लोका भूरादिका मुने ॥३॥
मनुर्वैवस्वतस्तेपे तपो वै भुक्तिमुक्तये। एकदा कृतमालायां कुर्वतो जलतर्पणम् ॥४॥
तस्याञ्जल्युदके मत्स्यः स्वल्प एकोऽभ्यपद्यत। क्षेप्तुकामं जले प्राह न मां क्षिप नरोत्तम[7]॥५॥
ग्राहादिभ्यो भयं मेऽद्य[8] तच्छ्रुत्वा कलशेऽक्षिपत्। स तु वृद्धः पुनर्मत्स्यः प्राह तं देहि मे बृहत् ॥
स्थानमेतद्वचः श्रुत्वा राजाऽथोदञ्चनेऽक्षिपत्। तत्र वृद्धोऽब्रवीद् भूपं पृथु देहि पदं मनो॥७॥

---

१. यद् गदित्वा इति ग*। २. ज्ञानसन्दीपनादेव इति ग।
३. ब्रह्माग्नेयं पुराणमिति ग, घ। ४. यद् द्विज इति ख।
५. ब्रह्मावगम्यते इति ख, ग, घ। ६. अगोत्रचरणं परमिति ग।
७. न मां क्षिप नृपोत्तम इति ख, ग, घ। ८. मेऽत्र इति ख।

---

* 'ग' इत्यस्याग्रे 'चिह्नितपुस्तकपाठः' इति बोध्यम्। एवं सर्वत्र।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सरोवरे पुनः क्षिप्तो ववृधे तत्प्रमाणवान्। ऊचे देहि बृहत् स्थानं[1] प्राक्षिपच्चाम्बुधौ ततः[2] ॥८॥
लक्षयोजनविस्तीर्णः क्षणमात्रेण सोऽभवत्। मत्स्यं तमद्भुतं दृष्ट्वा विस्मितः प्राब्रवीन्मनुः॥९॥
को भवान्ननु वै विष्णु[3] र्नारायण नमोऽस्तु ते। मायया मोहयसि मां किमर्थं त्वं जनार्दन ॥१०॥
मनुनोक्तोऽब्रवीन्मत्स्यो मनुं वै पालने रतम्। अवतीर्णो भवायास्य जगतो दुष्टनष्टये ॥११॥

सप्तमे दिवसे त्वब्धिः प्लावयिष्यति वै जगत्।
उपस्थितायां नावि त्वं बीजादीनि विधाय च ॥ १२ ॥

सप्तर्षिभिः परिवृतो निशां ब्राह्मीं चरिष्यसि। उपस्थितस्य मे शृङ्गे निबध्नीहि महाहिना ॥१३॥
इत्युक्त्वान्तर्दधे मत्स्यो[4] मनुः कालप्रतीक्षकः[5]। स्थितः समुद्र उद्वेले नावमारुरुहे तदा ॥१४॥
एकशृङ्गधरो मत्स्यो हैमो नियुतयोजनः। नावम्बबन्ध तच्छृङ्गे[6] मत्स्याख्यं च पुराणकम्॥१५॥
शुश्राव मत्स्यात्पापघ्नं संस्तुवन् स्तुतिभिश्च तम्[7]। ब्रह्मवेदप्रहर्त्तारं हयग्रीवञ्च दानवम् ॥१६॥

अवधीद्, वेदमन्त्राद्यान् पालयामास केशवः।
प्राप्ते कल्पेऽथ वाराहे कूर्म्मरूपोऽभवद्धरिः ॥ १७ ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये मत्स्यावतारो नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः

कूर्मावतारवर्णनम्।

अग्निरुवाच

वक्ष्ये कूर्म्मावतारञ्च श्रुत्वा पापप्रणाशनम्[8]। पुरा देवासुरे युद्धे दैत्यैर्देवाः पराजिताः ॥१॥

दुर्व्वाससश्च शापेन निश्रीकाश्चाभवंस्तदा।
स्तुत्वा क्षीराब्धिगं[9] विष्णुमूचुः पालय चासुरात् ॥ २ ॥
ब्रह्मादिकान् हरिः प्राह सन्धिं कुर्वन्तु चासुरैः[10]।
क्षीराब्धिमथनार्थं हि अमृतार्थं श्रियेऽसुराः ॥ ३ ॥

अरयोऽपि हि सन्धेयाः सति कार्यार्थगौरवे। युष्मानमृतभाजो हि कारयामि[11] न दानवान्॥४॥

---

१. पुनः स्थानमिति ख।
२. अम्बुधौ मनुरिति ख, घ।
३. ननु विष्णुस्त्वमिति ख, ग, घ।
४. इत्युक्त्वान्तर्हितो मत्स्य इति घ।
५. इत्युक्त्वा देवमत्स्यात्मा बृहत्कारणसञ्ज्ञत इति ग।
६. नावं बद्ध्वा तस्य शृङ्गे इति ख, घ।
७. स्तुतिभिर्मनुरिति ग।
८. संश्रुतं पापनाशनमिति ख, ग, घ।
९. सुराः क्षीराब्धिगमिति ग, घ।
१०. सन्धिं कुरुत चासुरैरिति ग।
११. भाजो हि करिष्यामि इति ख।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मन्थानं मन्दरं कृत्वा नेत्रं कृत्वा तु[१] वासुकिम् । क्षीराब्धिं मत्सहायेन निर्मथध्वमतन्द्रिताः ॥
विष्णूक्तां संविदं कृत्वा दैत्यैः क्षीराब्धिमागताः । ततो मथितुमारब्धा यतः पुच्छं ततः सुराः ॥
फणिनिःश्वाससन्तप्ता[२] हरिणाप्यायिताः सुराः । मथ्यमानेऽर्णवे सोऽद्रिरनाधारो ह्यपोऽविशत् ॥
कूर्म्मरूपं समास्थाय दध्रे विष्णुश्च मन्दरम् । क्षीराब्धेर्मथ्यमानाच्च विषं हालाहलं ह्यभूत् ॥८॥

हरेण धारितं कण्ठे नीलकण्ठस्ततोऽभवत्[३] ।
ततोऽभूद्वारुणी देवी पारिजातस्तु कौस्तुभः ॥ ९ ॥
गावश्चाप्सरसो दिव्या लक्ष्मीर्देवी हरिङ्गता ।
पश्यन्तः सर्वदेवास्तां स्तुवन्तः सश्रियोऽभवन् ॥ १० ॥

ततो धन्वन्तरिर्विष्णुरायुर्वेदप्रवर्त्तकः[४] । बिभ्रत् कमण्डलुम्पूर्णममृतेन समुत्थितः ॥११॥

अमृतं तत्कराद्दैत्याः सुरेभ्योऽर्द्धं प्रदाय च ।
गृहीत्वा जग्मुर्जम्भाद्या विष्णुः स्त्रीरूपधृक् ततः ॥ १२ ॥

तां दृष्ट्वा रूपसम्पन्नां दैत्याः प्रोचुर्विमोहिताः । भव भार्याऽमृतं गृह्य पाययास्मान् वरानने ॥१३॥
तथेत्युक्त्वा हरिस्तेभ्यो गृहीत्वाऽपाययत्सुरान् । चन्द्ररूपधरो राहुः पिबंश्चार्केन्दुनार्पितः[५] ॥
हरिणाप्यरिणा च्छिन्नं[६] स राहुस्तच्छिरः पृथक् । कृपयाऽमरताम्नीतं वरदं हरिमब्रवीत् ॥१५॥
राहुर्मत्तस्तु चन्द्रार्कौ प्राप्स्येते ग्रहणं ग्रहः । तस्मिन् काले च यद्दानं दास्यन्ते, स्यात्तदक्षयम्[७] ॥
तथेत्याहाथ तं विष्णुस्ततः सर्वैः सहामरैः । स्त्रीरूपं सम्परित्यज्य हरेणोक्तः प्रदर्शय ॥१७॥
दर्शयामास रुद्राय स्त्रीरूपं भगवान्हरिः । मायया मोहितः शम्भुर्गौरीं त्यक्त्वा स्त्रियङ्गतः ॥१८॥
नग्न उन्मत्तरूपोऽभूत् स्त्रियः केशानधारयत्[८] । अगाद्विमुच्य केशान् स्त्री अन्वधावच्च ताङ्गताम् ॥
स्खलितं तस्य वीर्यं कौ यत्र यत्र हरस्य हि । तत्र तत्राभवत् क्षेत्रं लिङ्गानां कनकस्य च[९] ॥२०॥
मायेयमिति तां ज्ञात्वा स्वरूपस्थोऽभवद्धरः । शिवमाह हरी रुद्र जिता माया त्वया हि मे ॥२१॥
न जेतुमेनां शक्तो मे त्वदृतेऽन्यः पुमान् भुवि । अप्राप्याथामृतं दैत्या देवैर्युद्धे निपातिताः ॥

त्रिदिवस्थाः सुराश्चासन् यः पठेत् त्रिदिवं व्रजेत् ॥ २२ ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये कूर्म्मावतारो नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

---

१. रज्जुं कृत्वा तु इति ख । २. निःश्वाससंग्लाना इति ख, घ ।
३. ततो हर इति ग, घ । ४. प्रदर्शक इति ख, ग ।
५. अर्केन्दुसूचित इति ख । ६. हरिणा चासिना च्छिन्नमिति ग ।
७. भवेयं ये तदा दानं दास्यन्ते स्यात्तदक्षयमिति ख ।
८. मायया मोहितो रुद्रस्तरसा तां जगाम ह ।
मोहिनीं प्राप्य मतिमान् स्त्रियः केशानधारयदिति ग ।
९. तत्र तत्र महातीर्थं क्षेत्राणामुत्तमोत्तममिति ग ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

चतुर्थोऽध्यायः

वराहाद्यवतारवर्णनम् ।

अग्निरुवाच

अवतारं वराहस्य वक्ष्येऽहं पापनाशनम् ।
हिरण्याक्षोऽसुरेशोऽभूद्[1] देवान् जित्वा[2] दिवि स्थितः ॥ १ ॥
देवैर्गत्वा स्तुतो विष्णुर्यज्ञरूपो वराहकः ।
अभूत्, तं दानवं हत्वा दैत्यैः साकञ्च कण्टकम्[3] ॥ २ ॥

धर्मदेवादिरक्षाकृत् ततः सोऽन्तर्दधे हरिः । हिरण्याक्षस्य वै भ्राता हिरण्यकशिपुस्तथा[4] ॥३॥
जितदेवयज्ञभागः सर्वदेवाधिकारकृत् । नारसिंहवपुः कृत्वा तं जघान सुरैः सह ॥४॥
स्वपदस्थान् सुरांश्चक्रे नारसिंहः सुरैः स्तुतः । देवासुरे पुरा युद्धे बलिप्रभृतिभिः सुराः ॥५॥
जिताः स्वर्गात्परिभ्रष्टा हरिं वै[5] शरणं गताः । सुराणामभयं दत्त्वा अदित्या कश्यपेन च ॥६॥

स्तुतोऽसौ वामनो भूत्वा ह्यदित्यां स क्रतुं ययौ ।
बलेः श्रीयजमानस्य, राजद्वारेऽगृणात् श्रुतिम् ॥ ७ ॥
वेदान् पठन्तं तं श्रुत्वा वामनं वरदोऽब्रवीत् ।
निवारितोऽपि शुक्रेण बलिर्ब्रूहि यदिच्छसि ॥ ८ ॥

तत्तेऽहं सम्प्रदास्यामि, वामनो बलिमब्रवीत् । पदत्रयं हि गुर्वर्थं[6] देहि दास्ये तमब्रवीत् ॥९॥
तोये तु पतिते हस्ते वामनोऽभूदवामनः । भूर्लोकं स भुवर्लोकं स्वर्लोकञ्च पदत्रयम् ॥१०॥
चक्रे बलिञ्च सुतलं तच्छक्राय ददौ हरिः। शक्रो देवैर्हरिं स्तुत्वा भुवनेशः सुखी त्वभूत् ॥११॥
वक्ष्ये परशुरामस्य चावतारं शृणु द्विज । उद्धतान् क्षत्रियान् मत्वा भूभारहरणाय सः ॥१२॥
अवतीर्णो हरिः शान्त्यै देवविप्रादिपालकः । जमदग्ने रेणुकायां भार्गवः शस्त्रपारगः ॥१३॥
दत्तात्रेयप्रसादेन कार्त्तवीर्यो नृपस्त्वभूत् । सहस्रबाहुः सर्वोर्वीपतिः स मृगयां गतः ॥१४॥
श्रान्तो[7] निमन्त्रितोऽरण्ये मुनिना जमदग्निना। कामधेनुप्रभावेण भोजितः सबलो नृपः॥१५॥
अप्रार्थयत् कामधेनुं[8] यदा स न ददौ तदा। हृतवानथ रामेण शिरश्छित्त्वा निपातितः ॥१६॥
युद्धे परशुना राजा धेनुः स्वाश्रममाययौ[9] । कार्त्तवीर्यस्य पुत्रैस्तु जमदग्निर्निपातितः ॥१७॥
रामे वनं गते वैरादथ रामः समागतः । पितरं निहतं दृष्ट्वा पितृनाशाभिमर्षितः ॥१८॥
त्रिःसप्तकृत्वः पृथिवीं निःक्षत्रामकरोद्विभुः । कुरुक्षेत्रे पञ्च कुण्डान् कृत्वा सन्तर्प्य वै पितॄन् ॥

१. सुरेन्द्रोभूदिति घ । २. सुरान् जित्वेति ख ।
३. सार्द्धन्तु कण्टकमिति ख, घ । ४. हिरण्यकशिपुस्तदेति घ ।
५. हरिन्ते इति ख, ग, घ । ६. मे गुर्वर्थमिति ख ।
७. भ्रान्त इति ख । ८. अप्रार्थयद्धोमधेनुमिति ख, ग ।
९. सधेनुश्चाश्रमं ययौ इति ख, घ, ङ ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

काश्यपाय महीं दत्त्वा महेन्द्रे पर्वते स्थितः । कूर्म्मस्य च वराहस्य नृसिंहस्य च वामनम् ॥
अवतारं च रामस्य श्रुत्वा याति दिवं नरः ॥ २० ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये वराहनृसिंहाद्यवतारो नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पञ्चमोऽध्यायः

श्रीरामावतारवर्णनम् ।

अग्निरुवाच

रामायणमहं वक्ष्ये नारदेनोदितं पुरा । वाल्मीकये यथा तद्वत् पठितं भुक्तिमुक्तिदम् ॥१॥

नारद उवाच

विष्णुनाभ्यब्जजो ब्रह्मा मरीचिर्ब्रह्मणः सुतः ।
मरीचेः कश्यपस्तस्मात् सूर्यो वैवस्वतो मनुः ॥ २ ॥

ततस्तस्मात्तथेक्ष्वाकुस्तस्य वंशे ककुत्स्थकः । ककुत्स्थस्य रघुस्तस्मादजो दशरथस्ततः ॥३॥
रावणादेर्वधार्थाय चतुर्द्धाभूत स्वयं हरिः । राज्ञो दशरथाद्रामः कौशल्यायां बभूव ह ॥४॥
कैकेय्यां भरतः पुत्रः सुमित्रायाञ्च लक्ष्मणः । शत्रुघ्न ऋष्यशृङ्गेण तासु सन्दत्तपायसात् ॥५॥
प्राशिताद्यज्ञसंसिद्धाद्रामाद्याश्च समाः पितुः । यज्ञविघ्नविनाशाय विश्वामित्रार्थितो नृपः ॥६॥
रामं सम्प्रेषयामास लक्ष्मणं मुनिना सह ।
रामो गतोऽस्त्रशस्त्राणि शिक्षितस्ताडकान्तकृत्[1] ॥ ७ ॥
मारीचं मानवास्त्रेण मोहितं दूरतोऽनयत् । सुबाहुं यज्ञहन्तारं सबलञ्चावधीद् बली ॥८॥
सिद्धाश्रमनिवासी च विश्वामित्रादिभिः सह । गतः क्रतुं मैथिलस्य द्रष्टुञ्चापं सहानुजः ॥९॥
शतानन्दनिमित्तेन विश्वामित्रप्रभावतः । रामाय कथितो राज्ञा समुनिः पूजितः क्रतौ ॥१०॥
धनुरापूरयामास लीलया स बभञ्ज तत्[2] । वीर्यशुल्काञ्च जनकः सीतां कन्यान्त्वयोनिजाम् ॥
ददौ रामाय रामोऽपि पित्रादौ हि समागते । उपयेमे जानकीन्तामुर्मिलां लक्ष्मणस्तथा[3] ॥
श्रुतकीर्त्तिं माण्डवीञ्च कुशध्वजसुते तथा । जनकस्यानुजस्यैते शत्रुघ्नभरतावुभौ ॥१३॥
कन्ये द्वे उपयेमाते जनकेन सुपूजितः । रामोऽगात्सवशिष्ठाद्यैर्जामदग्न्यं विजित्य च ॥
अयोध्यां भरतोभ्यागात्[4] सशत्रुघ्नो युधाजितः ॥ १४ ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये रामायणे बालकाण्डवर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ।

---

१. ताडकापहृदिति ख, ग, ङ। २. बभञ्ज तद् दृढं धनुरिति ग ।
३. तदा इति ख, घ, ङ । ४. भरतोथागात् इति ख, ग, घ ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

षष्ठोऽध्यायः

श्रीरामावतारवर्णनम् ।

नारद उवाच

भरतेऽथ गते रामः पित्रादीनभ्यपूजयत् । राजा दशरथो राममुवाच शृणु राघव ॥१॥
गुणानुरागाद्राज्ये त्वं प्रजाभिरभिषेचितः । मनसाऽहं प्रभाते ते यौवराज्यं ददामि च ॥२॥
रात्रौ त्वं सीतया सार्धं संयतः सुव्रतो भव । राज्ञश्च मन्त्रिणश्चाष्टौ सवसिष्ठास्तथाब्रुवन् ॥३॥
सृष्टिर्जयन्तो विजयः सिद्धार्थो राष्ट्रवर्धनः[१] । अशोको धर्मपालश्च सुमन्त्रः सवसिष्ठकः[२] ॥४॥
पित्रादिवचनं श्रुत्वा तथेत्युक्त्वा स राघवः । स्थितो देवार्चनं कृत्वा कौशल्यायै निवेद्य तत् ॥५॥

राजोवाच वसिष्ठादीन् रामराज्याभिषेचने ।
सम्भारान् सम्भवन्तु स्म इत्युक्त्वा कैकयीङ्गतः ॥ ६ ॥

अयोध्यालङ्कृतिं दृष्ट्वा ज्ञात्वा रामाभिषेचनम् । भविष्यतीत्याचचक्षे कैकेयीं मन्थरा सखी[३] ॥७॥
पादौ गृहीत्वा रामेण कर्षिता सापराधतः । तेन वैरेण सा रामवनवासञ्च काङ्क्षती ॥८॥
कैकयि त्वं समुत्तिष्ठ रामराज्याभिषेचनम् । मरणं तव पुत्रस्य मम ते नात्र संशयः ॥९॥
कुब्जयोक्तञ्च तच्छ्रुत्वा एकमाभरणं ददौ । उवाच मे यथा रामस्तथा मे भरतः सुतः ॥१०॥

उपायन्तु न पश्यामि भरतो येन राज्यभाक् ।
कैकेयीमब्रवीत् क्रुद्धा हारं त्यक्त्वाऽथ मन्थरा ॥ ११ ॥

बालिशे रक्ष भरतमात्मानं माञ्च राघवात् । भविता राघवो राजा राघवस्य ततः सुतः ॥१२॥
राजवंशस्तु कैकेयि भरतात् परिहास्यते । देवासुरे पुरा युद्धे शम्बरेण हताः सुराः ॥१३॥
रात्रौ भर्त्ता गतस्तत्र रक्षितो विद्यया त्वया । वरद्वयन्तदा प्रादाद्याचेदानीं नृपञ्च तत् ॥१४॥
रामस्य च वनेवासं नव वर्षाणि पञ्च च । यौवराज्यञ्च भरते तदिदानीं प्रदास्यति ॥१५॥
प्रोत्साहिता कुब्जया सा अनर्थे चार्थदर्शिनी । उवाच सदुपायं मे कच्चित्तं[४] कारयिष्यति ॥
क्रोधागारं प्रविष्टाऽथ पतिता भुवि मूर्च्छिता । द्विजादीनर्चयित्वाऽथ राजा दशरथस्तदा ॥१७॥
ददर्श केकयीं रुष्टामुवाच कथमीदृशी । रोगार्त्ता किं भयोद्विग्ना किमिच्छसि करोमि तत् ॥
येन रामेण हि विना न जीवामि मुहूर्त्तकम् । शपामि तेन कुर्यां वै वाञ्छितं तव सुन्दरि ॥१९॥
सत्यं ब्रूहीति सोवाच नृपं मह्यं ददासि चेत् । वरद्वयं पूर्वदत्तं सत्यात् त्वं देहि मे नृप ॥२०॥
चतुर्दशसमा रामो वने वसतु संयतः । सम्भारैरेभिरद्यैव भरतोत्राभिषेच्यताम् ॥२१॥
विषं पीत्वा मरिष्यामि दास्यसि त्वं न चेन्नृप । तच्छ्रुत्वा मूर्च्छितो भूमौ वज्राहत इवापतत् ॥
मुहूर्त्ताच्चेतनां प्राप्य कैकेयीमिदमब्रवीत् । किं कृतं तव रामेण मया वा पापनिश्चये ॥२३॥
यन्मामेवं ब्रवीषि त्वं सर्वलोकाप्रियङ्करि । केवलं त्वत्प्रियं कृत्वा भविष्यामि सुनिन्दितः ॥२४॥

---

१. राज्यवर्धन इति ख, ग, घ ।　　२. सुमन्त्रश्च वशिष्ठक इति ख, ग, घ, ङ ।
३. मन्थरासती इति ख, ङ । मन्थरा सतीमिति ग । ४. कथितमिति ख, ङ ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

या त्वं भार्या[१] कालरात्री भरतो नेदृशः सुतः। प्रशाधि विधवा राज्यं मृते मयि गते सुते ॥२५॥
सत्यपाशनिबद्धस्तु राममाहूय चाब्रवीत्। कैकय्या वञ्चितो राम राज्यं कुरु निगृह्य माम् ॥
त्वया वने तु वस्तव्यं कैकेयीभरतो नृपः। पितरञ्चैव कैकेयीं नमस्कृत्य प्रदक्षिणम् ॥२७॥

कृत्वा नत्वा च कौशल्यां समाश्वास्य सलक्ष्मणः।
सीतया भार्यया सार्द्धं सरथः ससुमन्त्रकः ॥ २८ ॥

दत्त्वा दानानि विप्रेभ्यो दीनानाथेभ्य एव सः। मातृभिश्चैव विप्राद्यैः शोकार्त्तैर्निर्गतः पुरात् ॥
उषित्वा तमसातीरे रात्रौ पौरान् विहाय च। प्रभाते तमपश्यन्तोऽयोध्यां ते पुनरागताः॥३०॥
रुदन् राजापि कौशल्यागृहमागात् सुदुःखितः। पौरा जना स्त्रियः सर्वा रुरुदू राजयोषितः ॥
रामो रथस्थश्चीराढ्यः शृङ्गवेरपुरं ययौ। गुहेन पूजितस्तत्र इङ्गुदीमूलमाश्रितः[२] ॥३२॥
लक्ष्मणः स गुहो रात्रौ, चक्रतुर्जागरं हि तौ। सुमन्त्रं सरथं त्यक्त्वा प्रातर्नावाथ जाह्नवीम् ॥
रामलक्ष्मणसीताश्च तीर्णा आपुः प्रयागकम्। भरद्वाजं नमस्कृत्य चित्रकूटं गिरिं ययुः ॥३४॥
वास्तुपूजान्ततः कृत्वा स्थिता मन्दाकिनीतटे। सीतायै दर्शयामास चित्रकूटञ्च राघवः ॥
नखैर्विदारयन्तन्तां काकन्तच्चक्षुराक्षिपत्। ऐषिकास्त्रेण शरणं प्राप्तो देवान् विहाय सः ॥३६॥
रामे वनं गते राजा षष्ठेऽह्नि निशि चाब्रवीत्। कौशल्यां स कथा पौर्वां[३] यदज्ञानाद्धतः पुरा ॥
कौमारे सरयूतीरे यज्ञदत्तकुमारकः। शब्दभेदाच्च कुम्भेन शब्दं कुर्वंश्च तत्पिता ॥३८॥

शशाप विलपन्मात्रा शोकं कृत्वा रुदन्मुहुः।
पुत्रं विना मरिष्यावस्त्वं च शोकान्मरिष्यसि॥ ३८ ॥
पुत्रं विना स्मरन् शोकात् कौशल्ये मरणं मम।
कथामुक्त्वाऽथ हा राममुक्त्वा राजा दिवङ्गतः॥ ३९ ॥

सुप्तं मत्वाऽथ कौशल्या सुप्ता शोकार्त्तमेव सा। सुप्रभाते गायनाश्च सूतमागधवन्दिनः॥४०॥
प्रबोधका बोधयन्ति न च बुध्यत्यसौ मृतः[४]। कौशल्या तं मृतं ज्ञात्वा हा हतास्मीति चाब्रवीत्[५] ॥
नरा नार्योऽथ रुरुदुरानीतो भरतस्तदा। वशिष्ठाद्यैः सशत्रुघ्नः शीघ्रं राजगृहात्पुरीम् ॥४३॥

दृष्ट्वा सशोकां कैकेयीं निन्दयामास दुःखितः।
अकीर्त्तिः पातिता मूर्ध्नि कौशल्यां स प्रशस्य च॥ ४४ ॥

पितरन्तैलद्रोणिस्थं संस्कृत्य सरयूतटे। वशिष्ठाद्यैर्जनैरुक्तो राज्यं कुर्विति सोऽब्रवीत्। ४५॥
व्रजामि राममानेतुं रामो राजा मतो बली[६]। शृङ्गवेरं प्रयागञ्च भरद्वाजेन भोजितः ॥४६॥
नमस्कृत्य भरद्वाजं रामं लक्ष्मणमागतः। पिता स्वर्गं गतो राम अयोध्यायां नृपो भव ॥४७॥
अहं वनं प्रयास्यामि त्वदादेशप्रतीक्षकः। रामः श्रुत्वा जलं दत्त्वा गृहीत्वा पादुके व्रज ॥४८॥
राज्यायाहं न यास्यामि[७] सत्याचीरजटाधरः। रामोक्तो भरतश्चायान्नन्दिग्रामे स्थितो बली ॥

---

१. न त्वं भार्या इति ग, घ, ङ। २. संश्रित इति ग, घ।
३. पूर्वामिति ग, ङ। ४. नृप इति ङ।
५. चापतदिति ङ। ६. यतो बली इति ख, ग। गतो बली इति ख, ङ।
७. नाहं राज्यं प्रयास्यामि इति ख। राज्यं नाहं प्रयास्यामीति ङ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

त्यक्त्वाऽयोध्यां पादुके ते पूज्य राज्यमपालयत् ॥ ४६ ॥
इत्यादिमहापुराणे आग्नेये रामायणेऽयोध्याकाण्डवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥

सप्तमोऽध्यायः

रामायणवर्णनम् ।

नारद उवाच

रामो वशिष्ठं मातॄश्च नत्वाऽत्रिञ्च प्रणम्य सः । अनसूयाञ्च तत्पत्नीं शरभङ्गं सुतीक्ष्णकम् ॥१॥
अगस्त्यभ्रातरं नत्वा अगस्त्यन्तत्प्रसादतः । धनुः खड्गञ्च सम्प्राप्य दण्डकारण्यमागतः ॥२॥
जनस्थाने पञ्चवट्यां स्थितो गोदावरी तटे । तत्र सूर्पणखायाता भक्षितुं तान् भयङ्करी ॥३॥
रामं सुरूपं दृष्ट्वा सा कामिनी वाक्यमब्रवीत् ।
कस्त्वं कस्मात्समायातो भर्त्ता मे भव चार्थितः ॥ ४ ॥
एतौ च भक्षयिष्यामि इत्युक्त्वा तं समुद्यता ।
तस्या नासाञ्च कर्णौ च रामोक्तो लक्ष्मणोऽच्छिनत् ॥ ५ ॥
रक्तं क्षरन्ती प्रययौ खरं भ्रातरमब्रवीत् । मरिष्यामि विनासाऽहं खर जीवामि वै तदा ॥६॥
रामस्य भार्य्या सीताऽसौ तस्यासील्लक्ष्मणोऽनुजः । तेषां यद्रुधिरं[१] सोष्णं पाययिष्यसि मां यदि॥
खरस्तथेति तामुक्त्वा चतुर्दशसहस्रकैः । रक्षसां दूषणेनागाद्योद्धुं[२] त्रिशिरसा सह ॥८॥
रामं रामोऽपि युयुधे शरैर्विव्याध राक्षसान् । हस्त्यश्वरथपादातं बलं निन्ये यमक्षयम् ॥९॥
त्रिशीर्षाणं खरं रौद्रं युध्यन्तञ्चैव दूषणम् । ययौ सूर्पणखा लङ्कां रावणाग्रेऽपतद् भुवि ॥१०॥
अब्रवीद्रावणं क्रुद्धा न त्वं राजा न रक्षकः । खरादिहन्तू रामस्य सीतां भार्यां हरस्व च ॥११॥
रामलक्ष्मणरक्तस्य पानाज्जीवामि नान्यथा । तथेत्याह च तच्छ्रुत्वा मारीचं प्राह वै व्रज ॥१२॥
स्वर्णचित्रमृगो भूत्वा रामलक्ष्मणकर्षकः । सीताग्रे तां हरिष्यामि अन्यथा मरणं तव ॥१३॥
मारीचो रावणं प्राह रामो मृत्युर्धनुर्धरः[३] । रावणादपि मर्त्तव्यं मर्त्तव्यं राघवादपि ॥१४॥
अवश्यं यदि मर्त्तव्यं वरं रामो न रावणः । इति मत्वा मृगो भूत्वा सीताग्रे व्यचरन्मुहुः ॥१५॥
सीतया प्रेरितो[४] रामः शरेणाथावधीच्च तम् । म्रियमाणो मृगः प्राह हा सीते लक्ष्मणेति च ॥१६॥
सौमित्रिः सीतयोक्तोऽथ विरुद्धं राममागतः । रावणोऽप्यहरत् सीतां हत्वा गृध्रं जटायुषम् ॥
जटायुषा स भिन्नाङ्गः[५] अङ्केनादाय जानकीम् । गतो लङ्कामशोकाख्ये धारयामास चाब्रवीत् ॥
भव भार्य्या ममाग्र्या त्वं राक्षस्यो रक्ष्यतामियम् ।
रामो हत्वा तु मारीचं दृष्ट्वा लक्ष्मणमब्रवीत् ॥ १९ ॥

---

१. हृद्रुधिरमिति ख, ग, ङ ।
२. रक्षसां सहसा प्रायाद्योद्धु, मिति ग ।
३. मृत्युर्न तद्वरमिति ख, ग ।
४. प्रेषित इति ख ।
५. विरथ इति ख, ग, ङ ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मायामृगोऽसौ सौमित्रे यथा त्वमिह चागतः।
तथा सीता हृता नूनं नापश्यत् स गतोऽथ ताम् ॥ २० ॥
शुशोच विललापार्त्तो मां त्यक्त्वा क्व गतासि वै।
लक्ष्मणाश्वासितो रामो मार्गयामास[1] जानकीम् ॥ २१ ॥
दृष्ट्वा जटायुस्तं प्राह रावणो हृतवांश्च ताम्। मृतोऽथ संस्कृतस्तेन कबन्धश्चावधीत्ततः ॥
शापमुक्तोऽब्रवीद्रामं स त्वं सुग्रीवमाव्रज ॥ २२ ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये रामायणे आरण्यककाण्डवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः।

अष्टमोऽध्यायः

श्रीरामावतारकथनम्।

नारद उवाच

रामः पम्पासरो गत्वा शोचन् स शर्वरीं ततः[2]। हनूमता स सुग्रीवं[3] नीतो मित्रञ्चकार ह॥१॥
सप्त तालान् विनिर्भिद्य शरेणैकेन पश्यतः। पादेन दुन्दुभेः कायञ्चिक्षेप दशयोजनम् ॥२॥
तद्रिपुं वालिनं हत्वा भ्रातरं वैरकारिणम्। किष्किन्धां कपिराज्यञ्च रुमान्तारां समर्पयत् ॥३॥
ऋष्यमूके हरीशाय किष्किन्धेशोऽब्रवीत्स च[4]। सीतां त्वं प्राश्यसे यद्वत्[5] तथा राम करोमि ते॥४॥
तच्छ्रुत्वा माल्यवत्पृष्ठे चातुर्मास्यं चकार सः। किष्किन्धायाञ्च सुग्रीवो यदा नायाति दर्शनम् ॥
तदाऽब्रवीत्तं रामोक्तं लक्ष्मणो व्रज राघवम्। न स सङ्कुचितः पन्था येन वाली हतो गतः॥६॥
समये तिष्ठ सुग्रीव मा वालिपथमन्वगाः। सुग्रीव आह संसक्तो[6] गतं कालं न बुद्धवान् ॥७॥
इत्युक्त्वा स गतो रामं नत्वोवाच हरीश्वरः। आनीता वानराः सर्वे सीतायाश्च गवेषणे ॥८॥
त्वन्मतात् प्रेषयिष्यामि विचिन्वन्तु च जानकीम्।
पूर्वादौ माससायान्तु मासादूर्ध्वं निहन्मि तान् ॥ ९ ॥
इत्युक्ता वानराः पूर्वपश्चिमोत्तरमार्गगाः। जग्मू रामं ससुग्रीवमपश्यन्तस्तु जानकीम् ॥१०॥
रामाङ्गुलीयं संगृह्य हनूमान् वानरैः सह। दक्षिणे मार्गयामास सुप्रभाया गुहान्तिके ॥११॥
मासादूर्ध्वञ्च विन्यस्ता अपश्यन्तस्तु जानकीम्। ऊचुर्वृथा मरिष्यामो जटायुर्द्धन्य एव सः॥१२॥
सीतार्थे योऽत्यजत् प्राणान्रावणेन हतो रणे। तच्छ्रुत्वा प्राह सम्पातिर्विहाय कपिभक्षणम्॥१३॥
भ्राताऽसौ मे जटायुर्वै मयोड्डीनोऽर्कमण्डलम्। अर्कतापाद्रक्षितोऽगाद् दग्धपक्षोऽहमभ्रगः ॥
रामवार्त्ताश्रवात् पक्षौ जातौ भूयोऽथ जानकीम्। पश्याम्यशोकवनिकागतां लङ्कागतां किल ॥

---

१. आह्वयामास इति ङ।
२. गौरवाच्छवरीनतः इति ङ। शवरीं तत इति ख, ग।
३. हनूमता वानरेन्द्रमिति ङ।
४. अब्रवीत्तत् इति ग।
५. प्राप्स्यसि यथा इति ख।
६. सुग्रीवमाह सङ्क्रुद्ध इति ख, ग। सुग्रीव ऋद्धिसंसक्त इति ङ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शतयोजनविस्तीर्णे लवणाब्धौ त्रिकूटके । ज्ञात्वा रामं ससुग्रीवं वानराः कथयन्तु वै ॥१६॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये रामायणे किष्किन्धाकाण्डवर्णनं नाम
अष्टमोऽध्यायः ।

नवमोऽध्यायः

श्रीरामावतारकथनम् ।

नारद उवाच

सम्पातिवचनं श्रुत्वा हनुमानङ्गदादयः । अब्धिं दृष्ट्वाऽब्रुवंस्तेऽब्धिं लङ्घयेत् को नु जीवयेत् ॥१॥
कपीनां जीवनार्थाय रामकार्य्यप्रसिद्धये । शतयोजनविस्तीर्णं पुप्लुवेऽब्धिं स मारुतिः ॥२॥
दृष्ट्वोत्थितञ्च मैनाकं सिंहिकां विनिपात्य च । लङ्कां दृष्ट्वा राक्षसानां गृहाणि वनितागृहे ॥३॥
दशग्रीवस्य कुम्भस्य कुम्भकर्णस्य रक्षसः । विभीषणस्येन्द्रजितो गृहेऽन्येषां च रक्षसाम् ॥४॥
नापश्यत् पानभूम्यादौ सीतां चिन्तापरायणः । अशोकवनिकां गत्वा दृष्टवाञ्छिंशपातले ॥
राक्षसीरक्षितां सीतां भव भार्येति वादिनम् । रावणं शिंशपास्थोऽथ नेति सीतान्तु वादिनीम् ॥
भव भार्या रावणस्य राक्षसीर्वादिनीः कपिः । गते तु रावणे प्राह राजा दशरथोऽभवत् ॥७॥
रामोऽस्य[1] लक्ष्मणः पुत्रौ वनवासङ्गतौ वरौ । रामपत्नी जानकी त्वं रावणेन हृता बलात् ॥
रामः सुग्रीवमित्रस्त्वां मार्गयन् प्रैषयच्च माम्[2] । साभिज्ञानञ्चांगुलीयं रामदत्तं गृहाण वै ॥
सीताऽङ्गुलीयं जग्राह साऽपश्यन्मारुतिन्तरौ । भूयोऽग्रे चोपविष्टं तमुवाच यदि जीवति ॥
रामः कथं न नयति शङ्कितामब्रवीत् कपिः । रामः सीते न जानीते ज्ञात्वा त्वां स नयिष्यति ॥
रावणं राक्षसं हत्वा सबलं देवि मा शुच । साभिज्ञानं देहि मे त्वं मणिं सीताऽददत्कपौ ॥१२॥
उवाच मां यथा रामो नयेच्छीघ्रं तथा कुरु । काकाक्षिपातनकथाम्प्रतियाहि हि शोकह ॥१३॥
मणिं कथां गृहीत्वाह हनूमान्नेष्यते पतिः । अथवा ते त्वरा काचित् पृष्ठमारुह मे शुभे ॥१४॥
अद्य त्वां दर्शयिष्यामि ससुग्रीवञ्च राघवम् । सीताऽब्रवीद्धनूमन्तं नयतां मां हि राघवः ॥
हनूमान् स दशग्रीवदर्शनोपायमाकरोत् । वनं बभञ्ज तत्पालान् हत्वा दन्तनखादिभिः ॥१६॥
हत्वा तु किङ्करान् सर्वान् सप्त मन्त्रिसुतानपि । पुत्रमक्षं कुमारञ्च शक्रजिच्च बबन्ध तम् ॥१७॥
नागपाशेन पिङ्गाक्षं दर्शयामास रावणम् । उवाच रावणः कस्त्वं मारुतिः प्राह रावणम् ॥१८॥
रामदूतो राघवाय सीतां देहि मरिष्यसि । रामबाणैर्हतः सार्द्धं लङ्कास्थै राक्षसैर्ध्रुवम् ॥१६॥
रावणो हन्तुमुद्युक्तो विभीषणनिवारितः । दीपयामास लाङ्गूलं दीप्तपुच्छः स मारुतिः ॥२०॥
दग्ध्वा लङ्कां राक्षसांश्च दृष्ट्वा सीतां प्रणम्य ताम् । समुद्रपारमागम्य दृष्ट्वा सीतेति चाब्रवीत् ॥
अङ्गदादीनङ्गदाद्यैः पीत्वा मधुवने मधु । जित्वा दधिमुखादींश्च दृष्ट्वा रामञ्च तेऽब्रवन् ॥२२॥

---

१. रामश्च इति ख ।   २. त्वां मार्गयेत् प्रेषयेच्च मामिति घ ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दृष्टा सीतेति रामोऽपि हृष्टः पप्रच्छ मारुतिम् । कथं दृष्टा त्वया सीता किमुवाच च माम्प्रति ।।
सीताकथामृतेनैव सिञ्च मां कामवह्निगम् । हनूमानब्रवीद्रामं लङ्घयित्वाऽब्धिमागतः ।।२४।।
सीतां दृष्ट्वा पुरीं दग्ध्वा सीतामणिं गृहाण वै । हत्वा त्वं रावणं सीतां प्राप्स्यसे राम मा शुचः ।।
गृहीत्वा तं मणिं रामो रुरोद विरहातुरः । मणिं दृष्ट्वा जानकी मे दृष्टा सीता नयस्व माम् ।।
तया विना न जीवामि सुग्रीवाद्यैः प्रबोधितः । समुद्रतीरं गतवान् तत्र रामं विभीषणः ।।२७।।
गतस्तिरस्कृतो भ्रात्रा रावणेन दुरात्मना । रामाय देहि सीतां त्वमित्युक्तेनासहायवान् ।।२८।।
रामो विभीषणं मित्रं लङ्कैश्वर्येऽभ्यषेचयत । समुद्रं प्रार्थयन्मार्गं यदा नायात्तदा शरैः ।।२९।।
भेदयामास रामश्च उवाचाब्धिः समागतः । नलेन सेतुं बद्ध्वाब्धौ लङ्कां व्रज गभीरकः ।।३०।।
अहं त्वया कृतः पूर्वं रामोऽपि नलसेतुना । कृतेन तरुशैलाद्यैर्गतः पारं महोदधेः ।।
वानरैः स सुवेलस्थः सह लङ्कां ददर्श वै ।। ३१ ।।

इत्यादिमहापुराणे आग्नये रामायणे सुन्दरकाण्डवर्णनं नाम नवमोऽध्यायः ।

दशमोऽध्यायः

श्रीरामावतारवर्णनम् ।

नारद उवाच

रामोक्तश्चाङ्गदो गत्वा रावणं प्राह जानकी । दीयतां राघवायाशु अन्यथा त्वं मरिष्यसि ।।१।।
रावणो हन्तुमुद्युक्तः सङ्ग्रामोद्धतराक्षसः । रामायाह दशग्रीवो युद्धमेकं तु मन्यते ।।२।।
रामो युद्धाय तच्छ्रुत्वा लङ्कां सकपिराययौ । वानरो हनुमान मैन्दो द्विविदो जाम्बवान्नलः ।।३।।
नीलस्तारोऽङ्गदो धूम्रः सुषेणः केशरी गयः । पनसो विनतो रम्भः शरभः कथनो बली ।।४।।
गवाक्षो दधिवक्त्रश्च गवयो गन्धमादनः । एते चान्ये च सुग्रीव एतैर्युक्तो ह्यसङ्ख्यकैः ।।५।।
रक्षसां वानराणाञ्च युद्धं सङ्कुलमाबभौ । राक्षसा वानरान् जघ्नुः शरशक्तिगदादिभिः ।।६।।
वानरा राक्षसान् जघ्नुर्नखदन्तशिलादिभिः । हस्त्यश्वरथपादातं राक्षसानां बलं हतम् ।।७।।
हनूमान् गिरिशृङ्गेण धूम्राक्षमवधीद्रिपुम् । अकम्पनं प्रहस्तञ्च युध्यन्तं नील आवधीत् ।।८।।
इन्द्रजिच्छरबन्धाच्च विमुक्तौ रामलक्ष्मणौ । तार्क्ष्यसन्दर्शनाद् बाणैर्जघ्नतू राक्षसं बलम् ।।९।।
रामः शरैर्जर्जरितं रावणञ्चाकरोद्रणे । रावणः कुम्भकर्णञ्च बोधयामास दुःखितः ।।१०।।
कुम्भकर्णः प्रबुद्धोऽथ पीत्वा घटसहस्रकम् । मद्यस्य महिषादीनां भक्षयित्वाह रावणम् ।।११।।
सीताया हरणं पापं कृतस्त्वं हि गुरुर्यतः । अतो गच्छामि युद्धाय रामं हन्मि सवानरम् ।।१२।।
इत्युक्त्वा वानरान् सर्वान् कुम्भकर्णो ममर्द ह । गृहीतस्तेन सुग्रीवः कर्णनासं चकर्त्त सः ।।१३।।
कर्णनासाविहीनोऽसौ भक्षयामास वानरान् । रामोऽथ कुम्भकर्णस्य बाहू चिच्छेद सायकैः ।।१४।।
ततः पादौ ततश्छित्त्वा शिरो भूमौ व्यपातयत् । अथ कुम्भो निकुम्भश्च मकराक्षश्च राक्षसः ।।
महोदरो महापार्श्वो मत्त उन्मत्तराक्षसः । प्रघसो भासकर्णश्च विरूपाक्षश्च संयुगे ।।१६।।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

देवान्तको नरान्तश्च त्रिशिराश्चातिकायकः । रामेण लक्ष्मणेनैते वानरैः सविभीषणैः ॥१७॥
युध्यमानास्तथा ह्यन्ये राक्षसा भुवि पातिताः । इन्द्रजिन्मायया युध्यन् रामादीन् सम्बबन्ध ह ॥१८॥
वरदत्तैर्नागबाणै[1] रोषध्या तौ विशल्यकौ । विशल्ययाव्रणौ कृत्वा मारुत्यानीतपर्वते ॥१९॥
हनूमान् धारयामास तत्रागं यत्र संस्थितः । निकुम्भिलायां होमादि कुर्वन्तं तं हि लक्ष्मणः ॥२०॥
शरैरिन्द्रजितं वीरं युद्धे तं तु व्यशातयत् । रावणः शोकसन्तप्तः सीतां हन्तुं समुद्यतः ॥२१॥
अविन्ध्यवारितो[2] राजा रथस्थः सबलो ययौ । इन्द्रोक्तो मातली रामं रथस्थं प्रचकार तम् ॥२२॥
रामरावणयोर्युद्धं रामरावणयोरिव । रावणो वानरान् हन्ति मारुत्याद्याश्च रावणम् ॥२३॥
रामः शस्त्रैस्तमस्त्रैश्च ववर्ष जलदो यथा । तस्य ध्वजं स चिच्छेद रथमश्वांश्च सारथिम् ॥२४॥
धनुर्बाहूञ्छिरांस्येव उत्तिष्ठन्ति शिरांसि हि । पैतामहेन हृदयं भित्त्वा रामेण रावणः ॥२५॥
भूतले पातितः सर्वै राक्षसै रुरुदुः स्त्रियः । आश्वास्य तञ्च संस्कृत्य रामाज्ञप्तो विभीषणः ॥२६॥
हनूमतानयद्रामः सीतां शुद्धां गृहीतवान् । रामो वह्नौ प्रविष्टान्तां शुद्धामिन्द्रादिभिः स्तुतः ॥२७॥
ब्रह्मणा दशरथेन त्वं विष्णू राक्षसमर्दनः । इन्द्रोर्च्चितोऽमृतवृष्ट्या जीवयामास वानरान् ॥२८॥
रामेण पूजिता जग्मुर्युद्धं दृष्ट्वा दिवञ्च ते । रामो विभीषणायादाल्लङ्कामभ्यर्च्य वानरान् ॥२९॥
ससीतः पुष्पके स्थित्वा गतमार्गेण वै गतः[3] । दर्शयन् वनदुर्गाणि सीतायै हृष्टमानसः ॥३०॥
भरद्वाजं नमस्कृत्य नन्दिग्रामं समागतः । भरतेन नतश्चागादयोध्यान्तत्र संस्थितः ॥३१॥

वसिष्ठादीन्नमस्कृत्य कौशल्याञ्चैव केकयीम् ।
सुमित्रां प्राप्तराज्योऽथ द्विजादीन् सोऽभ्यपूजयत् ॥ ३२ ॥

वासुदेवं स्वमात्मानमश्वमेधैरथायजत् । सर्वदानानि स ददौ पालयामास स प्रजाः ॥३३॥
पुत्रवद्धर्म्मकामादीन् दुष्टनिग्रहणे रतः । सर्वधर्म्मपरो लोकः सर्वशस्या च मेदिनी ॥
नाकालमरणञ्चासीद्रामे राज्यं प्रशासति ॥ ३४ ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये रामायणे युद्धकाण्डवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः ।

एकादशोऽध्यायः

श्रीरामावतारकथनम् ।

नारद उवाच

राज्यस्थं राघवं जग्मुरगस्त्याद्याः सुपूजिताः । धन्यस्त्वं विजयी यस्मादिन्द्रजिद्विनिपातितः ॥१॥
ब्रह्मात्मजः पुलस्त्योभूद् विश्रवास्तस्य नैकषी । पुष्पोत्कटाभूत् प्रथमा तत्पुत्रोभूद्धनेश्वरः ॥२॥
नैकष्यां रावणो जज्ञे विंशद्बाहुर्दशाननः । तपसा ब्रह्मदत्तेन वरेण जितदैवतः ॥३॥

---

१. नागपाशैरिति ख । २. युद्धनिवारित इति ख ।
३. स्वर्गमार्गेण वै गत इति ख ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कुम्भकर्णः सनिद्रोऽभूद्धर्म्मिष्ठोऽभूद्विभीषणः । स्वसा शूर्पणखा तेषां रावणान्मेघनादकः ॥४॥
इन्द्रं जित्वेन्द्रजिच्चाभूद्रावणादधिको बली । हतस्त्वया लक्ष्मणेन देवादेः क्षेममिच्छता ॥५॥
इत्युक्त्वा ते गता विप्रा अगस्त्याद्या नमस्कृताः । देवप्रार्थितरामोक्तः शत्रुघ्नो लवणार्दनः ॥
अभूत् पूर्म्मथुरा काचिद् रामोक्तो भरतोऽवधीत् । कोटित्रयञ्च शैलूषपुत्राणां निशितैः शरैः॥
शैलूषं दुष्टगन्धर्वं सिन्धुतीरनिवासिनम् । तक्षञ्च पुष्करं पुत्रं स्थापयित्वाथ देशयोः ॥८॥
भरतोगात्सशत्रुघ्नो राघवं पूजयन् स्थितः । रामो दुष्टान्निहत्याजौ शिष्टान् सम्पाल्य मानवः ॥
पुत्रौ कुशलवौ जातौ वाल्मीकेराश्रमे वरौ । लोकापवादात्त्यक्तायां ज्ञातौ सुचरितश्रवात ॥१०॥
राज्येभिषिच्य ब्रह्माहमस्मीति ध्यानतत्परः । दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च ॥११॥
राज्यं कृत्वा क्रतून् कृत्वा स्वर्गं देवार्च्चितो ययौ । सपौरः सानुजः सीतापुत्रो जनपदान्वितः ॥

अग्निरुवाच

वाल्मीकिर्नारदाच्छ्रुत्वा रामायणमकारयत् । सविस्तरं यदेतच्च शृणुयात्स दिवं व्रजेत् ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये रामायणे उत्तरकाण्डवर्णनं नाम एकादशोऽध्यायः ॥

द्वादशोऽध्यायः

श्रीहरिवंशवर्णनम् ।

अग्निरुवाच

हरिवंशम्प्रवक्ष्यामि विष्णुनाभ्यम्बुजादजः[1] । ब्रह्मणोत्रिस्ततः सोमः सोमाज्जातः पुरूरवाः ॥१॥
तस्मादायुरभूत्तस्मान्नहुषोऽतो ययातिकः । यदुञ्च तुर्वसुन्तस्माद्देवयानी व्यजायत ॥२॥
द्रुह्युञ्चानुञ्च पूरुञ्च शर्म्मिष्ठा वार्षपर्वणी । यदोः कुले यादवाश्च वसुदेवस्तदुत्तमः ॥३॥
भुवो भारावतारार्थं देवक्यां वसुदेवतः । हिरण्यकशिपोः पुत्राः षड्गर्भा योगनिद्रया ॥४॥
विष्णुप्रयुक्तया नीता देवकीजठरं पुरा । अभूच्च सप्तमो गर्भो देवक्या जठराद् बलः ॥५॥
सङ्क्रामितोऽभूद्रोहिण्यां रौहिणेयस्ततो हरिः । कृष्णाष्टम्याञ्च नभसि अर्द्धरात्रे चतुर्भुजः ॥६॥
देवक्या वसुदेवेन स्तुतो बालो द्विबाहुकः । वसुदेवः कंसभयाद्यशोदाशयनेऽनयत् ॥७॥
यशोदाबालिकां गृह्य देवकीशयनेऽनयत् । कंसो बालध्वनिं श्रुत्वा ताञ्चिक्षेप शिलातले ॥८॥
वारितोपि स देवक्या मृत्युर्गर्भोष्टमो मम । श्रुत्वाऽशरीरिणीं वाचं मत्तो गर्भास्तु मारिताः ॥
समर्पितास्तु देवक्या विवाहसमयेरिताः । सा क्षिप्ता बालिका कंसमाकाशस्थाब्रवीदिदम् ॥९॥
किं मया क्षिप्तया कंस जातो यस्त्वां वधिष्यति । सर्वस्वभूतो देवानां भूभारहरणाय सः ॥
इत्युक्त्वा सा च शुम्भादीन् हत्वेन्द्रेण च संस्तुता । आर्या दुर्गा वेदगर्भा अम्बिका भद्रकाल्यपि॥
भद्रा क्षेम्या क्षेमकरी नैकबाहुर्नमामि ताम् । त्रिसन्ध्यं यः पठेन्नाम सर्वान् कामानवाप्नुयात् ॥

---

१. विष्णुनाभ्यब्जजादज इति ख ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कंसोपि पूतनादींश्च प्रैषयद् बालनाशने । यशोदापतिनन्दाय वसुदेवेन चार्पितौ ॥१४॥
रक्षणाय च कंसादेर्भीतेनैव हि गोकुले । रामकृष्णौ चेरतुस्तौ गोभिर्गोपालकैः सह ॥१५॥
सर्वस्य जगतः पालौ गोपालौ तौ बभूवतुः । कृष्णश्चोलूखले बद्धो दाम्ना व्यग्रयशोदया ॥१६॥
यमलार्जुनमध्येऽगाद् भग्नौ च यमलार्जुनौ । परिवृत्तश्च शकटः पादक्षेपात् स्तनार्थिना ॥१७॥
पूतना स्तनपानेन सा हता हन्तुमुद्यता । वृन्दावनगतः कृष्णः कालियं यमुनाह्रदात् ॥१८॥
जित्वा निःसार्य चाब्धिस्थश्चकार बलसंस्तुतः । क्षेमं तालवनं चक्रे हत्वा धेनुकगर्दभम् ॥१९॥
अरिष्टवृषभं हत्वा केशिनं हयरूपिणम् । शक्रोत्सवं परित्यज्य कारितो गोत्रयज्ञकः ॥२०॥
पर्वतं धारयित्वा च शक्राद् वृष्टिर्निवारिता । नमस्कृतो महेन्द्रेण गोविन्दोऽथार्जुनोर्पितः॥२१॥
इन्द्रोत्सवस्तु तुष्टेन भूयः कृष्णेन कारितः । रथस्थो मथुरां चागात कंसोक्ताक्रूरसंस्तुतः ॥२२॥
गोपीभिरनुरक्ताभिः क्रीडिताभिर्निरीक्षितः । रजकं चाप्रयच्छन्तं[१] हत्वा वस्त्राणि चाग्रहीत् ॥
सह रामेण मालाभृन्मालाकारे वरन्ददौ । दत्तानुलेपनां कुब्जामृजुं चक्रेऽहनद् गजम् ॥२४॥
मत्तं कुवलयापीडं द्वारि रङ्गं प्रविश्य च । कंसादीनां पश्यतां च मञ्चस्थानां नियुद्धकम् ॥२५॥
चक्रे चाणूरमल्लेन मुष्टिकेन बलोऽकरोत् । चाणूरमुष्टिकौ ताभ्यां हतौ मल्लौ तथापरे ॥२६॥
मथुराधिपतिं कंसं हत्वा तत्पितरं हरिः । चक्रे यादवराजानमस्तिप्राप्ती च कंसगे ॥२७॥
जरासन्धस्य ते पुत्र्यौ जरासन्धस्तदीरितः । चक्रे स मथुरारोधं यादवैर्युयुधे शरैः ॥२८॥
रामकृष्णौ च मथुरां त्यक्त्वा गोमन्तमागतौ । जरासन्धं विजित्याजौ पौण्ड्रकं वासुदेवकम् ॥
पुरीं च द्वारकां कृत्वा न्यवसद् यादवैर्वृतः । भौमं तु नरकं हत्वा तेनानीताश्च कन्यकाः ॥३०॥
देवगन्धर्वयक्षाणां ता उवाह जनार्दनः । षोडशस्त्रीसहस्राणि रुक्मिण्याद्यास्तथाष्ट च ॥३१॥
सत्यभामासमायुक्तो गरुडे नरकार्दनः । मणिशैलं सरत्नञ्च इन्द्रं जित्वा हरिर्दिवि ॥३१॥
पारिजातं समानीय सत्यभामागृहेऽकरोत् । सान्दीपनेश्च शस्त्रास्त्रं ज्ञात्वा, तद्बालकं ददौ ॥
जित्वा पञ्चजनं दैत्यं यमेन च सुपूजितः । अवधीत् कालयवनं मुचुकुन्देन पूजितः ॥३४॥
वसुदेवं देवकीञ्च भक्तविप्रांश्च सोऽर्चयत् । रेवत्यां बलभद्राच यज्ञाते निशठोल्मुकौ ॥३५॥

कृष्णात् शाम्बो जाम्बवत्यामन्यास्वन्येऽभवन् सुताः ।
प्रद्युम्नोऽभूच रुक्मिण्यां षष्ठेऽह्नि स हृतो बलात् ॥ ३६ ॥

शम्बरेणाम्बुधौ क्षिप्तो मत्स्यो जग्राह धीवरः । तं मत्स्यं शम्बरायादान्मायावत्यै च शम्बरः ॥४७॥
मायावती मत्स्यमध्ये दृष्ट्वा स्वं पतिमादरात् । पपोष सा तं चोवाच रतिस्तेऽहं पतिर्मम ॥३८॥
कामस्त्वं शम्भुनानङ्गः कृतोहं शम्बरेण च । हृता न तस्य पत्नी त्वं मायाज्ञः शम्बरं जहि ॥३९॥
तच्छ्रुत्वा शम्बरं हत्वा प्रद्युम्नः सह भार्यया । मायावत्या ययौ कृष्णं कृष्णो हृष्टोऽथ रुक्मिणी ॥
प्रद्युम्नादनिरुद्धोभूदुषापतिरुदारधीः । बाणो बलिसुतस्तस्य सुतोषा शोणितं पुरम् ॥४१॥
तपसा शिवपुत्रोऽभूद् मायूरध्वजपातितः । युद्धं प्राप्स्यसि बाण त्वं बाणं तुष्टः शिवोऽभ्यधात् ॥
शिवेन क्रीडतीं गौरीं दृष्ट्वोषा सस्पृहा पतौ । तामाह गौरी भर्त्ता ते निशि सुप्तेति दर्शनात् ॥
वैशाखमासद्वादश्यां पुंसो भर्त्ता भविष्यति । गौर्य्युक्ता[२] हर्षिता चोषा गृहे सुप्ता ददर्श तम् ॥

---

१. रजकञ्च प्रजल्पन्तमिति ख । २. तच्छ्रुत्वा इति ग ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आत्मना सङ्गतं ज्ञात्वा तत्सख्या चित्रलेखया । लिखिताद्वै चित्रपटादनिरुद्धं समानयत् ।।
कृष्णपौत्रं द्वारकातो दुहिता वाणमन्त्रिणः । कुम्भाण्डस्यानिरुद्धोगाद्राम ह्युषया सह ।।४६।।
बाणध्वजस्य सम्पाते रक्षिभिः स निवेदितः । अनिरुद्धस्य बाणेन युद्धमासीत्सुदारुणम् ।।४७।।
श्रुत्वा तु नारदात् कृष्णः प्रद्युम्नबलभद्रवान् । गरुडस्थोथ जित्वाग्नीञ्ज्वरं माहेश्वरन्तथा।।४८।।
हरिशङ्करयोर्युद्धं बभूवाथ शराशरि । नन्दिविनायकस्कन्दमुखास्तार्क्ष्यादिभिर्जिताः ।।४९।।
जृम्भिते शङ्करे नष्टे जृम्भणास्त्रेण विष्णुना । छिन्नं सहस्रं बाहूनां रुद्रेणाभयमर्थितम् ।।५०।।
विष्णुना जीवितो बाणो द्विबाहुः प्राब्रवीच्छिवम । त्वया यदभयं दत्तं बाणस्यास्य मया च तत् ।।
आवयोर्नास्ति भेदो वै भेदी नरकमाप्नुयात ।
शिवाद्यैः पूजितो विष्णुः सोनिरुद्ध उषादियुक् ।। ५२ ।।
द्वारकान्तु गतो रेमे उग्रसेनादियादवैः । अनिरुद्धात्मजो वज्रो मार्कण्डेयात्तु सर्ववित ।।५३।।
बलभद्रः प्रलम्बघ्नो यमुनाकर्षणो[१]ऽभवत् । द्विविदस्य कपेर्भेत्ता कौरवोन्मादनाशनः ।।५४।।
हरी रेमेनेकमूर्त्ती रुक्मिण्यादिभिरीश्वरः । पुत्रानुत्पादयामास त्वसंख्यातान स यादवान् ।।
हरिवंशं पठेद् यः स प्राप्तकामो हरिं व्रजेत् ।। ५५ ।।

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये हरिवंशवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः ।

त्रयोदशोऽध्यायः

कुरुपाण्डवोत्पत्त्यादिकथनम् ।

अग्निरुवाच

भारतं सम्प्रवक्ष्यामि कृष्णमाहात्म्यलक्षणम् । भूभारमहरद्विष्णुर्निमित्तीकृत्य पाण्डवान् ।।१।।
विष्णुनाभ्यब्जजो ब्रह्मा ब्रह्मपुत्रोऽत्रिरत्रितः । सोमः सोमाद् बुधस्तस्मादैलआसीत् पुरूरवाः।२।
तस्मादायुस्ततो राजा नहुषोऽतो ययातिकः । ततः पुरुस्तस्य वंशे भरतोऽथ नृपः कुरुः ।।३।।
तद्वंशे शान्तनुस्तस्माद्भीष्मो गङ्गासुतोऽनुजौ । चित्राङ्गदो विचित्रश्च सत्यवत्याश्च शान्तनोः ।।४।।
स्वर्गं गते शान्तनौ च भीष्मो भार्य्याविवर्ज्जितः । अपालयत् भ्रातृराज्यं बालश्चि त्राङ्गदो हतः।।५।।
चित्राङ्गदेन द्वे कन्ये काशिराजस्य चाम्बिका । अम्बालिका च भीष्मेण आनीते विजितारिणा।६।
भार्ये विचित्रवीर्यस्य यक्ष्मणा स दिवङ्गतः । सत्यवत्या ह्यनुमतादम्बिकायां नृपोभवत् ।।७।।
धृतराष्ट्रोऽम्बालिकायां पाण्डुश्च व्यासतः सुतः । गान्धार्य्यां धृतराष्ट्राच्च दुर्योधनमुखं शतम् ।।८।।
शतश्रृङ्गाश्रमपदे भार्यायोगाद् यतो मृतिः । ऋषिशापात्ततो धर्म्मात् कुन्त्यां पाण्डोर्युधिष्ठिरः ।९।।
वाताद्भीमोऽर्जुनः शक्रान्माद्रयामश्विकुमारतः । नकुलः सहदेवश्च पाण्डुर्म्माद्रीयुतो मृतः ।।१०।।
कर्णः कुन्त्यां हि कन्यायां जातो दुर्योधनाश्रितः । कुरुपाण्डवयोर्वैरन्दैवयोगाद् बभूव ह ।।११।।

---

१. कर्षक इति ख ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दुर्योधनौ जतुगृहे पाण्डवानदहत् कुधीः । दग्धागाराद्विनिष्क्रान्ता मातृषष्ठास्तु पाण्डवाः ॥
ततस्तु एकचक्रायां ब्राह्मणस्य निवेशने । मुनिवेषाः स्थिताः सर्वे निहत्य वकराक्षसम् ॥१३॥
ययुः पाञ्चालविषयं द्रौपद्यास्ते स्वयम्वरे । सम्प्राप्ता बाहुवेधेन[१] द्रौपदी पञ्चपाण्डवैः[२] ॥१४॥
अर्द्धराज्यं ततः प्राप्ता ज्ञाता दुर्योधनादिभिः । गाण्डीवञ्च धनुर्दिव्यं पावकाद्रथमुत्तमम् ॥१५॥
सारथिञ्चार्जुनः सङ्ख्ये कृष्णमक्षय्यशायकान् । ब्रह्मास्त्रादींस्तथा द्रोणात्सर्वे शस्त्रविशारदाः ॥
कृष्णेन सोऽर्जुनो वह्निं खाण्डवे समतर्पयत् । इन्द्रवृष्टिं वारयंश्च शरवर्षेण पाण्डवः ॥१७॥
जिता दिशः पाण्डवैश्च राज्यञ्चक्रे युधिष्ठिरः । बहुस्वर्णं[३] राजसूयं न सेहे तं सुयोधनः ॥१८॥
भ्रात्रा दुःशासनेनोक्तः कर्णेन प्राप्तभूतिना । द्यूतकार्ये शकुनिना द्यूतेन स युधिष्ठिरम् ॥१९॥
अजयत्तस्य राज्यञ्च सभास्थो माययाहसत । जितो युधिष्ठिरो भ्रातृयुक्तश्चारण्यकं ययौ ॥२०॥
वने द्वादशवर्षाणि प्रतिज्ञातानि सोऽनयत् । अष्टाशीतिसहस्राणि भोजयन् पूर्ववद् द्विजान् ॥
सधौम्यो द्रौपदीषष्ठस्ततः प्रायाद्विराटकम् । कङ्को द्विजो ह्यविज्ञातो[४] राजा भीमोथ सूपकृत् ॥
बृहन्नलार्जुनो भार्या सैरिन्ध्री यमजौ तथा । अन्यनाम्ना भीमसेनः कीचकञ्चावधीन्निशि ॥२३॥
द्रौपदीं हर्त्तुकामं तमर्जुनश्चाजयत् कुरून् । कुर्वतो गोग्रहादींश्च तैर्ज्ञाताः पाण्डवा अथ ॥२४॥
सुभद्रा कृष्णभगिनी अर्जुनात्समजीजनत् । अभिमन्युन्ददौ तस्मै विराटश्चोत्तरां सुताम् ॥२५॥
सप्ताक्षौहिणीश आसीद्धर्म्मराजो रणाय सः । कृष्णो दूतोऽब्रवीद् गत्वा दुर्योधनममर्षणम् ॥२६॥
एकादशाक्षौहिणीशं नृपं दुर्योधनं तदा । युधिष्ठिरायार्द्धराज्यं देहि ग्रामांश्च पञ्च वा ॥२७॥
युध्यस्व वा वचः श्रुत्वा कृष्णमाह सुयोधनः । भूसूच्यग्रं न दास्यामि योत्स्ये सङ्ग्रहणोद्यतः ॥
विश्वरूपन्दर्शयित्वा अधृष्यं विदुरार्च्चितः[५] । प्रागाद्युधिष्ठिरं प्राह योधयैनं सुयोधनम् ॥२९॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये आदिपर्वादिवर्णनं नाम
त्रयोदशोऽध्यायः ।

चतुर्दशोऽध्यायः

कुरुपाण्डवसङ्ग्रामवर्णनम् ।

अग्निरुवाच

यौधिष्ठिरी दौर्योधनी कुरुक्षेत्रं ययौ चमूः । भीष्मद्रोणादिकान् दृष्ट्वा नायुध्यत गुरूनिति ॥१॥
पार्थं ह्युवाच भगवान्नशोच्या भीष्ममुख्यकाः । शरीराणि विनाशीनि न शरीरी विनश्यति ॥२॥
अयमात्मा परं ब्रह्म अहं ब्रह्मास्मि विद्धि तम् ।
सिद्ध्यसिद्ध्योः समो योगी राजधर्म्मं प्रपालय ॥ ३ ॥

---

१. बाहुभेदेन इति ग. ।
२. द्रौपदीं पञ्च पाण्डवा इति ख. ग. ङ. ।
३. वसुपूर्णमिति ख. रत्नपूर्णमिति घ. ।
४. कङ्को द्विजो ह्यभूच्छ्रेष्ठ इति ख. ।
५. विदुरान्वित इति ख. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कृष्णोक्तोथार्जुनोऽयुध्यद्रथस्थो वाद्यशब्दवान् । भीष्मः सेनापतिरभूदादौ दौर्योधने बले ॥४॥
पाण्डवानां शिखण्डी च तयोर्युद्धं बभूव ह । धार्त्तराष्ट्राः पाण्डवांश्च जघ्नुर्युद्धे सभीष्मकाः ॥५॥
धार्त्तराष्ट्रान् शिखण्ड्याद्याः पाण्डवा जघ्नुराहवे । देवासुरसमं युद्धं कुरुपाण्डवसेनयोः ॥६॥
बभूव स्वःस्थदेवानां पश्यतां प्रीतिवर्द्धनम् । भीष्मोऽस्त्रैः पाण्डवं सैन्यं दशाहोभिर्न्यपातयत् ॥
दशमे ह्यर्जुनो बाणैर्भीष्मं वीरं ववर्ष ह । शिखण्डी द्रुपदोक्तोऽस्त्रैर्ववर्ष जलदो यथा ॥८॥
हस्त्यश्वरथपादातमन्योन्यास्त्रनिपातितम्[१] । भीष्मः स्वच्छन्दमृत्युश्च युद्धमार्गं प्रदर्श्य च ॥९॥
वसूक्तो वसुलोकाय शरशय्यागतः स्थितः । उत्तरायणमीक्षंश्च ध्यायन् विष्णुंस्तुवन् स्थितः ॥
दुर्योधने तु शोकार्त्ते द्रोणः सेनापतिस्त्वभूत् । पाण्डवे हर्षिते सैन्ये धृष्टद्युम्नश्चमूपतिः ॥११॥
तयोर्युद्धं बभूवोग्रं यमराष्ट्रविवर्धनम् । विराटद्रुपदाद्याश्च निमग्ना द्रोणसागरे ॥१२॥
दौर्योधनी महासेना हस्त्यश्वरथपत्तिनी । धृष्टद्युम्नाधिपतिता द्रोणः काल इवाबभौ ॥१३॥
हतोश्वत्थामा चेत्युक्ते द्रोणः शस्त्राणि चात्यजत् । धृष्टद्युम्नशराक्रान्तः पतितः स महीतले ॥१४॥
पञ्चमेहनि दुर्द्धर्षः सर्वक्षत्रं प्रमथ्य च । दुर्योधने तु शोकार्ते कर्णः सेनापतिस्त्वभूत् ॥१५॥
अर्जुनः पाण्डवानाञ्च तयोर्युद्धं बभूव ह । शस्त्राशस्त्रि महारौद्रं देवासुररणोपमम् ॥१६॥
कर्णार्जुनाख्ये सङ्ग्रामे कर्णोरीनवधीच्छरैः । द्वितीयेहनि कर्णस्तु अर्जुनेन निपातितः ॥१७॥
शल्यो दिनार्द्धं युयुधे ह्यवधीत्तं युधिष्ठिरः । युयुधे भीमसेनेन हतसैन्यः सयोधनः ॥१८॥
बहून् हत्वा नरादींश्च भीमसेनमथाब्रवीत् । गदया प्रहरन्तं तु भीमस्तन्तु न्यपातयत् ॥१९॥
गदयान्यानुजांस्तस्य तस्मिन्नष्टादशेहनि । रात्रौ सपुत्रञ्च बलं पाण्डवानां न्यपातयत् ॥२०॥
अक्षौहिणीप्रमाणन्तु अश्वत्थामा महाबलः । द्रौपदेयान् सपाञ्चालान् धृष्टद्युम्नञ्च सोऽवधीत् ॥
पुत्रहीनां द्रौपदीं तां रुदन्तीमर्जुनस्ततः । शिरोमणिं तु जग्राह ऐषिकास्त्रेण तस्य च ॥२२॥
अश्वत्थामास्त्रनिर्दग्धं जीवयामास वै हरिः । उत्तरायास्ततो गर्भं स परीक्षिदभून्नृपः ॥२३॥

कृतवर्म्मा कृपो द्रौणिस्त्रयो मुक्तास्ततो रणात् ।
पाण्डवाः सात्यकिः कृष्णः सप्त मुक्ता न चापरे ॥ २४ ॥
स्त्रियश्चार्त्ताः समाश्वास्य भीमाद्यैः स युधिष्ठिरः ।
संस्कृत्य प्रहतान् वीरान् दत्तोदकधनादिकः ॥ २५ ॥
भीष्माच्छान्तनवाच्छ्रुत्वा धर्म्मान् सर्वांश्च शान्तिदान् ।
राजधर्म्मान्मोक्षधर्म्मान्दानधर्म्मान् नृपोऽभवत् ॥ २६ ॥

अश्वमेधे ददौ दानं ब्राह्मणेभ्योरिमर्दनः । श्रुत्वार्जुनान्मौषलेयं[२] यादवानाञ्च सङ्क्षयम् ॥
राज्ये परीक्षितं स्थाप्य सानुजः स्वर्गमाप्तवान्[३] ॥ २७ ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये महाभारतवर्णनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ।

---

१. अन्योन्यास्त्रनिपीडितमिति ख. घ. ।
२. मौषलेनेति ख. ।
३. स्वर्गमाप्नुयादिति ख. ग. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पञ्चदशोऽध्यायः

पाण्डवचरितवर्णनम् ।

अग्निरुवाच

युधिष्ठिरे तु राज्यस्थे आश्रमादाश्रमान्तरम् । धृतराष्ट्रो वनमगाद्गान्धारी च पृथा द्विज ॥१॥
विदुरस्त्वग्निना दग्धो वनजेन दिवङ्गतः । एवं विष्णुर्भुवो भारमहरद्दानवादिकम् ॥२॥
धर्म्मायाधर्म्मनाशाय निमित्तीकृत्य पाण्डवान् । स विप्रशापव्याजेन मुषलेनाहरत् कुलम् ॥३॥
यादवानां भारकरं वज्रं राज्येभ्यषेचयत् । देवादेशान् प्रभासे स देहं त्यक्त्वा स्वयं हरिः ॥४॥
इन्द्रलोके ब्रह्मलोके पूज्यते स्वर्गवासिभिः । बलभद्रोनन्तमूर्त्तिः पातालस्वर्गमीयिवान् ॥५॥
अविनाशी हरिर्देवो ध्यानिभिर्ध्येय एव सः । विना तं द्वारकास्थानं प्लावयामास सागरः ॥६॥
संस्कृत्य यादवान् पार्थो दत्तोदकधनादिकः ।
स्त्रियोष्टावक्रशापेन भार्य्या विष्णोश्च याः स्थिताः ॥ ७ ॥
पुनस्तच्छापतो नीता गोपालैर्लगुडायुधैः । अर्जुनं हि तिरस्कृत्य पार्थः शोकञ्चकार ह ॥८॥
व्यासेनाश्वासितो मेने बलं मे कृष्णसन्निधौ । हस्तिनापुरमागत्य पार्थः सर्वं न्यवेदयत् ॥९॥
युधिष्ठिराय स भ्रात्रे पालकाय नृणान्तदा । तद्धनुस्तानि चास्त्राणि स रथस्ते च वाजिनः॥१०॥
विना कृष्णेन तन्नष्टं दानञ्चाश्रोत्रिये यथा । तच्छ्रुत्वा धर्म्मराजस्तु राज्ये स्थाप्य परीक्षितम् ॥
प्रस्थानं प्रस्थितो धीमान् द्रौपद्या भ्रातृभिः सह । संसारानित्यतां ज्ञात्वा जपन्नष्टशतं हरेः ॥१२॥
महापथे तु पतिता द्रौपदी सहदेवकः । नकुलः फाल्गुनो भीमो राजा शोकपरायणः ॥१३॥
इन्द्रानीतरथारूढः सानुजः स्वर्गमाप्तवान् । दृष्ट्वा दुर्योधनादींश्च वासुदेवं च हर्षितः ॥
एतत्ते भारतं प्रोक्तं यः पठेत्स दिवं व्रजेत् ॥ १४ ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये महाभारतवर्णनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ।

षोडशोऽध्यायः

बुद्धाद्यवतारकथनम् ।

अग्निरुवाच

वक्ष्ये बुद्धावतारञ्च पठतः शृण्वतोर्थदम् । पुरा देवासुरे युद्धे दैत्यैर्देवाः पराजिताः ॥१॥
रक्ष रक्षेति शरणं वदन्तो जग्मुरीश्वरम् । मायामोहस्वरूपोसौ शुद्धोदनसुतोऽभवत् ॥२॥
मोहयामास दैत्यांस्तांस्त्याजिता वेदधर्मकम् । ते च बौद्धा बभूवुर्हि तेभ्योन्ये वेदवर्जिताः॥३॥
आर्हतः सोऽभवत् पश्चादार्हतानकरोत् परान् । एवं पाषण्डिनो जाता वेदधर्म्मादिवर्जिताः ॥४॥
नारकार्हं कर्म चक्रुर्ग्रहीष्यन्त्यधमादपि । सर्वे कलियुगान्ते तु भविष्यन्ति च सङ्कराः ॥५॥
दस्यवः शीलहीनाश्च वेदो वाजसनेयकः । दश पञ्च च शाखा वै प्रमाणेन भविष्यति ॥६॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

धर्म्मकञ्चुकसंवीता अधर्मरुचयस्तथा। मानुषान् भक्षयिष्यन्ति म्लेच्छाः पार्थिवरूपिणः ।।७।।
कल्की विष्णुयशःपुत्रो याज्ञवल्क्यपुरोहितः। उत्सादयिष्यति म्लेच्छान् गृहीतास्त्रः कृतायुधः।।
स्थापयिष्यति मर्यादां चातुर्वर्ण्ये यथोचिताम्। आश्रमेषु च सर्वेषु प्रजाः सद्धर्म्मवर्त्मनि ।।९।।
कल्किरूपं परित्यज्य हरिः स्वर्गं गमिष्यति। ततः कृतयुगन्नाम पुरावत् सम्भविष्यति ।।१०।।
वर्णाश्रमाश्च धर्मेषु स्वेषु स्थास्यन्ति सत्तम। एवं सर्वेषु कल्पेषु सर्वमन्वन्तरेषु च ।।११।।
अवतारा असङ्ख्याता अतीतानागतादयः। विष्णोर्दशावताराख्यान् यः पठेत् शृणुयान्नरः।।१२।।
सोवाप्तकामो विमलः सकुलःस्वर्गमाप्नुयात्। धर्म्माधर्म्मव्यवस्थानमेवं वै कुरुते हरिः।।
अवतीर्णश्च स गतः सर्गादेः कारणं हरिः ।। १३ ।।

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये बुद्धकल्क्यवतारवर्णनं नाम

षोडशोऽध्यायः।

सप्तदशोऽध्यायः

सृष्टिविषयकवर्णनम्।

अग्निरुवाच

जगत्सर्गादिकां क्रीडां विष्णोर्वक्ष्येऽधुना शृणु।
स्वर्गादिकृत् स सर्गादिः सृष्ट्यादिः सगुणोगुणः ।। १ ।।

ब्रह्माव्यक्तं सदाग्रेऽभूत् न खं रात्रिदिनादिकम्। प्रकृतिं पुरुषं विष्णुः[१] प्रविश्याक्षोभयत्ततः।।
सर्गकाले महत्तत्त्वमहङ्कारस्ततोऽभवत्। वैकारिकस्तैजसश्च भूतादिश्चैव तामसः ।।३।।
अहङ्काराच्छब्दमात्रमाकाशमभवत्ततः। स्पर्शमात्रोऽनिलस्तस्माद्रूपमात्रोऽनलस्ततः ।।४।।
रसमात्रा आप इतो गन्धमात्रा मही स्मृता[२]। अहङ्कारात्तामसात्तु तैजसानीन्द्रियाणि च ।।५।।
वैकारिका दश देवा मन एकादशेन्द्रियम्। ततः स्वयम्भूर्भगवान्[३] सिसृक्षुर्विविधाःप्रजाः।।६।।
अप एव ससर्जादौ तासु वीर्यमवासृजत्[४]। आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः ।।७।।
अयनन्तस्य ताः पूर्वन्तेन नारायणः स्मृतः। हिरण्यवर्णमभवत्[५] तदण्डमुदकेशयम् ।।८।।
तस्मिन् जज्ञे स्वयं ब्रह्मा स्वयम्भूरिति नः श्रुतम्। हिरण्यगर्भो[६] भगवानुषित्वा परिवत्सरम्।।९।।
तदण्डमकरोद् द्वैधन्दिवं भुवमथापि च। तयोः शकलयोर्म्मध्ये आकाशमसृजत् प्रभुः ।।१०।।

---

१. विष्णुमिति ख.। २. गन्धमात्रा धरित्र्यभूदिति ख. ग. घ.।
३. ततः स्वयम्भूर्भगवानित्यारभ्य स्रष्टुमिच्छन् प्रजापतिरित्यन्तपाठस्तु महाभारतीयहरिवंश-पर्व्वण उद्धृत इति अध्यवसीयते उभयत्र क्रमेण पाठसाम्यात्।
४. तासु बीजमथासृजदिति ख.। ५. हिरण्यगर्भमभवदिति ख.।
६. हिरण्यवर्ण इति ग.।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अप्सु पारिप्लवां पृथ्वीं दिशश्च दशधा दधे । तत्र कालं मनो वाचं कामं क्रोधमथो रतिम् ॥११॥
ससर्ज सृष्टिन्तद्रूपां स्रष्टुमिच्छन् प्रजापतिः । विद्युतोऽशनिमेघांश्च रोहितेन्द्रधनूंषि च ॥१२॥
वयांसि च ससर्जादौ पर्जन्यञ्चाथ वक्त्रतः । ऋचो यजूंषि सामानि निर्ममे यज्ञसिद्धये ॥१३॥
साध्यास्तैरयजन्देवान् भूतमुच्चावचं भुजात्[1]। सनत्कुमारं रुद्रञ्च ससर्ज्ज क्रोधसम्भवम् ॥१४॥
मरीचिमत्र्यङ्गिरसं पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम् । वसिष्ठं मानसाः सप्त ब्रह्माण इति निश्चिताः[2] ॥
सप्तैते जनयन्ति स्म प्रजा रुद्राश्च सत्तम । द्विधा कृत्वात्मनो देहमर्द्धेन पुरुषोऽभवत् ॥
अर्द्धेन नारी तस्यां स ब्रह्मा वै चासृजत् प्रजाः ॥ १६ ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये जगत्सर्गवर्णनं नाम सप्तदशोऽध्यायः ।

अष्टादशोऽध्यायः

स्वायम्भुववंशवर्णनम् ।

अग्निरुवाच

प्रियव्रतोत्तानपादौ मनोः स्वायम्भुवात् सुतौ । अजीजनत्स तां कन्यां शतरूपां तपोन्विताम्[3] ॥
काम्यां[4] कर्दमभार्यातः सम्राट् कुक्षिर्विराट् प्रभुः । सुरुच्यामुत्तमो जज्ञे पुत्र उत्तानपादतः ॥२॥
सुनीत्यान्तु ध्रुवः पुत्रस्तपस्तेपे स कीर्तये । ध्रुवो वर्षसहस्राणि त्रीणि दिव्यानि हे मुने ॥३॥
तस्मै प्रीतो हरिः प्रादान् मुन्यग्रे स्थानकं स्थिरम्[5]। श्लोकं पपाठ ह्युशना वृद्धिं दृष्ट्वा स तस्य च ॥४॥
अहोऽस्य तपसो वीर्यमहो श्रुतमहोऽद्भुतम् । यमद्य[6] पुरतः कृत्वा ध्रुवं सप्तर्षयः स्थिताः ॥५॥
तस्मात् शिष्टिञ्च[7] भव्यञ्च ध्रुवाच्छम्भुर्व्यजायत । शिष्टेराधत्त[8] सुच्छाया पञ्च पुत्रानकल्मषान् ॥
रिपुं रिपुञ्जयं रिप्रं वृकलं वृकतेजसम् । रिपोराधत्त बृहती चाक्षुषं सर्वतेजसम् ॥७॥
अजीजनत् पुष्करिण्यां वीरिण्यां चाक्षुषो मनुम् । मनोरजायन्त दश नड्वलायां सुतोत्तमाः ॥८॥
ऊरुः[9] पुरुः शतद्युम्नस्तपस्वी सत्यवाक्कविः । अग्निष्टुरतिरात्रश्च सुद्युम्नश्चाभिमन्युकः ॥९॥
ऊरोरजनयत पुत्रान् षडाग्नेयी महाप्रभान् । अङ्गं सुमनसं स्वातिं क्रतुमङ्गिरसङ्गयम् ॥१०॥
अङ्गात् सुनीथापत्यं वै वेणमेकं व्यजायत । अरक्षकः पापरतः स हतो मुनिभिः कुशैः ॥११॥

---

१. भूतमुच्चावचं ह्यजादिति ख. घ. । साध्यांस्तैरयजन् देवान् भूतमुच्चावचं प्रजा इति ङ. ।
२. निश्चितमिति ख. ।
३. अजीजनत् सुतां कन्यां शद्रूपाञ्च तपोन्वितामिति ग. । अजीजनत् सुतां कन्यां शतरूपां तपोन्वितामिति ङ ।
४. काम्या इति ग. ङ. ।
५. स्थानमुत्तममिति ङ.
६. यदत्र इति ङ. ।
७. तस्मात् श्लिष्टिञ्च इति ग. घ. ।
८. श्लिष्टेराधत्त इति ख. घ. ।
९. उरुरिति ख. ग. ङ. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रजार्थमृषयोथास्य ममन्थुर्दक्षिणं करम् । वेणस्य मथिते पाणौ सम्बभूव पृथुर्नृपः ॥१२॥
तं दृष्ट्वा मनुयः प्राहुरेष वै मुदिताः प्रजाः । करिष्यति महातेजा यशश्च प्राप्स्यते महत् ॥१३॥
स धन्वी कवची जातस्तेजसा निर्दहन्निव । पृथुर्वैण्यः प्रजाः सर्वा ररक्ष क्षेत्रपूर्वजः ॥१४॥
राजसूयाभिषिक्तानामाद्यः[१] स पृथिवीपतिः । तस्माच्चैव समुत्पन्नौ निपुणौ सूतमागधौ ॥१५॥
तत्स्तोत्रञ्चक्रतुर्व्वीरौ राजाभूज्जनरञ्जनात् । दुग्धा गौस्तेन शस्यार्थं प्रजानां जीवनाय च ॥१६॥
सह देवैर्मुनिगणैर्गन्धर्वैः साप्सरोगणैः । पितृभिर्दानवैः सर्पैर्वीरुद्भिः पर्वतैर्जनैः ॥१७॥
तेषु तेषु च पात्रेषु दुह्यमाना वसुन्धरा । प्रादाद्यथेप्सितं क्षीरन्तेन प्राणानधारयत् ॥१८॥
पृथोः पुत्रौ तु धर्म्मज्ञौ जज्ञातेऽन्तर्द्धिपालिनौ । शिखण्डिनी हविर्द्धानमन्तर्द्धानात व्यजायत ॥
हविर्द्धानात् षडाग्नेयी धीषणाजनयत् सुतान् । प्राचीनवर्हिषं शुक्रं[२] गयं कृष्णं व्रजाजिनौ ॥२०॥
प्राचीनाग्राः कुशास्तस्य पृथिव्यां यजतो यतः । प्राचीनवर्हिर्भगवान् महानासीत्प्रजापतिः ॥२१॥
सवर्णाऽधत्त[३] सामुद्री दश प्राचीनवर्हिषः । सर्वे प्रचेतसो नाम धनुर्वेदस्य पारगाः ॥२२॥
अपृथग्धर्म्मचरणास्ते तप्यन्त महत्तपः । दशवर्षसहस्राणि समुद्रसलिलेशयाः ॥२३॥
प्रजापतित्वं सम्प्राप्य तुष्टा विष्णोश्च निर्गताः । भूः खं व्याप्तं हि तरुभिस्तांस्तरूनदहंश्च ते ॥

मुखजाग्निमरुद्भ्यां च दृष्ट्वा चाथ द्रुमक्षयम् ।
उपगम्याब्रवीदेतान् राजा सोमः प्रजापतीन् ॥ २५ ॥
कोपं यच्छत दास्यन्ति कन्यां वो मारिषां वराम् ।
तपस्विनो मुनेः कण्डोः[४] प्रम्लोचायां ममैव च ॥ २६ ॥
भविष्यं जानता सृष्टा भार्या वोऽस्तु कुलङ्करी ।
अस्यामुत्पत्स्यते दक्षः प्रजाः संवर्द्धयिष्यति ॥ २७ ॥

प्रचेतसस्तां जगृहुर्द्दक्षोस्याञ्च ततोऽभवत् । अचरांश्च चरांश्चैव द्विपदोथ चतुष्पदः ॥२८॥
स सृष्ट्वा मनसा[५] दक्षः पश्चादसृजत स्त्रियः । ददौ स दश धर्म्माय कश्यपाय त्रयोदश ॥२९॥
सप्तविंशति सोमाय चतस्रोऽरिष्टनेमिने । द्वे चैव बहुपुत्राय द्वे चैवाङ्गिरसे अदात्[६] ॥३०॥
तासु देवाश्च नागाद्या मैथुनान्मनसा पुरा । धर्म्मसर्गम्प्रवक्ष्यामि दशपत्नीषु धर्मतः ॥३१॥

विश्वेदेवास्तु विश्वायाः साध्यान् साध्या व्यजायत ।
मरुत्त्वत्या मरुत्त्वन्तो वसोस्तु वसवोऽभवन् ॥ ३२ ॥
भानोस्तु भानवः पुत्रा मुहूर्त्तास्तु मुहूर्त्तजाः ।
सम्बाया[७] धर्मतो घोषो नागवीथी[८] च यामिजा ॥ ३३ ॥

पृथिवीविषयं सर्वमरुन्धत्यां व्यजायत । सङ्कल्पायास्तु सङ्कल्पा इन्दोर्न्नक्षत्रतः सुताः ॥३४॥

---

१. राजसूयाभिव्यक्तानामाद्य इति ख. ।
२. शुभ्रमिति ग. ।
३. सुवर्णाधत्त इति ग.
४. कण्ठोरिति ग. कर्णोरिति ङ. ।
५. स दृष्ट्वा मनसा इति ख. ग. ।
६. द्वे चैव माण्डवे तत इति ग. ।
७. लम्बाया इति ग. ।
८. नगवीथी इति ख. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आपो ध्रुवश्च सोमश्च धरश्चैवानिलोनलः[1] । प्रत्यूषश्च प्रभावश्च वसवौष्टौ च नामतः ।।३५।।
आपस्य पुत्रो वैतण्ड्यः श्रमः शान्तो मुनिस्तथा ।
ध्रुवस्य कालो लोकान्तो वर्चाः सोमस्य वै सुतः ।। ३६ ।।
धरस्य पुत्रो द्रविणो[2] हुतहव्यवहस्तथा । मनोहरायाः शिशिरः प्राणोथ रमणस्तथा[3] ।।३७।।
पुरोजवोनिलस्यासीदविज्ञातोऽनलस्य च । अग्निपुत्रः कुमारश्च शरस्तम्बे व्यजायत ।।३८।।
तस्य शाखो विशाखश्च नैगमेयश्च पृष्ठजः । कृत्तिकातः कार्त्तिकेयो यतिः सनत्कुमारकः[4] ।।
प्रत्यूषाद्देवलो जज्ञे विश्वकर्मा प्रभापतः । कर्त्ता शिल्पसहस्राणां त्रिदशानाञ्च वर्द्धकिः ।।४०।।
मनुष्याश्चोपजीवन्ति शिल्पं वै भूषणादिकम् । सुरभी[5] कश्यपाद्रुद्रानेकादश विजज्ञुषी ।।४१।।
महादेवप्रसादेन तपसा भाविता सती । अजैकपादहिर्ब्रध्नस्त्वष्टा रुद्राश्च सत्तम[6] ।।४२।।
त्वष्टुश्चैवात्मजः श्रीमान्विश्वरूपो महायशाः । हरश्च बहूरूपश्च त्र्यम्बकश्चापराजितः ।।४३।।
वृषाकपिश्च शम्भुश्च कपर्दी रैवतस्तथा । मृगव्याधश्च सर्पश्च कपाली दश चैककः ।।
रुद्राणां च शतं लक्षं यैर्व्याप्तं सचराचरं ।। ४४ ।।

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये जगत्सर्गवर्णनं नाम अष्टादशोऽध्यायः ।

ऊनविंशतितमोऽध्यायः

कश्यपवंशवर्णनम् ।

अग्निरुवाच

कश्यपस्य वदे सर्गमदित्यादिषु हे मुने । चाक्षुषे तुषिता देवास्तेऽदित्यां कश्यपात्पुनः ।।१।।
आसन् विष्णुश्च शक्रश्च त्वष्टा धाता तथार्यमा ।
पूषा विवस्वान् सविता मित्रोथ वरुणो भगः ।। २ ।।
अंशुश्च द्वादशादित्या आसन् वैवस्वतेन्तरे । अरिष्टनेमिपत्नीनामपत्यानीह षोडश ।।३।।
बहुपुत्रस्य विदुषश्चतस्रो विद्युतः सुताः[7] । प्रत्यङ्गिरसजाः श्रेष्ठाः कृशाश्वस्य सुरायुधाः ।।४।।
उदयास्तमने सूर्ये तद्वदेते युगे युगे । हिरण्यकशिपुर्दित्यां हिरण्याक्षश्च कश्यपात् ।।५।।
सिंहिका चाभवत् कन्या विप्रचित्तेः परिग्रहः । राहुप्रभृतयस्तस्यां सैंहिकेया इति श्रुताः ।।६।।
हिरण्यकशिपोः पुत्राश्चत्वारः प्रथितौजसः । अनुह्लादश्च ह्लादश्च प्रह्लादश्चातिवैष्णवः ।।७।।

---

१. धर्म्मश्चैवानिलोनल इति ख. ग. ।
२. धरिष इति ग. ।
३. मरणस्तथेति ग. ।
४. जातः सनत्कुमारत इति ग. ।
५. युवती इति ग. ।
६. सत्तम इति ख. ङ. ।
७. स्मृता इति ग. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

संह्रादश्च चतुर्थोभूत ह्रादपुत्रो ह्रदस्तथा । ह्रदस्य पुत्र आयुष्मान्[१] शिविर्वास्कल एव च ॥
विरोचनस्तु प्राह्लादिर्बलिर्जज्ञे विरोचनात् । बलेः पुत्रशतं त्वासीद्वाणश्रेष्ठं[२] महामुने ॥९॥
पुरा कल्पे हि वाणेन प्रसाद्योमापतिं वरः[३]। पार्श्वतो विहरिष्यामीत्येवं प्राप्तश्च ईश्वरात्[४]॥१०॥
हिरण्याक्षसुताः पञ्च शम्बरः शकुनिस्त्विति[५] । द्विमूर्द्धा शङ्कुरार्यश्च[६] शतमासन् दनोः सुताः ॥
स्वर्भानोस्तु प्रभा कन्या पुलोम्नस्तु शची स्मृता । उपदानवी हयशिरा शर्मिष्ठा वार्षपर्वणी ॥
पुलोमा कालका चैव वैश्वानरसुते उभे । कश्यपस्य तु भार्ये द्वे तयोः पुत्राश्च कोटयः ॥१३॥

प्रह्लादस्य चतुष्कोट्यो निवातकवचाः कुले ।
ताम्रायाः षट् सुताः स्युश्च काकी श्येनी च भास्यपि ॥ १४ ॥
गृध्रिका शुचि सुग्रीवा[७] ताभ्यः :काकादयोऽभवन् ।
अश्वाश्वोष्ट्राश्च ताम्राया अरुणो गरुडस्तथा ॥ १५ ॥

विनतायाः सहस्रन्तु सर्पाश्च सुरसाभवाः । काद्रवेयाः सहस्रन्तु शेषवासुकितक्षकाः ॥१६॥
दंष्ट्रिणः क्रोधवशजा धरोत्थाः[८] पक्षिणो जले । सुरभ्यां गोमहिष्यादि इरोत्पन्नास्तृणादयः ॥
खसायां यक्षरक्षांसि मुनेरप्सरसोभवन् । अरिष्टायान्तु गन्धर्वाः कश्यपाद्धि स्थिरञ्चरम्[९] ॥
एषां पुत्रादयोऽसङ्ख्या देवैर्वै दानवा जिताः[१०] । दितिर्विनष्टपुत्रा वै तोषयामास कश्यपम् ॥
पुत्रमिन्द्रप्रहर्त्तारमिच्छती प्राप कश्यपात् । पादाप्रक्षालनात् सुप्ता तस्या गर्भं जघान ह ॥२०॥
छिद्रमन्विष्य चेन्द्रस्तु ते देवा मरुतोऽभवन् । शक्रस्यैकोनपञ्चाशत्सहाया दीप्ततेजसः ॥२१॥
एतत् सर्वं हरिर्ब्रह्मा अभिषिच्य पृथुं नृपम् । ददौ क्रमेण राज्यानि अन्येषामधिपो हरिः ॥
द्विजौषधीनां चन्द्रश्च अपान्तु वरुणो नृपः । राज्ञां वैश्रवणो राजा सूर्याणां विष्णुरीश्वरः ॥
वसूनां पावको राजा मरुतां वासवः प्रभुः । प्रजापतीनां दक्षोथ प्रह्लादो दानवाधिपः ॥२४॥
पितॄणां च यमो राजा भूतादीनां हरः[११] प्रभुः। हिमवांश्चैव शैलानां नदीनां सागरः प्रभुः॥२५॥
गन्धर्वाणां चित्ररथो नागानामथ वासुकिः । सर्पाणां तक्षको राजा गरुडः पक्षिणामथ ॥२६॥
ऐरावतो गजेन्द्राणां गोवृषोथ गवामपि । मृगाणामथ शार्दूलः प्लक्षो वनस्पतीश्वरः ॥२७॥
उच्चैःश्रवास्तथाश्वानां सुधन्वा पूर्वपालकः । दक्षिणस्यां शङ्खपदः केतुमान पालको जले ॥
हिरण्यरोमकः सौम्ये प्रतिसर्गोयमीरितः ॥ २८ ॥

इत्यदिमहापुराणे आग्नेये प्रतिसर्गवर्णनं नाम ऊनविंशतितमोऽध्यायः ।

---

१. संह्रादपुत्र आयुष्मानिति ख. ग. ।
२. वाणज्येष्ठमिति ख. ग. ।
३. प्रभुमिति ख. ।
४. इत्येवं प्राप्तमीश्वरादिति ख.
५. झर्झरः शकुनिस्त्विततीति ख. शकुनिस्त्वयेति ङ. ।
६. द्विमूर्द्धा शम्बराद्याश्च इति ख. ।
७. गृध्रिका च शुचिग्रीवो इति च, गृध्रिकाशुचिसुग्रीवो इति ग. ।
८. धरण्या इति ख. ।
९. कश्यपादि परस्परमिति ख. ।
१०. देवैर्दैत्याः पराजिता इति ख. ।
११. भूतनाथ हर इति ग. ङ. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विंशतितमोऽध्यायः

सर्गविषयकवर्णनम् ।

अग्निरुवाच

प्रथमो महतः सर्गो विज्ञेयो ब्रह्मणस्तु सः । तन्मात्राणां द्वितीयस्तु भूतसर्गो हि स स्मृतः ॥१॥
वैकारिकस्तृतीयस्तु सर्ग ऐन्द्रियकः स्मृतः । इत्येष प्राकृतः सर्गः सम्भूतो बुद्धिपूर्वकः ॥२॥

मुख्यः सर्गश्चतुर्थस्तु मुख्या वै स्थावराः स्मृताः ।
तिर्यक्स्रोतास्तु यः प्रोक्तस्तैर्य्यग्योन्यस्ततः स्मृतः ॥ ३ ॥
तथोर्द्ध्वस्रोतसां षष्ठो देवसर्गस्तु स स्मृतः ।
ततोर्वाक्स्रोतसां सर्गः सप्तमः स तु मानुषः ॥ ४ ॥

अष्टमोनुग्रहः सर्गः सात्त्विकस्तामसश्च यः । पञ्चैते वैकृताः सर्गाः प्राकृताश्च त्रयः स्मृताः ॥
प्राकृतो वैकृतश्चैव कौमारो नवमस्तथा । ब्रह्मतो नव सर्गास्तु जगतो मूलहेतवः ॥६॥

ख्यात्याद्या दक्षकन्यास्तु भृग्वाद्या उपयेमिरे ।
नित्यो नैमित्तिकः सर्गस्त्रिधा प्रकथितो जनैः ॥ ७ ॥

प्राकृता दैनन्दिनी स्यादन्तरप्रलयादनु । जायते यत्रानुदिनं नित्यसर्गो हि सम्मतः ॥८॥
देवौ धाताविधातारौ भृगोः ख्यातिरसूयत । श्रियञ्च पत्नी विष्णोर्या स्तुता शक्रेण वृद्धये ॥९॥
धातुर्विधातुर्द्वौ पुत्रौ क्रमात् प्राणो मृकण्डुकः । मार्कण्डेयो मृकण्डोश्च जज्ञे वेदशिरास्ततः ॥
पौर्णमासश्च सम्भूत्यां मरीचेरभवत् सुतः । स्मृत्यामङ्गिरसः पुत्राः सिनीवाली कुहूस्तथा ॥११॥
राकाश्चानुमतिश्चात्रेरनसूयाप्यजीजनत् । सोमं दुर्वाससं पुत्रं दत्तात्रेयञ्च योगिनम् ॥१२॥
प्रीत्यां पुलस्त्यभार्यायां दत्तोलिस्तत्सुतोभवत् । क्षमायां[१] पुलहाज्जाताः सहिष्णुः कर्मपादिकाः॥
सन्नत्याञ्च क्रतोरासन् बालिखिल्या महौजसः । अङ्गुष्ठपर्वमात्रास्ते ये हि षष्टिसहस्रिणः ॥
उर्ज्जायाञ्च वशिष्ठाश्च राजा गात्रोर्ध्वबाहुकः[२] । सवनश्चालघुः शुक्रः[३] सुतपाः सप्त चर्षयः॥१५॥

पावकः पवमानोभूच्छुचिः स्वाहाग्निजोभवत ।
अग्निस्वात्ता वर्हिषदोऽनग्नयः साग्नयो ह्यजात्[४] ॥ १६ ॥

पितृभ्यश्च स्वधायाञ्च मेना वैधारिणी सुते[५] । हिंसाभार्या त्वधर्मस्य तयोर्जज्ञे तथानृतम् ॥१७॥
कन्या च निकृतिस्ताभ्यां भयन्नरकमेव च । माया च वेदना चैव मिथुनन्त्विदमेतयोः ॥१८॥
तयोर्जज्ञेथ वै मायां मृत्युं भूतापहारिणम् । वेदना च सुतं चापि दुःखं जज्ञेथ रौरवात् ॥१९॥

---

१. कुमार्य्यामिति ख. ।
२. रजोगोत्रोद्र्ध्वबाहुक इति ख. । राजा शात्रोद्र्ध्वबालक इति ग. । रजोगोत्रोद्र्ध्ववाहक इति ङ. ।
३. सवलश्चानघः शुक्र इति घ. ।
४. साग्नयो ह्यगादिति ख. । अग्निपाला वर्हिषदो ह्याज्यपाः साग्नयो ह्यजादिति घ. ।
५. वैधारिणी सुते इति ख. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मृत्योर्व्याधिजराशोकतृष्णाक्रोधाश्च जज्ञिरे । ब्रह्मणश्च रुदन् जातो रोदनाद्रुद्रनामकः ॥२०॥
भवं शर्वमथेशानं तथा पशुपतिं द्विज । भीममुग्रं महादेवमुवाच स पितामहः ॥२१॥
दक्षकोपाच्च तद्भार्या देहन्तत्याज सा सती । हिमवद्दुहिता भूत्वा पत्नी शम्भोरभूत् पुनः ॥२२॥

ऋषिभ्यो नारदाद्युक्ताः पूजाः स्नानादिपूर्विकाः ।
स्वायम्भुवाद्यास्ताः कृत्वा विष्ण्वादेर्भुक्तिमुक्तिदाः ॥ २३ ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये जगत्सर्गवर्णनं नाम विंशतितमोऽध्यायः ।

एकविंशोऽध्यायः

सामान्यपूजाकथनम् ।

नारद उवाच

सामान्यपूजां विष्ण्वादेर्वक्ष्ये मन्त्रांश्च सर्वदान् । समस्तपरिवाराय अच्युताय नमो यजेत ॥
धात्रे विधात्रे गङ्गायै यमुनायै निधी तथा । द्वारश्रियं वास्तुनवं शक्तिं कूर्म्ममनन्तकम् ॥२॥
पृथिवीं धर्म्मकं ज्ञानं वैराग्यैश्वर्यमेव च । अधर्मादीन् कन्दनालपद्मकेशरकर्णिकाः ॥३॥
ऋग्वेदाद्यं कृताद्यञ्च सत्त्वाद्यर्कादिमण्डलम् । विमलोत्कर्षिणी ज्ञाना क्रिया योगा च ता यजेत् ॥
प्रह्वीं सत्यां तथेशानानुग्रहासनमूर्त्तिकाम्[१] । दुर्गां गिरङ्गणं[२] क्षेत्रं वासुदेवादिकं यजेत् ॥५॥
हृदयञ्च शिरः शूलं वर्मनेत्रमथास्त्रकम् । शङ्खं चक्रं गदां पद्मं श्रीवत्सं कौस्तुभं यजेत् ॥६॥
वनमालां श्रियं पुष्टिं गरुडं गुरुमर्चयेत् । इन्द्रमग्निं यमं रक्षो जलं वायुं धनेश्वरम् ॥७॥
ईशानन्तमजं चास्त्रं वाहनं कुमुदादिकम् । विष्वक्सेनं मण्डलादौ सिद्धिः पूजादिना भवेत् ॥
शिवपूजाथ सामान्या पूर्वं नन्दिनमर्च्चयेत् । महाकालं यजेद्गङ्गां[३] यमुनाञ्च गणादिकम् ॥

गिरं श्रियं[४] गुरुं वास्तुं शक्त्यादीन् धर्मकादिकम् ।
वामा ज्येष्ठा तथा रौद्री काली कलविकारिणी ॥ १० ॥

बलविकरिणी चापि बलप्रमथिनी क्रमात् । सर्वभूतदमनी च मदनोन्मादिनी शिवासनम् ॥
हां हुं हां शिवमूर्त्तये साङ्गवक्त्रं शिवं यजेत् । हौं शिवाय हामित्यादि हाभीशानादिवक्त्रकम् ॥१२॥
ह्रीं गौरीं गं गणः शक्रमुखाश्चण्डीहृदादिकाः । क्रमात्सूर्य्यार्च्चने मन्त्रा दण्डी पूज्यश्च पिङ्गलः ॥

---

१. प्रह्वी सन्ध्या तथेशानानुग्रहासनमूर्त्तिका इति ग. ।
२. दुर्गां गिरिं गणमिति ख. दुर्गां शिवं गणमिति घ. ।
३. यजेत् दुर्गां इति ख. घ. ।
४. गिरिं श्रियमिति ख. शिवं श्रियमिति घ. ।
५. गौरीं श्रियं गुरुं चास्त्रं शक्त्यादिं धर्म्मकादिकमिति ङ. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उच्चैःश्रवाश्चारुणश्च प्रभूतं विमलं यजेत् । साराध्योपरमसुखं[१] स्कन्दाद्यंमध्यतो यजेत् ॥१४॥
दीप्ता सूक्ष्मा जया भद्रा विभूतिर्विमला तथा । अमोघा विद्युता चैव पूज्याथ सर्वतोमुखी ॥१५॥
अर्क्कासनं हि हं खं ख सोल्कायेति च मूर्तिकाम् ।
ह्रां ह्रीं स सूर्य्याय नम आं नमो हृदयाय च ॥ १६ ॥
अर्क्काय शिरसे तद्वदग्नीशासुरवायुगान्[२] । भूर्भुवः स्वरे ज्वालिनि शिखा हुं कवचं स्मृतम् ॥१७॥
मां नेत्रं वस्तथार्क्कास्त्रं राज्ञी शक्तिश्च निष्कुभा[३] ।
सोमोऽङ्गारकोथ बुधो जीवः शुक्रः शनिः क्रमात् ॥ १८ ॥
राहुः केतुस्तेजश्चण्डः सङ्क्षेपादथ पूजनम् । आसनं मूर्त्तये मूलं हृदाद्यं परिचारकः ॥१९॥
विष्ण्वासनं विष्णुमूर्त्ते रों श्रीं श्रीं श्रीधरो हरिः । ह्रीं सर्वमूर्त्तिमन्त्रीयमिति त्रैलोक्यमोहनः ॥
ह्रीं हृषीकेशः क्लीं विष्णुः स्वरैर्दीर्घैर्हृदादिकम् । समस्तैः पञ्चमी पूजा सङ्ग्रामादौ जयादिदा ॥
चक्रं गदां क्रमाच्छङ्खं मुषलं खड्गशार्ङ्गकम् । पाशाङ्कुशौ च श्रीवत्सं कौस्तुभं वनमालया ॥
श्रीं श्रीर्महालक्ष्मीताद्र्यो गुरुरिन्द्रादयोऽर्च्चनम् । सरस्वत्यासनं मूर्त्तिरौं ह्रीं देवी सरस्वती॥
हृदाद्या लक्ष्मीर्म्मेधा च कलातुष्टिश्च पुष्टिका । गौरी प्रभामती दुर्गा गणो गुरुश्च क्षेत्रपः ॥२४॥
तथा गं गणपतये च ह्रीं गौर्यै च श्रीं श्रियै ।
ह्रीं त्वरितायै ह्रीं सौ त्रिपुरा[४] चतुर्थ्यन्तनमोन्तकाः ॥ २५ ॥
प्रणवाद्याश्च नामाद्यमक्षरं विन्दुसंयुतम् । ओं युतं वा सर्वमन्त्रपूजनाज्जपतः स्मृताः ॥२६॥
होमात्तिलघृताद्यैश्च धर्म्मकामार्थमोक्षदाः । पूजामन्त्रान् पठेद्यस्तु भुक्तभोगो दिवं व्रजेत् ॥२७॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये वासुदेवादिपूजाकथनं नाम
एकविंशतितमोऽध्यायः ।

द्वाविंशोऽध्यायः

स्नानविधिकथनम् ।

नारद उवाच

वक्ष्ये स्नानं क्रियाद्यर्थं नृसिंहेन तु मृत्तिकाम् । गृहीत्वा तां द्विधा कृत्वा मनःस्नानमथैकया ॥१॥
निमज्ज्याचम्य विन्यस्य सिंहेन कृतरक्षकः[५] । विधिस्नानं ततः कुर्य्यात् प्राणायामपुरःसरम् ॥२॥

---

१. सावाराध्योपरं दुःखमिति ख. ।
२. अग्निसाश्रयवायुगानिति ख. । अर्काय शिरसे तद्वदग्निजायायुतञ्च तदिति ङ. ।
३. शक्तिश्च निर्गता इति ख. ।
४. ह्रीं त्वरितायै, ह्रीं, ऐं क्लीं सौ त्रिपुरा इति ख. । ५. कृतरक्षण इति घ. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हृदि ध्यायन् हरिज्ञानं[१] मन्त्रेणाष्टाक्षरेण हि। त्रिधा पाणितले मृत्स्नां दिग्बन्धं सिंहजप्ततः॥
वासुदेवप्रजप्तेन तीर्थं सङ्कल्प्य चालभेत्। गात्रं वेदादिना मन्त्रैः सम्मार्ज्याराध्य मूर्त्तिना॥४॥
कृत्वाघमर्षणं वस्त्रं परिधाय समाचरेत्। विन्यस्य मन्त्रैर्द्विर्म्मार्ज्य पाणिस्थं जलमेव च॥५॥
नारायणेन संयस्य वायुमाघ्राय चोत्सृजेत्। जलं ध्यायन् हरिं पश्चाद्दत्त्वार्घ्यं द्वादशाक्षरम्॥६॥
जप्त्वान्याञ्छतशस्तस्य योगपीठादितः क्रमात्। मन्त्रान् दिक्पालपर्यन्तानृषीन् पितृगणानपि॥
मनुष्यान् सर्वभूतानि स्थावरान्तान्यथावसेत्। न्यस्य चाङ्गानि संहृत्य मन्त्रान्यागगृहं व्रजेत्॥
एवमन्यासु पूजासु मूलाद्यैः स्नानमाचरेत्॥ ८॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये स्नानविधिकथनं नाम द्वाविंशोऽध्यायः।

त्रयोविंशोऽध्यायः

पूजाविधिकथनम्।

नारद उवाच

वक्ष्ये पूजाविधिं विप्रा यत कृत्वा सर्वमाप्नुयात्। प्रक्षालिताङ्घ्रिराचम्य वाग्यतः कृतरक्षकः॥१॥
प्राङ्मुखः स्वस्तिकं वद्ध्वा पद्माद्यपरमेव च। यं वीजं नाभिमध्यस्थं धूम्रं चण्डानिलात्मकम्॥
विशोषयेदशेषन्तु[२] ध्यायेत् कायात्तु कल्मषम्। क्ष्रौं हृत्पङ्कजमध्यस्थं वीजं तेजोनिधिं स्मरन्॥३॥
अधोर्द्ध्वतिर्यग्गाभिस्तु ज्वालाभिः कल्मषं दहेत्। शशाङ्काकृतिवद्ध्यायेदम्वरस्थं सुधाम्बुभिः॥
हृत्पद्मव्यापिभिर्देहं स्वकमाप्लावयेत्सुधीः[३]। सुषुम्नायोनिमार्गेण सर्वनाडीविसर्प्पिभिः॥५॥
शोधयित्वा न्यसेत्तत्त्वं करशुद्धिरथास्त्रकम्। व्यापकं हस्तयोरादौ दक्षिणाङ्गुष्ठतोङ्गकम्॥६॥
मूलं देहे द्वादशाङ्गं न्यसेन्मन्त्रैर्द्विषट्ककैः। हृदयं च शिरश्चैव शिखा वर्म्मास्त्रलोचने॥७॥
उदरं च तथा पृष्ठं वाहुरुजानुपादकं। मुद्रां दत्त्वा स्मरेद् विष्णुं जप्त्वाष्टशतमर्च्चयेत॥८॥
वामे तु वर्द्धनीं न्यस्य पूजाद्रव्यं तु दक्षिणे। प्रक्षाल्यास्त्रेण चार्घ्येण गन्धपुष्पान्विते न्यसेत्॥
चैतन्यं सर्व्वगं ज्योतिरष्टजप्तेन वारिणा। फडन्तेन तु संसिच्य हस्ते ध्यात्वा हरिं परे[४]॥१०॥
धर्मं ज्ञानं च वैराग्यमैश्वर्य्यं वह्निदिङ्मुखाः। अधर्मादीनि गात्राणि पूर्वादौ योगपीठके॥११॥
कूर्मं पीठे ह्यनन्तञ्च यमं[५] सूर्य्यादिमण्डलम्। विमलाद्याः केशरस्थानुग्रहा कर्णिकास्थिता॥
पूर्वं स्वहृदये ध्यात्वा आवाह्याच्चैच्च मण्डले। अर्घ्यं पाद्यं तथा चामं मधुपर्क्कं पुनश्च तत॥
स्नानं वस्त्रोपवीतञ्च भूषणं गन्धपुष्पकम्। धूपदीपनैवेद्यानि पुण्डरीकाक्षविद्यया॥१४॥
यजेदङ्गानि पूर्वादौ द्वारि पूर्वे परेण्डजम्। दक्षे चक्रं गदां सौम्ये कोणे शङ्खं धनुर्न्यसेत्॥१५॥

---

१. ध्यायन् हरिं देवमिति घ.। २. विशोषयेदशेषन्तु इति ङ.।
३. स्वकामान्दाहयेत् सुधीः इति ख. स्वकमाह्लादयेत् सुधीरिति ङ.।
४. स्थलं तेन तु संसिच्य हस्ते ध्यात्वा हरिं पठेदिति ङ.। ५. पद्ममिति ख. ग. ङ.।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

देवस्य वामतो दत्ते चेषुधी खड्गमेव च। वामे चर्म्म श्रियं[१] पुष्टिं वामेग्रतो न्यसेत् ॥१६॥
वनमालाञ्च श्रीवत्सकौस्तुभौ दिक्पतीन्वहिः। स्वमन्त्रैः पूजयेत सर्वान् विष्णुरर्घोवसानतः[२]॥
व्यस्तेन च समस्तेन अङ्गैर्वीजेन वै यजेत्। जप्त्वा प्रदक्षिणीकृत्य स्तुत्वार्घ्यञ्च समर्प्य च ॥
हृदये विन्यसेद्ध्यात्वा अहं ब्रह्म हरिस्त्विति। आगच्छावाहने योज्यं क्षमस्वेति विसर्ज्जने॥
एवमष्टाक्षराद्यैश्च पूजां कृत्वा विमुक्तिभाक्। एकमूर्त्त्यर्च्चनं प्रोक्तं नवव्यूहार्च्चनं शृणु॥२०॥
अङ्गुष्ठकद्वये न्यस्य वासुदेवं वलादिकान्। तर्ज्जन्यादौ शरीरेथ शिरोललाटवक्त्रके ॥२१॥
हृन्नाभिगुह्यजान्वङ्घ्रौ मध्ये पूर्वादिकं यजेत्[३]। एकपीठं नवव्यूहं नवपीठञ्च पूर्ववत् ॥२२॥
नवाब्जे नवमूर्त्त्या च नवव्यूहञ्च पूर्ववत्। इष्टं मध्ये ततः स्थाने वासुदेवञ्च पूजयेत् ॥२३॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये आदिमूर्त्यादिपूजाविधिर्नाम
त्रयोविंशोऽध्यायः।

चतुर्विंशोऽध्यायः

कुण्डनिर्माणादिविधिः।

नारद उवाच

अग्निकार्य्यं प्रवक्ष्यामि येन स्यात्सर्वकामभाक्। चतुरभ्यधिकं विंशमङ्गुलं चतुरस्रकम् ॥१॥
सूत्रेण सूत्रयित्वा तु क्षेत्रं तावत् खनेत्समम्।
खातस्य मेखला कार्य्या त्यक्त्वा चैवाङ्गुलद्वयम् ॥ २ ॥
सत्त्वादिसञ्ज्ञा[४] पूर्वाशा द्वादशाङ्गुलमुच्छ्रिता। अष्टाङ्गुला द्व्यङ्गुलाथ चतुरङ्गुलविस्तृता ॥३॥
योनिर्द्दशाङ्गुला रम्या षट्चतुर्द्व्यङ्गुलाग्रगा। क्रमान्निम्ना तु कर्त्तव्या पश्चिमाशाव्यवस्थिता॥
अश्वत्थपत्रसदृशी किञ्चित् कुण्डे निवेशिता। तुर्य्याङ्गुलायता नालं पञ्चदशाङ्गुलायतम्॥५॥
मूलन्तु त्र्यङ्गुलं[५] योन्या अग्रं तस्याः षडङ्गुलम्। लक्षणञ्चैकहस्तस्य द्विगुणं द्विकरादिषु ॥६॥
एकत्रिमेखलं कुण्डं वर्तुलादि वदाम्यहम्। कुण्डार्द्धे तु स्थितं सूत्रं कोणे यदतिरिच्यते ॥७॥
तदर्द्धं दिशि संस्थाप्य भ्रामितं वर्त्तुलं भवेत्। कुण्डार्द्धं कोणभागार्द्धं दिशाश्चोत्तरतो वहिः ॥
पूर्वपश्चिमतो यत्नाल्लाञ्छयित्वा तु मध्यतः। संस्थाप्य भ्रामितं कुण्डमर्द्धचन्द्रं भवेत् शुभम्॥९॥
पद्माकारे दलानि स्युर्मेखलानान्तु वर्त्तुले। वाहुदण्डप्रमाणन्तु होमार्थं कारयेत् स्रुचम्॥१०॥
सप्तपञ्चाङ्गुलं वापि चतुरस्रन्तु कारयेत्। त्रिभागेन भवेद्गर्त्तं मध्ये वृत्तं सुशोभनम ॥११॥

---

१. वामे वर्म्मं श्रियमिति ख.।
२. अस्मल्लब्धपुस्तकेषु विष्णुरर्घोवसानत इति विष्णावर्घौ च मानतः इति च पाठो वर्त्तते। अथनवसमीचीन इव प्रतिभाति विष्णुमर्घ्यासनादिभिरिति तु युक्तः पाठः।
३. मध्यगुल्फादितः विस्फच इति ङ.।
४. सत्त्वादिसञ्ज्ञा इति ख.।
५. मलन्तु द्व्यङ्गुलमिति ग.।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तिर्य्यगूर्द्ध्वं समं खाताद्बहिरर्द्धन्तु शोधयेत् । अङ्गुलस्य चतुर्थांशं शेषार्द्धार्द्धं तथान्ततः ॥ १२ ॥
खातस्य मेखलां रम्यां शेषार्द्धेन तु कारयेत् । कण्ठं त्रिभागविस्तारं अङ्गुष्ठकसमायतम् ॥ १३ ॥
सार्द्धमङ्गुष्ठकं वा स्यात्तदग्रे तु मुखं भवेत् । चतुरङ्गुलविस्तारं पञ्चाङ्गुलमथापि वा ॥ १४ ॥
त्रिकं द्व्यङ्गुलकं तत स्यान्मध्यन्तस्य सुशोभनम् ।
आयामस्तत्समस्तस्य मध्यनिम्नः सुशोभनः ॥ १५ ॥
शुषिरं कण्ठदेशे स्याद्विशेद् यावत कनीयसी । शेषकुण्डन्तु कर्त्तव्यं यथारुचि विचित्रितम् ॥
स्रुवन्तु हस्तमात्रं स्याद्दण्डकेन समन्वितम्[१] । वटुकं द्व्यङ्गुलं[२] वृत्तं कर्त्तव्यन्तु सुशोभनम ॥ १७ ॥
गोपदन्तु यथा मग्नमल्पपङ्के तथा भवेत् । उपलिप्य लिखेद्रेखामङ्गुलां वज्रनासिकाम्[३] ॥ १८ ॥
सौम्याग्रा प्रथमा तस्यां रेखे पूर्वमुखे तयोः । मध्ये तिस्रस्तथा कुर्य्याद्दक्षिणादिक्रमेण तु ॥
एवमुल्लिख्य चाभ्युद्य प्रणवेन तु मन्त्रवित् । विष्टरं कल्पयेत्तेन तस्मिन् शक्तिन्तु वैष्णवीम् ॥
अलं कृत्वा मूर्तिमतीं क्षिपेदग्निं हरिं स्मरन् । प्रादेशमात्राः समिधो दत्त्वा परिसमुह्य तम् ॥
दर्भैस्त्रिधा परिस्तीर्य पूर्वादौ तत्र पात्रकम् । आसादयेदिध्मवर्ही भूमौ च श्रुक्स्रुवद्वयम् ॥
आज्यस्थाली चरुस्थाली कुशाज्यञ्च प्रणीतया । प्रोक्षयित्वा प्रोक्षणीञ्च गृहीत्वापूर्य्य वारिणा ॥
पवित्रान्तर्हिते हस्ते परिश्राव्य च तज्जलम् । प्राङ्नीत्वा प्रोक्षणीपात्रं ज्योतिरग्रे निधाय च ॥ २४ ॥
तदद्भिस्त्रिश्च सम्प्रोक्ष्य इध्मं विन्यस्य चाग्रतः ।
प्रणीतायां सपुष्पायां विष्णुं ध्यात्वोत्तरेण च ॥ २५ ॥
आज्यस्थालीमथाज्येन सम्पूर्य्याग्रे निधाय च ।
सम्प्लवोत्पवनाभ्यान्तु कुर्य्यादाज्यस्य संस्कृतिम् ॥ २६ ॥
अखण्डिताग्रौ निर्गर्भौ कुशौ प्रादेशमात्रकौ । ताभ्यामुत्तानपाणिभ्यामङ्गुष्ठानामिकेन तु ॥ २७ ॥
आज्यं तयोस्तु सङ्गृह्य द्विर्नीत्वा त्रिरवाङ्क्षिपेत्[४] ।
स्रुक्स्रुवौ चापि सङ्गृह्य ताभ्यां प्रक्षिप्य वारिणा ॥ २८ ॥
प्रतप्य दर्भैः सम्मृज्य पुनः प्रक्ष्याल्य चैव हि । निष्टप्य स्थापयित्वा[५] तु प्रणवेनैव साधकः ॥ २९ ॥
प्रणवादिनमोन्तेन पश्चाद्धोमं समाचरेत् । गर्भाधानादिकर्म्माणि यावदंशव्यवस्थया । ॥ ३० ॥
नामान्तं व्रतबन्धान्तं समावर्त्तावसानकम् । अधिकारावसानं वा कुर्य्याद‌ङ्गानुसारतः ॥ ३१ ॥
प्रणवेनोपचारन्तु कुर्यात्सर्वत्र साधकः । अङ्गैर्होमस्तु कर्त्तव्यो यथावित्तानुसारतः ॥ ३२ ॥
गर्भाधानन्तु प्रथमं ततः पुंसवनं स्मृतम् । सीमन्तोन्नयनं जातकर्म्म नामान्नप्राशनम् ॥ ३३ ॥
चूडाकृतिं व्रतबन्धं वेदव्रतान्यशेषतः[६] । समावर्त्तनं पत्न्या च योगश्चाथाधिकारकः[७] ॥ ३४ ॥
हृदादिक्रमतो ध्यात्वा एकैकं कर्म्म पूज्य च । अष्टावष्टौ तु जुहुयात् प्रतिकर्म्माहुतीः पुनः ॥ ३५ ॥

---

१. कुण्डकेन समन्वितमिति ख. ।
२. कण्टकं द्व्यङ्गुलमिति ख. । चन्द्राभं द्व्यङ्गुलमिति ङ. ।
३. रुद्रनाषिकामिति ख. वक्त्रनासिकामिति ङ. ।
४. आद्यं तयोस्तु सम्पूज्य त्रीन् वारानूर्द्ध्वमुतत्क्षिपेदिति ङ. । ५. नियुज्य स्थापयित्वेति ख. ।
६. देवाव्रतान्यशेषत इति ख. । ७. योगश्चाथाधिकारत इति ख. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पूर्णाहुतिं ततो दद्यात् स्रुचा मूलेन साधकः। वौषडन्तेन मन्त्रेण प्लुतं सुस्वरमुच्चरन् ॥३६॥
विष्णोर्वह्निन्तु संस्कृत्य श्रपयेद्वैष्णवञ्चरुम्।
आराध्य स्थण्डिले विष्णुं मन्त्रान् संस्मृत्य संश्रपेत्[1] ॥ ३७ ॥
आसनादिक्रमेणैव साङ्गावरणमुत्तमम्। गन्धपुष्पैः समभ्यर्च्य ध्यात्वा देवं सुरोत्तमम् ॥३८॥
आधायेध्ममथाघारावाज्यावग्नीशसंस्थितौ। वायव्यनैर्ऋतांशादि प्रवृत्तौ तु यथाक्रमम् ॥३९॥
आज्यभागौ ततो हुत्वा चक्षुषी दक्षिणोत्तरे। मध्येथ जुहुयात्सर्वमन्त्रानर्च्चाक्रमेण तु ॥४०॥
आज्येन तर्पयेन्मूर्त्तेर्दशांशेनाङ्गहोमकम्। शतं सहस्रं वाज्याद्यैः समिद्भिर्वा तिलैः सह[2] ॥
समाप्यार्चान्तु होमान्तां शुचीन् शिष्यानुपोषितान्।
आहूयाग्रे निवेश्याथ ह्यस्त्रेण प्रोक्षयेत् पशून् ॥ ४२ ॥
शिष्यानात्मनि संयोज्य अविद्याकर्म्मबन्धनैः। लिङ्गानुवृत्तञ्चैतन्यं सह लिङ्गेन पाशितम्[3] ॥
ध्यानमार्गेण सम्प्रोद्य वायुबीजेन शोधयेत्। ततो दहनबीजेन सृष्टिं ब्रह्माण्डसञ्ज्ञिकाम् ॥४४॥
निर्दग्धां सकलां ध्यायेद्भस्मकूटनिभस्थिताम्। प्लावयेद्वारिणा भस्म संसारं वाग्मयं स्मरेत्[4] ॥
तत्र शक्तिं न्यसेत् पश्चात् पार्थिवीं बीजसञ्ज्ञिकाम्।
तन्मात्राभिः समस्ताभिः संवृतं पार्थिवं शुभम् ॥ ४६ ॥
अण्डन्तदुद्भवन्ध्यायेत्तदाधारन्तदात्मकम्। तन्मध्ये चिन्तयेन्मूर्त्तिं पौरुषीं प्रणवात्मिकाम् ॥
लिङ्गं सङ्क्रामयेत् पश्चादात्मस्थं पूर्वसंस्कृतम्[5]। विभक्तेन्द्रियसंस्थानं क्रमाद् वृद्धं विचिन्तयेत् ॥
ततोण्डमब्दमेकं तु स्थित्वा द्विशकलीकृतम्। द्यावापृथिव्यौ शकले तयोर्म्मध्ये प्रजापतिम् ॥
जातं ध्यात्वा पुनः प्रोद्य प्रणवेन तु संश्रितम्। मन्त्रात्मकतनुं कृत्वा यथान्यासं पुरोदितम ॥
विष्णुर्हस्तं ततो मूद्र्ध्नि दत्त्वा ध्यात्वा तु वैष्णवम्। एवमेकं बहून् वापि जनित्वा ध्यानयोगतः ॥
करौ सङ्गृह्य मूलेन नेत्रे बद्ध्वा तु वाससा। नेत्रमन्त्रेण मन्त्री तान् सदनेनाहतेन तु ॥५२॥
कृतपूजो गुरुः सम्यग् देवदेवस्य तत्त्ववान्। शिष्यान् पुष्पाञ्जलिभृतः प्राङ्मुखानुपवेशयेत् ॥
अर्च्चयेयुश्च तेप्येवम्प्रसूता गुरुणा हरिम्। क्षिप्त्वा पुष्पाञ्जलिं तत्र पुष्पादिभिरनन्तरम् ॥५४॥
अमन्त्रमर्च्चनं कृत्वा[6] गुरोः पादार्च्चनन्ततः। विधाय दक्षिणां दद्यात् सर्वस्वं चार्द्धमेव वा ॥
गुरुः संशिक्षयेच्छिष्यान् तैः पूज्यो नामभिर्हरिः। विष्वक्सेनं यजेदीशं शङ्खचक्रगदाधरम् ॥५६॥
तज्जपन्तञ्च तर्ज्जन्या मण्डलस्थं विसर्जयेत् ॥ ५७ ॥
विष्णुनिर्म्माल्यमखिलं विष्वक्सेनाय चार्पयेत्। प्रणीताभिस्तथात्मानमभिषिच्य च कुण्डगम् ॥
वह्निमात्मनि संयोज्य विष्वक्सेनं विसर्जयेत्। बुभुक्षुः सर्वमाप्नोति मुमुक्षुर्लीयते हरौ ॥५९॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये अग्निकार्य्यादिकथनं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः।

---

१. मन्त्रान् सन्तर्प्य संश्रपेत् इति ख. घ.।
२. समिद्भिर्वा तिलैस्तथा इति घ.।
३. सह लिङ्गेन दर्शितमिति ङ.।
४. संसारञ्चाक्षयं स्मरेदिति ख.।
५. स्थण्डिले पूर्वसंस्कृतमिति ख.।
६. वासुदेवार्च्चनं कृत्वा इति ख.।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तिर्य्यगूद्र्ध्वं समं खाताद्बहिरर्द्धन्तु शोधयेत्। अङ्गुलस्य चतुर्थांशं शेषार्द्धार्द्धं तथान्ततः॥१२॥
खातस्य मेखलां रम्यां शेषार्द्धेन तु कारयेत्। कण्ठं त्रिभागविस्तारं अङ्गुष्ठकसमायतम्॥१३॥
सार्द्धमङ्गुष्ठकं वा स्यात्तदग्रे तु मुखं भवेत्। चतुरङ्गुलविस्तारं पञ्चाङ्गुलमथापि वा ॥१४॥
त्रिकं द्व्यङ्गुलकं तत स्यान्मध्यन्तस्य सुशोभनम्।
आयामस्तत्समस्तस्य मध्यनिम्नः सुशोभनः॥ १५ ॥
शुषिरं कण्ठदेशे स्याद्विशेद् यावत कनीयसी। शेषकुण्डन्तु कर्त्तव्यं यथारुचि विचित्रितम्॥
स्रुवन्तु हस्तमात्रं स्याद्दण्डकेन समन्वितम्[१]। वटुकं द्व्यङ्गुलं[२] वृत्तं कर्त्तव्यन्तु सुशोभनम॥१७॥
गोपदन्तु यथा मग्नमल्पपङ्के तथा भवेत्। उपलिप्य लिखेद्रेखामङ्गुलां वज्रनासिकाम्[३]॥१८॥
सौम्याग्रा प्रथमा तस्यां रेखे पूर्वमुखे तयोः। मध्ये तिस्रस्तथा कुर्य्याद्दक्षिणादिक्रमेण तु ॥
एवमुल्लिख्य चाभ्युद्य प्रणवेन तु मन्त्रवित्। विष्टरं कल्पयेत्तेन तस्मिन् शक्तिन्तु वैष्णवीम्॥
अलं कृत्वा मूर्तिमतीं क्षिपेदग्निं हरिं स्मरन्। प्रादेशमात्राः समिधो दत्त्वा परिसमुह्य तम्॥
दर्भैस्त्रिधा परिस्तीर्य पूर्वादौ तत्र पात्रकम्। आसादयेदिध्मब्रही भूमौ च श्रुक्श्रुवद्वयम्॥
आज्यस्थाली चरुस्थाली कुशाज्यञ्च प्रणीतया। प्रोक्षयित्वा प्रोक्षणीञ्च गृहीत्वापूर्य्य वारिणा॥
पवित्रान्तर्हिते हस्ते परिश्राव्य च तज्जलम्। प्राङ्नीत्वा प्रोक्षणीपात्रं ज्योतिरग्रे निधाय च॥२४॥
तदद्भिस्त्रिश्च सम्प्रोक्ष्य इध्मं विन्यस्य चाग्रतः।
प्रणीतायां सपुष्पायां विष्णुं ध्यात्वोत्तरेण च॥ २५॥
आज्यस्थालीमथाज्येन सम्पूर्याग्रे निधाय च।
सम्प्लवोत्पवनाभ्यान्तु कुर्य्यादाज्यस्य संस्कृतिम्॥ २६॥
अखण्डिताग्रौ निर्गर्भौ कुशौ प्रादेशमात्रकौ। ताभ्यामुत्तानपाणिभ्यामङ्गुष्ठानामिकेन तु॥२७॥
आज्यं तयोस्तु सङ्गृह्य द्विर्नीत्वा त्रिरवाङ्क्षिपेत्[४]।
स्रुक्स्रुवौ चापि सङ्गृह्य ताभ्यां प्रक्षिप्य वारिणा॥ २८॥
प्रतप्य दर्भैः सम्मृज्य पुनः प्रक्ष्याल्य चैव हि। निष्टप्य स्थापयित्वा[५] तु प्रणवेनैव साधकः॥२९॥
प्रणवादिनमोन्तेन पश्चाद्धोमं समाचरेत्। गर्भाधानादिकर्म्माणि यावदंशव्यवस्थया॥३०॥
नामान्तं व्रतबन्धान्तं समावर्त्तावसानकम्। अधिकारावसानं वा कुर्य्यादङ्गानुसारतः॥३१॥
प्रणवेनोपचारन्तु कुर्यात्सर्वत्र साधकः। अङ्गैर्होमस्तु कर्त्तव्यो यथावित्तानुसारतः॥३२॥
गर्भाधानन्तु प्रथमं ततः पुंसवनं स्मृतम्। सीमन्तोन्नयनं जातकर्म्म नामान्नप्राशनम्॥३३॥
चूडाकृतिं व्रतबन्धं वेदव्रतान्यशेषतः[६]। समावर्त्तनं पत्न्या च योगश्चाथाधिकारकः[७]॥३४॥
हृदादिक्रमतो ध्यात्वा एकैकं कर्म्म पूज्य च। अष्टावष्टौ तु जुहुयात् प्रतिकर्म्माहुतीः पुनः॥३५॥

---

१. कुण्डकेन समन्वितमिति ख.।
२. कण्टकं द्व्यङ्गुलमिति ख.। चन्द्राभं द्व्यङ्गुलमिति ङ.।
३. रुद्रनाषिकामिति ख. वक्त्रनासिकामिति ङ.।
४. आद्यं तयोस्तु सम्पूज्य त्रीन् वारानूर्द्ध्वमुतत्क्षिपेदिति ङ.। ५. नियुज्य स्थापयित्वेति ख.।
६. देवाव्रतान्यशेषत इति ख.। ७. योगश्चाथाधिकारत इति ख.।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पूर्णाहुतिं ततो दद्यात् स्रुचा मूलेन साधकः। वौषडन्तेन मन्त्रेण प्लुतं सुस्वरमुच्चरन् ॥३६॥
विष्णोर्वह्निन्तु संस्कृत्य श्रपयेद्वैष्णवञ्चरुम् ।
आराध्य स्थण्डिले विष्णुं मन्त्रान् संस्मृत्य संश्रपेत्[1] ॥ ३७ ॥
आसनादिक्रमेणैव साङ्गावरणमुत्तमम् । गन्धपुष्पैः समभ्यर्च्य ध्यात्वा देवं सुरोत्तमम् ॥३८॥
आधायेध्ममथाघारावाज्यावग्नीशसंस्थितौ । वायव्यनैर्ऋताशादिप्रवृत्तौ तु यथाक्रमम् ॥३९॥
आज्यभागौ ततो हुत्वा चक्षुषी दक्षिणोत्तरे । मध्येथ जुहुयात्सर्वमन्त्रानर्च्चाक्रमेण तु ॥४०॥
आज्येन तर्पयेन्मूर्त्तेर्दशांशेनाङ्गहोमकम् । शतं सहस्रं वाज्याद्यैः समिद्भिर्वा तिलैः सह[2] ॥
समाप्यार्चान्तु होमान्तां शुचीन् शिष्यानुपोषितान् ।
आहूयाग्रे निवेश्याथ ह्यस्त्रेण प्रोक्षयेत् पशून् ॥ ४२ ॥
शिष्यानात्मनि संयोज्य अविद्याकर्म्मबन्धनैः । लिङ्गानुवृत्तञ्चैतन्यं सह लिङ्गेन पाशितम्[3] ॥
ध्यानमार्गेण सम्प्रोद्य वायुबीजेन शोधयेत्। ततो दहनबीजेन सृष्टिं ब्रह्माण्डसञ्ज्ञिकाम्॥४४॥
निर्द्दग्धां सकलां ध्यायेद्भस्मकूटनिभस्थिताम् । प्लावयेद्वारिणा भस्म संसारं वाम्मयं स्मरेत्[4] ॥
तत्र शक्तिं न्यसेत् पश्चात् पार्थिवीं बीजसञ्ज्ञिकाम् ।
तन्मात्राभिः समस्ताभिः संवृतं पार्थिवं शुभम् ॥ ४६ ॥
अण्डन्तदुद्भवन्ध्यायेत्तदाधारन्तदात्मकम् । तन्मध्ये चिन्तयेन्मूर्त्तिं पौरुषीं प्रणवात्मिकाम् ॥
लिङ्गं सङ्क्रामयेत् पश्चादात्मस्थं पूर्वसंस्कृतम्[5]। विभक्तेन्द्रियसंस्थानं क्रमाद् वृद्धं विचिन्तयेत् ॥
ततोण्डमब्दमेकं तु स्थित्वा द्विशकलीकृतम् । द्यावापृथिव्यौ शकले तयोर्म्मध्ये प्रजापतिम् ॥
जातं ध्यात्वा पुनः प्रोद्य प्रणवेन तु संश्रितम् । मन्त्रात्मकतनुं कृत्वा यथान्यासं पुरोदितम ॥
विष्णुर्हस्तं ततो मूर्द्ध्नि दत्त्वा ध्यात्वा तु वैष्णवम् । एवमेकं बहून् वापि जनित्वा ध्यानयोगतः॥
करौ सङ्गृह्य मूलेन नेत्रे बद्ध्वा तु वाससा । नेत्रमन्त्रेण मन्त्री तान् सदनेनाहतेन तु ॥५२॥
कृतपूजो गुरुः सम्यग् देवदेवस्य तत्त्ववान् । शिष्यान् पुष्पाञ्जलिभृतः प्राङ्मुखानुपवेशयेत् ॥
अर्च्चयेयुश्च तेप्येवम्प्रसूता गुरुणा हरिम् । क्षिप्त्वा पुष्पाञ्जलिं तत्र पुष्पादिभिरनन्तरम् ॥५४॥
अमन्त्रमर्च्चनं कृत्वा[6] गुरोः पादार्च्चनन्ततः । विधाय दक्षिणां दद्यात् सर्वस्वं चार्द्धमेव वा ॥
गुरुः संशिक्षयेच्छिष्यान् तैः पूज्यो नामभिर्हरिः। विष्वक्सेनं यजेदीशं शङ्खचक्रगदाधरम् ॥५६॥
तज्जपन्तञ्च तर्ज्जन्या मण्डलस्थं विसर्जयेत् ॥ ५७ ॥
विष्णुनिर्म्माल्यमखिलं विष्वक्सेनाय चार्पयेत्। प्रणीताभिस्तथात्मानमभिषिच्य च कुण्डगम्॥
वह्निमात्मनि संयोज्य विष्वक्सेनं विसर्जयेत् । बुभुक्षुः सर्वमाप्नोति मुमुक्षुर्लीयते हरौ ॥५९॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये अग्निकार्य्यादिकथनं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ।

---

१. मन्त्रान् सन्तर्प्य संश्रपेत् इति ख. घ. ।
२. समिद्भिर्वा तिलैस्तथा इति घ. ।
३. सह लिङ्गेन दर्शितमिति ङ. ।
४. संसारञ्चाक्षयं स्मरेदिति ख. ।
५. स्थण्डिले पूर्वसंस्कृतमिति ख. ।
६. वासुदेवार्च्चनं कृत्वा इति ख. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पञ्चविंशोऽध्यायः

वासुदेवादिमन्त्रनिरूपणम् ।

नारद उवाच

वासुदेवादिमन्त्राणां पूज्यानां लक्षणं वदे । वासुदेवः सङ्कर्षणः प्रद्युम्नश्चानिरुद्धकः ॥१॥
नमो भगवते चादौ अ आ अं अः स्वबीजकाः[१] ।
ओङ्कारााद्या नमोन्ताश्च नमो नारायणस्ततः ॥ २ ॥
ओं तत् सद् ब्रह्मणे चैव ओं नमो विष्णवे नमः ।
ओं क्षौं ओं नमो भगवते नरसिंहाय वै नमः ॥ ३ ॥
ओं भूर्नमो भगवते वराहाय नराधिपाः । जवारुणहरिद्राभा नीलश्यामललोहिताः ॥४॥
मेघाग्निमधुपिङ्गाभा वल्लभा नव नायकाः । अङ्गानि स्वरबीजानां स्वनामान्तैर्यथाक्रमम् ॥५॥
हृदयादीनि कल्पेत विभक्तैस्तन्त्रवेदिभिः । व्यञ्जनादीनि बीजानि तेषां लक्षणमन्यथा ॥६॥
दीर्घस्वरैस्तु भिन्नानि नमोन्तान्तस्थितानि तु । अङ्गानि ह्रस्वयुक्तानि उपाङ्गानीति वर्ण्यते ॥
विभक्तनामवर्णान्तस्थितानि बीजमुत्तमम्[२]। दीर्घैर्ह्रस्वैश्च संयुक्तं साङ्गोपाङ्गंस्वरैः क्रमात्[३]॥८॥
व्यञ्जनानां क्रमो ह्येष हृदयादिप्रकॢप्तये । स्वबीजेन स्वनामान्तैर्विभक्तान्यङ्गनाभिः[४] ॥९॥
युक्तानि हृदयादीनि द्वादशान्तादि पञ्चतः[५] । आरभ्य कल्पयित्वा तु जपेत् सिद्ध्यनुरूपतः ॥
हृदयञ्च शिरश्चूडा कवचं नेत्रमस्तकम् । षडङ्गानि तु बीजानां मूलस्य द्वादशाङ्गकम् ॥११॥
हृच्छिरश्च शिखा वर्म्म चास्त्रनेत्रन्तथोदरम् । पृष्ठबाहूरुजानूंश्च जङ्घा पादौ क्रमान्न्यसेत् ॥१२॥
कं टं पं शं वैनतेयः खं ठं फं षं गदामनुः[६] ।
गं डं बं सं पुष्टिमन्त्रो घं ढं भं हं श्रियै नमः ॥ १३ ॥
वं शं मं क्षं[७] पाञ्चजन्यं छं तं पं[८] कौस्तुभाय च ।
जं खं वं सुदर्शनाय श्रीवत्साय सं वं दं चं लं[९] ॥ १४ ॥
ओं धं वं वनमालायै महानन्ताय वै नमः[१०] । निर्बीजपदमन्त्राणां पदैरङ्गानि कल्पयेत् ॥१५॥
जात्यन्तैर्नामसंयुक्तैर्हृदयादीनि पञ्चधा । प्रणवं हृदयादीनि ततः प्रोक्तानि पञ्चधा ॥१६॥
प्रणवं हृदयं पूर्वं परायेति शिरः शिखा । नाम्नात्मना तु[११] कवचं अस्त्रं नामान्तकं भवेत् ॥१७॥

---

१. द्वादशाक्षरबीजका इति ख. ।
२. स्थितबीजार्थमुत्तममिति ख. ।
३. दीर्घस्वरैश्च संयुक्तमङ्गोपाङ्गं स्वरैः क्रमादिति ख. ।
४. स्वरबीजेषु नामान्तैर्विभक्तान्यङ्गनामभिरिति ङ. ।
५. द्वादशार्णानि यत्नत इति ङ. ।
६. महागदा इति ङ. ।
७. ठं णं मं क्षं इति ङ. ।
८. दं भं पमिति ख. ।
९. श्रीवत्साय च पञ्चममिति ङ. श्रीवत्सो वं चं दं ठं लं इति ग. ।
१०. नमोनन्ताय वै नम इति ङ. ।
११. नाम्नामुना तु इति ख. ङ. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ओं परात्मादिस्वनामात्मा[१] चतुर्थ्यन्तो नमोन्तकः ।
एकव्यूहादिषड्विंशव्यूहात्तस्यात्मनो मनुः[२] ॥ १८ ॥
कनिष्ठादिकराग्रेषु प्रकृतिं देहकेऽर्चयेत् । पराय पुरुषात्मा स्यात् प्रकृत्यात्मा द्विरूपकः ॥१९॥
ओं परायाग्न्यात्मने चैव वाय्वर्कौ च द्विरूपकः ।
अग्निं त्रिमूर्त्तौ[३] विन्यस्य व्यापकं करदेहयोः ॥ २० ॥
वाय्वर्कौ करशाखासु सव्येतरकरद्वये । हृदि मूर्त्तौ तनावेव त्रिव्यूहे तुर्य्यरूपके ॥२१॥
ऋग्वेदं व्यापकं हस्ते अङ्गुलीषु यजुर्न्यसेत् । तलद्वयेऽथर्वरूपं शिरोहृच्चरणान्तकः ॥२२॥
आकाशं व्यापकं न्यस्य करे देहे तु पूर्ववत् । अङ्गुलीषु च वाय्वादि शिरोहृद्गुह्यपादके ॥
वायुर्ज्योतिर्जलं पृथ्वी पञ्चव्यूहः समीरितः । मनः श्रोत्रन्त्वग्दृग्जिह्वा घ्राणं षड्व्यूह ईरितः ॥
व्यापकं मानसं न्यस्य ततोऽङ्गुष्ठादितः क्रमात् । मूर्द्धास्यहृद्गुह्यपत्सु कथितः करुणात्मकः ॥
आदिमूर्त्तिस्तु सर्वत्र व्यापको जीवसञ्ज्ञितः । भूर्भुवः स्वर्म्महर्ज्जनस्तपः सत्यञ्च सप्तधा ॥
करे देहे न्यसेदाद्यमङ्गुष्ठादिक्रमेण तु । तलसंस्थः सप्तमश्च[४] लोकेशो देहके क्रमात् ॥२७॥
देहे शिरोललाटास्यहृद्गुह्याङ्घ्रिषु संस्थितः । अग्निष्टोमस्तथोक्थस्तु षोडशी वाजपेयकः ॥२८॥
अतिरात्राप्तोर्यामञ्च[५] यज्ञात्मा सप्तरूपकः । धीरहं मनः शब्दश्च स्पर्शरूपरसास्ततः[६] ॥२९॥
गन्धो बुद्धिर्व्यापकं तु करे देहे न्यसेत् क्रमात् ।
न्यसेदन्त्यौ च[७] तलयोः के ललाटे मुखे हृदि ॥ ३० ॥
नाभौ गुह्ये च पादे च अष्टव्यूहः पुमान् स्मृतः[८] । जीवो बुद्धिरहङ्कारो मनः शब्दो गुणोऽनिलः ॥
रूपं रसो नवात्मायं जीव अङ्गुष्ठकद्वये । तर्जन्यादिक्रमाच्छेषं यावद्वामप्रदेशिनीम् ॥३२॥
देहे शिरोललाटास्यहृन्नाभिगुह्यजानुषु । पादयोश्च दशात्मायं इन्द्रो व्यापी समास्थितः ॥३३॥
अङ्गुष्ठकद्वये वह्निस्तर्जन्यादौ परेषु च । शिरोललाटवक्त्रेषु हृन्नाभिगुह्यजानुषु ॥३४॥
पादयोरेकादशात्मा मनः श्रोत्रं त्वगेव च । चक्षुर्जिह्वा तथा घ्राणं वाक्पाण्यङ्घ्रिश्च पायुकः ॥
उपस्थं मानसो व्यापी श्रोत्रमङ्गुष्ठकद्वये । तर्जन्यादिक्रमादष्टौ अतिरिक्तं तलद्वये ॥३६॥
उत्तमाङ्गललाटास्यहृन्नाभावथ गुह्यके । ऊरुयुग्मे तथा जङ्घे गुल्फपादेषु च क्रमात् ॥३७॥
विष्णुर्म्मधुहरश्चैव त्रिविक्रमकवामनौ । श्रीधरोऽथ हृषीकेशः पद्मनाभस्तथैव च ॥३८॥
दामोदरः केशवश्च नारायणस्ततः परः । माधवश्चाथ गोविन्दो विष्णुं वै व्यापकं न्यसेत् ॥३९॥
अङ्गुष्ठादौ तले द्वौ च पादे जानुनि वै कटौ । शिरःशिखरकट्याञ्च जानुपादादिषु न्यसेत् ॥
द्वादशात्मा पञ्चविंशः षड्विंशव्यूहकस्तथा । पुरुषो धीरहङ्कारो मनश्चित्तञ्च शब्दकः ॥४१॥

---

१. ओं परात्मादित्यनामात्मा इति घ. ।
२. एवं व्यूहादिषड्विंशं व्यूहात्तस्यात्मनो मनुरिति ख. ।
३. अग्निं द्विमूर्त्तौ इति ख. ।
४. तलस्थः सप्तमश्चैव इति ङ. ।
५. अतिरात्रातयामश्च इति ख. ।
६. रसास्तथा इति ख. ।
७. न्यसेदन्ते च इति ख. न्यसेदष्टौ च इति ङ. ।
८. क्रमात् स्मृत इति ङ. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तथा स्पर्शो रसो रूपं गन्धः श्रोत्रं त्वचस्तथा।
चक्षुर्जिह्वा नासिका च वाक्पाण्यङ्घ्रिश्च पायवः ॥ ४२ ॥
उपस्थो भूर्जलन्तेजो वायुराकाशमेव च। पुरुषं व्यापकं न्यस्य अङ्गुष्ठादौ दश न्यसेत् ॥४३॥
शेषान् हस्ततले न्यस्य शिरस्यथ ललाटके। मुखहृन्नाभिगुह्योरुजान्वङ्घ्रौ करणोद्गतौ॥४४॥
पादे जान्वोरुपस्थे च हृदये मूर्द्धिन च क्रमात्। परश्च पुरुषात्मादौ पड्विंशे पूर्ववत्परम् ॥
सञ्चिन्त्य मण्डलैके तु प्रकृतिं पूजयेद्बुधः। पूर्वयाम्याप्यसौम्येषु हृदयादीनि पूजयेत् ॥४६॥
अस्त्रमग्न्यादिकोणेषु[१] वैनतेयादि पूर्ववत्।
दिक्पालांश्च विधिस्त्वन्यः[२] त्रिव्यूहेग्निश्च मध्यतः ॥ ४७ ॥
पूर्वादिदिग्बलावासोराज्यादिभिरलङ्कृतः। कर्णिकायां नाभसश्च मानसः कर्णिकास्थितः॥४८॥
विश्वरूपं सर्वसिद्ध्यै[३] यजेद्राज्यजयाय च। सर्वव्यूहैः समायुक्तमङ्गैरपि च पञ्चभिः ॥४९॥
गरुडाद्यैस्तथेन्द्राद्यैः सर्वान् कामानवाप्नुयात्। विष्वक्सेनं यजेन्नाम्ना वै बीजं व्योमसंस्थितम्[४]॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये मन्त्रप्रदर्शनं नाम पञ्चविंशोऽध्यायः।

षड्विंशोऽध्यायः

मुद्रालक्षणकथनम्।

नारद उवाच

मुद्राणां लक्षणं वक्ष्ये सान्निध्यादिप्रकारकम्। अञ्जलिः प्रथमा मुद्रा वन्दनी हृदयानुगा॥ १॥
ऊर्द्ध्वाङ्गुष्ठो वाममुष्टिर्दक्षिणाङ्गुष्ठबन्धनम्। सव्यस्य तस्य चाङ्गुष्ठो यस्य चोर्द्ध्वे प्रकीर्त्तितः[५]।
तिस्रः साधरणा व्यूहे अथासाधारणा इमाः। कनिष्ठादिविमोकेन अष्टौ मुद्रा यथाक्रमम् ॥
अष्टानां पूर्व्वबीजानां क्रमशस्त्ववधारयेत्। अङ्गुष्ठेन कनिष्ठान्तं नामयित्वाङ्गुलित्रयम् ॥४॥
ऊर्द्ध्वं कृत्वा सम्मुखञ्च बीजाय नवमाय वै। वामहस्तमथोत्तानं कृत्वार्द्धं नामयेच्छनैः ॥५॥
वराहस्य स्मृता मुद्रा अङ्गानाञ्च क्रमादिमाः।
एकैकां मोचयेद् बद्ध्वा वाममुष्टौ तथाङ्गुलीम् ॥ ६ ॥
आकुञ्चयेत् पूर्वमुद्रां दक्षिणेप्येवमेव च। ऊर्द्ध्वाङ्गुष्ठो वाममुष्टिर्मुद्रासिद्धिस्ततो भवेत्॥७॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये मुद्राप्रदर्शनं नाम षड्विंशोऽध्यायः।

---

१. अस्त्रमग्न्यादिपत्रेषु इति ख. ङ.।
२. दिक्पालांश्च विधिस्तस्य इति ग. घ.। दिक्पालादौ विधिस्तुल्य इति ङ.।
३. सर्वसिद्ध्यै इति ख. ङ.। ४. वैराजं नागसंयुतमिति ख.। यौ बीजं चाङ्गसंयुतमिति ङ.।
५. यः सव्येद्ध प्रकीर्तित इति ख.।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सप्तविंशोऽध्यायः

दीक्षाविधिकथनम् ।

नारद उवाच

वक्ष्ये दीक्षां सर्वदाञ्च मण्डलेऽब्जे हरिं यजेत् । दशम्यामुपसंहृत्य यागद्रव्यं समस्तकम् ॥१॥
विन्यस्य नारसिंहेन सम्मन्त्र्य शतवारकम् ।
सर्षपांस्तु फडन्तेन[1] रक्षोघ्नान् सर्व्वतः क्षिपेत् ॥ २ ॥
शक्तिं सर्वात्मिकां तत्र न्यसेत् प्रासादरूपिणीम् ।
सर्व्वौषधिं समाहृत्य विकिरानभिमन्त्रयेत् ॥ ३ ॥
शतवारं शुभे पात्रे वासुदेवेन साधकः । संसाध्य पञ्चगव्यन्तु पञ्चभिर्मूलमूर्तिभिः ॥४॥
नारायणान्तैः सम्प्रोक्ष्य कुशाग्रैस्तेन तां भुवम्[2] । विकिरान्वासुदेवेन क्षिपेदुत्तानपाणिना ॥५॥
त्रिधा पूर्वमुखस्तिष्ठन् ध्यायेत् विष्णुं तथा हृदि ।
वर्द्धन्या सहिते कुम्भे साङ्गं विष्णुं प्रपूजयेत् ॥ ६ ॥
शतवारं मन्त्रयित्वा त्वस्त्रेणैव च वर्द्धनीम् ।
अच्छिन्नधारया सिञ्चन् ईशानान्तं नयेच्च तम् ॥ ७ ॥
कलसं पृष्ठतो नीत्वा स्थापयेद्विकिरोपरि । संहृत्य विकिरान् दर्भैः कुम्भेशं कर्क्वरीं यजेत् ॥
सवस्त्रं पञ्चरत्नाढ्यं स्थण्डिले पूजयेद्धरिम् । अग्नावपि समभ्यर्च्चर्य मन्त्रान् सञ्जप्य पूर्ववत् ॥
प्रक्षाल्य पुण्डरीकेण विलिप्यान्तः सुगन्धिना । उखामाज्येन[3] सम्पूर्य्य गोक्षीरेण तु साधकः ॥
आलोक्य वासुदेवेन[4] ततः सङ्कर्षणेन च । तण्डुलानाज्यसंसृष्टान् क्षिपेत् क्षीरे सुसंस्कृते ॥११॥
प्रद्युम्नेन समालोडय दर्व्या सङ्घट्टयेच्छनैः । पक्वमुत्तारयेत् पश्चादनिरुद्धेन देशिकः ॥१२॥
प्रदद्याल्यालिप्य तत् कुर्य्यादूर्ध्वपुण्ड्रं तु भस्मना । नारायणेन पार्श्वेषु चरुमेवं सुसंस्कृतम् १३॥
भागमेकं तु देवाय कलशाय द्वितीयकम् । तृतीयेन तु भागेन प्रदद्यादाहुतित्रयम् ॥१४॥
शिष्यैः सह चतुर्थं तु गुरुरद्याद्विशुद्धये[5] । नारायणेन सम्मन्त्र्य सप्तधा क्षीरवृक्षजम् ॥१५॥
दन्तकाष्ठं भक्षयित्वा त्यक्त्वा ज्ञात्वा स्वपातकम् । ऐन्द्राग्न्युत्तरकेशानीमुखं पतितमुत्तमम् १६॥
शुभं सिंहशतं हुत्वा[6] आचम्याथ प्रविश्य च ।
पूजागारं न्यसेन्मन्त्री प्राच्यां विष्णुं प्रदक्षिणम् ॥ १७ ॥
संसारार्णवमग्नानां पशूनां पाशमुक्तये । त्वमेव शरणं देव सदा त्वं भक्तवत्सल ॥१८॥
देवदेवानुजानीहि प्राकृतैः पाशबन्धनैः । पाशितान्मोचयिष्यामि त्वत्प्रसादात् पशूनिमान् ॥
इति विज्ञाप्य देवेशं सम्प्रविश्य पशूंस्ततः । धारणाभिस्तु संशोध्य पूर्व्ववज्ज्वलनादिना ॥

---

१. सर्षपांस्तद्वदस्त्रेण इति ङ. ।
२. कुशाग्रेणैव तां भुवमिति ङ. ।
३. उत्थायाज्येनेति ख. ।
४. आलोडय वासुदेवेन इति ख. ।
५. विवृद्धये इति ङ. ।
६. शुभं सिद्धमिति ज्ञात्वा इति ङ. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

संस्कृत्य मूर्त्यां संयोज्य[१] नेत्रे बद्ध्वा प्रदर्शयेत् । पुष्पपूर्णाञ्जलींस्तत्र क्षिपेत्तन्नाम योजयेत् ॥
अमन्त्रमर्च्चनं तत्र पूर्व्ववत् कारयेत् क्रमात् । यस्यां मूर्त्तौ पतेत् पुष्पं तस्य तन्नाम निर्द्दिशेत ॥
शिखान्तसम्मितं सूत्रं पादाङ्गुष्ठादि षड्गुणम् । कन्यासु कर्त्तितं रक्तं[२] पुनस्तत्त्रिगुणीकृतम् ॥
यस्यां संलीयते विश्वं यतो विश्वं प्रसूयते । प्रकृतिं प्रक्रियाभेदैः संस्थितां तत्र चिन्तयेत ॥

तेन प्राकृतिकान् पाशान् ग्रथित्वा तत्त्वसङ्ख्यया[३] ।
कृत्वा शरावे तत् सूत्रं कुण्डपार्श्वे निधाय तु[४] ॥ २५ ॥
ततस्तत्त्वानि सर्व्वाणि ध्यात्वा शिष्यतनौ न्यसेत् ।
सृष्टिक्रमात् प्रकृत्यादिपृथिव्यन्तानि देशिकः ॥ २६ ॥

तत्रैकधा पञ्चधा स्याद्दशद्वादशधापि वा[५] । ज्ञातव्यः सर्व्वभेदेन ग्रथितस्तत्त्वचिन्तकैः ॥२७॥
अङ्गैः पञ्चभिरध्वानं निखिलं विकृतिक्रमात् । तन्मात्रात्मनि संहृत्य मायासूत्रे पशोस्तनौ[६] ॥
प्रकृतिर्लिङ्गशक्तिश्च कर्त्ता बुद्धिस्तथा मनः । पञ्चतन्मात्रबुद्ध्याख्यं कर्म्माख्यं भूतपञ्चकम् ॥
ध्यायेच्च द्वादशात्मानं सूत्रे देहे तथेच्छया । हुत्वा सम्पातविधिना सृष्टेः सृष्टिक्रमेण तु ॥३०॥
एकैकं शतहोमेन दत्त्वा पूर्णाहुतिं ततः । शरावे सम्पुटीकृत्य कुम्भेशाय निवेदयेत् ॥३१॥
अधिवास्य यथान्यायं भक्तं शिष्यं तु दीक्षयेत् । करणीं कर्त्तरीं वापि[७] रजांसि खटिकामपि ॥
अन्यदप्युपयोगि स्यात् सर्वं तद्वायुगोचरे । संस्थाप्य मूलमन्त्रेण परामृष्याधिवासयेत ॥
नमो भूतेभ्यश्च बलिः कुशे शेते स्मरन् हरिम् । मण्डपं भूषयित्वाथ वितानघटलड्डुकैः[८] ॥
मण्डलेथ यजेद्विष्णुं ततः सन्तर्प्य पावकम् । आहूय दीक्षयेच्छिष्यान् बद्धपद्मासनस्थितान् ॥
सम्प्रोक्ष्य विष्णुं हस्तेन मूर्द्धानं स्पृश्य वै क्रमात् । प्रकृत्यादिविकृत्यन्तां साधिभूताधिदैवताम् ॥
सृष्टिमाध्यात्मिकीं कृत्वा हृदि तां संहरेत् क्रमात । तन्मात्रभूतां सकलां जीवेन समतां गताम् ॥
ततः सम्प्रार्थ्य कुम्भेशं सूत्रं संहृत्य देशिकः । अग्नेः समीपमागत्य पार्श्वे तं सन्निवेश्य तु ॥
मूलमन्त्रेण सृष्टीशमाहुतीनां शतेन तम् । उदासीनमथासाद्य पूर्णाहुत्या च देशिकः ॥३९॥
शुक्लं रजः समादाय मूलेन शतमन्त्रितम् । सन्ताड्य हृदयन्तेन हुंफट्कारान्तसंयुतैः ॥४०॥
वियोगपदसंयुक्तैर्बीजैः पादादिभिः क्रमात् । पृथिव्यादीनि तत्त्वानि विश्लिष्य जुहुयात्ततः ॥
वह्नावखिलतत्त्वानामालये व्याहृते हरौ । नीयमानं क्रमात्सर्वं तत्राध्वानं स्मरेद् बुधः ॥४२॥
ताडनेन वियोज्यैवं[९] आदायापाद्य शाम्यताम् । प्रकृत्याहृत्य जुहुयाद्यथोक्ते जातवेदसि ॥४३॥

---

१. मूर्त्यां सम्प्रोक्ष्य इति ङ. ।
२. सूत्रमिति ङ. ।
३. तत्र सङ्ख्यया इति ख. ग. घ. ।
४. निधीयते इति घ. ङ. ।
५. तत्रार्चां पञ्चधा या स्यादङ्गैर्द्वादशधा पि वेति ख. । तत्रात्मा पञ्चधा वा स्यात् दशद्वादशधापि वेति घ. ङ. ।
६. मायासूत्रे सुशोभने इति ङ. ।
७. करालं कर्त्तरीञ्चापि इति ख. ग. ।
८. वितानभवगन्धकैरिति ख. । वितानपटकेन्द्रियैरिति ग. घ. ।
९. ताडनेन विमोह्यैवमिति ख. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

गर्भाधानं जातकर्म भोगञ्चैव लयन्तथा। हुत्वाष्टौ तत्र तत्रैव ततः शुद्धिन्तु होमयेत् ॥४४॥
शुद्धं तत्त्वं समुद्धृत्य पूर्णाहुत्या तु देशिकः। सन्नयेद्‌द्विपरे तत्वे यावदव्याहृतं क्रमात् ॥४५॥
तत् परं ज्ञानयोगेन विलाप्य परमात्मनि। विमुक्तबन्धनं जीवं परस्मिन्नव्यये पदे ॥४६॥
निवृत्तं परमानन्दे शुद्धे बुद्धे स्मरेद्‌बुधः। दद्यात् पूर्णाहुतिं पश्चादेवं दीक्षा समाप्यते ॥४७॥

प्रयोगमन्त्रान् वक्ष्यामि यैर्दीक्षा होमसंलयः।

ओं यं भूतानि विशुद्धं हुं फट् ॥ अनेन ताडनं कुर्याद्वियोजनमिह द्वयम् ॥ ४८ ॥
ओं यं भूतान्यापातयेहं। आदानं कृत्वा चानेन प्रकृत्या योजनं शृणु।
ओं यं भूतानि पुंश्चाहो। होममन्त्रं प्रवक्ष्यामि ततः पूर्णाहुतेर्मनुम् ॥ ४९ ॥
ओं भूतानि संहर स्वाहा। ओं अं ओं नमो भगवते वासुदेवाय वौषट्।
पूर्णाहुत्यनन्तरे तु तद्वै शिष्यन्तु साधयेत्[1]। एवं तत्त्वानि सर्वाणि क्रमात्संशोधयेद् बुधः ॥

नमोन्तेन खबीजेन ताडनादिपुरःसरम्।

ओं वां कर्म्मेन्द्रियाणि। ओं दें बुद्धीन्द्रियाणि।

यं बीजेन समानन्तु ताडनादिप्रयोगकम् ॥ ५१ ॥

ओं सुं गन्धतन्मात्रे वियुङ्क्ष्व हुंफट्। ओं सम्पाहिं हा[2] ॥ ओं खं खं क्ष प्रकृत्या[3] ॥
ओं सुं हुं गन्धतन्मात्रे संहर स्वाहा।

ततः पूर्णाहुतिश्चैवमुत्तरेषु प्रयुज्यते।

ओं रां रसतन्मात्रे। ओं भें रूपतन्मात्रे। ओं रंस्पर्शतन्मात्रे। ओं एं शब्दतन्मात्रे।
ओं भं नमः। ओं सों अहङ्कारः। ओं नं बुद्धे। ओं ओं प्रकृते।
एकमूर्त्तावयं प्रोक्तो दीक्षायोगः समासतः। एवमेव प्रयोगस्तु नवव्यूहादिके स्मृतः ॥५२॥
दग्धापरस्मिन् सन्दध्यान्निर्वाणे प्रकृतिन्नरः। अविकारे समादध्यादीश्वरे प्रकृतिन्नरः ॥५३॥

शोधयित्वाथ भूतानि कर्म्माङ्गानि[4] विशोधयेत।
बुद्ध्याख्यान्यथ तन्मात्रमनोज्ञानमहङ्कृतिम् ॥ ५४ ॥
लिङ्गात्मानं विशोध्यान्ते प्रकृतिं शोधयेत् पुनः।
पुरुषं प्राकृतं शुद्धमीश्वरे धाम्नि संस्थितम् ॥ ५५ ॥

स्वगोचरीकृताशेषभोगमुक्तौ कृतास्पदम्। ध्यायन् पूर्णाहुतिं दद्यादो क्षेयं त्वधिकारिणी ॥५६॥
अङ्गैराराध्य मन्त्रस्य नीत्वा तत्त्वगणं समम्। क्रमादेवं विशोध्यान्ते सर्वसिद्धिसमन्वितम् ॥
ध्यायन् पूर्णाहुतिं दद्याद्दीक्षेयं साधके स्मृता। द्रव्यस्य वा न सम्पत्तिरशक्तिर्वात्मनो यदि ॥
इष्ट्वा देवं यथा पूर्वं सर्वोपकरणान्वितम्। सद्योधिवास्य द्वादश्यां दीक्षयेद्देशिकोत्तमः ॥५९॥

---

१. तद्वै शिष्यन्तु सन्नयेदिति ख. घ. ङ.।

२. ओं सुं आयाहि हामिति ख.। ओं सं पाहि स्वाहा इति ग. ङ.।

३. अं दुं स्त्व प्रकृत्या इति ओं खं खं स्त्व प्रकृत्या इति च ख.।

४. कर्म्माख्याणि च शोधयेदिति घ. ङ.।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भक्तो विनीतः शारीरैर्गुणैः सर्वैः समन्वितः ।
शिष्यो नातिधनी यस्तु स्थण्डिलेभ्यच्चर्य दीक्षयेत् ॥ ६० ॥
अध्वानं निखिलं दैवं[1] भौतं वाध्यात्मिकीकृतम् ।
सृष्टिक्रमेण शिष्यस्य देहे ध्यात्वा तु देशिकः ॥ ६१ ॥
अष्टाष्टाहुतिभिः पूर्वं क्रमात् सन्तर्प्य सृष्टिमान् ।
स्वमन्त्रैर्वासुदेवादीन् जननादीन् विसर्जयेत्[2] ॥ ६२ ॥

होमेन शोधयेत पश्चात्संहारक्रमयोगतः । योनिसूत्राणि बद्धानि मुक्त्वा कर्माणि देशिकः ॥
शिष्यदेहात्समाहृत्य क्रमात्तत्त्वानि शोधयेत् । अग्नौ प्राकृतिके विष्णौ लयं नीत्वाधिदैविके ॥
शुद्धं तत्त्वमशुद्धेन पूर्णाहुत्या तु साधयेत्[3]। शिष्ये प्रकृतिमापन्ने दग्ध्वा प्राकृतिकान् गुणान् ॥

मोचयेदधिकारे वा नियुञ्ज्याद्देशिकः शिशून्[4] ।
अथान्यां शक्तिदीक्षां वा कुर्य्यात् भावे स्थितो गुरुः ॥ ६६ ॥
भक्त्या सम्प्रतिपन्नानां यतीनां निर्द्धनस्य च ।
सम्पूज्य स्थण्डिले विष्णुं पार्श्वस्थं स्थाप्य पुत्रकम् ॥ ६७ ॥
देवताभिमुखः शिष्यस्तिर्यगास्यः स्वयं स्थितः ।
अध्वानं निखिलं ध्यात्वा पर्वभिः स्वैर्विकल्पितम् ॥ ६८ ॥

शिष्यदेहे तथा देवमधिदैविकयाचनम् । ध्यानयोगेन सञ्चिन्त्य पूर्ववत्ताडनादिना ॥६९॥
क्रमात्तत्त्वानि सर्वाणि शोधयेत् स्थण्डिले हरौ । ताडनेन वियोज्याथ गृहीत्वात्मनि तत्परः[5]॥
देवे संयोज्य संशोध्य गृहीत्वा तत् स्वभावतः । आनीय शुद्धभावेन सन्धयित्वा क्रमेण तु ॥
शोधयेद्ध्यानयोगेन सर्वतो ज्ञानमुद्रया । शुद्धेषु सर्वतत्त्वेषु प्रधाने चेश्वरे स्थिते ॥७२॥
दग्ध्वा निर्वापयेच्छिष्यान् पदे चैशे नियोजयेत् । निनयेत् सिद्धिमार्गे वा साधकं देशिकोत्तमः ॥
एवमेवाधिकारस्थो गृही कर्म्मण्यतन्द्रितः । आत्मानं शोधयंस्तिष्ठेद् यावद्रागक्षयो भवेत् ॥
क्षीणरागमथात्मानं ज्ञात्वा संशुद्धकिल्विषः । आरोप्य पुत्रे शिष्ये वा ह्यधिकारन्तु संयमी ॥

दग्ध्वा मायामयं पाशं प्रव्रज्य स्वात्मनि स्थितः ।
शरीरपातमाकाङ्क्षन्नासीताव्यक्तलिङ्गवान् ॥ ७६ ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये सर्वदीक्षाकथनं नाम
सप्तविंशोऽध्यायः ।

---

१. लिखितं दैवमिति ख. ।
२. पूजां कृत्वा विसर्जयेदिति घ. विमलादीन् विसर्जयेदिति ङ. ।
३. पूर्णाहुत्या तु सन्नयेदिति ख. घ. ।
४. पशूनिति घ. ।
५. तत् पुनरिति ख. ग. घ. ङ. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अष्टाविंशोऽध्यायः

अभिषेकविधानम् ।

नारद उवाच

अभिषेकं प्रवक्ष्यामि यथाचार्य्यस्तु पुत्रकः। सिद्धिभाक् साधको येन रोगी रोगाद्विमुच्यते॥
राज्यं राजा सुतं स्त्रीञ्च प्राप्नुयान्मलनाशनम्। मूर्त्तिकुम्भान् सुरत्नाढ्यान्मध्यपूर्वादितो न्यसेत्॥
सहस्रावर्त्तितान् कुर्य्यादथवा शतवर्त्तितान्। मण्डपे मण्डले विष्णुं प्राच्यैशान्याञ्च पीठके॥
निवेश्य शकलीकृत्य पुत्रकं साधकादिकम्। अभिषेकं समभ्यर्च्च्य कुर्य्याद्गीतादिपूर्वकम्॥
दद्याच्च योगपीठादींस्त्वनुग्राह्यास्त्वया नराः। गुरुश्च समयान् ब्रूयाद्गुप्तः शिष्योथ सर्वभाक्॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये आचार्य्याभिषेको नाम अष्टाविंशोऽध्यायः।

ऊनत्रिंशोऽध्यायः

सर्वतोभद्रमण्डलकथनम् ।

नारद उवाच

साधकः साधयेन्मन्त्रं देवतायतनादिके। शुद्धभूमौ गृहे प्राच्चर्य्य मण्डले हरिमीश्वरम्॥१॥
चतुरस्रीकृते क्षेत्रे मण्डलादीनि वै लिखेत्। रसवाणाक्षिकोष्ठेषु सर्व्वतोभद्रमालिखेत्॥२॥
पट्त्रिंशत्कोष्ठकैः पद्मं पीठं पङ्क्त्या बहिर्भवेत्।
द्वाभ्यान्तु वीथिका तस्माद् द्वाभ्यां द्वाराणि दिक्षु च॥ ३॥
वर्त्तुलं भ्रामयित्वा तु पद्मक्षेत्रं पुरोदितम्। पद्मार्द्धे भ्रामयित्वा तु भागं द्वादशमं बहिः॥४॥
विभज्य भ्रामयेच्छेषं चतुःक्षेत्रन्तु वर्त्तुलम्। प्रथमं कर्णिकाक्षेत्रं केशराणां द्वितीयकम्॥५॥
तृतीयं दलसन्धीनां दलाग्राणां चतुर्थकम्। प्रसार्य कोणसूत्राणि कोणदिङ्मध्यमन्ततः॥६॥
निधाय केशराग्रे तु दलसन्धींस्तुलाञ्छयेत्। पातयित्वाथ सूत्राणि तत्र पत्राष्टकं लिखेत्॥७॥
दलसन्ध्यन्तरालन्तु मानं मध्ये निधाय तु। दलाग्रं भ्रामयेत्तेन तदग्रं तदनन्तरम्॥८॥
तदन्तरालं तत्पार्श्वे कृत्वा बाह्यक्रमेण च। केशरे तु लिखेद्द्वौ द्वौ दलमध्ये ततः पुनः॥९॥
पद्मलक्ष्मैतत् सामान्यं द्विषट्कदलमुच्यते। कर्णिकार्द्धेन मानेन प्राक्संस्थं भ्रामयेत् क्रमात्॥
तत्पार्श्वे भ्रमयोगेन कुण्डलयः षड् भवन्ति हि। एवं द्वादश मत्स्याः स्युर्द्विषट्कदलकञ्च तैः॥
पञ्चपत्राभिसिद्ध्यर्थं मत्स्यं कृत्वैवमब्जकम्। व्योमरेखाबहिः पीठन्तत्र कोष्ठानि मार्जयेत्॥
त्रीणि कोणेषु पादार्थं द्विद्विकान्यपराणि तु। चतुर्दिक्षु विलिप्तानि गात्रकाणि भवन्त्युत॥१३॥
ततः पङ्क्तिद्वयं दिक्षु वीथ्यर्थन्तु विलोपयेत्[1]। द्वाराण्याशासु कुर्वीत चत्वारि चतसृष्वपि॥
द्वाराणां पार्श्वतः शोभा अष्टौ कुर्याद्विचक्षणः। तत्पार्श्वे उपशोभास्तु तावत्यः परिकीर्त्तिताः॥

१. पङ्क्तिद्वयं द्वयं दिक्षु वीथ्यर्थे विनियोजयेदिति ङ.।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

समीप उपशोभानां कोणास्तु परिकीर्त्तिताः[१]। चतुर्दिक्षु ततो द्वे द्वे चिन्तयेन्मध्यकोष्ठकैः ॥१६॥
चत्वारि बाह्यतो मृज्यादेकैकं पार्श्वयोरपि। शोभार्थं पार्श्वयोस्त्रीणि त्रीणि लुम्पेद्दलस्य तु॥१७।
तद्वद्विपर्यये कुर्य्यादुपशोभां ततः परम्। कोणस्यान्तर्बहिस्त्रीणि चिन्तयेद्द्विर्विभेदतः ॥१८॥
एवं षोडशकोष्ठं स्यादेवमन्यत्तु मण्डलम्। द्विषट्कभागे षट्त्रिंशत्पदं पद्मन्तु वीथिका॥१९॥
एका पङ्क्तिः पराभ्यां तु द्वारशोभादि पूर्ववत्। द्वादशाङ्गुलिभिः पद्ममेकहस्ते तु मण्डले ॥
द्विहस्ते हस्तमात्रं स्याद्वृद्ध्या द्वारेण वाचरेत्। अपीठञ्चतुरस्रं स्याद्द्विकरञ्चक्रपङ्कजम्॥

पद्मार्द्धं नवभिः प्रोक्तं नाभिस्तु तिसृभिः स्मृता।
अष्टाभिर्द्वारकान् कुर्य्यान्नेमिन्तु चतुरङ्गुलैः ॥ २२ ॥
त्रिधा[२] विभज्य च क्षेत्रमन्तर्द्वाभ्यामथाङ्कयेत्।
पञ्चान्तस्त्वरसिद्ध्यर्थं[३] तेष्वास्फाल्य लिखेदरान्॥ २३ ॥

इन्दीवरदलाकारानथवा मातुलाङ्गवत्। पद्मपत्रायतान्वापि लिखेदिच्छानुरूपतः ॥२४॥
भ्रामयित्वा बहिर्न्नेमावरसन्ध्यन्तरे स्थितः। भ्रामयेदरमूलन्तु सन्धिमध्ये व्यवस्थितः ॥

अरमध्ये स्थितो मध्यमरणिं भ्रामयेत् समम्।
एवं सिद्ध्यन्तराः सम्यक् मातुलाङ्गनिभाः समाः ॥ २६ ॥

विभज्य सप्तधा क्षेत्रं चतुर्दशकरं समम्। द्विधा कृते शतं ह्यत्र षण्नवत्यधिकानि तु ॥२७॥
कोष्ठकानि चतुर्भिस्तैर्म्मध्ये भद्रं समालिखेत्। परितो विसृजेद्वीथ्यै तथा दिक्षु समालिखेत् ॥
कमलानि पुनर्वीथ्यै परितः परिमृज्य तु। द्वे द्वे मध्यमकोष्ठे तु ग्रीवार्थं दिक्षु लोपयेत् ॥२९॥

चत्वारि बाह्यतः पश्चात्त्रीणि त्रीणि तु लोपयेत।
ग्रीवापार्श्वे बहिस्त्वेका शोभा सा परिकीर्त्तिता ॥ ३० ॥

विमृज्य बाह्यकोणेषु सप्तान्तस्त्रीणि मार्जयेत्। मण्डलं नवभागं स्यान्नवव्यूहं हरिं यजेत् ॥
पञ्चविंशतिकव्यूहं मण्डलं विश्वरूपगम्। द्वात्रिंशद्धस्तकं क्षेत्रं भक्तं द्वात्रिंशता समम् ॥३१॥
एवं कृते चतुर्विंशत्यधिकन्तु सहस्रकम्। कोष्ठकानां समुद्दिष्टं मध्ये षोडशकोष्ठकैः ॥३३॥
भद्रकं परिलिख्याथ पार्श्वे पङ्क्तिं विमृज्य तु। ततः षोडशभिः कोष्ठैर्दिक्षु भद्राष्टकं लिखेत[४] ॥
ततोपि पङ्क्तिं सम्मृज्य तद्वत् षोडशभद्रकम्। लिखित्वा परितः पङ्क्तिं विमृज्याथ प्रकल्पयेत्॥
द्वारद्वादशकं दिक्षु त्रीणि त्रीणि यथाक्रमम्। षड्भिः परिलुप्यान्तर्मध्ये चत्वारि पार्श्वयोः॥३६॥
चत्वार्यन्तर्बहिर्द्वे तु शोभार्थं परिमृज्य तु। उपद्वारप्रसिद्ध्यर्थं त्रीण्यन्तः पञ्च बाह्यतः ॥३७॥
परिमृज्य तथा शोभां पूर्ववत् परिकल्पयेत्। बहिः कोणेषु सप्तान्तस्त्रीणि कोष्ठानि मार्जयेत् ॥
पञ्चविंशतिकव्यूहे परं ब्रह्म यजेत् कजे[५]। मध्ये पूर्वादितः पद्मे वासुदेवादयः क्रमात् ॥३९॥
वराहं पूजयित्वा च पूर्वपद्मे ततः क्रमात्। व्यूहान् सम्पूजयेत्तावत् यावत् षड्विंशमो भवेत् ॥

१. परिमार्जिता इति. घ. । २. द्विधा इति ख. ।
३. पञ्चान्तरस्त्वरसिद्ध्यर्थमिति ख. पञ्चोत्तरस्तु सिद्ध्यर्थमिति ङ. ।
४. दिक्षु तत्राष्टकं लिखेदिति ख. ग. घ. । ५. शुभे इति ङ.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यथोक्तं व्यूहमखिलमेकस्मिन् पङ्कजे क्रमात् । यष्टव्यमिति यत्नेन[1] प्रचेता मन्यतेऽध्वरम्[2] ॥
सत्यन्तु मूर्त्तिभेदेन विभक्तं मन्यतेऽच्युतम् । चत्वारिंशत् करं क्षेत्रं ह्युत्तरं[3] विभजेत् क्रमात् ॥
एकैकं सप्तधा भूयस्तथैवैकं द्विधा पुनः । चतुःषष्ट्युत्तरं सप्तशतान्येकं सहस्रकम् ॥४३॥
कोष्ठकानां भद्रकञ्च मध्ये षोडशकोष्ठकैः । पार्श्वे वीथी ततश्चाष्टभद्राण्यथ च वीथिका ॥४४॥
षोडशाब्जान्यथो वीथी चतुर्विंशतिपङ्कजम् । वीथीपद्मानि द्वात्रिंशत् पङ्क्तिर्वीथिकजान्यथ ॥
चत्वारिंशत्ततो वीथी शेषपङ्क्तित्रयेण च । द्वारशोभोपशोभाः स्युर्दिक्षु मध्ये विलोप्य च ॥
द्विचतुःषड्द्वारसिद्ध्यै चतुर्दिक्षु विलोपयेत् । पञ्च त्रीण्येककं वाह्ये शोभोपद्वारसिद्धये ॥४७॥
द्वाराणां पार्श्वयोरन्तः षड् वा चत्वारि मध्यतः । द्वे द्वे लुम्पेदेवमेव षड् भवन्त्युपशोभिकाः ॥
एकस्यां दिशि सङ्ख्याः स्युः चतस्रः परिसङ्ख्यया ॥ ४९ ॥
एकैकस्यां दिशि त्रीणि द्वाराण्यपि भवन्त्युत । पञ्च पञ्च तु कोणेषु पङ्क्तौ पङ्क्तौ क्रमात् सृजेत् ॥
कोष्ठकानि भवेदेवं मत्स्येष्टयं मण्डलं शुभम् ॥५०॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये मण्डलादिलक्षणं नाम
ऊनत्रिंशोऽध्यायः ।

त्रिंशोऽध्यायः

मण्डलविधिः ।

नारद उवाच

मध्ये पद्मे यजेद्ब्रह्म साङ्गं पूर्वेऽब्जनाभकम् । आग्नेयेऽब्जे च प्रकृतिं याम्येऽब्जे पुरुषं यजेत् ॥
पुरुषाद्दक्षिणे वह्निं नैरृते वारुणेनिलम् । आदित्यमैन्दवे पद्मे ऋग्यजुश्चैशपद्मके ॥२॥
इन्द्रादींश्च द्वितीयायां पद्मे षोडशके तथा । सामाथर्वाणमाकाशं वायुं तेजस्तथा जलम् ॥३॥
पृथिवीञ्च मनश्चैव श्रोत्रं त्वक् चक्षुरर्च्चयेत् । रसनाञ्च तथा घ्राणं भूर्भुवश्चैव षोडशम् ॥४॥
महर्जनस्तपः सत्यं तथाग्निष्टोममेव च । अत्यग्निष्टोमकं[4] चोक्थं षोडशीं वाजपेयकम् ॥५॥
अतिरात्रञ्च सम्पूज्य तथाप्तोर्याममर्च्चयेत् । मनो बुद्धिमहङ्कारं शब्दं स्पर्शञ्च रूपकम् ॥६॥
रसं गन्धञ्च पद्मेषु चतुर्विंशतिषु क्रमात् । जीवं मनोधिपञ्चाहं प्रकृतिं शब्दमात्रकम् ॥७॥
वासुदेवादिमूर्त्तीश्च तथा चैव दशात्मकम् । मनः श्रोत्रं त्वचं प्राच्चर्य चक्षुश्च रसनं तथा ॥८॥
घ्राणं वाक्पाणिपादञ्च द्वात्रिंशद्वारिजेष्विमान् । चतुर्थावरणे पूज्याः साङ्गाः सपरिवारकाः ॥
पायूपस्थौ च सम्पूज्य मासानां द्वादशाधिपान् । पुरुषोत्तमादिषड्विंशान् बाह्यावरणके यजेत् ॥

---

१. यष्टव्यमिति यज्ञेन इति ग. घ. । यष्टव्यमिति मन्त्रेण इति ङ. ।
२. प्रचेता मन्यते ध्रुवमिति ख. । ३. ह्युत्तममिति ङ. ।
४. प्रत्यग्निष्टोमकमिति ख. । ज्योतिष्टोमकमिति ङ. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

चक्राब्जे तेषु सम्पूज्या मासानां पतयः क्रमात् । अष्टौ प्रकृतयः षड् वा पञ्चाथ चतुरोऽपरे ॥
रजःपातं ततः कुर्य्याल्लिखिते मण्डले शृणु। कर्णिका पीतवर्णा स्याद्रेखाः सर्वाः सिताः समाः॥
द्विहस्तेऽङ्गुष्ठमात्राः स्युर्हस्ते चार्द्धसमाः सिताः। पद्मं शुक्लेन सन्धींस्तु कृष्णेन श्यामतोथवा॥
केशरा रक्तपीताः स्युः कोणान् रक्तेन पूरयेत्। भूषयेद्योगपीठन्तु यथेष्टं सार्ववर्णिकैः ॥१४॥
लतावितानपत्राद्यैर्वीथिकामुपशोभयेत । पीठद्वारे तु शुक्लेन शोभारक्तेन पीततः ॥१५॥
उपशोभाञ्च नीलेन कोणशंखाँश्च वै सितान्। भद्रके पूरणं प्रोक्तमेवमन्येषु पूरणम् ॥१६॥
त्रिकोणं सितरक्तेन कृष्णेन च विभूषयेत् । द्विकोणं रक्तपीताभ्यां नाभिं कृष्णेन चक्रके ॥१७॥
अरकान् पीतरक्ताभिः श्यामान् नेमिन्तु रक्ततः। सितश्यामारुणाः कृष्णाःपीता रेखास्तु बाह्यतः॥

शालिपिष्टादि शुक्लं स्याद्रक्तं कौसुम्भकादिकम् ।
हरिद्रया च हारिद्रं कृष्णं स्याद्दग्धधान्यतः ॥ १९ ॥

शमीपत्रादिकैः श्यामं वीजानां लक्षजाप्यतः । चतुर्लक्षैस्तु मन्त्राणां विद्यानां लक्षसाधनम् ॥
अयुतं बुद्धविद्यानां स्तोत्राणाञ्च सहस्रकम् । पूर्व्वमेवाथ लक्षेण मन्त्रशुद्धिस्तथात्मनः ॥२१॥
तथापरेण लक्षेण मन्त्रः क्षेत्रीकृतो भवेत् । पूर्वमेवासमो होमो वीजानां सम्प्रकीर्तितः ॥२२॥
पूर्वसेवा दशांशेन मन्त्रादीनां प्रकीर्त्तिता । पुरश्चर्य्ये तु मन्त्रे तु मासिकं व्रतमाचरेत् ॥२३॥
भुवि न्यसेद्वामपादं न गृह्णीयात प्रतिग्रहम् । एवं द्वित्रिगुणेनैव मध्यमोत्तमसिद्धयः ॥२४॥
मन्त्रध्यानं प्रवक्ष्यामि येन स्यान्मन्त्रजं फलम् । स्थूलं शब्दमयं रूपं विग्रहं बाह्यमिष्यते ॥
सूक्ष्मं ज्योतिर्म्मयं रूपं हार्दं चिन्तामयं भवेत् । चिन्तया रहितं यत्तु तत् परं परिकीर्त्तितम् ॥
वराहसिंहशक्तीनां स्थूलरूपं प्रधानतः । चिन्तया रहितं रूपं वासुदेवस्य कीर्त्तितम् ।२७।
इतरेषां स्मृतं रूपं हार्दं चिन्तामयं सदा । स्थूलं वैराजमाख्यातं सूक्ष्मं वै लिङ्गितं भवेत् ॥
चिन्तया रहितं रूपमैश्वरं परिकीर्त्तितम् । हृत्पुण्डरीकनिलयञ्चैतन्यं ज्योतिरव्ययम् ॥२९॥
वीजं वीजात्मकं ध्यायेत कदम्बकुसुमाकृतिम् । कुम्भान्तरगतो दीपो निरुद्धप्रसवो यथा ॥३०॥
संहतः केवलस्तिष्ठेदेवं मन्त्रेश्वरो हृदि । अनेकशुषिरे कुम्भे तावन्मात्रा गभस्तयः ॥३१॥
प्रसरन्ति वहिस्तद्वन्नाडीभिर्वीजरश्मयः । अथावभासतो देवीमात्मीकृत्य तनुं स्थिताः ॥३२॥
हृदयात् प्रस्थिता नाड्यो दर्शनेन्द्रियगोचराः । अग्नीषोमात्मके तासां नाड्यौ नासाग्रसंस्थिते ॥
सम्यग्गुह्येन योगेन जित्वा देहसमीरणम् । जपध्यानरतो मन्त्री मन्त्रलक्षणमश्नुते[1] ॥३४॥
संशुद्धभूततन्मात्रः सकामो योगमभ्यसन् । अणिमादिमवाप्नोति विरक्तः प्रविलङ्घ्य च ॥

देवात्मके भूतमात्रान्मुच्यते चेन्द्रियग्रहात् ॥ ३५ ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये मण्डलादिवर्णनं नाम
त्रिंशोऽध्यायः ।

---

१. मन्त्रजं फलमश्नुते इति ख. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

एकत्रिंशोऽध्यायः

मार्जनविधानम् ।

अग्निरुवाच

रक्षां स्वस्य परेषाञ्च वक्ष्ये तां मार्जनाह्वयाम । यया विमुच्यते दुःखैः सुखञ्च प्राप्नुयान्नरः[१] ।।
ओ नमः परमार्थाय पुरुषाय महात्मने । अरूपबहुरूपाय व्यापिने परमात्मने ।।२।।
निष्कल्मषाय शुद्धाय ध्यानयोगरताय च । नमस्कृत्य प्रवक्ष्यामि यत तत्सिध्यतु मे वचः ।।
वराहाय नृसिंहाय वामनाय महामुने । नमस्कृत्य प्रवक्ष्यामि यत्तत्सिध्यतु मे वचः ।।४।।
त्रिविक्रमाय रामाय वैकुण्ठाय नराय च । नमस्कृत्य प्रवक्ष्यामि यत्तत् सिध्यतु मे वचः ।।
वराह नरसिंहेश वामनेश त्रिविक्रम । हयग्रीवेश सर्वेश हृषीकेश हराशुभम् ।।६।।
अपराजितचक्राद्यैश्चतुर्भिः परमायुधैः । अखण्डितानुभावैस्त्वं[२] सर्वदुष्टहरो भव ।।७।।
हरामुकस्य दुरितं सर्वञ्च कुशलं कुरु । मृत्युबन्धार्त्तिभयदं दुरितस्य च यत फलम् ।।८।।
पराभिध्यानसहितैः प्रयुक्तञ्चाभिचारकम् । गदस्पर्शमहारोगप्रयोगं जरया जर ।।९।।
ओं नमो वासुदेवाय नमः कृष्णाय खड्गिने । नमः पुष्करनेत्राय केशवायादिचक्रिणे ।।१०।।
नमः कमलकिञ्जल्कपीतनिर्म्मलवाससे । महाहररिपुस्कन्धसृष्टचक्राय चक्रिणे ।।११।।
दंष्ट्रोद्धृतक्षितिभृते[३] त्रयीमूर्त्तिमते नमः । महायज्ञवराहाय शेषभोगाङ्कशायिने ।।१२।।
तप्तहाटककेशाग्रज्वलत्पावकलोचन । वज्राधिकनखस्पर्श दिव्यसिंह नमोस्तु ते ।।१३।।
काश्यपायातिह्रस्वाय ऋग्यजुःसामभूषित । तुभ्यं वामनरूपायाक्रमते गां[४] नमो नमः ।।१४।।
वराहाशेषदुष्टानि सर्वपापफलानि वै । मर्द्द मर्द्द महादंष्ट्र मर्द्द मर्द्द च यत्फलम् ।।१५।।
नरसिंह करालास्य दन्तप्रान्तानलोज्ज्वल । भञ्ज भञ्ज निनादेन दुष्टान्यस्यार्तिनाशन ।।१६।।
ऋग्यजुःसामगर्भाभिर्वाग्भिर्वामनरूपधृक् । प्रशमं सर्वदुःखानि नयत्त्वस्य जनार्द्दनः ।।१७।।
ऐकाहिकं द्व्याहिकञ्च तथा त्रिदिवसं ज्वरम् । चातुर्थकन्तथात्युग्रन्तथैव सततज्वरम् ।।१८।।

दोषोत्थं सन्निपातोत्थं तथैवागन्तुकं ज्वरम् ।
शमं नयाशु गोविन्द च्छिन्धि च्छिन्ध्यस्य वेदनाम् ।। १९ ।।[५]

नेत्रदुःखं शिरोदुःखं दुःखञ्चोदरसम्भवम् । अन्तःश्वासमतिश्वासं[६] परितापं सवेपथुम् ।।२०।।
गुदघ्राणाङ्घ्रिरोगांश्च कुष्ठरोगांस्तथा क्षयम्[७] । कामलादींस्तथा रोगान प्रमेहांश्चातिदारुणान् ।।
भगन्दरातिसारांश्च मुखरोगाँश्च वल्गुलीम् । अश्मरीं मूत्रकृच्छ्रांश्च रोगानन्यांश्च दारुणान् ।।
ये वातप्रभवा रोगा ये च पित्तसमुद्भवाः[८] । कफोद्भवाश्च ये केचित् ये चान्ये सान्निपातिकाः ।।

---

१. सुखं ब्रह्माप्नुयान्नर इति ख. ।
२. अखण्डितात्मभावैस्त्वमिति ख. ।
३. दंष्ट्रोद्धृतभूमिभर्त्रे इति ख. ।
४. सृजते गामिति ख. ।
५. छिन्द छिन्दास्य वेदनामिति ग. ।
६. अनिश्वासमतिश्वासमिति ग. ।
७. तथैव च इति ग. ।
८. ये रोगाः पित्तसम्भवा इति ग. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आगन्तुकाश्च ये रोगा लूता विस्फोटकादयः । ते सर्वे प्रशमं यान्तु वासुदेवापमार्जिताः[१] ॥
विलयं यान्तु ते सर्वे विष्णोरुच्चारणेन च । क्षयं गच्छन्तु चाशेषास्ते चक्राभिहता हरेः ॥२५॥
अच्युतानन्तगोविन्दनामोच्चारणभीषिताः । नश्यन्ति सकला रोगाः सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ॥
स्थावरं जङ्गमं वापि कृत्रिमं चापि यद्विषम् । दन्तोद्भवं नखभवमाकाशप्रभवं विषम् ॥२७॥
लूतादिप्रभवं यच्च विषमन्यत्तु दुःखदम् । शमं नयतु तत् सर्वं कीर्त्तितोस्य जनार्दनः ॥२८॥
ग्रहान् प्रेतग्रहांश्चापि तथा वै डाकिनीग्रहान्[२] ।
वेतालांश्च पिशाचांश्च गन्धर्वान् यक्षराक्षसान्[३] ॥ २९ ॥
शकुनीपूतनाद्यांश्च तथा वैनायकान् ग्रहान् । मुखमण्डीं तथा क्रूरां रेवतीं वृद्धरेवतीम् ॥३०॥
वृद्धकाख्यान् ग्रहांश्चोग्रांस्तथा मातृग्रहानपि । बालस्य विष्णोश्चरितं हन्तु बालग्रहानिमान् ॥
वृद्धाश्च ये ग्रहाः केचिद्ये च बालग्रहाः क्वचित् । नरसिंहस्य ते दृष्ट्या दग्धा ये चापि यौवने ॥
सदा[४] करालवदनो नरसिंहो महाबलः । ग्रहानशेषान्निःशेषान् करोतु जगतो हितः ॥३३॥
नरसिंह महासिंह ज्वालामालोज्ज्वलानन । ग्रहानशेषान् सर्वेश खाद खादाग्निलोचन ॥३४॥
ये रोगा ये महोत्पाता यद्विषं ये महाग्रहाः । यानि च क्रूरभूतानि ग्रहपीडाश्च दारुणाः ॥३५॥
शस्त्रक्षतेषु ये दोषा ज्वालागर्दभकादयः । तानि सर्वाणि सर्वात्मा परमात्मा जनार्दनः ॥३६॥
किञ्चिद्रूपं समास्थाय वासुदेवास्य नाशय ॥ ३७ ॥
क्षिप्त्वा सुदर्शनञ्चक्रं ज्वालामालातिभीषणम् । सर्वदुष्टोपशमनं कुरु देववराच्युत ॥३८॥
सुदर्शन महाज्वाल च्छिन्धि च्छिन्धि महारव[५]। सर्व्वदुष्टानि रक्षांसि क्षयं यान्तु विभीषण ॥
प्राच्यां प्रतीच्यां च दिशि दक्षिणोत्तरतस्तथा । रक्षाङ्करोतु सर्वात्मा नरसिंहः सुगर्ज्जितः[६]॥४०॥
दिवि भुव्यन्तरीक्षे च पृष्ठतः पार्श्वतोग्रतः । रक्षाङ्करोतु भगवान् बहुरूपी जनार्दनः ॥४१॥
यथा विष्णुर्ज्जगत्सर्वं सदेवासुरमानुषम् । तेन सत्येन दुष्टानि शममस्य व्रजन्तु वै[७] ॥४२॥
यथा विष्णौ स्मृते सद्यः सङ्क्षयं यान्ति पातकाः। सत्येन तेन सकलं दुष्टमस्य प्रशाम्यतु॥४३॥
परमात्मा यथा विष्णुर्वेदान्तेषु च गीयते । तेन सत्येन सकलं दुष्टमस्य प्रशाम्यतु ॥४४॥
यथा यज्ञेश्वरो विष्णुर्देवेष्वपि हि गीयते । सत्येन तेन सकल यन्मयोक्तं तथास्तु तत् ॥४५॥
शान्तिरस्तु शिवञ्चास्तु दुष्टमस्य प्रशाम्यतु । वासुदेवशरीरोत्थैः कुशैर्न्निर्म्मथितं मया[८] ॥४६॥
अपमार्जतु गोविन्दो नरो नारायणस्तथा । तथास्तु सर्वदुःखानां प्रशमो जपनाद्धरेः ॥४७॥
अपमार्जनकं शस्त्रं सर्वरोगादिवारणम् । अहं हरिः कुशो विष्णुर्हता रोगा मया तव ॥४८॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये कुशापमार्जनं नाम एकत्रिंशोऽध्यायः ।

---

१. वासुदेवपराजिता इति ख. ।
२. तथा वेतालिकान् ग्रहानिति घ. ।
३. गन्धर्व्वान् राक्षसानपि इति ख. ।
४. शटा इति ख. ङ. ।
५. महाबल इति ख. ।
६. स्वगर्ज्जितैरिति ग. ङ. ।
७. प्रयान्तु वै इति ग. ।
८. कुशैर्निर्णाशितमिति ख. ग. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

द्वात्रिंशोऽध्यायः

संस्कारकथनम् ।

अग्निरुवाच

निर्वाणादिषु दीक्षासु चत्त्वारिंशत्तथाष्ट च ।
संस्कारान् कारयेद्धीमान् शृणु तान् यैः सुरो भवेत् ॥ १ ॥
गर्भाधानन्तु योन्यां वै ततः पुंसवनञ्चरेत् । सीमन्तोन्नयनञ्चैव जातकर्म्म च नाम च ॥२॥
अन्नाशनं ततश्चूडा ब्रह्मचर्यव्रतानि च । चत्वारि वैष्णवी पार्थी भौतिकी श्रोत्रिकी तथा ॥३॥
गोदानं स्नातकत्वञ्च पाकयज्ञाश्च सप्त ते[1] । अष्टका पार्वणश्राद्धं श्रावण्यग्रायणीति च ॥४॥
चैत्री चाश्वयुजी सप्त हविर्यज्ञांश्च तान शृणु । आधानञ्चाग्निहोत्रञ्च दर्शो वै पौर्णमासकः ॥
चातुर्मास्यं पशुबन्धः सौत्रामणिरथापरः । सोमसंस्थाः सप्त शृणु अग्निष्टोमः क्रतूत्तमः ॥६॥
अत्यग्निष्टोम उक्थश्च षोडशी वाजपेयकः । अतिरात्राप्तोर्य्यामश्च सहस्रेशाः सवा इमे ॥७॥
हिरण्याङ्घ्रिर्हिरण्याक्षी हिरण्यमित्र इत्यतः । हिरण्यपाणिर्हेमाक्षो हेमाङ्गो हेमसूत्रकः ॥८॥
हिरण्यास्यो हिरण्याङ्गो हेमजिह्वो हिरण्यवान् । अश्वमेधो हि सर्वेशो गुणाश्चाष्टाथ तान् शृणु ॥
दया च सर्वभूतेषु क्षान्तिश्चैव तथाऽर्जवम् । शौचं चैवमनायासो मङ्गलं चापरो गुणः ॥१०॥
अकार्पण्यञ्चास्पृहा च मूलेन जुहुयाच्छतम् । सौरशाक्तेयविष्णवीशदीक्षास्त्वेते समाः स्मृताः॥
संस्कारैः संस्कृतश्चैतैर्भुक्तिमुक्तिमवाप्नुयात् । सर्वरोगाद् विनिर्मुक्तो देववद्वर्त्तते नरः ॥
जप्याद्धोमात् पूजनाच्च ध्यानाद्देवस्य चेष्टभाक् ॥ १२ ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये अष्टचत्वारिंशतसंस्कारकथनं नाम
द्वात्रिंशोऽध्यायः ।

त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

पवित्रारोहणविधानम् ।

अग्निरुवाच

पवित्रारोहणं वक्ष्ये वर्षपूजाकलं हरेः । आषाढादौ कार्तिकान्ते प्रतिपद्धनदा तिथिः[2] ॥१॥
श्रिया गौर्या गणेशस्य सरस्वत्या गुहस्य च । मार्त्तण्डमातृदुर्गाणां नागर्षिहरिमन्मथैः ॥२॥
शिवस्य ब्रह्मणस्तद्वद्द्वितीयादितिथेः क्रमात् । यस्य देवस्य यो भक्तः पवित्रा तस्य सा तिथिः॥
आरोहणे तुल्यविधिः पृथक् मन्त्रादिकं यदि । सौवर्णे राजतं ताम्रं नेत्रकार्प्पासिकादिकम् ॥
ब्राह्मण्या कर्त्तितं सूत्रं तदलाभे तु संस्कृतम् । त्रिगुणं त्रिगुणीकृत्य तेन कुर्य्यात् पवित्रकम्॥

---

१. सप्त च इति घ. ख. । २. बर्द्धते तिथिरिति ख. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अष्टोत्तरशतादूर्द्ध्वं चोत्तमादिकम् । क्रियालोपविधानार्थं यत्त्वयाभिहितं प्रभो ।।६।।
मया तत् क्रियते देव यथा यत्र पवित्रकम् । अविघ्नं तु भवेदत्र कुरु नाथ जयाव्यय ।।७।।
प्रार्थ्य तन्मण्डलायादौ गायत्र्या बन्धयेन्नरः । ओं नारायणाय विद्महे वासुदेवाय धीमहि ।।८।।
तन्नो विष्णुः प्रचोदयात् देवदेवानुरूपतः । जानूरुनाभिनामान्तं प्रतिमासु पवित्रकम् ।।९।।
पादान्ता वनमाला स्यादष्टोत्तरसहस्रतः[१] । माला तु कल्पसाध्यं वा द्विगुणं षोडशाङ्गुलात् ।।
कर्णिका केशरं पत्रं मन्त्राद्यं[२] मण्डलान्तकम् । मण्डलाङ्गुलमात्रैकचक्राब्जाद्यौ[३] पवित्रकम् ।।
स्थण्डिलेऽङ्गुलमानेन आत्मनः सप्तविंशतिः । आचार्य्याणां च सूत्राणि पितृमात्रादिपुस्तके ।।
नाभ्यन्तं द्वादशग्रन्थिं तथा गन्धपवित्रके । द्व्यङ्गुलात् कल्पनादौ द्विर्माला चाष्टोत्तरं शतम् ।।
अथवार्कचतुर्विंशषट्त्रिंशन्मालिका द्विजः । अनामामध्यमाङ्गुष्ठैर्मन्दाद्यैः मालिकार्थिभिः[४] ।।
कनिष्ठादौ द्वादश वा ग्रन्थयः स्युः पवित्रके । रवेः कुम्भहुताशादेः सम्भवे विष्णुवन्मतम् ।।१५।।
पीठस्य पीठमानं स्यान्मेखलान्ते च कुण्डके । यथाशक्ति सूत्रग्रन्थिपरिचारेथ वैष्णवे ।।१६।।
सूत्राणि वा सप्तदश सूत्रेण त्रिविभक्तके[५] । रोचनागुरुकर्प्पूरहरिद्राकुङ्कुमादिभिः ।।१७।।
रञ्जयेचन्दनाद्यैर्वा स्नानसन्ध्यादिकृन्नरः । एकादश्यां यागगृहे भगवन्तं हरिं यजेत् ।।१८।।
समस्तपरिवाराय बलिं पीठे समर्चयेत् । क्ष्यौं क्षेत्रपालाय द्वारान्ते द्वारोपरि तथा श्रियम् ।।१९।।
धात्रे दद्ये विधात्रे च गङ्गाञ्च यमुनां तथा । शङ्खपद्मनिधी पूज्य मध्ये वास्त्वपसारणम् ।।
सारङ्गायेति भूतानां भूतशुद्धिं स्थितश्चरेत् ।। २० ।।

ओं ह्रूं हः फट् ह्रूं[६] गन्धतन्मात्रं संहरामि नमः ।।
ओं ह्रूं हः फट् ह्रूं[७] रसतन्मात्रं संहरामि नमः ।
ओं ह्रूं हः फट् ह्रूं[८] रूपतन्मात्रं संहरामि नमः ।।
ओं ह्रूं हः फट् ह्रूं[९] स्पर्शतन्मात्रं संहरामि नमः ।
ओं ह्रूं हः फट् ह्रूं[१०] शब्दतन्मात्रं संहरामि नमः ।।

पञ्चोद्घातैर्गन्धतन्मात्ररूपं भूमिमण्डलम् । चतुरस्रञ्च पीतञ्च कठिनं वज्रलाञ्छितम् ।।२१।।
इन्द्राधिदैवतं वादयुग्ममध्यगतं स्मरेत् । शुद्धञ्च रसतन्मात्रं प्रविलिप्याथ संहरेत् ।।
रसमात्ररूपमात्रे क्रमेणानेन पूजकः ।। २२ ।।
ओं ह्रीं हः फट् ह्रूं[११] रसतन्मात्रं संहरामि नमः ।।

१. पादान्तरेण माला स्यादष्टोत्तरसहस्रशः इति ग. । २. गदाद्यमिति घ. ।
३. चक्राङ्गादौ पवित्रके इति घ. । ४. मन्दादौ इति ख. ग. । मन्द्राद्यैरिति घ. ।
५. त्रिसूत्राणि च भद्रके इति घ. । ६. ओं हूं हः फट् हूमिति ग. ओं हां हः फट् हूमिति ङ. ।
७. ओं ह्रीं हः फट् हूमिति ङ. । ८. ओं हां हः हूं इति ग. । ओं हां हः फट् हीमिति ङ. ।
९. ओं हां हः फट् इति ग. । १०. ओं हां हः फट् हमिति ग. ।
११. ओं ह्रीं फट् हमिति ग. । ओं ह्रूं हः फट् हूमिति ङ. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ओं ह्रूं हः फट्[१] रूपतन्मात्रं संहरामि नमः ।
ओं ह्रीं हः फट् ह्रूं स्पर्शतन्मात्रं संहरामि नमः ॥
ओं ह्रीं हः फट् ह्रूं[२] शब्दतन्मात्रं संहरामि नमः ।

जानुनाभिमध्यगतं[३] श्वेतं वै पद्मलाञ्छितम् । शुक्लवर्णं चार्द्धचन्द्रं ध्यायेद्वरुणदैवतम् ॥२३॥
चतुर्भिश्च तदुद्घातैः शुद्धं तद्रसमात्रकम् । संहरेद्रूपतन्मात्रे रूपमात्रे च संहरेत् ॥२४॥

ओं ह्रूं हः फट् ह्रूं रूपतन्मात्रं संहरामि नमः ।
ओं ह्रूं हः फट् ह्रूं स्पर्शतन्मात्रं संहरामि नमः ॥
ओं ह्रूं हः फट् ह्रूं शब्दतन्मात्रं संहरामि नमः ।

इति त्रिभिस्तदुद्घातैस्त्रिकोणं वह्निमण्डलम् । नाभिकण्ठमध्यगतं रक्तं स्वस्तिकलाञ्छितम् ॥
ध्यात्वानलाधिदैवन्तच्छुद्धं स्पर्शे लयं नयत् ।

ओं ह्रौं हः फट् ह्रूं[४] स्पर्शतन्मात्रं संहरामि नमः ।
ओं ह्रौं हः फट् ह्रूं[५] शब्दतन्मात्रं संहरामि नमः ॥

कण्ठनासामध्यगतं वृत्तं वै वायुमण्डलम् ॥ २६ ॥

द्विरुद्घातैर्धूम्रवर्णं ध्यायेच्छुद्धेन्दुलाञ्छितम् । स्पर्शमात्रं शब्दमात्रैः संहरेद्ध्यानयोगतः ॥

ओं ह्रौं हः फट् ह्रूं शब्दतन्मात्रं संहरामि नमः ।

एकोद्घातेन चाकाशं शुद्धस्फटिकसन्निभम् । नासापुटशिखान्तस्थमाकाशमुपसंहरेत् ॥२८॥
शोषणाद्यैर्देहशुद्धिं कुर्यादेवं क्रमात्ततः । शुष्कं कलेवरं ध्यायेत् पादाद्यञ्च शिखान्तकम् ॥२९॥
यं वीजेन वं वीजेन ज्वालामालासमायुतम्[६] । देहं रमित्यनेनैव ब्रह्मरन्ध्राद्विनिर्गतम् ॥३०॥

विन्दुन्ध्यात्वा चामृतस्य तेन भस्मकलेवरम् ।
सम्प्लावयेल्लमित्यस्मात् देहं सम्पाद्य दिव्यकम् ॥ ३१ ॥

न्यासं कृत्वा करे देहे मानसं यागमाचरेत् । विष्णुं साङ्गं हृदि पद्मे मानसैः कुसुमादिभि ॥
मूलमन्त्रेण देवेशम्प्राचर्चयेद्भुक्तिमुक्तिदम् । स्वागतं देवदेवेश सन्निधौ भव केशव ॥३३॥
गृहाण मानसीं पूजां यथार्थं[७] परिभाविताम् । आधारशक्तिः कूर्माथ पूज्योनन्तो मही ततः ॥३४॥

मध्येऽग्न्यादौ च धर्माद्या अधर्मादीन्द्रमुख्यगम्[८] ।
सत्त्वादि मध्ये पद्मञ्च मायाविद्याख्यतत्त्वके ॥ ३५ ॥

कालतत्त्वञ्च सूर्यादिमण्डलं पक्षिराजकः । मध्ये ततश्च वायव्यादीशान्ता गुरुपङ्क्तिकाः ॥

---

१. ओं ह्रीं हः फट् ह्रूं इति ङ. ।
२. ओं ह्रं हः फट् ह्रूमिति ङ. ।
३. पद्मासनमध्यगतमिति ङ. ।
४. ओं क्षौं हः फट् क्रूमिति ङ. ।
५. ओं क्षौं हः फट् क्रूमिति ङ. ।
६. ज्वालामालासमप्रभमिति ङ. ।
७. यथास्वमिति ख. ।
८. धर्म्मादीनिन्द्रादौ विपरीतकानिति ङ. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

गणः सरस्वती पूज्या[१] नारदो नलकूवरः । गुरुर्गुरुपादुका च परो गुरुश्च पादुका ॥३७॥
पूर्वसिद्धाः परसिद्धाः केशरेषु च शक्तयः ।
लक्ष्मीः सरस्वती प्रीतिः कीर्त्तिः शान्तिश्च कान्तिका ॥ ३८ ॥
पुष्टिस्तुष्टिर्म्महेन्द्राद्या मध्ये चावाहितो हरिः ।
धृतिः श्रीरतिकान्त्याद्या मूलेन स्थापितोऽच्युतः ॥ ३९ ॥

ओं अभिमुखो भवेति प्रार्थ्य सन्निहितो भव। विन्यस्यार्घ्यादिकं दत्त्वा गन्धाद्यैर्मूलतो यजेत्॥
ओं भीषय भीषय हृत् शिरस्त्रासय वै पुनः । मर्दय मर्दय शिखा अग्न्यादौ शस्त्रतोऽस्त्रकं ॥
रक्ष रक्ष प्रध्वंसय प्रध्वंसय कवचाय[२] नमस्ततः ।
ओं ह्रूं[३] फट् अस्त्राय नमो मूलवीजेन चाङ्गकम् ॥ ४२ ॥

पूर्व्वदक्षाप्यसौम्येषु मूर्त्त्यावरणमर्च्चयेत् । वासुदेवः सङ्कर्षणः प्रद्युम्नश्चानिरुद्धकः ॥४३॥
अग्न्यादौ श्रीधृतिरतिकान्तयो मूर्त्तयो हरेः। शङ्खचक्रगदापद्ममग्न्यादौ पूर्व्वकादिकम्॥४४॥
शार्ङ्गञ्च मुषलं खड्गं वनमालाञ्च तद्‌बहिः । इन्द्राद्याश्च तथानन्तो नैर्ऋत्यां वरुणस्ततः ॥४५॥
ब्रह्मेन्द्रेशानयोर्मध्ये अस्त्रावरणकं बहिः । ऐरावतस्ततश्छागो महिषो वानरो झषः ॥४६॥
मृगः शशोऽथ वृषभः कूर्म्मो हंसस्ततो वहिः । पृश्निगर्भः कुमुदाद्या द्वारपाला द्वयं द्वयम् ॥४७॥
पूर्व्वाद्युत्तरद्वारान्तं हरिं नत्वा बलिं वहिः । विष्णुपार्षदेभ्यो नमो बलिपीठे बलिं ददेत् ॥४८॥
विश्वाय विश्वक्सेनात्मने ईशानके यजेत् । देवस्य दक्षिणे हस्ते रक्षासूत्रञ्च वन्धयेत् ॥४९॥
संवत्सरकृतार्चायाः सम्पूर्णफलदायिने । पवित्रारोहणायेदं कौतुकं धारय ओं नमः ॥५०॥
उपवासादिनियमं कुर्याद्वै देवसन्निधौ । उपवासादिनियतो देवं सन्तोषयाम्यहम् ॥५१॥
कामक्रोधादयः सर्वे मा मे तिष्ठन्तु सर्वथा । अद्यप्रभृति देवेश यावद्वैशेषिकं दिनम् ॥५२॥
यजमानो ह्यशक्तश्चेत् कुर्य्यान्नक्तादिकं व्रती । हुत्वा विसर्जयेत् स्तुत्वा श्रीकरन्नित्यपूजनम् ॥
ओं ह्रीं[४] श्रीं श्रीधराय त्रैलोक्यमोहनाय नमः ॥ ५३ ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये पवित्रारोहणे श्रीधरनित्यपूजाकथनं नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ।

चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

होमादिविधिः ।

अग्निरुवाच

विशेदनेन मन्त्रेण यागस्थानञ्च भूषयेत् । नमो ब्रह्मण्यदेवाय श्रीधरायाव्ययात्मने ॥१॥
ऋग्यजुःसामरूपाय शव्ददेहाय विष्णवे । विलिख्य मण्डलं सायं यागद्रव्यादि चाहरेत ॥२॥

---

१. गणश्च तासु पूज्योऽथ इति ङ. । २. रक्ष रक्ष प्रध्वंसय कवचायेति ङ. ।
३. ओं ह्रीमिति ख. । ४. ओं क्ष्मीमिति ख. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रक्षालितकराङ्घ्रिः सन विन्यस्यार्घ्यकरो नरः।
अर्घ्याद्भिस्तु शिरः प्रोक्ष्य द्वारदेशादिकं तथा ॥ ३ ॥
आरभेद् द्वारयागञ्च तोरणेशान् प्रपूजयेत्। अश्वत्थोदुम्बरवटप्लक्षाः पूर्वादिगा नगाः ॥४॥
ऋगिन्द्रशोभनं प्राच्यां यजुर्यमसुभद्रकम्। सामापश्च सुधन्वाख्यं सोमाथर्वसुहोत्रकम् ॥५॥
तोरणान्ताः पताकाश्च कुमुदाद्या घटद्वयम्। द्वारि द्वारि स्वनाम्नाच्र्याः पूर्वे पूर्णश्च पुष्करः ॥
आनन्दनन्दनौ दक्षो वीरसेनः सुषेणकः। सम्भवप्रभवौ सौम्ये द्वारपांश्चैव पूजयेत् ॥७॥
अस्त्रजप्तपुष्पक्षेपाद्विघ्नानुत्सार्य संविशेत्। भूतशुद्धिं विधायाथ विन्यस्य कृतमुद्रकः ॥८॥
फट्कारान्तां शिखां जप्त्वा सर्षपान् दिक्षु निक्षिपेत्। वासुदेवेन गोमूत्रं सङ्कर्षणेन गोमयम् ॥
प्रद्युम्नेन पयस्तज्जाद् दधि नारायणाद् घृतम्। एकद्वित्र्यादिवाराणि घृताद्वै भागतोधिकम् ॥
घृतपात्रे तदेकत्र पञ्चगव्यमुदाहृतम्। मण्डपप्रोक्षणायैकञ्चापरम्प्राशनाय च ॥११॥
स्नानाय दशकुम्भेषु इन्द्राद्यान् लोकपान् यजेत्। पूज्याज्ञां श्रावयेत्तांश्च स्थातव्यं चाज्ञया हरेः॥
यागद्रव्यादि संरक्ष्य विकिरान् विकिरेत्ततः। मूलाष्टशतसञ्जप्तान् कुशकूर्चान् हरेच्च तान् ॥
ऐशान्यां दिशि तत्रस्थं स्थाप्य कुम्भञ्च वर्द्धनीम्। कुम्भे साङ्गं हरिं प्राच्र्य वर्द्धन्यामस्त्रमर्चयेत्॥
प्रदक्षिणं यागगृहं वर्द्धन्याच्छिन्नधारया। सिञ्चन्नयेत्ततः कुम्भं पूजयेच्च स्थिरासने ॥१५॥
सपञ्चरत्नवस्त्राढ्यकुम्भे गन्धादिभिर्हरिम्। वर्द्धन्यां हेमगर्भायां यजेदस्त्रञ्च वामतः ॥१६॥
तत्समीपे वास्तुलक्ष्मीं भूविनायकमच्र्चयेत्। स्नपनं कल्पयेद्विष्णोः सङ्क्रान्त्यादौ तथैव च ॥
पूर्णकुम्भान् नव स्थाप्य नवकोणेषु निर्व्रणान। पाद्यमर्घ्यमाचमनीयं पञ्चगव्यञ्च निःक्षिपेत ॥
पूर्वादिकलसेग्न्यादौ पञ्चामृतजलादिकम्। दधि क्षीरं मधूष्णोदं पाद्यं स्याच्चतुरङ्गकम् ॥१९॥
पद्मश्यामाकदूर्वाश्च विष्णुपत्नी च पाद्यकम्। तथाष्टाङ्गार्घ्यमाख्यातं यवगन्धफलाक्षतम् ॥२०॥
कुशाः सिद्धार्थपुष्पाणि तिला द्रव्याणि चार्हणम्[१]। लवङ्गकक्कोलयुतं दद्यादाचमनीयकम् ॥२१॥
स्नापयेन्मूलमन्त्रेण देवं पञ्चामृतैरपि। शुद्धोदं मध्यकुम्भेन देवमूर्द्ध्नि विनिःक्षिपेत् ॥२२॥
कलशान्निःसृतं तोयं कूर्चाग्रं[२] संस्पृशेन्नरः। शुद्धोदकेन पाद्यञ्च अर्घ्यमाचमनन्ददेत् ॥२३॥
परिमृज्य पटेनाङ्गं सवस्त्रं मण्डलं नयेत्। तत्राभ्यच्र्याचरेद्धोमं कुण्डादौ प्राणसंयमी ॥२४॥
प्रक्षाल्य हस्तौ रेखाश्च तिस्रः पूर्वाग्रगामिनीः। दक्षिणाद्युत्तरान्ताश्च तिस्रश्चैवोत्तराग्रगाः॥२५॥
अर्घ्योदकेन सम्प्रोक्ष्य योनिमुद्राम्प्रदर्शयेत। ध्यात्वाग्निरूपञ्चाग्निन्तु योन्यां कुण्डे क्षिपेन्नरः॥
पात्राण्यासादयेत् पश्चाद्दर्भस्त्रुक्स्त्रुवकादिभिः। वाहुमात्राः परिधय इध्मव्रश्चनमेव च ॥२७॥
प्रणीता प्रोक्षणीपात्रमाज्यस्थाली घृतादिकम्। प्रस्थद्वयं तण्डुलानां युग्मं युग्ममधोमुखम् ॥२८॥
प्रणीताप्रोक्षणीपात्रे न्यसेत् प्रागगग्रं कुशम्। अद्भिः पूर्य्यप्रणीतान्तु ध्यात्वा देवं प्रपूज्य च ॥
प्रणीतां स्थापयेदग्रे द्रव्याणाञ्चैव मध्यतः। प्रोक्षणीमद्भिः सम्पूर्य्य प्राच्र्य दक्षे तु विन्यसेत् ॥
चरुञ्च श्रपयेदग्नौ ब्रह्माणं दक्षिणे न्यसेत्। कुशानास्तीर्य्य पूर्वादौ परिधीन् स्थापयेत्ततः ॥३१॥
वैष्णवीकरणं कुर्य्याद् गर्भाधानादिना नरः। गर्भाधानं पुंसवनं सीमन्तोन्नयनञ्जनिः ॥३२॥

१. चार्हणा इति ख. ङ.। २. दूर्वाग्रमिति ङ.।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नामादिसमावर्त्तनान्तं जुहुयादष्ट चाहुतीः । पूर्णाहुतीः प्रतिकर्म्म स्रुचा स्रुवसुयुक्तया ॥३३॥
कुण्डमध्ये ऋतुमतीं लक्ष्मीं सञ्चिन्त्य होमयेत् । कुण्डलक्ष्मीः समाख्याता प्रकृतिस्त्रिगुणात्मिका ॥
सा योनिः सर्वभूतानां विद्यामन्त्रगणस्य च । विमुक्तेः कारणं वह्निः परमात्मा च मुक्तिदः ॥
प्राच्यां शिरः समाख्यातं बाहू कोणे व्यवस्थितौ । ईशानाग्नेयकोणे तु जङ्घे वायव्यनैर्ऋते ॥
उदरं कुण्डमित्युक्तं योनिर्योनिर्विधीयते । गुणत्रयं मेखलाःस्युर्ध्यात्वैवं समिधो दश ॥३७॥
पञ्चाधिकांस्तु जुहुयात् प्रणवान्मुष्टिमुद्रया[१] । पुनराधारौ जुहुयाद्वाय्वग्न्यन्तं ततः श्रपेत् ॥३८॥
ईशान्तं मूलमन्त्रेण आज्यभागौ तु होमयेत् । उत्तरे द्वादशान्तेन दक्षिणे तेन मध्यतः ॥३९॥
व्याहृत्या पद्ममध्यस्थं ध्यायेद्वह्निन्तु संस्कृतम् । वैष्णवं सप्तजिह्वं च सूर्यकोटिसमप्रभम् ॥४०॥
चन्द्रवक्त्रञ्च[२] सूर्याक्षं जुहुयाच्छतमष्ट च । तदर्द्धञ्चाष्ट मूलेन अङ्गानाञ्च दशांशतः ॥४१॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये अग्निकार्यकथनं नाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ।

पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

पवित्राधिवासनादिविधिः ।

अग्निरुवाच

सम्पाताहुतिनासिच्य[३] पवित्राण्यधिवासयेत् । नृसिंहमन्त्रजप्तानि गुप्तान्यस्त्रेण तानि तु ॥१॥
वस्त्रसंवेष्टितान्येव पात्रस्थान्यभिमन्त्रयेत् । बिल्वाद्यद्भिः प्रोक्षितानि मन्त्रेण चैकधा द्विधा[४] ॥
कुम्भपार्श्वे तु संस्थाप्य रक्षां विज्ञाप्य देशिकः । दन्तकाष्ठञ्चामलकं पूर्वे सङ्कर्षणेन तु ॥३॥
प्रद्युम्नेन भस्मतिलान् दद्ये गोमयमृत्तिकाम् । वारुणे चानिरुद्धेन सौम्ये नारायणेन च ॥४॥
दर्भोदकञ्चाथ हृदा अग्नौ कुङ्कुमरोचनम् । ऐशान्यां शिरसा धूपं शिखया नैर्ऋतेऽप्यथ ॥५॥
मूलपुष्पाणि दिव्यानि कवचेनाथ वायवे । चन्दनाम्ब्वक्षतदधिदूर्वाश्च पुटिकास्थिताः ॥६॥
गृहं त्रिसूत्रेणावेष्ट्य पुनः सिद्धार्थकान् क्षिपेत् । दद्यात्पूजाक्रमेणाथ स्वैः स्वैर्गन्धपवित्रकम् ॥
मन्त्रैर्वै द्वारपादिभ्यो विष्णुकुम्भे त्वनेन च । विष्णुतेजोभवं रम्यं सर्वपातकनाशनम् ॥८॥
सर्वकामप्रदं देवं तवाङ्गे धारयाम्यहम् । सम्पूज्य धूपदीपाद्यैर्व्रजेद्द्वारसमीपतः ॥९॥
गन्धपुष्पाक्षतोपेतं पवित्रञ्चाखिलेर्प्पयेत्[५] । पवित्रं वैष्णवं तेजो महापातकनाशनम् ॥१०॥
धर्म्मकामार्थसिद्ध्यर्थं स्वकेऽङ्गे धारयाम्यहम् । आसने परिवारादौ गुरौ दद्यात् पवित्रकम् ॥
गन्धादिभिः समभ्यर्च्य गन्धपुष्पाक्षतादिमत् । विष्णुतेजोभवेत्यादिमूलेन हरयेर्पयेत् ॥१२॥
वह्निस्थाय ततो दत्वा देवं सम्प्रार्थयेत्ततः । क्षीरोदधिमहानागशय्यावस्थितविग्रह ॥१३॥
प्रातस्त्वां पूजयिष्यामि सन्निधौ भव केशव । इन्द्रादिभ्यस्ततो दत्वा विष्णुपार्षदके बलिम् ॥

---

१. स्वस्तिमुद्रयेति ङ. ।
२. पञ्चवक्त्रञ्चेति ङ. ।
३. सञ्जाताहुतिनाऽऽसिच्येति ङ. ।
४. मन्त्राणां चैकधा द्विधेति ख. ।
५. पवित्रं पार्श्वतो नयेदिति ङ. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ततो देवाग्रतः कुम्भं वासोयुगसमन्वितम्। रोचनाचन्द्रकाश्मीरगन्धाद्युदकसंयुतम् ॥१५॥
गन्धपुष्पादिनाभ्यूच्य मूलमन्त्रेण पूजयेत्। मण्डपाद्बहिरागत्य विलिप्ते मण्डलत्रये ॥१६॥
पञ्चगव्यञ्चरुन्दन्तकाष्ठञ्चैव क्रमाद्भवेत्। पुराणश्रवणं स्तोत्रं पठन् जागरणं निशि ॥१७॥
परप्रेषकबालानां स्त्रीणां भोगभुजां तथा। सद्योधिवासनं कुर्य्याद्विना गन्धपवित्रकम् ॥१८॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये पवित्राधिवासनं नाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः।

षट्त्रिंशोऽध्यायः

पवित्रारोपणविधानम्।

अग्निरुवाच

प्रातःस्नानादिकं कृत्वा द्वारपालान्[1] प्रपूज्य च। प्रविश्य गुप्ते देशे च समाकृष्याथ धारयेत् ॥
पूर्वाधिवासितं द्रव्यं वस्त्राभरणगन्धकम्। निरस्य सर्वनिर्म्माल्यं देवं संस्थाप्य पूजयेत् ॥२॥
पञ्चामृतैः कषायैश्च शुद्धगन्धोदकैस्ततः। पूर्वाधिवासितं दद्याद्वस्त्रं गन्धं च पुष्पकम् ॥३॥
अग्नौ हुत्वा नित्यवच्च देवं सम्प्रार्थयेन्नमेत्[2]। समर्प्य कर्म्म देवाय पूजां नैमित्तिकीं चरेत् ॥
द्वारपालविष्णुकुम्भवर्द्धनीः प्रार्थयेद्धरिम्। अतो देवेति मन्त्रेण मूलमन्त्रेण कुम्भके ॥५॥
कृष्ण कृष्ण नमस्तुभ्यं गृह्णीष्वेदं पवित्रकम्। पवित्रीकरणार्थाय वर्षपूजाफलप्रदम् ॥६॥
पवित्रकं कुरुष्वाद्य यन्मया दुष्कृतं कृतम्। शुद्धो भवाम्यहं देव त्वत्प्रसादात सुरेश्वर ॥७॥
पवित्रञ्च हृदाद्यैस्तु आत्मानमभिषिञ्य च। विष्णुकुम्भञ्च सम्प्रोच्य व्रजेद्देवसमीपतः ॥८॥
पवित्रमात्मने दद्याद्रक्षाबन्धं विसृज्य च[3]। गृहाण ब्रह्मसूत्रञ्च यन्मया कल्पितं प्रभो ॥९॥
कर्म्मणां पूरणार्थाय यथा दोषो न मे भवेत्। द्वारपालासनगुरुमुख्यानाञ्च पवित्रकम् ॥१०॥
कनिष्ठादि च देवाय वनमालाञ्च मूलतः। हृदादिविष्वक्सेनान्ते पवित्राणि समर्पयेत् ॥११॥

वह्नौ हुत्वाग्निवर्त्तिभ्यो विष्णवादिभ्यः पवित्रकम्।
प्रार्च्य पूर्णाहुतिं दद्यात् प्रायश्चित्ताय मूलतः॥ १२॥

अष्टोत्तरशतं वापि पञ्चोपनिषदैस्ततः। मणिविद्रुममालाभिर्म्मन्दारकुसुमादिभिः ॥१३॥
इयं सांवत्सरी पूजा तवास्तु गरुडध्वज। वनमाला यथा देव कौस्तुभं सततं हृदि ॥१४॥
तद्वत् पवित्रतन्तूंश्च पूजां च हृदये वह[4]। कामतोऽकामतो वापि यत्कृतं नियमार्च्चने ॥१५॥
विधिना विघ्नलोपेन परिपूर्णं तदस्तु मे। प्रार्थ्य नत्वा क्षमाप्याथ पवित्रं मस्तकेऽर्प्पयेत् ॥
दत्वा बलिं दक्षिणाभिर्वैष्णवन्तोषयेद् गुरुम्। विप्रान् भोजनवस्त्राद्यैर्दिवसं पक्षमेव वा ॥१७॥
पवित्रं स्नानकाले च अवतार्य्यं समर्प्पयेत्। अनिवारितमन्नाद्यं दद्याद्भुङ्क्तेथ च स्वयम् ॥१८॥
विसर्जनेह्नि सम्पूज्य पवित्राणि विसर्ज्जयेत्। सांवत्सरीमिमां पूजां सम्पाद्य विधिवन्मम ॥१९॥
व्रज पवित्रकेदानीं विष्णुलोकं विसर्जितः। मध्ये सोमेशयोः प्राच्चर्य विष्वक्सेनं हि तस्य च ॥

१. लोकपालानिति ख.। २. प्रार्थयेन्न्यसेदिति ग.।
३. रक्षाबन्धं विमुच्य चेति ख.। पवित्रं मूलतो दद्याद्रक्षार्थे तद्विसृज्य चेति ङ.।
४. पवित्रकं त्वञ्च पूजायां हृदये बहेति ङ.।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पवित्राणि समभ्यर्च्च्य ब्राह्मणाय समर्प्पयेत् । यावन्तस्तन्तवस्तस्मिन् पवित्रे परिकल्पिताः ।।
तावद्युगसहस्राणि विष्णुलोके महीयते । कुलानां शतमुद्धृत्य दश पूर्व्वान् दशापरान् ।।
विष्णुलोके तु संस्थाप्य स्वयं मुक्तिमवाप्नुयात् ।। २२ ।।

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये विष्णुपवित्रारोहणं नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः ।

सप्तत्रिंशोऽध्यायः

सर्वदेवपवित्रारोहणविधिः ।

अग्निरुवाच

सङ्क्षेपात् सर्वदेवानां पवित्रारोहणं[1] शृणु । पवित्रं सर्वलक्ष्म स्यात् खरमानलगं त्वपि ।।१।।
जगद्योने समागच्छ परिवारगणैः सह । निमन्त्रयाम्यहं प्रातर्द्द्यान्तुभ्यं पवित्रकम् ।।२।।
जगत्सृजे[2] नमस्तुभ्यं गृह्णीष्वेदं पवित्रकम । पवित्रीकरणार्थाय वर्षपूजाफलप्रदम् ।।३।।
शिवदेव नमस्तुभ्यं गृह्णीष्वेदं पवित्रकम् । मणिविद्रुममालाभिर्म्मन्दारकुसुमादिभिः ।।४।।
इयं सांवत्सरी पूजा तवास्तु वेदवित्पते । सांवत्सरीमिमां पूजां सम्पाद्य विधिवन्मम ।।५।।
व्रज पवित्रकेदानीं स्वर्गलोकं विसर्ज्जितः । सूर्य्यदेव नमस्तुभ्यं गृह्णीष्वेदं पवित्रकम् ।।६।।
पवित्रीकरणार्थाय वर्षपूजाफलप्रदम् । शिवदेव नमस्तुभ्यं गृह्णीष्वेदं पवित्रकम् ।।७।।
पवित्रीकरणार्थाय वर्षपूजाफलप्रदम् । वाणेश्वर[3] नस्तुभ्यं गृह्णीष्वेदं पवित्रकम् ।।८।।
पवित्रीकरणार्थाय वर्षपूजाफलप्रदम् । शक्तिदेवि नमस्तुभ्यं गृह्णीष्वेदं पवित्रकम् ।।९।।
पवित्रीकरणार्थाय वर्षपूजाफलप्रदम् । नारायणमयं सूत्रमनिरुद्धमयं वरम्[4] ।।१०।।
धनधान्यायुरारोग्यप्रदं सम्प्रददामि ते । कामदेवमयं सूत्रं सङ्कर्षणमयं वरम् ।।११।।
विद्यासन्ततिसौभाग्यप्रदं सम्प्रददामि ते । वासुदेवमयं सूत्रं धर्म्मकामार्थमोक्षदम् ।।१२।।
संसारसागरोत्तारकारणं प्रददामि ते । विश्वरूपमयं सूत्रं सर्व्वदं पापनाशनम् ।।१३।।
अतीतानागतकुलसमुद्धारं ददामि ते । कनिष्ठादीनि चत्वारि मनुभिस्तु क्रमाद्ददे ।।१४।।

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये सङ्क्षेपपवित्रारोहणं नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः ।

अष्टत्रिंशोऽध्यायः

देवालयनिर्म्माणफलम् ।

अग्निरुवाच

वासुदेवाद्यालयस्य कृतौ वक्ष्ये फलादिकम् । चिकीर्षोर्द्देवधामादि सहस्रजनिपापनुत् ।।१।।
मनसा सद्मकर्तॄणां शतजन्माघनाशनम् । येनुमोदन्ति कृष्णस्य क्रियमाणं नरा गृहम्[5] ।।२।।

---

१. पवित्रारोपणमिति ख. ।
२. जगत्सूते इति ङ. ।
३. गणेश्वर इति, ग. घ. ङ. ।
४. परमिति ङ. ।
५. गृहादिकं ग. घ. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तेपि पापैर्व्विनिर्मुक्ताः प्रयान्त्यच्युतलोकताम्। समतीतं भविष्यञ्च कुलानामयुतं नरः ॥३॥
विष्णुलोकं नयत्याशु कारयित्वा हरेर्गृहम्। वसन्ति[1] पितरो हृष्टा[2] विष्णुलोके ह्यलङ्कृताः ॥
विमुक्ता नारकैर्दुःखैः कर्त्तुः कृष्णस्य मन्दिरम्। ब्रह्महत्यादिपापौघघातकं देवतालयम् ॥५॥
फलं यन्नाप्यते यज्ञैर्द्धाम कृत्वा तदाप्यते। देवागारे कृते सर्व्वतीर्थस्नानफलं लभेत् ॥६॥
देवाद्यर्थे हतानाञ्च रणे यत्ततफलादिकम्। शाठ्येन पांशुना वापि कृतं धाम च नाकदम् ॥७॥
एकायतनकृत् स्वर्गी त्र्यगारी ब्रह्मलोकभाक्। पञ्चागारी शम्भुलोकमष्टागाराद्धरौ स्थितिः ॥
षोडशालयकारी तु[3] भुक्तिमुक्तिमवाप्नुयात। कनिष्ठं मध्यमं श्रेष्ठं कारयित्वा हरेर्गृहम् ॥९॥
स्वर्गं च वैष्णवं लोकं मोक्षमाप्नोति च क्रमात्। श्रेष्ठमायतनं विष्णोः कृत्वा यद्धनवान् लभेत् ॥
कनिष्ठेनैव तत् पुण्यं प्राप्नोत्यधनवान्नरः। समुत्पाद्य धनं कृत्वा स्वल्पेनापि[4] सुरालयम् ॥११॥
कारयित्वा हरेः पुण्यं सम्प्राप्नोत्यधिकं वरम्। लक्षेणाथ सहस्रेण शतेनार्द्धेन वा हरेः ॥१२॥
कारयन् भवनं याति यत्रास्ते गरुडध्वजः। बाल्ये तु क्रीडमाना ये पांशुभिर्भवनं हरेः ॥१३॥
वासुदेवस्य कुर्व्वन्ति तेपि तल्लोकगामिनः। तीर्थे चायतने पुण्ये सिद्धक्षेत्रे तथाष्टमे ॥१४॥
कर्त्तुरायतनं विष्णोर्यथोक्तात् त्रिगुणं फलम्। बन्धूकपुष्पविन्यासैः सुधापङ्केन वैष्णवम् ॥१५॥
ये विलिम्पन्ति भवनं ते यान्ति भगवत्पुरम्। पतितं पतमानन्तु तथार्द्धपतितं नरः ॥१६॥
समुद्धृत्य हरेर्द्धाम प्राप्नोति द्विगुणं फलम्। पतितस्य तु यः कर्त्ता पतितस्य च रक्षिता ॥१७॥
विष्णोरायतनस्येह स नरो विष्णुलोकभाक्। इष्टकानिचयस्तिष्ठेद् यावदायतने हरेः ॥१८॥
सकुलस्तस्य वै कर्त्ता विष्णुलोके महीयते। स एव पुण्यवान् पूज्य इह लोके परत्र च ॥१९॥
कृष्णस्य वासुदेवस्य यः कारयति केतनम्। जातः स एव सुकृती कुलन्तेनैव पावितम् ॥२०॥
विष्णुरुद्रार्कदेव्यादेर्गृहकर्त्ता स कीर्त्तिभाक्। किं तस्य वित्तनिचयैर्मूढस्य परिरक्षिणः ॥२१॥
दुःखार्ज्जितैर्यः कृष्णस्य न कारयति केतनम्। नोपभोग्यं धनं यस्य पितृविप्रदिवौकसाम् ॥
नोपभोगाय बन्धूनां व्यर्थस्तस्य धनागमः। यथा ध्रुवो नृणां मृत्युर्वित्तनाशस्तथा ध्रुवः ॥२३॥
मूढस्तत्राऽनुबध्नाति जीवितेथ चले धने। यदा वित्तं न दानाय नोपभोगाय देहिनाम् ॥२४॥
नापि कीर्त्यै न धर्मार्थं तस्य स्वाम्येथ को गुणः। तस्माद्वित्तं समासाद्य दैवाद्वा पौरुषादथ ॥

दद्यात् सम्यग् द्विजाग्र्येभ्यः कीर्त्तनानि च कारयेत्।
दानेभ्यश्चाधिकं यस्मात् कीर्त्तनेभ्यो वरं यतः ॥ २६ ॥

अतस्तत्कारयेद्धीमान् विष्ण्वादेर्म्मन्दिरादिकम्। विनिवेश्य हरेर्द्धाम भक्तिमद्भिर्न्नरोत्तमैः॥
निवेशितं भवेत कृत्स्नं त्रैलोक्यं सचराचरम्। भूतं भव्यं भविष्यञ्च स्थूलं सूक्ष्मं तथेतरत्[5]॥
आब्रह्मस्तम्बपर्य्यन्तं सर्व्वं विष्णोः समुद्भवम्। तस्य देवादिदेवस्य सर्वगस्य[6] महात्मनः ॥
निवेश्य भवनं विष्णोर्न्न भूयो भुवि जायते। यथा विष्णोर्द्धामकृतौ फलं तद्वद्दिवौकसाम् ॥

---

१. नन्दन्ति इति ख. ग. । वल्गन्ति इति ङ. । २. हृष्टा इति ख. ग. ।
३. षोडशागारकारी तु इति ग. । ४. स्वल्पेनैवेति ख. ।
५. तथैव च इति ग. । ६. सर्व्वेशस्य इति ख. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शिवब्रह्मार्क्कविघ्नेशचण्डीलक्ष्म्यादिकात्मनाम्। देवालयकृतेः पुण्यं प्रतिमाकरणेऽधिकम् ।।३१।।
प्रतिमास्थापने यागे फलस्यान्तो न विद्यते । मृण्मयाद्दारुजे पुण्यं दारुजादिष्टकाभवे ।।३२।।
इष्टकोत्थाच्छैलजे स्याद्धेमादेरधिकं फलम् । सप्तजन्मकृतं पापं प्रारम्भादेव नश्यति ।।३३।।
देवालयस्य स्वर्गी स्यान्नरकं न स गच्छति। कुलानां शतमुद्धृत्य विष्णुलोकं नयेन्नरः ।।३४।।
यमो यमभटानाह देवमन्दिरकारिणः ।

यम उवाच

प्रतिमापूजादिकृतो नानेया नरकं नराः ।। ३५ ।।

देवालयाद्यकर्त्तार आनेयास्ते तु गोचरे[१] । विचरध्वं यथान्यायन्नियोगो मम पाल्यताम्[२] ।।
नाज्ञाभङ्गं करिष्यन्ति भवतां जन्तवः क्वचित्। केवलं ये जगत्तातमनन्तं समुपाश्रिताः ।।३७।।
भवद्भिः परिहर्त्तव्यास्तेषां नात्रास्ति संस्थितिः। ये च भागवता लोके तच्चित्तास्तत्परायणाः ।।
पूजयन्ति सदा विष्णुं ते वस्त्याज्याः सुदूरतः ।
यस्तिष्ठन् प्रस्वपन् गच्छन्नुत्तिष्ठन् स्खलिते स्थिते[३] ।।३६।।

सङ्कीर्त्तयन्ति गोविन्दं ते वस्त्याज्याः सुदूरतः । नित्यनैमित्तिकैर्देवं ये यजन्ति जनार्दनम् ।।
नावलोक्या भवद्भिस्ते तद्गता यान्ति तद्गतिम् । ये पुष्पधूपवासोभिर्भूषणैश्चातिवल्लभैः ।।४१।।
अर्च्चयन्ति न ते ग्राह्या नराः कृष्णालये गताः[४] । उपलेपनकर्त्तारः सम्मार्जनपराश्च ये ।।४२।।
कृष्णालये परित्याज्यास्तेषां पुत्रास्तथा कुलम्। येन चायतनं विष्णोः कारितं तत्कुलोद्भवम् ।।
पुंसां शतं नावलोक्यं भवद्भिर्दुष्टचेतसा। यस्तु देवालयं विष्णोर्दारुशैलमयं तथा ।।४४।।
कारयेन्मृण्मयं वापि सर्वपापैः प्रमुच्यते । अहन्यहनि यज्ञेन यजतो यन्महाफलम् ।।४५।।
प्राप्नोति तत् फलं विष्णोर्यः कारयति केतनम्। कुलानां शतमागामि समतीतं तथा शतम् ।।४६।।
कारयन् भगवद्धाम नयत्यच्युतलोकताम् । सप्तलोकमयो विष्णुस्तस्य यः कुरुते गृहम्।।४७।।
तारयत्यक्षयांल्लोकानक्षयान् प्रतिपद्यते । इष्टकाचयविन्यासो यावन्त्यब्दानि तिष्ठति ।।४८।।
तावद्वर्षसहस्राणि तत्कर्त्तुर्दिवि संस्थितिः। प्रतिमाकृद्विष्णुलोकं स्थापको लीयते हरौ ।।
देवसद्मप्रतिकृतिप्रतिष्ठाकृत्तु गोचरे ।। ४९ ।।

अग्निरुवाच

यमोक्ता नानयंस्तेथ प्रतिष्ठादिकृतं हरेः । हयशीर्षः प्रतिष्ठार्थं[५] देवानां ब्रह्मणेऽब्रवीत् ।।५०।।

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये देवालयादिमाहात्म्यवर्णनं नाम
अष्टत्रिंशोऽध्यायः ।

---

१. आनेयास्त्वविशेषत इति ग. ।
२. नियमो मेऽनुपाल्यतामिति ख. ।
३. जन्तवः क्वचिदिति ख. ।
४. कृष्णाश्रये गता इति ख. घ. ङ. ।
५. प्रतिष्ठाद्यमिति ख. ङ. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ऊनचत्वारिंशोऽध्यायः

भूपरिग्रहविधानम् ।

हयग्रीव उवाच

विष्ण्वादीनां प्रतिष्ठादि वक्ष्ये ब्रह्मन् श्रृणुष्व मे। प्रोक्तानि पञ्चरात्राणि सप्तरात्राणि वै मया ॥
व्यस्तानि मुनिभिर्लोके पञ्चविंशतिसङ्ख्यया । हयशीर्षं तन्त्रमाद्यं तन्त्रं त्रैलोक्यमोहनम् ॥२॥
वैभवं पौष्करं तन्त्रं प्रह्लादङ्गार्ग्यगालवम् । नारदीयञ्च सम्प्रश्नं शाण्डिल्यं वैश्वकं[१] तथा ॥३॥
सत्योक्तं शौनकं तन्त्रं वासिष्ठं ज्ञानसागरम् । स्वायम्भुवं कापिलञ्च तार्क्ष्यं नारायणीयकम् ॥४॥
आत्रेयं नारसिंहाख्यमानन्दाख्यं तथारुणम् । बौधायनं तथार्षं तु[२] विश्वोक्तं तस्य सारतः ॥
प्रतिष्ठां हि द्विजः कुर्य्यान्मध्यदेशादिसम्भवः । न कच्छदेशसम्भूतः कावेरीकोङ्कणोद्गतः ॥
कामरूपकलिङ्गोत्थः काञ्चीकाश्मीरकोशलः[३] । आकाशवायुतेजोम्बुभूरेताः पञ्च रात्रयः ॥७॥
अचैतन्यास्तमोद्रिक्ताः पञ्चरात्रविवर्जितम् । ब्रह्माहं विष्णुरमल इति विद्यात्स देशिकः ॥८॥
सर्व्वलक्षणहीनोपि स गुरुस्तन्त्रपारगः । नगराभिमुखाः स्थाप्या देवा न च पराङ्मुखाः ॥
कुरुक्षेत्रे गयादौ च नदीनान्तु[४] समीपतः । ब्रह्मा मध्ये तु नगरे पूर्वे शक्रस्य शोभनम् ॥१०॥
अग्नावग्नेश्च मातॄणां भूतानाञ्च यमस्य च । दक्षिणे चण्डिकायाश्च पितृदैत्यादिकस्य च ॥
नैरृते मन्दिरं कुर्यात् वरुणादेश्च वारुणे । वायोर्नागस्य वायव्ये सौम्ये यक्षगुहस्य च ॥१२॥
चण्डीशस्य महेशस्य ऐशे विष्णोश्च सर्वशः । पूर्वदेवकुलं पीड्य प्रासादं स्वल्पकं त्वथ ॥१३॥
समं वाप्यधिकं वापि न कर्त्तव्यं विजानता । उभयोर्द्विगुणां सीमां त्यक्त्वा चोच्छ्रयसम्मिताम् ॥
प्रासादं कारयेदन्यं नोभयं पीडयेद् बुधः । भूमौ तु शोधितायां तु कुर्याद्भूमिपरिग्रहम् ॥१५॥
प्राकारसीमापर्य्यन्तं ततो भूतबलिं हरेत् । माषं हरिद्राचूर्णन्तु सलाजं दधिसक्तुभिः ॥१६॥
अष्टाक्षरेण सक्तूँश्च पातयित्वाष्टदिक्षु च । राक्षसाश्च पिशाचाश्च यस्मिंस्तिष्ठन्ति भूतले ॥
सर्व्वे ते व्यपगच्छन्तु स्थानं कुर्य्यामहं हरेः । हलेन वाहयित्वा गां गोभिश्चैवावदारयेत् ॥
परमाण्वष्टकेनैव रथरेणुः प्रकीर्तितः । रथरेण्वष्टकेनैव त्रसरेणुः प्रकीर्त्यते ॥१९॥
तैरष्टभिस्तु बालाग्रं लिख्या तैरष्टभिर्मता । ताभिर्यूकाष्टभिः ख्याता ताश्चाष्टौ यवमध्यमः ॥२०॥
यवाष्टकैरङ्गुलं स्याच्चतुर्विंशाङ्गुलः करः । चतुरङ्गुलसंयुक्तः स हस्तः[५] पद्महस्तकः ॥२१॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये भूपरिग्रहो नाम
ऊनचत्वारिंशोऽध्यायः ।

---

१. वैश्वरं तथेति ग. ङ. घ. । २. तथाष्टाङ्गमिति ख. ङ. ।
३. काश्मीरके स्थित इति ग. । ४. नद्यद्रिषु इति ख. ग. ङ. ।
५. नृहस्त इति ख. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

चत्वारिंशोऽध्यायः

अर्घ्यदानविधानम् ।

भगवानुवाच

पूर्व्वमासीत् महद्भूतं सर्व्वभूतभयङ्करम् । तद्देवैर्न्निहितं भूमौ स वास्तुपुरुषः स्मृतः ॥१॥
चतुःषष्टिपदे क्षेत्रे ईशं कोणार्द्धसंस्थितम् । घृताक्षतैस्तर्प्पयेत्तं पर्ज्जन्यं पदगं ततः ॥२॥
उत्पलाद्भिर्जयन्तञ्च द्विपदस्थं पताकया । महेन्द्रञ्चैककोष्ठस्थं सर्व्वरक्तैः पदे रविम् ॥३॥
वितानेनार्द्धपदगं सत्यं पदे भृशं घृतैः । व्योम शाकुनमांसेन[१] कोणार्द्धपदसंस्थितम् ॥४॥
स्रुचा चार्द्धपदे वह्निं पूषाणं लाजयैकतः । स्वर्णेन वितथं द्विष्ठं मथनेन गृहाक्षतम् ॥५॥
मांसौदनेन धर्म्मेशमेकैकस्मिन् स्थितं द्वयम् । गन्धर्वं द्विपदं गन्धैर्भृशं शाकुनजिह्वया ॥६॥
एकस्थमूर्द्ध्वसंस्थञ्च मृगं नीलपटैस्तथा । पितॄन् कृशरयार्द्धस्थं दन्तकाष्ठैः पदस्थितम् ॥७॥
दौवारिकं द्विसंस्थञ्च सुग्रीवं यावकेन तु । पुष्पदन्तं कुशस्तम्बैः पद्मै र्व्वरुणमेकतः ॥८॥
असुरं सुरया द्विष्ठं पदे शेषं घृताम्भसा । यवैः पापं पदार्द्धस्थं रोगमर्द्धे च मण्डकैः ॥९॥
नागपुष्पैः पदे नागं मुख्यं भक्ष्यैर्द्विसंस्थितम् । मुद्गौदनेन भल्लाटं पदे सोमं पदे तथा ॥१०॥
मधुना पायसेनाथ शालूकेन ऋषिं द्वये । पदे दितिं लोपिकाभिरर्द्धे दितिमथापरम् ॥११॥
पूरिकाभिस्ततश्चापमीशाधः पयसा पदे । ततोधश्चापवत्सन्तु दध्ना चैकपदे स्थितम् ॥१२॥
लड्डुकैश्च मरीचिन्तु पूर्वकोष्ठचतुष्टये[२] । सवित्रे रक्तपुष्पाणि ब्रह्माधःकोणकोष्ठके ॥१३॥
तदधःकोष्ठके दद्यात् सावित्र्यै च कुशोदकम् । विवस्वतेऽरुणं दद्याच्चन्दनञ्चतुरङ्घ्रिषु ॥१४॥
रक्षोधःकोणकोष्ठे तु इन्द्रायान्नं निशान्वितम् । इन्द्रजयाय तस्याधो घृतान्नं कोणकोष्ठके ॥
चतुष्पदेषु दातव्यमिन्द्राय गुडपायसम् । वाय्वधःकोणदेशे तु रुद्राय पक्वमांसकम् ॥१६॥
तदधःकोणकोष्ठे तु यक्षायार्द्रं फलन्तथा । महीधराय मांसान्नं माषञ्च चतुरङ्घ्रिषु ॥१७॥
मध्ये चतुष्पदे स्थाप्या ब्रह्मणे तिलतण्डुलाः । चरकीं माषसर्प्पिर्भ्यां स्कन्दं कृशरयासृजा ॥
रक्तपद्मैर्विदारीञ्च कन्दर्पञ्च पलोदनैः । पूतनां पलपित्ताभ्यां मांसासृग्भ्याञ्च जम्भकम् ॥१९॥
पित्तासृगस्थिभिः पापां पिलिपिञ्जं[३] स्रजासृजा । ईशाद्यान् रक्तमांसेन अभावादक्षतैर्यजेत् ॥
रक्षोमातृगणेभ्यश्च पिशाचादिभ्य एव च । पितृभ्यः क्षेत्रपालेभ्यो वलीन् दद्यात् प्रकामतः ॥
अहुत्वैतानसन्तप्य प्रासादादीन्न कारयेत् । ब्रह्मस्थाने हरिं लक्ष्मीं गणं पश्चात् समर्च्चयेत् ॥
महीश्वरं वास्तुमयं[४] वर्द्धन्या सहितं घटम् । ब्रह्माणं मध्यतः कुम्भे ब्रह्मादींश्च दिगीश्वरान् ॥
दद्यात् पूर्णाहुतिं पश्चात् स्वस्ति वाच्य प्रणम्य च ।
प्रगृह्य कर्करीं सम्यक् मण्डलन्तु प्रदक्षिणम् ॥ २४ ॥
सूत्रमार्गेण हे ब्रह्मंस्तोयधाराञ्च भ्रामयेत् । पूर्व्ववत्तेन मार्गेण सप्त वीजानि वापयेत् ॥२५॥

---

१. व्योम शाकुलमांसेनेति ख. ।
२. मध्यचतुष्टये इति ख. ।
३. पिलिपिच्छमिति ङ. ।
४. महीधरं वास्तुमयमिति ख. ङ. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रारम्भं तेन मार्गेण तस्य खातस्य कारयेत् । ततो गर्त्तं खनेन्मध्ये हस्तमात्रं प्रमाणतः॥२६॥
चतुरङ्गुलकं चाधश्चोपलिप्याच्चर्चयेत्ततः । ध्यात्वा चतुर्भुजं विष्णुमर्घ्यं दद्यात्तु कुम्भतः ॥२७॥
कर्कर्या पूरयेत् श्वभ्रं शुक्लपुष्पाणि च न्यसेत । दक्षिणावर्त्तकं श्रेष्ठं बीजैर्मृद्भिश्च पूरयेत् ॥२८॥
अर्घ्यदानं विनिष्पाद्य गोवस्त्रादीन्ददेद्गुरौ । कालज्ञाय स्थपतये वैष्णवादिभ्य अच्चर्चयेत् ॥
ततस्तु खानयेद्यनाज्जलान्तं यावदेव तु । पुरुषाधःस्थितं शल्यं[१] न गृहे दोषदं भवेत् ॥३०॥
अस्थिशल्ये भिद्यते वै भित्तिर्वै गृहिणोऽसुखम् । यन्नामशब्दं शृणुयात्तत्र शल्यं तदुद्भवम्॥३१॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये अर्घ्यदानकथनं नाम चत्वारिंशोऽध्यायः ।

एकचत्वारिंशोऽध्यायः

शिलादिन्यासविधानम् ।

भगवानुवाच

पादप्रतिष्ठां वक्ष्यामि शिलाविन्यासलक्षणम् । अग्रतो मण्डपः कार्य्यः कुण्डानान्तु चतुष्टयम्॥१॥
कुम्भन्यासेष्टकान्यासौ द्वारस्तम्भोच्छ्रयं शुभम् । पादोनं पूरयेत् खातं तत्र वास्तुं यजेत् समे ॥
इष्टकाश्च सुपकाः स्युर्द्वादशाङ्गुलसम्मिताः । सुविस्तारत्रिभागेन वैपुल्येन[२] समन्विताः ॥३॥
करप्रमाणा श्रेष्ठा स्याच्छिलाप्यथ शिलामये[३] । नव कुम्भांस्ताम्रमयान् स्थापयेदिष्टकाघटान् ॥
अद्भिः पञ्चकषायेण सर्व्वौषधिजलेन च । गन्धतोयेन च तथा कुम्भैस्तोयसुपूरितैः ॥५॥
हिरण्यव्रीहिसंयुक्तैर्गन्धचन्दनचर्च्चितैः । आपो हिष्ठेति तिसृभिः शन्नो देवीति चाप्यथ ॥६॥
तरत समन्दीरिति च[४] पावमानीभिरेव च । उदुत्तमं वरुणमिति कयानश्च तथैव च ॥७॥
वरुणस्येति मन्त्रेण हंसः शुचिषदित्यपि । श्रीसूक्तेन च तथा शिलाः संस्थाप्य संवटाः[५] ॥८॥
शय्यायां मण्डपे प्राच्यां मण्डले हरिमच्चर्चयेत् । जुहुयाज्जनयित्वाग्निं समिधो द्वादशीस्ततः ॥
आधारावाज्यभागौ तु प्रणवेनैव कारयेत् । अष्टाहुतीस्तथाष्टान्तैराज्यं[६] व्याहृतिभिः क्रमात् ॥
लोकेशानामग्नये वै सोमायावग्रहेषु च[७] । पुरुषोत्तमायेति च व्याहृतीर्जुहुयात्ततः ॥११॥
प्रायश्चित्तं ततः पूर्णां मूर्त्तिमांसघृतांस्तिलान् । वेदाद्यैर्द्वादशान्तेन[८] कुम्भेषु च पृथक् पृथक् ॥

प्राङ्मुखस्तु गुरुः कुर्य्यादष्टदिक्षु विलिप्य च ।
मध्ये चैकां शिलां कुम्भं न्यसेदेतान् सुरान् क्रमात् ॥ १३ ॥

पद्मं चैव महापद्मं मकरं कच्छपं तथा । कुमुदञ्च तथा नन्दं पद्मं शङ्खञ्च पद्मिनीम्॥१४॥

---

१. पुरुषाधिष्ठितं शल्यमिति ग. ।
२. सुविस्तारं विभागेन नैपुण्येनेति ख. ।
३. शिला स्यान्न शिलामये इति ग. ।
४. भवत्समन्दीरितीति ख. ग. ङ. ।
५. संयुता इति ङ. ।
६. अष्टाहुतीस्तथा पूर्णैराज्यमिति ग. घ. ङ. ।
७. सोमाय च ग्रहाय चेति ङ. ।
८. द्वादशार्णेन इति ख. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कुम्भान्न चालयेत्तेषु न्यसेदष्टेष्टकाः क्रमात् । ईशानान्ताश्च पूर्व्वादाविष्टकां प्रथमं न्यसेत् ॥१५॥
शक्तयो विमलाद्यास्तु इष्टकानान्तु देवताः । न्यसनीया यथायोगं मध्ये न्यस्या त्वनुग्रहा ॥
अव्यङ्गे चाक्षते पूर्णे मुनेरङ्गिरसः सुते । इष्टके त्वं प्रयच्छेष्टं प्रतिष्ठां कारयाम्यहम् ॥१७॥
मन्त्रेणानेन विन्यस्य इष्टका देशिकोत्तमः । गर्भाधानं ततः कुर्य्यान्मध्यस्थाने समाहितः ॥
कुम्भोपरिष्टाद्देवेशं पद्मिनीं न्यस्य देवताम् । मृत्तिकाश्चैव पुष्पाणि धातवो रत्नमेव च[१] ॥१६॥
लौहानि दिक्पतेरस्त्रं यजेद्वै गर्भभाजने । द्वादशाङ्गुलविस्तारे चतुरङ्गुलकोच्छ्रये ॥२०॥
पद्माकारे ताम्रमये भाजने पृथिवीं यजेत् । एकान्ते सर्वभूतेशे पर्वतासनमण्डिते ॥२१॥
समुद्रपरिवारे त्वं देवि गर्भं समाश्रय । नन्दे नन्दय वासिष्ठे वसुभिः प्रजया[२] सह ॥२२॥
जये भार्गवदायादे प्रजानां विजयावहे । पूर्णेऽङ्गिरसदायादे पूर्णकामं कुरुष्व माम् ॥२३॥
भद्रे काश्यपदायादे कुरु भद्रां मतिं मम । सर्ववीजसमायुक्ते सर्वरत्नौषधीवृते ॥२४॥
जये सुरुचिरे नन्दे वासिष्ठे रम्यतामिह । प्रजापतिसुते देवि चतुरस्रे महीयसि ॥२५॥
सुभगे सुप्रभे भद्रे गृहे काश्यपि रम्यताम् । पूजिते परमाश्चर्य्ये गन्धमाल्यैरलङ्कृते ॥२६॥
भवभूतिकरी देवि गृहे भार्गवि रम्यताम् । देशस्वामिपुरस्वामिगृहस्वामिपरिग्रहे ॥२७॥
मनुष्यादिकतुष्ट्यर्थं पशुवृद्धिकरी भव । एवमुक्त्वा ततः खातं गोमूत्रेण तु सेचयेत् ॥२८॥
कृत्वा निधापयेद्गर्भं गर्भाधानं भवेन्निशि । गोवस्त्रादि प्रदद्याच्च गुरवेन्येषु भोजनम् ॥२६॥
गर्भं न्यस्येष्टका न्यस्य ततो गर्भं प्रपूरयेत् । पीठबन्धमतः कुर्य्यान्मितप्रासादमानतः[५] ॥३०॥
पीठोत्तमश्चोच्छ्रयेण प्रासादस्यार्द्धविस्तरात् । पादहीनं मध्यमं स्यात् कनिष्ठं चोत्तमार्द्धतः ॥३१॥
पीठबन्धोपरिष्टात्तु वास्तुयागं पुनर्यजेत् । पादप्रतिष्ठाकारी तु निष्पापो दिवि मोदते ॥३२॥
देवागारं करोमीति मनसा यस्तु चिन्तयेत् । तस्य कायगतं पापं तदह्ना हि प्रणश्यति ॥३३॥
कृते तु किं पुनस्तस्य प्रासादे विधिनैव तु । अष्टेष्टकसमायुक्तं यः कुर्य्याद्देवतालयम् ॥३४॥
न तस्य फलसम्पत्तिर्वक्तुं शक्येत केनचित् । अनेनैवानुमेयं हि फलं प्रासादविस्तरात् ॥३५॥
ग्राममध्ये च पूर्वे च प्रत्यग्द्वारं प्रकल्पयेत् । विदिशासु च सर्वासु ग्रामे प्रत्यङ्मुखो भवेत् ॥
दक्षिणे चोत्तरे चैव पश्चिमे प्राङ्मुखो भवेत् ॥ ३६ ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये पातालयोगकथनं नाम एकचत्वारिंशोऽध्यायः ।

द्वाचत्वारिंशोऽध्यायः

प्रासादलक्षणकथनम् ।

हयग्रीव उवाच

प्रासादं सम्प्रवक्ष्यामि सर्वसाधारण शृणु । चतुरस्रीकृतं क्षेत्रं भजेत् षोडशधा बुधः ॥१॥
मध्ये तस्य चतुर्भिस्तु कुर्य्यादायसमन्वितम् । द्वादशैव तु भागानि भित्त्यर्थं परिकल्पयेत् ॥२॥

---

१. रत्नमेव चेति ग. घ. ङ. । २. प्रिययेति ग. ।
३. रत्नमेव चेति ग. घ. . । ४. प्रिययेति ग. । ५. समप्रासादमानत इति ङ. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जङ्घोच्छ्रायन्तु कर्त्तव्यं चतुर्भागेण चायतम्[१]। जङ्घायां द्विगुणोच्छ्रायं मञ्जर्य्याः कल्पयेद् बुधः॥
तुर्य्यभागेन मञ्जर्य्याः कार्य्यः सम्यक् प्रदक्षिणः[२]।
तन्माननिर्गमं कार्य्यमुभयोः पार्श्वयोः समम्॥ ४॥
शिखरेण समं कार्य्यमग्रे जगति विस्तरम्। द्विगुणेनापि कर्त्तव्यं यथाशोभानुरूपतः॥५॥
विस्तारान्मण्डपस्याग्रे गर्भसूत्रद्वयेन तु। दैर्घ्यात्पादाधिकं कुर्य्यान्मध्यस्तम्भैर्विभूषितम्॥६॥
प्रासादगर्भमानं वा कुर्व्वीत मुखमण्डपम्। एकाशीतिपदैर्व्वास्तुं पश्चात् मण्डपमारभेत्। ७॥
शुकान् प्राग्द्वारविन्यासे पादान्तःस्थान् यजेत् सुरान्।
तथा प्राकारविन्यासे यजेद् द्वात्रिंशदन्तगान्[३]॥ ८॥
सर्वसाधारणं चैतत प्रासादस्य च लक्षणम्। मानेन प्रतिमाया वा प्रासादमपरं शृणु॥९॥
प्रतिमायाः प्रमाणेन कर्त्तव्या पिण्डिका शुभा। गर्भस्तु पिण्डिकार्द्धेन गर्भमानास्तु भित्तयः॥
भित्तेरायाममानेन उत्सेधन्तु प्रकल्पयेत्। भित्त्युच्छ्रायात्तु द्विगुणं शिखरं कल्पयेद् बुधः॥
शिखरस्य तु तुर्य्येण भ्रमणं परिकल्पयेत्। शिखरस्य चतुर्थेन अग्रतो मुखमण्डपम्॥१२॥
अष्टमांशेन गर्भस्य रथकानान्तु निर्गमः। परिधेर्गुणभागेन रथकांस्तत्र कल्पयेत्॥१३॥
तत्तृतीयेण[४] वा कुर्य्याद्रथकानान्तु निर्गमम्। वामत्रयं स्थापनीयं रथकत्रितये सदा॥१४॥
शिखरार्थं हि सूत्राणि चत्वारि विनिपातयेत्। शुकनाशोद्र्ध्वतः सूत्रं तिर्य्यग्भूतं निपातयेत॥
शिखरस्यार्द्धभागस्थं सिंहं तत्र तु कारयेत्। शुकनासां स्थिरीकृत्य मध्यसन्धौ निधापयेत्॥
अपरे च तथा पार्श्वे तद्वत् सूत्रं निधापयेत्। तदूद्र्ध्वन्तु भवेद्वेदी सकण्ठा मनसारकम्॥१७॥
स्कन्धभग्नं न कर्त्तव्यं विकरालं तथैव च। ऊद्र्ध्वं च वेदिकामानात कलशं परिकल्पयेत्॥
विस्ताराद् द्विगुणं द्वारं कर्त्तव्यं तु सुशोभनम्। उदुम्बरौ तदूद्र्ध्वञ्च न्यसेच्छाखां सुमङ्गलैः॥
द्वारस्य तु चतुर्थांशे कार्य्यौ चण्डप्रचण्डकौ। विष्वक्सेनवत्सदण्डौ शिखोद्र्ध्वोडुम्बरे श्रियम्॥
दिग्गजैः स्नाप्यमानान्तां घटैः साब्जां सुरूपिकाम्।
प्रासादस्य चतुर्थांशैः प्राकारस्योच्छ्रयो भवेत्॥ २१॥
प्रासादात पादहीनस्तु गोपुरस्योच्छ्रयो भवेत्। पञ्चहस्तस्य देवस्य एकहस्ता तु पीठिका॥२२॥
गारुडं मण्डपश्चाग्रे एकं भौमादिधाम च। कुर्य्याद्धि प्रतिमायान्तु दिक्षु चाष्टासु चोपरि॥२३॥
पूर्वं वराहं दक्षे च नृसिंहं श्रीधरं जले। उत्तरे तु हयग्रीवमाग्नेय्यां जामदग्न्यकम्॥२४॥
नैर्ऋत्यां रामकं वायौ वामनं वासुदेवकम्। ईशे प्रासादरचना देया वस्वर्ककादिभिः॥
द्वारस्य चाष्टमाद्यंशं त्यक्त्वा वेधो न दोषभाक्॥ २५॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये प्रासादलक्षणं नाम द्वाचत्वारिंशोऽध्यायः।

---

१. चतुर्भागेण वा युतमिति ख, चतुर्भागेण संयुतमिति ग।
२. सम्यक् कुर्य्यात् प्रदक्षिणमिति ख.। ३. द्वात्रिंशदन्तरे इति ख.।
४. तत्तुरीयेणेति ख.।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः

प्रासाददेवतास्थापनम् ।

भगवानुवाच

प्रासादे देवताः स्थाप्या वक्ष्ये ब्रह्मन् शृणुष्व मे । पञ्चायतनमध्ये तु वासुदेवं निवेशयेत् ॥१॥
वामनं नृहरिञ्चाश्वशीर्षं तद्वच्च शूकरम् । आग्नेये नैरृते चैव वायव्ये चेशगोचरे ॥ २॥
अथ नारायणं मध्ये आग्नेय्यामम्बिकां न्यसेत । नैरृत्यां भास्करं वायौ ब्रह्माणं लिङ्गमीशके ॥
अथवा रुद्ररूपन्तु अथवा नवधामसु । वासुदेवं न्यसेन्मध्ये पूर्वादौ वामवामकान् ॥४॥
इन्द्रादीन् लोकपालांश्च अथवा नवधामसु । पञ्चायतनकं कुर्य्यात् मध्ये तु पुरुषोत्तमम् ॥५॥
लक्ष्मीवैश्रवणौ पूर्वं दक्षे मातृगणं न्यसेत् । स्कन्दं गणेशमीशानं सूर्य्यादीन् पश्चिमे ग्रहान् ॥
उत्तरे दशमत्स्यादीनाग्नेय्यां चण्डिकां तथा।नैरृत्यामम्बिकां स्थाप्य वायव्ये तु सरस्वतीम्॥
पद्मामैशे वासुदेवं मध्ये नारायणञ्च वा । त्रयोदशालये मध्ये विश्वरूपं न्यसेद्धरिम् ॥८॥
पूर्वादौ केशवादीन् वा अन्यधामस्वयं हरिम्[1]। मृण्मयी दारुघटिता लोहजा रत्नजा तथा ॥९॥
शैलजा गन्धजा चैव कौसुमी[2] सप्तधा स्मृता । कौसुमी गन्धजा चैव मृण्मयी प्रतिमा तथा॥१०॥
तत्कालपूजिताश्चैताः सर्वकामफलप्रदाः । अथ शैलमयी वक्ष्ये शिला यत्र च गृह्यते ॥११॥
पर्वतानामभावे च गृह्णीयाद् भूगतां शिलाम्। पाण्डरा ह्यरुणा पीता कृष्णा शस्ता तु वर्णिनाम्॥
न यदा लभ्यते सम्यग् वर्णिनां वर्णतः शिला । वर्णाद्यापादनं तत्र जुहुयात् सिंहविद्यया ॥१३॥

शिलायां शुक्लरेखाग्र्या कृष्णाग्र्या सिंहहोमतः ।
कांस्यघण्टानिनादा स्यात् पुंलिङ्गा विस्फुलिङ्गिका ॥ १४ ॥

तन्मन्दलक्षणा[3] स्त्री स्याद्रूपाभावान्नपुंसका । दृश्यते मण्डलं यस्यां सगर्भां तां विवर्जयेत ॥
प्रतिमार्थं वनं गत्वा वनयागं समाचरेत् । तत्र खात्त्रोपलिप्याथ मण्डपे तु हरिं यजेत ॥१६॥
बलिं दत्त्वा कर्म्मशस्त्रंटङ्कादिकमथार्च्चयेत्। हुत्वाथ शालितोयेन अस्त्रेण प्रोक्षयेच्छिलाम्॥१७॥
रक्षां कृत्वा नृसिंहेन मूलमन्त्रेण पूजयेत्[4] । हुत्वा पूर्णाहुतिं दद्यात्ततो भूतबलिं गुरुः ॥१८॥

अत्र ये संस्थिताः सत्त्वा यातुधानाश्च गुह्यकाः ।
सिद्धादयो वा ये चान्ये तान् सम्पूज्य क्षमापयेत् ॥ १९ ॥
विष्णुबिम्बार्थमस्माकं[5] यात्रैषा केशवाज्ञया ।
विष्ण्वर्थं यद्भवेत् कार्य्यं युष्माकमपि तद्भवेत् ॥ २० ॥

अनेन बलिदानेन प्रीता भवत सर्वथा । क्षेमेण गच्छतान्यत्र मुक्त्वा स्थानमिदं त्वरात् ॥२१॥
एवं प्रबोधिताः सत्त्वा यान्ति तृप्ता यथासुखम्। शिल्पिभिश्च चरुं प्राश्य स्वप्नमन्त्रं जपेन्निशि॥

१. अन्यधामसु यज्ञविदिति ख. । युग्मधामस्वयं हरिमिति घ. ।
२. कौमुदी इति ख. घ. ।
३. उन्मत्तलक्षणा इति ङ. ।
४. मन्त्रयेदिति ख. ।
५. लोकसिद्ध्यर्थमस्माकमिति ख. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ओं नमः सकलोकाय विष्णवे प्रभविष्णवे । विश्वाय विश्वरूपाय स्वप्नाधिपतये[१] नमः ॥२३॥
आचक्ष्व देवदेवेश प्रसुप्तोस्मि[२] तवान्तिकम् ।
स्वप्ने सर्वाणि कार्य्याणि हृदिस्थानि तु यानि मे ॥२४॥
ओं ओं ह्रूं फट् विष्णवे स्वाहा[३] । शुभे स्वप्ने शुभं सर्वं ह्यशुभे सिंहहोमतः ॥
प्रातरर्घ्यं शिलायां तु दत्त्वास्त्रेणाष्टकं यजेत् ॥ २५ ॥
कुद्दालटङ्कशस्त्राद्यं मध्वाज्याक्तमुखञ्चरेत् । आत्मानं चिन्तयेद्विष्णुं शिल्पिनं विश्वकर्म्मकम्[४] ॥
शस्त्रं विष्ण्वात्मकं[५] दद्यात् मुखपृष्ठादि दर्शयेत् । जितेन्द्रियः टङ्कहस्तः शिल्पी तु चतुरस्त्रकाम् ॥
शिलां कृत्वा पिण्डिकार्थं किञ्चिन्न्यूनान्तु कल्पयेत् ।
रथे स्थाप्य समानीय सवस्त्रां कारुवेश्मनि । पूजयित्वाथ घटयेत् प्रतिमां स तु कर्म्मकृत् ॥२६॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये शान्त्यादिवर्णनं नाम त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ।

चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः

वासुदेवादिप्रतिमालक्षणविधिः ।

भगवानुवाच

वासुदेवादिप्रतिमालक्षणं प्रवदामि ते । प्रासादस्योत्तरे पूर्वमुखीं वा चोत्तराननाम् ॥१॥
संस्थाप्य पूज्य च बलिं दत्त्वाथो मध्यसूत्रकम् । शिलां शिल्पी तु नवधा विभज्य नवमेंऽशके ॥
सूर्यभक्तैः शिलायां तु भागं स्वाङ्गुलमुच्यते । द्व्यङ्गुलं गोलकं नाम्ना कालनेत्रं तदुच्यते ॥३॥
भागमेकं त्रिधा भक्त्वा पार्ष्णिभागं प्रकल्पयेत । भागमेकं तथा जानौ ग्रीवायां भागमेव च ॥४॥
मुकुटं तालमात्रं स्यात्तालमात्रं तथा मुखम् । तालेनैकेन कण्ठन्तु तालेन हृदयं तथा ॥५॥
नाभिमेढ्रान्तरन्तालं द्वितालावूरुकौ तथा । तालद्वयेन जङ्घा स्यात् सूत्राणि शृणु साम्प्रतम् ॥
कार्य्यं सूत्रद्वयं पादे जङ्घामध्ये तथापरम् । जानौ सूत्रद्वयं कार्य्यमूरुमध्ये तथापरम् ॥७॥
मेढ्रे तथापरं कार्य्यं कट्यां सूत्रन्तथापरम् । मेखलाबन्धसिद्ध्यर्थं नाभ्यां चैवापरन्तथा ॥८॥
हृदये च तथा कार्य्यं कण्ठे सूत्रद्वयं तथा । ललाटे चापरं कार्यं मस्तके च तथापरम् ॥९॥
मुकुटोपरि कर्त्तव्यं सूत्रमेकं विचक्षणैः । सूत्राण्यूर्द्ध्वं प्रदेयानि सप्तैव कमलोद्भव[६] ॥१०॥
कक्षात्रिकान्तरेणैव षट् सूत्राणि प्रदापयेत् । मध्यसूत्रं तु सन्त्यज्य सूत्राण्येव निवेदयेत् ॥११॥
ललाटं नासिकावक्त्रं कर्त्तव्यञ्चतुरङ्गुलम् । ग्रीवाकर्णौ तु कर्त्तव्यौ आयामाच्चतुरङ्गुलौ ॥१२॥
द्व्यङ्गुले हनुके कार्य्ये विस्ताराच्चिबुकन्तथा । अष्टाङ्गुलं ललाटन्तु विस्तारेण प्रकीर्त्तितम् ॥१३॥
परेण द्व्यङ्गुलौ शङ्खौ कर्त्तव्यावलकान्वितौ । चतुरङ्गुलमाख्यातमन्तरं कर्णनेत्रयोः ॥१४॥

---

१. विश्वाधिपतये इति ख. ।　　२. प्रपन्नोऽस्मि इति ख. ।
३. ओं ओं ह्रीं फडिति ग. ।　　४. विश्वकर्म्मणीति ख. ग. ।
५. विश्वात्मकमिति ग. घ. ङ. ।　　६. मुकुटोपरि इति ख. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

द्व्यङ्गुलौ पृथुकौ कर्णौ कर्णापाङ्गार्द्धपञ्चमे । भ्रूसमेन तु सूत्रेण कर्णश्रोत्रं प्रकीर्त्तितम् ॥१५॥
विद्धं षडङ्गुलं कर्णमविद्धञ्चतुरङ्गुलम् । चिबुकेन समं विद्धमविद्धं वा षडङ्गुलम् ॥१६॥
गन्धपात्रं तथावर्त्तं शष्कुलीं कल्पयेत्तथा । द्व्यङ्गुलेनाधरः कार्यस्तस्यार्द्धेनोत्तराधरः ॥१७॥
अर्द्धाङ्गुलं तथा नेत्रं[1] वक्त्रन्तु चतुरङ्गुलम् । आयामेन तु वैपुल्यात् सार्द्धमङ्गुलमुच्यते ॥
अव्यात्तमेवं स्याद्वक्त्रं व्यात्तं द्व्यङ्गुलमिष्यते । नासावंशसमुच्छ्रायं मूले त्वेकाङ्गुलं मतम् ॥
उच्छ्राया द्व्यङ्गुलं चाग्रे करवीरोपमाः स्मृताः । अन्तरं चक्षुषोः कार्यं चतुरङ्गुलमानतः ॥
द्व्यङ्गुलं चाक्षिकोणं च द्व्यङ्गुलं चान्तरं तयोः । तारा नेत्रत्रिभागेण दृक्तारा पञ्चमांशिका ॥
त्र्यङ्गुलं नेत्रविस्तारं द्रोणी चार्द्धाङ्गुला मता । तत्प्रमाणा भ्रुवोर्लेखा भ्रुवौ चैव समे मते ॥
भ्रूमध्यं द्व्यङ्गुलं कार्यं भ्रूदैर्घ्यं चतुरङ्गुलम्[2] । षट्त्रिंशदङ्गुलायामम्मस्तकस्य तु वेष्टनम् ॥
मूर्त्तीनां केशवादीनां द्वात्रिंशद्वेष्टनं भवेत् । पञ्च नेत्रा त्वधोग्रीवा विस्ताराद्वेष्टनं पुनः ॥२४॥
त्रिगुणं तु भवेदूर्द्ध्वं विस्तृताष्टाङ्गुलं पुनः । ग्रीवात्रिगुणमायामं ग्रीवावक्षोन्तरं भवेत् ॥२५॥
स्कन्धावष्टाङ्गुलौ कार्यौ त्रिकलावंशकौ शुभौ । सप्तनेत्रौ स्मृतौ बाहू प्रबाहू षोडशाङ्गुलौ ॥
त्रिकलौ विस्तृतौ बाहू प्रबाहू चापि तत्समौ । बाहुदण्डोर्द्ध्वतो ज्ञेयः परिणाहः कला नव ॥
सप्तदशाङ्गुलो मध्ये कूर्परोर्द्धे च षोडश । कूर्परस्य भवेन्नाहः त्रिगुणः कमलोद्भव ॥२८।
नाहः प्रबाहुमध्ये तु षोडशाङ्गुल उच्यते । अग्रहस्ते परीणाहो द्वादशाङ्गुल उच्यते ॥२९॥
विस्तारेण करतलं कीर्त्तितं तु षडङ्गुलम् । दैर्घ्यं सप्ताङ्गुलं कार्यं मध्या पञ्चाङ्गुला मता ॥
तर्ज्जन्यनामिका चैव तस्मादर्द्धाङ्गुलं विना । कनिष्ठाङ्गुष्ठकौ कार्यौ चतुरङ्गुलसम्मितौ ॥
द्विपर्वोङ्गुष्ठकः कार्यः शेषांगुल्यस्त्रिपर्विकाः । सर्वासां पर्वणोर्द्धेन नखमानं विधीयते ॥३२॥
वक्षसो यत् प्रमाणन्तु जठरं तत्प्रमाणतः । अङ्गुलैकं भवेन्नाभी वेधेन च प्रमाणतः ॥३३॥
ततो मेढ्रान्तरं कार्यं तालमात्रं प्रमाणतः । नाभिमध्ये परीणाहो द्विचत्वारिंशदङ्गुलैः ॥३४॥
अन्तरं स्तनयोः कार्य्यं तालमात्रं प्रमाणतः । चुचुकौ[3] यवमानौ तु मण्डलं द्विपदं भवेत् ॥
चतुःषष्ट्यङ्गुलं कार्यं वेष्टनं वक्षसः स्फुटम् । चतुर्मुखञ्च तदधोवेष्टनं परिकीर्त्तितम् ॥३६॥
परिणाहस्तथा कट्यां चतुःपञ्चाशदङ्गुलैः । विस्तारश्चोरुमूले तु प्रोच्यते द्वादशाङ्गुलः ॥३७॥
तस्मादभ्यधिकं मध्ये ततो निम्नतरं क्रमात् । विस्तृताष्टाङ्गुलं जानुत्रिगुणा परिणाहतः ॥३८॥
जङ्घा मध्ये तु त्रिस्तारः सप्ताङ्गुल उदाहृतः । त्रिगुणा परिधिश्चास्य जङ्घाग्रं पञ्चविस्तरात् ॥
त्रिगुणा परिधिश्चास्य पादौ तालप्रमाणकौ । आयामादुत्थितौ पादौ चतुरङ्गुलमेव च ॥४०॥

गुल्फात् पूर्वं तु कर्त्तव्यं प्रमाणाच्चतुरङ्गुलम् ।
त्रिकलं विस्तृतौ पादौ त्र्यङ्गुलो गुह्यकः स्मृतः ॥ ४१ ॥

पञ्चाङ्गुलन्तु नाहोस्य दीर्घा तद्वत् प्रदेशिनी । अष्टमाष्टांशतो न्यूनाः शेषाङ्गुल्यः क्रमेण तु ॥
सपादाङ्गुलमुत्सेधमङ्गुष्ठस्य प्रकीर्त्तितम् । यवोनमङ्गुलं कार्यमङ्गुष्ठस्य नखं तथा ॥४३॥

---

१. तथा गोजी इति ख. । २. भ्रूदैर्घ्याच्चतुरङ्गुला इति ङ. ।
३. चूचुकौ इति ङ. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अर्द्धाङ्गुलं तथान्यासां[1] क्रमान् न्यूनं तु कारयेत् ।
त्र्यङ्गुलौ वृषणौ कार्यौ मेढ्रं तु चतुरङ्गुलम् ॥ ४४ ॥
परिणाहोत्र कोषाग्रं कर्त्तव्यश्चतुरङ्गुलम् । षडङ्गुलपरीणाहौ वृषणौ परिकीर्त्तितौ ॥ ४५ ॥
प्रतिमा भूषणाढ्या स्यादेतदुद्देशलक्षणम् । अनयैव दिशा कार्यं लोके दृष्ट्वा तु लक्षणम् ॥
दक्षिणे तु करे चक्रमधस्तात् पद्ममेव च । वामे शङ्खं गदाधस्ताद्वासुदेवस्य लक्षणात् ॥४७॥
श्रीपुष्टी चापि कर्त्तव्ये पद्मवीणाकरान्विते । ऊरुमात्रोच्छ्रितायामे मालाविद्याधरौ[2] तथा ॥
प्रभामण्डलसंस्थौ तौ प्रभा हस्त्यादिभूषणा । पद्माभं पादपीठन्तु प्रतिमास्वेवमाचरेत् ॥४९॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये प्रतिमालक्षणं नाम
चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ।

पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः

पिण्डिकालक्षणकथनम् ।

भगवानुवाच

पिण्डिकालक्षणं वक्ष्ये दैर्घ्येण प्रतिमासमा । उच्छ्रायं प्रतिमार्द्धन्तु चतुःषष्टिपुटां[3] च ताम् ॥
त्यक्त्वा पङ्क्तिद्वयं चाधस्तदूर्द्ध्वं यत्तु कोष्ठकम् । समन्तादुभयोः पार्श्वे अन्तस्थं परिमार्जयेत् ॥
ऊर्द्ध्वं पङ्क्तिद्वयं त्यक्त्वा अधस्ताद् यत्तु कोष्ठकम् ।
अन्तः सम्मार्जयेत् यत्नात् पार्श्वयोरुभयोः समम् ॥ ३ ॥
तयोर्मध्यगतौ तत्र चतुष्कौ मार्जयेत्ततः । चतुर्द्धा भाजयित्वा तु ऊर्द्ध्वपङ्क्तिद्वयं बुधः ॥४॥
मेखला भागमात्रा स्यात् खातं तस्यार्द्धमानतः ।
भागं भागं परित्यज्य पार्श्वयोरुभयोः समम् ॥ ५ ॥
दत्त्वा चैकं पदं बाह्ये प्रमाणं कारयेद् बुधः । त्रिभागेण च भागस्याग्रे स्यात्तोयविनिर्गमः ॥
नानाप्रकारभेदेन भद्रेयं[4] पिण्डिका शुभा । अष्टताला तु कर्त्तव्या देवी लक्ष्मीस्तथा स्त्रियः ॥
भ्रुवौ यवाधिके कार्य्ये यवहीना तु नासिका । गोलकेनाधिकं वक्त्रमूर्द्ध्वं तिर्य्यग्विवर्जितम् ॥
आयते नयने कार्य्ये त्रिभागोनैर्यवैस्त्रिभिः । तदर्द्धेन तु वैपुल्यं नेत्रयोः परिकल्पयेत् ॥९॥
कर्णपाशोऽधिकः कार्य्यः सृक्कणीसमसूत्रतः । नम्रं कलाविहीनन्तु कुर्य्यादंशद्वयं तथा ॥१०॥
ग्रीवा सार्द्धकला कार्य्या तद्विस्तारोपशोभिता ।
नेत्रं विना तु विस्तारौ ऊरू जानू च पिण्डिका ॥ ११ ॥
अङ्घ्रिपृष्ठौ स्फिचौ कट्यां यथायोगं प्रकल्पयेत् । सप्तांशोनास्तथाङ्गुल्यो दीर्घं विष्कम्भनाहतम् ॥
नेत्रैकवर्जितायामा जङ्घोरू च तथा कटिः । मध्यपार्श्वं च तद्वृत्तं घनं पीनं कुचद्वयम् ॥१३॥

---

१. सार्द्धाङ्गुलं तथायाममिति ङ. । २. मणिविद्याधराविति ष. ।
३. चतुःषष्टिपदामिति ङ. । ४. तत्रेयमिति ङ. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तालमात्रौ स्तनौ कार्य्यौ कटिः सार्द्धकलाधिका ।
लक्ष्म शेषं पुरावत्स्यात् दक्षिणे चाम्बुजं करे ॥ १४ ॥
वामे विल्वं स्त्रियौ पार्श्वे शुभे चामरहस्तके । दीर्घघोणस्तु गरुडश्चक्राङ्गाद्यानथो वदे॥१५॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये पिण्डिकालक्ष्मादिलक्षणं नाम
पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ।

षट्चत्वारिंशोऽध्यायः

शालग्रामादिमूर्त्तिलक्षणकथनम् ।

भगवानुवाच

शालग्रामादिमूर्त्तीश्च वक्ष्येहं भुक्तिमुक्तिदाः । वासुदेवोऽसितो द्वारे शिलालग्नद्विचक्रकः ॥१॥
ज्ञेयः सङ्कर्षणो लग्नद्विचक्रो रक्त उत्तमः । सूक्ष्मचक्रो बहुच्छिद्रः प्रद्युम्नो नीलदीर्घकः ॥२॥
पीतोनिरुद्धः पद्माङ्को वर्त्तुलो द्वित्रिरेखवान् । कृष्णो नारायणो नाभ्युन्नतः शुषिरदीर्घवान् ॥
परमेष्ठी साब्जचक्रः पृष्ठच्छिद्रश्च[१] विन्दुमान्। स्थूलचक्रोऽसितो विष्णुर्मध्ये रेखा गदाकृतिः ॥
नृसिंहः कपिलः स्थूलचक्रः स्यात् पञ्चविन्दुकः ।
वराहः शक्तिलिङ्गः स्यात् तच्चक्रौ विषमौ मृतौ ॥ ५ ॥
इन्द्रनीलनिभः स्थूलस्त्रिरेखालाञ्छितः शुभः । कूर्मस्तथोन्नतः पृष्ठे वर्त्तुलावर्त्तकोऽसितः ॥
हयग्रीवोऽङ्कुशाकाररेखो नीलः सविन्दुकः । वैकुण्ठः एकचक्रोऽब्जी मणिभः पुच्छरेखकः॥७॥
मत्स्यो दीर्घस्त्रिविन्दुः स्यात् काचवर्णस्तु पूरितः । श्रीधरो वनमालाङ्कः पञ्चरेखस्तु वर्त्तुलः॥
वामनो वर्त्तुलश्चातिह्रस्वो नीलः सविन्दुकः । श्यामस्त्रिविक्रमो दक्षरेखो वामेन विन्दुकः॥
अनन्तो नागभोगाङ्गो नैकाभो नैकमूर्त्तिमान् ।
स्थूलो दामोदरो मध्यचक्रो द्वाःसूक्ष्मविन्दुकः[२] ॥ १० ॥
सुदर्शनस्त्वेकचक्रो लक्ष्मीनारायणो द्वयात् । चित्रकश्चाच्युतो देवस्त्रिचक्रो वा त्रिविक्रमः ॥
जनार्दनश्चतुश्चक्रो वासुदेवश्च पञ्चभिः । षट्चक्रश्चैव प्रद्युम्नः सङ्कर्षणश्च सप्तभिः ॥१२॥
पुरुषोत्तमोऽष्टचक्रो नवव्यूहो नवाङ्कितः । दशावतारो दशभिर्दशैकेनानिरुद्धकः ॥
द्वादशात्मा द्वादशभिरत ऊर्द्ध्वमनन्तकः ॥ १३ ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये शालग्रामादिमूर्त्तिलक्षणं नाम
षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ।

---

१. पृथुश्छिद्रश्चेति ङ. । २. मध्यचक्राधः सूक्ष्मविन्दुक इति ङ. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः

शालग्रामादिपूजनकथनम् ।

भगवानुवाच

शालग्रामादिचक्राङ्कपूजाः सिद्ध्यै वदामि ते। त्रिविधा स्याद्धरेः पूजा काम्याकाम्योभयात्मिका॥
मीनादीनान्त पञ्चानां काम्याथो वोभयात्मिका[1]। वराहस्य नृसिंहस्य वामनस्य च मुक्तये॥२॥
चक्रादीनां त्रयाणान्तु शालग्रामार्च्चनं शृणु। उत्तमा निष्फला पूजा कनिष्ठा सफलार्चना॥३॥
मध्यमा मूर्त्तिपूजा स्याच्चक्राब्जे चतुरस्रके। प्रणवं हृदि विन्यस्य षडङ्गङ्करदेहयोः॥४॥
कृतमुद्रात्रयश्चक्राद् वहिः पूर्वे गुरुं यजेत्। आग्ये गणं वायवे च धातारं नैर्ऋते यजेत्॥५॥
विधातारञ्च कर्त्तारं हर्त्तारं दक्षसौम्ययोः। विष्वक्सेनं यजेदीशे आग्नेये क्षेत्रपालकम्॥६॥
ऋगादिवेदान् प्रागादौ आधारानन्तकं भुवम्। पीठं पद्मं चार्कचन्द्रवह्न्याख्यं मण्डलत्रयम्॥

आसनं द्वादशार्णेन तत्र स्थाप्य शिलां यजेत्।
व्यस्तेन च समस्तेन स्वबीजेन यजेत् क्रमात्॥८॥

पूर्वादावथ वेदाद्यैर्गायत्रीभ्यां जितादिना। प्रणवेनार्च्चयेत् पश्चान्मुद्रास्तिस्रः प्रदर्शयेत्॥९॥
विष्वक्सेनस्य चक्रस्य क्षेत्रपालस्य दर्शयेत्। शालग्रामस्य प्रथमा पूजाथो निष्फलोच्यते॥
पूर्ववत् षोडशारञ्च सपद्मं मण्डलं लिखेत्। शङ्खचक्रगदाखड्गैर्गुर्वाद्यं पूर्ववद्यजेत्[2]॥११॥
पूर्वे सौम्ये धनुर्बाणान् वेदाद्यैरासनं ददेत्। शिलां न्यसेद् द्वादशार्णैस्तृतीयं पूजनं शृणु॥१२॥
अष्टारमब्जं विलिखेत् गुर्वाद्यं[3] पूर्ववद्यजेत्। अष्टार्णेनासनं दत्त्वा तेनैव च शिलां न्यसेत्॥
पूजयेद्दशधा तेन गायत्रीभ्यां जितं तथा[4]॥१३॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये शालग्रामादिपूजाकथनं नाम
सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः।

अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः

चतुर्विंशतिमूर्त्तिस्तोत्रकथनम् ।

भगवानुवाच

ओं रूपः केशवः पद्मशङ्खचक्रगदाधरः। नारायणः शङ्खपद्मगदाचक्री प्रदक्षिणम्॥१॥
ततो गदी माधवोरिशङ्खपद्मी नमामि तम्। चक्रकौमोदकीपद्मशङ्खी गोविन्द ऊर्जितः॥
मोक्षदः श्रीगदी पद्मी शङ्खी विष्णुश्च चक्रधृक्। शङ्खचक्राब्जगदिनं मधुसूदनमानमे॥३॥

---

१. काम्यार्थे वोभयात्मिकेति घ.।
२. चतुर्भिः पूर्ववद् यजेदिति ङ.।
३. गन्धाद्यैरिति ङ.।
४. जितं तत इति ख. ग. ङ.।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भक्त्या त्रिविक्रमः पद्मगदी चक्री च शङ्ख्यपि । शङ्खचक्रगदापद्मी वामनः पातु मां सदा ॥
गतिदः श्रीधरः पद्मी चक्रशार्ङ्गी च शङ्ख्यपि[१]। हृषीकेशो गदाचक्री पद्मी शङ्खी च पातु नः ॥
वरदः पद्मनाभस्तु शङ्खाब्जारिगदाधरः । दामोदरः पद्मशङ्खगदाचक्री नमामि तम् ॥६॥
तेने गदी शङ्खचक्री वासुदेवोऽब्जभृज्जगत । सङ्कर्षणो गदी शङ्खी पद्मी चक्री च पातु वः॥
गदी चक्री शङ्खगदी[२] प्रद्युम्नः पद्मभृत् प्रभुः । अनिरुद्धश्चक्रगदी शङ्खी पद्मी च पातु नः ॥
सुरेशोऽर्य्यब्जशङ्खाढ्यः श्रीगदी पुरुषोत्तमः । अधोक्षजः पद्मगदी शङ्खी चक्री च पातु वः॥
देवो नृसिंहश्चक्राब्जगदाशङ्खी नमामि तम् ।
अच्युतः श्रीगदी पद्मी चक्री शङ्खी च पातु वः ॥ १० ॥
बालरूपी शङ्खगदी उपेन्द्रश्चक्रपद्मयपि । जनार्दनः पद्मचक्री शङ्खधारी गदाधरः ॥११॥
शङ्खी पद्मी च चक्री च हरिः कौमोदकीधरः । कृष्णः शङ्खी गदी पद्मी चक्री मे भुक्तिमुक्तिदः ॥
आदिमूर्त्तिर्वासुदेवस्तस्मात् सङ्कर्षणोभवत् । सङ्कर्षणाच्च प्रद्युम्नः प्रद्युम्नादनिरुद्धकः ॥१३॥
केशवादिप्रभेदेन एकैकस्य त्रिधा क्रमात् । द्वादशाक्षरकं स्तोत्रं चतुर्विंशतिमूर्त्तिमत् ॥
यः पठेच्छृणुयाद्वापि निर्मलः सर्वमाप्नुयात ॥ १४ ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये चतुर्विंशतिमूर्त्तिस्तोत्रं नाम
अष्टाचत्वारिंशोऽध्यायः ।

ऊनपञ्चाशोऽध्यायः

मत्स्यादिलक्षणवर्णनम् ।

भगवानुवाच

दशावतारं मत्स्यादिलक्षणं प्रवदामि ते । मत्स्याकारस्तु मत्स्यः स्यात् कूर्मः कूर्म्माकृतिर्भवेत्॥
नराङ्गो वाथ कर्त्तव्यो भूवराहो गदादिभृत् । दक्षिणे वामके शङ्खं लक्ष्मीर्वा पद्ममेव वा ॥
श्रीर्वामकूर्प्परस्था तु क्ष्मानन्तौ चरणानुगौ । वराहस्थापनाद्राज्यं भवाब्धितरणं भवेत् ॥३॥
नरसिंहो विवृत्तास्यो वामोरुक्षतदानवः[३] । तद्वक्षो दारयन्माली स्फुरच्चक्रगदाधरः ॥४॥
छत्री दण्डी वामनः स्यादथवा स्याच्चतुर्भुजः । रामश्चापेषुहस्तः स्यात् खड्गी परशुनान्वितः ॥
रामश्चापी शरी खड्गी शङ्खी वा द्विभुजः स्मृतः । गदालाङ्गलधारी च रामो वाथ चतुर्भुजः ॥
वामोर्ध्वे लाङ्गलं दद्यादधः शङ्खं सुशोभनम् । मुषलं दक्षिणोर्ध्वे तु चक्रश्चाधः सुशोभनम् ॥७॥
शान्तात्मा लम्बकर्णश्च गौराङ्गश्चाम्बरावृतः[४] । ऊर्ध्वपद्मस्थितो बुद्धो वरदाभयदायकः ॥८॥
धनुस्तूणान्वितः[५] कल्की म्लेच्छोत्सादकरो द्विजः । अथवाश्वस्थितः खड्गी शङ्खचक्रशरान्वितः॥

---

१. चक्री गदयथ शङ्ख्यपि इति ङ. ।
२. शङ्खपद्मी इति ग. ङ. ।
३. वामोरुद्धतदानव इति ङ. ।
४. गौराङ्गश्चायुधावृत इति ख. ग.
५. धनुर्बाणान्वित इति ङ. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

लक्षणं वासुदेवादिनवकस्य वदामि ते। दक्षिणोर्ध्वे गदा वामे वामोर्ध्वे चक्रमुत्तमम् ॥१०॥
ब्रह्मेशौ पार्श्वगौ नित्यं वासुदेवोस्ति पूर्ववत्। शङ्खी स वरदो वाथ द्विभुजो वा चतुर्भुजः॥
लाङ्गली मुषली रामो गदापद्मधरः स्मृतः। प्रद्युम्नो दक्षिणे वज्रं[1] शङ्खं वामे धनुः करे ॥१२॥
गदानाभ्यावृतः[2] प्रीत्या प्रद्युम्नो वा धनुःशरी। चतुर्भुजोनिरुद्धः स्यात्तथा नारायणो विभुः॥
चतुर्मुखश्चतुर्व्बाहुर्ब्बृहज्जठरमण्डलः। लम्बकूर्चो[3] जटायुक्तो ब्रह्मा हंसाग्रवाहनः ॥१४॥
दक्षिणे चाक्षसूत्रञ्च स्रुवो वामे तु कुण्डिका। आज्यस्थाली सरस्वती सावित्री वामदक्षिणे॥
विष्णुरष्टभुजस्तार्क्ष्ये करे खड्गस्तु दक्षिणे। गदा शरश्च वरदो वामे कार्मुकखेटके ॥१६॥
चक्रशङ्खौ चतुर्बाहुर्न्नरसिंहश्चतुर्भुजः। शङ्खचक्रधरो वापि विदारितमहासुरः ॥१७॥
चतुर्बाहुर्वराहस्तु शेषः पाणितले धृतः। धारयन् बाहुना पृथ्वीं वामेन कमलाधरः[4] ॥१८॥
पादलग्ना धरा कार्य्या पदा लक्ष्मीर्व्यवस्थिता। त्रैलोक्यमोहनस्तार्क्ष्ये अष्टबाहुस्तु दक्षिणे॥
चक्रं खड्गं च मुषलं अङ्कुशं वामके करे। शङ्खशार्ङ्गगदापाशान् पद्मवीणासमन्विते ॥२०॥
लक्ष्मीः सरस्वती कार्य्ये विश्वरूपोऽथ दक्षिणे। मुद्गरं च तथा पाशं शक्तिशूलं शरं करे॥
वामे शङ्खञ्च शार्ङ्गञ्च गदां पाशं च तोमरम्। लाङ्गलं परशुं दण्डं छुरिकां चर्म्मक्षेपणम्[5]॥
विंशद्बाहुश्चतुर्व्वक्त्रो दक्षिणस्थोथ वामके। त्रिनेत्रो वामपार्श्वेन शयितो जलशाय्यपि॥२३॥
श्रिया धृतैकचरणो विमलाद्याभिरीडितः। नाभिपद्मचतुर्व्वक्त्रो हरिशङ्करको हरिः ॥२४॥
शूलर्ष्टिधारी दक्षे च गदाचक्रधरो पदे। रुद्रकेशवलक्ष्माङ्गो गौरीलक्ष्मीसमन्वितः ॥२५॥
शङ्खचक्रगदावेदपाणिश्चाश्वशिरा हरिः। वामपादो धृतः शेषे दक्षिणः कूर्म्मपृष्ठगः ॥२६॥
दत्तात्रेयो द्विबाहुः स्याद्वामोत्सङ्गे श्रिया सह। विष्वक्सेनश्चक्रगदी हली शङ्खी हरेर्गणः॥

इत्याग्नेये महापुराणे आग्नेये प्रतिमालक्षणं नाम
ऊनपञ्चाशोऽध्यायः।

पञ्चाशोऽध्यायः

देवीप्रतिमालक्षणकथनम्।

Important

भगवानुवाच

चण्डी विंशतिबाहुः स्याद्बिभ्रती दक्षिणैः करः। शूलासिशक्तिचक्राणि पाशं खेटायुधाभयम्॥
डमरुं शक्तिकां वामैर्न्नागपाशञ्च खेटकम्। कुठाराङ्कुशचापांश्च घण्टाध्वजगदांस्तथा ॥२॥
आदर्शमुद्गरान् हस्तैश्चण्डी वा दशबाहुका। तदधो महिषश्छिन्नमूर्द्धा पातितमस्तकः ॥३॥

---

१. दक्षिणे चक्रमिति ङ.। २. गदी रत्यावृत इति ङ.।
३. लम्बभ्रुव इति ङ.। ४. धारयन्नाकुलां पृथ्वीं वामेन कमलामध इति ङ.।
५. चर्म चोत्तममिति ङ.।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शस्त्रोद्यतकरः क्रुद्धस्तद्ग्रीवासम्भवः पुमान् । शूलहस्तो वमद्रक्तो रक्तस्रङ्मूर्द्धजेक्षणः ॥४॥
सिंहेनास्वाद्यमानस्तु पाशबद्धो गले भृशम् । याम्याङ्घ्र्याक्रान्तसिंहा च सव्याङ्घ्रिर्नीचगासुरे ।
चण्डिकेयं त्रिनेत्रा च सशस्त्रा रिपुमर्द्दनी । नवपद्मात्मके स्थाने पूज्या दुर्गा स्वमूर्त्तितः ॥
आदौ मध्ये तथेन्द्रादौ नवतत्त्वात्मभिः[१] क्रमात् । अष्टादशभुजैका तु दक्षे मुण्डं च खेटकम् ॥
आदर्शतर्जनीचापं ध्वजं डमरुकं तथा । पाशं वामे विभ्रती च शक्तिमुद्गरशूलकम् ॥८॥
वज्रखड्गाङ्कुशशरान् चक्रन्देवी शलाकया । एतैरेवायुधैर्युक्ता शेषाः षोडशबाहुकाः ॥९॥
डमरुं तर्जनीं त्यक्त्वा रुद्रचण्डादयो नव । रुद्रचण्डा प्रचण्डा च चण्डोग्रा चण्डनायिका ॥
चण्डा चण्डवती चैव चण्डरूपातिचण्डिका । उग्रचण्डा च मध्यस्था रोचनाभारुणासिता ॥
नीला शुक्ला धूम्रिका च पीता श्वेता च सिंहगाः । महिषोथ पुमान् शस्त्री तत्कचग्रहमुष्टिकाः ॥
आलीढा नव[२] दुर्गाः स्युः स्थाप्याः पुत्रादिवृद्धये । तथा गौरी चण्डिकाद्या कुण्ड्यक्षररदाग्निधृक् ।
सैव रम्भा वने सिद्धाऽग्निहीना ललिता तथा । स्कन्धमूर्द्धकरा वामे द्वितीये धृतदर्प्पणा ॥१४॥
याम्ये फलाञ्जलिहस्ता सौभाग्या तत्र चोर्ध्विका । लक्ष्मीर्याम्यकराम्भोजा वामे श्रीफलसंयुता ॥
पुस्ताक्षमालिकाहस्ता वीणाहस्ता सरस्वती । कुम्भाब्जहस्ता श्वेताभा मकरोपरि जाह्नवी[३] ॥
कूर्म्मगा यमुना कुम्भकरा श्यामा च पूज्यते । सवीणस्तुम्बुरुः शुक्लः शूली मात्रग्रतो वृषे ॥
गौरी चतुर्मुखी ब्राह्मी अक्षमालासुरान्विता । कुण्डाक्षपात्रिणी वामे हंसगा शाङ्करी सिता ॥
शरचापौ दक्षिणेऽस्या वामे चक्रं[४] धनुर्वृषे । कौमारी शिखिगा रक्ता शक्तिहस्ता द्विबाहुका ॥
चक्रशङ्खधरा सव्ये वामे लक्ष्मीर्गदाब्जधृक् । दण्डशङ्खासि[५] गदया वाराही महिषस्थिता ॥
ऐन्द्री वामे वज्रहस्ता सहस्राक्षी तु सिद्धये । चामुण्डा कोटराक्षी स्यान्निर्म्मांसा तु त्रिलोचना ॥
निर्म्मांसा अस्थिसारा वा ऊर्ध्वकेशी कृशोदरी । द्वीपिचर्म्मधरा वामे कपालं पट्टिशङ्करे ॥२०॥
शूलं कर्त्री दक्षिणेऽस्याः शवारूढास्थिभूषणा । विनायको नराकारो बृहत्कुक्षिर्गजाननः ॥
बृहच्छुण्डो ह्युपवीती मुखं सप्तकलं भवेत् । विस्ताराद्दैर्घ्यतश्चैव शुण्डं षट्त्रिंशदङ्गुलम् ॥२४॥
कला द्वादश नाडी तु ग्रीवा सार्द्धकलोच्छ्रिता । षट्त्रिंशदङ्गुलं कण्ठं गुह्यमध्यर्द्धमङ्गुलम् ॥२५॥
नाभिरूरू द्वादशश्च जङ्घे पादे तु दक्षिणे । स्वदन्तं परशुं वामे लड्डुकञ्चोत्पलं शये ॥२६॥
सुमुखी च विडालाक्षी पार्श्वे स्कन्दो मयूरगः । स्वामी शाखो विशाखश्च द्विभुजो बालरूपधृक् ॥
दक्षे शक्तिः कुक्कुटोथ एकवक्त्रोथ षण्मुखः । षड्भुजो वा द्वादशभिर्ग्रामेरण्ये द्विबाहुकः ॥
शक्तीषुपाशनिस्त्रिंशतोत्रदोस्तर्जनीयुतः । शक्त्या दक्षिणहस्तेषु षट्सु वामे करे तथा ॥२९॥
शिखिपिच्छन्धनुः खेटं पताकाभयकुक्कुटे । कपालकर्तरीशूलपाशभृद्याम्यसौम्ययोः ॥३०॥
गजचर्म्मभृदूर्ध्वास्यपादा स्याद् रुद्रचर्चिका । सैव चाष्टभुजा देवी शिरोडमरुकान्विता ॥
तेन सा रुद्रचामुण्डा नाटेश्वर्य्यथ नृत्यती । इयमेव महालक्ष्मीरुपविष्टा चतुर्मुखी ॥३२॥
नृवाजिमहिषेभांश्च खादन्ती च करे स्थितान् । दशबाहुस्त्रिनेत्रा च शस्त्रासिडमरुत्रिकम् ॥

---

१. नवतत्त्वादिभिरिति ङ. । २. शालासु नव इति ङ. ।
३. मकरेद्धरि जाह्नवीति ख. घ. ङ. । ४. वामे वज्रमिति ख. ङ. ।
५. शङ्खारि इति ख. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बिभ्रती दक्षिणे हस्ते वामे घण्टां च खेटकम् । खट्वाङ्गं च त्रिशूलञ्च सिद्धचामुण्डकाह्वया ॥
सिद्धयोगेश्वरी देवी सर्वसिद्धिप्रदायिका । एतद्रूपा भवेदन्या पाशाङ्कुशयुतारुणा ॥३५॥
भैरवी रूपविद्या तु भुजैर्द्वादशभिर्युता । एताः श्मशानजा रौद्रा अम्बाष्टकमिदं[1] स्मृतम् ॥३६॥
क्षमा शिवावृता[2] वृद्धा द्विभुजा विवृतानना । दन्तुरा क्षेमकारी स्याद्भूमौ जानुकरा स्थिता॥
यक्षिण्यः स्तब्धदीर्घाक्षाः शाकिन्यो वक्रदृष्टयः[3] ।
पिङ्गाक्षाः स्युर्म्महारम्या रूपिण्योऽप्सरसः[4] सदा ॥ ३८ ॥
साक्षमाली त्रिशूली च नन्दीशो द्वारपालकः । महाकालोसिमुण्डी स्याच्छूलखेटकवांस्तथा ॥
कृशो भृङ्गी च नृत्यन् वै कुष्माण्डस्थूलखर्ववान् । गजगोकर्णवक्त्राद्या वीरभद्रादयो गणाः ॥
घण्टाकर्णोष्टदशदोः पापरोगं विदारयन् । वज्रासिदण्डचक्रेषुमुषलाङ्कुशमुद्गरान् ॥४१॥
दक्षिणे तर्जनीं खेटं शक्तिं मुण्डञ्च पाशकम् । चापं घण्टां कुठारञ्च द्वाभ्याञ्चैव त्रिशूलकम् ॥
घण्टामालाकुलो देवो विस्फोटकविमर्दनः[5] ॥ ४२ ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये देवीप्रतिमालक्षणं नाम पञ्चाशोऽध्यायः ।

एकपञ्चाशोऽध्यायः

सूर्य्यादिप्रतिमालक्षणम् ।

भगवानुवाच

ससप्ताश्वे सैकचक्रे रथे सूर्य्यो द्विपद्मधृक् । मसीभाजनलेखन्यौ बिभ्रत्कुण्डी तु दक्षिणे ॥१॥
वामे तु पिङ्गलो द्वारि दण्डभृत् स रवेर्गणः । वालव्यजनधारिण्यौ पार्श्वे राज्ञी च निष्प्रभा ॥
अथवाश्वसमारूढः कार्य्य एकस्तु भास्करः । वरदा द्व्यब्जिनः सर्वे दिक्पालास्त्रकराः क्रमात्॥
मुद्गरशूलचक्राब्जभृतोग्न्यादिविदिक्स्थिताः । सूर्य्यार्यमादिरक्षोन्ताश्चतुर्हस्ता द्विषड्दले ॥
वरुणः सूर्यनामा च सहस्रांशुस्तथापरः । धाता तपनसञ्ज्ञश्च सविताथ गभस्तिकः ॥५॥
रविश्चैवाथ पर्ज्जन्यस्त्वष्टा मित्रोथ विष्णुकः । मेषादिराशिसंस्थाश्च मार्गादिकार्त्तिकान्तकाः ॥
कृष्णो रक्तो मनाग्रक्तः पीतः पाण्डरकः सितः । कपिलः पीतवर्णश्च शुकाभो धवलस्तथा ॥
धूम्रो नीलः क्रमाद्वर्णाः शक्तयः केशराग्रगाः । इडा सुषुम्णा विश्वार्चिरिन्दुसञ्ज्ञा प्रमर्द्दिनी[6] ॥
ग्रहर्षणी महाकाली कपिला च प्रबोधनी । नीलाम्बरा घनान्तस्था अमृताख्या च शक्तयः ॥
वरुणादेश्च तद्वर्णाः केशराग्रेषु विन्यसेत् । तेजश्चण्डो महावक्रो[7] द्विभुजः पद्मखड्गभृत्[8] ॥१०॥

---

१. आद्याष्टकमिदमिति ख. ग. घ. ।
२. शिवाच्युतेति ख. ।
३. वज्रदृष्टय इति ख. ।
४. महारथ्यो रूपिण्योऽप्सरस इति ख. ।
५. विस्फोटकरुगर्द्दन इति ग. ङ.
६. विश्वाची विन्दुसञ्ज्ञा प्रवर्द्धनी इति ङ. ।
७. महारक्त इति ख. । मार्त्तण्डश्च महारक्त इति ङ. ।
८. पद्मखडगधृगिति ग. घ. । खड्गचर्म्मभृदिति ङ. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कुण्डिकाजप्यमालीन्दुः कुजः शक्त्यक्षमालिकः। बुधश्चापाक्षपाणिः स्याज्जीवः कुण्ड्यक्षमालिकः।।
शुक्रः कुण्डयक्षमाली स्यात् किङ्किणीसूत्रवाञ्छनिः[१] ।
अर्द्धचन्द्रधरो राहुः केतुः खड्गी च दीपभृत् ।। १२ ।।
अनन्तस्तक्षकः कर्क्कः पद्मो महाब्जः शङ्खकः । कुलिकः सूत्रिणः सर्वे फणवक्त्रा महाप्रभाः।।
इन्द्रो वज्री गजारूढश्छागगोऽग्निश्च शक्तिमान्। यमो दण्डी च महिषे नैर्ऋतः खड्गवान् करे।।
मकरे वरुणः पाशी वायुर्ध्वजधरो मृगे। गदी[२] कुवेरो मेषस्थ ईशानश्च जटी वृषे ।।१५।।
द्विबाहवो लोकपाला विश्वकर्म्माक्षसूत्रभृत्। हनूमान् वज्रहस्तः स्यात पद्भ्यां सम्पीडिताश्रयः।।
वीणाहस्ताः किन्नराः स्युर्मालाविद्याधराश्च खे[३]। दुर्बलाङ्गाः पिशाचाः स्युर्वेताला विकृताननाः[४] ।।
क्षेत्रपालाः शूलवन्तः[५] प्रेता महोदराः कृशाः ।। १७ ।।

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये प्रतिमालक्षणं नाम एकपञ्चाशोऽध्यायः ।

द्विपञ्चाशोऽध्यायः

देवीप्रतिमालक्षणम् ।

भगवानुवाच

योगिन्यष्टाष्टकं वक्ष्ये ऐन्द्रादीशान्ततः क्रमात् । अक्षोभ्या रूक्षकर्णी च राक्षसी कृपणाक्षया[६] ।।
पिङ्गाक्षी च क्षया क्षेमा इला लीलालया तथा। लोला लक्ता बलाकेशी[७] लालसा विमला पुनः[८]।।
हुताशा च विशालाक्षी हुङ्कारा वडवामुखी। महाक्रूरा क्रोधना तु भयङ्करी महानना ।।३।।
सर्वज्ञा तरला तारा ऋग्वेदा तु हयानना। साराख्या रुद्रसङ्ग्राही[९] सम्बरा तालजङ्घिका ।।४।।
रक्ताक्षी सुप्रसिद्धा तु विद्युज्जिह्वा करङ्किणी। मेघनादा प्रचण्डोग्रा कालकर्णी[१०] वरप्रदा।।५।।
चन्द्रा चन्द्रावली[११] चैव प्रपञ्चा प्रलयान्तिका। शिशुवक्त्रा पिशाची च पिशिताशा च लोलुपा।।
धमनी तापनी चैव रागिणी[१२] विकृतानना। वायुवेगा बृहत्कुक्षिर्विकृता विश्वरूपिका ।।७।।
यमजिह्वा जयन्ती च दुर्जया च जयन्तिका। विडाली रेवती चैव पूतना विजयान्तिका ।।८।।

---

१. शिखिनीसूत्रवान् शनिरिति ग. घ. । २. खड्गी इति घ. ।
३. मणिविद्याधराश्च खे इति ख. । ४. विस्तृतानना इति ख. ।
५. शूलयुता इति ग. घ. ङ. ।
६. क्षपणा क्षमा इति ख. । क्षपणा क्षपा, इति ग. घ. ।
७. लोला रक्ता च लोकेशो इति ग. घ. ङ. । ८. विमला तत इति ग. घ. ।
९. रससङ्ग्राही इति ख. । वसुसङ्ग्राही इति घ. । १०. कालवर्णी इति ग. घ. ।
११. चण्डा चण्डवतीति ङ. । १२. वामनी इति ख. ग. ङ. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अष्टहस्ताश्चतुर्हस्ता इच्छास्त्राः सर्वसिद्धिदाः । भैरवश्चार्कहस्तः स्यात् कूर्परास्यो[१] जटेन्दुभृत् ॥
खड्गाङ्कुशकुठारेषुविश्वाभयभृदेकतः । चापत्रिशूलखट्वाङ्गपाशकार्द्धवरोद्यतः ॥१०॥
गजचर्मधरो द्वाभ्यां कृत्तिवासोहिभूषितः । प्रेताशनो मातृमध्ये पूज्यः पञ्चाननोथवा ॥११॥
अविलोमाग्निपर्यन्तं दीर्घाष्टकैकभेदितम् । तन्षडङ्गानि जात्यन्तैरन्वितं च क्रमाद् यजेत् ॥
मन्दिराग्निदलारूढं[२] सुवर्णरसकान्वितम् । नादबिन्द्विन्दुसंयुक्तं मातृनाथाङ्गदीपितम् ॥१३॥
वीरभद्रो वृषारूढो मात्रग्रे स चतुर्मुखः । गौरी तु द्विभुजा त्र्यक्षा शूलिनी दर्पणान्विता ॥
शूलं गलन्तिका कुण्डी[३] वरदा च चतुर्भुजा । अब्जस्था ललिता स्कन्दगणादर्शशलाकया[४] ॥
चण्डिका दशहस्ता स्यात् खड्गशूलारिशक्तिधृक् । दक्षे वामे नागपाश चर्माङ्कुशकुठारकम् ॥
धनुः सिंहे च महिषः शूलेन प्रहतोग्रतः ॥ १६ ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये देवीप्रतिमालक्षणं नाम द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

लिङ्गलक्षणम् ।

भगवानुवाच

लिङ्गादिलक्षणं वक्ष्ये कमलोद्भव तच्छृणु । दैर्घ्यार्द्धं वसुभिर्भक्त्वा त्यक्त्वा भागत्रयं ततः ॥१॥
विष्कम्भं भूतभागैस्तु चतुरस्त्रन्तु कारयेत् । आयामं मूर्तिभिर्भक्त्वा एकद्वित्रिक्रमान् न्यसेत् ॥
ब्रह्मविष्णुशिवांशेषु वर्द्धमानोयमुच्यते । चतुरस्त्रेस्य वर्णार्द्धं गुह्यकोणेषु लाञ्छयेत ॥३॥
अष्टाग्रं वैष्णवं भागं सिध्यत्येव न संशयः । षोडशास्त्रं ततः कुर्य्याद् द्वात्रिंशास्त्रं ततः पुनः ॥
चतुःषष्ट्यस्त्रकं कृत्वा वर्त्तुलं साधयेत्ततः । कर्तयेदथ लिङ्गस्य शिरो वै देशिकोत्तमः ॥५॥
विस्तारमथ लिङ्गस्य अष्टधा संविभाजयेत् ।
भागार्द्धार्द्धन्तु सन्त्यज्य च्छत्राकारं शिरो भवेत् ॥ ६ ॥
त्रिषु भागेषु सदृशमायामं यस्य विस्तरम् । तद्विभागसमं लिङ्गं सर्वकामफलप्रदम् ॥७॥
दैर्घ्यस्य तु चतुर्थेन विष्कम्भं देवपूजिते । सर्वेषामेव लिङ्गानां लक्षणं शृणु साम्प्रतम् ॥८॥
मध्यसूत्रं समासाद्य ब्रह्मरुद्रान्तिकं[५] बुधः । षोडशाङ्गुललिङ्गस्य षड्भागैर्भाजितो यथा ॥९॥
तद्वैयमनसूत्राभ्यां मानमन्तरमुच्यते । यवाष्टमुत्तरे कार्यं शेषाणां यवहानितः ॥१०॥
अधोभागं त्रिधा कृत्वा त्वर्द्धमेकं परित्यजेत् । अष्टधा तद्द्वयं कृत्वा ऊर्ध्वभागत्रयं त्यजेत् ॥

---

१. दन्तुरास्य इति ख. घ. । २. मण्डलाग्निदलारूढमिति ङ. ।
३. शूलं गलन्ती कुण्डी चेति ख. । ४. स्कन्दगणा दश विनायका इति ख. ।
५. अत्र चण्डिका दशहस्तेषु खड्गशूलारिशक्तिधृगिति युक्तःपाठः । अस्मल्लब्धपुस्तकेषु नायं पाठः ।
५. व्रजेदात्यन्तिकमिति ग. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ऊर्ध्वञ्च पञ्चमाद्भागाद् भ्राम्य रेखां प्रलम्बयेत् । भागमेकं परित्यज्य सङ्गमं कारयेत्तयोः ॥
एतत् साधारणं प्रोक्तं लिङ्गानां लक्षणं मया । सर्वसाधारणं वक्ष्ये पिण्डिकान्तान्निबोध मे ॥
ब्रह्मभागप्रवेशञ्च ज्ञात्वा लिङ्गस्य चोच्छ्रयम् । न्यसेद् ब्रह्मशिलां विद्वान् सम्यक्कर्मशिलोपरि॥
तथा समुच्छ्रयं ज्ञात्वा पिण्डिकां प्रविभाजयेत् । द्विभागमुच्छ्रितं पीठं विस्तारं लिङ्गसम्मितम् ॥
त्रिभागं मध्यतः खातं कृत्वा पीठं[१] विभाजयेत् । स्वमानार्द्धत्रिभागेण बाहुल्यं परिकल्पयेत् ॥
बाहुल्यस्य त्रिभागेण मेखलामथ कल्पयेत् । खातं स्यान्मेखलातुल्यं क्रमान्निम्नन्तु कारयेत् ॥
मेखलाषोडशांशेन खातं वा तत्प्रमाणतः । उच्छ्रायं तस्य पीठस्य विकाराङ्गं तु[२] कारयेत् ॥
भूमौ प्रविष्टमेकं तु भागैकैकेन[३] पिण्डिका । कण्ठं भागैस्त्रिभिः कार्यं भागेनैकेन पट्टिका ॥
द्व्यंशेन चोर्ध्वपट्टन्तु[४] एकांशाः शेषपट्टिकाः । भागं भागं प्रविष्टन्तु यावत कण्ठं ततः पुनः ॥
निर्गमं भागमेकं तु यावद्वै शेषपट्टिका । प्रणालस्य त्रिभागेन निर्गमस्तु त्रिभागतः ॥२१॥
मूलेङ्गुल्यग्रविस्तारमग्रे त्र्यंशेन चार्द्धतः । ईषन्निम्नन्तु कुर्वीत खातं तच्चोत्तरेण वै ॥
पिण्डिकासहितं लिङ्गमेतन साधारणं स्मृतम् ॥ २२ ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये लिङ्गलक्षणं नाम त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

लिङ्गमानादिकथनम् ।

भगवानुवाच

वक्ष्याम्यन्यप्रकारेण[५] लिङ्गमानादिकं शृणु । वक्ष्ये लवणजं लिङ्गं घृतजं बुद्धिवर्द्धनम् ॥१॥
भूतये वस्त्रलिङ्गन्तु लिङ्गन्तात्कालिकं विदुः । पक्कापक्वं मृण्मयं स्यादपकात् पकजं वरम्॥२॥
ततो दारुमयं पुण्यं दारुजात् शैलजं वरम । शैलाद्वरं तु मुक्ताजं ततो लौहं सुवर्णजम् ॥३॥
राजतं कीर्त्तितं ताम्रं पैत्तलं भुक्तिमुक्तिदम् । रङ्गजं[६] रसलिङ्गञ्च भुक्तिमुक्तिप्रदं वरम् ॥४॥
रसजं रसलोहादिरत्नगर्भन्तु वर्धयेत । मानादि नेष्टं सिद्धादि स्थापितेथ स्वयम्भुवि ॥५॥
वामे च स्वेच्छया तेषां पीठप्रासादकल्पना। पूजयेन् सूर्य्यविम्वस्थं दर्पणे प्रतिविम्वितम्॥६॥
पूज्यो हरस्तु सर्वत्र लिङ्गे पूर्णार्च्चनं भवेत् । हस्तोत्तरविधं शैलं[७] दारुजं तद्वदेव हि ॥७॥
चलमङ्गुलमानेन द्वारगर्भकरैः स्थितम्[८] । अङ्गुलाद् गृहलिङ्गं स्याद्यावत् पञ्चदशाङ्गुलम् ॥८॥
द्वारमानात् त्रिसङ्ख्याकं नवधा गर्भमानतः । नवधा गर्भमानेन लिङ्गन्धाम्नि च पूजयेत् ॥९॥
एवं लिङ्गानि षट्त्रिंशत् ज्ञेयानि ज्येष्ठमानतः । मध्यमानेन षट्त्रिंशत् षट्त्रिंशदधमेन च ॥

---

१. मध्यतः कृत्वा ततः पीठमिति घ. ।
२. विकारांशांश्चेति घ. ।
३. भागैनैकेनेति ग. ।
४. चार्द्धपट्टन्तु इति ख. ग. ।
५. प्रवक्ष्येऽहं प्रकारेणेति ग. ।
६. रत्नजमिति ख. ।
७. हस्ते तु विविधं शैलमिति ग. ।
८. वनमङ्गुलमानेन द्वारगर्भकरे स्थितमिति ग. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इत्थमैक्येन लिङ्गानां शतमष्टोत्तरं भवेत्। एकाङ्गुलादिपञ्चान्तं कन्यसञ्चलमुच्यते ॥११॥
षडादिदशपर्यन्तञ्चलं लिङ्गञ्च मध्यमम्। एकादशाङ्गुलादि स्यात् ज्येष्ठं पञ्चदशान्तकम्॥१२॥
षडङ्गुलं महारत्नै रत्नैरन्यैर्नवाङ्गुलम्। रविभिर्हेमभारोत्थं लिङ्गं शेषैस्त्रिपञ्चभिः ॥१३॥
षोडशांशे च वेदांशे युगं लुप्त्वोर्ध्वदेशतः। द्वात्रिंशत्षोडशांशांश्च[1] कोणयोस्तु विलोपयेत् ॥
चतुर्निवेशनात् कण्ठो विंशतिस्त्रियुगैस्तथा[2]। पार्श्वाभ्यां तु विलुप्ताभ्यां चललिङ्गं भवेद्वरम्[3] ॥
धाम्नो युगत्तु नागांशैर्द्वारं हीनादितः क्रमात्। लिङ्गद्वारोच्छ्रयादर्वाग् भवेत् पादोनतः क्रमात्॥
गर्भार्द्धेनाधमं लिङ्गं भूतांशैः स्यात् त्रिभिर्वरम्। तयोर्मध्ये च सूत्राणि सप्त सम्पातयेत् समम् ॥
एवं स्युर्नव सूत्राणि भूतसूत्रैश्च मध्यमम्। द्वयन्तरो वामवामश्च[4] लिङ्गानां दीर्घता नव ॥
हस्ताद्विवर्द्धते हस्तो यावत्स्युर्न्नव पाणयः। हीनमध्योत्तमं लिङ्गं त्रिविधं त्रिविधात्मकम् ॥
एकैकलिङ्गमध्येषु त्रीणि त्रीणि च पादराः। लिङ्गानि घटयेद्धीमान षट्सु चाष्टोत्तरेषु च ॥
स्थिरदीर्घप्रमेयात्तु द्वारगर्भकरात्मिका। भागेशश्चाप्यमीशश्च देवेज्यन्तुल्यसंज्ञितम ॥२१॥
चत्वारि लिङ्गरूपाणि त्रिष्कम्भेण तु लक्षयेत्। दीर्घमायान्वितं कृत्वा लिङ्गं कुर्य्यात त्रिरूपकम्॥
चतुरष्टाष्टवृत्तञ्च तत्त्वत्रयगुणात्मकम्। लिङ्गानामीप्सितं दैर्घ्यं तेन कृत्वाङ्गुलानि वै ॥२३॥
ध्वजाद्यायैः सुरैर्भूतैः शिखिभिर्व्वा हरेत् कृतिम्। तान्यङ्गुलानि यच्छेषं लक्षयेच्च शुभाशुभम्॥
ध्वजाद्या ध्वजसिंहेभवृषाः श्रेष्ठाः परे शुभाः। खरेषु षड्जगान्धारपञ्चमाः शुभदायकाः ॥
भूतेषु च शुभा भूः स्यादग्निष्वाहवनीयकः। उक्तायामस्य चार्द्धांशे नागांशैर्भाजिते क्रमात् ॥
रसभूतांशषष्ठांशत्र्यंशाधिकशरैर्भवेत्। आढ्यानाढ्यसुरेज्यार्कतुल्यानाञ्चतुरस्त्रता ॥२७॥
पञ्चमं वर्द्धमानाख्यं व्यासान्नाहप्रवृद्धितः। द्विधा भेदा बहून्यत्र वक्ष्यन्ते विश्वकर्म्मतः ॥२८॥
आढ्यादीनां त्रिधा स्थौल्याद्यवधूतं तदष्टधा[5]। त्रिधा हस्ताज्जिनाख्यञ्च युक्तं सर्वसमेन च[6] ॥
पञ्चविंशतिलिङ्गानि नाद्ये[7] देवार्च्चिते तथा। पञ्चसप्तभिरेकत्वाज्जिनैर्भक्तैर्भवन्ति हि ॥३०॥
चतुर्द्दशसहस्राणि चतुर्दशशतानि च। एवमष्टाङ्गुलविस्तारो[8] नवैककरगर्भतः ॥३१॥

तेषां कोणार्द्धकोणस्थैश्छिन्त्स्यात् कोणानि[9] सूत्रकैः।
विस्तारं मध्यतः कृत्वा स्थाप्यं वा मध्यतस्त्रयम् ॥ ३२ ॥
त्रिभागादूर्ध्वमष्टास्रो[10] द्वयष्टास्रः स्याच्छिवांशकः।
पादाज्जान्वन्तको ब्रह्मा नाभ्यन्तो विष्णुरित्यतः ॥ ३३ ॥

मूर्द्ध्वान्तो भूतभागेशो व्यक्तेऽव्यक्ते च तद्भवति। पञ्चलिङ्गव्यवस्थायां शिरो वर्त्तुलमुच्यते ॥

१. द्वात्रिंशत्षोडशार्द्धञ्चेति ग. घ. ङ.　　२. विंशतिस्त्रिगुणैस्तथेति घ. ।
३. वनलिङ्गं भवेद्वरमिति ग. घ. । चललिङ्गं भवेद् ध्रुवमिति ख. ।
४. अन्तरे वामवामे चेति ङ. ।　　५. स्थौल्याद् यववृद्ध्या तदष्टधा इति ख. ।
६. पूजयेत् सर्व्वमेव चेति ङ. ।　　७. नादये देवार्च्चित इति ख. ग. ।
८. एवमष्टाङ्गुलविन्यास इति ग. घ. । ९. छिन्द्यात् कोणानीति ख. । छिन्द्यात् कोषाणि इति ङ. ।
१०. द्विभागादूर्ध्वमष्टास्र इति ख. ङ. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

छत्राभं कुक्कुटाभं वा वालेन्दुप्रतिमाकृतिः[१]। एकैकस्य चतुर्भेदैः[२] काम्यभेदान् फलं वदे ॥३५॥
लिङ्गमस्तकविस्तारं वसुभक्तन्तु कारयेत । आद्यभागं चतुर्द्धा तु[३] विस्तारोच्छ्रायतो भजेत् ॥
चत्वारि तत्र सूत्राणि[४] भागभागानुपातनात् । पुण्डरीकन्तु भागेन विशालाख्यं विलोपनात् ॥
त्रिशातनात्तु श्रीवत्सं शत्रुकृद्वेदलोपनात् । शिरः सर्वसमे श्रेष्ठं कुक्कुटाभं सुराह्वये[५] ॥३८॥
चतुर्भागात्मके लिङ्गे त्रपुषं द्वयलोपनात् । अनाद्यस्य शिरः प्रोक्तमर्द्धचन्द्रं शिरः शृणु ॥३९॥
अंशात् प्रान्ते युगांशैश्च त्वेकह्रान्यामृताक्षकम्[६]। पूर्णबालेन्दुकुमुदं द्वित्रिवेदक्षयात् क्रमात्॥४०॥
चतुस्त्रिरेकवदनं मुखलिङ्गमतः शृणु । पूजाभागं प्रकर्त्तव्यं मूर्त्त्यग्निपदकल्पितम्[७] ॥४१॥
अर्कांशं पूर्ववत् त्यक्त्वा षट स्थानानि विवर्त्तयेत् । शिरोन्नतिः प्रकर्त्तव्या ललाटं नासिका ततः॥
वदनं चिवुकं ग्रीवा युगभागैर्भुजाक्षिभिः । कराभ्यां मुकुलीकृत्य[८] प्रतिमायाः प्रमाणतः ॥४३॥
मुखं प्रति समः कार्यो विस्तारादष्टमांशतः । चतुर्मुखं मया प्रोक्तं त्रिमुखञ्चोच्यते शृणु ॥४४॥
कर्णपादाधिकास्तस्य ललाटादीनि निर्दिशेत् । भुजौ चतुर्भिर्भागैस्तु कर्त्तव्यौ पश्चिमोज्झितम्॥
विस्तरादष्टमांशेन मुखानां प्रतिनिर्गमः । एकवक्त्रं तथा कार्य्यं पूर्वस्यां सौम्यलोचनम् ॥४६॥
ललाटनासिकावक्त्रग्रीवायाश्च विवर्त्तयेत । भुजाच्च पञ्चमांशेन[९] भुजहीनं विवर्तयेत् ॥४७॥
विस्तारस्य षडंशेन मुखैर्निर्गमनं हितम् । सर्वेषां मुखलिङ्गानां त्रपुषं वाथ कुक्कुटम् ॥४८॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये व्यक्ताव्यक्तलक्षणं नाम चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

पिण्डिकालक्षणकथनम् ।

भगवानुवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि प्रतिमानान्तु पिण्डिकाम् । दैर्घ्येण प्रतिमातुल्या तदर्द्धेन तु विस्तृता ॥१॥
उच्छ्रितायामतोर्द्धेन सुविस्ताराद्धभागतः । तृतीयेन तु वा तुल्यं[१०] तत्त्रिभागेण मेखला ॥२॥
खातं च तत्प्रमाणं तु किञ्चिदुत्तरतो नतम् । विस्तारस्य चतुर्थेन प्रणालस्य विनिर्गमः ॥३॥
सममूलस्य विस्तारमग्रे कुर्य्यात्तदर्द्धतः । विस्तारस्य तृतीयेन तोयमार्गन्तु कारयेत् ॥४॥
पिण्डिकार्द्धेन वा तुल्यं[११] दैर्घ्यमीशस्य[१२] कीर्तितम् ।
ईशं वा[१३] तुल्यदीर्घञ्च ज्ञात्वा सूत्रं प्रकल्पयेत् ॥ ५ ॥

---

१. बालेन्दुत्रपुषाकृतिरिति ख. ग. घ. । २. चतुर्भागैरिति ख. ।
३. अन्त्यभागमिति ग. घ. । ४. चत्वारि तत्र छत्राणि इति ख. ग. घ. ङ. ।
५. कुक्कुटाण्डं सुधाद्वये इति ख. । ६. द्वैकहान्या सुताह्वयमिति ख. ।
७. ऋत्वग्निपदकल्पितमिति ख. । मुखभागं प्रकर्त्तव्यं मूलाग्निपदकल्पितमिति ङ. ।
८. कर्णाभ्यां कुण्डलीकृत्वेति ग. । ९. भुजार्द्धपञ्चमांशेनेति ङ. ।
१०. त्रिभागेन तु बाहुल्यमिति ङ. । ११. पिण्डिकार्द्धेन बाहुल्यमिति ङ. ।
१२. दैर्घ्यं कुशस्येति ग. ङ. । १३. कुशम्बाहुल्यदीर्घञ्चेति ङ. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उच्छ्रायं पूर्ववत् कुर्य्याद्भागषोडशसङ्ख्यया। अधः षट्कं द्विभागन्तु कण्ठं कुर्यात्त्रिभागकम्॥
शेषास्त्वेकैकशः कार्याः प्रतिष्ठानिर्गमास्तथा। पट्टिका पिण्डिका चेयं सामान्यप्रतिमासु च॥७॥
प्रासादद्वारमानेन प्रतिमाद्वारमुच्यते[1]। गजव्यालकसंयुक्ता प्रभा स्यात् प्रतिमासु च॥८॥
पिण्डिकापि यथाशोभं कर्त्तव्या सततं हरेः।
सर्वेषामेव देवानां विष्णूक्तं मानमुच्यते। देवीनामपि सर्वासां लक्ष्म्युक्तं मानमुच्यते॥९॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये पिण्डिकालक्षणं नाम
पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः।

षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः
दिक्पालयागकथनम्।

भगवानुवाच

प्रतिष्ठापञ्चकं वक्ष्ये प्रतिमात्मा तु पूरुषः। प्रकृतिः पिण्डिका लक्ष्मीः प्रतिष्ठा योगकस्तयोः॥१॥
इच्छाफलार्थिभिस्तस्मात्प्रतिष्ठा क्रियते नरैः। गर्भसूत्रं तु निःसार्य[2] प्रासादस्याग्रतो गुरुः॥२॥
अष्टषोडशविंशान्तं मण्डपञ्चाधमादिकम्। स्नानार्थं कलशार्थञ्च यागद्रव्यार्थमद्धतः॥३॥
त्रिभागेणार्द्धभागेन वेदिं कुर्यात्तु शोभनाम्। कलशैर्घटिकाभिश्च वितानाद्यैश्च भूषयेत्॥४॥
पञ्चगव्येन सम्प्रोक्ष्य सर्वद्रव्याणि धारयेत्। अलङ्कृतो गुरुर्विष्णुं ध्यात्वात्मानं प्रपूजयेत्॥
अङ्गुलीयप्रभृतिभिर्मूर्त्तिपान् वलयादिभिः। कुण्डे कुण्डे स्थापयेच्च मूर्त्तिपांस्तत्र पारगान्॥६॥
चतुष्कोणे चार्द्धकोणे वर्तुले पद्मसन्निभे। पूर्वादौ तोरणार्थन्तु पिप्पलोडुम्बरौ वटम्॥७॥
प्लक्षं सुशोभनं पूर्वं सुभद्रन्दक्षतोरणम्। सुकर्म च सुहोत्रञ्च आप्ये सौम्ये समुच्छ्रयम्॥८॥
पञ्चहस्तं तु संस्थाप्य स्योनापृथ्वीति पूजयेत्। तोरणस्तम्भमूले तु कलशान्मङ्गलाङ्कुरान्॥९॥
प्रदद्यादुपरिष्टाच्च कुर्य्याच्चक्रं सुदर्शनम्। पञ्चहस्तप्रमाणन्तु ध्वजं कुर्य्याद्विचक्षणः॥१०॥
वैपुल्यं चास्य कुर्वीत षोडशाङ्गुलसम्मितम्। सप्तहस्तोच्छ्रितं वास्य कुर्य्यात् कुण्डं सुरोत्तम[3]॥
अरुणोग्निनिभश्चैव कृष्णः शुक्लोथ पीतकः। रक्तवर्णस्तथा श्वेतः श्वेतवर्णादिकक्रमात्[4]। १२॥
कुमुदः कुमुदाक्षश्च पुण्डरीकोथ वामनः। शङ्कुकर्णः सर्व्वनेत्रः सुमुखः सुप्रतिष्ठितः॥१३॥
पूज्या कोटिगुणैर्युक्ताः पूर्व्वाद्या ध्वजदेवताः। जलाढकसुपूरास्तु पक्वबिम्बोपमा घटाः॥१४।
अष्टाविंशाधिकशतं कालमण्डनवर्जिताः। सहिरण्या वस्त्रकण्ठाः सोदकास्तोरणाद् बहिः॥१५॥
घटाः स्थाप्याश्च पूर्वादौ वेदिकायाश्च कोणगान्। चतुरः स्थापयेत् कुम्भानाजिघ्रेति च मन्त्रतः॥
कुम्भेष्वावाह्य शक्रादीन् पूर्वादौ पूजयेत् क्रमात्।इन्द्रागच्छ देवराज वज्रहस्त गजस्थित॥१७॥

---

१. प्रतिमाद्रव्यमुच्यते इति ख. ङ.। २. गर्भसूत्रन्तु निर्मायेति ङ.।
३. समाहित इति ङ.। ४. श्वेतवर्णक्रमात् ध्वजा इति ङ। कृष्णवर्णक्रमाद्ध्वजा इति ङ.।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पूर्वद्वारञ्च मे रक्ष देवैः सह नमोस्तु ते । त्रातारमिन्द्रमन्त्रेण अर्चयित्वा यजेद् बुधः ॥१८॥
आगच्छाग्ने शक्तियुत[1] छागस्थ बलसंयुत । रक्षाग्नेयीं दिशं देवैः पूजां गृह्ण नमोस्तु ते॥१९॥
अग्निर्मूर्द्धेतिमन्त्रेण[2] यजेद्वा अग्नये नमः । महिषस्थ यमागच्छ दण्डहस्त महाबल ॥२०॥
रक्ष त्वं दक्षिणद्वारं वैवस्वत नमोस्तु ते । वैवस्वतं सङ्गमनमित्यनेन यजेद्यमम् ॥२१॥
नैर्ऋतागच्छ खड्गाढ्य बलवाहनसंयुत[3]। इदमर्घ्यमिदं पाद्यं रक्ष त्वं नैर्ऋतीं दिशम् ॥२२॥
एष ते नैर्ऋते मन्त्रेण यजेदर्घ्यादिभिर्नरः । मकरारूढ वरुण पाशहस्त महाबल ॥२३॥
आगच्छ पश्चिमं द्वारं रक्ष रक्ष नमोस्तु ते । उरुं हि राजा वरुणं यजेदर्घ्यादिभिर्गुरुः ॥२४॥
आगच्छ वायो सबल ध्वजहस्त सवाहन । वायव्यं रक्ष देवैस्त्वं समरुद्भिर्नमोस्तु ते ॥२५॥
वात इत्यादिभिश्चार्चेदोन्नमो वायवेपि वा । आगच्छ सोम सबल गदाहस्त सवाहन ॥२६॥
रक्ष त्वमुत्तरद्वारं सकुवेर नमोस्तु ते । सोमं राजानमिति वा यजेत्सोमाय वै नमः ॥२७॥
आगच्छेशान सबल शूलहस्त वृषस्थित । यज्ञमण्डपस्यैशानीं दिशं रक्ष नमोस्तु ते ॥२८॥
ईशानमस्येति यजेदीशानाय नमोऽपि वा । ब्रह्मन्नागच्छ हंसस्य स्रुक्स्रुवव्यग्रहस्तक ॥२९॥
सलोकोद्ध्वां दिशं रक्ष यज्ञस्याज नमोस्तु ते । हिरण्यगर्भेति यजेन्नमस्ते ब्रह्मणेपि वा ॥३०॥
अनन्तागच्छ चक्राढ्य कूर्म्मस्थाहिगणेश्वर । अधोदिशं रक्ष रक्ष अनन्तेश नमोस्तु ते ॥
नमोस्तु सर्पेति यजेदनन्ताय नमोपि वा ॥ ३१ ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये दिक्पतियागो नाम षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

कुम्भाधिवासविधिः ।

भगवानुवाच

भूमेः परिग्रहं कुर्य्यात् क्षिपेद् व्रीहींश्च सर्षपान् । नारसिंहेन रक्षोघ्नान् प्रोक्षयेत पञ्चगव्यतः॥
भूमिं घटे तु सम्पूज्य सरत्ने साङ्गकं हरिम् । अस्त्रमन्त्रेण करकं[4] तत्र चाष्टशतं यजेत् ॥२॥
अच्छिन्नधारया सिञ्चन् व्रीहीन् संस्कृत्य धारयेत् । प्रदक्षिणं परिभ्राम्य कलशं विकिरोपरि ॥
सवस्त्रे कलशे भूयः पूजयेदच्युतं श्रियम् । योगे योगेति मन्त्रेण न्यसेच्छय्यान्तु मण्डले। ४॥
कुशोपरि तूलिकाञ्च शय्यायां दिग्विदिक्षु च । विद्याधिपान् यजेद्विष्णुं मधुघातं त्रिविक्रमम्॥
वामनं दिक्षु वाय्वादौ[5] श्रीधरञ्च हृषीकपम् । पद्मनाभं दामोदरमैशान्यां स्नानमण्डपे ॥६॥
अभ्यर्च्य पश्चादैशान्यां चतुष्कुम्भे[6] सवेदिके। स्नानमण्डपके सर्वद्रव्याण्यानीय निक्षिपेत्॥७॥
स्नानकुम्भेषु कुम्भांस्तांश्चतुर्दिक्ष्वधिवासयेत् । कलशाः स्थापनीयास्तु अभिषेकार्थमादरात् ॥

---

१. शक्तिहस्त इति ङ. ।
२. अग्निमूर्द्धेति अर्घ्याद्यैरिति ख. ।
३. नरवाहनसंयुत इति ख. ङ. ।
४. अस्त्रमन्त्रेण कवचमिति ङ. ।
५. दिक्षु वह्न्यादाविति ङ ।
६. चतुस्तम्भे इति ग. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वटोदुम्बरकाश्वत्थांश्चम्पकाशोकश्री द्रुमान्[1]। पलाशार्जुनप्लक्षांस्तु कदम्बवकुलाम्रकान् ॥९॥
पल्लवांस्तु समानीय पूर्वकुम्भे[2] विनिक्षिपेत्। पद्मकं रोचनां दूर्व्वां दर्भपिञ्जलमेव च ॥१०॥
जातीपुष्पं कुन्दपुष्पञ्चन्दनं रक्तचन्दनम्। सिद्धार्थं तगरञ्चैव तण्डुलं दक्षिणे न्यसेत्॥११॥
सुवर्णं रजतञ्चैव कूलद्वयमृदन्तथा। नद्याः समुद्रगामिन्या विशेषात् जाह्नवीमृदम् ॥१२॥
गोमयञ्च यवान् शालींस्तिलांश्चैवापरे न्यसेत्। विष्णुपर्णीं श्यामलतां भृङ्गराजं शतावरीम् ॥
सहदेवां महादेवीं[3] बलां व्याघ्रीं सलक्ष्मणाम्। ऐशान्यामपरे कुम्भे मङ्गल्यान्विनिवेशयेत् ॥
वल्मीकमृत्तिकां सप्तस्थानोत्थामपरे न्यसेत्। जाह्नवीवालुकातोयं विन्यसेदपरे घटे ॥१५॥
वराहवृषनागेन्द्रविषाणोद्धृतमृत्तिकाम्। मृत्तिकां पद्ममूलस्य कुशस्य त्वपरे न्यसेत् ॥१६॥
तीर्थपर्वतमृद्भिश्च युक्तमप्यपरे न्यसेत्। नागकेशरपुष्पञ्च काश्मीरमपरे न्यसेत् ॥१७॥
चन्दनागुरुकर्पूरैः पुष्पं चैवापरे न्यसेत्। वैदूर्यं विद्रुमं मुक्तां स्फटिकं वज्रमेव च ॥१८॥
एतान्येकत्र निक्षिप्य स्थापयेद्देवसत्तम। नदीनदतडागानां सलिलैरपरं न्यसेत् ॥१९॥
एकाशीतिपदे धान्यान्मण्डपे कलशान् न्यसेत्। गन्धोदकाद्यैः सम्पूर्णान् श्रीसूक्तेनाभिमन्त्रयेत्॥
यवं सिद्धार्थकं गन्धं कुशाग्रं चाक्षतं तथा। तिलान् फलं तथा पुष्पमर्घ्यार्थं पूर्वतो न्यसेत् ॥
पद्मं श्यामलतां दूर्वां विष्णुपर्णीं कुशांस्तथा। पाद्यार्थं दक्षिणे भागे मधुपर्कं तु दक्षिणे[4] ॥
कक्कोलकं लवङ्गञ्च तथा जातीफलं शुभम्। उत्तरे ह्याचमनाय अग्नौ दूर्वाक्षतान्वितम् ॥२३॥
पात्रं नीराजनार्थं च तथोद्वर्त्तनमानिले। गन्धपुष्पान्वितं पात्रमैशान्यां पात्रके न्यसेत् ॥२४॥
मुरामांसीं चामलकं सहदेवां निशादिकम्। षष्टिदीपान्न्यसेदष्टौ न्यसेन्नीराजनाय च ॥२५॥
शङ्खंहचक्रञ्च श्रीवत्सं कुलिशं पङ्कजादिकम्। हेमादिपात्रे कृत्वा तु नानावर्णादिपुष्पकम् ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये कलशाधिवासो नाम सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः।

अष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

स्नानादिविधिः।

भगवानुवाच

ऐशान्यां जनयेत् कुण्डं गुरुर्व्वह्निञ्च वैष्णवम्। गायत्र्याष्टशतं हुत्वा सम्पातविधिना घटान्॥
प्रोक्षयेत् कारुशालायां शिल्पिभिर्मूर्त्तिपैर्व्रजेत्। तूर्य्यशब्दैः कौतुकञ्च बन्धयेद्दक्षिणे करे॥
विष्णवे शिपिविष्टेति ऊर्णासूत्रेण सर्षपैः। पट्टवस्त्रेण कर्त्तव्यं देशिकस्यापि कौतुकम् ॥३॥
मण्डपे[5] प्रतिमां स्थाप्य सवस्त्रां पूजितां स्तुवन्। नमस्तेऽर्च्ये सुरेशानि प्रणीते विश्वकर्म्मणा॥
प्रभाविताशेषजगद्धात्रि तुभ्यं नमो नमः। त्वयि सम्पूजयामीशे नारायणमनामयम् ॥५॥

---

१. पद्मकाशोकश्रीद्रुमानिति ग.। २. पूर्णकुम्भ इति ङ.।
३. सहदेवां सिंहपुच्छीमिति ख.। सहदेवां जवां सिंहीमिति ङ.।
४. मधुपर्कन्तु पश्चिमे इति ङ.। ५. मण्डले इति ग.।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रहिता शिल्पिदोषैस्त्वमृद्धियुक्ता सदा भव। एवं विज्ञाप्य प्रतिमां नयेत्तां स्नानमण्डपम् ॥६॥
शिल्पिनन्तोषयेद्द्रव्यैर्गुरवे गां प्रदापयेत्। चित्रं देवेति मन्त्रेण नेत्रे चोन्मीलयेत्ततः ॥७॥
अग्निर्ज्योतीति दृष्टिञ्च दद्याद्वै भद्रपीठके। ततः शुक्लानि पुष्पाणि घृतं सिद्धार्थकं तथा ॥८॥
दूर्व्वां कुशाग्रं देवस्य दद्याच्छिरसि देशिकः। मधुवातेति मन्त्रेण नेत्रे चाभ्यञ्जयेद् गुरुः ॥
हिरण्यगर्भमन्त्रेण इमं मेति च कीर्त्तयेत्। घृतेनाभ्यञ्जयेत् पश्चात् पठन घृतवतीं पुनः ॥१०॥
मसूरपिष्टेनोद्वर्त्य[1] अतो देवेति कीर्त्तयन्। क्षालयेदुष्णतोयेन सप्त तेऽग्नेति देशिकः ॥११॥
द्रुपदादिवेत्यनुलिम्पेदापो हिष्ठेति सेचयेत्। नदीजैस्तीर्थजैः स्नानं पावमानीति रत्नजैः ॥
समुद्रं गच्छ चन्दनैस्तीर्थमृत्कलशेन च। शन्नो देवीः स्नापयेच्च गायत्र्याप्युष्णवारिणा[2] ॥
पञ्चमृद्भिर्हिरण्येति स्नापयेत्परमेश्वरम्। सिकताद्भिरिमं मेति वल्मीकोदघटेन च ॥१४॥
तद्विष्णोरिति ओषध्यद्भिर्या ओषधीति मन्त्रतः। यज्ञायज्ञेति काषायैः पञ्चभिर्गव्यकैस्ततः ॥
पयः पृथिव्यां मन्त्रेण याः फलिनी फलाम्बुभिः। विश्वतश्चक्षुः सौम्येन पूर्वेण कलसेन च ॥
सोमं राजानमित्येवं विष्णो रराटं दक्षतः। हंसः शुचिः पश्चिमेन कुर्य्यादुद्वर्त्तनं हरेः ॥१७॥
मूर्द्धानन्दिवमन्त्रेण धात्रीं मांसीं च के ददेत्[3]। मानस्तोकेति मन्त्रेण गन्धद्वारेति गन्धकैः ॥
इदमापेति च घटैरेकाशीतिपदस्थितैः। एह्येहि भगवन् विष्णो लोकानुग्रहकारक ॥१६॥
यज्ञभागं गृहाणेमं वासुदेव नमोस्तु ते। अनेनावाह्य देवेशं कुर्यात कौतुकमोचनम् ॥२०॥
मुञ्चामि त्वेति सूक्तेन देशिकस्यापि मोचयेत्। हिरण्मयेन पाद्यं दद्यादतो देवेति चार्घ्यकम्॥
मधुवाता मधुपर्कं मयि गृह्णामि चाचमेत्। अक्षन्नमीमदन्तेति किरेद्दूर्वाक्षतं बुधः ॥२२॥
काण्डान्निर्म्मञ्छनं कुर्य्याद्गन्धं गन्धवतीति च। उन्नयामीति[4] माल्यञ्च इदं विष्णुः पवित्रकम्॥
बृहस्पते वस्त्रयुग्मं वेदाहमित्युत्तरीयकम्। महाव्रतेन सकलीपुष्पं चौषधयः क्षिपेत् ॥२४॥
धूपं दद्याद्धूरसीति विभ्राट्सूक्तेन चाञ्जनम्। युञ्जन्तीति च तिलकं दीर्घायुष्ट्वेति माल्यकम्॥
इन्द्रच्छत्रेति छत्रन्तु आदर्शन्तु विराजतः। चामरन्तु विकर्णेन भूषां रथन्तरेण च ॥२६॥
व्यजनं वायुदैवत्यैर्मुञ्चामि त्वेति पुष्पकम्। वेदाद्यैः संस्तुतिं कुर्य्याद्धरेः पुरुषसूक्ततः ॥२७॥
सर्वमेतत्समं कुर्य्यात् पिण्डिकादौ हरादिके। देवस्योत्थानसमये सौपर्णं सूक्तमुच्चरेत् ॥२८॥
उत्तिष्ठेति समुत्थाप्य शय्याया मण्डपे नयेत्। शाकुनेनैव सूक्तेन देवं ब्रह्मरथादिना ॥२६॥
अतो देवेति सूक्तेन प्रतिमां पिण्डिकां तथा। श्रीसूक्तेन च शय्यायां विष्णोस्तु शकलीकृतिः ॥
मृगराजं वृषं नागं व्यजनं कलशं तथा। वैजयन्तीं तथा भेरीं दीपमित्यष्टमङ्गलम् ॥३१॥
दर्शयेदश्वसूक्तेन पाददेशे त्रिपादिति। उखां पिधानकं पात्रमम्बिकां दर्व्विकां ददेत् ॥३२॥
मुषलोलूखलं दद्याच्छिलां सम्मार्जनीं तथा। तथा भोजनभाण्डानि गृहोपकरणानि च॥३३॥
शिरोदेशे च निद्राख्यं वस्त्ररत्नयुतं घटम्। खण्डखाद्यैः पूरयित्वा स्नपनस्य विधिः स्मृतः ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये स्नपनादिविधानं नाम अष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः।

---

१. मयूरपिच्छेनोद्वर्त्य इति घ.।
२. गायत्र्या गन्धवारिणा इति ग. घ. ङ.।
३. धात्रीमांस्युदकेन चेति घ.।
४. तत्त्वायामीति इति घ.।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ऊनषष्टितमोऽध्यायः

अधिवासकथनम् ।

भगवानुवाच

हरेः सान्निध्यकरणमधिवासनमुच्यते । सर्व्वज्ञं सर्वगं ध्यात्वा आत्मानं पुरुषोत्तमम् ॥१॥
ओँकारेण समायोज्य चिच्छक्तिमभिमानिनीम्[1] ।
निःसार्य्यात्मैकतां कृत्वा स्वस्मिन्[2] सर्वगते विभौ ॥ २ ॥
योजयेन्मरुता पृथ्वीं वह्निवीजेन दीपयेत् । संहरेद्वायुना चाग्निं वायुमाकाशतो नयेत् ॥३॥
अधिभूतादिदेवैस्तु साध्याख्यैर्विभवैः[3] सह । तन्मात्रपात्रकान् कृत्वा संहरेत्तत् क्रमाद् बुधः॥
आकाशं मनसाहृत्य मनोऽहङ्करणे कुरु[4] । अहङ्कारञ्च महति तच्चाप्यव्याकृते नयेत् ॥५॥
अव्याकृतं ज्ञानरूपे वासुदेवः स ईरितः[5] । स तामव्याकृतिं मायामवष्टभ्य सिसृक्षया ॥६॥
सङ्कर्षणं स शव्दात्मा स्पर्शाख्यमसृजत् प्रभुः । क्षोभ्य मायां स प्रद्युम्नं तेजोरूपं स चासृजत्॥
अनिरुद्धं रसमात्रं व्रह्माणं गन्धरूपकम् । अनिरुद्धः स च व्रह्मा अप आदौ ससर्ज ह ॥८॥
तस्मिन् हिरण्मयञ्चाण्डं सोऽसृजत् पञ्चभूतवद् ।
तस्मिन् सङ्क्रामिते जीव[6] शक्तिरात्मोपसंहृता ॥ ९ ॥
प्राणी जीवेन संयुक्तो वृत्तिमानिति शव्द्यते ।
जीवो व्याहृतिसञ्ज्ञस्तु प्राणेष्वाध्यात्मिकः स्मृतः ॥ १० ॥

प्राणैर्युक्ता ततो बुद्धिः सञ्जाता चाष्टमूर्त्तिकी[7] । अहङ्कारस्ततो जज्ञे मनस्तस्मादजायत ॥
अर्थाः प्रजज्ञिरे पञ्च सङ्कल्पादियुतास्ततः । शव्दः स्पर्शश्च रूपञ्च रसो गन्ध इति स्मृताः ॥
ज्ञानशक्तियुतान्येतैरारव्धानीन्द्रियाणि तु । त्वक्श्रोत्रघ्राणचक्षूंषि जिह्वाबुद्धीन्द्रियाणि तु ॥
पादौ पायुस्तथा पाणी वागुपस्थश्च पञ्चमः । कर्म्मेन्द्रियाणि चैतानि पञ्चभूतान्यतः शृणु ॥
आकाशवायुतेजांसि सलिलं पृथिवी तथा । स्थूलमेभिः शरीरन्तु सर्वाधारं प्रजायते ॥१५॥
एतेषां वाचका मन्त्रा न्यासायोच्यन्त उत्तमाः । जीवभूतं मकारन्तु देवस्य[8] व्यापकं न्यसेत् ॥
प्राणतत्त्वं भकारन्तु जीवोपाधिगतं न्यसेत् । हृदयस्थं बकारन्तु बुद्धितत्त्वं न्यसेद् बुधः॥१७॥
फकारमपि तत्रैव अहङ्कारमयं न्यसेत् । मनस्तत्त्वं पकारन्तु न्यसेत्सङ्कल्पसम्भवम् ॥१८॥
शव्दतन्मात्रतत्त्वन्तु नकारं मस्तके न्यसेत् । स्पर्शात्मकं धकारन्तु वक्त्रदेशे तु विन्यसेत् ॥
दकारं रूपतत्त्वन्तु हृद्देशे विनिवेशयेत्[9] । थकारं वस्तिदेशे तु रसतन्मात्रकं न्यसेत् ॥२०॥

---

१. मतिशालिनीमिति ख. । २. कृत्वा पुंसीति ङ. ।
३. साध्यार्थैर्विभवैरिति ख. ग. । साध्याद्यैर्विभवैरिति ङ. ।
४. मनसाहृत्य मनोऽहङ्करणे क्षरे इति घ. । ५. वासुदेवे समाहित इति ङ. ।
६. सङ्क्रमते जीव इति ख. । ७. चाष्टवृत्तिकीति ङ. ।
८. मकारन्तद्देहस्येति ङ. । ९. विनियोजयेदिति ङ. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तकारं गन्धतन्मात्रं जङ्घयोर्व्विनिवेशयेत् । णकारं श्रोत्रयोर्न्न्यस्य ढकारं विन्यसेत्त्वचि ॥
डकारं नेत्रयुग्मे तु रसनायां ठकारकम् । टकारं नासिकायान्तु ञकारं वाचि विन्यसेत ॥
झकारं करयोर्न्न्यस्य पाणितत्त्वं विचक्षणः । जकारं पदयोर्न्न्यस्य छं पायौ चमुपस्थके ॥
विन्यसेत् पृथिवीतत्त्वं ङकारं पादयुग्मके । वस्तौ घकारं गं तत्त्वं तैजसं हृदि विन्यसेत् ॥
खकारं वायुतत्त्वञ्च नासिकायां निवेशयेत् । ककारं विन्यसेन्नित्यं खतत्त्वं मस्तके बुधः ॥
हृत्पुण्डरीके विन्यस्य यकारं सूर्य्यदैवतम् । द्वासप्ततिसहस्राणि हृदयादभिनिःसृताः ॥२६॥
कलाषोडशसंयुक्त मकारं तत्र विन्यसेत् । तन्मध्ये चिन्तयेन्मन्त्री विन्दुं वह्नेस्तु मण्डलम् २७॥
हकारं[१] विन्यसेत्तत्र प्रणवेन सुरोत्तमः । ओं आं परमेष्ठ्यात्मने आं नमः पुरुषात्मने ॥२८॥
ओं वां मनोनिवृत्त्यात्मने नाञ्च विश्वात्मने नमः ।
ओं वं नमः सर्वात्मने इत्युक्ताः पञ्च शक्तयः[२] ॥ २९ ॥
स्थाने तु प्रथमा योज्या द्वितीया आसने मता । तृतीया शयने तद्वच्चतुर्थी पानकर्म्मणि[३] ॥
प्रत्यर्चायां[४] पञ्चमी स्यात्पञ्चोपनिषदः स्मृताः । हुङ्कारं[५] विन्यसेन्मध्ये ध्यात्वा मन्त्रमयं हरिम् ॥
यां मूर्तिं स्थापयेत्तस्मात्[६] मूलमन्त्रं न्यसेत्ततः । ओं नमो भगवते वासुदेवाय मूलकम् ॥३२॥
शिरोघ्राणललाटेषु मुखकण्ठहृदि क्रमात् । भुजयोर्जङ्घयोरङ्घ्र्योः केशवं शिरसि न्यसेत् ॥
नारायणं न्यसेद्वक्त्रे ग्रीवायां माधवं न्यसेत् । गोविन्दं भुजयोर्न्यस्य विष्णुं च हृदये न्यसेत् ॥
मधुसूदनकं पृष्ठे वामनं जठरे न्यसेत् । कट्यान्त्रिविक्रमं न्यस्य जङ्घायां श्रीधरं न्यसेत् ॥३५॥
हृषीकेशं दक्षिणायां पद्मनाभं तु गुल्फके । दामोदरं पादयोश्च हृदयादिषडङ्गकम् ॥३६॥
एतत् साधारणं प्रोक्तमादिमूर्त्तेस्तु सत्तम । अथवा यस्य देवस्य प्रारब्धं स्थापनं भवेत् ॥
तस्यैव मूलमन्त्रेण सजीवकरणं भवेत् । यस्या मूर्त्तेस्तु यन्नाम तस्याद्यं चाक्षरं च यत् ॥३८॥
तत् स्वरैर्द्वादशैर्भेद्यं ह्यङ्गानि परिकल्पयेत् । हृदयादीनि देवेश मूलञ्च दशमाक्षरम् ॥३९॥
यथा देवे तथा देहे[७] तत्त्वानि विनियोजयेत् । चक्राब्जमण्डले विष्णुं यजेद्गन्धादिना तथा[८] ॥
पूर्व्ववच्चासनं ध्यायेत्सगात्रं[९] सपरिच्छदम् । शुभञ्चक्रं द्वादशारं ह्युपरिष्टाद्विचिन्तयेत् ॥४१॥
त्रिनाभिचक्रं द्विनेमि स्वरैस्तच्च समन्वितम् । पृष्ठदेशे ततः प्राज्ञः प्रकृत्यादीन्निवेशयेत् ॥४२॥
पूजयेदारकाग्रेषु[१०] सूर्य्यं द्वादशधा पुनः । कलाषोडशसंयुक्तं सोमन्तत्र विचिन्तयेत् ॥४३॥

---

१. क्रूंकारमिति ङ. ।
२. ओं षं परमेष्ठ्यात्मने यन्नमः पुरुषात्मने । लं नमो विश्वात्मने वं निवृत्त्यात्मने नमः ॥ नं नमः सर्वात्मने इत्युक्ताः पञ्च शक्तयः इति ङ. ।
३. दानकर्म्मणि इति ङ. ।
४. अभ्यर्चायामिति ख. ।
५. क्षकारमिति ख. ।
६. या मूर्तिः स्थाप्यते तस्यामिति ख. ।
७. यथा तत्त्वे तथा देहे इति ख. ग. घ. ङ. ।
८. यजेद् गन्धादिना तत इति ख. । यजेदाहुतिभिस्तथा इति ग. ।
९. ध्यायेत् तन्मात्रमिति ग. । ध्यायेत् समात्रमिति ख. ।
१०. पूजयेद् द्वादशाग्रेषु इति ख. । पूजयेद् द्वादशारेषु इति घ. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सबलं त्रितयं नाभौ चिन्तयेद्देशिकोत्तमः । पद्मञ्च द्वादशदलं पद्ममध्ये विचिन्तयेत् ।।४४।।
तन्मध्ये पौरुषीं शक्तिं ध्यात्वाभ्यर्च्य च देशिकः[1] । प्रतिमायां हरिं न्यस्य तत्र तं पूजयेत् सुरान्[2] ।।
गन्धपुष्पादिभिः सम्यक् साङ्गं सावरणं क्रमात् । द्वादशाक्षरबीजैस्तु केशवादीन् समर्च्चयेत् ।।
द्वादशारे मण्डले तु लोकपालादिकं क्रमात् । प्रतिमामर्च्चयेत् पश्चाद् गन्धपुष्पादिभिर्द्विजः ।।४७।।
पौरुषेण तु सूक्तेन श्रिया सूक्तेन पिण्डिकाम् । जननादिक्रमात् पश्चाज्जनयेद्वैष्णवानलम् ।।४८।।

हुत्वाग्निं वैष्णवैर्म्मन्त्रैः कुर्य्याच्छान्त्युदकं बुधः ।
तत् सिक्त्वा प्रतिमामूर्द्ध्नि वह्निप्रणयनं चरेत् ।। ४९ ।।

दक्षिणेऽग्निं हुतमिति कुण्डेऽग्निं प्रणयेद् बुधः । अग्निमग्नीति पूर्वे तु कुण्डेऽग्निं प्रणयेद्बुधः ।।५०।।
उत्तरे प्रणयेदग्निमग्निमग्नी हवामहे । अग्निप्रणयने मन्त्रस्त्वमग्ने ह्यग्रिरुच्यते ।।५१।।
पलाशसमिधानान्तु अष्टोत्तरसहस्रकम् । कुण्डे कुण्डे होमयेच्च व्रीहीन् वेदादिकैस्तथा ।।५२।।
साज्यांस्तिलान् व्याहृतिभिर्मूलमन्त्रेण वै घृतम् । कुर्य्यात्ततः शान्तिहोमं मधुरत्रितयेन च ।।
द्वादशार्णैः स्पृशेत् पादौ नाभिं हृन्मस्तकं ततः । घृतं दधि पयो हुत्वा स्पृशेन्मूर्द्धन्यथो ततः ।।
स्पृष्ट्वा शिरोनाभिपादांश्चतस्रः स्थापयेन्नदीः[3] । गङ्गा च यमुना गोदा क्रमान्नाम्ना सरस्वती ।।
दहेत्तु विष्णुगायत्र्या गायत्र्या श्रपयेच्चरुम् । होमयेच्च बलिं दद्यादुत्तरे भोजयेद् द्विजान् ।।५६।।
सामाधिपानां तुष्ट्यर्थं हेम गां गुरवे ददेत् । दिक्पतिभ्यो बलिं दत्त्वा रात्रौ कुर्य्याच्च जागरम् ।।
ब्रह्मगीतादिशब्देन सर्वभागधिवासनात्[4] ।। ५७ ।।

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये अधिवासनं नाम ऊनषष्टितमोऽध्यायः ।

षष्टितमोऽध्यायः

वासुदेवप्रतिष्ठादिविधिः ।

भगवानुवाच

पिण्डिकास्थापनार्थन्तु गर्भागारं तु सप्तधा । विभजेद् ब्रह्मभागे तु प्रतिमां स्थापयेद् बुधः ।।
देवमानुषपैशाचभागेषु न कदाचन । ब्रह्मभागं परित्यज्य किञ्चिदाश्रित्य चाण्डज ।।२।।
देवमानुषभागाभ्यां स्थाप्या यत्नात्तु पिण्डिका[5] । नपुंसकशिलायान्तु रत्नन्यासं समाचरेत् ।।३।।
नारसिंहेन हुत्वाथ रत्नन्यासं[6] च तेन वै । व्रीहीन् रत्नांस्त्रिधातूँश्च लोहादींश्चन्दनादिकान् ।।
पूर्वादिनवगर्त्तेषु न्यसेन् मध्ये यथारुचि । अथ चेन्द्रादिमन्त्रैश्च गर्त्तां गुग्गुलुनावृतः ।।५।।
रत्नन्यासविधिं कृत्वा प्रतिमामालभेद्गुरुः । सशलाकैर्दर्भपुञ्जैः सहदेवैः समन्वितैः ।।६।।

---

१. ध्यात्वा पश्चात्तु देशिक इति ङ. ।
२. तत्र तान् पूजयेत् सुरानिति ग. ।
३. चतस्रः स्थापयेच्च गा इति ग. घ. ङ. ।
४. घोषयेच्च ततो मखे इति ग. ।
५. स्थापयेदाशु पिण्डिकामिति ङ. ।
६. वर्णन्यासमिति ग. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सवाह्यन्तैश्च संस्कृत्य पञ्चगव्येन शोधयेत् । प्रोक्षयेदर्भतोयेन[१] नर्द तीर्थोदकेन च ॥७॥
होमार्थे स्थण्डिलं कुर्य्यात् सिकताभिः समन्ततः । सार्द्धहस्तप्रमाणं तु चतुरस्रं सुशोभनम् ॥८॥
अष्टदिक्षु यथान्यासं कलशानपि विन्यसेत् । पूर्वाद्यानष्टवर्णेन अग्निमानीय संस्कृतम् ॥९॥
त्वमग्नेद्युभिरिति गायत्र्या समिधो हुनेत् । अष्टार्णेनाष्टशतकं[२] आज्यं पूर्णां प्रदापयेत् ॥१०॥
शान्त्युदकं आम्रपत्रैः[३] मूलेन शतमन्त्रितम् । सिञ्चेद्देवस्य तन्मूर्द्धिन श्रीश्च ते ह्यनया ऋचा ॥
ब्रह्मयानेन[४] चोद्धृत्य उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते । तद्विष्णोरिति मन्त्रेण प्रासादाभिमुखं नयेत् ॥१२॥
शिविकायां हरिं स्थाप्य भ्रामयीत पुरादिकम् । गीतवेदादिशब्दैश्च[५] प्रासादद्वारि धारयेत् ॥१३॥
स्त्रीभिर्विप्रैर्मङ्गलाष्टघटैः[६] संस्नापयेद्धरिम् । ततो गन्धादिनाऽभ्यर्च्य मूलमन्त्रेण देशिकः॥१४॥
अतो देवेति वस्त्राद्यमष्टाङ्गार्घ्यं निवेद्य च । स्थिरे लग्ने पिण्डिकायां देवस्य त्वेति धारयेत्॥१५॥
ओं त्रैलोक्यविक्रान्ताय नमस्तेऽस्तु त्रिविक्रम। संस्थाप्या पिण्डिकायान्तु स्थिरं कुर्य्याद्विचक्षणः॥
ध्रुवा द्यौरिति मन्त्रेण विश्वतश्चक्षुरित्यपि । पञ्चगव्येन संस्नाप्य क्षाल्य गन्धदकेन च ॥१७॥
पूजयेत् सकलीकृत्य साङ्गं सावरणं हरिम् । ध्यायेत् स्वं तस्य मूर्त्तिन्तु पृथिवी तस्य पीठिका॥
कल्पयेद्विग्रहं तस्य तैजसैः परमाणुभिः । जीवमावाहयिष्यामि पञ्चविंशतितत्त्वगम् ॥१९॥
चैतन्यं परमानन्दं जाग्रत्स्वप्नविवर्जितम् । देहेन्द्रियमनोबुद्धिप्राणाहङ्कारवर्जितम् ॥२०॥
ब्रह्मादिस्तम्बपर्य्यन्तं हृदयेषु व्यवस्थितम् । हृदयात् प्रतिमाविम्बे स्थिरो भव परेश्वर ॥२१॥
सजीवं कुरु विम्बं त्वं सबाह्याभ्यन्तरस्थितः । अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषो देहोपाधिषु संस्थितः ॥२२॥
ज्योतिर्ज्ञानं परं ब्रह्म एकमेवाद्वितीयकम् । सजीवीकरणं कृत्वा प्रणवेन निबोधयेत् ॥२३॥
सान्निध्यकरणन्नाम हृदयं स्पृश्य वै जपेत् । सूक्तन्तु पौरुषं ध्यायन् इदं गुह्यमतुं जपेत् ॥२४॥
नमस्तेऽस्तु सुरेशाय सन्तोषविभवात्मने । ज्ञानविज्ञानरूपाय ब्रह्मतेजोऽनुयायिने ॥२५॥
गुणातिक्रान्तवेशाय[७] पुरुषाय महात्मने । अक्षयाय पुराणाय विष्णो सन्निहितो भव ॥२६॥
यच्च ते परमं तत्त्वं[८] यच्च ज्ञानमयं वपुः । तत् सर्वमेकतो लीनमस्मिन्देहे विबुध्यताम् ॥२७॥
आत्मानं सन्निधीकृत्य ब्रह्मादिपरिवारकान्। स्वनाम्ना स्थापयेदन्यानायुधादीन् स्वमुद्रया ॥२८॥
यात्रावर्षादिकं दृष्ट्वा[९] ज्ञेयः सन्निहितो हरिः । नत्वा स्तुत्वा स्तवाद्यैश्च जप्त्वा चाष्टाक्षरादिकम् ॥
चण्डप्रचण्डौ द्वारस्थौ निर्गत्याभ्यर्चयेद्गुरुः । अग्निमण्डपमासाद्य गरुडं स्थाप्य पूजयेत् ॥३०॥

दिगीशान् दिशि देवांश्च स्थाप्य सम्पूज्य देशिकः ।
विश्वक्सेनं तु संस्थाप्य शङ्खचक्रादि पूजयेत् ॥ ३१ ॥

सर्वपार्षदकेभ्यश्च बलिं भूतेभ्य अर्पयेत् । ग्रामवस्त्रसुवर्णादि गुरवे दक्षिणां ददेत् ॥३२॥

---

१. प्रोक्षयेद् गन्धतोयेनेति ख. घ. ङ. ।
२. अष्टान्तेनाष्टशतकमिति ख. घ. ।
३. शान्त्युदकमाज्यपात्रैरिति ख. ।
४. ब्रह्मपात्रेणेति ङ. ।
५. गीतवाद्यादिशब्दैश्च इति ङ. ।
६. मङ्गलाष्टघटे इति ख. ग. ।
७. गुणातिक्रान्तरूपाय इति ख. ।
८. यच्च ते परमं गुह्यमिति ङ. ।
९. यात्रावर्षादिकं कृत्वेति ख. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यागोपयोगिद्रव्याद्यमाचार्य्याय नरोर्पयेत्। आचार्य्यदक्षिणार्द्धन्तु ऋत्विग्भ्यो दक्षिणां ददेत्॥
अन्येभ्यो दक्षिणां दद्याद्भोजयेद् ब्राह्मणांस्ततः। अवारितान् फलान्[1] दद्याद्यजमानाय वै गुरुः॥
विष्णुं नयेत् प्रतिष्ठाता[2] चात्मना सकलं कुलम्।
सर्वेषामेव देवानामेष साधारणो विधिः। मूलमन्त्राः पृथक् तेषां शेषं कार्य्यं समानकम्॥३५॥
इत्यादिमहापुराणे आग्नेये वासुदेवप्रतिष्ठादिकथनं नाम षष्टितमोऽध्यायः।

एकषष्टितमोऽध्यायः

द्वारप्रतिष्ठाध्वजारोहणादिविधिः।

भगवानुवाच

वक्ष्ये चावभृथस्नानं विष्णोर्न्न त्वेति[3] होमयेत्। एकाशीतिपदे कुम्भान् स्थाप्य संस्थापयेद्धरिम्॥
पूजयेद् गन्धपुष्पाद्यैर्बलिं दत्त्वा गुरुं यजेत्। द्वारप्रतिष्ठां वक्ष्यामि द्वाराधो हेम वै ददेत्॥२॥
अष्टभिः कलशैः स्थाप्य शाखोदुम्बरकौ गुरुः। गन्धादिभिः समभ्यर्च्य मन्त्रैर्वेदादिभिर्गुरुः॥
कुण्डेषु होमयेद्वह्निं समिद्घाजतिलादिभिः[4]। दत्त्वा शय्यादिकञ्चाधो दद्यादाधारशक्तिकाम्॥
शाखयोर्विन्यसेन्मूले देवौ चण्डप्रचण्डकौ। ऊर्द्ध्वोदुम्बरके देवीं लक्ष्मीं सुरगणार्चिताम्॥
न्यस्याभ्यर्च्य[5] यथान्यायं श्रीसूक्तेन चतुर्मुखम्।
दत्त्वा तु श्रीफलादीनि आचार्यादेस्तु दक्षिणाम्॥ ६॥
प्रतिष्ठासिद्धद्वारस्य त्वाचार्य्यः स्थापयेद्धरिम्। प्रासादस्य प्रतिष्ठान्तु हृत्प्रतिष्ठेति तां शृणु॥
समाप्तौ शुकनाशाया[6] वेद्याः प्राग्दर्भमस्तके। सौवर्णं राजतं कुम्भमथवा शुल्कनिर्म्मितम्[7]॥
अष्टरत्नौषधीधातुवीजलौहान्वितं शुभम्। सवस्त्रं पूरितं चाद्भिर्म्मण्डले चाधिवासयेत्॥६॥
सपल्लवं नृसिंहेन हुत्वा सम्पातसञ्चितम्। नारायणाख्यतत्त्वेन प्राणभूतं न्यसेत्ततः॥१०॥
वैराजभूतन्तं[8] ध्यायेत् प्रासादस्य सुरेश्वर। ततः पुरुषवत्सर्व्वं प्रासादं चिन्तयेद् बुधः॥११॥
अधो दत्त्वा सुवर्णं तु तद्वद् भूतं[9] घटं न्यसेत्। गुर्वादौ दक्षिणां दद्याद् ब्राह्मणादेश्च भोजनम्॥
ततः पश्चाद्वेदिबन्धं तदूर्ध्वं कण्ठबन्धनम्। कण्ठोपरिष्टात् कर्त्तव्यं विमलामलसारकम्॥१३॥
तदूर्द्ध्वं वृकलं[10] कुर्य्याच्चक्रञ्चाद्यं सुदर्शनम्। मूर्त्तिं श्रीवासुदेवस्य ग्रहगुप्तां निवेदयेत्॥१४॥
कलशं वाथ कुर्व्वीत तदूर्द्ध्वं चक्रमुत्तमम्। वेद्याश्च परितः स्थाप्या अष्टौ विघ्नेश्वरास्त्वज[11]॥

---

१. अवारितफलमिति ङ.।
२. प्रतिष्ठाकृदिति ख. ग. घ. ङ.।
३. विष्णुर्नुत्वेति घ. ङ.।
४. समिदाज्यतिलादिभिरिति ङ.।
५. अथाभ्यर्च्येति ङ.।
६. वनमालायामिति ङ.।
७. शुक्लनिर्म्मलमिति ग. घ.। शुल्वनिर्म्मितमिति ङ.।
८. वैराजरूपं तमिति ङ.।
९. तत्त्वभूतमिति घ. ङ.।
१०. तदूर्द्ध्वं चूर्णकं कुर्य्यादिति ग. ङ.। तदूर्द्ध्वं चुल्वकं कुर्य्यादिति ख. घ.।
११. अष्टौ विघ्नेश्वरास्त्वज इति ग. घ. ङ.।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

चत्वारो वा चतुर्दिक्षु स्थापनीया गरुत्मतः । ध्वजारोहं च वक्ष्यामि येन भूतादि नश्यति ॥
प्रासादविम्बद्रव्याणां यावन्तः परमाणवः । तावद्वर्षसहस्राणि तत्कर्त्ता विष्णुलोकभाक् ॥१७॥
कुम्भाण्डवेदिविम्बानां भ्रमणाद्वायुनानघ । कण्ठस्यावेष्टनाज् ज्ञेयं फलं कोटिगुणं ध्वजात् ॥
पताकां प्रकृतिं विद्धि दण्डं पुरुषरूपिणम् । प्रासादं वासुदेवस्य मूर्त्तिभेदं[१] निबोध मे ॥१९॥
धारणाद्धरणीं[२] विद्धि आकाशं शुषिरात्मकम् । तेजस्तत्त पावकं विद्धि वायुं स्पर्शगतं तथा ॥
पाषाणादिष्वेव जलं पार्थिवं पृथिवीगुणम्[३]। प्रतिशब्दोद्भवं शब्दं स्पर्शं स्यात् कर्क्कशादिकम्॥
शुक्लादिकं भवेद्रूपं रसमन्नादिदर्शनम्[४] । धूपादिगन्धं गन्धन्तु वाग् भेर्य्यादिषु संस्थिता ॥
शुकनासाश्रिता नासा वाहू तद्रथकौ स्मृतौ । शिरस्त्वण्डं निगदितं कलशं मूर्द्धजं स्मृतम् ॥
कण्ठं कण्ठमिति ज्ञेयं स्कन्धं वेदी निगद्यते । पायूपस्थे प्रणाले तु त्वक् सुधा परिकीर्त्तिता ॥
मुखं द्वारं भवेदस्य प्रतिमा जीव उच्यते । तच्छक्तिं पिण्डिकां विद्धि प्रकृतिं च तदाकृतिम् ॥
निश्चलत्वञ्च गर्भोस्या अधिष्ठाता तु केशवः । एवमेष हरिः साक्षात्प्रासादत्वेन संस्थितः ॥
जङ्घा त्वस्य शिवो ज्ञेयः स्कन्धे धाता व्यवस्थितः। ऊर्ध्वभागे स्थितो विष्णुरेवं तस्य स्थितस्य हि॥
प्रासादस्य प्रतिष्ठान्तु ध्वजरूपेण मे शृणु । ध्वजं कृत्वा सुरैर्दैत्या जिताः शस्त्रादिचिह्नितम्[५] ॥
अण्डोर्ध्वं कलशं न्यस्य तदूर्ध्वं विन्यसेद् ध्वजम्। विम्बार्द्धमानं दण्डस्य[६] त्रिभागेनाथ कारयेत्॥
अष्टारं द्वादशारं वा मध्ये मूर्त्तिमतान्वितम् । नारसिंहेन तार्क्ष्येण ध्वजदण्डस्तु निर्व्रणः ॥३०॥
प्रासादस्य तु विस्तारो मानं दण्डस्य कीर्त्तितम्। शिखरार्द्धेन वा कुर्य्यात् तृतीयार्द्धेन वा पुनः ॥
द्वारस्य दैर्घ्याद् द्विगुणं दण्डं वा परिकल्पयेत् । ध्वजयष्टिर्देवगृहे ऐशान्यां वायवेथवा ॥३२॥
क्षौमाद्यैश्च ध्वजं कुर्याद्विचित्रं वैकवर्णकम्[७] । घण्टाचामरकिङ्किण्या भूषितं पापनाशनम् ॥
दण्डाग्राद्धरणीं यावद्धस्तैकं विस्तरेण तु । महाध्वजः सर्व्वदः स्यात्तुर्य्यांशाद्धीनतोर्चितः ॥
ध्वजे चार्द्धेन विज्ञेया पताका मानवर्ज्जिता । विस्तारेण ध्वजः कार्य्यो विंशदङ्गुलसन्निभः ॥
अधिवासविधानेन चक्रं दण्डं ध्वजं तथा । देववत् सकलं कृत्वा मण्डपस्नपनादिम् ॥३६॥
नेत्रोन्मीलनकं त्यक्त्वा पूर्वोक्तंसर्वमाचरेत। अधिवासयेच्च विधिना शय्यायां स्थाप्य देशिकः॥
ततः सहस्रशीर्षेति सूक्तं चक्रे न्यसेद् बुधः। तथा सुदर्शनं मन्त्रं मनस्तत्त्वं निवेशयेत् ॥३८॥
मनोरूपेण तस्यैव सजीवकरणं स्मृतम् । अरेषु मूर्त्तयो न्यस्याः केशवाद्याः सुरोत्तम ॥३९॥
नाभ्यब्जप्रतिनेमीषु न्यसेत्तत्त्वानि देशिकः । नृसिंहं विश्वरूपं वा अब्जमध्ये निवेशयेत् ॥
सकलं विन्यसेद्दण्डे सूत्रात्मानं सजीवकम्। निष्कलं परमात्मानं ध्वजे ध्यायन् न्यसेद्धरिम् ॥

---

१. मूर्त्तिभूतमिति ख. ङ. ।
२. धरणाद्वारुणीं विद्धि इति ख. । धरणाद्वारुणीं देवीमिति ग. । धारणीं धरणीं विद्धि इति ङ. ।
३. पार्थिवं पृथिवीतलमिति ख. । पार्थिवं पृथिवीजलमिति ग. ।
४. रसमास्थाय दर्शनं, रसमाद्यादि दर्शनमिति च ख. ।
५. जिताः शक्त्यादिचिह्नितमिति ख. । जिताः शक्रादिचिह्नितमिति ग. ।
६. विम्बार्द्धमानं चक्रन्तु इति ख. ङ. । ७. विचित्रञ्चैव वर्णकमिति ख. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तच्छक्तिं व्यापिनीं ध्यायेद् ध्वजरूपां बलाबलाम्[१]।
मण्डपे[२] स्थाप्य चाभ्यर्च्य होमं कुण्डेषु कारयेत् ।। ४२ ।।
कलशे स्वर्णकलशं न्यस्य रत्नानि पञ्च च । स्थापयेच्चक्रमन्त्रेण स्वर्णचक्रमधस्ततः[३] ।।४३।।
पारदेन तु सम्प्लाव्य नेत्रपट्टेन छादयेत्[४] । ततो निवेशयेच्चक्रं तन्मध्ये नृहरिं स्मरेत् ।।४४।।
ओं क्ष्रौं नृसिंहाय[५] नमः पूजयेत् स्थापयेद्धरिम् । ततो ध्वजं गृहीत्वा तु यजमानः सबान्धवः।।
दधिभक्तयुते पात्रे ध्वजस्याग्रं निवेशयेत् । ध्रुवाद्येन फडन्तेन ध्वजं मन्त्रेण पूजयेत् ।।४६।।
शिरस्याधाय तत् पात्रं नारायणमनुस्मरन् । प्रदक्षिणं तु कुर्व्वीत तूर्य्यमङ्गलनिःस्वनैः ।।४७।।
ततो निवेशयेत् दण्डं मन्त्रेणाष्टाक्षरेण तु । मुञ्चामि त्वेति सूक्तेन ध्वजं मुञ्चेद्विचक्षणः ।।४८।।
पात्रं ध्वजं कुञ्जरादि दद्यादाचार्य्यके द्विजः । एष साधारणः प्रोक्तो ध्वजस्यारोहणे विधिः ।।
यस्य देवस्य यच्चिह्नं तन्मन्त्रेण स्थिरं चरेत् । स्वर्गत्वा ध्वजदानात्तु भुवि राजा बली भवेत् ।।

इत्याग्नेये महापुराणे आग्नेये ध्वजारोहणं नाम एकषष्टितमोऽध्यायः ।

द्विषष्टितमोऽध्यायः

लक्ष्मीप्रतिष्ठाविधिः ।

भगवानुवाच

समुदायेन देवादेः प्रतिष्ठां प्रवदामि ते । लक्ष्म्याः प्रतिष्ठां प्रथमं तथा देवीगणस्य च ।।१।।
पूर्ववत् सकलं कुर्य्यान्मण्डपस्नपनादिकम्[६] । भद्रपीठे श्रियं न्यस्य स्थापयेदष्ट वै घटान्[७] ।।
घृतेनाभ्यज्य मूलेन स्नपयेत् पञ्चगव्यकैः । हिरण्यवर्णां हरिणी नेत्रे चोन्मीलयेच्छ्रियाः ।।३।।
तन्म आवह[८] इत्येवं प्रदद्यान्मधुरत्रयम् । अश्वपूर्वेति पूर्वेण तां कुम्भेनाभिषेचयेत्[९] ।।४।।
कामोस्मितेति याम्येन पश्चिमेनाभिषेचयेत् । चन्द्रं प्रभासामुचार्य्यादित्यवर्णेति चोत्तरात् ।।
उपैतु मेति चाग्नेयात् क्षुत्पिपासेति नैर्ऋतात् । गन्धद्वारेति वायव्यां मनसः काममाकूतिम् ।।
ईशानकलशेनैव शिरः सौवर्णकर्दमात् । एकाशीतिघटैः स्नानं मन्त्रेणापः सृजन् क्षितिम्[१०]।।
आर्द्रां पुष्करिणीं गन्धैरार्द्रामित्यादिपुष्पकैः। तन्मयावह मन्त्रेण य आनन्द ऋचाखिलम्[११]।।
शायन्तीयेन शय्यायां श्रीसूक्तेन च सन्निधिम् । लक्ष्मीबीजेन चिच्छक्तिं विन्यस्याभ्यर्चयेत् पुनः।।
श्रीसूक्तेन मण्डपेथ कुण्डेष्वब्जानि होमयेत् । करवीराणि वा हुत्वा सहस्रं शतमेव वा ।।१०।।

---

१. चलाचलामिति ख. ङ. । सुलोचनामिति ग. ।
२. मण्डले इति ग. ङ. ।
३. स्वर्णचक्रन्तु मध्यत इति ङ. ।
४. नेत्रं यत्नेन च्छादयेदिति ङ. ।
५. ओं क्षौं नृसिंहाय नम इति ख. ।
६. मण्डलस्नपनादिकमिति ङ. ।
७. स्थापयेद्वरुणे घटानिति घ. ङ. ।
८. अस्मिन्नावह इति ख. ।
९. अश्वमूर्द्धेति मन्त्रेण तां कुम्भेभिनिवेशयेदिति ङ. ।
१०. मन्त्रेण चासृजत् क्षितिमिति ख. ।
११. य आनन्देति वाससमिति ङ. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

गृहोपकरणान्तादि श्रीसूक्तेनैव चार्पयेत्। ततः प्रासादसंस्कारं सर्वं कृत्वा तु पूर्ववत् ॥११॥
मन्त्रेण पिण्डिकां कृत्वा प्रतिष्ठानं ततः श्रियः[१]। श्रीसूक्तेन च सान्निध्यं पूर्ववत् प्रत्यृचं जपेत्[२]॥
चिच्छक्तिं बोधयित्वा तु मूलात् सान्निध्यकं चरेत्।
भूस्वर्णवस्त्रगोन्नादि[३] गुरवे ब्रह्मणेर्पयेत्। एवं देव्योऽखिलाः स्थाप्यावाह्य स्वर्गादि भावयेत्॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये लक्ष्मीस्थापनं नाम द्विषष्टितमोऽध्यायः।

त्रिषष्टितमोऽध्यायः

सुदर्शनचक्रादिप्रतिष्ठाकथनम्।

भगवानुवाच

एवं तार्क्ष्यस्य चक्रस्य ब्रह्मणो नृहरेस्तथा। प्रतिष्ठा विष्णुवत् कार्या स्वस्वमन्त्रेण तां शृणु॥
सुदर्शन महाचक्र शान्त दुष्टभयङ्कर। छिन्द छिन्द भिन्द भिन्द विदारय विदारय॥
परमन्त्रान् ग्रस ग्रस भक्षय भक्षय भूतान् त्रासय त्रासय हूं फट् सुदर्शनाय नमः॥
अभ्यर्च्य चक्रं चानेन रणे दारयते रिपून्॥ २॥
ओं क्षौं नरसिंह उग्ररूप ज्वल ज्वल प्रज्वल प्रज्वल स्वाहा॥
नरसिंहस्य मन्त्रोयं पातालाख्यस्य वच्मि ते[४]।

ओं क्षौं नमो भगवते नरसिंहाय प्रदीप्तसूर्यकोटिसहस्रसमतेजसे वज्रनखदंष्ट्रायुधाय स्फुटविकटविकीर्णकेसरसटाप्रक्षुभितमहार्णवाम्भोददुन्दुभिनिर्घोषाय सर्वमन्त्रोत्तारणाय एह्येहि भगवन्नरसिंह पुरुषपरापर ब्रह्मसत्येन स्फुर स्फुर विजृम्भ विजृम्भ आक्रम आक्रम गर्ज गर्ज मुञ्च मुञ्च सिंहनादान् विदारय विदारय विद्रावय विद्रावय आविश आविश सर्वमन्त्ररूपाणि सर्व्वमन्त्रजातयश्च हन हन छिन्द छिन्द सङ्क्षिप सङ्क्षिप सर सर[५] दारय दारय स्फुट स्फुट स्फोटय स्फोटय ज्वालामालासङ्घातमय सर्वतोऽनन्तज्वालावज्राशनिचक्रेण सर्वपातालान् उत्सादय उत्सादय सर्वतोऽनन्तज्वालावज्रशरपञ्जरेण सर्वपातालान् परिवारय परिवारय सर्वपातालासुरवासिनां हृदयान्याकर्षय आकर्षय शीघ्रं दह दह पच पच मथ मथ शोषय शोषय निकृन्तय निकृन्तय तावद्यावन्मे वशमागताः पातालेभ्यः फट् असुरेभ्यः फट् मन्त्ररूपेभ्यः फट् मन्त्रजातिभ्यः फट् संशयान्मां भगवन्नरसिंहरूप विष्णो सर्वापद्भ्यः सर्वमन्त्ररूपेभ्यो रक्ष रक्ष हूं फट्[६] नमोऽस्तु ते॥

नरसिंहस्य विद्येयं हरिरूपार्थसिद्धिदा[७]॥ ३॥

---

१ मन्त्रेण पिण्डिकां कृत्वा प्रतिमां स्थापयन् श्रिय इति ङ.। २. प्रत्यृचं यजेदिति ङ.।
३. भूसुवर्णगवान्नादि इति ङ.। ४. पातालाख्यस्य वक्ष्यते इति ङ.।
५. दर दर इति ख, ग, ङ, ६. रक्ष रक्ष ओं फट् इति ख.। रक्ष रक्ष ह्रीं फडिति ग.।
७. हरिरूपा सुसिद्धिदा इति ग. ङ.।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

त्रैलोक्यमोहनैर्म्मन्त्रैः स्थाप्यस्त्रैलोक्यमोहनः। गदी दक्षे शान्तिकरो द्विभुजो वा चतुर्भुजः॥
वामोद्‌र्ध्वे कारयेच्चक्रं पाञ्चजन्यमथो ह्यधः। श्रीपुष्टिसंयुतं कुर्य्याद् बलेन सह भद्रया॥ ५॥
प्रासादे स्थापयेद्विष्णुं गृहे वा मण्डपेऽपि वा। वामनं चैव वैकुण्ठं हयास्यमनिरुद्धकम्॥६॥
स्थापयेज्जलशय्यास्थं मत्स्यादींश्चावतारकान्। सङ्कर्षणं विश्वरूपं लिङ्गं वै रुद्रमूर्तिकम्॥७॥
अर्द्धनारीश्वरं तद्वद्धरिशङ्करमातृकाः। भैरवं च तथा सूर्य्यं ग्रहांस्तद्वद्विनायकम्॥ ८॥
गौरीमिन्द्रादिकां लेप्यां[१] चित्रजां च बलाबलाम। पुस्तकानां प्रतिष्ठां च वक्ष्ये लिखनतद्विधिम्॥
स्वस्तिके मण्डलेऽभ्यर्च्य शरपत्रासने स्थितम्[२]। लेख्यञ्च लिखितं पुस्तं गुरुं विद्यां हरिं यजेत्॥
यजमानो गुरुं विद्यां हरिं लिपिकृतं नरम्। प्राङ्मुखः पद्मिनीं ध्यायेत् लिखित्वा श्लोकपञ्चकम्॥

रौप्यस्थमस्या हैम्या च लेखन्या नागराक्षरम्[३]।
ब्राह्मणान् भोजयेच्छक्त्या शक्त्या दद्याच्च दक्षिणाम्[४]॥ १२॥

गुरुं विद्यां हरिं प्राच्र्य पुराणादि लिखेन्नरः। पूर्ववन्मण्डलाद्यें[५] च ऐशान्यां भद्रपीठके॥१३॥
दर्प्पणे पुस्तकं दृष्ट्वा सेचयेत् पूर्व्ववद् घटैः। नेत्रोन्मीलनकं कृत्वा शय्यायां तु न्यसेन्नरः॥
न्यसेत्तु पौरुषं सूक्तं वेदाद्यं तत्र पुस्तके। कृत्वा सजीवीकरणं प्राच्र्य हुत्वा चरुं ततः॥

सम्प्राश्य दक्षिणाभिस्तु गुर्व्वादीन् भोजयेद् द्विजान्।
रथेन हस्तिना वापि भ्रामयेत् पुस्तकं नरैः[६]॥ १६॥

गृहे देवालयादौ तु पुस्तकं स्थाप्य पूजयेत्। वस्त्रादिवेष्टितं पाठादावन्ते समर्च्चयेत्[७]॥
जगच्छान्तिश्चावधार्य्य पुस्तकं वाचयेन्नरः। अध्यायमेकं कुम्भाद्भिर्यजमानादि सेचयेत्॥१८॥
द्विजाय पुस्तकं दत्त्वा फलस्यान्तो न विद्यते। त्रीण्याहुरतिदानानि गावः पृथ्वी सरस्वती॥
विद्यादानफलं दत्त्वा मस्यन्तं पत्रसञ्चयम्। यावत्तु पत्रसङ्ख्यानमक्षराणां तथाऽनघ॥२०॥
तावद्वर्षसहस्राणि विष्णुलोके महीयते। पञ्चरात्रं पुराणानि भारतानि ददन्नरः।

कुलैकविंशमुद्धृत्य परे तत्त्वे तु लीयते॥ २१॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये देवादिप्रतिष्ठापुस्तकप्रतिष्ठाकथनं नाम
त्रिषष्टितमोऽध्यायः।

---

१. इन्द्रादिकां जप्यामिति ग. घ.।
२. शरयन्त्रासने स्थितमिति ख. घ.।
३. रौप्यमय्याऽथ हैम्या वा लेखन्याथ वराक्षरमिति ङ.।
४. प्राङ्मुखः पद्मिनीं ध्यायेत् लिखित्वा च प्रदापयेत्। ब्राह्मणान् भोजयेच्छक्त्या शक्त्या-दद्याच्च दक्षिणामिति ग.।
५. पूर्वमण्डपपार्श्वे इति ङ.।
६. पुस्तकं नर इति ख.।
७. अन्ते सदार्च्चयेदिति ख. ग.।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

चतुःषष्टितमोऽध्यायः

कूपादिप्रतिष्ठाकथनम् ।

भगवानुवाच

कूपवापीतडागानां प्रतिष्ठां वच्मि तां शृणु । जलरूपेण हि हरिः सोमो वरुण उत्तमः ॥१॥
अग्नीषोममयं विश्वं विष्णुरापस्तु कारणम् । हैमं रौप्यं रत्नजं वा वरुणं कारयेन्नरः ॥२॥
द्विभुजं हंसपृष्ठस्थं दक्षिणेनाभयप्रदम् । वामेन नागपाशं तं नदीनागादिसंयुतम् ॥३॥
यागमण्डपमध्ये स्याद्वेदिका कुण्डमण्डिता । तोरणं वारुणं कुम्भं न्यसेच्च करकान्वितम् ॥४॥
भद्रके चार्द्धचन्द्रे वा स्वस्तिके द्वारि कुम्भकान् । अग्न्याधानं चाप्यकुण्डे कृत्वा पूर्णां प्रदापयेत् ॥
वरुणं स्नानपीठे तु ये ते शते ति संस्पृशेत् । घृतेनाभ्यञ्जयेत् पश्चान्मूलमन्त्रेण देशिकः ॥६॥
शन्नो देवीति प्रक्षाल्य शुद्धवत्या शिवोदकैः । अधिवासयेदष्टकुम्भान् सामुद्रं पूर्वकुम्भके ॥७॥
गाङ्गमग्नौ वर्षतोयं दक्षे रक्षस्तु नैजर्झरम् । नदीतोयं पश्चिमे तु वायव्ये तु नदोदकम् ॥८॥
औद्भिज्जं चोत्तरे स्थाप्य ऐशान्यां तीर्थसम्भवम् । अलाभे तु नदीतोयं[1] यासां राजेति मन्त्रयेत्[2]॥
देवं निर्म्मार्ज्य निर्मञ्छ्य दुर्मित्रियेति विचक्षणः[3] । नेत्रे चोन्मीलयेच्चित्रं तच्चक्षुर्मधुरत्रयैः ॥
ज्योतिः सम्पूरयेद्धैम्यां गुरवे गामथार्प्पयेत् । समुद्रज्येष्ठेत्यभिषिञ्चेद्वरुणं पूर्वकुम्भतः ॥११॥
समुद्रं गच्छ गाङ्गेयात् सोमो धेन्विति वर्षकात् । देवीरापो निर्झराद्भिर्न्नदाद्भिः पञ्चनद्यतः ॥
उद्भिदद्भ्यश्चोद्भिदेन पावमान्याऽथ तीर्थकैः । आपो हि ष्ठा पञ्चगव्याद्धिरण्यवर्णेति स्वर्णजात् ॥
आपो अस्मेति वर्षोत्थैर्व्याहृत्या कूपसम्भवैः । वरुणञ्च तडागोत्थैर्वरुणाद्भिस्तु वश्यतः ॥
आपो देवीति गिरिजैरेकाशीतिघटैस्ततः । स्नापयेद्वरुणस्येति त्वन्नो वरुण चार्घ्यकम् ॥१५॥
व्याहृत्या मधुपर्कन्तु बृहस्पतेति वस्त्रकम । वरुणेति पवित्रन्तु प्रणवेनोत्तरीयकम् ॥१६॥
यद्वारण्येन पुष्पादि प्रदद्याद्वरुणाय तु । चामरं दर्पणं छत्रं व्यजनं वैजयन्तिकाम् ॥१७॥
मूलेनोत्तिष्ठेत्युत्थाप्य तां रात्रिमधिवासयेत् । वरुणञ्चेति सान्निध्यं यद्वारण्येन पूजयेत् ॥
सजीवीकरणं मूलात पुनर्गन्धादिना यजेत । मण्डपे[4] पूर्ववत् प्राच्यं कुण्डेषु समिदादिकम् ॥
वेदादिमन्त्रैर्गन्धाद्याश्चतस्रो धेनवो दुहेत् । दिग्वथो वै यवचरुं ततः संस्थाप्य होमयेत्[5] ॥२०॥
व्याहृत्या वाथ गायत्र्या मूलेनामन्त्रयेत्तथा । सूर्याय प्रजापतये द्यौः स्वाहा चान्तरिक्षकः ॥
तस्यै पृथिव्यै देहधृत्यै इह स्वधृतये ततः । इह रत्यै चेह रमत्या उग्रो भीमश्च रौद्रकः ॥२२॥
विष्णुश्च वरुणो धाता रायस्पोषो महेन्द्रकः[6] । अग्निर्यमो नैर्ऋतोऽथ वरुणो वायुरेव च ॥२३॥
कुबेर ईशोऽनन्तोऽथ ब्रह्मा राजा जलेश्वरः । तस्मै स्वाहेदं विष्णुश्च तद्विप्रासेति होमयेत् ॥२४॥
सोमो धेन्विति षड हुत्वा इमं मेति च होमयेत् । आपो हि ष्ठेति तिसृभिरिमा रुद्रेति होमयेत् ॥
दशदिक्षु बलिं दद्यात गन्धपुष्पादिनाऽर्चयेत् । प्रतिमां तु समुत्थाप्य मण्डले विन्यसेद् बुधः ॥

---

१. नदीक्षोदमिति ख. ।
२. आसां रुद्रेति कीर्त्तयेदिति ङ. ग. ।
३. इन्द्रियेति विचक्षण इति ग. घ. ।
४. मण्डले इति ख. ङ. ।
५. मूले स्वग्नौ च होमयेदिति ङ. ।
६. वायुः सोमो महेन्द्रक इति ङ. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पूजयेद्गन्धपुष्पाद्यैर्हेमपुष्पादिभिः क्रमात् । जलाशयांस्तु दिग्भागे वितस्तिद्वयसम्मितान् ।।
कृत्वाऽष्टौ स्थण्डिलान रम्यान् सैकतान देशिकोत्तमः । वरुणस्येति मन्त्रेण साज्यमष्टशतं ततः ।।
चरुं यवमयं हुत्वा[१] शान्तितोयं समाचरेत् । सेचयेन्मूर्द्ध्नि देवं तु सजीवकरणं चरेत् ।।२९।।
ध्यायेत्तु वरुणं युक्तं गौर्या नदनदीगणैः । ओं वरुणाय नमोऽभ्यर्च्य ततः सान्निध्यमाचरेत् ।।
उत्थाप्य[२] नागपृष्ठाद्यैर्भ्रामयेत्तैः समङ्गलैः । आपो हि ष्ठेति च क्षिपेत् त्रिमध्वक्तेघटे जले।।३१।।
जलाशये मध्यगतं सुगुप्तं विनिवेशयेन् । स्नात्वा ध्यायेच्च वरुणं सृष्टिं ब्रह्माण्डसन्निकाम् ।।
अग्निवीजेन सन्दग्ध्वथ तद्भस्म प्लावयेद्धराम् । सर्वमापोमयं लोकं ध्यायेत तत्र जलेश्वरम् ।।
तोयमध्यस्थितं देवं ततो यूपं निवेशयेत् । चतुरस्रमथाष्टास्रं वर्त्तुलं वा प्रवर्तितम्[३] ।।३४।।
आराध्य देवतालिङ्गं दशहस्तं तु कूपके । यूपं यज्ञीयवृक्षोत्थं मूले हैमं फलं न्यसेत ।।३५।।
वाप्यां पञ्चदशकरं पुष्करिण्यां तु विंशकम् । तडागे पञ्चविंशाख्यं जलमध्ये निवेशयेत् ।।३६।।
यागमण्डपाङ्गणे वा यूपव्रस्केति मन्त्रतः[४] । स्थाप्य तद्वेष्टयेद्वस्त्रैर्यूपोपरि पताकिकाम् ।।३७।।
तदभ्यर्च्य च गन्धाद्यैर्जगच्छान्तिं समाचरेत् । दक्षिणां गुरवे दद्याद्भूगोहेमाम्बुपात्रकम् ।।
द्विजेभ्यो दक्षिणा देया आगतान् भोजयेत्तथा । आब्रह्मस्तम्बपर्य्यन्ता ये केचित्सलिलार्थिनः ।।
ते तृप्तिमुपगच्छन्तु तडागस्थेन वारिणा । तोयमुत्सर्जयेद्देवं[५] पञ्चगव्यं विनिक्षिपेत् ।।४०।।

आपो हि ष्ठेति तिसृभिः शान्तितोयं द्विजैः कृतम् ।
तीर्थतोयं क्षिपेत् पुण्यं गोकुलञ्चार्प्पयेद् द्विजान्[६] ।। ४१ ।।

अनिवारितमन्नाद्यं सर्व्वजन्यञ्च कारयेत । अश्वमेधसहस्राणां सहस्रं यः समाचरेत् ।।४२।।
एकाहं स्थापयेत्तोयं तत्पुण्यमयुतायुतम् । विमाने मोदते स्वर्गे नरकं न स गच्छति ।।४३।।
गवादि पिबते यस्मात्तस्मात् कर्त्तुर्न्न पातकम् । तोयदानात्सर्वदानफलं प्राप्य दिवं व्रजेत् ।।

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये कूपवापीतडागादिकथनं नाम
चतुःषष्टितमोऽध्यायः ।

पञ्चषष्टितमोऽध्यायः

सभास्थापनकथनम् ।

भगवानुवाच

सभादिस्थापनं वक्ष्ये तथैतेषां प्रवर्तनम् । भूमौ परीक्षितायाञ्च वास्तुयागं समाचरेत् ।।१।।

---

१. चरुं सचमसं हुत्वेति ख. ।
२. उत्थाय इति ख. ग. घ. ।
३. सुवर्त्तितमिति ङ. ।
४. यूपस्थानेति मन्त्रत इति ग. घ. ङ. ।
५. तोयं समुत्सृजेदेवमिति ख. ।
६. गोकुलं पाययेद् द्विजानिति ङ. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

स्वेच्छया तु सभां कृत्वा स्वेच्छया स्थापयेत् सुरान् ।
चतुष्पथे ग्रामादौ[1] च न शून्ये कारयेत् सभाम् ॥ २ ॥
निर्म्मलः कुलमुद्धृत्य कर्त्ता स्वर्गे विमोदते । अनेन विधिना कुर्यात सप्तभौमं हरेर्गृहम् ॥३॥
यथा राज्ञां तथान्येषां पूर्वाद्याश्च ध्वजादयः । कोणभुजान् वर्जयित्वा चतुःशालं तु वर्त्तयेत्॥४॥
त्रिशालं वा द्विशालं वा एकशालमथापि वा । व्ययाधिकं न कुर्व्वीत व्ययदोषकरं हि तत् ॥
आयाधिके भवेत् पीडा तस्मात् कुर्य्यात् समं द्वयम् । करराशिं समस्तन्तु कुर्य्याद्वसुगुणं गुरुः॥
सप्तार्च्चिषा हृते भागे गर्गविद्याविचक्षणः । अष्टधा भाजिते तस्मिन् यच्छेषं स व्ययो गतः ॥
अथवा करराशिं तु हन्यात् सप्तार्च्चिषा बुधः । वसुभिः संहृते भागे पृथ्व्यादि[2] परिकल्पयेत् ॥
ध्वजो धूम्रस्तथा सिंहः श्वा वृषस्तु खरो गजः ।
तथा ध्वाङ्क्षस्तु पूर्व्वादावुद्भवन्ति विकल्पयेत् ॥ ९ ॥
त्रिशालकत्रयं शस्तं उदक्पूर्व्वविवर्जितम् । याम्यां परगृहोपेतं द्विशालं लभ्यते सदा ॥१०॥
याम्ये शालैकशालं तु प्रत्यक्शालमथापि वा । एकशालद्वयं शस्तं शेषास्त्वन्ये भयावहाः॥११॥
चतुःशालं सदा शस्तं सर्व्वदोषविवर्जितम् । एकभौमादि कुर्वीत भवनं सप्तभौमकम् ॥१२॥
द्वारवेद्यादिरहितं पूरणेन विवर्जितम । देवगृहं देवतायाः प्रतिष्ठाविधिना सदा ॥१३॥
संस्थाप्य मनुजानाञ्च समुदायोक्तकर्मणा । प्रातः सर्वौषधीस्नानं कृत्वा शुचिरतन्द्रितः ॥
मधुरैस्तु द्विजान् भोज्य पूर्णकुम्भादिशोभितम् । सतोरणं स्वस्ति वाच्य द्विजान् गोपृष्ठहस्तकः[4]॥
गृही गृहं प्रविशेच्च दैवज्ञान् प्राच्र्य[3] संविशेत । गृहे पुष्टिकरं मन्त्रं पठेच्चेमं समाहितः ॥
ओँ नन्दे नन्दय वाशिष्ठे वसुभिः प्रजया सह । जये भार्गवदायादे प्रजानां विजयावहे ॥१७॥
पूर्णेऽङ्गिरसदायादे पूर्णकामं कुरुष्व माम् । भद्रे काश्यपदायादे कुरु भद्रां मतिं मम ॥१८॥
सर्व्वबीजौषधीयुक्ते सर्वरत्नौषधीवृते । रुचिरे नन्दने नन्दे वासिष्ठे रम्यतामिह ॥१९॥
प्रजापतिसुते देवि चतुरस्रे महीयसि । सुभगे सुव्रते देवि गृहे काश्यपि रम्यताम् ॥२०॥
पूजिते परमाचार्य्यैर्गन्धमाल्यैरलङ्कृते । भवभूतिकरे देवि गृहे भार्गवि रम्यताम् ॥२१॥
अव्यक्ते व्याकृते पूर्णे मुनेरङ्गिरसः सुते । इष्टके त्वं प्रयच्छेष्टं प्रतिष्ठां कारयाम्यहम् ॥२२॥
देशस्वामिपुरस्वामिगृहस्वामिपरिग्रहे । मनुष्यधनहस्त्यश्वपशुवृद्धिकरी भव ॥२३॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये सभागृहस्थापनं नाम

पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ।

---

१. पूर्श्चतुष्पथग्रामादाविति ख. ।
२. ध्वजादि इति ख. ।
३. गोपुच्छहस्तक इति घ. ।
४. देवाज्ञां प्राप्य इति ग. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

षट्षष्टितमोऽध्यायः

साधारणप्रतिष्ठाविधानम् ।

भगवानुवाच

समुदायप्रतिष्ठाञ्च वक्ष्ये सा वासुदेववत् । आदित्या वसवो रुद्राः साध्या विश्वेऽश्विनौ तथा ॥
ऋषयश्च तथा सर्वे वक्ष्ये तेषां विशेषकम् । यस्य देवस्य यन्नाम तस्याद्यं गृह्य चाक्षरम् ॥२॥
मात्राभिर्भेदयित्वा तु दीर्घाण्यङ्गानि भेदयेत्[१] । प्रथमं कल्पयेद्बीजं सविन्दुं प्रणवं नतिम्[२] ॥
सर्वेषां मूलमन्त्रेण पूजनं स्थापनं तथा । नियमव्रतकृच्छ्राणां मठसङ्क्रमवेश्मनाम् ॥४॥
मासोपवासं द्वादश्यां इत्यादिस्थापनं वदे । शिलां पूर्णघटं कांस्यं सम्भारं स्थापयेत्ततः ॥५॥
ब्रह्मकूर्चं समाहृत्य श्रपेद् यवमयं चरुम् । क्षीरेण कपिलायास्तु तद्विष्णोरिति साधकः ॥६॥
प्रणवेनाभिवार्य्यैव दर्व्या सङ्घट्टयेत्ततः । साधयित्वाऽवतार्य्याथ विष्णुमभ्यर्च्य होमयेत् ॥
व्याहृत्या चैव गायत्र्या तद्विप्रासेति होमयेत् । विश्वतश्चक्षुर्वेदाद्यैर्भूरग्नये तथैव च ॥८॥
सूर्य्याय प्रजापतये अन्तरिक्षाय होमयेत् । द्यौः स्वाहा ब्रह्मणे स्वाहा पृथिवी महाराजकः ॥
तस्मै सोमञ्च राजानं इन्द्राद्यैर्होममाचरेत् । एवं हुत्वा[३] चरोर्भागान् दद्याद्दिग्बलिमादरात् ॥
समिधोऽष्टशतं हुत्वा पालाशांश्चाज्यहोमकम् । कुर्य्यात् पुरुषसूक्तेन इरावती तिलाष्टकम् ॥११॥
हुत्वा तु ब्रह्मविष्ण्वीशदेवानामनुयायिनाम् । ग्रहाणामाहुतीर्हुत्वा लोकेशानामथो पुनः ॥१२॥
पर्वतानां नदीनाञ्च समुद्राणां तथाऽऽहुतीः । हुत्वा च व्याहृतीर्दद्यात् स्रुवपूर्णाहुतित्रयम् ॥
वौषडन्तेन मन्त्रेण वैष्णवेन पितामह । पञ्चगव्यं चरुं प्राश्य दत्त्वाचार्य्याय दक्षिणाम् ॥१४॥
तिलपात्रं हेमयुक्तं सवस्त्रं गामलङ्कृताम् । प्रीयतां भगवान् विष्णुरित्युत्सृजेद् व्रतं बुधः ॥
मासोपवासादेरन्यां प्रतिष्ठां वच्मि पूर्णतः । यज्ञेनातोष्य देवेशं श्रपयेद्वैष्णवं चरुम् ॥१६॥
तिलतण्डुलनीवारैः श्यामाकैरथवा यवैः । आज्येनाघार्य चोत्तार्य्य होमयेन्मूर्त्तिमन्त्रकैः ॥
विष्ण्वादीनां मासपानां तदन्ते होमयेत पुनः ।

ओं विष्णवे स्वाहा । ओं विष्णवे[४] निभूयपाय स्वाहा । ओं विष्णवे शिपिविष्टाय स्वाहा । ओं नरसिंहाय स्वाहा । ओं पुरुषोत्तमाय स्वाहा ।

द्वादशाश्वत्थसमिधो होमये द्घृतसम्प्लुताः ॥ १८ ॥

विष्णो रराटमन्त्रेण ततो द्वादश चाहुतीः । इदं विष्णुरिरावती चरोर्द्वादश आहुतीः ॥१९॥
हुत्वा चाज्याहुतीस्तद्वत्तद्विप्रासेति होमयेत् । शेषहोमं ततः कृत्वा दद्यात् पूर्णाहुतित्रयम ॥
युञ्जतेत्यनुवाकन्तु[५] जप्त्वा प्राशीत वै चरुम् । प्रणवेन स्वशब्दान्ते कृत्वा पात्रे तु पैप्पले॥२१॥
ततो मासाधिपानान्तु विप्रान् द्वादश भोजयेत् । त्रयोदशो गुरुस्तत्र तेभ्यो दद्यात त्रयोदश ॥

---

१. अङ्गानि कल्पयेदिति ख. ङ. ।
२. प्रणवं गतिमिति ख. ।
३. एवं दत्त्वा इति ख. ङ. । एतान् दत्त्वा इति घ. ।
४. ओं विष्णवे प्रवृषाय स्वाहा इति घ. ।
५. अञ्जतेत्यनुवाकस्तु इति ग. ङ. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कुम्भान् स्वाद्वम्बुसंयुक्तान्[१] सच्छत्रोपानहान्वितान् ।
सवस्त्रहेममाल्याढ्यान व्रतपूर्त्यै त्रयोदश ॥ २३ ॥
गावः प्रीतिं समायान्तु प्रचरन्तु प्रहर्षिताः । इति गोपथमुत्सृज्य यूपं तत्र निवेशयेत् ॥२४॥
दशहस्तं प्रपाऽऽराममठसङ्क्रमणादिषु । गृहे च होमसेवन्तु कृत्वा सर्वं यथाविधि ॥२५॥
पूर्वोक्तेन विधानेन प्रविशेच्च गृहं गृही । अनिवारितमन्नाद्यं सर्वेष्वेतेषु कारयेत् ॥२६॥
द्विजेभ्यो दक्षिणा देया यथाशक्त्या विचक्षणैः । आरामं कारयेद्यस्तु नन्दने स चिरं वसेत् ॥
मठप्रदानात् स्वर्ल्लोके शक्रलोके वसेत्ततः । प्रपादानाद्वारुणेन सङ्क्रमेण वसेद्दिवि ॥२८॥
इष्टकासेतुकारी च गोलोके मार्गकृद्गवाम् । नियमव्रतकृद्विष्णुः कृच्छ्रकृत्सर्वपापहा ॥२९॥
गृहं दत्त्वा वसेत्स्वर्गे यावदाभूतसम्प्लवम् । समुदायप्रतिष्ठेष्टा शिवादीनां गृहात्मनाम् ॥३०॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये समुदायप्रतिष्ठाकथनं नाम षट्षष्टितमोऽध्यायः ।

सप्तषष्टितमोऽध्यायः

जीर्णोद्धारविधानम् ।

भगवानुवाच

जीर्णोद्धारविधिं वक्ष्ये भूषितां स्नपयेद् गुरुः[२] । अचलां विन्यसेद् गेहे अतिजीर्णां परित्यजेत् ॥
व्यङ्गां भग्नां च शैलाढ्यां न्यसेदन्यां च पूर्ववत् । संहारविधिना तत्र तत्त्वान् संहृत्य देशिकः ॥२॥
सहस्रं नारसिंहेन हुत्वा तामुद्धरेद् गुरुः । दारवीं दारयेद्वह्नौ शैलजां प्रक्षिपेज्जले ॥३॥
धातुजां रत्नजां वापि अगाधे वा जलेऽम्बुधौ । यानमारोप्य जीर्णाङ्गं छाद्य वस्त्रादिना नयेत् ॥४॥
वादित्रैः प्रक्षिपेत्तोये गुरवे दक्षिणां ददेत् ।
यत्प्रमाणा च यद्द्रव्या तन्मानां स्थापयेद्दिने । कूपवापीतडागादेर्जीर्णोद्धारे महाफलम् ॥५॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये जीर्णोद्धारकथनं नाम
सप्तषष्टितमोऽध्यायः ।

अष्टषष्टितमोऽध्यायः

यात्रोत्सवविधिकथनम् ।

भगवानुवाच

वक्ष्ये विधिं चोत्सवस्य स्थापिते तु सुरे चरेत् । तस्मिन्नब्दे चैकरात्रं त्रिरात्रञ्चाष्टरात्रकम् ॥१॥
उत्सवेन विना यस्मात् स्थापनं निष्फलं भवेत् । अयने विषुवे चापि शयनोपवने गृहे[३] ॥२॥

---

१. स्वाद्वन्नसंयुक्तानिति ख. ग. घ. ङ. । २. भूषिताञ्च यजेद् गुरुरिति घ. ।
३. शयनोत्थापने गृहे इति ख. । शयनोत्थापने हरेरिति ङ. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कारकस्यानुकूले वा यात्रान्देवस्य कारयेत् । मङ्गलाङ्कुररोपैस्तु गीतनृत्यादिवाद्यकैः ॥३॥
शरावघटिकापालीस्त्वङ्कुरारोहणे हिताः । यवाञ्छालींस्तिलान् मुद्गान् गोधूमान सितसर्पपान्॥
कुलत्थमाषनिष्पावान् चालयित्वा तु वापयेत् । पूर्वादौ च बलिं दद्यात् भ्रमन् दीपैः पुरं निशि ॥
इन्द्रादेः कुमुदादेश्च सर्वभूतेभ्य एव च । अनुगच्छन्ति ते तत्र प्रतिरूपधराः पुनः ॥६॥
पदे पदेऽश्वमेधस्य फलं तेषां न संशयः । आगत्य देवतागारं देवं विज्ञापयेद् गुरुः ॥७॥
तीर्थयात्रा तु या देव श्वः कर्त्तव्या सुरोत्तम । तस्यारम्भमनुज्ञातुमर्हसे देव सर्वथा ॥८॥
देवमेवन्तु विज्ञाप्य ततः कर्म्म समारभेत्[१] । प्ररोहघटिकाभ्यान्तु वेदिकां भूषितां व्रजेत् ॥९॥
चतुःस्तम्भान्तु तन्मध्ये स्वस्तिके प्रतिमां न्यसेत् । काम्यार्थां लेख्यचित्रेषु स्थाप्य तत्राधिवासयेत्॥
वैष्णवैः सह कुर्वीत घृताभ्यङ्गन्तु मूलतः । घृतधाराभिषेकं वा सकलां शर्वरीं बुधः ॥११॥
दर्पणं दर्श्य नीराजं गीतवाद्यैश्च मङ्गलम् । व्यजनं पूजनं दीपं गन्धपुष्पादिभिर्यजेत् ॥१२॥
हरिद्रामुद्गकाश्मीरशुक्लचूर्णादि मूर्द्धनि । प्रतिमायाश्च भक्तानां सर्वतीर्थफलं धृते ॥१३॥
स्नापयित्वा समभ्यर्च्य यात्राविम्बं रथे स्थितम् । नयेद् गुरुर्न्नदीर्नादैश्छत्राद्यै राष्ट्रपालिकाः॥
निम्नगायोजनादर्व्वाक् तत्र वेदीन्तु कारयेत् । वाहनादवतार्य्यैनं तस्यां वेद्यान्निवेशयेत् ॥१५॥
चरुं वै श्रपयेत् तत्र पायसं होमयेत्ततः । अव्लिङ्गैः[२] वैदिकैर्मन्त्रैस्तीर्थानावाहयेत्ततः ॥१६॥
आपो हिष्ठोपनिषदैः पूजयेदर्घ्यमुख्यकैः । पुनर्देवं समादाय तोये कृत्वाऽघमर्षणम् ॥१७॥
स्नायान्महाजनैर्व्विप्रैर्वेद्यामुत्तार्य्य तं न्यसेत् ।
पूजयित्वा तदह्ना च प्रासादं तु नयेत्ततः । पूजयेत् पावकस्थन्तु गुरुः स्याद्भुक्तिमुक्तिकृत् ॥१८॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये देवयात्रोत्सवकथनं नाम अष्टषष्ठितमोऽध्यायः ।

ऊनसप्ततितमोऽध्यायः

स्नानविधानम् ।

अग्निरुवाच

ब्रह्मन् शृणु प्रवक्ष्यामि स्नपनोत्सवविस्तरम् । प्रासादस्याग्रतः कुम्भान्मण्डपे मण्डले न्यसेत् ॥
कुर्य्याद् ध्यानार्च्चनं होमं हरेरादौ च कर्म्मसु । सहस्रं वा शतं वापि होमयेत् पूर्णया सह ॥२॥
स्नानद्रव्याण्यथाहृत्य कलशांश्चापि विन्यसेत् । अधिवास्य सूत्रकण्ठान् धारयेन्मण्डले घटान्॥
चतुरस्रं पुरं कृत्वा रुद्रैस्तं प्रविभाजयेत्[३] । मध्येन तु चरुं स्थाप्य पार्श्वे पङ्क्तिं प्रमार्जयेत् ॥
शालिचूर्णादिनापूर्य्य पूर्व्वादिनवकेषु च । कुम्भमुद्रां ततो बद्ध्वा घटं तत्रानयेद् बुधः ॥५॥
पुण्डरीकाक्षमन्त्रेण दर्भांस्तांस्तु विसर्ज्जयेत । अद्भिः पूर्णं सर्वरत्नयुतं मध्ये न्यसेद् घटम् ॥

---

१. समाचरेदिति ग. । २. अर्च्चिकैरिति ग. ।
३. प्रविभावयेदिति ख. ग. घ. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कुम्भान् स्वाद्वम्बुसंयुक्तान्[१] सच्छत्रोपानहान्वितान् ।
सवस्त्रहेममाल्याढ्यान व्रतपूर्त्यै त्रयोदश ॥ २३ ॥

गावः प्रीतिं समायान्तु प्रचरन्तु प्रहर्षिताः । इति गोपथमुत्सृज्य यूपं तत्र निवेशयेत् ॥२४॥
दशहस्तं प्रपाऽऽराममठसङ्क्रमणादिषु । गृहे च होमसेवन्तु कृत्वा सर्वं यथाविधि ॥२५॥
पूर्वोक्तेन विधानेन प्रविशेच्च गृहं गृही । अनिवारितमन्नाद्यं सर्वेष्वेतेषु कारयेत् ॥२६॥
द्विजेभ्यो दक्षिणा देया यथाशक्त्या विचक्षणैः । आरामं कारयेद्यस्तु नन्दने स चिरं वसेत् ॥
मठप्रदानात् स्वर्लोके शक्रलोके वसेत्ततः । प्रपादानाद्वारुणेन सङ्क्रमेण वसेद्दिवि ॥२८॥
इष्टकासेतुकारी च गोलोके मार्गकृद्भवाम् । नियमव्रतकृद्विष्णुः कृच्छ्रकृत्सर्वपापहा ॥२९॥
गृहं दत्त्वा वसेत्स्वर्गे यावदाभूतसम्प्लवम् । समुदायप्रतिष्ठेष्टा शिवादीनां गृहात्मनाम् ॥३०॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये समुदायप्रतिष्ठाकथनं नाम षट्षष्टितमोऽध्यायः ।

सप्तषष्टितमोऽध्यायः

जीर्णोद्धारविधानम् ।

भगवानुवाच

जीर्णोद्धारविधिं वक्ष्ये भूषितां स्नपयेद् गुरुः[२] । अचलां विन्यसेद् गेहे अतिजीर्णां परित्यजेत् ॥
व्यङ्गां भग्नां च शैलाढ्यां न्यसेदन्यां च पूर्ववत । संहारविधिना तत्र तत्त्वान् संहृत्य देशिकः ॥२॥
सहस्रं नारसिंहेन हुत्वा तामुद्धरेद् गुरुः । दारवीं दारयेद्वह्नौ शैलजां प्रक्षिपेज्जले ॥३॥
धातुजां रत्नजां वापि अगाधे वा जलेऽम्बुधौ । यानमारोप्य जीर्णाङ्गं छाद्य वस्त्रादिना नयेत् ॥४॥
वादित्रैः प्रक्षिपेत्तोये गुरवे दक्षिणां ददेत् ।
यत्प्रमाणा च यद्द्रव्या तन्मानां स्थापयेद्दिने । कूपवापीतडागादेर्जीर्णोद्धारे महाफलम् ॥५॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये जीर्णोद्धारकथनं नाम
सप्तषष्टितमोऽध्यायः ।

अष्टषष्टितमोऽध्यायः

यात्रोत्सवविधिकथनम् ।

भगवानुवाच

वक्ष्ये विधिं चोत्सवस्य स्थापिते तु सुरे चरेत् । तस्मिन्नब्दे चैकरात्रं त्रिरात्रञ्चाष्टरात्रकम् ॥१॥
उत्सवेन विना यस्मात् स्थापनं निष्फलं भवेत् । अयने विषुवे चापि शयनोपवने गृहे[३] ॥२॥

---

१. स्वाद्वन्नसंयुक्तानिति ख. ग. घ. ङ. । २. भूषिताञ्च यजेद् गुरुरिति घ. ।
३. शयनोत्थापने गृहे इति ख. । शयनोत्थापने हरेरिति ङ. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कारकस्यानुकूले वा यात्रान्देवस्य कारयेत् । मङ्गलाङ्कुररोपैस्तु गीतनृत्यादिवाद्यकैः ॥३॥
शरावघटिकापालीस्त्वङ्कुरारोहणे हिताः । यवाञ्छालींस्तिलान् मुद्गान् गोधूमान सितसर्पपान्॥
कुलत्थमापनिष्पावान् क्षालयित्वा तु वापयेत् । पूर्वादौ च बलिं दद्यात् भ्रमन् दीपैः पुरं निशि ॥
इन्द्रादेः कुमुदादेश्च सर्वभूतेभ्य एव च । अनुगच्छन्ति ते तत्र प्रतिरूपधराः पुनः ॥६॥
पदे पदेऽश्वमेधस्य फलं तेषां न संशयः । आगत्य देवतागारं देवं विज्ञापयेद् गुरुः ॥७॥
तीर्थयात्रा तु या देव श्वः कर्त्तव्या सुरोत्तम । तस्यारम्भमनुज्ञातुमर्हसे देव सर्वथा ॥८॥
देवमेवन्तु विज्ञाप्य ततः कर्म्म समारभेत्[१] । प्ररोहघटिकाभ्यान्तु वेदिकां भूषितां व्रजेत् ॥९॥
चतुःस्तम्भान्तु तन्मध्ये स्वस्तिके प्रतिमां न्यसेत् । काम्यार्थां लेख्यचित्रेषु स्थाप्य तत्राधिवासयेत्॥
वैष्णवैः सह कुर्वीत घृताभ्यङ्गन्तु मूलतः । घृतधाराभिषेकं वा सकलां शर्वरीं बुधः ॥११॥
दर्पणं दर्श्य नीराजं गीतवाद्यैश्च मङ्गलम् । व्यजनं पूजनं दीपं गन्धपुष्पादिभिर्यजेत् ॥१२॥
हरिद्रामुद्गकाश्मीरशुक्लचूर्णादि मूर्द्धनि । प्रतिमायाश्च भक्तानां सर्वतीर्थफलं धृते ॥१३॥
स्नापयित्वा समभ्यर्च्य यात्राबिम्बं रथे स्थितम् । नयेद् गुरुर्न्नदीर्नादैश्छत्राद्यै राष्ट्रपालिकाः॥
निम्नगायोजनादर्व्वाक् तत्र वेदीन्तु कारयेत् । वाहनादवताय्यैनं तस्यां वेद्यान्निवेशयेत् ॥१५॥
चरुं वै श्रपयेत् तत्र पायसं होमयेत्ततः । अब्लिङ्गैः[२] वैदिकैर्मन्त्रैस्तीर्थानावाहयेत्ततः ॥१६॥
आपो हिष्ठोपनिषदैः पूजयेदर्घ्यमुख्यकैः । पुनर्देवं समादाय तोये कृत्वाऽघमर्षणम् ॥१७॥
स्नायान्महाजनैर्व्विप्रैर्वेद्यामुत्तार्य्य तं न्यसेत् ।
पूजयित्वा तदह्वा च प्रासादं तु नयेत्ततः । पूजयेत् पावकस्थन्तु गुरुः स्याद्भुक्तिमुक्तिकृत् ॥१८॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये देवयात्रोत्सवकथनं नाम अष्टषष्टितमोऽध्यायः ।

ऊनसप्ततितमोऽध्यायः

स्नानविधानम् ।

अग्निरुवाच

ब्रह्मन् शृणु प्रवक्ष्यामि स्नपनोत्सवविस्तरम् । प्रासादस्याग्रतः कुम्भान्मण्डपे मण्डले न्यसेत् ॥
कुर्य्याद् ध्यानार्च्चनं होमं हरेरादौ च कर्म्मसु । सहस्रं वा शतं वापि होमयेत् पूर्णया सह ॥२॥
स्नानद्रव्याण्यथाहृत्य कलशांश्चापि विन्यसेत् । अधिवास्य सूत्रकण्ठान् धारयेन्मण्डले घटान्॥
चतुरस्रं पुरं कृत्वा रुद्रैस्तं प्रविभाजयेत्[३] । मध्येन तु चरुं स्थाप्य पार्श्वे पङ्क्तिं प्रमार्जयेत् ॥
शालिचूर्णादिनापूर्य्य पूर्व्वादिनवकेषु च । कुम्भमुद्रां ततो बद्ध्वा घटं तत्रानयेद् बुधः ॥५॥
पुण्डरीकाक्षमन्त्रेण दर्भांस्तांस्तु विसर्ज्जयेत । अद्भिः पूर्णं सर्वरत्नयुतं मध्ये न्यसेद् घटम् ॥

---

१. समाचरेदिति ग. ।	२. अर्च्चिकैरिति ग. ।
३. प्रविभावयेदिति ख. ग. घ. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यवव्रीहितिलांश्चैव नीवारान् श्यामकान् क्रमात् । कुलत्थमुद्गसिद्धार्थांस्तच्छुक्तानष्टदिक्षु च ॥
ऐन्द्रे तु नवके मध्ये घृतपूर्णं घटं न्यसेत् । पलाशाश्वत्थन्यग्रोधबिल्वोदुम्बरशीरिषाम् ॥८॥
जम्बूशमीकपित्थानां त्वक्कषायैर्घटाष्टकम् । आग्नेयनवके मध्ये मधुपूर्णं घटं न्यसेत् ॥९॥
गोश्रृङ्गनगगङ्गाम्बुगजेन्द्रदर्शनेषु च । तीर्थक्षेत्रखलेष्वष्टौ मृत्तिकाः स्युर्घटाष्टके ॥१०॥
याम्ये तु नवके मध्ये तिलतैलघटं न्यसेत् । नारङ्गमथ जम्बीरं खर्जूरं मृद्विकां क्रमात् ॥११॥
नारिकेलं न्यसेत् पूगं दाडिमं पनसं फलम् । नैर्ऋते नवके मध्ये क्षीरपूर्णं घटं न्यसेत् ॥१२॥
कुङ्कुमं नागपुष्पञ्च चम्पकं मालतीं क्रमात् । मल्लिकामथ पुन्नागं करवीरं महोत्पलम् ॥१३॥
पुष्पाणि चाप्ये नवके मध्ये वै नारिकेलकम् । नादेयमथ सामुद्रं सारसं कौपमेव च ॥१४॥
वर्षजं हिमतोयञ्च नैर्झरङ्गाङ्गमेव च । उदकान्यथ वायव्ये नवके कदलीफलम् ॥१५॥
सहदेवीं कुमारीं च सिंहीं व्याघ्रीं तथाऽमृताम् । विष्णुपर्णीं शतशिवां वचां दिव्यौषधीर्न्यसेत् ॥
पूर्वादौ सौम्यनवके मध्ये दधिघटं न्यसेत् । पत्रमेलां त्वचं कुष्ठं बालकं चन्दनद्वयम् ॥१७॥
लतां कस्तूरिकां चैव कृष्णागुरुमनुक्रमात् । सिद्धद्रव्याणि पूर्वादौ शान्तितोयमथैकतः ॥
चन्द्रतारं क्रमाच्छुक्लं गिरिसारं त्रपु न्यसेत् । घनसारं[1] तथा शीर्षं पूर्वादौ रत्नमेव च ॥
घृतेनाभ्यज्य चोद्वर्त्य स्नपयेन्मूलमन्त्रतः । गन्धाद्यैः पूजयेद्वह्नौ हुत्वा पूर्णाहुतिं चरेत् ॥२०॥
बलिञ्च सर्वभूतेभ्यो भोजयेद्दत्तदक्षिणः । देवैश्च मुनिभिर्भूपैर्देवं[2] संस्थाप्य चेश्वराः ॥२१॥
बभूवुः स्थापयित्वेत्थं स्नपनोत्सवकं चरेत् । अष्टोत्तरसहस्रेण घटानां सर्वभाग् भवेत् ॥२२॥
यज्ञावभृथस्नानेन पूर्णसंस्नापनं कृतम् । गौरीलक्ष्मीविवाहादि चोत्सवं स्नानपूर्वकम् ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये यज्ञावभृथस्नानं नाम
ऊनसप्ततितमोऽध्यायः ।

सप्ततितमोऽध्यायः

वृक्षादिप्रतिष्ठाकथनम् ।

भगवानुवाच

प्रतिष्ठां पादपानाञ्च वक्ष्येऽहं भुक्तिमुक्तिदाम् । सर्वौषध्युदकैर्लिप्तान् पिष्टातकविभूषितान् ॥
वृक्षान्माल्यैरलङ्कृत्य वासोभिरभिवेष्टयेत् । सूच्या सौवर्णया कार्य्यं सर्वेषां कर्णवेधनम् ॥
हेमशलाकयाऽञ्जनञ्च वेद्यान्तु फलसप्तकम् । अधिवासयेच्च प्रत्येकं घटान् बलिनिवेदनम् ॥३॥
इन्द्रादेरधिवासोऽथ होमः कार्यो वनस्पतेः । वृक्षमध्यादुत्सृजेद् गां ततोऽभिषेकमन्त्रतः ॥४॥
ऋग्यजुःसाममन्त्रैश्च वारुणैर्मङ्गलै रवैः[3] । वृक्षवेदिककुम्भैश्च[4] स्नपनं द्विजपुङ्गवाः ॥५॥

---

१. घोषसारमिति ख. ग. घ. ।

२. देवैश्च मुनिभिः सार्द्धमिति ङ. दिव्यैश्च बलिभिर्धूपैर्देवमिति घ. ।

३. वारुणमनुभिर्वरैरिति ङ. । ४. वृक्षवेदीशकुम्भैस्तु इति ङ. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तरूणां यजमानस्य कुर्य्युश्च यजमानकः। भूपितो दक्षिणां दद्याद् गोभूभूषणवस्त्रकम् ।।६।।
क्षीरेण भोजनं दद्याद्यावद्दिनचतुष्टयम्। होमस्तिलाद्यैः कार्यस्तु पलाशसमिधैस्तथा ।।७।।
आचार्ये द्विगुणं दद्यात् पूर्ववन्मण्डपादिकम्। पापनाशः परा सिद्धिर्वृक्षारामप्रतिष्ठया ।।८।।
स्कन्दायेशो यथा प्राह प्रतिष्ठाद्यं तथा श्रृणु। सूर्येशगणशक्त्यादेः परिवारस्य वै हरेः। ९।।

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये पादपारामप्रतिष्ठाकथनं नाम सप्ततितमोऽध्यायः।

एकसप्ततितमोऽध्यायः

गणेशपूजाविधिः।

ईश्वर उवाच

गणपूजां प्रवक्ष्यामि निर्विघ्नामखिलार्थदाम्[१]। गणाय स्वाहा हृदयमेकदंष्ट्राय वै शिरः ।।१।।
गजकर्णिने च[२] शिखा गजवक्त्राय वर्म च। महोदराय श्वदन्तहस्तायाक्षि[३] तथाऽस्त्रकम् ।।२।।
गणो गुरुः पादुका च शक्त्यनन्तौ च धर्मकः। मुख्यास्थिमण्डलं[४] चाधश्चोर्द्ध्वच्छदनमर्चयेत्।।
पद्मकर्णिकबीजांश्च ज्वालिनीं नन्दयाऽर्चयेत। सूर्येशा कामरूपा च उदया कामवर्तिनी ।।
सत्या च विघ्ननाशा च आसनं गन्धमृत्तिका। यं शोषो रं च दहनं प्लवो लं वं तथाऽमृतम् ।।
लम्बोदराय विद्महे महोदराय धीमहि तन्नो दन्ती प्रचोदयात्।
गणपतिर्गणाधिपो गणेशो गणनायकः। गणक्रीडो वक्रतुण्ड एकदंष्ट्रो महोदरः ।।६।।
गजवक्त्रो लम्बकुक्षिर्विकटो विघ्ननाशनः[५]। धूम्रवर्णो महेन्द्राद्याः पूज्या गणपतेः स्मृताः ।।

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये विनायकपूजाकथनं नाम एकसप्ततितमोऽध्यायः।

द्विसप्ततितमोऽध्यायः

स्नानविशेषादिकथनम्।

ईश्वर उवाच

वक्ष्यामि स्कन्द नित्याद्यं स्नानं पूजां प्रतिष्ठया। खात्वाऽसिना समुद्धृत्य मृदमष्टाङ्गुलां ततः।।
सर्वात्मना समुद्धृत्य पुनस्तेनैव पूरयेत्। शिरसा पयसस्तीरे निधायास्त्रेण शोधयेत्[६] ।।२।।
तृणानि शिखयोद्धृत्य वर्म्मणा विभजेत्त्रिधा। एकया नाभिपादान्तं प्रक्षाल्य पुनरन्यया ।।
अस्त्राभिलब्धयालभ्य दीप्तया सर्वविग्रहम्। निरुद्धयाक्षाणि पाणिभ्यां प्राणान् संयम्य वारिणि।।

---

१. निर्विघ्नां पापनाशिनीमिति ग. घ.।
२. बलकर्णिने चेति ख. ग. घ. ङ.।
३. महोदराये दण्डहस्तायाक्षि इति ङ.।
४. मुख्यास्तिमण्डलमिति ख. ङ.।
५. विघ्नराशक इति ङ.।
६. निजास्त्रेण विशोधयेदिति ख. ग.।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

निमज्यासीत हृदयस्त्रं स्मरन् कालानलप्रभम् । मलस्नानं विधायेत्थं समुत्थाय जलान्तरात् ॥
अस्त्रसन्ध्यामुपास्याथ विधिस्नानं सदाचरेत् । सारस्वतादितीर्थानां एकमङ्कुशमुद्रया ॥६॥
हृदाकृष्य तथा स्नाप्य पुनः संहारमुद्रया । शेषं मृद्भागमादाय प्रविश्य नाभिवारिणि ॥७॥
वामपाणितले कुर्याद्भागत्रयमुदङ्मुखः । अङ्गैर्दक्षिणमेकाद्यं पूर्वमस्त्रेण सप्तधा ॥८॥
शिवेन दशधा सौम्यं जपेद्भागत्रयं क्रमात् । सर्वदिक्षु क्षिपेत् पूर्व हूं फडन्तशरात्मना[१] ॥९॥
कुर्याच्छिवेन सौम्येन शिवतीर्थं भुजक्रमात् । सर्वाङ्गमङ्गजप्तेन मूर्द्धादिचरणावधि ॥१०॥
दक्षिणेन समालभ्य पठन्नङ्गचतुष्टयम् । पिधाय खानि सर्वाणि सम्मुखीकरणेन च ॥११॥
शिवं स्मरन्निमज्जेत हरिं गङ्गेति वा स्मरन् । वौषडन्तषडङ्गेन के कुर्यादभिषेचनम ॥१२॥
कुम्भपात्रेण रक्षार्थं पूर्वादौ निक्षिपेज्जलम् । स्नात्वा राजोपचारेण सुगन्धामलकादिभिः ॥१३॥
स्नात्वा चोत्तीर्य तत्तीर्थं संहारिण्योपसंहरेत् । अथातो विधिशुद्धेन संहितामन्त्रितेन च ॥१४॥
निवृत्त्यादिविशुद्धेन भस्मना स्नानमाचरेत् । शिरस्तः पादपर्यन्तं हूं फडन्तशरात्मना[२] ॥१५॥
तेन कृत्वा मलस्नानं विधिस्नानं समाचरेत् । ईशतत्पुरुषाघोरगुह्यकाजातसञ्ज्ञैः[३] ॥१६॥
क्रमेणोद्धूनयेन्मूद्‌र्ध्नि वक्त्रहृद्गुह्यविग्रहान् । सन्ध्यात्रये निशीथे च वर्षापूर्वावसानयोः॥१७॥
सुप्त्वा भुक्त्वा पयः पीत्वा कृत्वा चावश्यकादिकम् । स्त्रीपुन्नपुंसकं शूद्रं विडालशशमूषिकम्॥
स्नानमाग्नेयकं स्पृष्ट्वा शुचावुद्धूलकं चरेत् । सूर्यांशुवर्षसम्पर्कैः प्राङ्मुखेनोद्‌र्ध्वबाहुना॥१९॥
माहेन्द्रं स्नानमैशेन कार्यं सप्तपदावधि । गोसङ्घमध्यगः कुर्यात् खुरोत्खातकरेणुभिः[४] ॥२०॥
पावनं नवमन्त्रेण स्नानन्तद्वर्मणाऽथवा । सद्योजातादिभिर्मन्त्रैरम्भोभिरभिषेचनम् ॥२१॥
मन्त्रस्नानं भवेदेवं वारुणाग्नेययोरपि । मनसा मूलमन्त्रेण प्राणायामपुरःसरम् ॥२२॥
कुर्वीत मानसं स्नानं सर्वत्र विहितं च यत् । वैष्णवादौ च तन्मन्त्रैरेवं स्नानादि कारयेत् ॥२३॥
सन्ध्याविधिं प्रवक्ष्यामि मन्त्रैर्भिन्नैः समं गुह । संवीक्ष्य त्रिः पिबेदम्बु ब्रह्मतीर्थेन शङ्करैः ॥
स्वधान्तैरात्मतत्त्वाद्यैस्ततः खानि स्पृशेद्धृदा । शकलीकरणं कृत्वा प्राणायामेन संस्थितः ॥

त्रिः समावर्तयेन्मन्त्री मनसा शिवसंहिताम् ।
आचम्य न्यस्य सन्ध्याञ्च ब्राह्मीं प्रातः स्मरेन्नरः[५] ॥ २६ ॥

हंसपद्मासनां रक्तां चतुर्वक्त्रां चतुर्भुजाम् । प्रस्कन्दमालिनीं दक्षे वामे दण्डकमण्डलुम् ॥
तार्क्ष्यपद्मासनां ध्यायेन्मध्याह्ने वैष्णवीं सिताम् । शङ्खचक्रधरां वामे दक्षिणे सगदाभयम्॥२८॥
रौद्रीं ध्यायेद् वृषाब्जस्थां त्रिनेत्रां शशिभूषिताम् । त्रिशूलाक्षधरां दक्षे वामे साभयशक्तिकाम् ॥

साक्षिणीं कर्मणां सन्ध्यां[६] आत्मानं तत्प्रभानुगम् ।
चतुर्थीं ज्ञानिनः सन्ध्या निशीथादौ विभाव्यते ॥ ३० ॥

हृद्बिन्दुब्रह्मरन्ध्रेषु अरूपा तु परे स्थिता । शिवबोधपरा या तु सा सन्ध्या परमोच्यते ॥

---

१. क्रूं फडन्तशरात्मना इति ख. ङ. ।
२. क्रूं फडन्तशरात्मना इति ख. ङ. ।
३. गुह्यकाजातसंरवैरिति ख. ।
४. तत्खरोत्खातरेणुभिरिति ख. ।
५. स्मरेत्तत इति ग. ।
६. दाक्षिण्यः कर्म्मणां सन्ध्या इति ख. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पैत्र्यं मूले प्रदेशिन्याः कनिष्ठायाः प्रजापतेः । ब्राह्मयमङ्गुष्ठमूलस्थं तीर्थं दैवं कराग्रतः ॥३२॥
सव्यपाणितले वह्नेस्तीर्थं सोमस्य वामतः । ऋषीणां तु समग्रेषु अङ्गुलीपर्व्वसन्धिषु ॥३३॥
ततः शिवात्मकैर्म्मन्त्रैः कृत्वा तीर्थं शिवात्मकम् । मार्ज्जनं संहितामन्त्रैस्तत्तोयेन समाचरेत् ॥
वामपाणिपतत्तोययोजनं सव्यपाणिना । उत्तमाङ्गे क्रमान्मन्त्रैर्मार्जनं समुदाहृतम् ॥ ३५ ॥
नीत्वा तदुपनासाग्रं दक्षपाणिपुटस्थितम् । बोधरूपं सितं तोयं वाममाकृष्य स्तम्भयेत्[१] ॥
तत् पापं कज्जलाभासम्पिङ्गयारिच्य मुष्टिना । क्षिपेद्वज्रशिलायान्तु तद्भवेदघमर्षणम् ॥३७॥
स्वाहान्तशिवमन्त्रेण कुशपुष्पाक्षतान्वितम् । शिवायार्घ्याञ्जलिन्दत्वा गायत्रीं शक्तितो जपेत् ॥
तर्पणं सम्प्रवक्ष्यामि देवतीर्थेन मन्त्रकात् । तर्पयेद्धौं शिवायेति स्वाहान्यान् स्वाहया युतान् ॥
ह्रां हृदयाय ह्रीं शिरसे ह्रूं शिखायै ह्रैं कवचाय । अस्त्रायाष्टौ देवगणान् हृदादित्येभ्य एव च ॥
ह्रां वसुभ्योऽथ रुद्रेभ्यो विश्वेभ्यश्चैव मरुद्भ्यः । भृगुभ्यो ह्रामङ्गिरोभ्य ऋषीन् कण्ठोपवीत्यथ ॥
अत्रयेऽथ वसिष्ठाय नमश्चाथ पुलस्तये[२] । क्रतवे भारद्वाजाय विश्वामित्राय वै नमः ॥४२॥
प्रचेतसे मनुष्यांश्च सनकाय वषट् तथा । ह्रां सनन्दाय वषट् सनातनाय वै वषट् ॥४३॥
सनत्कुमाराय वषट् कपिलाय तथा वषट् । पञ्चशिखाय द्युभवे संलग्नकरमूलतः ॥४४॥
सर्व्वेभ्यो भूतेभ्यो वौषट् भूतान् देवपितॄनथ । दक्षस्कन्धोपवीती च कुशमूलाग्रतस्तिलैः ॥
कव्यबालानलायाथ सोमाय च यमाय च । अर्य्यम्णे चाग्निसोमाय बर्हिषद्भ्यः स्वधायुतान् ॥
आज्यपाय च सोमाय विशेषसुरवत् पितॄन् । ओं ह्रां ईशानाय पित्रे स्वधा दद्यात् पितामहे[३] ॥
शान्तप्रपितामहाय तथाप्रेतपितॄंस्तथा । पितृभ्यः पितामहेभ्यः स्वधाऽथ प्रपितामहे ॥४८॥
वृद्धप्रपितामहेभ्यो मातृभ्यश्च स्वधा तथा । ह्रां मातामहेभ्यः स्वधा ह्रां प्रमातामहेभ्यश्च ॥
वृद्धप्रमातामहेभ्यः सर्वेभ्यः पितृभ्यस्तथा । सर्वेभ्यः स्वधा ज्ञातिभ्यः सर्वाचार्य्येभ्य एव च ॥
दिशां दिक्पतिसिद्धानां मातॄणां ग्रहरक्षसाम् ॥ ५० ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये स्नानादिविधिर्नाम द्विसप्ततितमोऽध्यायः ।

त्रिसप्ततितमोऽध्यायः

सूर्यपूजाविधिः ।

ईश्वर उवाच

वक्ष्ये सूर्य्यार्चनं स्कन्द कराङ्गन्यासपूर्वकम् । अहं तेजोमयः सूर्य्य इति ध्यात्वार्घ्यमर्चयेत् ॥
पूरयेद्रक्तवर्णेन ललाटाकृष्टबिन्दुना । तं सम्पूज्य रवेरङ्गैः कृत्वा रक्षावगुण्ठनम् ॥२॥
सम्प्रोक्ष्य तज्जलैर्द्रव्यं पूर्वास्यो भानुमर्चयेत् । ओं अं हृद्बीजादि[४] सर्वत्र पूजनं दण्डिपिङ्गलौ ॥

---

१. कुम्भयेदिति ख. ङ. । २. मरीचये पुलस्त्यायेति ङ. ।
३. ह्रां ईशानाय पित्रे च सदाज्याय पितामहायेति ख. । ४. ओं ह्रां हृद्बीजादीति ख. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

द्वारि दक्षे वामपार्श्वे ईशाने अं गणाय च। अग्नौ गुरुं पीठमध्ये प्रभूतं चासनं यजेत् ॥४॥
अग्न्यादौ विमलं सारमाराध्यं परमं सुखम्। सितरक्तपीतनीलवर्णान् सिंहनिभान् यजेत् ॥
पद्ममध्ये रां च दीप्तां रीं सूक्ष्मां रं जयां क्रमात्[१]। रूं भद्रां रें विभूतीश्च विमलां रैममोघया ॥
रों रौं विद्युता शक्तिं पूर्वाद्याः सर्वतोमुखाः। रं मध्ये अर्कासनं स्यात् सूर्य्यमूर्त्तिं षडक्षरम् ॥
ओं हं खं खोल्कायेति यजेदावाह्य भास्करम्। ललाटाक्रष्टमञ्जल्यां ध्यात्वा रक्तं न्यसेद्रविम् ॥
ह्रां ह्रीं सः[२] सूर्य्याय नमो मुद्रयावाहनादिकम्। विधाय प्रीतये विम्बमुद्रां गन्धादिकं ददेत ॥
पद्ममुद्रां विल्वमुद्रां प्रदर्श्याग्नौ हृदीरितम्। ओं आं हृदयाय नमः अर्काय शिरसे तथा ॥
भूर्भुवः स्वः सुरेशाय शिखायै[३] नैर्ऋते यजेत। हुं कवचाय[४] वायव्ये हां नेत्रायेति[५] मध्यतः ॥
वः अस्त्रायेति पूर्वादौ ततो मुद्राः प्रदर्शयेत्। धेनुमुद्रा हृदादीनां गोविषाणा च नेत्रयोः ॥

अस्त्रस्य त्रासनी योज्या ग्रहाणां च नमस्क्रिया।
सों सोमं बुं बुधं वृश्च जीवं भं भार्गवं यजेत्॥ १३ ॥

दले पूर्वादिकेऽग्न्यादौ अं भौमं शं शनैश्चरम। रं राहुं कें केतवे च गन्धाद्यैश्च खखोल्कया ॥
मूलं जप्त्वार्घ्यपात्राम्बु दत्वा सूर्याय संस्तुतिः। नत्वा पराङ्मुखञ्चार्क[६] क्षमस्वेति ततो वदेत् ॥
शराणुना फडन्तेन समाहृत्याणुसंहृतिम्[७]। हृत्पद्मे शिवसूर्य्येतिसंहारिण्योपसंस्कृतिम्[८]॥१६॥
योजयेत्तेजश्चण्डाय रविनिर्म्माल्यमर्प्पयेत्। अभ्यर्च्चैशे[९] जपाद्ध्यानाद्धोमात्सर्वं रवेर्भवेत् ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये सूर्यपूजा नाम त्रिसप्ततितमोऽध्यायः।

चतुःसप्ततितमोऽध्यायः

शिवपूजाकथनम्।

ईश्वर उवाच

शिवपूजां प्रवक्ष्यामि आचम्य प्रणवार्घ्यवान्। द्वारमस्त्राम्बुना प्रोक्ष्य होमादिद्वारपान्यजेत् ॥
गणं सरस्वतीं लक्ष्मीमूर्द्ध्वोदुम्बरके यजेत्। नन्दिगङ्गे दक्षिणेऽथ स्थिते[१०] वामगते यजेत् ॥
महाकालं च यमुनां दिव्यदृष्टिनिपाततः। उत्सार्य्य दिव्यान् विघ्नांश्च पुष्पाक्षेपान्तरिक्षगान् ॥
दक्षपार्ष्णित्रिभिर्घातैर्भूमिष्ठान्यागमन्दिरम्। देहलीं लङ्घयेद्वामशाखामाश्रित्य वै विशेत् ॥४॥

---

१. रुंजयां क्रमादिति ख.। २. ह्रीं हं हैं स इति घ.।
३. सुरेशाय ज्वालिनिशिखायै इति ख.। ४. क्रूं कवचाय इति ख. ङ.।
५. ह्रीं नेत्रायेतीति ख.। भां नेत्रायेति ग.। ६. पराङ्मुखञ्चार्घ्यमिति ख. ग.।
७. शवानुना फडन्तेन समाहृत्यानुसंहृतिमिति ख.। शवाणुना फडन्तेन समहृत्यार्थसंहृतिमिति ग.।
८. संहारिण्योपसंहृतमिति ख.। संहारिण्योपसंहृतिमिति ग. ङ.।
९. अभ्यर्च्य चेति ङ.। १०. दक्षया,वास्थिते इति घ. ङ.।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रविश्य दक्षपादेन विन्यस्यास्त्रमुदुम्बुरे। ओँ हां वास्त्वधिपतये ब्रह्मणे मध्यतो यजेत् ॥५॥
निरीक्षणादिभिः शस्त्रैः शुद्धानादाय गड्डुकान्[1]। लब्धानुज्ञः शिवान्मौनी गङ्गादिकमनुव्रजेत् ॥
पवित्राङ्गः प्रजप्तेन वस्त्रपूतेन वारिणा। पूरयेदम्बुधौ तांस्तान् गायत्र्या हृदयेन वा ॥७॥
गन्धकाक्षत[2] पुष्पादिसर्व्वद्रव्यसमुच्चयं। सन्निधीकृत्य पूजार्थं भूतशुद्ध्यादि कारयेत् ॥८॥
देवदक्षे ततो न्यस्य सौम्यास्यश्च शरीरतः[3]। संहारमुद्रयादाय मूर्द्धिन मन्त्रेण[4] धारयेत् ॥
भोग्यकर्म्मोपभोगार्थं पाणिकच्छपिकाख्यया। हृदम्बुजे निजात्मानं द्वादशान्तपदेऽथवा ॥
शोधयेत् पञ्चभूतानि सञ्चिन्त्य शुपिरन्तनौ[5]। चरणाङ्गुष्ठयोर्युग्मान् शुषिरान्तर्व्वहिः स्मरेत् ॥
शक्तिं हृद्व्यापिनीं पश्चाद्धूङ्कारे[6] पावकप्रभे। रन्ध्रमध्यस्थिते[7] कृत्वा प्राणरोधं हि चिन्तकः ॥
निवेशयेद्रेचकान्ते[8] फडन्तेनाथ तेन च। हृत्कण्ठतालुभ्रूमध्यब्रह्मरन्ध्रे विभिद्य च ॥१३॥
ग्रन्थीन्निर्भिद्य हूङ्कारं मूर्द्धि विन्यस्य जीवनम्। सम्पुटं हृदयेनाथ पूरकाहितचेतनम् ॥१४॥
हूं शिखोपरि विन्यस्य शुद्धं विन्द्वात्मकं[9] स्मरेत्।
कृत्वाथ कुम्भकं शम्भौ एकोद्घातेन योजयेत् ॥ १५ ॥
रेचकेन वीजवृत्त्या शिवे लीनोऽथ शोधयेत्। प्रतिलोमं स्वदेहे तु[10] विन्द्वन्तं तत्र विन्दुकम्॥
लयन्नीत्वा महीवातौ जलवह्नी परस्परं। द्वौ द्वौ साध्यौ तथाकाशमविरोधेन तच्छृणु ॥१७॥
पार्थिवं मण्डलं पीतं कठिनं वज्रलाञ्छितम्। हौमित्यात्मीयवीजेन[11] तन्निवृत्तिकलामयम् ॥
पादादारभ्य मूर्द्धानं विचिन्त्य चतुरस्रकम्। उद्घातपञ्चकेनैव वायुभूतं विचिन्तयेत् ॥१९॥
अर्द्धचन्द्रं द्रवं सौम्यं शुभ्रमम्भोजलाञ्छितम्[12]। ह्रीमित्यनेन वीजेन प्रतिष्ठारूपतां गतम् ॥
संयुक्तं राममन्त्रेण[13] पुरुषान्तमकारणम्। अर्घ्यैश्चतुर्भिरुद्घातैर्वह्निभूतं विशोधयेत् ॥२१॥
आग्नेयं मण्डलं त्र्यस्रं रक्तं स्वस्तिकलाञ्छितम्। हूमित्यनेन वीजेन विद्यारूपं विभावयेत् ॥
घोराणुत्रिभिरुद्घातैर्जलभूतं विशोधयेत्। षडस्रं मण्डलं वायोर्विन्दुभिः षड्भिरङ्कितम् ॥२३॥
कृष्णं ह्वेमिति वीजेन जातं शान्तिकलामयम्। सञ्चिन्त्योद्घातयुग्मेन पृथ्वीभूतं विशोधयेत् ॥
नभोविन्दुमयं वृत्तं विन्दुशक्तिविभूषितम्। व्योमाकारं सुवृत्तञ्च शुद्धस्फटिकनिर्मलम् ॥२५॥
हौङ्कारेण फडन्तेन शान्त्यतीतकलामयम्। ध्यात्वैकोद्घातयोगेन सुविशुद्धं विभावयेत्॥२६॥
आप्याययेत्ततः सर्वं मूलेनामृतवर्षिणा[14]। आधाराख्यामनन्तञ्च धर्म्मज्ञानादिपङ्कजम् ॥२७॥

---

१. गन्धकान् इति ङ. । लड्डुकानिति ख. ।
२. गड्डुकाक्षतेति ङ. गण्डूकाक्षतेति घ. ।
३. सौम्यात्यः स्वशरीरत इति घ. ।
४. मूर्त्तिमन्त्रेणेति ग. घ. ङ. ।
५. स्वशिरस्तनौ इति ङ. ।
६. पश्चादोङ्कारे इति ङ. ।
७. चन्द्रमध्यस्थिते इति ख. । चक्रमध्यस्थिते इति ङ. ।
८. निवोधयेद्रेचकान्ते इति ख. ।
९. विष्ण्वात्मकमिति ख. ।
१०. स्वदेहेतौ तु इति ख. ।
११. हौमित्युन्नीय वीजेनेति ख. । हौमित्याग्नेयवीजेनेति घ. ।
१२. अर्द्धचन्द्रं ततः सौम्ये शिवं पूर्वेण योजयेतिति ङ. ।
१३. वामं मन्त्रेणेति घ. । वा समन्त्रेणेति ख. ।
१४. मूलेनामृतसेचनादिति ङ. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हृदासनमिदं[1] ध्यात्वा मूर्त्तिमावाहयेत्ततः । सृष्ट्या शिवमयं तस्यामात्मानं द्वादशान्ततः ।।
अथ तां शक्तिमन्त्रेण वौषडन्तेन सर्वतः । दिण्यामृतेन सम्प्लाव्य कुर्वीत सकलीकृतम् ।।२९।।
हृदयादिकरान्तेषु[2] कनिष्ठाद्यङ्गुलेषु च । हृदादिमन्त्रविन्यासः सकलीकरणं मतम् ।।३०।।
अस्त्रेण रक्षय प्राकारं तन्मन्त्रेणाथ तद्बहिः । शक्तिजालमधश्चोर्द्ध्वं महामुद्रां प्रदर्शयेत् ।।३१।।
आपादमस्तकं यावद् भावपुष्पैः[3] शिवं हृदि । पद्मे यजेत पूरकेण आकृष्टामृतसद्घृतैः ।।३२।।
शिवमन्त्रैर्न्नाभिकुण्डे तर्पयेत शिवानलम् । ललाटे विन्दुरूपञ्च चिन्तयेच्छुभविग्रहम्[4] ।।३३।।
एकं स्वर्णादिपात्राणां पात्रमस्त्राम्वुशोधितम् । विन्दुप्रसूतपीयूषरूपतोयाक्षतादिना ।।३४।।
हृदापूर्य्य षडङ्गेन पूजयित्वाऽभिमन्त्रयेत । संरक्ष्य हेति मन्त्रेण कवचेन विगुण्ठयेत् ।।३५।।
रचयित्वाऽर्घ्यमष्टाङ्गं सेचयेद्धेनुमुद्रया[5] । अभिषिञ्चेदथात्मानं मूर्द्ध्नि तत्तोयविन्दुना ।।३६।।
तत्रस्थं यागसम्भारं प्रोक्षयेदस्त्रवारिणा । अभिमन्त्र्य हृदा विण्डैस्तनुत्राणेन वेष्टयेत् ।।३७।।
दर्शयित्वाऽमृतां मुद्रां पुष्पं दत्वा निजासने । विधाय तिलकं मूर्द्ध्नि पुष्पं मूलेन योजयेत् ।।३८।।
स्नाने देवार्च्चने होमे भोजने यागयोगयोः । आवश्यके जपे धीरः सदा वाचंयमो भवेत् ।।३९।।
नादान्तोच्चारणान्मन्त्रं शोधयित्वा सुसंस्कृतम् । पूजनेऽभ्यर्च्य गायत्र्या सामान्यार्घ्यमुपाहरेत् ।।
ब्रह्मपञ्चकमावर्त्त्य माल्यमादाय लिङ्गतः । ऐशान्यान्दिशि चण्डाय हृदयेन निवेदयेत् ।।४१।।
प्रक्षाल्य पिण्डिकालिङ्गे अस्त्रतोये ततो हृदा । अर्घ्यपात्राम्वुना सिञ्चेदिति लिङ्गविशोधनम् ।।
आत्मद्रव्यमन्त्रलिङ्गशुद्धौ सर्वान् सुरान्यजेत् । वायव्ये गणपतये हां गुरुभ्योऽर्च्चयेच्छिवे ।।
आधारशक्तिमङ्कुरनिभां कूर्म्मशिलास्थिताम् । यजेद् ब्रह्मशिलारूढं शिवस्यानन्तमासनम् ।।४४।।
विचित्रकेशप्रख्यानमन्योन्यं पृष्ठदर्शिनः । कृतत्रेतादिरूपेण शिवस्यासनपादुकाम् ।।४५।।

धर्म्मं ज्ञानञ्च वैराग्यमैश्वर्य्यञ्चाग्निदिङ्मुखान् ।
कर्पूरकुङ्कुमस्वर्णकज्जलाभान् यजेत् क्रमात् ।। ४६ ।।

पद्मञ्च कर्णिकामध्ये पूर्वादौ मध्यतो नव । वरदाभयहस्ताश्च शक्तयो धृतचामराः ।।४७।।
वामा ज्येष्ठा च रौद्री च काली कलविकारिणी । बलविकरणी पूज्या बलप्रमथनी क्रमात् ।।४८।।
हां सर्व्वभूतदमनी केशराग्रे मनोन्मनी । क्षित्यादिशुद्धविद्यान्तु तत्त्वव्यापकमासनम् ।।४९।।
न्यसेत् सिंहासने देवं शुक्लं पञ्चमुखं विभुं । दशबाहुं च खण्डेन्दुं दधानन्दक्षिणैः करैः ।।५०।।
शक्त्यृष्टिशूलखट्वाङ्गवरदं वामकैः करैः । डमरुं वीजपूरञ्च नीलाब्जं सूत्रकोत्पलम् ।।५१।।
द्वात्रिंशल्लक्षणोपेतां शैवीं मूर्त्तिन्तु मध्यतः । हां हं हां शिवमूर्त्तये स्वप्रकाशं शिवं स्मरन् ।।५२।।
ब्रह्मादिकारणत्यागान्मन्त्रं नीत्वा शिवास्पदम् । ततो ललाटमध्यस्थं स्फुरत्तारापतिप्रभम् ।।५३।।
षडङ्गेन समाकीर्णं विन्दुरूपं परं शिवं । पुष्पाञ्जलिगतं ध्यात्वा लक्ष्मीमूर्त्तौ निवेशयेत् ।।५४।।

---

१. हृद्यासनमिदमिति ङ. । २. हृदयादिषडङ्गेन इति ङ. ।
३. तावत् पुष्पैरिति ङ. । ४. चिन्तयेत् सपरिग्रहमिति ङ. ।
५. रोचयेद्धेनुमुद्रयेति ख. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ओं हां हौं शिवाय नम आवाहन्या हृदा ततः ।
आवाह्य स्थाप्य स्थापन्या सन्निधायान्तिकं शिवम् ॥ ५५ ॥
निरोधयेन्निष्ठुरया कालकान्त्या फडन्ततः । विघ्नानुत्सार्य्य विष्ठ्याथ[१] लिङ्गमुद्रां नमस्कृतिं॥
हृदावगुण्ठयेत् पश्चादावाहः सम्मुखी ततः । निवेशनं स्थापनं स्यात्सन्निधानं तवास्मि भोः ॥
आकर्म्मकाण्डपर्य्यन्तं सन्निधेयोपरिक्षयः । स्वभक्तेश्च[२] प्रकाशो यस्तद्भवेदवगुण्ठनम् ॥५८॥
सकलीकरणं कृत्वा मन्त्रैः षडभिरथैकताम् । अङ्गानामङ्गिना साद्ध विदध्यादमृतीकृतम् ॥५९॥
चिच्छक्तिहृदयं शम्भोः शिव ऐश्वर्य्यमष्टधा[३] । शिखावशित्वं चाभेद्यं तेजः कवचमैश्वरम् ॥६०॥
प्रतापो दुःसहश्चास्त्रमन्तरायापहारकम् । नमः स्वधा च स्वाहा च वौषट् चेति यथाक्रमम् ॥
हृत्पुरःसरमुच्चार्य्य पाद्यादीनि निवेदयेत् । पाद्यं पादाम्बुजद्वन्द्वे वक्त्रेष्वाचमनीयकम् ॥६२॥
अर्घ्यं शिरसि देवस्य दूर्व्वापुष्पाक्षतानि च । एवं संस्कृत्य संस्कारैर्दशभिः परमेश्वरम् ॥६३॥
यजेत् पञ्चोपचारेण विधिना कुसुमादिभिः । अभ्युदयोद्वर्त्य निर्म्भञ्ज्य राजिकालवणादिभिः॥
अर्घ्याद्विन्दुपुष्पाद्यैर्गद्धूकैः[४] स्नापयेच्छनैः । पयोदधिघृतक्षौद्रशर्क्करायैरनुक्रमात् ॥६५॥
ईशादिमन्त्रितैर्द्रव्यैरच्र्च्य तेषां[५] विपर्य्ययः । तोयधूपान्तरैः सर्वैर्मूलेन स्नपयेच्छिवम् ॥६६॥
विरूक्ष्य यवचूर्णेन यथेष्टं शीतलैर्जलैः । स्वशक्त्या गन्धतोयेन संस्नाप्य शुचिवाससा ॥६७॥
निर्म्मार्ज्यार्घ्यं प्रदद्याच्च नोपरि भ्रामयेत् करम् ।
न शून्यमस्तकं लिङ्गं पुष्पैः कुर्य्यात्ततो ददेत ॥ ६८ ॥
चन्दनाद्यैः समालभ्य पुष्पैः प्राच्र्य शिवाणुना[६] । धूपभाजनमस्त्रेण प्रोक्ष्याभ्यच्र्य शिवाणुना[७] ॥
अस्त्रेण पूजितां घण्टां चादाय गुग्गुलं ददेत । दद्यादाचमनं पश्चात् स्वधान्तं हृदयाणुना[८] ॥
आरात्रिकं समुत्तार्य्य तथैवाचामयेत् पुनः । प्रणम्यादाय देवाज्ञां भोगाङ्गानि प्रपूजयेत् ॥७१॥
हृदग्नौ चन्द्रभं चैशे शिवं चामीकरप्रभम् । शिखां रक्ताञ्च नैर्ऋत्ये कृष्णं वर्म्म च वायवे ॥७२॥
चतुर्वक्त्रं चतुर्बाहुं[९] दलस्थान्[१०] पूजयेदिमान् । दंष्ट्राकरालमप्यस्त्रं पूर्वदौ वज्रसन्निभम् ॥७३॥
मूले हौं शिवाय नमः ओं हां हूं हीं हौं शिरश्च ।
हूं शिखायै हैं वर्म्म हश्चास्त्रं परिवारयुताय च ॥ ७४ ॥
शिवाय दद्यात् पाद्यञ्च आचामञ्चार्घ्यमेव च । गन्धं पुष्पं धूपदीपं नैवेद्याचमनीयकम् ॥७५॥
करोद्वर्त्तनताम्बूलं मुखवासञ्च दर्पणम् । शिरस्यारोप्य देवस्य दूर्वाक्षतपवित्रकम् ॥७६॥
मूलमष्टशतं जप्त्वा हृदयेनाभिमन्त्रितं । चर्म्मणावेष्टितं खड्गं रक्षितं कुशपुष्पकैः ॥७७॥
अक्षतैर्मुद्राया युक्तं शिवमुद्भवसञ्ज्ञया । गुह्यातिगुह्यगुप्त्यर्थं[११] गृहाणास्मत्कृतं जपम् ॥७८॥

---

१. छोट्याथ इति ख.
२. अभुक्तेज्या इति ग. ।
३. शिवमैश्वर्य्यमष्टधा इति ग. घ. ।
४. गन्धकैरिति ख. ।
५. इत्यादिमन्त्रितैर्भक्ष्यैश्चेषामिति ख. ।
६. शिवात्मनेति ख. ।
७. शिवात्मनेति ख. ।
८. हृदयात्मनेति ख. ।
९. चतुर्वक्त्रांश्चतुर्बाहून् इति घ. ङ. ।
१०. दलाग्रे इति ङ. ।
११. गुह्यातिगुह्यगोप्ता त्वमिति ग. ङ. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सिद्धिर्भवतु मे येन[१] त्वत्प्रसादात्त्वयि स्थिते । भोगी श्लोकंपठित्वाद्यं[२] दक्षहस्तेन शम्भवे ॥७९॥
मूलाणुनार्घ्यतोयेन वरहस्ते[३] निवेदयेत् । यतकिञ्चित कुर्म्महे देव सदा सुकृतदुस्कृतम ॥८०॥
तन्मे शिवपदस्थस्य हूं क्षः क्षेपय शङ्कर । शिवो दाता शिवो भोक्ता शिवः सर्वमिदं जगत् ॥
शिवो जयति सर्वत्र यः शिवः सोहमेव च । श्लोकद्वयमधीत्यैवं जपं देवाय चार्प्पयेत् ॥८२॥
शिवाङ्गानां[४] दशांशञ्च दत्वार्घ्यं स्तुतिमाचरेत् ।
प्रदक्षिणीकृत्य नमेच्चाष्टाङ्गञ्चाष्टमूर्त्तये[५] । नत्वा ध्यानादिभिश्चैव यजेच्चित्रेऽनलादिषु ॥८३॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये शिवपूजा नाम चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ।

पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः

अग्निस्थापनादिप्रतिष्ठाकथनम् ।

ईश्वर उवाच

अर्घपात्रकरो यायादग्न्यागारं सुसंवृतः । यागोपकरणं सर्वं दिव्यदृष्ट्या च कल्पयेत्[६] ॥१॥
उदङ्मुखः कुण्डमीक्षेत् प्रोक्षणं ताडनं कुशैः । विदध्यादस्त्रमन्त्रेण वर्म्मणाभ्युक्षणं मतं ॥२॥
खड्गेन खातमुद्धारं पूरणं समतामपि । कुर्वीत वर्म्मणा सेकं कुट्टनन्तु शरात्मना[७] ॥३॥
सम्मार्ज्जनं समालेपं कलारूपप्रकल्पनम् । त्रिसूत्रीपरिधानं च वर्म्मणाभ्यर्च्चनं सदा ॥४॥
रेखात्रयमुदक् कुर्य्यादेकां पूर्वाननामधः । कुशेन च शिवास्त्रेण यद्वा तासां विपर्य्ययः ॥५॥
वज्रीकरणमन्त्रेण हृदा दर्भैश्चतुष्पथम् । अक्षपात्रन्ततनुत्रेण विन्यसेद्विष्टरं हृदा ॥६॥
हृदा वागीश्वरीं तत्र ईशमावाह्य पूजयेत् । वह्निं सदाश्रयानीतं शुद्धपात्रोपरिस्थितम् ॥७॥
क्रव्यादांशं परित्यज्य वीक्षणादिविशोधितम् । औदर्य्यं चैन्दवं भौतं एकीकृत्यानलत्रयम् ॥८॥
ओं हूं वह्निचैतन्याय वह्निवीजेन विन्यसेत् । संहितामन्त्रितं वह्निं धेनुमुद्रामृतीकृतम् ॥९॥
रक्षितं हेतिमन्त्रेण कवचेनावगुण्ठितम् । पूजितन्त्रिः परिभ्राम्य कुण्डस्योर्द्ध्वं प्रदक्षिणम् ॥१०॥
शिववीजमिति ध्यात्वा वागीशागर्भगोचरे । वागीश्वरेण देवेन क्षिप्यमानं विभावयेत् ॥११॥
भूमिष्ठजानुको मन्त्री हृदात्मसम्मुखं क्षिपेत । ततोऽन्तस्थितवीजस्य[८] नाभिदेशे समूहम् ॥
सम्भृतिं परिधानस्य शौचमाचमनं हृदा । गर्भाग्नेः पूजनं कृत्वा तद्रक्षार्थं शराणुना[९] ॥१३॥
वध्नीयाद्दर्भजं देव्याः ककङ्कणं पाणिपल्लवे । गर्भाधानाय सम्पूज्य सद्योजातेन पावकम् ॥१४॥

---

१. सिद्धिर्भवतु मे देवेति ख. ग. ।
२. पठित्वामुमिति ख. ।
३. हरहस्ते इति ग. ।
४. शिवज्ञानामिति ख. ।
५. नसेदष्टायमूर्तये इति ङ. ।
६. दिव्यदृष्ट्या विलोकयेदिति घ. ङ. ।
७. शराणुनेति ङ.
८. ततोन्तस्थितदेवस्य इति ख. ।
९. शरात्मना इति ख. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ततो हृदयमन्त्रेण जुहुयादाहुतित्रयम्। पुंसवनाय वामेन तृतीये मासि पूजयेत् ॥१५॥
आहुतित्रितयं दद्याच्छिरसाम्बुकणान्वितं। सीमन्तोन्नयनं षष्ठे मासि सम्पूज्य रूपिणा ॥
जुहुयादाहुतीस्तिस्रः शिखया शिखयैव तु। वक्त्राङ्गकल्पनां कुर्य्याद्वक्त्रोद्घाटननिष्कृती ॥
जातकर्म्मनृकर्म्मभ्यां दशमे मासि पूर्ववन। वह्निं सन्धुक्ष्य दर्भाद्यैः[1] स्नानं गर्भमलापहं ॥१८॥
सुवर्णबन्धनं देव्या कृतं ध्यात्वा हृदार्च्चयेत्। सद्यःसूतकनाशाय प्रोक्षयेदस्त्रवारिणा ॥१६॥
कुम्भन्तु[2] वहिरस्त्रेण ताडयेद्वर्म्मणोक्षयेत्। अस्त्रेणोत्तरपूर्व्वाग्रान्मेखलासु वहिः कुशान् ॥२०॥
आस्थाप्य[3] स्थापयेत्तेषु हृदा परिधिविस्तरं। वक्त्राणामस्त्रमन्त्रेण ततो नालापन्नुत्तये ॥२१॥
समिधः पञ्च होतव्याः प्रान्ते मूले घृतप्लुताः। ब्रह्माणं शङ्करं विष्णुमनन्तञ्च हृदार्च्चयेत् ॥
दूर्वाक्षतैश्च पर्य्यन्तं परिधिस्थाननुक्रमात्। इन्द्रादीशानपर्य्यन्तान्विष्टरस्थाननुक्रमात् ॥२३॥
अग्नेरभिमुखीभूतान् निजदिक्षु हृदार्च्चयेत। निवार्य्य विघ्नसङ्घातं वालकं पालयिष्यथ ॥
शैवीमाज्ञामिमान्तेषां श्रावयेत्तदनन्तम्। गृहीत्वा स्रुक्स्रुवावूर्ध्ववदनाधोमुखैः क्रमात् ॥२५॥
प्रताप्याग्नौ त्रिधा दर्भमूलमध्याग्रकैः स्पृशेत्। कुशस्पृष्टप्रदेशे तु आत्मविद्याशिवात्मकं ॥२६॥
क्रमात्तत्त्वत्रयं न्यस्य हां हीं हूं सं[4] रवैः क्रमात्। स्रुचि शक्तिं स्रुवे शम्भुं विन्यस्य हृदयाणुना ॥
त्रिसूत्रीवेष्टितग्रीवौ पूजितौ कुसुमादिभिः। कुशानामुपरिष्टात्तौ स्थापयित्वा स्वदक्षिणे ॥२८॥
गव्यमाज्यं समादाय वीक्षणादिविशोधितं। स्वकां ब्रह्ममयीं मूर्त्तिं सञ्चिन्त्यादाय तद्घृतं ॥
कुण्डस्योर्ध्वं हृदावर्त्य भ्रामयित्वाग्निगोचरे। पुनर्व्विष्णुमयीं ध्यात्वा घृतमीशानगोचरे ॥
धृत्वादाय कुशाग्रेण स्वाहान्तं शिरसाणुना[5]। जुहुयाद्विष्णवे विन्दुं रुद्ररूपमनन्तरं ॥३१॥
भावयन्निजमात्मानं नाभौ धृत्वा प्लवेत्ततः। प्रादेशमात्रदर्भाभ्यामङ्गुष्ठानामिकाग्रकैः ॥३२॥
धृताभ्यां सम्मुखं वह्नेरस्त्रेणाप्लवमाचरेत्। हृदात्मसम्मुखं तद्वत् कुर्यात् सम्प्लवनन्ततः ॥३३॥
हृदालब्धदग्धदर्भं शस्त्रक्षेपात् पवित्रयेत। दीप्तेनापरदर्भेण निवाह्यानेन दीपयेत् ॥३४॥
अस्त्रमन्त्रेण निर्दग्धं वह्नौ दर्भं पुनः क्षिपेत्। क्षिप्त्वा घृते कृतग्रन्थिकुशं प्रादेशसम्मितं ॥
पक्षद्वयमिडादीनां त्रयं चाज्ये विभावयेत्। क्रमाद्भागत्रयादाज्यं स्रुवेणादाय होमयेत् ॥३६॥
स्वेत्यग्नौ हा घृते[6] भागं शेषमाज्यं क्षिपेत् क्रमात्।

ओं हां अग्नये स्वाहा। ओं हां सोमाय स्वाहा। ओं हां अग्नीषोमाभ्यां स्वाहा।

उद्घाटनाय नेत्राणां अग्नेर्नेत्रत्रये मुखे ॥ ३७ ॥
स्रुवेण घृतपूर्णेन चतुर्थीमाहुतिं यजेत्।

ओं हां अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा।

अभिमन्त्र्य षडङ्गेन बोधयेद्धेनुमुद्रया ॥ ३८ ॥

---

१. गन्धाद्यैरिति ख.।
२. कुण्डन्तु इति ख. ङ.।
३. आस्तीर्येति घ. ङ.।
४. हां हीं हं समिति ख.। हूं हां क्रूं समिति ङ.।
५. शिरसात्मना इति ख.।
६. स्वाहेत्यग्नौ घृते इति ङ.।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अवगुण्ठ्य तनुत्रेण रक्षेदाज्यं शराणुना[१]। हृदाज्यविन्दुविक्षेपात् कुर्य्यादभ्युक्ष्य शोधनं ॥३९॥
वक्त्राभिघारसन्धानं वक्त्रैकीकरणं तथा ।
ओँ हां सद्योजाताय स्वाहा । ओँ हां वामदेवाय स्वाहा । ओँ हां अघोराय स्वाहा ।
ओँ तत्पुरुषाय स्वाहा । ओँ हां ईशानाय स्वाहा ।

इत्येकैकघृताहुत्या कुर्य्याद्वक्त्राभिघारकम् ॥ ४० ॥

ओँ हां सद्योजातवामदेवाभ्यां स्वाहा । ओँ हां वामदेवाघोराभ्यां स्वाहा । ओँ हां अघोरतत्पुरुषाभ्यां स्वाहा । ओँ हां तत्पुरुषेशानाभ्यां स्वाहा ।

इतिवक्त्रानुसन्धानं मन्त्रैरेभिः क्रमाचरेत् । अग्नितो गतया वायुं निर्ऋतादिशिवान्तया ॥
वक्त्राणामेकतां कुर्य्यात् स्रुवेण घृतधारया ।
ओँ हां सद्योजातवामदेवाघोरतत्पुरुषेशानेभ्यः स्वाहा ।
इतीष्टवक्त्रे वक्त्राणामन्तर्भावस्तदाकृतिः ॥ ४२ ॥

ईशेन वह्निमभ्यर्च्य दत्वास्त्रेणाहुतित्रयम् । कुर्यात् सर्व्वात्मना नाम शिवाग्निस्त्वं हुताशन ॥
हृदार्चितौ विसृष्टाग्नौ पितरौ विधिपूरणौ । मूलेन वौषडन्तेन दद्यात् पूर्णां यथाविधि ॥४४॥
ततो हृदम्बुजे साङ्गं ससेनं भासुरं परम्[२] । यजेत् पूर्व्ववदावाह्य प्रार्थ्याज्ञान्तर्प्पयेच्छिवम् ॥
यागाग्निशिवयोः कृत्वा नाडीसन्धानमात्मना । शक्त्या मूलाणुना होमं कुर्य्यादङ्गैर्दशांशतः ॥
घृतस्य कार्षिको होमः क्षीरस्य मधुनस्तथा । शुक्तिमात्राहुतिर्दध्नः प्रसृतिः पायसस्य तु ॥४७॥
यथावत् सर्व्वभक्षाणां लाजानां मुष्टिसम्मितम् । खण्डत्रयन्तु मूलानां फलानां स्वप्रमाणतः॥
ग्रासार्द्धमात्रमन्नानां सूक्ष्माणि पञ्च होमयेत् । इक्षोरापर्व्विकं मानं लतानामङ्गुलद्वयम् ॥४९॥
पुष्पं पत्रं स्वमानेन समिधां तु दशाङ्गुलम् । चन्द्रचन्दनकाश्मीरकस्तूरीयक्षकर्द्दमान् ॥५०॥
कलायसम्मितानेतान् गुग्गुलुं वदरास्थिवत् । कन्दानामष्टमं भागं जुहुयाद्विधिवत् परम्॥५१॥
होमं निर्वर्त्तयेदेवं ब्रह्मबीजपदैस्ततः । घृतेन स्रुचि पूर्णायां निधायाधोमुखं स्रुवम् ॥५२॥
स्रुगग्रे पुष्पमारोप्य पश्चाद्वामेन पाणिना । पुनः सव्येन तौ धृत्वा शङ्खसन्निभमुद्रया ॥५३॥
समुद्गतोऽर्द्धकायश्च समपादः समुत्थितः । नाभौ तन्मूलमाधाय स्रुगग्रन्यग्रलोचनः ॥५४॥
ब्रह्मादिकारणात्यागाद्विनिःसृत्य सुषुम्णया[३] । वामस्तनान्तमानीय तयोर्मूलमतन्द्रितः ॥५५॥
मूलमन्त्रमविस्पष्टं वौषडन्तं समुच्चरेत् । तदग्नौ जुहुयादाज्यं यवसम्मितधारया ॥५६॥
आचामं चन्दनं दत्वा ताम्बूलप्रभृतीनपि । भक्त्या तद्भूतिमावन्द्य विदध्यात्प्रणतिं परां ॥५७॥
ततो वह्निं समभ्यर्च्य फडन्तास्त्रेण संवरान् । संहारमुद्रयाहृत्य क्षमस्वेत्यभिधाय च ॥५८॥
भासुरान्[४] परिधीस्तांश्च पूरकेण हृदाऽणुना[५] । श्रद्धया परयात्मीये स्थापयेत हृदम्बुजे ॥

१. शरात्मनेति ख. ।
२. ससेनं भास्करं परमिति ख. । शासनं भास्करं परमिति ग. । शासनं भासुरं परमिति ङ. । शासनं त्र्यक्षरं परमिति घ. । ३. विनिःसृत्य स्वपृष्ठ्या इति ख. । विनिःसृत्य स्वपृष्ठ्या इति ग. ।
४. भास्वरानिति ख. ग. घ. ङ. । ५. हृदात्मनेति ख. ग. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सर्वपाकाग्रमादाय कृत्वा मण्डलकद्वयम्[१]। अन्तर्वहिर्वलिं दद्यादाग्नेय्यां कुण्डसन्निधौ॥६०॥
ओं हां रुद्रेभ्यः स्वाहा पूर्वे मातृभ्यो दक्षिणे तथा।
वारुणे हां गणेभ्यश्च स्वाहा तेभ्यस्त्वयं बलिः॥ ६१॥
उत्तरे हाञ्च यक्षेभ्य ईशाने हां ग्रहेभ्य उ[२]। अग्नौ हामसुरेभ्यश्च रक्षोभ्यो नैर्ऋते बलिः॥
वायव्ये हाञ्च नागेभ्यो नक्षत्रेभ्यश्च मध्यतः।
हां राशिभ्यः[३] स्वाहा वह्नौ विश्वेभ्यो नैर्ऋते तथा॥ ६३॥
वारुण्यां[४] क्षेत्रपालाय अन्तर्वलिरुदाहृतः। द्वितीये मण्डले वाह्ये इन्द्रायाग्नियमाय च॥६४॥
नैर्ऋताय जलेशाय वायवे धनरक्षिणे। ईशानाय च पूर्वादौ हीशाने ब्रह्मणे नमः॥६५॥
नैर्ऋते विष्णवे स्वाहा वायसादेर्वहिर्वलिः। वलिद्वयगतान्मन्त्रान् संहारमुद्रयाऽऽत्मनि॥६६॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये अग्निकार्य्यं नाम पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः।

षट्सप्ततितमोऽध्यायः

चण्डपूजाकथनम्।

ईश्वर उवाच

ततः शिवान्तिकङ्गत्वा पूजाहोमादिकं मम। गृहाण भगवन् पुण्यफलमित्यभिधाय च॥१॥
अर्घ्योदकेन देवाय मुद्रयोद्भवसञ्ज्ञया। हृद्बीजपूर्वमूलेन स्थिरचित्तो निवेदयेत्॥२॥
ततः पूर्ववदभ्यर्च्य स्तुत्वा स्तोत्रैः प्रणम्य च। अर्घ्यं पराङ्मुखं दत्वा क्षमस्वेत्यभिधाय च॥
नाराचमुद्रयाऽस्त्रेण फडन्तेनात्मसञ्चयम्। संहृत्य दिव्यया लिङ्गं मूर्त्तिमन्त्रेण योजयेत्॥४॥
स्थण्डिले त्वर्चिते देवे मन्त्रसङ्घातमात्मनि। नियोज्य विधिनोक्तेन विदध्याच्चण्डपूजनम्॥
ओं चण्डेशानाय नमो मध्यतश्चण्डमूर्त्तये। ओं धूलिचण्डेश्वराय[५] हूं फट्[६] स्वाहा तमाह्वयेत्॥
चण्डहृदयाय हूं फट् ओं चण्डशिरसे तथा[७]।
ओं चण्डशिखायै हूं फट् चण्डायुः[८] कवचाय च॥
चण्डास्त्राय तथा हूं फट् चण्डं रुद्राग्निजं स्मरेत्। शूलटङ्कधरं कृष्णं साक्षसूत्रकण्डलुम्॥८॥
टङ्काकारेऽर्द्धचन्द्रे[९] वा चतुर्व्वक्त्रं प्रपूजयेत्। यथाशक्ति जपं कुर्य्याद्दङ्गानान्तु दशांशतः॥९॥
गोभूहिरण्यवस्त्रादिमणिहेमादिभूषणम्। विहाय शेषनिर्माल्यं चण्डेशाय निवेदयेत्॥१०॥

---

१. कृत्वा च मण्डलद्वयमिति ख.।　　२. गणेभ्य उ इति ग.।
३. हां ऋषिभ्य इति ङ.।　　४. वायव्यामिति ग.। नैर्ऋत इति ङ.।
५. ओं वलिचण्डेश्वराय इति ग.।　　६. क्रूंफडिति ङ.।
७. हूं चण्डशिरसे स्वाहेति ग.।　　८. हूं फट् चण्डत इति ग. घ.।
९. टङ्कारेणार्द्धचन्द्रे इति ख.।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

लेह्यचोष्याद्यनुवरं ताम्बूलं स्रग्विलेपनम् । निर्म्माल्यं भोजनं तुभ्यं प्रदत्तन्तु शिवाज्ञया ॥
सर्वमेतत क्रियाकाण्डं मया चण्ड तवाज्ञया । न्यूनाधिकं कृतं मोहात् परिपूर्णं सदाऽस्तु मे ॥
इति विज्ञाप्य देवेशं दत्वाऽर्घ्यं तस्य संस्मरन् । संहारमूर्त्तिमन्त्रेण शनैः संहारमुद्रया ॥१३॥
पूरकान्वितमूलेन मन्त्रानात्मनि योजयेत् । निर्म्माल्यापनयस्थानं लिम्पेद्गोमयवारिणा ॥
प्रोच्याघ्यार्दि विसृज्याथ आचान्तोऽन्यत्समाचरेत् ॥ १४ ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये चण्डपूजाकथनं नाम षट्सप्ततितमोऽध्यायः ।

सप्तसप्ततितमोऽध्यायः

कपिलादिपूजाविधानम् ।

ईश्वर उवाच

कपिलापूजनं वक्ष्ये एभिर्म्मन्त्रैर्यजेच्च गाम् । ओं कपिले नन्दे नमः ओं कपिले भद्रिके नमः ॥
ओं कपिले सुशीले नमः कपिले सुरभिप्रभे ।
ओं कपिले सुमनसे नमः ओं भुक्तिमुक्तिप्रदे नमः ॥ २ ॥
सौरभेयि जगन्मातर्देवानाममृतप्रदे । गृहाण वरदे ग्रासमीप्सितार्थञ्च देहि मे ॥३॥
वन्दिताऽसि वसिष्ठेन विश्वामित्रेण धीमता । कपिले हर मे पापं यन्मया दुष्कृतं कृतम् ॥४॥
गावो ममाग्रतो नित्यं गावः पृष्ठत एव च । गावो मे हृदये चापि गवां मध्ये वसाम्यहम् ॥
दत्तं गृह्णन्तु[१] मे ग्रासं जप्त्वा स्यां निर्म्मलः शिवः। प्राच्चर्य विद्यापुस्तकानि गुरुपादौ नमेन्नरः ॥
यजेत् स्नात्वा तु मध्याह्ने अष्टपुष्पिकया शिवम् । पीठमूर्त्तिशिवाङ्गानां पूजा स्यादष्टपुष्पिका ॥
मध्याह्ने भोजनागारे सुलिप्ते पाकमानयेत् । ततो मृत्युञ्जयेनैव वौषडन्तेन सप्तधा ॥८॥
जप्तैः सदर्भशङ्खस्थैः सिञ्चेत्तं वारिविन्दुभिः । सर्वपाकाग्रमुद्धृत्य शिवाय विनिवेदयेत् ॥९॥
अथार्द्धं[२] चुल्लिकाहोमे विधानायोपकल्पयेत्[३] । विशोध्य विधिना चुल्लीं तद्वह्निं पूरकाहुतिम् ॥
हुत्वा नाभ्यग्निना चैकं ततो रेचकवायुना । वह्निवीजं समादाय कादिस्थानगतिक्रमात्[४] ॥
शिवाग्निस्त्वमिति ध्यात्वा चुल्लिकाग्नौ निवेशयेत् ।
ओं हां अग्नये नमो वै हां सोमाय वै नमः ॥ १२ ॥
सूर्य्याय बृहस्पतये प्रजानां पतये नमः । सर्वेभ्यश्चैव देवेभ्यः सर्वविश्वेभ्य एव च ॥१३॥
हामग्नये स्विष्टिकृते पूर्वादावर्च्चयेदिमान् । स्वाहान्तामाहुतिं दत्वा क्षमयित्वा विसर्जयेत् ॥
चुल्ल्या दक्षिणबाहौ च यजेद्धर्माय वै नमः । वामबाहावधर्म्माय काञ्जिकादिकभाण्डके ॥

---

१. दत्तं गृहाणेति ग. घ. । २. अन्यार्द्धमिति ख- अन्त्यार्द्धमिति ङ. ।
३. निधानायोपकल्पयेदिति घ. ङ. ।
४. हृदि स्थानमतिक्रमेदिति ग. । कादिस्थानमतिक्रमादिति ख.।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रसपरिवर्त्तमानाय वरुणाय जलाग्नये[1]। विघ्नराजो गृहद्वारे पेषण्यां सुभगे नमः ॥१६॥
ओं रौद्रिके नमो गिरिके[2] नमश्चोलूखले यजेत्। बलप्रियायायुधाय नमस्ते मुषले यजेत्॥
सम्मार्ज्जन्यां देवतोक्ते कामाय शयनीयके। मध्यस्तम्भे च स्कन्दाय दत्वा वास्तुबलिं ततः॥
भुञ्जीत पात्रे सौवर्णे पद्मिन्यादिदलादिके। आचार्य्यः साधकः पुत्र समयी मौनमास्थितः॥
वटाश्वत्थार्क्कवाताविसर्ज्ज भल्लातकांस्त्यजेत्। अपोशानं पुरादाय प्राणाद्यैः प्रणवान्वितैः॥२०॥
स्वाहान्तेनाहुतीः पञ्च दत्वादीप्योदरानलं। नागः कूर्म्मोऽथ कृकरो देवदत्तो धनञ्जयः॥२१॥
एतेभ्य उपवायुभ्यः स्वाहापोशानवारिणा। भक्तादिकं निवेद्याय पिवेच्छेषोदकं नरः॥२२॥
अमृतोपस्तरणमसि प्राणाहुतीस्ततो ददेत्। प्राणाय स्वाहाऽपानाय समानाय ततस्तथा॥२३॥
उदानाय च व्यानाय भुक्त्वा चुल्लकमाचरेत। अमृतापिधानमसीति शरीरेऽन्नादिवायवः[3]॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये वास्तुपूजाकथनं नाम सप्तसप्ततितमोऽध्यायः।

अष्टसप्ततितमोऽध्यायः

पवित्रारोहणकथनम्।

ईश्वर उवाच

पवित्रारोहणं वक्ष्ये क्रियार्चादिषु पूरणं। नित्यं तन्नित्यमुद्दिष्टं नैमित्तिकमथापरं॥१॥
आषाढादि चतुर्द्दश्यामथ श्रावणभाद्रयोः। सितासितासु कर्त्तव्यं चतुर्द्दश्यष्टमीषु तन्॥
कुर्य्याद्वा कार्तिकीं यावत्तिथौ प्रतिपदादिके। वह्निब्रह्माम्बिकेभास्यनागस्कन्दार्क्कशूलिनाम्॥
दुर्गायमेन्द्रगोविन्दस्मरशम्भुसुधाभुजाम्[4]। सौवर्णं राजतं ताम्रं कृतादिषु यथाक्रमम्॥४॥
कलौ कार्प्पासजं वापि पट्टपद्मादिसूत्रकम्। प्रणवश्चन्द्रमा वह्निर्ब्रह्मा नागो गुहो हरिः[5]॥५॥
सर्वेशः[6] सर्वदेवाः स्युः क्रमेण नवतन्तुषु। अष्टोत्तरशतान्यर्द्धं तदर्धं चोत्तमादिकम्॥६॥
एकाशीत्याऽथवा सूत्रैस्त्रिंशताऽप्यष्टयुक्तया। पञ्चाशता वा कर्त्तव्यं तुल्यग्रन्थ्यन्तरालकम्॥
द्वादशाङ्गुलमानानि व्यासादष्टाङ्गुलानि च। लिङ्गविस्तारमानानि चतुरङ्गुलकानि वा॥८॥
तथैव पिण्डिकास्पर्शं चतुर्थं सर्वदैवतम्। गङ्गावतारकं कार्य्यं सुजातेन सुधौतकम्॥९॥
ग्रन्थिं कुर्य्याच्च वामेन अघोरेणाथ शोधयेत्। रञ्जयेत् पुरुषेणैव रक्तचन्दनकुङ्कुमैः॥१०॥
कस्तूरीरोचनाचन्द्रैर्हरिद्रागैरिकादिभिः। ग्रन्थयो दश कर्त्तव्या अथवा तन्तुसङ्ख्यया॥११॥
अन्तरं वा यथाशोभमेकद्विचतुरङ्गुलम्। प्रकृतिः पौरुषी वीरा चतुर्थी त्वपराजिता॥१२॥

जयाऽन्या विजया षष्ठी अजिता च सदाशिवा।
मनोन्मनी सर्वमुखी ग्रन्थयोऽभ्यधिकाः शुभाः॥ १३॥

---

१. जलाश्रये इति ङ.।
२. ओं रौद्रकोटिगिरिके इति ख. ग. घ. ङ.।
३. शरीरोन्मादवायव इति घ.।
४. स्वधाभुजामिति ख. घ. ङ,।
५. गुहो रविरिति ख. ग. घ. ङ.।
६. सदेश इति ख. ग. घ. ङ.।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कार्य्या वा चन्द्रवह्न्यर्कपवित्रं[१] शिववद्धृदि । एकैकं निजमूर्त्तौ वा पुस्तके गुरुके गणे[२] ॥१४॥
स्यादेकैकं तथा द्वारदिक्पालकलशादिषु । हस्तादिनवहस्तान्तं लिङ्गानां स्यात्पवित्रकम् ॥
अष्टाविंशतितो वृद्धं दशभिर्दशभिः क्रमात् । द्व्यङ्गुलाभ्यन्तरास्तत्र क्रमादेकाङ्गुलान्तराः॥१६॥
ग्रन्थयो मानमप्येषां लिङ्गविस्तारसम्मितम् । सप्तम्यां वा त्रयोदश्यां कृतनित्यक्रियः शुचिः ॥
भूषयेत् पुष्पवस्त्राद्यैः सायाह्ने यागमन्दिरं । कृत्वा नैमित्तिकीं सन्ध्यां विशेषेण च तर्प्पणम् ॥
परिगृहीते भूभागे पवित्रे सूर्य्यमर्च्चयेत्[३] । आचम्य सकलीकृत्य प्रणवार्घ्यकरो गुरुः ॥१९॥
द्वाराण्यस्त्रेण सम्प्रोक्ष्य पूर्वादिक्रमतोऽर्च्चयेत्। हां शान्तिकलाद्वाराय तथा विद्याकलात्मने॥२०॥
निवृत्तिकलाद्वाराय प्रतिष्ठाख्यकलात्मने । तच्छाखयोः प्रतिद्वारं द्वौ द्वौ द्वाराधिपौ यजेत् ॥२१॥
नन्दिने महाकालाय भृङ्गिणेऽथ गणाय च । वृषभाय च स्कन्दाय देव्यै चण्डाय च क्रमात् ॥२२॥
नित्यं च द्वारपालादीन् प्रविश्य द्वारपश्चिमे । इष्ट्वा वास्तुं भूतशुद्धिं विशेषार्घ्यकरः शिवः ॥२३॥
प्रोक्षणाद्यं[४] विधायाथ यज्ञसम्भारकृन्नरः । मन्त्रयेदर्भदूर्वाद्यैः पुष्पाद्यैश्च हृदादिभिः । २४॥
शिवहस्तं विधायेत्थं[५] स्वशिरस्यधिरोपयेत् । शिवोऽहमादिः सर्वज्ञो मम यज्ञप्रधानता ॥२५॥
अत्यर्थं भावयेद्देवं ज्ञानखड्गकरो गुरुः । नैरृतीं दिशमासाद्य प्रक्षिपेदुदगाननः ॥२६॥
अर्घ्याम्बु पञ्चगव्यञ्च समस्तान् मखमण्डपे । चतुष्पथान्तसंस्कारैर्वीक्षणाद्यैः[६] सुसंस्कृतैः॥२७॥
विक्षिप्य विकिरांस्तत्र कुशकूर्च्चोपसंहरेत्[७] । तानीशदिशि[८] वर्द्धन्यामासनायोपकल्पयेत् ॥२८॥
नैरृते वास्तुगीर्वाणा द्वारे लक्ष्मीं प्रपूजयेत् । पश्चिमाभिमुखं कुम्भं सर्वधान्योपरि स्थितम् ॥
प्रणवेन वृषारूढं सिंहस्थां वर्द्धनीन्ततः । कुम्भे साङ्गं शिवन्देवं वर्द्धन्यामस्त्रमर्च्चयेत्[९] ॥३०॥
दिक्षु शक्रादिदिक्पालान् विष्णुब्रह्मशिवादिकान्[१०]। वर्द्धनीं सम्यगादाय घटपृष्ठानुगामिनीं ॥
शिवाज्ञां श्रावयेन्मन्त्री पूर्वादीशानगोचरम् । अविच्छिन्नपयोधारां मूलमन्त्रमुदीरयेत् ॥३२॥
समन्ताद् भ्रामयेदेनां रक्षार्थं शस्त्ररूपिणीम् । पूर्वं कलशमारोप्य शस्त्रार्थन्तस्य[११] वामतः ॥३३॥
समग्रासनके कुम्भे यजेद्देवं स्थिरासने । वर्द्धन्यां प्रणवस्थायामायुधन्तदनु द्वयोः ॥३४॥
भगलिङ्गसमायोगं विदध्याल्लिङ्गमुद्रया । कुम्भे निवेद्य बोधासिं मूलमन्त्रजपन्तथा ॥३५॥
तद्दशांशेन वर्द्धन्यां रक्षां विज्ञापयेदपि[१२] । गणेशं वायवेऽभ्यर्च्च्य हरं पञ्चामृतादिभिः ॥३६॥
स्नापयेत् पूर्ववत् प्राच्यं[१३] कुण्डे च शिवपावकम्[१४]। विधिवच्च चरुं कृत्वा सम्पाताहुतिशोधितम्॥

१. चण्डवह्न्यर्कपवित्रमिति ख. ग. ङ. ।
२. पुस्तके गुरवे गुणो इति ख. ङ. ।
३. सूत्रिते सूर्य्यमर्च्चयेदिति ख. ग. घ. ङ. ।
४. प्रोक्षणञ्चेति ग. ।
५. विधायैकमिति ङ. ।
६. ब्राह्मणाद्यैरिति ग. ।
७. दशकूर्च्चोपसंहरेदिति ख. ।
८. अनीशदिशि इति ख. ङ. ।
९. वर्द्धन्यां शस्त्रमर्च्चयेदिति ग. ।
१०. विष्णुब्रह्मावधानकानिति ख. ङ. ।
११. शस्त्रालम्भस्येति क. ग. ।
१२. रक्षां च कारयेत् सदेति ग. ।
१३. पूर्ववत् स्नापयेत् प्राच्चेदिति ग. । स्थापयेत् पूर्ववच्चाग्निमिति ङ. ।
१४. कुम्भे वा शिवमर्च्चयेदिति ग. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

देवाग्न्यात्मविभेदेन दर्व्या तं विभजेत्त्रिधा । दत्वा भागौ शिवाग्निभ्यां संरक्षेद्भागमात्मनि ॥
शरेण वर्म्मणा देयं पूर्वतो दन्तधावनम् । तस्माद्घोरशिखाभ्यां वा दक्षिणे पश्चिमे मृदं ॥३६॥
सद्योजातेन च हृदा चोत्तरे वामनीकृतम्[१] । जलं[२] वामेन शिरसा ईशे गन्धान्वितं जलम् ॥
पञ्चगव्यं पलाशादिपुटकं वै समन्ततः । ऐशान्यां कुसुमं दद्यादाग्नेय्यां दिशि रोचनां ॥४१॥
अगुरुं निर्ऋताशायां वायव्यां च चतुःसमम् । होमद्रव्याणि सर्वाणि सद्योजातैः कुशैः सह ॥
दण्डाक्षसूत्रकौपीनभिक्षापात्राणि[३] रूपिणे । कज्जलं कुङ्कुमन्तैलं शलाकां केशशोधनीं ॥४३॥
ताम्बूलं दर्पणं दद्यादुत्तरे रोचनामपि । आसनं पादुके पात्रं योगपट्टातपत्रकम् ॥४४॥
ऐशान्यामीशमन्त्रेण दद्यादीशानतुष्टये । पूर्वस्याञ्चरुकं साज्यं दद्याद् गन्धादिकं नवे ॥४५॥
पवित्राणि समादाय प्रोक्षितान्यर्घ्यवारिणा । संहितामन्त्रपूतानि नीत्वा पावकसन्निधिं॥४६॥
कृष्णाजिनादिनाऽऽच्छाद्य स्मरन् संवत्सरात्मकम् । साक्षिणं सर्वकृत्यानां गोप्तारं शिवमव्ययं॥
स्वेति हेति प्रयोगेण मन्त्रसंहितया पुनः । शोधयेच्च पवित्राणि वाराणामेकविंशतिं ॥४८॥
गृहादि वेष्टयेत्सूत्रैर्गन्धाद्यं[४] रवये ददेत् । पूजिताय समाचम्य[५] कृतन्यासः कृतार्घ्यकः ॥४६॥

नन्द्यादिभ्योऽथ[६] गन्धाख्यं[७] वास्तोश्चाथ प्रविश्य च ।
शस्त्रेभ्यो लोकपालेभ्यः स्वनाम्ना शिवकुम्भके ॥ ५० ॥

वर्द्धन्यै विघ्नराजाय गुरवे ह्यात्मने यजेत् । अथ सर्वौषधीलिप्तं धूपितं पुष्पदूर्वया ॥५१॥
आमन्त्र्य च पवित्रं[८] तत् विधायाञ्जलिमध्यगम् । आ समस्तविधिच्छिद्रपूरणे च विधिं प्रति ॥
प्रभवामन्त्रयामि त्वां त्वदिच्छावाप्तिकारिकां । तत्सिद्धिमनुजानीहि यजतश्चिदचित्पते ॥
सर्वथा सर्वदा शम्भो नमस्तेऽस्तु प्रसीद मे । आमन्त्रितोऽसि देवेश सह देव्या गणेश्वरैः ॥
मन्त्रेशैर्लोकपालैश्च सहितः परिचारकैः[९] । निमन्त्रयाम्यहन्तुभ्यं प्रभाते तु पवित्रकम् ॥५५॥
नियमञ्च करिष्यामि परमेश तवाज्ञया । इत्येवन्देवमामन्त्र्य रेचकेनामृतीकृतम् ॥५६॥
शिवान्तं मूलमुच्चार्य्य तच्छिवाय निवेदयेत् । जपं स्तोत्रं प्रणामञ्च कृत्वा शम्भुं क्षमापयेत् ॥
हुत्वा चरोस्तृतीयांशं तद्दद्दीत शिवाग्नये[१०] । दिग्वासिभ्यो दिगीशेभ्यो भूतमातृगणेभ्य उ[११]॥
रुद्रेभ्यः क्षेत्रपादिभ्यो[१२] नमः स्वाहा बलिस्त्वयं । दिङ्नागाद्यैश्च पूर्वादौ क्षेत्राय चाग्नये बलिः॥
समाचम्य विधिच्छिद्रपूरकं होममाचरेत् । पूर्णां व्याहृतिहोमञ्च कृत्वा रुन्धीत पावकं ॥
तत ओमग्नये स्वाहा स्वाहा सोमाय चैव हि । ओमग्नीषोमाभ्यां स्वाहाऽग्नये स्विष्टकृते तथा ॥

---

१. सद्योजातेन च हृदा चोत्तरे वामनीयकमिति ख. । सद्योजातेन च हृदा चोत्तरे धाम निष्फलमिति ग. ।
२. फलमिति ख. ।
३. दण्डाक्षसूत्रकौपीनतीर्थपात्राणि इति ङ. ।
४. गन्धाख्यमिति ख. ग. ।
५. पूजनार्थं समाचम्य इति ङ. ।
६. रव्यादिभ्योऽथेति ग. ।
७. गन्धाद्यमिति ङ ।
८. आमन्त्रणपवित्रमिति ख. ।
९. परिवारकैरिति ग. ङ. ।
१०. शिवाज्ञया इति ख. ।
११. भूतमातृगणेषु फडिति ङ. ।
१२. रुद्रेभ्यः क्षेत्रपालेभ्य इति ख. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इत्याहुतिचतुष्कन्तु दत्वा कुर्य्यात्तु योजनाम्। वह्निकुण्डार्च्चितं देवं मण्डलाभ्यर्च्चिते शिवे ॥
नाडीसन्धानरूपेण विधिना योजयेत्ततः। वंशादिपात्रे विन्यस्य अस्त्रञ्च हृदयन्ततः ॥६३॥
अधिरोप्य पवित्राणि कलाभिर्वाऽथ मन्त्रयेत्। षडङ्गं ब्रह्ममूलैर्व्वा हृद्वर्म्मास्त्रञ्च योजयेत् ॥
विधाय सूत्रैः संवेष्ट्य पूजयित्वाऽङ्गसम्भवैः[१]। रक्षार्थं जगदीशाय भक्तिनम्रः समर्पयेत् ॥
पूजिते पुष्पधूपाद्यैर्दत्वा सिद्धान्तपुस्तके। गुरोः पादान्तिकं गत्वा भक्त्या दद्यात् पवित्रकम् ॥
निर्गत्य वहिराचम्य गोमये मण्डलत्रये। पञ्चगव्यञ्चरुन्दन्तधावनञ्च क्रमाद् यजेत् ॥६७॥
आचान्तो मन्त्रसम्बद्धः कृतसङ्गीतजागरः। स्वपेदन्तः स्मरन्नीशं बुभुक्षुर्दर्भसंस्तरे ॥६८॥
अनेनैव प्रकारेण मुमुक्षुरपि संविशेत्। केवलम्भस्मशय्यायां सोपवासः समाहितः ॥६९॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये पवित्राधिवासनविधिर्नाम
अष्टसप्ततितमोऽध्यायः।

एकोनाशीतितमोऽध्यायः

पवित्रारोहणविधिः।

ईश्वर उवाच

अथ प्रातः समुत्थाय कृतस्नानः समाहितः। कृतसन्ध्यार्चनो मन्त्री प्रविश्य मखमण्डपम्॥१॥
समादाय पवित्राणि अविसर्जितदैवतः। ऐशान्यां भाजने शुद्धे स्थापयेत् कृतमण्डले ॥२॥
ततो विसर्ज्य देवेशं निर्म्माल्यमपनीय च। पूर्ववद् भूतले शुद्धे कृत्वाह्निकमथ द्वयम् ॥३॥
आदित्यद्वारदिक्पालकुम्भेशानौ शिवेऽनले[२]। नैमित्तिकीं सविस्तारां कुर्य्यात् पूजां विशेषतः ॥
मन्त्राणां तर्पणं प्रायश्चित्तहोमं शरात्मना[३]। अष्टोत्तरशतं कृत्वा दद्यात् पूर्णाहुतिं शनैः ॥५॥
पवित्रं भानवे दत्वा समाचम्य ददीत च। द्वारपालादिदिक्पालकुम्भवर्द्धनिकादिषु ॥६॥
सन्निधाने ततः शम्भोरुपविश्य निजासने। पवित्रमात्मने दद्याद् गणाय गुरुवह्नये ॥७॥
ओं कालात्मना त्वया देव यद्दिष्टं मामके विधौ[४]। कृतं क्लिष्टं समुत्सृष्टं कृतं गुप्तञ्च यत् कृतं ॥
तदस्तु क्लिष्टमक्लिष्टं कृतं क्लिष्टमसंस्कृतम्[५]। सर्वात्मनाऽमुना शम्भो पवित्रेण त्वदिच्छया ॥
ओं पूरयमखव्रतं नियमेश्वराय स्वाहा। आत्मतत्त्वे प्रकृत्यन्ते पालिते पद्मयोनिना ॥१०॥
मूलं लयान्तमुच्चार्य्य पवित्रेणार्च्चयेच्छिवम्। विद्यातत्त्वे च विद्यान्ते विष्णुकारणपालिते ॥
ईश्वरान्तं समुच्चार्य्य पवित्रमधिरोपयेत्। शिवान्ते शिवतत्त्वे च रुद्रकारणपालिते ॥१२॥

---

१. पूजयित्वा ततः शिवमिति ग.। पूजयित्वाऽथ सञ्चरैरिति ङ.।
२. आदित्यद्वारदिक्पालान् स्कन्देशानौ शिवेऽनले इति ङ.।
३. शराणुनेति घ. ङ.।
४. प्रभुस्त्वं मामके विधौ इति ङ.।
५. हुतं यच्च वषट्कृतमिति ङ.।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शिवान्तं मन्त्रमुच्चार्य्य तस्मै देवं पवित्रकम् । सर्वकारणपालेषु शिवमुच्चार्य सुव्रत[1] ॥१३॥
मूलं लयान्तमुच्चार्य दद्याद् गङ्गावतारकम्[2] । आत्मविद्याशिवैः प्रोक्तं मुमुक्षूणां पवित्रकम् ॥
विनिर्दिष्टं बुभुक्षूणां शिवतत्त्वात्मभिः क्रमात् । स्वाहान्तं वा नमोऽन्तं वा मन्त्रमेषामुदीरयेत् ॥
ओं हां आत्मतत्त्वाधिपतये शिवाय स्वाहा । ओं हां विद्यातत्त्वाधिपतये शिवाय स्वाहा ।
ओं हौं शिवतत्त्वाधिपतये शिवाय स्वाहा । नत्वा गङ्गावतारन्तु प्रार्थयेत्तं कृताञ्जलिः ।
त्वङ्गतिः सर्व्वभूतानां संस्थितिस्त्वञ्चराचरे ॥ १६ ॥
अन्तश्चारेण भूतानां[3] द्रष्टा त्वं परमेश्वर । कर्मणा मनसा वाचा त्वत्तो नान्या गतिर्म्मम ॥
मन्त्रहीनं क्रियाहीनं द्रव्यहीनञ्च यत् कृतम् । जपहोमार्च्चनैर्हीनं कृतं नित्यं मया तव ॥१८॥
अकृतं वाक्यहीनं च तत् पूरय महेश्वर[4] । सपूतत्वं परेशान[5] पवित्रं पापनाशनम् ॥१९॥
त्वया पवित्रितं सर्वं जगत् स्थावरजङ्गमम् । खण्डितं यन्मया देव व्रतं वैकल्पयोगतः ॥२०॥
एकीभवतु तत् सर्वं तवाज्ञासूत्रगुम्फितम् । जपं निवेद्य देवस्य भक्त्या स्तोत्रं विधाय च ॥
नत्वा तु गुरुणादिष्टं गृह्णीयान्नियमन्नरः । चतुर्म्मासं त्रिमासं वा त्र्यहमेकाहमेव च ॥२२॥
प्रणम्य क्षमयित्वेशं गत्वा कुण्डान्तिकं व्रती । पावकस्थे शिवेऽप्येवं पवित्राणां चतुष्टयम् ॥
समारोप्य समभ्यर्च्चर्य पुष्पधूपाक्षतादिभिः । अन्तर्बलिं पवित्रञ्च रुद्रादिभ्यो निवेदयेत् ॥
प्रविश्यान्तः शिवं स्तुत्वा सप्रणामं क्षमापयेत् । प्रायश्चित्तकृतं होमं कृत्वा हुत्वा च पायसं ॥
शनैः पूर्णाहुतिं दत्वा वह्निस्थं विसृजेच्छिवं । होमं व्याहृतिभिः कृत्वा रुन्ध्यान्निष्ठुरयाऽनलं ॥
अग्न्यादिभ्यस्ततो दद्यादाहुतीनां चतुष्टयं । दिक्पतिभ्यस्ततो दद्यात्[6] सपवित्रं बहिर्बलिं ॥
सिद्धान्तपुस्तके दद्यात् सप्रमाणं पवित्रकं ॥

ओं हां भूः स्वाहा । ओं हां भुवः स्वाहा । ओं हां स्वः स्वाहा । ओं हां भुर्भुवः स्वः स्वाहा ।

होमं व्याहृतिभिः कृत्वा दत्वाऽऽहुतिचतुष्टयं ॥ २८ ॥

ओं हां अग्नये स्वाहा । ओं हां सोमाय स्वाहा । ओं हां अग्नीषोमाभ्यां स्वाहा । ओं हां अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा ।

गुरुं शिवमिवाभ्यर्च्य वस्त्रभूषादिविस्तरैः । समग्रं सफलं तस्य क्रियाकाण्डादि वार्षिकं ॥
यस्य तुष्टो गुरुः सम्यगित्याह परमेश्वरः । इत्थं गुरोः समारोप्य हृदालम्बिपवित्रकं ॥३०॥
द्विजादीन् भोजयित्वा तु भक्त्या वस्त्रादिकं ददेत् । दानेनानेन देवेश प्रीयतां मे सदाशिवः ॥
भक्त्या स्नानादिकं प्रातः कृत्वा शम्भोः समाहरेत् ।
पवित्राण्यष्टपुष्पैस्तं पूजयित्वा विसर्ज्जयेत् ॥ ३२ ॥
नित्यं नैमित्तिकं कृत्वा विस्तरेण यथा पुरा । पवित्राणि समारोप्य प्रणम्याग्नौ शिवं यजेत् ॥

---

१. सर्वतत्त्वेषु सुव्रत इति ख. ग. ङ. ।
२. दद्याद्गङ्गावतारकमिति ख. ।
३. अन्तश्चर त्वं भूतानामिति ग. ।
४. परिपूर्णं करोतु मे इति ग. ।
५. अमृतस्त्वं परेशान इति ग. ।
६. दिक्पालेभ्यस्ततो दत्वेति ख. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रायश्चित्तं ततोऽस्त्रेण हुत्वा[१] पूर्णाहुतिं यजेत् । भुक्तिकामः शिवायाथ कुर्य्यात् कर्म्मसमर्पणं ॥
त्वत्प्रसादेन कर्म्मेदं ममास्तु फलसाधकं । मुक्तिकामस्तु कर्म्मेदं माऽस्तु मे नाथ बन्धकं ॥
वह्निस्थं नाडीयोगेन शिवं संयोजयेच्छिवे । हृदि न्यस्याग्निसङ्घातं पावकं च विसर्जयेत् ॥
समाचम्य प्रविश्यान्तः कुम्भानुगतसंवरान् । शिवे संयोज्य साक्षेपं क्षमस्वेति विसर्जयेत् ॥
विसृज्य लोकपालादीनादायेशात् पवित्रकं । सति चण्डेश्वरे पूजां कृत्वा दत्वा पवित्रकं ॥३८॥
तन्निर्माल्यादिकं तस्मै सपवित्रं समर्पयेत । अथवा स्थण्डिले चण्डं विधिना पूर्ववद्यजेत् ॥
यत् किञ्चिद्वार्षिकं कर्म्म कृतं न्यूनाधिकं मया । तदस्तु परिपूर्णं मे चण्ड नाथ तवाज्ञया ॥

इति विज्ञाप्य देवेशं नत्वा स्तुत्वा विसर्जयेत् ।
त्यक्तनिर्म्माल्यकः शुद्धः स्नापयित्वा शिवं यजेत् ॥
पञ्चयोजनसंस्थोऽपि पवित्रं गुरुसन्निधौ ॥ ४१ ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये पवित्रारोहणं नाम
एकोनाशीतितमोऽध्यायः ।

अशीतितमोऽध्यायः

दमनकारोहणविधिः ।

ईश्वर उवाच

वक्ष्ये दमनकारोहविधिं पूर्ववदाचरेत् । हरकोपात् पुरा जातो भैरवो दमिताः सुराः ॥१॥
तेनाथ शप्तो विटपो भवेति त्रिपुरारिणा । प्रसन्नेनेरितं चेदं पूजयिष्यन्ति ये नराः ॥२॥
परिपूर्णफलं तेषां नान्यथा ते भविष्यति । सप्तम्यां वा त्रयोदश्यां दमनं संहितात्मभिः ॥३॥
सम्पूज्य बोधयेद् वृक्षं भववाक्येन मन्त्रवित् । हरप्रसादसम्भूत त्वमत्र सन्निधीभव ॥४॥

शिवकार्यं समुद्दिश्य नेतव्योऽसि शिवाज्ञया ।
गृहेऽप्यामन्त्रणं कुर्य्यात् सायाह्ने चाधिवासनं ॥ ५ ॥

यथाविधि समभ्यर्च्य सूर्य्यशङ्करपावकान् । देवस्य पश्चिमे मूलं दद्यात्तस्य मृदा युतं ॥६॥
वामेन शिरसा वाऽथ नालं धात्रीं तथोत्तरे । दक्षिणे भग्नपत्रञ्च प्राच्यां पुष्पञ्च धारणं ॥

पुटिकास्थं फलं मूलमथैशान्यां यजेच्छिवं ।
पञ्चाङ्गमञ्जलौ कृत्वा आमन्त्र्य शिरसि न्यसेत् ॥ ८ ॥

आमन्त्रितोऽसि देवेश प्रातःकाले[२] मया प्रभो । कर्त्तव्यस्तपसो लाभः पूर्णं सर्वं तवाज्ञया ॥
मूलेन शेषं पात्रस्थं पिधायाथ पवित्रकं । प्रातः स्नात्वा जगन्नाथं गन्धपुष्पादिभिर्यजेत्[३] ॥

---

१. ततोऽस्त्रेण कृत्वेति घ. । २. देवेश पूजाकाले इति ग. ।
३. गन्धपुष्पादिनार्च्चयेदिति ख. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नित्यं नैमित्तिकं कृत्वा दमनैः पूजयेत्ततः । शेषमञ्जलिमादाय आत्मविद्याशिवात्मभिः ॥
मूलाद्यैरीश्वरान्तैश्च चतुर्थाञ्जलिना ततः ।
ओं ह्रौं मखेश्वराय मखं पूरय पूरय शूलपाणये नमः ॥
शिवं वह्निं च सम्पूज्य गुरुं प्राच्यार्थ बोधयेत् ॥ १२ ॥
भगवन्नतिरिक्तं वा हीनं वा यन्मया कृतं । सर्वं तदस्तु सम्पूर्णं यच्च दामनकं मम ॥
सकलं चैत्रमासोत्थं फलं प्राप्य दिवं व्रजेत् ॥ १३ ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये दमनकारोहणविधिर्नाम
अशीतितमोऽध्यायः ।

एकाशीतितमोऽध्यायः

समयदीक्षाविधानम् ।

ईश्वर उवाच

वक्ष्यामि भोगमोक्षार्थं दीक्षां पापक्षयङ्करीं । मलमायादिपाशानां विश्लेषः क्रियते यया ॥१॥
ज्ञानञ्च जन्यते शिष्ये सा दीक्षा भुक्तिमुक्तिदा । विज्ञातकलनामैको द्वितीयः प्रलयाकलः[१] ॥
तृतीयः सकलः शास्त्रेऽनुग्राह्यस्त्रिविधो मतः । तत्राद्यो मलमात्रेण मुक्तोऽन्यो मलकर्मभिः ॥३॥
कलादिभूमिपर्य्यन्तं स्तवैस्तु सकलो युतः । निराधाराऽथ साधारा दीक्षाऽपि द्विविधा मता ॥
निराधारा द्वयोस्तेषां साधारा सकलस्य तु । आधारनिरपेक्षेण क्रियते शम्भुचर्य्यया ॥५॥
तीव्रशक्तिनिपातेन निराधारेति सा स्मृता । आचार्य्यमूर्तिमास्थाय मायातीव्रादिभेदया ॥६॥
शक्त्या यां कुरुते शम्भुः सा साधिकरणोच्यते । इयं चतुर्विधा प्रोक्ता सवीजा वीजवर्जिता ॥
साधिकारानधिकारा यथा तदभिधीयते । समयाचारसंयुक्ता सवीजा जायते नृणां ॥८॥
निर्वीजा त्वसमर्थानां समयाचारवर्जिता । नित्ये नैमित्तिके काम्ये यतः स्यादधिकारिता ॥६॥
साधिकारा भवेद्दीक्षा साधकाचार्य्ययोरतः । निर्वीजा दीक्षितानान्तु यदास मम पुत्रयोः ॥१०॥
नित्यमात्राधिकारत्वाद्दीक्षा निरधिकारिका । द्विविधेयं द्विरूपा हि प्रत्येकमुपजायते ॥११॥
एका क्रियावती तत्र कुण्डमण्डलपूर्विका । मनोव्यापारमात्रेण या सा ज्ञानवती मता ॥१२॥
इत्थं लब्धाधिकारेण दीक्षाऽऽचार्य्येण साध्यते ।
स्कन्ददीक्षां गुरुः कुर्य्यात् कृत्वा नित्यक्रियां ततः[२] ॥ १३ ॥
प्रणवार्घ्यकराम्भोजकृतद्वाराधिपार्च्चनः । विघ्नानुत्सार्य्य देहल्यां न्यस्यास्त्रं स्वासने स्थितः ॥
कुर्वीत भूतसंशुद्धिं मन्त्रयोगं यथोदितं । तिलतण्डुलसिद्धार्थकुशदूर्वाक्षतोदकं ॥१५॥
सयवक्षीरनीरञ्च विशेषार्घ्यमिदन्ततः । तदम्बुना द्रव्यशुद्धिं तिलकं स्वासनात्मनोः ॥१६॥

---

१. प्रलयानल इति ख. । प्रलयात्मक इति ङ. । २. कृतनित्यक्रियाद्वयं इति ख. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पूजनं मन्त्रशुद्धिञ्च पञ्चगव्यञ्च पूर्ववत् । लाजचन्दनसिद्धार्थभस्मदूर्वाक्षतं[1] कुशान् ॥१७॥
विकिरान् शुद्धलाजांस्तान् सधूपानस्त्रमन्त्रितान् ।
शस्त्राम्बु[2] प्रोक्षितानेतान् कवचेनावगुण्ठितान् ॥ १८ ॥
नानाप्रहरणाकारान् विघ्नौघविनिवारकान् । दर्भाणान्तालमानेन कृत्वा षट्त्रिंशता दलैः ॥
सप्तजप्तं शिवास्त्रेण वेर्णी बोधासिमुत्तमं । शिवमात्मनि विन्यस्य सृष्ट्याधारमभीप्सितं ॥
निष्कलं च शिवं न्यस्य शिवोऽहमिति भावयेत् ।
उष्णीषं शिरसि न्यस्य अलं कुर्यात्स्वदेहकं ॥ २१ ॥
गन्धमण्डनकं स्वीये विदध्याद्दक्षिणे करे । विधिनाऽत्रार्चयेदीशमित्थं स्याच्छिवमस्तकं ॥
विन्यस्य शिवमन्त्रेण भास्वरं निजमस्तके । शिवादभिन्नमात्मानं कर्त्तारं भावयेद्यथा ॥२३॥
मण्डले कर्म्मणां साक्षी कलशे यज्ञरक्षकः । होमाधिकरणं वह्नौ शिष्ये पाशविमोचकः[3] ॥२४॥
स्वात्मन्यनुगृहीतेति षडाधारो य ईश्वरः । सोऽहमेवेति कुर्वीत भावं स्थिरतरं पुनः ॥२५॥
ज्ञानखड्गकरः स्थित्वा नैर्ऋत्याभिमुखो नरः । सार्घ्याम्बुपञ्चगव्याभ्यां प्रोक्षयेद्यागमण्डपं ॥
चतुष्पथान्तसंस्कारैः संस्कुर्य्यादीक्षणादिभिः । विक्षिप्य विकिरांस्तत्र कुशकूर्चोपसंहरेत् ॥
तानीशदिशि वर्द्धन्यामासनायोपकल्पयेत् । नैर्ऋते वास्तुगीर्वाणान् द्वारे लक्ष्मीं प्रपूजयेत् ॥
आप्ये रत्नैः पूरयन्तीं हृदा मण्डपरूपिणीं । साम्बुवस्त्रे सरत्ने च धान्यस्थे पश्चिमानने ॥२६॥
ऐशे कुम्भे यजेच्छम्भुं शक्तिं कुम्भस्य दक्षिणे । पश्चिमस्यान्तु सिंहस्थां वर्द्धनीं खड्गरूपिणीं ॥
दिक्षु शक्रादिदिक्पालान्विष्णवन्तान् प्रणवासनान् ।
वाहनायुधसंयुक्तान् हृदाऽभ्यर्च्य स्वनामभिः ॥ ३१ ॥
प्रथमन्तां समादाय कुम्भस्याग्राभिगामिनीं । अविच्छिन्नपयोधारां भ्रामयित्वा प्रदक्षिणं ॥३२॥
शिवाज्ञां लोकपालानां श्रावयेन्मूलमुच्चरन् । संरक्षेत यथायोगं कुम्भं धृत्वाऽथ तां धरेत् ॥३३॥
ततः स्थिरासने कुम्भे साङ्गं सम्पूज्य शङ्करं । विन्यस्य शोध्यमध्वानं वर्द्धन्यामस्त्रमर्च्चयेत् ॥

ओं हः अस्त्रासनाय हूं फट् । ओं ओं अस्त्रमूर्त्तये नमः । ओं हूं फट् पाशुपतास्त्राय नमः । ओं ओं हृदयाय हूं फट् नमः । ओं श्रीं शिरसे हूं फट् नमः । ओं यं शिखायै हूं फट् नमः । ओं गूं कवचाय हूं फट् नमः । ओं फट् अस्त्राय हूं फट् नमः[4] ।
चतुर्वक्त्रं सदंष्ट्रञ्च स्मरेदस्त्रं सशक्तिकं । समुद्गरत्रिशूलासिं सूर्य्यकोटिसमप्रभं ॥३५॥

---

१. भस्मदूर्वाक्षतामिति ङ । २. अस्त्राम्बु इति ङ. ।
३. शिष्ये पापविमोचक इति ङ. ।
४. ओं अं हः अस्त्रासनाय हं फट् । ओं अं अस्त्रमूर्त्तये नमः । ओं पशूं हुं फट् पाशुपतास्त्राय नमः । ओं हृदयाय हं फट् नमः । ओं श्रीं शिरसे हूं फट् नमः । ओं मं शिखायै फट् नमः । ओं अस्त्राय फट् हूं फट् नमः । इति इति ग. । ओं हः अस्त्रासनाय क्रूं फट् । ओं ओं अस्त्रमूर्त्तये नमः । ओं स्वां स्वं क्रूं फट् पाशुपतास्त्राय स्वाहा । ओं ओं हृदयाय क्रूं फट् नमः । ओं पं शिखायै क्रूं फट् नमः । ओं खं कवचाय क्रूं फट् नमः । ओं हं फट् अस्त्राय फट् नमः । इति ङ. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भगलिङ्गसमायोगं विदध्याल्लिङ्गमुद्रया। अङ्गुष्ठेन स्पृशेत् कुम्भं हृदा मुष्ट्यास्त्रवर्द्धनीं ॥३६॥
भुक्तये मुक्तये त्वादौ मुष्टिना वर्द्धनीं स्पृशेत् । कुम्भस्य मुखरक्षार्थं ज्ञानखड्गं समर्पयेत् ॥
शस्त्रञ्च मूलमन्त्रस्य शतं कुम्भे निवेशयेत् । तद्दशांशेन वर्द्धन्यां रक्षां विज्ञापयेत्ततः ॥३८॥
यथेदं कृतयत्नेन भगवन्मखमन्दिरं । रक्षणीयं जगन्नाथ सर्वाध्वरधर त्वया ॥३९॥
प्रणवस्थं चतुर्बाहुं वायव्ये गणमर्च्चयेत्[१] । स्थण्डिले शिवमभ्यर्च्य सार्घ्यकुण्डं व्रजेन्नरः ॥
निविष्टो मन्त्रतृप्त्यर्थमर्घ्यगन्धघृतादिकं । वामेऽसव्ये तु विन्यस्य समिद्दर्भतिलादिकं ॥४१॥
कुण्डवह्निस्त्रुगाज्यादि प्राग्वत् संस्कृत्य भावयेत् । मुख्यतामूर्द्ध्ववक्त्रस्य हृदि वह्नौ शिवं यजेत् ॥

स्वमूर्त्तौ शिवकुम्भे च स्थण्डिले त्वग्निशिष्ययोः ।
सृष्टिन्यासेन विन्यस्य शोध्याध्वानं यथाविधि ॥४३॥

कुण्डमानं मुखं ध्यात्वा हृदाहुतिभिरीप्सितं । वीजानि सप्तजिह्वानामग्नेर्होमाय भण्यते ॥४४॥
विरेफावन्तिमौ वर्णौ रेफषष्ठस्वरान्वितौ । इन्दुविन्दुशिखायुक्तौ जिह्वावीजानुपक्रमात् ॥४५॥
हिरण्या कनका रक्ता कृष्णा तदनु सुप्रभा । अतिरिक्ता बहुरूपा रुद्रेन्द्राग्न्याप्यदिङ्मुखा ॥
क्षीरादिमधुरैर्होमं कुर्य्याच्छान्तिकपौष्टिके । अभिचारे तु पिण्याकसक्तुकञ्चुककाञ्जिकैः ॥
लवणै राजिकातक्रकटुतैलैश्च कण्टकैः । समिद्भिरपि वक्राभिः क्रुद्धो भाष्याणुना यजेत् ॥४८॥
कदम्बकलिकाहोमाद्यक्षिणी सिद्ध्यति ध्रुवं । बन्धूककिंशुकादीनि वश्याकर्षाय होमयेत् ॥४९॥
विल्वं राज्याय लक्ष्म्यर्थं पाटलांश्चम्पकानपि । पद्मानि चक्रवर्तित्वे भक्ष्यभोज्यानि सम्पदे ॥
दूर्वा व्याधिविनाशाय सर्वसत्त्ववशीकृते । प्रियङ्गुपाटलीपुष्पं चूतपत्रं ज्वरान्तकं ॥५१॥

मृत्युञ्जयो मृत्युजित् स्याद् वृद्धिः स्यात्तिलहोमतः ।
रुद्रशान्तिः सर्व्वशान्त्यै अथ प्रस्तुतमुच्यते ॥ ५२ ॥

आहुत्यष्टशतैर्मूलमङ्गानि तु दशांशतः । सन्तर्पयेत मूलेन दद्यात् पूर्णां यथा पुरा ॥५३॥
तथा शिष्यप्रवेशाय प्रतिशिष्यं शतं जपेत् । दुर्न्निमित्तापसाराय सुनिमित्तकृते तथा ॥५४॥
शतद्वयञ्च होतव्यं मूलमन्त्रेण पूर्व्ववत् । मूलाद्यष्टास्त्रमन्त्राणां स्वाहान्तैस्तर्पणं सकृत् ॥५५॥
शिखासम्पुटितैर्वीजैर्ह्रूं फडन्तैश्च[२] दीपनं । ओं ह्रौं शिवाय स्वाहेत्यादिमन्त्रैश्च तर्पणं ॥५६॥

ओं ह्रूं ह्रौं ह्रीं शिवाय ह्रूं[३] फडित्यादिदीपनं ।
ततः शिवाम्भसा स्थालीं क्षालितां वर्म्मगुण्ठितां[४] ॥ ५७ ॥

चन्दनादिसमालब्धां बध्नीयात् कटकं गले । वर्म्मास्त्रजप्तसद्दर्भपत्राभ्यां चरुसिद्धये ॥५८॥
वर्म्माद्यैरासने[५] दत्ते सार्द्धेन्दुकृतमण्डले[६] । न्यस्तायां मूर्त्तिभूतायां भावपुष्पैः शिवं यजेत् ॥

---

१. वायव्ये कालमर्च्चयेदिति ग. । २. हुं फडन्तैश्चेति ख. ।
३. ओं हूं ह्रौं हूं शिवाय हूमिति ख. ओं क्षं ह्रौं क्षं शिवाय क्षूं इति ङ. ।
४. घर्मगुण्ठितामिति ख. । ५. घर्म्माद्यैरासने इति क. ।
६. सार्द्दाम्बुकृतमण्डले इति ख. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वस्त्रबद्धमुखायां वा स्थाल्यां पुष्पैर्वर्हिर्भवैः ।
चुल्ल्यां पश्चिमवक्त्रायां शुद्धायां वीक्षणादिभिः ।। ६० ।।

न्यस्ताहङ्कारबीजायां न्यस्तायां कुण्डदक्षिणे । धर्म्माधर्म्मशरीरायां जप्तायां मानुषात्मना ।।
स्थालीमारोपयेदस्त्रजप्तां गव्याम्बुमार्जितां । गव्यं पयोऽस्त्रसंशुद्धं प्रसादशतमन्त्रितं ।।६२।।
तण्डुलान् श्यामकादीनां निक्षिपेत्तत्र तद्यथा । एकशिष्यविधानाय तेषां प्रसृतिपञ्चकं ।।६३।।
प्रसृतिं प्रसृतिं पश्चाद्वर्द्धयेद् द्वयादिषु क्रमात । कुर्य्याच्चानलमन्त्रेण पिधानं कवचाणुना ।।
शिवाग्नौ मूलमन्त्रेण पूर्वास्यश्चरुकं पचेत् । सस्विन्ने तत्र तच्चुल्ल्यां श्रुवमापूर्य्य सर्पिषा ।।
स्वाहान्तैः संहितामन्त्रैर्हुत्वा तप्ताभिधारणं । संस्थाप्य मण्डले स्थालीं सदर्भेऽस्त्राणुना कृते ।।
प्रणवेन पिधायास्यां तद्देहलेपनं हृदा । सुशीतलो भवत्येवं प्राप्य शीताभिधारणं ।।६७।।
विदध्यात्संहितामन्त्रैः शिष्यं प्रति सकृत् सकृत । धर्म्माद्यासनके हुत्वा[1] कुण्डमण्डलपश्चिमे ।।
सम्पातञ्च स्रुचा हुत्वा शुद्धिं संहितया चरेत । चरुकं सकृदालभ्य तयैव वषडन्तया ।।६९।।
धेनुमुद्रामृतीभूतं स्थण्डिलेशान्तिकं नयेत्[2] । साज्यभागं स्वशिष्याणां भागो देवाय वह्नये।।७०।।
कुर्य्यात्तु लोकपालादेः समध्वाज्यमिदं त्रयं । नमोऽन्तेन हृदा दद्यात्तेनैवाचमनीयकं[3] ।।७१।।
साज्यं मन्त्रशतं हुत्वा दद्यात् पूर्णां यथाविधि । मण्डलं कुण्डतः पूर्वे मध्ये वा शम्भुकुम्भयोः ।।
रुद्रमातृगणादीनां निर्वर्त्यान्तर्वलिं हृदा । शिवमध्येऽप्यलब्धाज्ञो विधायैकत्वभावनं ।।७३।।
सर्वज्ञतादियुक्तोऽहं समन्ताच्चोपरि स्थितः । ममांशो योजनास्थानमधिष्ठाताऽहमध्वरे ।।७४।।
शिवोऽहमित्यहङ्कारी निष्क्रमेद् यागमण्डपात् । न्यस्तपूर्वाग्रसन्धर्भे शस्त्राणुकृतमण्डले ।।७५।।
प्रणवासनके शिष्यं शुक्लवस्त्रोत्तरीयकं । स्नातञ्चोदङ्मुखं मुक्त्यै पूर्ववक्त्रन्तु भुक्तये ।।७६।।
ऊद्र्ध्वं कायं समारोप्य पूर्वास्यं प्रविलोकयेत् । चरणादिशिखां यावन्मुक्तौ भुक्तौ विलोमतः ।।
चक्षुषा सप्रसादेन शैवं धाम विवृण्वता । अस्त्रोदकेन सम्प्रोद्य मन्त्राम्बुस्नानसिद्धये।।७८।।
भस्मस्नानाय विघ्नानां शान्तये पापभित्तये[4] । सृष्टिसंहारयोगेन ताडयेदस्त्रभस्मना ।।७९।।
पुनरस्त्राम्बुना प्रोक्ष्य सकलीकरणाय तं । नाभेरूद्र्ध्वं कुशाग्रेण मार्जनीयास्त्रमुच्चरन् ।।८०।।
त्रिधाऽऽलभेत तन्मूलैरघमर्षाय नाभ्यधः । द्वैविध्याय च पाशानां आलभेत शराणुना ।।
तच्छरीरे शिवं साङ्गं सासनं विन्यसेत्ततः । पुष्पादिपूजितस्यास्य नेत्रे नेत्रेण वा हृदा । ८२।।
बध्वामन्त्रितवस्त्रेण सितेन सदशेन च । प्रदक्षिणक्रमादेनं प्रवेश्य शिवदक्षिणं ।।८३।।
सवस्त्रमासनं दद्यात् यथावर्णं[5] निवेदयेत् । संहारमुद्रयात्मानं मूर्त्या तस्य हृदम्बुजे ।।८४।।
निरुध्य शोधिते काये न्यासं कृत्वा तमर्चयेत् । पूर्व्वाननस्य शिष्यस्य मूलमन्त्रेण मस्तके ।।
शिवहस्तं प्रदातव्यं रुद्रेशपददायकं । शिवसेवाग्रहोपायं दत्तहस्तं शिवाणुना[6] ।।८६।।

---

१. धर्म्माद्यासनके धृत्वेति ख. ग. ।
२. स्थण्डिलोपान्तिकं नयेदिति ङ. ।
३. तेनैवाचमनीचयमिति क. ख. ग. ।
४. पाशभित्तये इति ग. ।
५. सुवर्णञ्चेति ग. ।
६. शिवात्मनेति ख. ग. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शिवे प्रक्षेपयेत् पुष्पमपनीयार्च्चकान्तरं[1] । तत्पात्रस्थानमन्त्राढ्यं शिवदेवगणानुगं ॥८७॥
विप्रादीनां क्रमान्नाम कुर्य्याद्वा स्वेच्छया गुरुः । प्रणतिं कुम्भवर्द्धन्योः कारयित्वाऽनलान्तिकं ॥
सदक्षिणासने तद्वत्[2]सौम्यास्यमुपवेशयेत । शिष्यदेहविनिष्क्रान्तां सुषुम्णामिव चिन्तयेत् ॥
निजविग्रहलीनाञ्च दर्भमूलेन मन्त्रितं । दर्भाग्रं दक्षिणे तस्य विधाय करपल्लवे ॥९०॥
तन्मूलमात्मजङ्घायामग्रञ्चेति शिखिध्वजे । शिष्यस्य हृदयं गत्वा रेचकेन शिवाणुना[3] ॥
पूरकेण समागत्य स्वकीयं हृदयान्तरं । शिवाग्निना पुनः कृत्वा नाडीसन्धानमीदृशं ॥९२॥
हृदा तत्सन्निधानार्थञ्जुहुयादाहुतित्रयं । शिवहस्तस्थिरत्वार्थं[4] शतं मूलेन होमयेत् ॥
इत्थं समयदीक्षायां भवेद्योग्यो भवार्च्चने ॥ ९३ ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये समयदीक्षाकथनं नाम
एकाशीतितमोऽध्यायः ।

द्व्यशीतितमोऽध्यायः

संस्कारदीक्षाकथनम् ।

ईश्वर उवाच

वक्ष्ये संस्कारदीक्षाया विधानं शृणु षण्मुख । आवाहयेन्महेशस्य वह्निस्थस्य शिरो हृदि ॥
संश्लिष्टौ तौ समभ्यर्च्य सन्तर्प्य हृदयात्मना । ततोः सन्निधये दद्यात्तेनैवाहुतिपञ्चकं ॥२॥
कुसुमेनास्त्रलिप्तेन[5] ताडयेत्तं हृदा शिशुं । प्रस्फुरत्तारकाकारं चैतन्यं तत्र भावयेत् ॥३॥
प्रविश्य तत्र हुङ्कारमुक्तं रेचकयोगतः । संहारिण्या तदाकृष्य पूरकेण हृदि न्यसेत् ॥४॥
ततो वागीश्वरीयौनौ मुद्रयोद्भवसञ्ज्ञया । हृत्सम्पुटितमन्त्रेण[6] रेचकेन त्रिनिक्षिपेत् ॥५॥
ओं हां हां हां आत्मने नमः[7] ।

जाज्वल्यमाने निर्द्धूमे जुहुयादिष्टसिद्धये । अप्रवृद्धे सधूमे तु होमो वह्नौ न सिध्यति ॥६॥
स्निग्धः प्रदक्षिणावर्त्तः सुगन्धिः शस्यतेऽनलः । विपरीतस्फुलिङ्गी च भूमिस्पर्शः प्रशस्यते ॥
इत्येवमादिभिश्चिह्नैर्हुत्वा शिष्यस्य कल्मषं । पापभक्षणहोमेन[8] दहेद्वा तं भवात्मना ॥८॥
द्विजत्वापादनार्थाय तथा रुद्रांशभावने । आहारबीजसंशुद्धौ[9] गर्भाधानाय संस्थितौ ॥९॥
सीमन्ते जन्मतो नामकरणाय च होमयेत् । शतानि पञ्च मूलेन वौषडादिदशांशतः ॥१०॥

---

१. अपनीयाधिकाम्बरं इति घ. ।
२. सदक्षिणासनं तत्रेति ङ. ।
३. शिवात्मनेति ख. ग. ।
४. शिवहस्ते च स्थित्यर्थमिति ग. ।
५. कुसुमेनाष्टजप्तेनेति ङ. ।
६. हृत्सम्पुटात्ममन्त्रेणेति ङ. ।
७. ओं हां हां आत्मने नम इति ग. घ. । ओं हां आत्मने नम इति ङ. ।
८. पापक्षयेण होमेनेति ङ. ।
९. बीजसंसिद्धौ इति ङ. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शिथिलीभूतबन्धस्य शक्तावुत्कर्षणं च यत् । आत्मनो रुद्रपुत्रत्वे गर्भाधानं तदुच्यते ॥
स्वान्तत्र्यात्मगुणव्यक्तिरिह पुंसवनं मतं । मायात्मनोर्विवेकेन ज्ञानं सीमन्तवर्द्धनं ॥१२॥
शिवादितत्त्वशुद्धेस्तु स्वीकारो जननं मतं । बोधनं यच्छिवत्वेन शिवत्वार्हस्य नो मतं[1] ॥१३॥
संहारमुद्रयात्मानं स्फुरद्वह्निकणोपमं । विदधीत समादाय निजे हृदयपङ्कजे ॥१४॥
ततः कुम्भकयोगेन मूलमन्त्रमुदीरयेत् । कुर्य्यात् समवशीभावं तदा च शिवयोर्हृदि ॥१५॥
ब्रह्मादिकारणात्यागक्रमाद्रेचकयोगतः । नीत्वा शिवान्तमात्मानमादायोद्भवमुद्रया ॥१६॥
हृतसम्पुटितमन्त्रेण रेचकेन विधानवित् । शिष्यस्य हृदयाम्भोजकर्णिकायां विनिक्षिपेत् ॥१७॥
पूजां शिवस्य वह्नेश्च गुरुः कुर्य्यात्तदोचितां । प्रणतिश्चात्मने शिष्यं समयान् श्रावयेत्तथा ॥१८॥
देवं न निन्देच्छास्त्राणि निर्म्माल्यादि न लङ्घयेत् । शिवाग्निगुरुपूजा च कर्त्तव्या जीविताविधि ॥
बालबालिशवृद्धस्त्रीभोगभुग्व्याधितात्मनां । यथाशक्ति ददीतार्थं[2] समर्थस्य समग्रकान् ॥२०॥
भूताङ्गानि जटाभस्मदण्डकौपीनसंयमान् । ईशानाद्यैर्हृदाद्यैर्वा परिजप्य यथाक्रमात् ॥२१॥
स्वाहान्तसंहितामन्त्रैः पात्रेष्वारोप्य पूर्ववत । सम्पादितद्रुतं हुत्वा स्थण्डिलेशाय दर्शयेत् ॥
रक्षणाय घटाधस्तादारोप्य क्षणमात्रकं । शिवादाज्ञां समादाय ददीत व्रतिने गुरुः ॥२३॥
एवं समयदीक्षायां विशिष्टायां विशेषतः । वह्निहोमागमज्ञानयोग्यः सञ्जायते शिशुः ॥२४॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये समयदीक्षाकथनं नाम द्व्यशीतितमोऽध्यायः ।

त्र्यशीतितमोऽध्यायः

निर्वाणादीक्षाकथनम् ।

ईश्वर उवाच

अथ निर्वाणदीक्षायां कुर्य्यान्मूलादिदीपनं । पाशबन्धनशक्त्यर्थं ताडनादिकृतेन वा ॥१॥
एकैकया तदाहुत्या प्रत्येकं तत्त्रयेण वा । वीजगर्भशिखार्द्धन्तु हूंफडन्तध्रुवादिना[3] ॥२॥
ओं हूं ह्रौं ह्रौं हूं फडिति[4] मूलमन्त्रस्य दीपनं ।
ओं हूं ह्रौं ह्रौं हूं फडिति[5] हृदय एवं शिरोमुखे ॥ ३ ॥
प्रत्येकं दीपनं कुर्य्यात सर्व्वस्मिन् क्रूरकर्म्मणि । शान्तिके पौष्टिके चास्य वषडन्तादिनाणुना[6] ॥
वषड्वौषट्समोपेतैः सर्वकाम्योपरि स्थितैः । हवनं संवरैः कुर्य्यात् सर्वत्राप्यायनादिषु ॥५॥

---

१. वर्द्धनमिति घ. । २. ददीतान्नमिति घ. ।
३. ह्रीं फडन्तध्रुवादिना इति ख. ।
४. ओं हूं ह्रौं ह्रौं हूं फडिति ख. । ओं हूं ह्रो ह्रो हूं फडिति ग. ।
५. ओं हूं ह्रां ह्रां हूं फडिति ख. । ओं हं ह्रीं हं हं फडिति ग. ।
६. वषडन्तादिनात्मनेति ख. ग. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ततः स्वसव्यभागस्थं मण्डले शुद्धविग्रहं । शिष्यं सम्पूज्य तत् सूत्रं सुषुम्णेति विभावितं ॥६॥
मूलेन तच्छिखाबन्धं पादाङ्गुष्ठान्तमानयेत् । संहारेण मुमुक्षोस्तु बध्नीयाच्छिष्यकायके ॥७॥
पुंसस्तु दक्षिणे भागे वामे नार्य्या नियोजयेत् । शक्तिं च शक्तिमन्त्रेण पूजितान्तस्य मस्तके ॥
संहारमुद्रयाऽऽदाय सूत्रं तेनैव योजयेत् । नाडीन्त्वादाय मूलेन सूत्रे न्यस्य हृदार्च्चयेत् ॥९॥
अवगुण्ठ्य तु रुद्रेण हृदयेनाहुतित्रयं । प्रदद्यात्सन्निधानार्थं शक्तावप्येवमेव हि ॥१०॥
ओं हां वर्णाध्वने नमो हां भवनाध्वने नमः । ओं हां कलाध्वने नमः[1] शोध्याध्वानं हि सूत्रके ॥११॥
न्यस्यास्त्रवारिणा शिष्यं प्रोक्ष्यास्त्रमन्त्रितेन च । पुष्पेण हृदि सन्ताड्य शिष्यदेहे प्रविश्य च ॥
गुरुश्च तत्र हूङ्कारयुक्तं रेचकयोगतः । चैतन्यं हंसबीजस्थं विश्लिष्येदायुधात्मना ॥१३॥

ओं हौं हूं फट्[2] ।

आच्छिद्य शक्तिसूत्रेण हां हं स्वाहेति चाणुना । संहारमुद्रया सूत्रे नाडीभूते नियोजयेत् ॥१४॥

ओं हां हं हां आत्मने नमः ।

व्यापकं भावयेदेनं तनुत्रेणावगुण्ठयेत्[3] । आहुतित्रितयं दद्यात् हृदा सन्निधिहेतवे ॥१५॥
विद्यादेहञ्च विन्यस्य शान्त्यतीतावलोकनं । तस्यामितरतत्त्वाद्यं मन्त्रभूतं विचिन्तयेत् ॥१६॥

ओं हां हौं शान्त्यतीतकलापाशाय[4] नम इत्यनेनावलोकयेत् ।

द्वे तत्त्वे मन्त्रमप्येकं पदं वर्णाश्च षोडश । तथाऽष्टौ भुवनान्यस्यां बीजनाडीकथद्वयं ॥१७॥
विषयञ्च गुणश्चैकं कारणं च सदा शिवं । सितायां शान्त्यतीतायामन्तर्भाव्य प्रपीडयेत् ॥१८॥

ओं हौं शान्त्यतीतकलापाशाय हूं फट् ।

संहारमुद्रयाऽऽदाय विदध्यात् सूत्रमस्तके । पूजयेदाहुतीस्तिस्रो दद्यात् सन्निधिहेतवे ॥१९॥
तत्त्वे द्वे अक्षरे द्वे च बीजनाडीकथद्वयं । गुणौ मन्त्रौ तथाऽब्जस्थमेकं कारणमीश्वरं ॥२०॥

पदानि भानुसङ्ख्यानि भुवनानि दश सप्त च ।
एकञ्च विषयं शान्तौ कृष्णायामच्युतं स्मरेत् ॥ २१ ॥

ताडयित्वा समादाय मुखसूत्रे नियोजयेत् । जुहुयान्निजबीजेन सान्निध्यायाहुतित्रयं ।।२२॥
विद्यायां सप्त तत्त्वानि पादानामेकविंशतिं । षड् वर्णान् सञ्चरं चैकं लोकानां पञ्चत्रिंशतिं ॥२३॥
गुणानान्त्रयमेकञ्च विषयं रुद्रकारणं । अन्तर्भाव्यातिरिक्तायां बीजनाडीकथद्वयं ॥२४॥
अस्त्रमादाय दध्याच्च परं द्व्यधिकविंशतिं । लोकानाञ्च कलानाञ्च षष्टिं गुणचतुष्टयं ॥२५॥
मन्त्राणां त्रयमेकञ्च विषयं कारणं हरिं । अन्तर्भाव्य प्रतिष्ठायां शुक्लायान्ताडनादिकं ॥२६॥
विधाय नाभिसूत्रस्थां सन्निधायाहुतीर्यजेत् । ह्रीं भुवनानां[5] शतं साग्रं पदानामष्टविंशतिं[6] ॥२७॥

---

१. ओं हां पदाध्वने नमः । ओं हां वर्णाध्वने नमः । ओं हां भवनाध्वने नमः । ओं हां कलाध्वने नमः । इति ग । ओं हां पदात्मने नमः । ओं हां वर्णात्मने नमः । ओं हां मन्त्रात्मने नमः । ओं हां कालात्मने नम इति ङ. ।

२. ओं हां हौं हूं फट् इति ग. ।

३. तन्मात्रेणावगुण्ठयेदिति ग. ।

४. ओं हां हौं हो शान्त्यतीतकलापाशायेति ग. ।

५. ह्रीं त्रिभुवनाधिपानामिति ख.

६. पदानामूनत्रिंशतिमिति ग. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वीजनाडीसमीराणां द्वयोरिन्द्रिययोरपि । वर्णन्तत्त्वञ्च विषयमेकैकं गुणपञ्चकं ॥२८॥
हेतुं ब्रह्माण्डमन्त्रस्थं शम्वराणां चतुष्टयं । निवृत्तौ पीतवर्णायामन्तर्भाव्य प्रताडयेत् ॥२९॥
आदौ यत्तत्त्वभागान्ते[१] सूत्रे विन्यस्य पूजयेत् । जुहुयादाहुतीस्तिस्त्रः सन्निधानाय पात्रके ॥
इत्यादाय कलासूत्रे योजयेच्छिष्यविग्रहात् । सवीजायान्तु दीक्षायां समयाचारयागतः ॥३१॥
देहारम्भकरक्षार्थं मन्त्रसिद्धिफलादपि । इष्टापूर्त्तादिधर्म्मार्थं व्यतिरिक्तं प्रवन्धकं ॥३२॥
चैतन्यबोधकं सूक्ष्मं कलानामन्तरे स्मरेत् । अमुनैव क्रमेणाथ कुर्य्यात्तर्पणदीपने ॥३३॥

आहुतिभिः स्वमन्त्रेण तिसृभिस्तिसृभिस्तथा ।
ओं ह्रौं शान्त्यतीतकलापाशाय स्वाहेत्यादितर्पणं ।
ओं हां हं हां[२] शान्त्यतीतकलापाशाय हूम्फडित्यादिदीपनं ।
तत् सूत्रं व्याप्तिबोधाय कलास्थानेषु पञ्चसु ॥ ३४ ॥

सङ्गृह्य कुङ्कुमाज्येन[३] तत्र साङ्गं शिवं यजेत् । हूमूफडन्तैः कलामन्त्रैर्भित्त्वा पाशाननुक्रमात् ॥३५॥

नमोऽन्तैश्च प्रविश्यान्तः कुर्य्याद् ग्रहणबन्धने ।
ओं हूं हां ह्रौं हां हूं फट् शान्त्यतीतकलां गृह्णामि ।
बध्नामि चेत्यादिमन्त्रैः कलानां ग्रहणबन्धनादिप्रयोगः ।
पाशादीनाञ्च स्वीकारो ग्रहणं बन्धनं पुनः ॥ ३६ ॥

पुरुषं प्रति निःशेषव्यापारप्रतिपत्तये । उपवेश्याथ तत् सूत्रं शिष्यस्कन्धे निवेशयेत् ॥३७॥
विस्तृताघप्रमोषाय शतं मूलेन होमयेत् । शरावसम्पुटे पुंसः स्त्रियाश्च प्रणितोदरे ॥३८॥
हृदस्त्रसम्पुटं सूत्रं विधायाभ्यर्च्चयेद्धृदा[४] । सूत्रं शिवेन साङ्गेन कृत्वा सम्पातशोधितं ॥३९॥
निदध्यात् कलशस्याधो रक्षां विज्ञापयेदिति । शिष्यं पुष्पं करे दत्वा सम्पूज्य कलशादिकं ॥४०॥
प्रणमय्य वहिर्यायाद् यागमन्दिरमध्यतः । मण्डलत्रितयं कृत्वा मुमुक्षूनुत्तराननान् ॥४१॥
भुक्तये पूर्व्ववक्त्रांश्च शिष्यांस्तत्र निवेशयेत् । प्रथमे पञ्चगव्यस्य प्राशयेच्चुलुकत्रयं ॥४२॥
पाणिना कुशयुक्तेन अर्च्चितानन्तरान्तरं । चरुन्ततस्तृतीये तु ग्रासत्रितयसम्मितं ॥४३॥
अष्टग्रासप्रमाणं वा दर्शनस्पर्शवर्जितं । पालाशपुटके मुक्तौ भुक्तौ पिप्पलपत्रके ॥४४॥
हृदा सम्भोजनं दत्वा पूतैराचामयेज्जलैः । दन्तकाष्ठं हृदा कृत्वा प्रक्षिपेच्छोभने शुभं ॥४५॥
न्यूनादिदोषमोषाय मूलेनाष्टोत्तरं शतं । विधाय स्थण्डिलेशाय सर्व्वकर्म्मसमर्पणं ॥४६॥
पूजाविसर्जनञ्चास्य चण्डेशस्य च पूजनं । निर्म्माल्यमपनोयाथ शेषमग्नौ यजेच्चरोः ॥४७॥
कलशं लोकपालांश्च पूजयित्वा विसृज्य च । विसृजेद्गणमग्निञ्च रक्षितं यदि वाह्यतः ॥४८॥
वाह्यतो लोकपालानां दत्वा सङ्क्षेपतो वलिं । भस्मना शुद्धतोयैर्वा स्नात्वा यागालयं विशेत्[५] ॥

गृहस्थान् दर्भशय्यायां पूर्वशीर्षान् सुरक्षितान् ।
हृदा सद्भस्मशय्यायां यतीन् दक्षिणमस्तकान् ॥ ५० ॥

---

१. आदौ सतत्त्वभावेनेति ग.
२. ओं हां ह्रौं ह्रौं इति ग. ।
३. कुम्भमाज्येनेति ग. ।
४. निदध्यात् पूर्ववद्धृदा इति ङ. ।
५. यागालयं व्रजेदिति ङ. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शिखाबद्धशिखानखसप्तमाणवकान्वितान् । विज्ञाय स्नापयेच्छिष्यांस्ततो यायात् पुनर्वहिः ॥
ओं हिलि हिलि त्रिशूलपाणये स्वाहा ।
पञ्चगव्यञ्चरुं प्राश्य गृहीत्वा दन्तधावनं । समाचम्य शिवं ध्यात्वा शय्यामास्थाय पावनीं[1] ॥
दीक्षागतङ्क्रियाकाण्डं संस्मरन् संविशेद् गुरुः । इति सङ्क्षेपतः प्रोक्तो विधिर्दीक्षाधिवासने ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये निर्वाणदीक्षायामधिवासनं नाम
त्र्यशीतितमोऽध्यायः ।

चतुरशीतितमोऽध्यायः

निर्वाणदीक्षाविधानम् ।

ईश्वर उवाच

अथ प्रातः समुत्थाय कृतस्नानादिको गुरुः । दध्यादुर्द्रमांसमद्यादेः प्रशस्ताऽभ्यवहारिता ॥
गजाश्वारोहणं स्वप्ने शुभं शुक्लांशुकादिकं[2] । तैलाभ्यङ्गादिकं हीनं होमो घोरेण शान्तये[3] ॥
नित्यकर्म्मद्वयं कृत्वा प्रविश्य मखमण्डपं ।
स्वाचान्तो नित्यवत् कर्म्म कुर्य्यान्नैमित्तिके विधौ ॥ ३ ॥
ततः संशोध्य चात्मानं शिवहस्तं तथात्मनि । विन्यस्य कुम्भगं प्रार्च्य इन्द्रादीनामनुक्रमात् ॥
मण्डले स्थण्डिले वाऽपि प्रकुर्व्वीत शिवार्च्चनं । तर्पणं पूजनं वह्नेः पूर्णान्तं मन्त्रतर्पणं ॥५॥
दुःस्वप्रदोषमोषाय शस्त्रेणाष्टाधिकं शतं । हुत्वा हूं सम्पुटेनैव विदध्यात् मन्त्रदीपनं ॥६॥
अन्तर्वलिविधानञ्च मध्ये स्थण्डिलकुम्भयोः । कृत्वा शिष्यप्रवेशाय लब्धानुज्ञो वहिर्व्रजेत् ॥
कुर्य्यात्समयवत्तत्र मण्डलारोपणादिकं । सम्पातहोमं तन्नाडीरूपदर्भकरानुगं ॥८॥
तत्सन्निधानाय तिस्रो हुत्वा मूलाणुनाऽऽहुतीः । कुम्भस्थं शिवमभ्यर्च्च्य पाशसूत्रमुपाहरेत्[4] ॥
स्वदक्षिणोर्द्ध्वकायस्य शिष्यस्याभ्यर्च्चितस्य च ।
तच्छिखायां निबध्नीयात् पादाङ्गुष्ठावलम्बितं ॥ १० ॥
तं निवेश्य निवृत्तेस्तु व्याप्तिमालोक्य चेतसा । ज्ञेयानि भुवनान्यस्यां शतमष्टाधिकं ततः ॥
कपालोऽजश्च बुद्धश्च वज्रदेहः प्रमर्द्दनः[5] । विभूतिरव्ययः शास्ता पिनाकी त्रिदशाधिपः ॥
अग्नी रुद्रो हुताशी च पिङ्गलः खादको हरः । ज्वलनो दहनो बभ्रुर्भस्मान्तकक्षपान्तकौ ॥

---

१. विद्यामास्थाय पावनीमिति ङ. ।　　२. शुक्लाम्बरादिकमिति ख. ।
३. अस्मल्लब्धपञ्चपुस्तकेषु दध्यार्द्रमांसमद्यादेरित्यारभ्य होमो घोरेण शान्तये इत्यन्तः पाठः पूर्वेणानन्वित इव प्रतिभाति ।　　४. पाशसूत्रं समाहरेदिति ङ. ।
५. प्रवर्द्धन इति ङ. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

याम्यमृत्युहरो धाता विधाता कार्य्यरञ्जकः । कालो धर्म्मोऽप्यधर्मश्च संयोक्ता च वियोगकः ।।
नैर्ऋतो मारणो[१] हन्ता क्रूरदृष्टिर्भयानकः । उर्द्ध्वांशको विरूपाक्षो धूम्रलोहितदंष्ट्रवान् ।।१५।।
बलश्चातिबलश्चैव पाशहस्तो महाबलः । श्वेतश्च जयभद्रश्च दीर्घबाहुर्जलान्तकः[२] ।।१६।।
वडवास्यश्च भीमश्च दशैते वारुणाः स्मृताः । शीघ्रो लघुर्व्वायुवेगः सूक्ष्मस्तीक्ष्णः क्षपान्तकः ।।
पञ्चान्तकः पञ्चशिखः कपर्द्दी मेघवाहनः । जटामुकुटधारी च नानारत्नधरस्तथा ।।१८।।

निधीशो रूपवान् धन्यो सौम्यदेहः प्रसादकृत् ।
प्रकाशोऽप्यथ लक्ष्मीवान् कामरूपो दशोत्तरे ।। १९ ।।

विद्याधरो ज्ञानधरः सर्वज्ञो वेदपारगः । मातृवृत्तश्च पिङ्गाक्षो भूतपालो बलिप्रियः ।।२०।।
सर्वविद्याविधाता च सुखदुःखहरा दश । अनन्तः पालको धीरः[३] पातालाधिपतिस्तथा ।।
वृषो वृषधरो वीर्य्यो ग्रसनः[४] सर्वतोमुखः । लोहितश्चैव विज्ञेया दश रुद्राः फणिस्थिताः ।।
शम्भुर्विभुर्गणाध्यक्षस्त्र्यक्षस्त्रिदशवन्दितः । संहारश्च विहारश्च लाभो लिप्सुर्विचक्षणः ।।२४।।
अत्ता कुहककालाग्निरुद्रो[५] हाटक एव च । कुष्माण्डश्चैव सत्यश्च ब्रह्मा विष्णुश्च सप्तमः ।।
रुद्रश्चाष्टाविमे रुद्राः कटाहाभ्यन्तरे स्थिताः । एतेषामेव नामानि भुवनानामपि स्मरेत् ।।
भवोद्भवः सर्वभूतः सर्वभूतसुखप्रदः । सर्वसान्निध्यकृद् ब्रह्मविष्णुरुद्रशरार्च्चितः ।।२६।।

संस्तुत पूर्वस्थित ओं साक्षिन् ओं रुद्रान्तक

ओं पतङ्ग ओं शब्द ओं सूक्ष्म ओं शिव सर्वसर्व्वद सर्व्वसान्निध्यकर ब्रह्मविष्णुरुद्रकर ओं नमः शिवाय ओं नमो नमः[६] ।

अष्टाविंशति पादानि व्योमव्यापि मनो गुह । सद्योहृदस्त्रनेत्राणि मन्त्रवर्णाष्टको मतः ।।
बीजाकारो मकारश्च[७] नाड्याविडापिङ्गलाह्वये । प्राणापानावुभौ वायू घ्राणोपस्थौ तथेन्द्रिये ।।
गन्धस्तु विषयः प्रोक्तो गन्धादिगुणपञ्चके । पार्थिवं मण्डलं पीतं वज्राङ्कं चतुरस्रकं ।।२९।।
विस्तारो योजनानान्तु कोटिरस्य शताहता । अत्रैवान्तर्गता ज्ञेया योनयोऽपि चतुर्द्दश ।।
प्रथमा सर्वदेवानां मन्वाद्या देवयोनयः । मृगपक्षी च पशवश्चतुर्द्धा तु सरीसृपाः ।।३१।।
स्थावरं पञ्चमं सर्वं योनिः षष्ठी अमानुषी[८] । पैशाचं राक्षसं याक्षं गान्धर्व्वं चैन्द्रमेव च ।।

---

१. वरुण इति ख.।
२. जनान्तक इति ङ. ।
३. वीर इति ङ. ।
४. वीर्य्योऽप्रसन्न इति ख. ग. ।
५. अथ शुक्लकालाग्निरुद्र इति ख. ।
६. अनर्चित संस्तुत पूर्वस्थित साक्षिन् तुङ्ग २ पतङ्ग २ ज्ञान २ शब्द सूक्ष्म शिव सर्वदसर्वाध्यक्षकर ब्रह्मविष्णु रुद्र ओं नमः शिवाय ओं नमो नमः ओं नमः शिवाय ओं नमो नमः इति । अनर्चित संस्तुत पूर्ववन्दि ओं साक्षिण ओं रुद्रान्तक ओं पतङ्ग ओं ज्ञान ओं शब्द ओं सूक्ष्म ओं शिव ओं सर्व ओं सर्वद ओं सर्वसान्निध्यकर ब्रह्मविष्णुरुद्रकर ओं नमः शिवाय ओं नमो नम इति च. ।
७. वीजोङ्कारो मकारश्चेति ग. ङ. ।
८. योनिः षष्ठी सुमानुषी इति ख. । योनिः षष्ठीषु मानुषी इति ग. ङ. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सौम्यं प्राणेश्वरं[1] ब्राह्ममष्टमं परिकीर्त्तितं। अष्टानां पार्थिवन्तत्त्वमधिकारास्पदं मतं ॥३३॥
लयस्तु प्रकृतौ बुद्धौ भोगो ब्रह्मा च कारणं। ततो जाग्रदवस्थानैः समस्तैर्भुवनादिभिः ॥
निवृत्तिं गर्भितां ध्यात्वा स्वमन्त्रेण नियोज्य च।

ओं हां हूं हां[2] निवृत्तिकलापाशाय हूं फट् तत् ओं हां हां[3] निवृत्तिकलापाशाय स्वाहेत्यनेनाङ्कुशमुद्रया पूरकेणाकृष्य ओं हूं हां हूं[4] निवृत्तिकलापाशाय हूं फडित्यनेन संहारमुद्रया कुम्भकेनाधःस्थानादादाय ओं ओं हं हां[5] निवृत्तिकलापाशाय नम इत्यनेनोद्भवमुद्रया रेचकेन कुम्भे संस्थाप्य ओं हां निवृत्तिकलापाशाय नम इत्यनेनार्घ्यं दत्वा सम्पूज्य विमुखेनैव स्वाहान्तेनै सन्निधानायाहुतित्रयं सन्तपर्णाहुतित्रयं च दत्वा ओं हां ब्रह्मणे नम इति ब्रह्माणमावाह्य सम्पूज्य च स्वाहान्तेन सन्तर्प्य।

ब्रह्मन् तवाधिकारेऽस्मिन् मुमुक्षुं दीक्षयाम्यहं ॥ ३५ ॥
भाव्यं त्वयाऽनुकूलेन विधिं विज्ञापयेदिति। आवाहयेत्ततो देवीं रक्षां वागीश्वरीं हृदा ॥३६॥
इच्छाज्ञानक्रियारूपां षड्विधां ह्येककारणं। पूजयेत्तर्पयेद्देवीं प्रकारेणामुना ततः ॥३७॥
वागीश्वरीं विनिःशेषयोनिविक्षोभकारणं। हृत्सम्पुटार्थबीजादि हूं फडन्तशराणुना ॥३८॥
ताडयेद्धृदये तस्य प्रविशेतस[6] विधानवित्। ततः शिष्यस्य चैतन्यं हृदि वह्निकणोपमं॥३९॥
निवृत्तिस्थं युतं पाशैर्ज्येष्ठया विभजेद्यथा।

ओं हां हूं हः हूं फट्।

ओं हां स्वाहेत्येनेनाथ पूरकेणाङ्कुशमुद्रया ॥४०॥
तदाकृष्य स्वमन्त्रेण गृहीत्वाऽऽत्मनि योजयेत्।

ओं हां हूं हां[7] आत्मने नमः।

पित्रोर्विभाव्य संयोगं चैतन्यं रेचकेन तत् ॥४१॥
ब्रह्मादिकारणत्यागक्रमान्नीत्वा शिवास्पदं। गर्भाधानार्थमादाय युगपत् सर्वयोनिषु ॥४२॥
क्षिपेद्वागीश्वरीयोनौ वामयोद्भवमुद्रया।

ओं हां हां हां आत्मने नमः[8]।

पूजयेदप्यनेनैव तर्पयेदपि पञ्चधा ॥४३॥
अन्ययोनिषु सर्व्वासु देहशुद्धिं हृदा चरेत्। नात्र पुंसवनं स्त्र्यादिशरीरस्यापि सम्भवात् ॥
सीमन्तोन्नयनं वापि दैवान्यङ्गानि देहवत्। शिरसा जन्म कुर्व्वीत जुगुप्सन् सर्व्वदेहिनां ॥
तथैव भावयेदेषामधिकारं शिवाणुना[9]। भोगं कवचमन्त्रेण शस्त्रेण विषयात्मना ॥४६॥

---

१. प्रजेश्वरमिति ङ.।
२. ओं हां हूं हामिति ख.।
३. तत ओं हां हां हामिति ख.।
४. ओं हं हूं हूमिति ख.।
५. ओं हूं ह्रीं हामिति ख.।
६. प्रविशेच्चेति ख. ङ.।
७. ओं हां क्षं हामिति ख.।
८. ओं हं हं हां आत्मने नम इति ख.।
९. शिखात्मनेति ख.।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मोहरूपमभेदञ्च लयसञ्ज्ञं विभावयेत् । शिवेन श्रोतसां शुद्धिं हृदा तत्त्वविशोधनं ॥४७॥
पञ्च पञ्चाहुतीः कुर्य्यात् [१]गर्भाधानादिषु क्रमात् । मायया मलकर्मादिपाशबन्धनिवृत्तये ॥
निष्कृत्यैव हृदा पश्चाद् यजेत शतमाहुतीः । मलशक्तिनिरोधेन पाशानाञ्च वियोजनं ॥४९॥
स्वाहान्तायुधमन्त्रेण पञ्चपञ्चाहुतीर्यजेत् । मायाद्यन्तस्य पाशस्य सप्तवारास्त्रजप्तया ॥५०॥
कर्त्तर्य्या छेदनं कुर्य्यात् कल्पशस्त्रेण तद्यथा ।
ओं हूं निवृत्तिकलापाशाय हूं फट् ।
बन्धकत्वञ्च निर्वर्त्य हस्ताभ्याञ्च शराणुना[२] ॥५१॥
विसृज्य वर्त्तुलीकृत्य घृतपूर्णे स्रुवे धरेत् । दहेदनुकलास्त्रेण केवलास्त्रेण भस्मसात् ॥५२॥
कुर्यात् पञ्चाहुतीर्दत्वा पाशाङ्कुशनिवृत्तये ।
ओं हः अस्त्राय हूं फट् ।
प्रायश्चित्तं ततः कुर्यादस्त्राहुतिभिरष्टभिः ॥ ५३ ॥
अथावाह्य विधातारं पूजयेत्तर्पयेत्तथा ।
तत ओं हां शब्दस्पर्शशुद्धब्रह्मन् गृहाण स्वाहेत्याहुतित्रयेणाधिकारमस्य समर्पयेत् ।
दग्धनिःशेषपापस्य[३]ब्रह्मन्नस्य पशोस्त्वया ॥ ५४ ॥
बन्धाय न पुनः स्थेयं शिवाज्ञां श्रावयेदिति । ततो विसृज्य धातारं नाड्या दक्षिणया शनैः ॥
संहारमुद्रयात्मानं कुम्भकेन निजात्मना । राहुयुक्तैकदेशेन चन्द्रविम्बेन सन्निभं ॥५६॥
आदाय योजयेत् सूत्रे रेचकेनोद्भवाख्यया । पूजयित्वार्घ्यपात्रस्थतोयविन्दुसुधोपमं ॥५७॥
आप्यायनाय शिष्यस्य गुरुः शिरसि विन्यसेत् ।
विसृज्य पितरौ दद्याद्वौषडन्तशिवाणुना । पूरणाय विधिः पूर्णो निवृत्तिरिति शोधिता ॥५८॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये निर्वाणदीक्षायां निवृत्तिकलाशोधनं नाम
चतुरशीतितमोऽध्यायः ।

पञ्चाशीतितमोऽध्यायः

प्रतिष्ठाकलाशोधनोक्तिः ।

ईश्वर उवाच

तत्त्वयोरथ सन्धानं कुर्य्याच्छुद्धविशुद्धयोः । ह्रस्वदीर्घप्रयोगेण नादनादान्तसञ्ज्ञिना ॥१॥
ओं हां ह्रूं हां[४] अप्तेजोवायुराकाशं तन्मात्रेन्द्रियबुद्धयः ।
गुणत्रयमहङ्कारश्चतुर्विंशः पुमानिति ॥ २ ॥
प्रतिष्ठायां निविष्टानि तत्त्वान्येतानि भावयेत् । पञ्चविंशतिसङ्ख्यानि खादियान्ताक्षराणि च ॥

१. पञ्चपञ्चाहुतीर्दद्यादिति ग. ङ. ।
२. शिवात्मनेति ख. ।
३. दग्धनिःशेषपापस्य इति ख ङ. ।
४. ओं हां हूं हूं हामिति ख. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पञ्चाशदधिका षष्टिर्भुवनैस्तुल्यसञ्ज्ञिताः । तावन्त एव रुद्राश्च विज्ञेयास्तत्र तद्यथा ।।४।।
अमरेशः प्रभावश्च नैमिषः पुष्करोऽपि च । तथा पादिश्च दण्डिश्च भावभूतिरथाष्टमः ।।५।।
नकुलीशो हरिश्चन्द्रः श्रीशैलो दशमः स्मृतः । अन्वीशोऽस्रातिकेशश्च[1] महाकालोऽथ मध्यमः ।।६।।
केदारो भैरवश्चैव द्वितीयाष्टकमीरितं । ततो गयाकुरुक्षेत्रखलानादिकनादिके ।।७।।
विमलश्चाट्टहासश्च[2] महेन्द्रो भीम एव च । वस्त्रापदं रुद्रकोटिरवियुक्तो महाबलः ।।८।।
गोकर्णो भद्रकर्णश्च स्वर्णाक्षः स्थाणुरेव च । अजेशश्चैव सर्वज्ञो भास्वरः सूदनान्तरः ।।९।।
सुबाहुर्म्मत्तरूपी च विशालो जटिलस्तथा । रौद्रोऽथ पिङ्गलाक्षश्च कालदंष्ट्री भवेत्ततः ।।१०।।
विदुरश्चैव घोरश्च प्राजापत्यो हुताशनः । कामरूपी तथा कालः कर्णोऽप्यथ भयानकः ।।११।।
मतङ्गः पिङ्गलश्चैव हरो वै धातृसञ्ज्ञकः । शङ्कुकर्णो विधानश्च श्रीकण्ठश्चन्द्रशेखरः ।।१२।।
सहैतेन च पर्य्यन्ताः कथ्यन्तेऽथ पदान्यपि ।

व्यापिन् ओं अरूप ओं प्रमथ ओं तेजः ओं ज्योतिः ओं पुरुष ओं अग्ने ओं अधूम ओं अभस्म ओं अनादि ओं नाना ओं धूधू ओं भूः ओं भुवः ओं स्वः अनिधन निधनोद्भव शिव शर्व परमात्मन् महेश्वर महादेव सद्भावेश्वर महातेजः योगाधिपतये मुञ्च प्रथम सर्व सर्वेसर्वेति द्वात्रिंशत् पदानि ।

बीजभावे त्रयो मन्त्रा वामदेवः शिवः शिखा ।। १३ ।।
गान्धारी च सुषुम्णा च नाड्यौ द्वौ मारुतौ तथा । समानोदाननामानौ रसनापायुरिन्द्रिये ।।
रसस्तु विषयो रूपशब्दस्पर्शरसा गुणाः । मण्डलं वर्त्तुलं तच्च पुण्डरीकाङ्कितं सितं ।।१५।।
स्वप्नावस्थाप्रतिष्ठायां कारणं गरुडध्वजं । प्रतिष्ठान्तकृतं सर्वं सञ्चिन्त्य भुवनादिकं ।।१६।।
सूत्रं देहे स्वमन्त्रेण प्रविश्यैनां वियोजयेत् ।

ओं हां खीं हां प्रतिष्ठाकलापाशाय ओं फट् स्वाहान्तेनानेनैव पूरकेणाङ्कुशमुद्रया समाकर्षेत् ततः ओं हां हूं हां हूं[3] प्रतिष्ठा कलापाशाय हूं फडित्यनेन संहारमुद्रया कुम्भकेन हृदयादधो नाडीसूत्रादादाय ओं हां हूं हां हां[4] प्रतिष्ठाकलापाशाय नम इत्यनेनोद्भवमुद्रया रेचकेन कुम्भे समारोपयेत ओं हां ह्रीं प्रतिष्ठाकलापाशाय नम इत्यनेनाच्चर्चयित्वा सम्पूज्य स्वाहान्तेनाहुतीनां त्रयेण सन्निधाय ततः ओं हां विष्णवे नम इति विष्णुमावाह्य सम्पूज्य सन्तर्प्य ।

विष्णो तवाधिकारेऽस्मिन् मुमुक्षुं दीक्षयाम्यहं ।।१७।।
भाव्यं त्वयानुकूलेन विष्णुं विज्ञापयेदिति । ततो वागीश्वरीं देवीं वागीशमपि पूर्ववत् ।।१८।।
आवाह्याभ्यर्च्य सन्तर्प्य शिष्यं वक्षसि ताडयेत् ।

ओं हां हां हं फट्[5] ।

---

१. अल्पीशो भ्रान्तिकेशश्चेति ङ. ।　२. विमलश्चण्डहासश्चेति ङ. ।
३. ओं ह्रीं हं हां हूं इति ख. ।　४. ओं हूं हां हां इति ख. ।
५. ओं हां हं हां हः फट इति ख. ङ. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रविशेदप्यनेनैव चैतन्यं विभजेत्ततः ॥ १९ ॥
शस्त्रेण पाशसंयुक्तं ज्येष्ठयाऽङ्कुशमुद्रया ।
ओं हां हं हों हूं फट्[१] ।
स्वाहान्तेन हृदाकृष्य तेनैव पुटितात्मना ॥ २० ॥
गृहीत्वा तं नमोन्तेन निजात्मनि नियोजयेत्[२] ।
ओं हां हं हों[३] आत्मने नमः ।
पूर्ववत् पितृसंयोगं भावयित्वोद्भवाख्यया[४] ॥ २१ ॥
वामया तदनेनैव देवीगर्भे विनिक्षिपेत् ।
ओं हां हं हां आत्मन नमः ।
देहोत्पत्तौ हृदा ह्येवं शिरसा जन्मना तथा ॥ २२ ॥
शिखया वाधिकाराय भोगाय कवचाणुना । तत्त्वशुद्धौ हृदा ह्येवं गर्भाधानाय पूर्ववत् ॥
शिरसा पाशशैथिल्ये निष्कृत्यैवं शतं जपेत् । एवं पाशवियोगेऽपि ततः शस्त्रात्मजप्तया ॥
छिन्द्यादस्त्रेण कर्त्तर्य्या कलाबीजवता यथा ।
ओं ह्रीं प्रतिष्ठाकलापाशाय हः फट् ।
विसृज्य वर्त्तुलीकृत्य[५] पाशमस्त्रेण पूर्ववत् ॥ २५ ॥
घृतपूर्णे श्रुवे दत्वा कलास्त्रेणैव होमयेत् । अस्त्रेण जुहुयात् पञ्च पाशाङ्कुरनिवृत्तये ॥२६॥
प्रायश्चित्तनिषेधार्थं दद्यादष्टाहुतीस्ततः ।
ओं हः अस्त्राय हूं फट् ।
हृदावाह्य हृषीकेशं कृत्वा पूजनतर्पणे ॥ २७ ॥
पूर्व्वोक्तविधिना कुर्य्यादधिकारसमर्पणं ।
ओं हां रसशुल्कं गृहाण स्वाहा ।
निःशेषदग्धपाशस्य पशोरस्य हरे त्वया ॥ २८ ॥
न स्थेयं बन्धकत्वेन शिवाज्ञां श्रावयेदिति । ततो विसृज्य गोविन्दं विद्यात्मानं नियोज्य च ॥
बाहुमुक्तार्द्धदश्येन चन्द्रविम्बेन सन्निभं । संहारमुद्रया स्वस्थं[६] विधायोद्भवमुद्रया ॥३०॥
सूत्रे संयोज्य विन्यस्य तोयविन्दुं यथा पुरा । विसृज्य पितरौ वह्नेः पूजितौ कुसुमादिभिः ॥
दद्यात् पूर्णां विधानेन प्रतिष्ठाऽपि विशोधिता ॥३१॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये निर्वाणदीक्षायां प्रतिष्ठाकलाशोधनं नाम
पञ्चाशीतितमोऽध्यायः ।

---

१. ओं हां हं हां हूं फट् इति ख. । २. निवेदयेदिति ख. ।
३. ओं हां हं हां इति ख. ङ. । ४. भावयित्वा तु दक्षयेति ख. ।
५. वर्द्धनीकृत्येति ख. । ६. संहारमद्रयात्मस्थं इति ख. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

षडशीतितमोऽध्यायः

विद्याविशोधनविधानम् ।

ईश्वर उवाच

सन्धानमथ विद्यायाः प्राचीनकलया सह । कुर्वीत पूर्ववत् कृत्वा[1]तत्त्वं वर्णय तद्यथा ॥१॥
ओं हों क्ष्मीमिति सन्धानं ।
रागश्च शुद्धविद्या च नियतिः कलया सह । कालो माया तथाऽविद्या तत्त्वानामिति सप्तकं ॥
रलवाः शषसाः वर्णाः षड् विद्यायां प्रकीर्त्तिताः । पदानि प्रणवादीनि एकविंशतिसङ्ख्यया ॥
ओं नमः शिवाय सर्वप्रभवे हं शिवाय[2]ईशानमूर्द्धाय ततपुरुषवक्त्राय अघोरहृद-याय वामदेवगुह्याय[3]सद्योजातमूर्त्तये[4]ओं नमो नमो गुह्यातिगुह्याय गोप्त्रे अनिधनाय सर्वा-धिपाय[5]ज्योतीरूपाय परमेश्वराय भावेन ओं व्योम ।
ओं रुद्राणां भुवनानाञ्च स्वरूपमथ कथ्यते । प्रथमो वामदेवः स्यात्ततः सर्वभवोद्भवः ॥४॥
वज्रदेहः प्रभुर्द्धाता क्रमविक्रमसुप्रभाः । वटुः[6]प्रशान्तनामा च परमाक्षरसञ्ज्ञकः ॥५॥
शिवश्च सशिवो बभ्रुरक्षयः शम्भुरेव च । अदृष्टरूपनामानौ तथाऽन्यो रूपवर्द्धनः ॥६॥
मनोन्मनो महावीर्य्यश्चित्राङ्गस्तदनन्तरं । कल्याण इति विज्ञेयाः पञ्चविंशतिसङ्ख्यया ॥७॥

मन्त्रो घोरामरौ वीजे नाड्यौ द्वे तत्र ते यथा ।
पूषा च हस्तिजिह्वा च व्याननागौ प्रभञ्जनौ ॥८॥

विषयो रूपमेवैकमिन्द्रिये पादचक्षुषी । शब्दः स्पर्शश्च रूपञ्च त्रय एते गुणाः स्मृताः ॥६॥
अवस्थाऽत्र सुषुप्तिश्च रुद्रो देवस्तु कारणं । विद्यामध्यगतं सर्वं भावयेद्भवनादिकं ॥१०॥
ताडनं छेदनं तत्र प्रवेशश्चापि योजनं । आकृष्य ग्रहणं कुर्याद्विद्यया हृत्प्रदेशतः ॥११॥
आत्मन्यारोप्य सङ्गृह्य कलां कुण्डे निवेशयेत् । रुद्रं कारणमावाह्य विज्ञाप्य च शिशुं प्रति ॥
पित्रोरावाहनं कृत्वा[7]हृदये ताडयेच्छिशुं । प्रविश्य पूर्वमन्त्रेण तदात्मनि नियोजयेत् ॥१३॥

आकृष्यादाय पूर्वोक्तविधिनाऽऽत्मनि योजयेत् ।
वामया योजयेद् योनौ गृहीत्वा द्वादशान्ततः ॥ १४ ॥

कुर्व्वीत देहसम्पत्तिं जन्माधिकारमेव च । भोगं लयन्तथा श्रोतःशुद्धितत्त्वविशोधनं ॥१५॥
निःशेषमलकर्म्मादिपाशबन्धनिवृत्तये । निष्कृत्यैव विधानेन यजेत शतमाहुतीः ॥१६॥
अस्त्रेण पाशशैथिल्यं मलशक्ति तिरोहितां । छेदनं मर्द्दनं तेषां वर्त्तुलीकरणं तथा[8] ॥१७॥
दाहं तदक्षराभावं प्रायश्चित्तमथोदितं । रुद्राण्यावाहनं पूजा रूपगन्धसमर्पणं ॥१८॥

---

१. पूर्ववत् धृत्वेति ख. ।
२. इं शिवाय इति ख. ।
३. वचोगुह्याय इति ख. ।
४. सद्योजाताय मूर्त्तये इति ख. ।
५. अथ निधाय सर्वाधिपतय इति ख. ।
६. बुद्ध इति घ. ङ. ।
७. आवाहनं कुर्य्यादिति ग. घ. ।
८. छेदनं भेदनं तेषां बहुलीकरणन्तया इति ग. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ओं ह्रीं रूपगन्धौ शुल्कं रुद्र गृहाण स्वाहा ।

संश्राव्य शाम्भवीमाज्ञां रुद्रं विसृज्य कारणं । विधायात्मनि चैतन्य पाशसूत्रे निवेशयेत् ॥१६॥
विन्दुं शिरसि विन्यस्य विसृजेत् पितरौ ततः । दद्यात् पूर्णां विधानेन समस्तविधिपूरणीं ॥
पूर्वोक्तविधिना कार्य्यं विद्यायां ताडनादिकं । स्वबीजन्तु विशेषः स्यादिति विद्या विशोधिता॥

इत्यादिमहपुराणे आग्नेये निर्व्वाणदीक्षायां विद्याशोधनं नाम
षडशीतितमोऽध्यायः ।

सप्ताशीतितमोऽध्यायः

शान्तिशोधनकथनम् ।

ईश्वर उवाच

सन्दध्यादधुना विद्यां शान्त्या सार्द्धं यथाविधि । शान्तौ तत्त्वद्वयं लीनं भावेश्वरसदाशिवौ ॥
हकारश्च क्षकारश्च द्वौ वर्णौ परिकीर्त्तितौ । रुद्राः समाननामानो भुवनैः सह तद्यथा ॥२॥
प्रभवः समयः क्षुद्रो विमलः शिव इत्यपि । घनौ निरञ्जनाकारौ स्वशिवौ दीप्तिकारणौ॥३॥
त्रिदशेश्वरनामा च त्रिदशः कालसञ्ज्ञकः । सूक्ष्माम्बुजेश्वरश्चेति[१] रुद्राः शान्तौ प्रतिष्ठिताः॥

व्योमव्यापिने व्योमव्याप्यरूपाय[२] सर्वव्यापिने शिवाय अनन्ताय अनाथाय अनाश्रिताय ध्रुवाय शाश्वताय योगपीठसंस्थिताय नित्ययोगिने ध्यानाहारायेति[३] द्वादशपदानि ।

पुरुषः कवचौ मन्त्रौ वीजे विन्दूपकारकौ । अलम्बुषायसानाड्यौ वायू कृकरकूर्म्मकौ ॥५॥
इन्द्रिये त्वक्कारावस्या स्पर्शस्तु विषयो मतः । गुणौ स्पर्शनिनादौ द्वावेकः कारणमीश्वरः ॥
तुर्य्यावस्थेति शान्तिस्थं सम्भाव्य भुवनादिकं । विदध्यात्ताडनं भेदं प्रवेशञ्च वियोजनं ॥
आकृष्य ग्रहणं कुर्य्याच्छान्तेवेदनसूत्रतः । आत्मन्यारोप्य सङ्गृह्य कलां कुण्डे निवेशयेत् ॥
ईश तत्राधिकारेऽस्मिन् मुमुक्षुं दीक्षयाम्यहं । भव्यं त्वयाऽनुकूलेन[४] कुर्य्यात् विज्ञापनामिति ॥

आवाहनादिकं पित्रोः शिष्यस्य ताडनादिकं ।
विधायादाय चैतन्यं विधिनाऽऽत्मनि योजयेत् ॥ १० ॥

पूर्ववत् पितृसंयोगं भावयित्वोद्भवाख्यया । हृत्सम्पुटात्मवीजेन देवीगर्भे नियोजयेत् ॥११॥
देहोत्पत्तौ हृदा पञ्च शिरसा जन्महेतवे । शिखया वाऽधिकाराय भोगाय कवचाणुना ॥१२॥
लयाय शस्त्रमन्त्रेण श्रोतःशुद्धौ शिवेन च । तत्त्वशुद्धौ हृदा ह्येवं गर्भाधानादि पूर्ववत ॥१३॥
वर्म्मणा पाशशैथिल्यं निष्कृत्यैवं शतं जपेत् । मलशक्तितिरोधाने शस्त्रेणाहुतिपञ्चकं ॥१४॥

---

१. सूक्ष्मासूक्ष्मेश्वरश्चैव इति ग. । २. व्योमव्यापकरूपाय इति ख. । व्योमरूपायेति ग. ।
३. ध्यानपरायेति ख. । ध्यानाहारायेति ग. । ४. भाव्यं त्वया च शुद्धेन इति ग. ङ. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

एवं पाशवियोगेऽपि[1]ततः सप्तास्त्रजप्तया । छिन्द्यादस्त्रेण कर्त्तर्य्या पाशान्वीजवता यथा ॥१५॥

ओं ह्रौं[2] शान्तिकलापाशाय हः हूं फट् ।

विसृज्य वर्त्तुलीकृत्य पाशमस्त्रेण पूर्ववत् । घृतपूर्णे श्रुवे दत्वा कलास्त्रेणैव होमयेत् ॥१६॥

अस्त्रेण जुहुयात् पञ्च पाशाङ्कुशनिवृत्तये । प्रायश्चित्तनिषेधाय दद्यादष्टाहुतीरथ ॥१७॥

ओं हः अस्त्राय हूं फट् ।

हृदेश्वरं समावाह्य कृत्वा पूजनतर्पणे । विदधीत विधानेन तस्मै शुल्कसमर्पणं ॥१८॥

ओं हां ईश्वर बुद्ध्यहङ्कारौ शुल्कं गृहाण स्वाहा ।

निःशेषदग्धपाशस्य पशोरस्येश्वर त्वया । न स्थेयं बन्धकत्वेन शिवाज्ञां श्रावयेदिति ॥१९॥

विसृजेदीश्वरन्देवं रौद्रात्मानं नियोजयेत् । ईषच्चन्द्रमिवात्मानं विधिनाऽऽत्मनि योजयेत् ॥

सूत्रे संयोजयेदेनं शुद्धयोद्भवमुद्रया । दद्यान् मूलेन शिष्यस्य शिरस्यमृतविन्दुकं ॥२१॥

विसृज्य पितरौ वह्नेः पूजितौ कुसुमादिभिः । दद्यात् पूर्णां विधानज्ञो निःशेषविधिपूर्णीं ॥

अस्यामपि विधातव्यं पूर्ववत्ताडनादिकं । स्वबीजन्तु विशेषः स्याच्छुद्धिः शान्तेरपीडिता ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये निर्वाणदीक्षायां शान्तिशोधनं नाम सप्ताशीतितमोऽध्यायः ।

अष्टाशीतितमोऽध्यायः

निर्वाणदीक्षाकथनम् ।

ईश्वर उवाच

सन्धानं शान्त्यतीतायाः शान्त्या सार्द्धं विशुद्धया । कुर्वीत पूर्ववत्तत्र तत्त्ववर्णादि तद् यथा ॥

ओं ह्रीं क्ष्णौं ह्रौं हां इति सन्धानानि । उभौ शक्तिशिवौ तत्त्वे भुवनाष्टकसिद्धिकं ।

दीपकं रोचिकञ्चैव मोचकं चोद्र्ध्वगामि च ॥ २ ॥

व्योमरूपमनाथञ्च स्यादनाश्रितमष्टमं । ओङ्कारपदमीशाने मन्त्रो वर्णाश्च षोडश ॥३॥

अकारादिविसर्गान्ता वीजेन देहकारकौ । कुहूश्च शङ्खिनी नाड्यौ देवदत्तधनञ्जयौ ॥४॥

मारुतौ स्पर्शनं श्रोत्रं इन्द्रिये विषयो नमः । शब्दो गुणोऽस्यावस्था तु तुर्य्यातीता तु पञ्चमी ॥

हेतुः सदाशिवो देव इति तत्त्वादिसञ्चयं । सञ्चिन्त्य शान्त्यतीताख्यं विदध्यात्ताडनादिकं ॥

कलापाशं समाताड्य फडन्तेन विभिद्य च । प्रविश्यान्तर्न्नमोऽन्तेन फडन्तेन वियोजयेत् ॥

शिखाहृत्सम्पुटीभूतं स्वाहान्तं सृणिमुद्रया । पूरकेण समाकृष्य पाशं मस्तकसूत्रतः ॥८॥

कुम्भकेन समादाय रेचकेनोद्भवाख्यया । हृत्सम्पुटनमोऽन्तेन वह्निं कुण्डे निवेशयेत् ॥९॥

अस्याः पूजादिकं सर्वं निवृत्तेरिव साधयेत् । सदाशिवं समावाह्य पूजयित्वा प्रतर्प्य च ॥१०॥

---

१. एकं पाशवियोगार्थमिति ग. घ. ।

२. ओं ह्रौमिति क. ङ. । ओं ज्योमिति ग. । ओं यैमिति घ. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सदा ख्यातेऽधिकारेऽस्मिन् मुमुक्षुं दीक्षयाम्यहं ।
भाव्यं त्वयाऽनुकूलेन भक्त्या विज्ञापयेदिति ।। ११ ।।

पित्रोरावाहनं पूजां कृत्वा तर्पणसन्निधौ । हृत्सम्पुटात्मबीजेन शिष्यं वक्षसि ताडयेत् ।।१२।।

ओं हां हूं हं फट् ।

प्रविश्य चाप्यनेनैव चैतन्यं विभजेत्ततः । शस्त्रेण पाशसंयुक्तं ज्येष्ठयाऽङ्कुशमुद्रया ।।१३।।

ओं हां हः हूं फट्[1] ।

स्वाहान्तेन तदाकृष्य तेनैव पुटितात्मना । गृहीत्वा तन्नमोऽन्तेन निजात्मनि नियोजयेत् ।।

ओं हां हं हीं आत्मने नमः[2] ।

पूर्ववत् पितृसंयोगं भावयित्वोद्भवाख्यया । वामया तदनेनैव[3] देव्या गर्भे नियोजयेत ।।१५।।
गर्भाधानादिकं सर्वं पूर्वोक्तविधिना चरेत् । मूलेन पाशशैथिल्ये निष्कृत्यैव शतं जपेत् ।।
मलशक्तितिरोधाने पाशानाञ्च वियोजने । पञ्चपञ्चाहुतीर्दद्यादायुधेन यथा पुरा ।।१७।।
पाशानायुधमन्त्रेण सप्तवाराभिजप्तया । छिन्द्यादस्त्रेण कर्त्तर्य्या कलाबीजयुजा यथा ।।१८।।

ओं हां शान्त्यतीतकलापाशाय हः हूं फट् ।

विसृज्य वर्त्तुलीकृत्य पाशानस्त्रेण पूर्ववत् । घृतपूर्णे श्रुवे दत्वा कलास्त्रेणैव होमयेत् ।।१९।।
अस्त्रेण जुहुयात् पञ्च पाशाङ्कुशनिवृत्तये । प्रायश्चित्तनिषेधार्थं दद्यादष्टाहुतीस्ततः ।।२०।।
सदाशिवं हृदावाह्य कृत्वा पूजनतर्पणे । पूर्वोक्तविधिना कुर्य्यादधिकारसमर्पणं ।।२१।।

ओं हां सदाशिव मनोविन्दुं शुल्कं गृहाण स्वाहा ।

निःशेषदग्धपाशस्य पशोरस्य सदाशिव । बन्धाय न त्वया स्थेयं शिवाज्ञां श्रावयेदिति ।।
मूलेन जुहुयात् पूर्णां विसृजेत्तु सदाशिवं । ततो विशुद्धमात्मानं शरच्चन्द्रमिवोदितं ।।२३।।
संहारमुद्रया रौद्रया संयोज्य गुरुरात्मनि । कुर्वीत शिष्यदेहस्थमुद्धृत्योद्भवमुद्रया ।।२४।।
दद्यादाप्यायनायास्य मस्तकेऽर्घ्याम्बुविन्दुकं । क्षमयित्वा महाभक्त्या पितरौ विसृजेत्तथा ।।
खेदितौ शिष्यदीक्षायै यन्मया पितरौ युवां । कारुण्यान्मोक्षयित्वा तद्व्रजत्वं स्थानमात्मनः ।।
शिखामन्त्रितकर्त्तर्य्या बोधशक्तिस्वरूपिणीं । शिखां छिन्द्याच्छिवास्त्रेण शिष्यस्य चतुरङ्गुलां ।।
ओं क्लीं शिखायै हूं फट्[4] ओं हः अस्त्राय हूं फट् ।
स्रुचि तां घृतपूर्णायां गोविड्गोलकमध्यगां[5] । संविधायास्त्रमन्त्रेण हूं फडन्तेन होमयेत् ।।

ओं हौं हः अस्त्राय हूं फट् ।

प्रक्षाल्य स्रुक्स्रुवौ शिष्यं संस्नाप्याचम्य च स्वयं । योजनिकास्थमात्मानं शस्त्रमन्त्रेण ताडयेत् ।।
वियोज्याकृष्य सम्पूज्य[6] पूर्ववद् द्वादशान्ततः । आत्मीयहृदयाम्भोजकर्णिकायां निवेशयेत् ।।

---

१. ओं हां हुं हः फट् इति ख. । २. ओं हां हं हीमात्मने नम इति ख. ।
३. वामया हृदयेनैवेति ग. ।
४. ओं हूं शिखायै हूं फट् इति ख. ङ. । ओं ह्रीं शिखायै हं फडिति ग. ।
५. गोविन्दलोकमध्यगामिति ख. । ६. वियोज्याकृष्य सङ्गृह्येति ख. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पूरितं श्रुवमाज्येन विहिताधोमुखश्रुचा । नित्योक्तविधिनाऽऽदाय शङ्खसन्निभमुद्रया ॥३१॥
प्रसारितशिरोग्रीवो नादोच्चारानुसारतः । समदृष्टिशिवश्चान्तः परभावसमन्वितः ॥३२॥
कुम्भमण्डलवह्निभ्यः[1] शिष्यादपि निजात्मनः । गृहीत्वा षड्विधाध्वानं श्रुगग्रे प्राणनाडिकं ॥
सञ्चिन्त्य विन्दुवद् ध्यात्वा क्रमशः सप्तधा यथा । प्रथमं प्राणसंयोगस्वरूपमपरन्ततः ॥३४॥
हृदयादिक्रमोचारविसृष्टं मन्त्रसञ्ज्ञकं । पूरकं कुम्भकं कृत्वा व्यादाय वदनं मनाक् ॥३५॥
सुषुम्णानुगतं नादस्वरूपन्तु तृतीयकं । सप्तमे कारणे त्यागात्प्रशान्तविस्वरं लयः ॥३६॥
शक्तिनादोद्‌र्ध्वसञ्चारस्तच्छक्तिविस्वरं मतं । प्राणस्य निखिलस्यापि शक्तिप्रमेयवर्जितं ॥
तत्कालविस्वरं षष्ठं शक्त्यतीतञ्च सप्तमं । तदेतद् योजनास्थानं विस्वरन्तत्त्वसञ्ज्ञकं ॥३८॥
पूरकं कुम्भकं कृत्वा व्यादाय वदनं मनाक् । शनैरुदीरयन् मूलं कृत्वा शिष्यात्मनो लयं ॥
हकारे तडिदाकारे षडध्वप्राणरूपिणि । उकारं परतो नाभेर्वितस्तिं व्याप्य संस्थितं ॥४०॥
ततः परं मकारन्तु हृदयाच्चतुरङ्गुलं । ओङ्कारं वाचकं विष्णोस्ततोऽष्टाङ्गुलकण्ठकं ॥४१॥
चतुरङ्गुलतालुस्थं मकारं रुद्रवाचकं । तद्वल्ललाटमध्यस्थं विन्दुमीश्वरवाचकं ॥४२॥
नादं सदाशिवं देवं ब्रह्मरन्ध्रावसानकं । शक्तिं च ब्रह्मरन्ध्रस्थां त्यजन्नित्यमनुक्रमात् ॥४३॥
दिव्यं पिपीलिकास्पर्शं तस्मिन्नेवानुभूय च । द्वादशान्ते परे तत्त्वे परमानन्दलक्षणे ॥४४॥
भावशून्ये मनोऽतीते शिवे नित्यगुणोदये । विलीय मानसे तस्मिन् शिष्यात्मानं विभावयेत् ॥
विमुञ्चन् सर्पिषो धारां ज्वालान्तेऽपि परे शिवे । योजनिकास्थिरत्वाय वौषडन्तशिवाणुना[2] ॥

दत्वा पूर्णां विधानेन गुणापादनमाचरेत् ।

ओं हां आत्मने[3] सर्वज्ञो भव स्वाहा । ओं हां आत्मने[4] परितृप्तो भव स्वाहा ।
ओं हूं आत्मने[5] अनादिबोधो भव स्वाहा । ओं हैं आत्मने[6] स्वतन्त्रो भव स्वाहा ।
ओं हौं आत्मन्[7] अलुप्तशक्तिर्भव स्वाहा । ओं हः आत्मने[8] अनन्तशक्तिर्भव स्वाहा ।

इत्थं षड्गुणमात्मानं गृहीत्वा परमाक्षरात् ॥ ४७ ॥

विधिना भावनोपेतः शिष्यदेहे नियोजयेत् । तीव्राणुशक्तिसम्पातजनितश्रमशान्तये ॥४८॥
शिष्यमूर्धनि विन्यस्येदर्घ्यादमृतविन्दुकं । प्रणमय्येशकुम्भादीन् शिवाद्दक्षिणमण्डले[9] ॥४९॥
सौम्यवक्त्रं व्यवस्थाप्य शिष्यं दक्षिणमात्मनः । त्वयैवानुगृहीतोऽयं मूर्त्तिमास्थाय मामकीं ॥
देवे वह्नौ गुरौ तस्माद्भक्तिं चाप्यस्य वर्द्धय[10] । इति विज्ञाप्य देवेशं प्रणम्य च गुरुः स्वयं ॥

---

१. कुण्डमण्डलवह्निभ्य इति ख. । २. वौषडन्तशिवात्मनेति ख. ।
३. ओं हीं आत्मन्निति ख. । ओं हौं आत्मन्निति घ. ।
४. ओं हीं आत्मने इति ख. ग. । ओं हीं आत्मन्निति ङ. ।
५. ओं हें आत्मन्निति ख. । ओं आत्मन्निति ग. घ. ।
६. ओं हें आत्मन्निति ख. । ओं हुं आत्मन्निति ग. । ओं हौं आत्मन्निति घ. ङ. ।
७. ओं हैं आत्मन्निति ख. । ८. ओं हः आत्मन्निति ख. ङ. ।
९. शिवदक्षिणमण्डले इति ग. । १०. भक्तिं नाथास्य वर्द्धयेति ख. ङ. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

श्रेयस्तवास्त्विति ब्रूयादाशिषं शिष्यमादरात् । ततः परमया भक्त्या दत्वा देवेऽष्टपुष्पिकां ॥
पुत्रकं शिवकुम्भेन संस्नाप्य विसृजेन्मखं ॥ ५२ ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये निर्वाणदीक्षासमापनं नाम
अष्टाशीतितमोऽध्यायः ।

ऊननवतितमोऽध्यायः

एकतत्त्वदीक्षाकथनं ।

ईश्वर उवाच

अथैकतात्त्विकी दीक्षा लघुत्वादुपदिश्यते । सूत्रबन्धादि कुर्व्वीत यथायोगं निजात्मना ॥१॥
कालाग्न्यादिशिवान्तानि तत्त्वानि परिभावयेत । समतत्त्वे समग्राणि सूत्रे मणिगणानिव ॥
आवाह्य शिवतत्त्वादि गर्भाधानादि पूर्ववत् । मूलेन किन्तु कुर्व्वीत सर्व्वशुल्कसमर्पणं ॥३॥
प्रददीत ततः पूर्णां तत्त्वव्रातोपगर्भितां । एकयैव यया शिष्यो निर्व्वाणमधिगच्छति ॥४॥
योजनायै शिवे चान्यां स्थिरत्वापादनाय च । दत्वा पूर्णां प्रकुर्वीत शिवकुम्भाभिषेचनं ॥५॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये एकतत्त्वदीक्षाकथनं नाम
ऊननवतितमोऽध्यायः ।

नवतितमोऽध्यायः

अभिषेकादिकथनं ।

ईश्वर उवाच

शिवमभ्यर्च्याभिषेकं कुर्य्याच्छिष्यादिके श्रिये ।
कुम्भानीशादिकाष्ठासु क्रमशो नव विन्यसेत् ॥ १ ॥
तेषु क्षारोदं क्षीरोदं दध्युदं घृतसागरं । इक्षुकादम्बरीस्वादुमस्तूदानष्टसागरान्[१] ॥२॥
निवेशयेद् यथासङ्ख्यमष्टौ विद्येश्वरानथ । एकं शिखण्डिनं रुद्रं श्रीकण्ठन्तु द्वितीयकं ॥३॥
त्रिमूर्त्तमेकरुद्राक्षमेकनेत्रं शिवोत्तमं । सप्तमं सूक्ष्मनामानमनन्तं रुद्रमष्टमं ॥४॥
मध्ये शिवं समुद्रञ्च शिवमन्त्रं च विन्यसेत् । यागालयान् दिगीशस्य रचिते स्नानमण्डपे ॥
कुर्य्यात् करद्वयायामां वेदीमष्टाङ्गुलोच्छ्रितां । श्रीपर्णाद्यासने तत्र विन्यस्यानन्तमानसं ॥६॥

---

१. स्वादुगर्भोदानष्टसागरानिति क. ख. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शिष्यं निवेश्य पूर्वास्यं सकलीकृत्य पूजयेत् । काञ्जिकौदनमृद्भस्मदूर्वागोमयगोलकैः ॥७॥
सिद्धार्थदधितोयैश्च कुर्य्यान्निर्म्मञ्छनं ततः । क्षारोदानुक्रमेणाथ हृदा विद्येशशम्बरैः ॥८॥
कलसैः स्नापयेच्छिष्यं स्वधाधारणयान्वितं । परिधाप्य सिते वस्त्रे निवेश्य शिवदक्षिणे ॥९॥
पूर्व्वोदितासने शिष्यं पुनः पूर्ववदर्च्चयेत् । उष्णीषं योगपट्टञ्च मुकुटं कर्त्तरीं घटीं ॥१०॥
अक्षमालां पुस्तकादि शिविकाद्यधिकारकं । दीक्षाव्याख्याप्रतिष्ठाद्यं ज्ञात्वाऽद्यप्रभृति त्वया ॥
सुपरीक्ष्य[1] विधातव्यमाज्ञां संश्रावयेदिति । अभिवाद्य ततः शिष्यं प्रणिपत्य महेश्वरं ॥१२॥
विघ्नज्वालापनोदार्थं कुर्य्याद्विज्ञापनां यथा । अभिषेकार्थमादिष्टस्त्वयाऽहं गुरुमूर्त्तिना ॥१३॥
संहितापारगः सोऽयमभिषिक्तो मया शिव । तृप्तये मन्त्रचक्रस्य पञ्चपञ्चाहुतीर्यजेत् ॥१४॥

दद्यात् पूर्णां ततः शिष्यं स्थापयेन्निजदक्षिणे ।
शिष्यदक्षिणपाणिस्था अङ्गुलष्ठाद्यङ्गुलीः क्रमात् ॥१५॥

लाञ्छयेदुपवद्धाय दग्धदर्भाग्रशम्बरैः । कुसुमानि करे दत्वा प्रणामं कारयेदमुं ॥१६॥

कुम्भेऽनले शिवे स्वस्मिंस्ततस्तत्कृत्यमाविशेत् ।
अनुग्राह्यास्त्वया शिष्याः शास्त्रेण सुपरीक्षिताः ॥ १७ ॥
भूपवन्मानवादीनामभिषेकादभीप्सितं ।
आं श्रां श्रौं पशुं हूं फडिति अस्त्रराजाभिषेकतः ॥ १८ ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये अभिषेकादिकथनं नाम नवतितमोऽध्यायः ।

एकनवतितमोऽध्यायः

विविधमन्त्रादिकथनम् ।

ईश्वर उवाच

अभिषिक्तः शिवं विष्णुं पूजयेद्भास्करादिकान् ।
शङ्खभेर्य्यादिनिर्घोषैः स्नापयेत् पञ्चगव्यके ॥ १ ॥

यो देवान्देवलोकं स याति स्वकुलमुद्धरन् । वर्षकोटिसहस्रेषु यत् पापं समुपार्ज्जितं ॥२॥
घृताभ्यङ्गेन देवानां भस्मीभवति पावके । आढकेन घृताद्यैश्च देवान् स्नाप्य सुरो भवेत् ॥३॥
चन्दनेनानुलिप्याथ गन्धाद्यैः पूजयेत्तथा । अल्पायासन स्तुतिभि स्तुता देवास्तु सर्वदा॥४॥
अतीतानागतज्ञानमन्त्रधीभुक्तिमुक्तिदाः । गृहीत्वा प्रश्नसूक्ष्मार्णे हृते द्वाभ्यां शुभाशुभं ॥५॥
त्रिभिर्जीवो मूलधातुश्चतुर्भिर्ब्राह्मणादिधीः । पञ्चादौ भूततत्त्वादि शेषे चैवं जपादिकं ॥६॥
एकत्रिकातित्रिकान्ते पदे द्विपमकान्तके । अशुभं मध्यमं मध्येष्विन्द्रस्त्रिषु नृपः शुभः ॥७॥
सङ्ख्यावृन्दे जीविताब्दं यमोऽब्ददशहा ध्रुवं । सूर्य्येभास्येशदुर्गाश्रीविष्णुमन्त्रैर्ल्लिखेत् कजे ॥
कठिन्या जप्तया स्पृष्टे गोमूत्राकृतिरेखया । आरभ्यैकं त्रिकं यावत्त्रिचतुष्कावसानकं ॥९॥

---

१. स्वयं वीक्ष्येति ग. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मरुद् व्योम मरुद्वीजैश्चतुःषष्टिपदे तथा। अक्षाणां पतनात् स्पर्शाद्विषमादौ शुभादिकं ॥१०॥
एकत्रिकादिमारभ्य अन्ते चाष्टत्रिकं तथा।
ध्वजाद्यायाः समा हीना विषमाः शोभनादिदाः[१] ॥ ११ ॥
आइपल्लवितैः काद्यैः षोडशस्वरपूर्व्वगैः। आद्यैस्तैः सस्वरैः काद्यैस्त्रिपुरानाममन्त्रकाः॥१२॥
ह्रीं वीजाः प्रणवाद्याः स्युर्न्नमोऽन्ता यत्र पूजने।
मन्त्रा विंशतिसाहस्राः शतं षष्ठ्यधिकं ततः ॥ १३ ॥
आं ह्रीं मन्त्राः सरस्वत्याश्चण्डिकायास्तथैव च।
तथा गौर्य्याश्च दुर्गाया आं श्रीं मन्त्राः श्रियस्तथा ॥ १४ ॥
तथा क्षौं कौं मन्त्राः सूर्य्यस्य[२] आं हौं मन्त्राः शिवस्य च।
आं गं मन्त्रा गणेशस्य आं मन्त्राश्च तथा हरेः ॥ १५ ॥
शतार्द्धैकाधिकैः काद्यैस्तथा षोडशभिः स्वरैः।
काद्यैस्तैः सस्वरैराद्यैः कान्तैर्म्मन्त्रास्तथाखिलाः ॥ १६ ॥
रवीशदेवीविष्णूनां खाब्धिदेवेन्द्रवर्त्तनात्।
शतत्रयं षष्ट्यधिकं प्रत्येकं मण्डलं क्रमात्।
अभिषिक्तो जपेद् ध्यायेच्छिष्यादीन् दीक्षयेद्गुरुः ॥ १७ ॥

इत्यादिमहपुराणे आग्नेये नानामन्त्रादिकथनं नाम एकनवतितमोऽध्यायः।

द्विनवतितमोऽध्यायः

प्रतिष्ठाविधिकथनम्।

ईश्वर उवाच

प्रतिष्ठां सम्प्रवक्ष्यामि क्रमात् सङ्क्षेपतो गुह।
पीठं शक्तिः शिवो लिङ्गं तद्योगः सा शिवाणुभिः ॥ १ ॥
प्रतिष्ठायाः पञ्च भेदास्तेषां रूपं वदामि ते। यत्र ब्रह्मशिलायोगः सा प्रतिष्ठा विशेषतः ॥२॥
स्थापनन्तु यथायोगं पीठ एव निवेशनं। प्रतिष्ठाभिन्नपीठस्य स्थितस्थापनमुच्यते ॥३॥
उत्थापनञ्च सा प्रोक्ता लिङ्गोद्धारपुरःसरा। यस्यां तु लिङ्गमारोप्य सस्कारः क्रियते बुधैः॥४॥
आस्थापनं तदुद्दिष्टं द्विधा विष्ण्वादिकस्य च[३]। आसु सर्व्वासु चैतन्यं नियुञ्जीत परं शिवम् ॥
यदाधारादिभेदेन[४] प्रासादेष्वपि पञ्चधा। परीक्षामथ मेदिन्याः कुर्य्यात्प्रासादकाम्यया ॥

---

१. शोभनादिकाः इति ङ.। २. तथा क्षौं ह्रौं मन्त्राः सूर्य्यस्येति ग. घ.।
३. उत्थापनञ्चेत्यादिः, विष्ण्वादिकस्य चेत्यन्तः सार्द्धैकश्लोकात्मकपाठो ग० पुस्तके नास्ति।
४. यथाधाराभिभेदेनेति ग०।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शुक्लाज्यगन्धा रक्ता च रक्तगन्धा सुगन्धिनी[१]।
पीता कृष्णा सुरागन्धा विप्रादीनां मही क्रमात् ॥ ७ ॥

पूर्व्वेशोत्तरसर्व्वत्र पूर्वा चैषां विशिष्यते[१]। आखाते ह्यस्तिके यस्याः पूर्णे मृदधिका भवेत ॥
उत्तमान्तां महीं विद्यात्तोयाद्यैर्वा समुक्षितां। अस्थ्यङ्गारादिभिर्दुष्टामत्यन्तं शोधयेद् गुरुः[३]॥
नगरग्रामदुर्गार्थं गृहप्रासादकारणं[४]। खननैर्गोकुलावासैः कर्षणैर्वा मुहुर्मुहुः ॥१०॥
मण्डपे द्वारपूजादि मन्त्रतृप्त्यवसानकं[५]। कर्म्म निर्वर्त्याघोरास्त्रं सहस्रं[६] विधिना यजेत ॥
समीकृत्योपलिप्तायां भूमौ संशोधयेद्दिशः। स्वर्णदध्यक्षतै रेखाः प्रकुर्वीत[७] प्रदक्षिणं ॥१२॥
मध्यादीशानकोष्ठस्थे पूर्णकुम्भे[८] शिवं यजेत्। वास्तुमभ्यर्च्य तत्तोयैः सिञ्चेत् कुद्दालकादिकं ॥
वाह्ये रक्षोगणानिष्ट्वा विधिना दिग्बलिं क्षिपेत्। भूमिं संसिच्य संस्नाप्य[९] कुद्दालाद्यं[१०] प्रपूजयेत्॥
अन्यं वस्त्रयुगच्छन्नं कुम्भं स्कन्धे द्विजन्मनः। निधाय गीतवाद्यादिब्रह्मघोषसमाकुलं ॥१५॥
पूजां कुम्भे समाहृत्य प्राप्ते लग्नेऽग्निकोष्ठके। कुद्दालेनाभिषिक्तेन मध्वक्तेन तु खानयेत ॥
नैर्ऋत्यां क्षेपयेन्मृत्स्नां खाते कुम्भजलं क्षिपेत्। पुरस्य पूर्व्वसीमान्तं[११] नयेद् यावदभीप्सितं॥
अथ तत्र क्षणं स्थित्वा भ्रामयेत्[१२] परितः पुरं। सिञ्चन् सीमान्तचिह्नानि यावदीशानगोचरं॥
अर्घ्यदानमिदं प्रोक्तं तत्र कुम्भपरिभ्रमात्। इत्थं परिग्रहं भूमेः कुर्व्वीत तदनन्तरं ॥१६॥
कर्करान्तं जलान्तं वा शल्यदोषजिघांसया। खानयेद् भूः कुमारी चेद् विधिना शल्यमुद्धरेत् ॥

अकचटतपयशहान् मानवश्चेत प्रश्नाक्षराणि तु[१३]।
अग्नेर्ध्वजादिपतिताः स्वस्थाने शल्यमाख्यान्ति ॥ २१ ॥

कर्त्तुश्चाङ्गविकारेण जानीयात्तत्प्रमाणतः। पश्वादीनां प्रवेशेन कीर्त्तनैर्विरुतैर्दिशः ॥२२॥
मातृकामष्टवर्गाढ्यां फलके भुवि वा लिखेत। शल्यज्ञानं वर्गवशात् पूर्वादीशान्ततः[१४] क्रमात्॥

अवर्गे चैव लोहन्तु कवर्गेऽङ्गारमग्नितः।
चवर्गे भस्म दक्षे स्याट् टवर्गेऽस्थि च नैर्ऋते ॥ २४ ॥

तवर्गे चेष्टका चाप्ये कपालञ्च पवर्गके। यवर्गे शवकीटादि शवर्गे लोहमादिशेत ॥ २५ ॥
हवर्गे रजतं तद्वदवर्गाच्चानर्थकरानपि। प्रोक्ष्यात्मभिः करापूरैरष्टाङ्गुलमृदन्तरैः ॥ २६ ॥

---

१. रक्तगन्धानुगन्धिनीति ख.। २. प्रशस्यते इति घ.।
३. शोधयेद् ध्रुवमिति घ.। ४. नगरग्रामेत्यर्द्धश्लोको घ. पुस्तके नास्ति।
५. मन्त्रदीप्तावसानकमिति ग.। मन्त्रभूम्यवसानकमिति घ.।
६. निर्वर्त्य घोरास्त्रं महास्त्रमिति ग.। ७. रेखां प्रकुर्वीतेति ख. ग.।
८. स्वर्णकुण्डे इति ग.। स्वर्णकुम्भे इति घ. ङ०, च।
९. भूमिं संसिच्य संस्थाप्येति ग. घ. ङ. च। १०. कुद्दालाख्यमिति ग०।
११. पूर्वमीशान्तमिति ख.। १२. स्रावयेत् इति ख.।
१३. नव चेत् प्रश्नाक्षराणि भाषन्ते इति ग., घ. च.। १४. पूर्वादीनां तत इति ख.।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पादोनं खातमापूर्य्य सजलैर्मुद्गराहतैः[1] । लिप्तां समप्लवां तत्र कारयित्वा भुवं गुरुः ॥२७॥
सामान्यार्घ्यकरो यायान्मण्डपं वक्ष्यमाणकं । तोरणद्वाःपतीनिष्ट्वा प्रत्यग्द्वारेण संविशेत् ॥२८॥
कुर्य्यात्तत्रात्मशुद्ध्यादि कुण्डमण्डपसंस्कृतिं । कलशं वर्द्धनीसक्तं[2] लोकपालशिवार्च्चनं ॥
अग्नेर्जननपूजादि सर्व्वं पूर्ववदाचरेत् । यजमानान्वितो[3] यायाच्छिलानां स्नानमण्डपं ॥

शिलाः प्रासादलिङ्गस्य पादधर्म्मादिसञ्ज्ञकाः ।
अष्टाङ्गुलोच्छ्रिताः शस्ताश्चतुरस्राः करायताः ॥ ३१ ॥

पाषाणानां शिलाः कार्य्या इष्टकानां तदर्द्धतः । प्रासादेऽश्मशिलाः शैले इष्टका इष्टकामये ॥

अङ्किता नववक्त्राद्यैः[4] पङ्कजाः पङ्कजाङ्किताः ।
नन्दा भद्रा जया रिक्ता पूर्णाख्या पञ्चमी मता[5] ॥ ३३ ॥

आसां पद्मो महापद्मः शङ्खोऽथ मकरस्तथा । समुद्रश्चेति पञ्चामी निधिकुम्भाः क्रमादधः ॥
नन्दा भद्रा जया पूर्णा अजिता चापराजिता । विजया मङ्गलाख्या च धरणी नवमी शिला ॥
सुभद्रश्च विभद्रश्च सुनन्दः पुष्पनन्दकः[6] । जयोऽथ विजयश्चैव कुम्भः पूर्णस्तथोत्तरः[7] ॥३६॥

नवानान्तु यथासङ्ख्यं निधिकुम्भा अमी नव ।
आसनं प्रथमं दत्त्वा[8] ताडयोल्लिख्य शराणुना[9] ॥ ३७ ॥

सर्व्वासामविशेषेण तनुत्रेणावगुण्ठनं[10] । मृद्भिर्गोमयगोमूत्रकषायैर्गन्धवारिणा ॥३८॥
अस्त्रेण हूंफडन्तेन[11] मलस्नानं समाचरेत् । विधिना पञ्चगव्येन स्नानं पञ्चामृतेन च ॥
गन्धतोयान्तरं कुर्य्यान्निजनामाङ्किताणुना[12] । फलरत्नसुवर्णानां गोशृङ्गसलिलैस्ततः ॥४०॥
चन्दनेन समालभ्य[13] वस्त्रैराच्छादयेच्छिलां । स्वर्णोत्थमासनं दत्वा नीत्वा यागं प्रदक्षिणं ॥
शय्यायां कुशतल्पे वा हृदयेन निवेशयेत्[14] । सम्पूज्य न्यस्य बुद्ध्यादिधरान्तं तत्त्वसञ्चयं ॥

त्रिखण्डव्यापकं तत्त्वत्रयञ्चानुक्रमान् न्यसेत् ।
बुद्ध्यादौ चित्तपर्य्यन्ते चिन्तातन्मात्रकावधौ[15] ॥ ४३ ॥

---

१. मुशलैर्मुद्गराहतैरिति ङ० । २. वर्द्धनीयुक्तमिति ग०. ङ. च ।
३. यजमानार्चित इति घ० । ४. नवरुद्राद्यैरिति घ० ।
५. 'पाषाणानामित्यादिः, 'पञ्चमी मता' इत्यन्तः श्लोकद्वयात्मकपाठो ग. पुस्तके नास्ति ।
६. पुष्पदन्तक इति ख. ग. घ. ङ. च. । ७. पूर्वस्तथोत्तर इति घ. ।
८. प्रणवं दत्वा इति ख. । ९. शरात्मनेति ख. ग. च. ।
१०. तन्मात्रेणावगुण्ठनमिति ख. । ११. हुंफडन्तेनेति ग. ।
१२. कुर्य्याद् द्विजनामाङ्कितात्मनेति ख. कुर्य्यान् निजनामाङ्कितात्मनेति ग. । १३. समालिप्येति ग. ।
१४. कुशतल्पे वा हृदयेन विशेषयेत् इति ख. । कुशतल्पे च हृदयेन निवेशयेत् । इति ग. ।
१५. बुद्ध्यादौ चित्तपर्यन्ते चित्ततन्मात्रकावधौ इति घ. । सम्पूज्य इत्यादिः तन्मात्रकावधावित्यन्तः सार्द्धैकश्लोकपाठो ग० पुस्तके नास्ति ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तन्मात्रादौ धरान्ते च शिवविद्यात्मनां स्थितिः ।
तत्त्वानि निजमन्त्रेण तत्त्वेशांश्च हृदाऽर्च्चयेत् ॥ ४४ ॥
स्थानेषु पुष्पमालादिचिह्नितेषु यथाक्रमं ।

ओं हूं[1] शिवतत्त्वाय नमः । ओं हूं[2] शिवतत्त्वाधिपतये रुद्राय नमः । ओं हां विद्यातत्त्वाय नमः । ओं हां[3] विद्यातत्त्वाधिपाय[4] विष्णवे नमः । ओं हां आत्मतत्त्वाय नमः । ओं हां आत्मतत्त्वाधिपतये ब्रह्मणे नमः[5] ।

क्षमाग्नियजमानार्कान् जलवातेन्दुखानि च ॥ ४५ ॥

प्रतितत्त्वं न्यसेदष्टौ मूर्त्तीः प्रतिशिरः शिलां । सर्वं पशुपति चोग्रं रुद्रं भवमथेश्वरं । ४६॥

महादेवं च भीमं च मूर्त्तीशांश्च यथाक्रमात् ।
ओं धरामूर्त्तये नमः, ओं धराधिपतये नमः,
इत्यादिमन्त्रान् लोकपालान् यथासङ्ख्यं निजाणुभिः[8] ॥ ४७ ॥

विन्यस्य पूजयेत् कुम्भांस्तन्मन्त्रैर्वा निजाणुभिः[9]। इन्द्रादीनां तु वीजानि वक्ष्यमाणक्रमेण तु ॥

लूं रूं शूं पूं वूं यूं मूं हूं क्षूमिति[10] ।

उक्तो नवशिलापक्षः शिला पञ्चपदा तथा । प्रतितत्त्वं न्यसेन्मूर्त्तीः सृष्ट्या पञ्च धरादिकाः ॥
ब्रह्मा विष्णुस्तथा रुद्र ईश्वरश्च सदाशिवः । एते च पञ्च मूर्त्तीशा यष्टव्यास्तासु[11] पूर्ववत् ॥
ओं पृथ्वीमूर्त्तये नमः । ओं पृथ्वीमूर्त्त्यधिपतये ब्रह्मणे नमः । इत्यादि मन्त्राः ।

सम्पूज्य कलशान् पञ्च क्रमेण निजनामभिः ।
निरुन्धीत[12] विधानेन न्यासो मध्यशिलाक्रमात् ॥ ५१ ॥

कुर्य्यात् प्राकारमन्त्रेण भूतिदर्भैस्तिलैस्ततः । कुण्डेषु धारिकां शक्तिं विन्यस्याभ्यर्च्य तर्पयेत् ॥

तत्त्वतत्त्वाधिपान् मूर्त्तीर्मूर्त्तीशांश्च[13] घृतादिभिः ।
ततो ब्रह्मांशशुद्ध्यर्थं मूलाङ्गं ब्रह्मभिः क्रमात् ॥ ५३ ॥

---

१. २ ओं हूं इति ग. घ. च । ३. ओं ह्रीं इति घ. ।
४. विद्यातत्त्वाधिपतये इति ख. ।
५. ओं हूं शिवतत्त्वाधिपतये इत्यादिः, ओं हां आत्मतत्त्वाधिपतये ब्रह्मणे नम इत्यन्तः पाठो ग. पुस्तके नास्ति ।
६. पशुपतिं भीममिति घ. । ७. भवमखेश्वरम् इति घ. ।
८. ९. निजात्मभिरिति ख. ग. । विन्यस्येत्यर्द्धश्लोको ग. पुस्तके नास्ति ।
१०. ओं हूं धूं बूं यूं मूं हं क्षामितीति ग. । ओं कं सूं पूं शूं हूं क्षमितीति घ. । लूं रूं शूं पूं वूं चूं सूं हूं क्षूमितीति ख. ।
११. न्यस्तव्यास्तासु इति ख. । १२. निबध्नीतेति ख. ग. ङ. च. ।
१३. तत्र तत्राधिपान् मूर्त्तीर्मूर्त्तीशांश्चेति ङ. । तन्त्रतत्त्वाधिपान् मूर्त्तीर्मूर्त्तीशांस्त्वेति ख. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कृत्वा शतादिपूर्णान्तं प्रोक्ष्याः शान्तिजलैः शिलाः[१]। पूजयेच्च कुशैः स्पृष्ट्वा प्रतितत्त्वमनुक्रमात् ॥
सांन्निध्यमथ सन्धानं कृत्वा शुद्धं[२] पुनर्न्यसेत्[३]। एवं भागत्रये कर्म्म गत्वा गत्वा समाचरेत् ॥

ओं आं ई आत्मतत्त्वविद्यातत्त्वाभ्यां नमः[४] इति ।

संस्पृशेद् दर्भमूलाद्यैर्ब्रह्माङ्गादित्रयं क्रमात् । कुर्य्यात्तत्त्वानुसन्धानं ह्रस्वदीर्घप्रयोगतः ॥
ओं हां ॐ[५] विद्यातत्त्वशिवतत्त्वाभ्यां नमः । घृतेन मधुना पूर्णांस्ताम्रकुम्भान् सरत्नकान् ॥
पञ्चगव्यार्घ्यसंसिक्तान्[६] लोकपालाधिदैवतान् ॥ ५७ ॥

पूजयित्वा निजैर्म्मन्त्रैः सन्निधौ होममाचरेत । शिलानामथ सर्वासां संस्मरेदधिदेवताः ॥
विद्यारूपाः कृतस्नाना हेमवर्णाः शिलाम्बराः । न्यूनादिदोषमोषार्थं[७] वास्तुभूमेश्च शुद्धये ॥
यजेदस्त्रेण मूर्द्धान्तमाहुतीनां[८] शतं शतं ॥ ५९ ॥

इत्याग्निमहापुराणे आग्नेये शिलान्यासकथनं नाम द्विनवतितमोऽध्यायः ।

त्रिनवतितमोऽध्यायः

वास्तुपूजादिविधानम् ।

ईश्वर उवाच

ततः प्रासादमासूत्र्य वर्त्तयेद्वास्तुमण्डपं[९] । कुर्य्यात् कोष्ठचतुःषष्टिं क्षेत्रे वेदास्रके समे ॥१॥
कोणेषु विनयसेद् वंशौ[१०] रज्जवोऽष्टौ विकोणगाः ।
द्विपदाः षट्पदास्तास्तु वास्तुन्तत्रार्च्चयेद् यथा ॥ २ ॥
आकुञ्चितकचं[११] वास्तुमुत्तानमसुराकृति[१२] । स्मरेत् पूजासु कुड्यादिनिवेशे उत्तराननं ॥

---

१. प्रोक्ष्य शान्तिजलैः शिलामिति ख. । प्रोक्ष्य शान्तिजलैः शिला इति ग. घ. च. ।
२. कृत्वा मन्त्रमिति ग. ।
३. सान्निध्यमित्यर्धश्लोको ङ. पुस्तके नास्ति । सान्निध्यमथ सन्धानं' इत्यतः परः 'ह्रस्वदीर्घप्रयोगतः' इत्यतः प्राङ् मध्वगपाठो घ. पुस्तके नास्ति ।
४. ओं आं हाँ आत्मतत्त्वविद्यातत्त्वाय नम इति ग. । ओं आं ई उं विद्यातत्त्वशिवतत्त्वाभ्यां नम इति ङ. ।
ओं आं ई आत्मविद्यातत्त्वाय नम इति ख. ।
५. ओं ई उं इति घ. ङ. च. ।
६. पञ्चगव्येन संसिक्तान् इति ग. ।
७. न्यूनादिदोषनाशार्थमिति घ. ।
८. यजेदस्त्रेण शुद्ध्यर्थमाहुतीनामिति घ. ।
९. वास्तु मण्डलमिति ग. ङ । तत इति श्लोकार्द्धं घ. पुस्तके नास्ति ।
१०. विन्यसेद्वंशमिति ख. ।
११. आकुञ्चितकरमिति घ. ।
१२. कुर्य्यादित्यादिः मुत्तानमसुराकृतिमित्यन्तः श्लोकद्वयात्मकपाठो ग. पुस्तके नास्ति ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जानुनी कूर्परौ शक्थि दिशि वातहुताशयोः ।
पैत्र्यां पादपुटे रौद्र्यां शिरोऽस्य हृदयेऽञ्जलिः ॥ ४ ॥

अस्य देहे समारूढ़ा देवताः पूजिताः शुभाः। अष्टौ कोणाधिपास्तत्र कोणार्द्धेष्वष्टसु स्थिताः[१]॥
षट्पदास्तु मरीच्याद्या दिक्षु पूर्वादिषु क्रमात् ।
मध्ये चतुष्पदो ब्रह्मा शेषास्तु पदिकाः[२] स्मृताः ॥ ६ ॥

समस्तनाड़ीसंयोगे महामर्म्मानुजं फलं । त्रिशूलं स्वस्तिकं वज्रं[३] महास्वस्तिकसम्पुटौ ॥
त्रिकटुं[४] मणिबन्धं च सुविशुद्धं पदं तथा । इति द्वादश मर्म्माणि वास्तोर्भित्त्यादिषु त्यजेत् ॥
साज्यमक्षतमीशाय पर्जन्यायाम्बुजोदकं । ददीताथ जयन्ताय पताकां कुङ्कुमोज्ज्वलां[५] ॥
रत्नवारि महेन्द्राय रवौ धूम्रं वितानकं । सत्याय घृतगोधूममाज्यभक्तं भृशाय च ॥१०॥
विमांसमन्तरीक्षाय शक्तुन्तेभ्यस्तु पूर्वतः । मधुक्षीराज्यसम्पूर्णां प्रदद्याद्वह्नये श्रुचं ॥११॥
लाजान् पूर्णे सुवर्णाम्बु वितथाय निवेदयेत । दद्याद् गृहक्षते क्षौद्रं[६] यमराजे पलौदनं[७] ॥१२॥
गन्धं गन्धर्वनाथाय जिह्वां भृङ्गाय पक्षिणः । मृगाय पद्मपर्णानि[८] याम्यामित्यष्टदेवताः[९] ॥१३॥
पित्रे तिलोदकं क्षीरं वृक्षजं दन्तधावनं । दौवारिकाय देवाय प्रदद्याद् धेनुमुद्रया[१०] ॥१४॥
सुग्रीवाय दिशेत् पूपान् पुष्पदन्ताय दर्भकं । रक्तं प्रचेतसे पद्ममसुराय[११] सुरासवं ॥१५॥
घृतं गुड़ौदनं शेषे रोगाय घृतमण्डकान् । लाजान् वा पश्चिमाशायां देवाष्टकमितीरितं ॥१६॥
मारुताय ध्वजं पीतं नागाय नागकेशरं । मुख्ये भक्ष्याणि भल्लाटे मुद्गसूपं सुसंस्कृतं ॥१७॥
सोमाय पायसं साज्यं शालूकमूषये[१२] दिशेत् । लोपीमदितये दित्यै पुरीमित्युत्तराष्टकं[१३]॥१८॥
मोदकान् ब्रह्मणः प्राच्यां षट्पदाय मरीचये । सवित्रे रक्तपुष्पाणि वह्न्यधःकोणकोष्ठके॥१९॥
तदधःकोष्ठके दद्यात् सावित्र्यै च कुशोदकं[१४]। दक्षिणे चन्दनं[१५] रक्तं षट्पदाय विवस्वते ॥२०॥
हरिद्रौदनमिन्द्राय रक्षोधःकोणकोष्ठके । इन्द्रजयाय मिश्रान्नमिन्द्राधस्तान्निवेदयेत ॥२१॥
वारुण्यां षट्पदासीने मित्रे सगुड़मोदनं । रुद्राय घृतसिद्धान्नं वायुकोणाधरे पदे ॥२२॥
तदधो रुद्रदासाय मासं मार्गमथोत्तरे । ददीत माषनैवेद्यं[१६] षट्पदस्थे धराधरे[१७] ॥२३॥

---

१. कोणार्द्धेषु व्यवस्थिता इति घ. । २. पादिका इति ख. घ. ।
३. मुष्टिकं वक्त्रमिति ख. । ४. त्रिकोष्ठमिति ग. ।
५. ददीतेति अर्द्धश्लोको ग. पुस्तके नास्ति ।
६. भूतक्षये रौद्रमिति ख. छ, च । गृहक्षते क्षौद्रमिति घ. ।
७. फलौदनमिति ख. घ. च । ८. यवपर्णानीति घ० । पद्मवर्णानीति ख, छ. च ।
९. याम्यामित्यष्टदेवता इति ख. । १०. प्रदद्यादघमुद्रयेति ख. । प्रदद्याद्वनमुद्रयेति घ. छ. च ।
११. पद्मं सम्बरायेति घ. । १२. शालूकं शृणयेति ख., छ. च ।
१३. पुरीमित्यवराष्टकमिति ग. । १४. सवित्रे च कुशोदकमिति ग. ।
१५. सावित्र्यै चन्दनमिति ग. । १६. मांसनैवेद्यमिति ख. छ. च ।
१७. वराधरे इति घ. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आपाय शिवकोणाधः तद्वत्साय च तत्स्थले[१]। क्रमाद्दद्याद्दधिक्षीरं पूजयित्वा विधानतः ॥२४॥
चतुष्पदे निविष्टाय ब्रह्मणे मध्यदेशतः। पञ्चगव्याक्षतोपेतञ्चरुं साज्यं निवेदयेत् ॥२५॥
ईशादिवायुपर्य्यन्तकोणेष्वथ यथाक्रमं। वास्तुवाह्ये चरक्याद्याश्च तत्त्वः पूजयेद् यथा ॥२६॥
चरक्यै[२] सघृतं मांसं विदार्य्यै[३] दधिपङ्कजे। पूतनायै पलं पित्तं रुधिरं च निवेदयेत् ॥२७॥
अस्थीनि पापराक्षस्यै रक्तपित्तपलानि च। ततो माषौदनं[४] प्राच्यां स्कन्दाय विनिवेदयेत् ॥२८॥

अर्य्यम्णे दक्षिणाशायां पूपान् कृसरया युतान्।
जम्भकाय[५] च वारुण्यामामिषं रुधिरान्वितं ॥ २९ ॥

उदीच्यां पिलिपिञ्जाय[६] रक्तान्नं कुसुमानि च। यजेद्वा सकलं वास्तुं कुशदध्यक्षतैर्जलैः॥३०॥
गृहे च नगरादौ च एकाशीतिपदैर्यजेत्। त्रिपदा रज्जवः कार्य्याः षट्पदाश्च त्रिकोणके ॥३१॥

ईशाद्याः पादिकास्तस्मिन्नागाद्याश्च द्विकोष्ठगाः[७]।
षट्पदस्था मरीच्याद्या ब्रह्मा नवपदः स्मृतः ॥ ३२ ॥

नगरग्रामखेटादौ वास्तुः शतपदोऽपि[८] वा। वंशद्वयं कोणगतं दुर्जयं दुर्द्धरं सदा ॥३३॥
यथा देवालये न्यासस्तथा शतपदे हितः। ब्रह्माः स्कन्दादयस्तत्र विज्ञेयाश्चैव षट्पदाः ॥३४॥
चरक्याद्या भूतपदा रज्जुवंशादि पूर्ववत्। देशसंस्थापने[९] वास्तु चतुस्त्रिंशच्छतं[१०] भवेत् ॥३५॥
चतुःषष्टिपदो[११] ब्रह्मा मरीच्याद्याश्च देवताः। चतुःपञ्चाशत्पदिका आपाद्यष्टौ रसाग्निभिः॥३६॥

ईशानाद्या नवपदाः स्कन्दाद्याः शक्तिकाः[१२] स्मृताः।
चरक्याद्यास्तद्वदेव रज्जुवंशादि पूर्ववत्[१३] ॥ ३७ ॥

ज्ञेयो वंशसहस्रैस्तु वास्तुमण्डलगः पदैः। न्यासो नवगुणस्तत्र कर्त्तव्यो देशवास्तुवत् ॥३८॥
पञ्चविंशत्पदो वास्तुर्वैतालाख्यश्चितौ स्मृतः। अन्यो नवपदो वास्तुः षोडशाङ्घ्रिस्तथापरः ॥
षडस्त्रत्र्यस्रवृत्तादेर्मध्ये स्याच्चतुरस्रकं। खाते वास्तोः समं पृष्ठे[१४] न्यासे ब्रह्मशिलात्मके ॥४०॥

---

१. आपवत्सचतुष्टये इति ख. । तद्वत्सायै च तत्तले इति घ. ज. च ।
२. वाराह्यै इति ङ. छ. च । ३. विपचे इति ख. छ. च ।
४. ततो मांसौदनमिति ख. घ. छ. च । ५. कुम्भकायेति छ. ।
६. विलिपिच्छायेति ङ । लिपिपिञ्जायेति छ. ।
७. नागाद्याश्चार्द्धकोष्ठगा इति ख. छ. च । ८. शतपदेऽपीति ग. ।
९. दशमं स्थापने इति ख., ग., घ., ङ, छ. च. ।
१०. चतुर्विंशच्छतमिति ग. । ११. चतुःषष्टिपदे इति घ. ।
१२. ईशानाद्याः शिवपदा स्कन्दाद्याः पदिका इति घ. ।
१३. समञ्च स्थापने वास्तुश्चतुस्त्रिंशच्छतं भवेदिति घ. पुस्तकेऽधिकः पाठः । चतुःषष्टिपदो ब्रह्मा इत्यादिः, रज्जुवंशादि पूर्ववत् इत्यन्तः पाठो ग. पुस्तके नास्ति ।
१४. खातारम्भे समं पृष्ठे इति ङ. । खातो वास्तोः समः पृष्ठे इति छ. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शावाकस्य निवेशे च[१] मूर्त्तिसंस्थापने तथा । पायसेन तु नैवेद्यं सर्वेषां वा प्रदापयेत् ।।४१।।
उक्तानुक्ते तु वै वास्तुः पञ्चहस्तप्रमाणतः[२]। गृहप्रासादमानेन वास्तुः श्रेष्ठस्तु सर्वदा[३] ।।४२।।

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये वास्तुपूजाकथनं नाम
त्रिनवतितमोऽध्यायः ।

चतुर्णवतितमोऽध्यायः

शिलाविन्यासविधानम् ।

ईश्वर उवाच

ईशादिषु चरक्याद्याः[४] पूर्ववत् पूजयेद्वहिः । आहुतित्रितयं दद्यात् प्रतिदेवमनुक्रमात् ।।१।।
दत्वा भूतबलिं लग्ने शिलान्यासमनुक्रमात् । मध्यसूत्रे[५] न्यसेच्छक्तिं कुम्भञ्चानन्तमुत्तमं[६]।।२।।
नकारारूढ़मूलेन कुम्भेऽस्मिन् धारयेच्छिलां । कुम्भानष्टौ सुभद्रादीन् दिक्षु पूर्वादिषु क्रमात् ।।

लोकपालाणुभिर्न्यस्य[७] श्वभ्रेषु[८] न्यस्तशक्तिषु ।
शिलास्तेष्वथ[९] नन्दाद्याः क्रमेण[१०] विनिवेशयेत् ।। ४ ।।
शम्बरैर्मूर्त्तिनाथानां[११] यथा स्युर्भित्तिमध्यतः ।
तासु धर्म्मादिकानष्टौ[१२] कोणात् कोणं विभागशः[१३]।। ५ ।।

सुभद्रादिषु नन्दाद्याश्चतस्रोऽग्न्यादिकोणगाः। अजिताद्याश्च पूर्वादिजयादिष्वथ[१४] विन्यसेत्।।
ब्रह्माणं चोपरि नस्य[१५] व्यापकं च महेश्वरं । चिन्तयेदेषु चाधानं व्योमप्रासादमध्यगं ।।८।।
बलिन्दत्वा जपेदस्त्रं विघ्नदोषनिवारणं[१६] । शिलापञ्चकपक्षेऽपि मनागुद्दिश्यते यथा ।।६।।
मध्ये पूर्णशिलान्यासः[१७] सुभद्रकलशेऽर्द्धतः । पद्मादिषु च नन्दाद्याः कोणेष्वग्न्यादिषु क्रमात्।।

---

१. निवेशेनेति ख. छ. च. ।　　२. परं हस्तप्रमाणत इति छ. ।
३. सर्वद इति ख. घ. छ., च. । सर्वश इति ग. च. ।
४. ईशाद्यादिषु ब्रह्माद्या इति ग. ।　　५. मध्ये श्वभ्र इति घ. ।
६. कुम्भञ्चानन्तमन्तिकमिति घ., छ. च । कुम्भञ्चानन्तमन्तिममिति ङ. ।
७. लोकपालात्मभिर्न्यस्येदिति ख. छ. च. । लोकपालाणुभिर्न्यसेदिति ङ. ।
८. सूत्रेष्विति क. । कुम्भेष्विति ग. ।　　९. शिलाद्यास्तथेति क. ।
१०. क्रमश्च इति घ. ।
११. शम्बरैर्मूर्त्तिनाधानमिति ख. छ. च. । शम्बरैर्मूर्त्तिमाधानमिति ङ. ।
१२. तान् सुधर्म्मादिकानष्टौ इति ख. ।　　१३. विभागत इति घ० ।
१४. पूर्वादिजयादिषु चेति ग. ।　　१५. ब्रह्माणं चोपविन्यस्येति ख. घ. ङ. छ. च ।
१६. विघ्नदोषनिवारकमिति ग. ।　　१७. पूर्वशिलान्यास इति घ. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मध्यभावे[1] चतस्रोऽपि मातृवद्भावसम्मताः। ओं पूर्णे त्वं महाविद्ये[2] सर्वसन्दोहलक्षणे ॥११॥
सर्वसम्पूर्णमेवात्र कुरुष्वाङ्गिरसः सुते। ओं नन्दे त्वं नन्दिनी पुंसां त्वामत्र स्थापयाम्यहं॥१२॥
प्रासादे तिष्ठ सन्तृप्ता यावच्चन्द्रार्कतारकं। आयुः कामं श्रियन्नन्दे देहि वासिष्ठि देहिनां[3] ॥१३॥

अस्मिन् रक्षा सदा[4] कार्य्या प्रासादे यत्नतस्त्वया।
ओं भद्रे त्वं सर्वदा भद्रं लोकानां कुरु काश्यपि ॥ १४ ॥

आयुर्दा कामदा देवि[5] श्रीप्रदा च सदा भव। ओं जयेऽत्र सर्वदा देवि श्रीदाऽऽयुर्दा सदा भव[6]॥
ओं जयेऽत्र सर्वदा[7] देवि तिष्ठ त्वं स्थापिता मय[8]। नित्यञ्जयाय भूत्यै च स्वामिनी भव भार्गवि॥

ओं रिक्तेऽतिरिक्तदोषघ्ने[9] सिद्धिमुक्तिप्रदे शुभे।
सर्वदा सर्वदेशस्थे तिष्ठास्मिन् विश्वरूपिणि[10] ॥ १७ ॥

गगनायतनन्ध्यात्वा तत्र तत्त्वत्रयं[11] न्यसेत्। प्रायश्चित्तन्ततो हुत्वा विधिना विसृजेन्मखं॥१८॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये शिलान्यासकथनं नाम चतुर्णवतितमोऽध्यायः।

पञ्चनवतितमोऽध्यायः

प्रतिष्ठासामग्रीविधानम्।

ईश्वर उवाच

वक्ष्ये लिङ्गप्रतिष्ठां च प्रासादे भुक्तिमुक्तिदां। ताञ्चरेत् सर्वदा मुक्तौ भुक्तौ देवदिने सति[12] ॥१॥
विना चैत्रेण माघादौ प्रतिष्ठा मासपञ्चके। गुरुशुक्रोदये कार्य्या प्रथमे करणत्रये ॥२॥
शुक्लपक्षे विशेषेण कृष्णे वा पञ्चमन्दिनं[13]। चतुर्थीं नवमीं षष्ठीं वर्जयित्वा चतुर्दशीं ॥३॥
शोभनास्तिथयः शषाः क्रूरवारविवर्जिताः। शतभिषा धनिष्ठार्द्रा अनुराधोत्तरत्रयं[14] ॥४॥
रोहिणी श्रवणश्चेति[15] स्थिरारम्भे महोदयाः। लग्नञ्च कुम्भसिंहालितुलास्त्रीवृषधन्विनां॥५॥

---

१. मध्याभावे इति ख. ग. च। २. महाभागे इति ग.।
३. देहि मामिति ख. छ. च। देहि न इति घ.।
४. मुदा इति ख., छ. च। ५. कामदे देवीति घ.।
६. जयेत्रेत्यर्द्धश्लोकः, छ. पुस्तके नास्ति। ७. ओं जय एनं सदेति ख. छ. च।
८. मम इति ङ.। ९. रक्तातिरक्तदोषघ्न इति छ.। रक्तात्रिरक्तदोषघ्ने इति ख.।
१०. सन्तिष्ठास्मिन्नीश्वरूपिणीति घ.। शर्परूपिणीति ज.। ११. तत्त्वे तत्त्वत्रयमिति घ.।
१२. सर्वदा भुक्तौ देवादेवे ग्रहे सतीति घ.। सर्वदा मुक्त्यै भुक्त्यै दैवदिने सतीति ङ.।
१३. कृष्णेप्यापञ्चमं दिनमिति ख, छ. च। कृष्णेप्यपञ्चमाद्दिनादिति घ।
१४. अनुराधोत्तरात्रयमिति घ.। १५. श्रवणश्चैते इति च।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शस्तो जीवो नवर्क्षेषु सप्तस्थानेषु सर्वदा । बुधः षडष्टदिक्सप्ततुर्येषु विनतुं[१] शितः ।।६।।
सप्तत्तु त्रिदशादिस्थः[२] शशाङ्को बलदः सदा[३] । रविर्दशत्रिषट्संस्थो राहुस्त्रिदशपङ्गतः ।।७।।
षट्त्रिस्थानगताः शस्ता मन्दाङ्गारार्ककेतवः । शुभाः क्रूराश्च पापाश्च सर्वं एकादशस्थिताः ।।
एषां दृष्टिर्मुनौ पूर्णा[४] त्वार्द्धिकी ग्रहभूतयोः।पादिकी रामदिक्स्थाने चतुरष्टौ[५] पादवर्जिता ।।
पादान्यूनचतुर्नाडी भोगः स्यान्मीनमेषयोः। वृषकुम्भौ च भुञ्जाते चतस्रः पादवर्जिताः।।१०।।
मकरो मिथुनं पञ्च चापालिहरिकर्क्कटाः । पादोनाः षट्तुलाकन्ये घटिकाः सार्द्धपञ्च च ।।
केशरी वृषभः कुम्भः स्थिराः स्युः सिद्धिदायकाः। चरा धनुस्तुलामेषा द्विःस्वभावास्तृतीयकाः[६] ।।
शुभः[७] शुभग्रहैर्दृष्टः शस्तो लग्नः शुभाश्रितः[८]। गुरुशुक्रबुधैर्युक्तो लग्नो दद्याद्बलायुषी[९] ।।१३।।
राज्यं शौर्य्यं[१०] बलं पुत्रान् यशोधर्म्मादिकं बहु । प्रथमः सप्तमस्तुर्य्यो दशमः केन्द्र उच्यते।।
गुरुशुक्रबुधास्तत्र सर्वसिद्धिप्रदायकाः । त्र्येकादशचतुर्थस्था[११] लग्नात् पापग्रहाः शुभाः।।१५।।

अतोऽप्यनीचकर्मार्थं[१२] योज्यास्तिथ्यादयो बुधैः ।
धाम्नः पञ्चगुणां भूमिं त्यक्त्वा वा धानसम्मितां[१३] ।। १६ ।।

हस्ताद् द्वादशसोपानात्[१४] कुर्य्यान्मण्डपमग्रतः । चतुरस्रं चतुर्द्वारं स्नानार्थन्तु[१५] तदद्धतः ।।
एकास्यं चतुरास्यं वा रौद्र्यां प्राच्युत्तरेऽथवा[१६]। हास्तिको दशहस्तो वै मण्डपोर्ककरोऽथवा ।।
द्विहस्तोत्तरया वृद्ध्या[१७] शेषं स्यान्मण्डपाष्टकं। वेदी चतुष्करा मध्ये कोणस्तम्भेन संयुता[१८]।।

वेदीपादान्तरं त्यक्त्वा[१९] कुण्डानि नव पञ्च वा ।
एकं वा शिवकाष्ठायां[२०] प्राच्यां वा तद्गुरोः परं ।। २० ।।

---

१. बुधः षड्तुतुर्येषु दिक्सप्ताद्द विनेति छ. । बुधः षडद्व्यश्तुर्षेषु दिक्षतषड् विनेति ख ।
२. सतायत्रिदशादिस्थ इति ख. छ. च । ३. बुधः षडष्टदिगित्यादिः, बलदः सदा इत्यन्तः पाठो ग. पुस्तके नास्ति । ४. एवं दृष्टिवले पूर्णादिति छ. । एवं दृष्टिवले पूर्णेति ख. ।
५. वस्वष्टौ इति ख. छ. च ।
६. कर्कटो मकरो द्विस्थः प्रव्रज्याकार्य्यनाशकाः । गुरुशक्रबुधास्तत्र सर्वद्धिप्रदायका इति ग. घ. पुस्तकेऽधिकः पाठः । ७. स्थिर इति ग. ।
८. शुभान्वित इति ख. छ. च. । ९. धनायुषीति ग. ।
१०. राज्यं सौख्यमिति ख. ।
११. द्व्येकादशचतुर्थस्था इति छ. । त्र्येकादशेत्यर्द्धश्लोको ग. पुस्तके नास्ति ।
१२. अतोन्येनिश्चकर्मार्थमिति ख. घ. छ. च. ।
१३. त्यक्त्वा वा चापसम्मितामिति ख. । त्यक्त्वा वा रामसम्मितामिति छ. ।
१४. हस्ताद्वा दशसोपानादिति ख. । हस्तान् वा दश सोपानादिति ख. ।
१५. स्नानार्थं चेति ग. । १६. प्राच्युतरे तथेति ङ. ।
१७. द्विहस्तोत्तरयावृत्त्या इति घ. ।
१८. कोणस्तम्भेषुसंयुतेति क. ग. घ. च । कोणस्तम्भेषु सम्मतेति ङ. । कोणस्तम्भेतुसंयुतेति ख. छ. च ।
१९. वेदी पादान्तरं त्यक्तेति घ. ङ. च । २०. शिवकाष्ठादौ इति ग ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मुष्टिमात्रं शतार्द्धे स्याच्छते चारत्निमात्रकं[१]। हस्तं सहस्रहोमे स्यान्नियुते तु द्विहास्तिकं[२] ॥
लक्षे चतुष्करं कुण्डंकोटिहोमेऽष्टहस्तकं। भगाभमग्नौ[३] खण्डेन्दु दक्षे त्र्यस्रञ्च नैर्ऋते ॥२२॥
षडस्रं वायवे पद्म[४] सौम्ये चाष्टास्रकं शिवे। तिर्य्यक्पातशिवं खातमूर्द्ध्वं[५] मेखलया सह ॥
तद्बहिर्म्मेखलास्तिस्रो वेदवह्नियमाङ्गुलैः[६]। अङ्गुलैः षड्भिरेका वा कुण्डाकारास्तु मेखलाः ॥
तासामुपरि योनिः स्यान्मध्येऽश्वत्थदलाकृतिः। उच्छ्रायेणाङ्गुलं तस्माद्विस्तारेणाङ्गुलाष्टकं[७] ॥
दैर्घ्यं कुण्डार्द्धमानेन कुण्डकण्ठसमोऽधरः। पूर्व्वाग्नियाम्यकुण्डानां योनिः स्यादुत्तरानना ॥
पूर्व्वानना तु शेषाणामैशान्येऽन्यतरा तयोः। कुण्डानां यश्चतुर्विंशो भागः सोऽङ्गुल इत्यतः ॥२७॥
प्लक्षोदुम्बरकाश्वत्थवटजास्तोरणाः क्रमात्। शान्तिभूतिबलारोग्यपूर्व्वाद्या नामतः क्रमात् ॥
पञ्चषट्सप्तहस्तानि हस्तखातस्थितानि च। तदर्द्धविस्तराणि स्युर्युतान्याम्रदलादिभिः ॥२९॥
इन्द्रायुधोपमा रक्ता कृष्णा धूम्रा शशिप्रभा। शुक्लाभा[८] हेमवर्णा च पताका स्फाटिकोपमा ॥
पूर्व्वादितोऽब्जजे[९]रक्ता नीलाऽनन्तस्य[१०]नैर्ऋते। पञ्चहस्तास्तदर्द्धाश्च ध्वजा दीर्घाश्च विस्तराः॥
हस्तप्रदेशिता दण्डा ध्वजानां पञ्चहस्तकाः। वल्मीकाद्दन्तिदन्ताग्रात्तथा[११] वृषभशृङ्गतः ॥३२॥
पद्मषण्डाद्वराहाच्च गोष्ठादपि चतुष्पथात्। मृत्तिका द्वादश ग्राह्या वैकुण्ठेष्टौ पिनाकिनि ॥३३॥
न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थचूतजम्बुत्वगुद्भवं। कषायपञ्चकं ग्राह्यमार्त्तवञ्च फलाष्टकं ॥३४॥
तीर्थाम्भांसि सुगन्धीनि[१२] तथा सर्व्वौषधीजलं। शस्तं पुष्पफलं वक्ष्ये रत्नगोशृङ्गवारि[१३] च ॥
स्नानायापाहरेत्[१४] पञ्च पञ्चगव्यामृतं तथा। पिष्टनिर्मितवस्त्रादिद्रव्यं निर्म्मञ्जनाय च[१५] ॥
सहस्रशुषिरं कुम्भं मण्डलाय च रोचना[१६]। शतमोषधिमूलानां विजया लक्ष्मणा बला ॥३७॥
गुडूच्यतिबला पाठा सहदेवा शतावरी।
ऋद्धिः[१७] सुवर्चसा[१८] वृद्धिः स्नाने प्रोक्ता पृथक् पृथक् ॥ ३८ ॥
रक्षायै तिलदर्भौघो[१९] भस्मस्नानन्तु केवलं। यवगोधूमविल्वानां[२०] चूर्णानि च विचक्षणः॥३९॥

---

१. शतार्द्धस्यं शते वह्निमात्रकमिति च. छ। शतार्द्धस्य शते वारत्निमात्रकमिति घ.। शतार्द्धस्य शते वा वह्निमात्रकमिति ङ.।
२. द्विहस्तकमिति ख.।
३. खड्गाभमग्नौ इति ख. ग. ङ. छ., च.।
४. पद्मे इति ख. घ. च.।
५. तिर्य्यक् पातसममूर्द्ध्वमिति ख. ग. घ. च.।
६. वेदवह्नियवाङ्गुलैरिति घ.।
७. तस्य विस्तारेणाङ्गुलाष्टकमिति घ.।
८. शुक्राभेति ख.।
९. पूर्व्वादितो ध्वज इति ग.।
१०. नीलानन्तेऽश्येति ग.।
११. वल्मीकाद्धस्तिदन्ताग्रात्त्येति छ.।
१२. तीर्थतोयसुगन्धीनि इति. ङ.।
१३. वर्गे गोशृङ्गवारि चेति छ.।
१४. स्नानायोपहरेदिति ख., छ. घ. च.।
१५. पिष्टनिर्मितरुद्रादिद्रव्यं निर्म्मञ्जनायेति ग.। पिष्टनिर्मितवस्त्रादिकं निर्मथनायेति ज.।
१६. मङ्गलाय च रोचनेति ग.। मङ्गलाय च रोचनमिति ज.।
१७. सिद्धिरिति घ.।
१८. सुवर्चलेति ज.।
१९. तिलगर्भाद्यमिति ख., घ. ङ., छ. च। तिलदर्भाज्यमिति ज.।
२०. यवगोधूमचूर्णानामिति घ.। पञ्चगोधूमविल्वानामिति छ.।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विलेपनं[१] सकर्प्पूरं स्नानार्थं कुम्भगण्डकान्[२] । खट्वाञ्च तूलिकायुग्मं सोपधानं सवस्त्रकं ॥४०॥
कुर्य्याद्वित्तानुसारेण शयने लक्ष्यकल्पने[३] । घृतक्षौद्रयुतं पात्रं कुर्य्यात् स्वर्णशलाकिकां ॥४१॥
वर्द्धनीं शिवकुम्भञ्च लोकपालघटानपि । एकं निद्राकृते कुम्भं शान्त्यर्थं कुण्डसङ्ख्यया[४] ॥
द्वारपालादि-धर्म्मादि-प्रशान्तादि-घटानपि । वास्तुलक्ष्मीगणेशानां कलशानपरानपि ॥४३॥

धान्यपुञ्जकृताधारान् सवस्त्रान्[५] स्रग्विभूषितान् ।
सहिरण्यान् समालब्धान् गन्धपानीयपूरितान् ॥ ४४ ॥

पूर्णपात्रफलाधारान्[६] पल्लवाद्यान्[७] सलक्षणान् । वस्त्रैराच्छादयेत् कुम्भानाहरेद्गौरसर्षपान् ॥

विकिरार्थन्तथा लाजान् ज्ञानखड्गञ्च पूर्ववत् ।
सापिधानां चरुस्थालीं दर्व्वीं च ताम्रनिर्म्मितां[८] ॥ ४६ ॥

घृतक्षौद्रान्वितं पात्रं पादाभ्यङ्गकृते तथा । विष्टरांस्त्रिशतादर्भदलैर्बाहुप्रमाणकान्[९] ॥४७॥
चतुरश्चतुरस्तद्वन् पालाशान् परिधीनपि । तिलपात्रं हविःपात्रमर्घपात्रं पवित्रकं ॥४८॥
पलत्रिंशाष्टमानानि घटो धूपप्रदानकं[१०] । स्रुक्स्रुवौ पिटकं पीठं व्यजनं शुष्कमिन्धनं ॥४९॥
पुष्पं पत्रं गुग्गुलञ्च घृतैर्दीपांश्च धूपकं । अक्षतानि त्रिसूत्रीञ्च गव्यमाज्यं यवांस्तिलान् ॥५०॥
कुशाः शान्त्यै त्रिमधुरं समिधो दशपर्व्विकाः । बाहुमात्रं श्रुवं हस्तम्[११] अर्कादिग्रहशान्तये ॥५१॥
समिधोऽर्कपलाशोत्थाः खादिरामार्गपिप्पलाः[१२] । उदुम्बरशमीदूर्वाकुशोत्थाः शतमष्ट च ॥५२॥
तदभावे यवतिला गृहोपकरणं तथा । स्थालीदर्वीपिधानादि देवादिभ्योंऽशुकद्वयं ॥५३॥
मुद्रामुकुटवासांसि हारकुण्डलकङ्कणान् । कुर्य्यादाचार्यपूजार्थं[१३] वित्तशाठ्यं विवर्जयेत् ॥५४॥
तत्पादपादहीना च मूर्त्तिभृद्वस्त्रजापिनां[१४] । पूजा स्याज्जापिभिस्तुल्या[१५] विप्रदैवज्ञशिल्पिनां ॥
वज्रार्कशान्तौ[१६] नीलातिनीलमुक्ताफलानि च[१७] । पुष्पपद्मादिरागञ्च वैदूर्य्यं रत्नमष्टमं[१८] ॥

---

१. लेपनञ्चेति ज. ।
२. कुम्भमण्डकानिति ख. । कुम्भगड्डुकानिति घ. । कुम्भगण्डुकानिति ङ. । कुम्भसण्डकानिति छ. । कुम्भखण्डकानिति ज. ।
३. प्रायेण लक्ष्यकल्पने इति ग. । शयने लक्ष्यकं परे इति ज. ।
४. कुण्डसम्मितमिति ज० ।
५. सर्वांश्चेति घ., ज. च ।
६. पूर्वपात्रफलाधारानिति छ. ।
७. पल्लवाग्रानिति ख., घ., ज., च. ।
८. कुर्व्वीत ताम्रनिर्मितामिति ख. ।
९. दलैर्बाहुमात्रप्रमाणत इति ग. ।
१०. घण्टाधूपप्रदानकमिति घ., छ., च. ।
११. बाहुमात्रां स्रुचं हस्तामिति छ. ।
१२. खादिरापाङ्गपिप्पला इति ख. छ. च. । खादिरापामार्कपिप्पला इति घ. ।
१३. कुर्य्यादाचार्यपूजाद्यमिति घ. ।
१४. मूर्त्तिभृच्छस्त्रजापिनामिति घ. ।
१५. पूजाऽस्यात् पितृभिस्तुल्येति घ. ज. च ।
१६. वज्रार्ककान्तौ इति ङ. छ. च ।
१७. नीलाभं नीलमुक्ताफलानि चेति ख. । नीलादिनीलमुक्ताफलानि चेति ग. । नीलाभं नीलं मुक्ताफलानि वेति ज. ।
१८. रत्नमष्टकमिति घ. ङ. ज. च ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उशीरमाधवक्रान्तारक्तचन्दनकागुरुं । श्रीखण्डं सारिकङ्कुष्ठं[1] शङ्खिनी ह्योषधीगणः[2] ॥५७॥
हेमताम्रमयं रक्तं राजतञ्च[3] सकांस्यकं । शीसकञ्चेति लोहानि हरितालं मनःशिला ॥५८॥
गैरिकं हेममाक्षीकं पारदो[4] वह्निगैरिकं । गन्धकाभ्रकमित्यष्टौ[5] धातवो व्रीहयस्तथा ॥५९॥

गोधूमान् सतिलान्माषान्मुद्गानप्याहरेद्यवान् ।
नीवारान् श्यामकानेवं व्रीहयोऽप्यष्ट कीर्त्तिताः ॥ ६० ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये प्रतिष्ठासामग्री नाम
पञ्चनवतितमोऽध्यायः ।

षण्णवतितमोऽध्यायः

अधिवासनविधिः ।

ईश्वर उवाच

स्नात्वा नित्यद्वयं कृत्वा[6] प्रणवार्थकरो गुरुः[7] । सहायैर्मूर्त्तिपैर्विप्रैः[8] सह गच्छेन्मखालयं ॥
शान्त्यादितोरणांस्तत्र पूर्ववत् पूजयेत् क्रमात् । प्रदक्षिणक्रमादेषां शाखायां द्वारपालकान् ॥
प्राचि नन्दिमहाकालौ याम्ये भृङ्गिविनायकौ[9] । वारुणे वृषभस्कन्दौ देवीचण्डौ तथोत्तरे[10] ॥
तच्छाखामूलदेशस्थौ प्रशान्तशिशिरौ घटौ । पर्ज्जन्याशोकनामानौ भूतं सञ्जीवनामृतौ[11] ॥
धनदश्रीप्रदौ[12] द्वौ द्वौ पूजयेदनुपूर्वशः[13] । स्वनामभिश्चतुर्थ्यन्तैः प्रणवादिनमोन्तगैः ॥५॥
लोकग्रहवसुद्वाःस्थस्रवन्तीनां[14] द्वयं द्वयं । भानुत्रयं युगं वेदो लक्ष्मीर्गणपतिस्तथा[15] ॥६॥

---

१. सारिका कुष्ठमिति ख. छ. च । साविकं कुष्ठमिति ज. ।
२. शङ्खिनीत्योषधीगण इति ङ. ज. च ।
३. हेमताम्रमयो रङ्गराजतञ्चेति ख. ।
४. पारदे इति ख. छ. च ।
५. गन्धकत्रिकमित्यष्टौ इति घ. ।
६. नित्यक्रियां कृत्वेति, ङ० ।
७. प्रणवार्घ्यकरो मुनिरिति ग. । पुनरर्घ्यकरो मुनिरिति ङ. ।
८. सहायैश्चर्त्विगविप्रैश्चेति ख. घ. च । सहायैर्भूपतिविप्रैरिति ज. ।
९. भृङ्गविनायकाविति छ. ।
१०. वृषोत्तरे इति ग. घ. ङ. च ।
११. भूतसञ्जीवनासुतौ इति छ. । भूतसञ्जीवनामृतौ इति ख. ज. च ।
१२. धनदद्विपदौ इति ख. । धनदौ द्विपदौ इति घ. । धनदश्चापदौ इति ज. ।
१३. पूजयेदथ पूर्वश्च इति ग. ।
१४. लोकग्रहवसुद्वाःस्थहस्तादीनामिति ग. ।
१५. भानुत्रयं युगं वेदो लक्ष्मीकुलपतिस्तथेति ख. ग. छ. च । भानुत्रययुगं वेदो वेदो लक्ष्मीपतिस्तथेति ज० ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इति देवा मखागारे[१] तिष्ठन्ति प्रतितोरणं । विघ्नसङ्घापनोदाय क्रतोः संरक्षणाय च ॥७॥
वज्रं शक्तिं तथा दण्डं[२] खड्गं पाशं ध्वजं गदां ।
त्रिशूलं चक्रमम्भोजम्पताकास्वचर्चयेत्[३] क्रमात् ॥ ८ ॥
ओ ह्रूं फट् नमः । ओं ह्रूं फट् द्वाःस्थशक्तये ह्रूं फट् नमः[४] इत्यादिमन्त्रैः ।
कुमुदः कुमुदाक्षश्च पुण्डरीकोथ वामनः । शङ्कुकर्णः सर्वनेत्रः सुमुखः[५] सुप्रतिष्ठितः ॥९॥
ध्वजाष्टदेवताः[६] पूज्याः पूर्वादौ[७] भूतकोटिभिः । ओं कौं कुमुदाय नम इत्यादिमन्त्रैः ॥१०॥
हेतुकं त्रिपुरघ्नञ्च शक्त्याख्यं[८] यमजिह्वकं[९] । कालं करालिनं षष्ठमेकाङ्घ्रिम्भीममष्टकं ॥११॥
तथैव पूजयेद् दिक्षु क्षेत्रपालाननुक्रमात् । वलिभिः कुसुमैर्धूपैः सन्तुष्टान् परिभावयेत्[१०] ॥
कम्बलास्तृतेषु वर्णेषु वंशस्थूणास्वनुक्रमात्[११]। पञ्च क्षित्यादितत्त्वानि सद्योजातादिभिर्यजेत् ॥
सदाशिवपदव्यापि मण्डपं[१२] धाम शाङ्करं । पताकाशक्तिसंयुक्तं[१३] तत्त्वदृष्ट्यावलोकयेत्[१४] ॥
दिव्यान्तरिक्षभूमिष्ठविघ्नानुत्सार्य्य पूर्ववत् । प्रविशेत् पश्चिमद्वारा शेषद्वाराणि दर्शयेत्[१५] ॥
प्रदक्षिणक्रमाद्गत्वा निविष्टो वेदिदक्षिणे। उत्तराभिमुखः कुर्य्याद् भूतशुद्धिं यथा पुरा।।१६।।
अन्तर्य्यागं विशेषार्घ्यं मन्त्रद्रव्यादिशोधनं । कुर्व्वीत आत्मनः[१६] पूजां पञ्चगव्यादि पूर्ववत् ॥
साधारङ्कलसन्तस्मिन् विन्यसेत्तदनन्तरं । त्रिशेषाच्छिवतत्त्वाय तत्त्वत्रयमनुक्रमात् ॥१८॥
ललाटस्कन्धपादान्तं शिवविद्यात्मकं परं । रुद्रनारायणब्रह्मदैवतं निजसञ्बरैः[१७] ॥१९॥

---

१. देवामरागारे इति ख. ग. घ. ङ. छ. च ।
२. तथा कुण्डमिति ख. छ. च । तथा चण्डमिति ज० ।
३. पताकामर्चयेदिति ग. । पताकासु यजेदिति ङ. ।
४. हुं फट् नमः, ओं हुं फट् द्वाःस्थशक्तये हुं फट् नम इति ख. । ओं क्रूं फट् नमः । ओं क्रूं फट् द्वाःस्थशक्तये क्रूं फट् नम इति छ. । ओं हुं फट् वक्राय हुं फट् नम इति ग. । ओं हुं फट् वज्राय हुं फट् नम इति ङ. ।
५. प्रमुख इति ज. ।
६. ध्वजाश्च देवता इति ग. ।
७. पूजादौ इति ङ., ज. च ।
८. बुद्धाख्यमिति ग. । बुद्ध्याख्यमिति ज. ।
९. अजजिह्वकमिति ज. ।
१०. प्रविभावयेदिति ख. छ. च ।
११. काक्षीतृणेषु वर्गेषु वंशे स्थूलाननुक्रमात् इति ख. । काष्ठातृणेषु वर्णेषु वंशे स्थूलाननुक्रमात् इति छ. । काक्षीतृणेषु वंशेषु स्थूणास्वन्येष्वनुक्रमात् इति घ. । कक्षां दशोम्बरांशें च तृणानन्येऽष्वनुक्रमादिति ज. । कन्यातृणेषु रत्नेषु वंशे स्थूणाननुक्रमादिति ङ. ।
१२. मण्डलमिति ङ. ।
१३. पिनाकशक्तिसंयुक्तामिति घ. ।
१४. तत्त्व दृष्ट्यावलोकयेदिति ख. छ. च । शेषद्वाराणि पूजयेदिति छ ।
१५. शेषद्वाराणि चङ्क्रमेदिति ख. छ. च ।
१६. स्वात्मन इति ख. घ. छ. ज. च ।
१७. निजसंवरैरिति ग. ङ. च । निजसञ्चयैरिति घ. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ओं हं हां[1]। मूर्त्तीस्तदीश्वरांस्तत्र पूर्ववद्विनिवेशयेत्।
तद्व्यापकं शिवं साङ्गं शिवहस्तञ्च मूर्द्धनि॥ २०॥
ब्रह्मरन्ध्रप्रविष्टेन तेजसा वाह्यसान्तरं[2]। तमःपटलमाधूय प्रद्योतितदिगन्तरं[3]॥२१॥
आत्मानं मूर्त्तिपैः सार्द्धं स्रग्वस्त्रकुसुमादिभिः[4]।
भूषयित्वा शिवोस्मीति ध्यात्वा बोधासिमुद्धरेत्॥ २२॥
चतुष्पदान्तसंस्कारैः[5] संस्कुर्य्यान्मखमण्डपं। विक्षिप्य विकिरादीनि कुशकूर्चोपसंहरेत्[6]॥
आसनीकृत्य वर्द्धन्यां वास्त्वादीन् पूर्ववद्यजेत्। शिवकुम्भास्त्रवर्द्धन्यौ पूजयेच्च स्थिरासने[7]॥
स्वदिक्षु कलशारूढांल्लोकपालाननुक्रमात्। वाह्यायुधादिसंयुक्तान् पूजयेद्विधिना यथा॥२५॥
ऐरावतगजारूढं स्वर्णवर्णं[8] किरीटिनं। सहस्रनयनं शक्रं वज्रपाणिं विभावयेत्॥२६॥
सप्तार्चिषं च बिभ्राणमक्षमालां कमण्डलुं। ज्वालामालाकुलं रक्तं[9] शक्तिहस्तमजासनं॥२७॥
महिषस्थं दण्डहस्तं यमं कालानलं स्मरेत्। रक्तनेत्रं खरारूढं[10] खड्गहस्तञ्च नैर्ऋतं॥२८॥
वरुणं मकरे श्वेतं नागपाशधरं स्मरेत्। वायुं च हरिणे नीलं कुवेरं मेघसंस्थितं[11]॥२९॥
त्रिशूलिनं वृषे चेशं कूर्म्मेनन्तन्तु चक्रिणं। ब्रह्माणं हंसगं ध्यायेच्चतुर्वक्त्रं चतुर्भुजं॥३०॥
स्तम्भमूलेषु कुम्भेषु वेद्यां धर्मादिकान्[12] यजेत्। दिक्षु कुम्भेष्वनन्तादीन् पूजयन्त्यपि केचन॥
शिवाज्ञां श्रावयेत् कुम्भं भ्रामयेदात्मपृष्ठगं[13]। पूर्ववत् स्थापयेदादौ कुम्भं तदनु वर्द्धनीं॥
शिवं स्थिरासनं[14] कुम्भे शस्त्रार्थञ्च[15] ध्रुवासनं। पूजयित्वा यथापूर्वं स्पृशेदुद्भवमुद्रया॥३३॥
निजयागं[16] जगन्नाथ रक्ष भक्तानुकम्पया। एभिः संश्राव्य रक्षार्थं कुम्भे खड्गं निवेशयेत्[17]॥
दीक्षास्थापनयोः कुम्भे स्थण्डिले मण्डलेऽथवा। मण्डलेभ्यर्च्य देवेशं व्रजेद्वै कुण्डसन्निधौ॥
कुण्डनाभिं पुरस्कृत्य निविष्टा मूर्त्तिधारिणः। गुरोरादेशतः कुर्युर्न्निजकुण्डेषु[18] संस्कृतिं॥३६॥

---

१. उँ हां हां इति ख. ग. घ. ङ. छ. च। ओं ईं आं इति घ. ज. च।
२. तेजसा वाह्यमन्तरमिति ख.। तेजसा वाह्याभ्यन्तरमिति छ.। तेजसा वाह्यमान्तरमिति ग. घ. ङ. च।
३. प्रविष्टोनुदिगन्तरमिति ग. ज. च। ४. स्रग्वस्त्रमुकुटादिभिरिति घ. ज. च।
५. चतुष्पथार्णसंस्कारैरिति छ.। ६. कुशदूर्वोपसंहरेदिति ग०।
७. शिवकुम्भास्त्रवर्द्धन्यां पूजयेदस्थिरासने इति घ. ज. च।
८. वर्णवस्त्रमिति ग.। स्वर्णवस्त्रमिति ख. ज.च। ९. कालं मालाकुलं रक्तमिति ख. ग. ङ. छ. च। कालं मालाकुलं, व्यक्तमिति ग.। ज्वालामालाकुलं सक्तमिति घ.।
१०. शवारूढमिति ग. घ. ङ. ज. च। ११. मानुषस्थितमिति घ.।
१२. कर्म्मादिकानिति ज.। १३. भ्रामयेदनुपूज्य तमिति ज.। भ्रामयेदनुपृष्ठगमिति घ.।
१४. स्थिरासने इति ख. घ. च। १५. शस्त्रगुञ्चेति ख. ग. छ. च।
१६. इमं यागमिति ङ.। १७. शङ्खन्निवेदयेदिति ग.। खड्गन्निवेदयेदिति घ. ङ. च।
१८. कुर्युर्निजकुम्भेष्विति ख. घ. छ. ज. च।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जपेयुर्जापिनः सङ्ख्यं[1] मन्त्रमन्ये तु संहितां[2]। पठेयुर्ब्राह्मणाः शान्तिं स्वशाखावेदपारगाः ॥
श्रीसूक्तं पावमानीश्च[3] मैत्रकञ्च वृषाकपिं । ऋग्वेदी पूर्वदिग्भागे सर्वमेतत् समुच्चरेत्[4]॥३८॥
देवव्रतन्तु भारुण्डं[5] ज्येष्ठसाम रथन्तरं । पुरुषं गीतिमेतानि सामवेदी तु दक्षिणे ॥३९॥
रुद्रं पुरुषसूक्तञ्च श्लोकाध्यायं विशेषतः । ब्राह्मणञ्च यजुर्वेदी पश्चिमायां समुच्चरेत्[6] ॥४०॥
नीलरुद्रं तथाथर्वी सूक्ष्मासूक्ष्मन्तथैव च । उत्तरेऽथर्वशीर्षञ्च[7] तत्परस्तु समुद्धरेत् ॥४१॥

आचार्य्यश्चाग्निमुत्पाद्य प्रतिकुण्डं प्रदापयेत्[8] ।
वह्नेः पूर्वादिकान् भागान्[9]पूर्वकुण्डादितः[10]क्रमात् ॥ ४२ ॥

धूपदीपचरूणाञ्च ददीताग्निं समुद्धरेत्[11] । पूर्ववच्छिवमभ्यर्च्य शिवाग्नौ मन्त्रतर्पणं ॥४३॥
देशकालादिसम्पत्तौ[12] दुर्न्निमित्तप्रशान्तये । होमङ्कृत्वा तु मन्त्रज्ञः पूर्णां दत्त्वा शुभावहां ॥
पूर्ववच्चरुकं कृत्वा प्रतिकुण्डं निवेदयेत्[13] । यजमानालङ्कृतास्तु व्रजेयुः स्नानमण्डपं ॥४५॥
भद्रपीठे निधायेशं[14] ताडयित्वावगुण्ठयेत् । स्नापयेत्[15] पूजयित्वा तु मृदा काषायवारिणा ॥
गोमूत्रैर्गोमयेनापि वारिणा चान्तरान्तरा । भस्मना गन्धतोयेन फडन्तास्त्रेण वारिणा ॥४७॥
देशिको मूर्त्तिपैः सार्द्धं कृत्वा कारणशोधनं[16] । धर्मजप्तेन सञ्छाद्य[17] पीतवर्णेन वाससा ॥
सम्पूज्य सितपुष्पैश्च[18] नयेदुत्तरवेदिकां । तत्र दत्तासनायाञ्च शय्यायां सन्निवेश्य च[19] ॥
कुङ्कुमालिप्तसूत्रेण विभज्य गुरुरालिखेत् । शलाकया सुवर्णस्य अक्षिणी शस्त्रकर्मणा[20] ॥५०॥
अञ्जयेल्लक्ष्मकृन् पश्चाच्छास्त्रदृष्टेन कर्मणा। कृतकर्मा च शस्त्रेण लक्ष्मी शिल्पी समुत्क्षिपेत्[21] ॥

१. जापिनोसङ्ख्यमिति क. ङ. छ. च ।
२. अस्त्रमन्ये तु संस्थितिमिति ग. । अस्त्रमन्ये तु संहितामिति ङ. ।
३. पावमानीन्तु इति ज. ।
४. सर्वमेतत् समुद्धरेदिति ख. ग. घ. छ. ज. च । सर्वमस्त्रं समुद्धरेदिति ङ. ।
५. भावज्ञमिति छ. । श्रीकुण्डमिति ङ. ।　६. समुद्धरेदिति ख. घ. ङ. ज. च ।
७. उत्तरेथर्वसूक्तञ्चेति ग. ।　८. प्रदीपयेदिति घ. ।
९. पूर्वादिदिग्भागादिति ज. । पूर्वादिकाद्भागादिति घ. ।　१०. सर्वकुण्डादित इति ख. छ. च. ।
११. आचार्य्यश्चाग्निमुत्पाद्येत्यादिः. ददीताग्निं समुद्धरेदित्यन्तः पाठो ग. पुस्तके नास्ति ।
१२. देशकालादिसङ्ख्यासौ इति घ. ।　१३. निवेशयेदिति ख. घ. च ।
१४. भद्रपीठे निधायैनमिति ख. छ. च । तत्र पीठे विधायेशमिति ङ.। भद्रपीठे विधायेशमिति घ.।
१५. स्नपयेदिति ख. ग. ङ. च ।　१६. कृत्वा चाकारशोधनामिति घ. ज. च ।
१७. धर्मजलेन संस्थाप्येति ग. । धर्म्मजलेन सञ्छाद्येति ङ. ।
१८. सम्पूज्य सितवस्त्रैश्चेति ग. । सम्पूज्य सितपुष्पैस्तु इति घ. ।
१९. सन्निवेशयेदिति छ. ।
२०. शास्त्रकर्मणेति ख. ग. छ. ज. च । शास्त्रवर्मणेति घ. । शास्त्रकर्म्मणि इति ङ. ।
२१. समुत्किरेत् इति घ. ज. च ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

त्र्यंशादर्द्धोथ[१] पादार्द्धादर्द्धाया अर्द्धतोथवा[२] । सर्वकामप्रसिद्धयर्थं शुभं लक्ष्मावतारणं[३] ।।५२।।
लिङ्गदीर्घविकारांशे त्रिभक्ते भागवर्णनात्[४] । विस्तारो लक्ष्म देहस्य भवेल्लिङ्गस्य[५] सर्वतः ।।
यवस्य नवभक्तस्य भागैरष्टाभिरावृता[६] । हस्तिके[७] लक्ष्मरेखा च गाम्भीर्य्याद् विस्तरादपि[८]।।
एवमष्टांशवृद्ध्या तु लिङ्गे सार्द्धकरादिके[९] । भवेदष्टयवा[१०] पृथ्वी गम्भीरात्र च हास्तिके।।५५।।
एवमष्टांशवृद्धया तु लिङ्गे सार्द्धकरादिके । भवेदष्टयवा पृथ्वी गम्भीरान्नवहास्तिके[११] ।।५६।।
शाम्भवेषु[१२]च लिङ्गेषु पादवृद्धेषु सर्वतः[१३] । लक्ष्म देहस्य विष्कम्भो भवेद्वै यववर्द्धनात् ।।५७।।
गम्भीरत्वपृथुत्वाभ्यां रेखापि त्र्यंशवृद्धितः[१४] । सर्वेषु च भवेत सूक्ष्मं लिङ्गमस्तकमस्तकं ।।
लक्ष्मक्षेत्रेष्टधाभक्ते मूर्द्धिन भागद्वये शुभे[१५]। षड्भागपरिवर्त्तेन मुक्त्वा भागद्वयन्त्वधः[१६]।।५९।।
रेखात्रयेण सम्बद्धं[१७] कारयेत पृष्ठदेशगं । रत्नजे लक्षणोद्धारो यवौ हेमसमुद्भवे ।।६०।।
स्वरूपं लक्षणन्तेषां प्रभा रत्नेषु निर्मला । नयनोन्मीलनं वक्त्रे[१८] सान्निध्याय च लक्ष्म तत् ।।
लक्ष्मणोद्धाररेखाञ्च घृतेन मधुना तथा । मृत्युञ्जयेन[१९] सम्पूज्य शिल्पिदोषनिवृत्तये ।।६२।।
अर्च्चयेच्च[२०]ततो लिङ्गं स्नापयित्वा मृदादिभिः। शिल्पिनन्तोषयित्वा तु दद्याद् गां गुरवे ततः।।
लिङ्गं धूपादिभिः प्राच्यं गायेयुर्भर्तृगास्त्रियः । सव्येन चापसव्येन सूत्रेणाथ कुशेन वा ।।६४।।
स्मृत्वा च रोचनं दत्वा कुर्यान्निर्मञ्जनादिकं[२१] । गुडलवणधान्याकदानेन विसृजेच्च ताः।।६५।।

---

१. त्र्यंशादप्यर्थेति घ. । त्र्यंशादघोथेति ज. । २. अर्द्धतोपि वेति ग. । अर्द्धतो वरमिति ज. ।

३. लक्ष्मावतारकमिति घ. ।

४. त्रिभुक्ते भाववर्णनादिति क. । विभक्ते भागवर्जनादिति घ. । त्रिभक्ते भागवर्जनादिति ज. । त्रिभुक्ते भागवर्त्तनादिति ङ. । विभक्तेभाववर्णनादिति छ. ।

५. भवेल्लिङ्गेषु सर्वत इति ख. ग. ङ. छ. च ।

६. नवभक्तस्य भागैरष्टाभिराहतेति ख. छ. च । भवभक्तस्य भागैरष्टाभिराहतेति ज. । नवभक्तस्य भागैरष्टाभिराहतेति घ. । ७. हास्तिके इति ग. घ. च ।

८. गम्भीरा नवहास्तिके इति घ. ।

९. लिङ्गे वृद्धिकरादिके इति ख. । लिङ्गेषु द्विकरादिषु इति ग. लिङ्गे वृद्धिकरादिषु इति ख.घ.च ।

१०. भवेदष्टकरेति घ. । ११. गम्भीरा नवहास्तिके इति ग. । गम्भीरा नवहस्तके इति ज. ।

१२. सोत्तरेषु इति ज. ।

१३. यवस्य नवभक्तस्येत्यादिः । पादवृद्धेषु सर्वत इत्यन्तः पाठो ङ. पुस्तके नास्ति ।

१४. द्वयंशबृंहितेति ख. घ. छ. च । त्र्यंशबृंहितेति ङ. । द्वयंशवृद्धित इति ज. ।

१५. मूर्त्तिभागद्वये च्युते इति घ. । मूर्त्तिभागद्वये युते इति ज. ।

१६. मुक्त्वा भागद्वयं बुध इति ख. ग. घ. ङ. छ. च । १७. संविद्धमिति ग. ज. च ।

१८. व्यक्ते इति ग. घ. ज. घ । १९. मृत्युञ्जयञ्चेति ग. ।

२०. अर्च्चयेत्तु इति ग. ज. च । २१. पुष्पावरोधनं दत्वा कुर्य्यान्निर्मन्थनादिकमिति ज. । स्पृष्ट्वा च रोचनां दत्वा कुर्यान्निर्मञ्जनादिकमिति ङ. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

गुरुमूर्त्तिधरैः[1]सार्द्धं हृदा वा प्रणवेन वा । मृत्स्नागोमयगोमूत्रभस्मभिः[2] सलिलान्तरं ॥६६॥
स्नापयेत् पञ्चगव्येन पञ्चामृतपुरःसरं[3] । विरूक्षणं कषायैश्च सर्वौषधिजलेन वा ॥६७॥
शुभ्रपुष्पफलस्वर्णरत्नशृङ्गयवोदकैः[4] । तथा धारासहस्रेण दिव्यौषधिजलेन च[5] ॥६८॥
तीर्थोदकेन गाङ्गेन चन्दनेन च वारिणा। क्षीरार्णवादिभिः[6] कुम्भैः शिवकुम्भजलेन च[7]॥६९॥
विरूक्षणं विलेपञ्च[8] सुगन्धैश्चन्दनादिभिः। सम्पूज्य ब्रह्मभिः[9] पुष्पैर्वर्मणा रक्तचीवरैः[10]॥७०॥
रक्तरूपेण[11] नीराज्य रक्षातिलकपूर्वकं। घृतौघैर्जलदुग्धैश्च कुशाद्यैरर्घ्यसूचितैः ॥७१॥
द्रव्यैः स्तुत्यादिभिस्तुष्टमर्चयेत्[12] पुरुषाणुना[13]। समाचम्य[14] हृदा देवं ब्रूयादुत्थीयतां प्रभो ॥
देवं ब्रह्मरथेनैव क्षिप्रं द्रव्याणि तन्नयेत्[15] । मण्डपे पश्चिमद्वारे शय्यायां विनिवेशयेत् ॥७३॥
शक्त्यादिशक्तिपर्य्यन्ते[16] विन्यसेदासने शुभे। पश्चिमे पिण्डिकान्तस्य न्यसेद्ब्रह्मशिलान्तदा[17]॥
शस्त्रमस्त्र[18] शतालब्धनिद्राकुम्भध्रुवासनं[19]। प्रकल्प्य शिवकोणे च दत्वार्घ्यं हृदयेन तु॥७५॥
उत्थाप्योक्तासने लिङ्गं शिरसा पूर्वमस्तकं। समारोप्य न्यसेत्तस्मिन्[20] सृष्ट्या धर्मादिबन्दनं[21]॥
दद्याद्धूपञ्च सम्पूज्य तथा वासांसि वर्मणा । गृहोपकृतिनैवेद्यं हृदा दद्यात् स्वशक्तितः[22]॥७७॥
घृतक्षौद्रयुतं पात्रमभ्यङ्गाय पदान्तिके। देशिकश्च स्थितस्तत्र षट्त्रिंशत्तत्त्वसञ्चयं[23] ॥७८॥
शक्त्यादिभूमिपर्य्यन्तं स्वतत्त्वाधिपसंयुतं। विन्यस्य पुष्पमालाभिस्त्रिखण्डं[24] परिकल्पयेत्॥
मायापदेशक्त्यन्तन्तुर्य्यांशाष्टांशवर्त्तु लं[25]। तत्रात्मतत्त्वविद्याख्यं[26] शिवं सृष्टिक्रमेण तु[27]॥८०॥

---

१. गुरुमूर्त्तिर्यवैरिति ख. ङ. ज. च । २. ततो मृण्मयगोमूत्रभस्मभिरिति ग. ।
३. स्नापयेदित्यर्द्धश्लोको छ. पुस्तके नास्ति ।
४. ओड्रपुष्पफलस्वर्णरत्नशृङ्गगवोदकैरिति ग. । ५. दिव्यौषधिजलेन वा इति ग. ।
६. क्षारार्णवादिभिरिति ङ. छ. ज. च । ७. सरः कुम्भजलेन तु इति ज ।
८. विकर्षणं विलेपञ्चेति घ. ज. च । ९. बहुभिरिति ज० ।
१०. ब्रह्मणा रक्तचन्दनैरिति ग । ब्रह्मणा रक्तजीवकैरिति ङ ।
११. बहुरूपेण इति ग. घ. ज. च । १२. स्तुत्यादिभिस्तुत्यमर्घयेदिति ख. छ. च ।
१३. पुरुषात्मनेति ख. ग. घ. छ. च । १४. समाचर्य्येति ग. ।
१५. तर्पयेदिति ख. छ. च । १६. शक्त्यादिमूर्त्तिपर्य्यन्ते इति ख. घ. ज. च ।
१७. ब्रह्मशिलान्तिथेति ख. ङ. छ. ज. च । १८. शस्त्रमन्त्रेति ख. ग. घ. ङ. छ. च ।
१९. निद्राकुम्भ ध्रुवासनमिति ज. । २०. न्यसेदस्मिन्निति ज ।
२१. सृष्ट्या धर्म्मादिबन्धनमिति ख. । सृष्ट्यादिरर्घ्यादिबन्धनमिति छ. ।
२२. गृहोपकृतीत्यर्द्धश्लोको ग. पुस्तके नास्ति ।
२३. षडलिङ्गतनुसञ्चयमिति ज. षड्विंशतत्त्वसञ्चयमिति घ. । २४. त्रिशृङ्गमिति ग. ।
२५. मायाशादयशक्त्यन्ततूर्या ग्राह्या प्रवर्त्तनमिति ज. । मायापदेशेति अर्द्धश्लोको घ. पुस्तके नास्ति ।
२६. तत्रानुतत्त्वविध्याख्यमिति ज. । २७. सृष्टिक्रमेण चेति ग. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

एकशः प्रतिभागेषु ब्रह्मविष्णुहराधिपान् । विन्यस्य मूर्त्तिमूर्त्तीशान् पूर्व्वादिक्रमतो यथा ॥८१॥
क्ष्मावह्नियजमानार्क्कजलवायुनिशाकरान । आकाशमूर्त्तिरूपांस्तान् न्यसेत्तदधिनायकान् ॥
सर्वं पशुपतिं[1] चोग्रं रुद्रं भवमखेश्वरं[2] । महादेवञ्च भीमञ्च मन्त्रास्तद्वाचका इमे ॥८३॥
लवशषचयसाश्च हकारश्च त्रिमात्रिकः । प्रणवो हृदयाणुर्वा मूलमन्त्रोऽथवा कचित ॥८४॥
पञ्चकुण्डात्मके यागे[3] मूर्त्तीः पञ्चाथवा न्यसेत् । पृथिवीजलतेजांसि वायुमाकाशमेव च ॥८५॥
क्रमात्तदधिपान् पञ्च[4] ब्रह्माणं धरणीधरं । रुद्रमीशं सदाख्यञ्च सृष्टिन्यायेन मन्त्रवित्[5] ॥८६॥
मुमुक्षोर्वा निवृत्ताद्याः[6] अजाताद्यास्तदीश्वराः[7] । त्रितत्त्वं वाथ[8] सर्वत्र न्यसेद्व्याप्त्यात्मकारणं[9] ॥
शुद्धे चात्मनि विद्येशा अशुद्धे लोकनायकाः । द्रष्टव्या मूर्त्तिपाश्चैव भोगिनो मन्त्रनायकाः ॥८८॥
पञ्चविंशत्तथैवाष्टपञ्चत्रीणि यथाक्रमं । एषान्तत्त्वं तदीशानामिन्द्रादीनां ततो[10] यथा ॥८९॥

ओं हां शक्तितत्त्वाय नम इत्यादि[11] । ओं हां शक्तितत्त्वाधिपाय[12] नम इत्यादि । ओं हां क्ष्मामूर्त्तये नमः । ओं हां क्ष्मामूर्त्त्यधीशाय[13] शिवाय नम इत्यादि । ओं हां पृथिवीमूर्त्तये नमः । ओं हां मूर्त्त्यधिपाय[14] ब्रह्मणे नम इत्यादि । ओं हां शिवतत्त्वाधिपाय[15] रुद्राय नम इत्यादि ।

नाभिकन्दात्समुच्चार्य्य घण्टानादविसर्प्पणं[16] । ब्रह्मादिकारणत्यागाद् द्वादशान्तसमाश्रितं ॥
मन्त्रञ्च मनसा भिन्नं प्राप्तानन्दरसोपमं । द्वादशान्तात्समानीय निष्कलं[17] व्यापकं शिवं ॥९१॥
अष्टत्रिंशत्कलोपेतं सहस्रार्किरणोज्ज्वलं । सर्वशक्तिमयं साङ्गं ध्यात्वा लिङ्गे[18] निवेशयेत् ॥९२॥
जीवन्यासो भवेदेवं लिङ्गे सर्वार्थसाधकः । पिण्डिकादिषु तु न्यासः[19] प्रोच्यते साम्प्रतं यथा ॥
पिण्डिकाञ्च कृतस्नानां[20] विलिप्ताञ्चन्दनादिभिः । सद्वस्त्रैश्च समाच्छाद्य[21] रन्ध्रे च भगलक्षणे ॥

---

१. गर्भे पशुपतिमिति ज. ।
२. भवमयेश्वरमिति ग. छ. ज. च ।
३. पञ्चदण्डात्मके मार्गे इति ज. । पङ्वदण्डात्मके यागे इति ङ. ।
४. तदधिपालञ्चेति ख. ।
५. सृष्टिन्यासेन मन्त्रविदिति ख. घ. ङ. च । सृष्टिन्यासेन पूर्वविदिति ज. ।
६. मुमुक्षोर्विनिवृत्ताद्या इति ख. ।
७. अजात्याद्यास्तदीश्वरा इति ख. ।
८. त्रितत्त्वं चाथेति घ. ज. च ।
९. व्याप्यात्मकारणमिति ख. । व्याप्त्या स्वकारणमिति घ. ङ. च ।
१०. इन्द्रादीशान्तत इति ख. घ. ङ. छ. च ।
११. नम इतीति घ. ज. च ।
१२. शब्दतत्त्वाधिपतये इति ख. घ. छ. च ।
१३. सूक्ष्ममूर्त्तये इति घ. ।
१४. पृथिवीमूर्त्त्यधिपतये इति ख. । पृथिवी मूर्त्त्यधिपायेति ज. घ. च ।
१५. शिवतत्त्वायेति ज. ।
१६. घण्टानादविसर्पिणमिति घ. ज. च ।
१७. निष्फलमिति ख. घ. ङ. च ।
१८. लिङ्गमिति ग. घ. ज. च ।
१९. विन्यास इति ग. ।
२०. कृतस्नातामिति ख. घ. ज. च ।
२१. सद्दस्रैः साहमासाद्येति ज. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पञ्चरत्नादिसंयुक्तां[1] लिङ्गस्योत्तरतः स्थितां। लिङ्गवत्कृतविन्यासां[2] विधिवत्सम्प्रपूजयेत् ॥
कृतस्नानादिकान्तत्र लिङ्गमूले शिलां[3] न्यसेत्। कृतस्नानादिसंस्कारं शक्त्यन्तं वृषभं तथा॥९६॥
प्रणवपूर्वं हुं पूं ह्रीं[4] मध्यादन्यतमेन च। क्रियाशक्तियुतां पिण्डीं शिलामाधाररूपिणीं ॥९७॥
भस्मदर्भतिलैः कुर्य्यात प्राकारत्रितयन्ततः। रक्षायै लोकपालांश्च सायुधान्याजयेद्बहिः[5]॥९८॥

ओं हूं ह्रं[6] क्रियाशक्तये नमः। ओं हूं ह्रां हः[7] महागौरी रुद्रदयिते स्वाहेति च[8] पिण्डिकायां। ओं ह्रां[9] आधारशक्तये नमः। ओं ह्रां वृषभाय नमः।

धारिका दीप्तिमत्युग्रा ज्योत्स्ना चैता बलोत्कटाः।
तथा धात्री विधात्री च न्यसेद्वा पञ्चनायिकाः॥ ९९ ॥
वामा ज्येष्ठा क्रिया ज्ञाना[10] वेधा तिस्रोथवा न्यसेत्।
क्रियाज्ञाना तथेच्छा च[11] पूर्ववच्छान्तिमूर्त्तिषु॥ १०० ॥
तमी मोहा क्षमी निष्ठा मृत्युर्मायाभवज्वराः[12]।
पञ्च चाथ महामोहा घोरा च त्रितयज्वरा॥ १०१ ॥
तिस्रोथवा क्रियाज्ञाना[13] तथा बाधाधिनायिका।
आत्मादित्रिषु[14] तत्त्वेषु तीव्रमूर्त्तिषु विन्यसेत्॥ १०२ ॥

अत्रापि पिण्डिका ब्रह्मशिलादिषु यथाविधि। गौर्य्यादिसंवरैरेव[15] पूर्ववत् सर्वमाचरेत्[16]॥

---

१. यवरत्नादिसंयुक्तामिति घ. ज. च।
२. लिङ्गवत्कृतविन्यासमिति ख. छ. च।
३. कृतस्नानादिकां तर्द्वाल्लिङ्गमूले शिलामिति। ख. घ. ङ. च। कृतस्नानादिकं तद्वल्लिङ्गमूले शिवामिति ज.।
४. प्रणवं पूर्वं हूं प्रीं ह्रीं इति ख.। प्रणवपूर्वं हूं सूं इति ग.। प्रणवपूर्वं क्रूं सूं क्लीं क्रीं इति छ.। प्रणवं पूर्वंहूं स्रीं सूं ह्रीं इति घ.। प्रणवपूर्वं हूं सूं हूं इति ज.।
५. सायुधान् पूजयेत्तत इति ख. छ. च। सायुधान् पूजयेद्वहिरिति ग. ङ. च। सायुधाश्च स्यजेद्वहिरिति घ.। सायुधान्याजयेद्वहिरिति ज.।
६. ओं हूं ह्रीं इति ग. ङ. च। ओं ह्रीं इति घ.। ओं ह्रीं ह्रीं स इति ग.।
७. ओं हूं ह्रीं स इति ख.। ओं क्रूं ह्रीं स इति घ.। ओं ह्रीं ह्रीं स इति ग.। ओं ह्रीं स इति घ. ङ. च।
८. स्वाहेति ख. ग. ङ. छ. च।
९. ओं ह्रीं इति ख. ग. ङ. छ. च।
१०. क्रिया मेधेति ङ.।
११. तथैवेच्छेति ङ.।
१२. तमा मोहा क्षमा निष्ठा मृत्युर्माय मया ज्वरेति ख.। उमा मोहा क्षमा नित्या मृत्युर्मायाभयाज्वरा इति ज.।
१३. क्रियाज्ञानीति ग. घ. च।
१४. आज्ञादित्रिषु इति घ.।
१५. गौर्य्यादिषड्वरैरेवेति घ. ज. च।
१६. पूर्ववत् सर्वमर्च्चयेदिति ख. छ. च। पूर्व-वच्च-समाचरेदिति ज.। न्यासं पूर्ववदाचरेत् स दिति ङ.।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

एवं विधाय विन्यासं गत्वा कुण्डान्तिकं ततः। कुण्डमध्ये महेशानं मेखलासु महेश्वरं ॥१०४॥

क्रियाशक्तिं तथान्यासु नादमोष्ठे च[1] विन्यासेत्।
घटं स्थण्डिलवह्नीशैः[2] नाडीसन्धानकन्ततः[3] ॥ १०५ ॥

पद्मतन्तुसमां शक्तिमुद्घातेन समुद्यतां[4]। विशन्ती सूर्यमार्गेण निःसरन्तीं समुद्गतां[5]॥१०६॥
पुनश्च शून्यमार्गेण[6] विशर्तीं स्वस्य चिन्तयेत्। एवं सर्वत्र सन्धेयं मूर्त्तिपैश्च परस्परं॥१०७॥

सम्पूज्य धारिकां शक्तिं कुण्डे सन्तर्प्य च क्रमात्।
तत्त्वतत्त्वेश्वरा मूर्त्तीर्मूर्त्तीशांश्च[7] घृतादिभिः[8] ॥ १०८ ॥
सम्पूज्य तर्प्पयित्वा तु सन्निधौ संहिताणुभिः[9]।
शतं सहस्रमर्द्धं वा पूर्णया सह होमयेत्[10] ॥ १०९ ॥

तत्त्वतत्त्वेश्वरा मूर्त्तिर्मूर्त्तीशांश्च करेणुकान्[11]। तथा सन्तर्प्य सान्निध्ये जुहुयुर्मूर्त्तिपा अपि ॥
ततो ब्रह्मभिरङ्गैश्च[12] द्रव्यकालानुरोधतः। सन्तर्प्य शक्तिं कुम्भाम्भःप्रोक्षिते[13] कुशमूलतः ॥
लिङ्गमूलं च संस्पृश्य[14] जपेयुर्होमसङ्ख्यया। सन्निधानं हृदा कुर्य्युर्वर्म्मणा चावगुण्ठनं ॥
एवं संशोध्य ब्रह्मादि[15] विष्णवन्तादि विशुद्धये। विधाय पूर्ववत्सर्वं होमसङ्ख्याजपादिकम् ॥
कुशमध्याग्रयोगेन लिङ्गमध्याग्रकं स्पृशेत्। यथा यथा च सन्धानं तदिदानीमिहोच्यते ॥

ओँ हाँ हँ ओँ ओँ ओँ एँ ओँ भूँ भूँ वाह्यमूर्त्तये नमः[16]।

---

१. नादमध्ये चेति ज.। २. घटं स्थण्डिलवर्गाशैरिति ख. छ. च।
३. नाड़ीसम्भारकं तत इति ज.।
४. तत्त्वतत्त्वेश्वरा मूर्त्तिः स्वर्ग्यां तेन समुच्यतामिति ख. छ. च। पद्मतत्त्वसमां शक्तिं स्वधा तेन समुद्यतामिति ङ.। ५. समुद्गमानिति ज.।
६. सूर्य्यमार्गेणेति छ.। ७. मूर्त्तिमूर्त्तीशांश्चेति ज.।
८. घटस्थण्डिलेत्यादिः, घृताभिरित्यन्तः पाठो घ. पुस्तके नास्ति।
९. संहितात्मभिरिति ख.। सहितात्मभिरिति ति छ.। संघटाणुभिरिति ज.।
१०. एवं विधायेत्यादिः, पूर्णया सह होमयेदित्यन्तः सप्तश्लोकात्मकः पाठो ग. पुस्तके नास्ति।
११. मूर्त्तिपांश्च करेणुकान् इति घ. ङ. च।
१२. ब्रह्मभिरंशैश्चेति ख. घ. च। ब्रह्मभिरङ्गैश्चेति छ. ज. च।
१३. सन्तर्प्य शक्तिकुम्भाम्भःप्रोक्षिते इति क.। सन्तर्प्य शान्तिकुम्भस्थैः प्रोक्षिते इति ज.। सन्तर्प्य शान्तिकुम्भाम्भः प्रोक्षिते इति घ.।
१४. सम्पूज्येति ख. ङ. च। १५. ब्रह्मादीनिति ख. ग. घ. छ. च।
१६. ओँ हाँ हाँ ओँ ओँ ओँ वीँ ओँ भूँ भूँ वास्तुमूर्त्तये नम इति ख. छ. च। ओँ हां ओँ हां ओँ ओँ वां ओँ भूं हां वां क्ष्मामूर्त्तये नम इति ज.। घ. पुस्तके भूं भूं वां, इति विशेषः। ओँ हां हां ओँ ओँ वां ओँ ओ हूं हूं वाह्यमूर्त्तये नम इति ङ.।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ओँ ह्राँ वाँ आँ ओँ आँ षाँ ओँ भूँ भूँ वाँ[१] वह्निमूर्त्तये नमः ।

एवञ्च यजमानादिमूर्त्तिभिरभिसन्धेयं[२] । पञ्चमूर्त्त्यात्मकेप्येवं सन्धानं हृदयादिभिः ॥११५॥
मूलेन स्वीयवीजैर्वा ज्ञेयन्तत्त्वत्रयात्मके[३] । शिलापिण्डी वृषेष्वेवं पूर्णाछिन्नं सुसंवरैः[४] ॥
भागाभागविशुद्ध्यर्थं होमं कुर्य्याच्छतादिकं[५] । न्यूनादिदोषमोषाय शिवेनाष्टाधिकं शतं ॥

हुत्वाथ[६] यत् कृतं कर्म्म शिवश्रोत्रे[७] निवेदयेत् ।
एतत्समन्वितं[८] कर्म त्वच्छक्तौ च मया प्रभो ॥ ११८ ॥

ओं नमो भगवते रुद्राय रुद्र नमोस्तुते[९] । विधिपूर्णमपूर्णं वा स्वशक्त्यापूर्य्य[१०] गृह्यतां ॥

ओं ह्रीं[११] शाङ्करि पूरय[१२] स्वाहा इति पिण्डिकायां ।
अथ लिङ्गे न्यसेज् ज्ञानी क्रियाख्यं पीठविग्रहे ॥ १२० ॥

आधाररूपिणीं शक्तिं न्यसेद् ब्रह्मशिलोपरि । निबध्य[१३] सप्तरात्रं वा पञ्चरात्रं त्रिरात्रकं ॥
एकरात्रमथो वापि यद्वा सद्योधिवासनं[१४] । विनाधिवासनं यागः कृतोऽपि न फलप्रदः ॥१२२॥
स्वमन्त्रैः प्रत्यहं देयमाहुतीनां शतं शतं । शिवकुम्भादिपूजाञ्च दिग्बलिञ्च निवेदयेत् ॥१२३॥
गुर्वादिसहितो वासो[१५] रात्रौ नियमपूर्वकम् । अधिवासः स वसतेरधेर्भावः समीरितः ॥१२४॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये अधिवासनविधिर्नाम
षण्णवतितमोऽध्यायः ।

---

१. ओं ह्रां ह्रां वां ओं ओं वां ओं भूं भूं वां इति ख. ग. छ. च । ओं ह्रां ह्रां वां ओं ओं वां ओं ओं ओं वां हूं हूं वां इति ज. । ओं ओं ह्रां वां ओं ओं ओं वां ओं हूं हूं इति ङ. ।
२. मूर्त्तिभिरपि सन्धेयमिति घ. ज. च ।
३. ज्ञेयं तत्तु त्रयात्मकमिति ख. छ. च । देयं तत्र त्रयात्मके इति ङ. ।
४. पूर्णाछिन्नात्मसंवरैरिति ख. छ. च । पूर्णाछिन्नं स्वयंवरैरिति ङ. ।
५. शताधिकमिति ग. घ. च ।
६. स्तुत्वाथेति ङ. ।
७. शिवाग्रे तदिति ङ. ।
८. समर्पितमिति ख. घ. ज. च ।
९. रुद्राय रुद्रो रुद्र नमोस्तुते इति ङ. ज. च ।
१०. स्वशक्त्यापूज्येति ख. छ. च ।
११. ओं हूं इति घ. ।
१२. पूजयेति ख. छ. ङ. च ।
१३. निरुध्येति ख. ज. ङ. च ।
१४. सत्याधिवासनमिति ज. ।
१५. दीक्षान्तञ्च समभ्यर्च्येति ज. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सप्तनवतितमोऽध्यायः

शिवप्रतिष्ठाकथनं ।

ईश्वर उवाच

[१]प्रातर्निर्त्यविधिं कृत्वा द्वारपालप्रपूजनं । प्रविश्य प्राग्विधानेन देहशुद्धयादिमाचरेत् ॥१॥
दिक्पतींश्च समभ्यर्च्य शिवकुम्भञ्च वर्द्धनीं । अष्टमुष्टिकया[२] लिङ्गं वह्निं सन्तर्प्य च क्रमात् ॥
शिवाज्ञातस्ततो गच्छेत् प्रासादं शस्त्रमुचरन्[३] ।
तद्गतान् प्रक्षिपेद्विघ्नान् हुम्फडन्तशराणुना[४] ॥ ३ ॥
न मध्ये स्थापयेल्लिङ्गं वेधदोषविशङ्कया । तस्मान्मध्यं परित्यज्य यवार्द्धेन यवेन वा ॥४॥
किञ्चिदीशानमाश्रित्य शिलां मध्ये निवेशयेत् । मूलेन तामनन्ताख्यां सर्वाधारस्वरूपिणीं[५] ॥
सर्वगां सृष्टियोगेन विन्यसेदचलां शिलां । अथवानेन मन्त्रेण शिवस्यासनरूपिणीं ॥६॥
ओंनमो व्यापिनि भगवति स्थिरेऽचले ध्रुवे ।
ह्लं लं ह्रीं स्वाहा[६] त्वया शिवाज्ञया शक्ते स्थातव्यमिह सन्ततं ॥ ७ ॥
इत्युक्त्वा च समभ्यर्च्य[७] निरुध्याद्रौद्रमुद्रया[८]। वज्रादीनि च रत्नानि तथोशीरादिकौषधीः ॥
लोहान् हेमादिकांस्यान्तान् हरितालादिकांस्तथा । धान्यप्रभृतिशस्यांश्च पूर्वमुक्ताननुक्रमात् ॥
प्रभारागत्वदेहत्ववीर्य्यशक्तिमयानिमान्[९] । भावयन्नेकचित्तस्तु लोकपालेशसंवरैः[१०] ॥१०॥
पूर्वादिषु च गर्त्तेषु[११] न्यसेदेकैकशः क्रमात्[१२] । हेमजं तारजं कूर्म्मं वृषं वा द्वारसम्मुखं[१३] ॥
सरित्तटमृदा युक्तं पर्वताग्रमृदाथवा[१४] । प्रक्षिपेन्मध्यगर्त्तादौ[१५] यद्वा मेरुं सुवर्णजं ॥१२॥
मधूकाक्षतसंयुक्तमञ्जनेन समन्वितं । पृथिवीं राजतीं यद्वा यद्वा हेमसमुद्भवां ॥१३॥

---

१. वासुदेव दयाशील लीलया मां समुद्धर । घरोद्धारे समर्थोसि ममोद्धारे कियाञ्छ्रमः ॥ इति श्लोको ख. छ. पुस्तकेधिकोत्रास्ति ।

२. अष्टपुत्रियेति ख. घ. छ. च । अष्टपुष्पिकयेति ग. ङ. च । अष्टपुष्टिकया इति ञ. ।

३. प्रासादमस्त्रमुचरन् इति ख. ङ. च । प्रासादं शास्त्रमुचरन्निति ग. ञ. च ।

४. हुं फडन्तशिवात्मनेति ख. ग. छ. च । हुं फड़न्तशिवाणुनेति ञ० ।

५. सर्वाधानस्वरूपपिणीमिति ञ. ।

६. हं लं हं स्वाहेति ख. छ. च. । ओं हां लं हां स्वाहेति ज. ।

७. इत्युक्त्वा तं समभ्यर्च्येति ख.छ.च । इत्युन्मूलं समभ्यर्च्येति ग. । इत्युच्चार्य समभ्यर्च्येति ङ. ।

८. विरुन्ध्याद्रोषमुद्रयेति ख. ग. ङ. च ।

९. वीर्य्यशक्तिमनुक्रमादिति घ० ।

१०. लोकपालेशसञ्चरैरिति घ. ।

११. पूर्वादिवत् स्वगर्त्तेषु इति ङ. ।

१२. प्रभारागेत्यादि; न्यसेदेकैकशः क्रमादिति पाठः. छ. पुस्तके नास्ति ।

१३. द्वारसम्पुटमिति ग. ।

१४. मृदा पुन इति ग. ।

१५. मध्यगर्त्तायामिति ख. घ. ङ. च ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सर्वबीजसुवर्णाभ्यां समायुक्तां विनिक्षिपेत्[1]। स्वर्णजं राजतं वापि सर्वलोहसमुद्भवं[2] ॥१४॥
सुवर्णं कृशरायुक्तं पद्मनालं[3] ततो न्यसेत्। देवदेवस्य शक्त्यादिमूर्त्तिपर्य्यन्तमासनं ॥१५॥
प्रकल्प्य पायसेनाथ लिप्त्वा[4] गुग्गुलुनाथवा। श्वभ्रमाच्छाद्य वस्त्रेण तनुत्रेणास्त्ररक्षितं[5]॥१६॥
दिक्पतिभ्यो बलिं[6] दत्वा समाचान्तोऽथ देशिकः। शिवेन वा शिलाश्वभ्रसङ्गदोषनिवृत्तये[7]॥
शस्त्रेण वा शतं सम्यग् जुहुयात् पूर्णया सह। एकैकाहुतिदानेन सन्तर्प्य वास्तुदेवताः॥१८॥
समुत्थाप्य हृदा देवमासनं मङ्गलादिभिः। गुरुर्देवाग्रतो गच्छेन्मूर्त्तिपैश्च दिशि स्थितैः[8]॥१९॥
चतुर्भिः सह कर्त्तव्या देवयज्ञस्य[9] पृष्ठतः। प्रासादादि[10] परिभ्रम्य भद्राख्यद्वारसम्मुखं॥
लिङ्गं संस्थाप्य दत्वार्घ्यं प्रासादं सन्निवेशयेत्[11]। द्वारेण द्वारबन्धेन द्वारदेशेन तच्छिला॥
द्वारबन्धे शिखाशून्ये तदर्द्धेनाथ तद्गते[12]। वर्जयन्[13] द्वारसंस्पर्शं द्वारेणैव महेश्वरं ॥२२॥
देवगृहसमारम्भे कोणेनापि प्रवेशयेत्। अयमेव विधिर्ज्ञेयो व्यक्तलिङ्गेऽपि सर्वतः ॥२३॥
गृहे प्रवेशनं द्वारे लोकैरपि समीरितं। अपद्वारप्रवेशेन विदुर्गोत्रक्षयं गृहं[14] ॥२४॥
अथ पीठे[15] च संस्थाप्य लिङ्गं द्वारस्य सम्मुखं। तूर्य्यमङ्गलनिर्घोषैर्दूर्व्वाक्षतसमन्वितं॥२५॥
समुत्तिष्ठ हृदेत्युक्त्वा महापाशुपतं पठेत्। अपनीय घटं श्वभ्राद्[16] देशिको मूर्त्तिपैः सह॥

मन्त्रं सन्धारयित्वा तु[17] विलिप्तं[18] कुङ्कुमादिभिः।
शक्तिशक्तिमतोरैक्यं ध्यात्वा चैव तु रक्षितं[19]॥ २७॥

---

१. मधूकाक्षतेत्यादिः, विनिक्षिपेदित्यन्तः पाठो ग. पुस्तके नास्ति।
२. सर्वलोहसमन्वितमिति ग.। ३. पञ्चधान्यमिति ख. ग. च।
४. लिप्तेति घ. ङ. च।
५. श्वभ्रमाच्छाद्य वस्त्रेण तन्मात्रेण स्वरक्षितमिति ख. ङ. च। यन्त्रमाच्छाद्य शस्त्रेण तनुत्रेण स्वरक्षितमिति ज.। श्वभ्रेत्यादिपाठो ग. पुस्तके नास्ति।
६. दिक्पालादिभ्यो बलिमिति ङ.।
७. शिलास्तत्र सङ्गदोषनिवृत्तये इति घ. ज. च। शिलाश्वभ्रमङ्गदोषनिवृत्तये इति ख. छ. च।
८. मूर्त्तिपैः स्वदिशि स्थितैरिति ज.।
९. बन्धुभिः सह कर्तव्या देवयानस्येति ख.। बन्धुभिः सहकारे च देवालयस्य इति ग. ज. च।
१०. प्रासादार्द्धमिति ज.। ११. सम्प्रवेशयेदिति घ.।
१२. तदर्द्धेनाथ घातयेत् इति झ.। तदर्द्धेनाथ तत्सुते इति ग.। तदर्द्धेनाथ तद्यतिमिति घ.। तदर्द्धे वाथ तत्सुतमिति ज.। तदर्द्धे नाथ तद्युते इति ङ.।
१३. बन्धने इति ख.। बन्धयन् इति घ.। रक्षयन् इति झ.। वर्जयेदिति छ.।
१४. वित्तगोत्रक्षयं गृहमिति ग.। १५. अथ चैवं इति ज. झ. घ. च।
१६. घटं तत्र इति झ.।
१७. मन्त्रं सन्धारयित्वाथ इति ख.। पत्रस्थं धारयित्वा तु, इति घ.।
१८. सुलिप्तमिति ग.। १९. लक्षितमिति घ. ज. झ. च।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

लयान्तं[1] मूलमुच्चार्य्य स्पृष्ट्वा श्वभ्रे निवेशयेत्[2]। अंशेन ब्रह्मभागस्य यद्वा अंशद्वयेन च ॥२८॥
अर्द्धेन वाष्टमांशेन सर्वस्याथ प्रवेशनं[3]। विधाय सीसकं नाभिदीर्घाभिः[4] सुसमाहितः ॥२९॥
श्वभ्रं[5] वालुकयापूर्य्य ब्रूयात् स्थिरीभवेति च[6]। ततो लिङ्गे स्थिरीभूते ध्यात्वा[7] सकलरूपिणं ॥

मूलमुच्चार्य्य शक्त्यन्तं सृष्ट्या च निष्कलं[8] न्यसेत्।
स्थाप्यमानं यदा लिङ्गं याम्यां दिशमथाश्रयेत्[9] ॥ ३१ ॥

तत्तद्दिगीशमन्त्रेण पूर्णान्तं दक्षिणान्वितं। सव्ये स्थाने च वक्रे च[10] चलिते स्फुटितेपि वा॥३२॥
जुहुयान् मूलमन्त्रेण बहुरूपेण[11] वा शतं। किञ्चान्येष्वपि दोषेषु शिवशान्ति समाश्रयेत्[12]॥३३॥
युक्तं न्यासादिभिर्लिङ्गं[13] कुर्वन्नेवं न दोषभाक्। पीठबन्धमतः कृत्वा लक्षणस्यांशलक्षणं[14] ॥
गौरीमन्त्रं लयं नीत्वा सृष्ट्या पिण्डीञ्च विन्यसेत्। सम्पूर्य्य पार्श्वसंसिद्धिं वालुकावज्रलेपनं[15]॥

ततो मूर्त्तिधरैः सार्द्धं गुरुः शान्तिं घटोद्‌ध्र्वतः।
संस्थाप्य कलसैरन्यैस्तद्वत्[16] पञ्चामृतादिभिः ॥ ३६ ॥

विलिप्य चन्दनाद्यैश्च[17] सम्पूज्य जगदीश्वरं। उमामहेशमन्त्राभ्यां तौ स्पृशेल्लिङ्गमुद्रया॥३७॥
ततस्त्रितत्त्वविन्यासं षडर्चादिपुरःसरं[18]। कृत्वा मूर्त्तिं तदीशानामङ्गानां ब्रह्मणामथ ॥३८॥

ज्ञानी लिङ्गे[19] क्रियापीठे विन्यस्य स्नापयेत्ततः।
गन्धैर्व्विलिप्य सन्धूप्य व्यापित्वेन शिवे न्यसेत् ॥ ३९ ॥

स्रग्धूपदीपनैवेद्यैर्हृदयेन फलानि च। विनिवेद्य यथाशक्ति समाचम्य महेश्वरं ॥४०॥

---

१. नमोन्तमिति ङ.। २. शक्तिमुद्रे निवेशयेदिति ज.।
३. अर्द्धेन चाष्टमांशेन सर्वस्याधः प्रवेशनम् इति ज.।
४. सीसकं वाग्भिर्दीर्घाभिरिति छ.। सीसकं चापि दीर्घैरिति ज.।
५. अथेति क. ङ. छ. च।
६. लयान्तमित्यादिः, स्थिरीभवेति च इत्यन्तः सार्द्धश्लोकद्वयात्मकः पाठो झ. पुस्तके नास्ति।
७. ध्यायेदिति घ.।
८. सृष्ट्यादिविकलमिति झ.। सृष्ट्यादिनिष्फलमिति ख. घ. च। सृष्ट्या च निष्फलमिति ग. ङ. च।
९. ततो लिङ्गे इत्यादिः, दिशमथाश्रयेदित्यन्तः पाठो ज. पुस्तके नास्ति।
१०. वक्रेऽपेति ख.। ११. चतूरूपेण इति झ.।
१२. स्थाप्यमानमित्यादिः, शान्ति समाश्रयत् इत्यन्तः पाठो ग. ङ. पुस्तके नास्ति।
१३. उक्तन्यासविधिं लिङ्गे इति ख.। उक्तन्यासविधौ लिङ्गे इति ग.।
१४. पीठ बन्धमधःकृत्वा कुर्व्वन्नेव न दोषभाक् इति. ख. ग. च। पीठ बन्धमतः कृत्वा लक्षणस्याङ्गलक्षणमिति घ.। १५. पार्श्वसिद्धिं च वालुकाब्रजलेपत इति ज.।
१६. सतारन्यकलशैरन्यैः स्तुत्वा इति झ। १७. चतुराज्यैश्च इति झ.।
१८. षडर्घादिपुरःसरमिति झ.। षडङ्गादिपुरःसरमिति ख। १९. ज्ञानलिङ्गे इति झ.।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दत्वार्घं च जपं कृत्वा[1] निवेद्य वरदे करे[2] । चन्द्रार्क्कतारकं यावन् मन्त्रेण शैवमूर्त्तिपैः[3] ॥
स्वेच्छयैव त्वया नाथ स्थातव्यमिह मन्दिरे । प्रणम्यैवं वहिर्गत्वा[4] हृदा वा प्रणवेन वा ॥
संस्थाप्य वृषभं पश्चात् पूर्व्ववद्बलिमाचरेत् । न्यूनादिदोषमोषाय[5] ततो मृत्युजिता शतं ॥
शिवेन सशिवो हुत्वा शान्त्यर्थं पायसेन च । ज्ञानाज्ञानकृतं यच्च तत् पूरय महाविभो[6] ॥
हिरण्यपशुभूम्यादि[7] गीतवाद्यादिहेतवे । अम्बिकेशाय तद् भक्त्या शक्त्या सर्वं निवेदयेत् ॥
दानं महोत्सवं पश्चात् कुर्य्याद्दिनचतुष्टयं । त्रिसन्ध्यं त्रिदिनं मन्त्री होमयेन् मूर्त्तिपैः सह ॥
चतुर्थेऽहनि पूर्णाञ्च चरुकं बहुरूपिणा । निवेद्य सर्व्वकुण्डेषु सम्पाताहुतिसोधितम्[8] ॥४७॥
दिनचतुष्टयं यावत्तन्निर्म्माल्यन्तदूर्द्ध्वतः । निर्म्माल्यापनयं कृत्वा स्नापयित्वा तु[9] पूजयेत् ॥

पूजा सामान्यलिङ्गेषु कार्य्या साधारणाणुभिः[10] ।
विहाय लिङ्गचैतन्यं कुर्य्यात् स्थाणुविसर्ज्जनं ॥ ४९ ॥

असाधारणलिङ्गेषु क्षमस्वेति विसर्ज्जनं । आवाहनमभिव्यक्तिर्व्विसर्गः शक्तिरूपता ॥५०॥
प्रतिष्ठान्ते क्वचित् प्रोक्तं स्थिराद्याहुतिसप्तकं । स्थिरस्तथाप्रमेयश्चानादिबोधस्तथैव च ॥५१॥
नित्योथ सर्व्वगश्चैवाविनाशी दृष्ट एव च[11] । एते गुणा महेशस्य सन्निधानाय कीर्त्तिताः[12] ॥
ओं नमः शिवाय स्थिरो भवेत्याहुतीनां क्रमः । एवमेतच्च सम्पाद्य विधाय शिवकुम्भवत्[13] ॥
कुम्भद्वयञ्च तन्मध्यादेककुम्भाम्भसा भवं । संस्नाप्य तद् द्वितीयन्तु कर्त्तृस्नानाय धारयेद् ॥
दत्वा बलिं समाचाम्य वहिर्गच्छेत् शिवाज्ञया[14] । जगतीवाह्यतश्चण्डमैशान्यान्दिशि मन्दिरे ॥
धामगर्भप्रमाणे च[15] सपीठे[16] कल्पितासने । पूर्ववन् न्यासहोमादि विधाय ध्यानपूर्वकं ॥५६॥
संस्थाप्य विधिवत्तत्र ब्रह्माङ्गैः[17] पूजयेत्ततः । अङ्गानि पूर्व्वयुक्तानि[18] ब्रह्माणी त्वचंना यथा[19] ॥

---

१. जलं हुत्वा इति ग. ।
२. निवेद्य वरदेवके इति ज. ।
३. मन्त्रेशैर्मूर्त्तिपैः सह इति झ. । मन्त्रेशैर्मूर्त्तिजैः सह इति घ. ।
४. वहिष्कृत्वा इति झ. । वहिर्हत्वा इति घ. ।
५. न्यूनादिदोषमोक्षायेति ज. । न्यूनादिदोषनाशायेति ङ. ।
६. महाप्रभो इति झ. ।
७. हिरण्यवस्त्रधूपादि इति झ. ।
८. पायसाहुतिसोधितमिति झ. । सम्पाताहुतिशोधनमिति ग. ।
९. स्नापयित्वा च इति ग. ।
१०. साधारणांशुभिरिति ख. । साधारणादिकमिति ग. ।
११. विलासी तृप्त एव च इति ख. ङ. छ. ज. च । अविनाशी तृप्त एव च इति ङ. ।
१२. सन्निधाय प्रकीर्त्तिता इति ख. छ. च ।
१३. ओं नम इत्यादि, शिवकुम्भवत् इत्यन्तः पाठो झ. पुस्तके नास्ति । शिवाय शिवकुम्भवत् इति ग. ।
१४. वहिः कुम्भे शिवाज्ञया इति झ. ।
१५. वामगर्भप्रमाणेन इति झ. ।
१६. स्वपीठे इति ग. ।
१७. ब्रह्माद्यैरिति ग. झ. च ।
१८. पूर्वमुक्तानि इति ख. ग. ङ. छ. च । पूर्वमुक्तानीति ज. ।
१९. त्वधुना यथा इति ख. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

एवं सद्योजाताय ओं ह्रूं फट्[1] नमः । ओं विं वामदेवाय ह्रूं फट् नमः । ओं वुँ[2] अघोराय ह्रूँ फट् नमः । ओं[3] तत्पुरुषाय वौमीशानाय च ह्रूं फट् ॥

जपं निवेद्य[4] सन्तर्प्य विज्ञाप्य नतिपूर्वकं । देवः सन्निहितो यावत्तावत्त्वं सन्निधो भव ॥५८॥
न्यूनाधिकञ्च यत्किञ्चित् कृतमज्ञानतो मया[5] । त्वत्प्रसादेन चण्डेश तत् सर्वं परिपूरय ॥
वाणलिङ्गे वाणरोहे[6] सिद्धलिङ्गे स्वयम्भुवि । प्रतिमासु च सर्वासु न चण्डोऽधिकृतो भवेत् ॥
अद्वैतभावनायुक्ते स्थण्डिलेशविधावपि[7] । अभ्यर्च्च्य चण्डं ससुतं यजमानं हि भार्य्यया ॥
पूर्वस्थापितकुम्भेन स्नापयेत् स्नापकः[8] स्वयं । स्थापकं यजमानोपि सम्पूज्य च[9] महेशवत्[10] ॥

वित्तशाठ्यं विना दद्याद् भूहिरण्यादि[11] दक्षिणां ।
मूर्त्तिपान् विधिवत् पश्चात् जापकान् ब्राह्मणांस्तथा ॥ ६३ ॥

दैवज्ञं शिल्पिनं प्रार्च्य दीनानाथादि[12] भोजयेत् । यदत्र सम्मुखीभावे खेदितो भगवन्मया ॥
क्षमस्व नाथ तत् सर्वं कारुण्याम्बुनिधे मम[13] । इति विज्ञप्तियुक्ताय यजमानाय सद्गुरुः ॥
प्रतिष्ठापुण्यसद्भावं[14] स्फुरत्तारकसप्रभं[15] । कुशपुष्पाक्षतोपेतं स्वकरेण समर्पयेत् ॥६६॥
ततः पाशुपतोपेतं[16] प्रणम्य परमेश्वरं । ततोऽपि बलिभिर्भूतान् सन्निधाय निबोधयेत् ॥६७॥
स्थातव्यं भवता तावद् यावत् सन्निहितो हरः[17] । गुरुर्वस्त्रादिसंयुक्तं गृह्णीयाद्यागमण्डपं ॥६८॥
सर्वोपकरणं शिल्पी तथा स्नापनमण्डपं[18] । अन्ये देवादयः स्थाप्या मन्त्रैरागमसम्भवैः ॥६९॥
आदिवर्णस्य भेदाद्वा[19] सुतत्त्वव्याप्तिभाविताः[20] । साध्य[21] प्रमुखदेवाश्च सरिदोषधयस्तथा ॥
क्षेत्रपाः किन्नराद्याश्च पृथिवीतत्त्वमाश्रिताः । स्नानं सरस्वतीलक्ष्मीनदीनामम्भसि क्वचित् ॥

---

१. ओं सद्योजाताय हूं फट् इति झ. । एवं सद्योजाताय ओं हूं फट् नम इति ख. छ. च । ओं एवं सद्यो जाताय हूं फट् नम इति ग. ज. च ।
२. ओं वँ इति झ. ।
३. ओं एवं चेति छ. । ओं एवं चेदिति ङ. । ओं वै इति ज. ।
४. धूपं निवेद्य इति घ. ।
५. कृतमज्ञानतोपि वा इति ग. ।
६. वाणलिङ्गे चले लोहे इति ज. ।
७. स्थण्डिले सन्निधावपि इति ज. झ. च ।
८. स्थापक इति ज. ।
९. प्रपूज्य च इति ज. ।
१०. महेश्वरमिति ख. छ. च ।
११. गोहिरण्यादि इति ज. झ. च ।
१२. दीनानाथांश्चेति ज. ।
१३. देव त्वं नाथ तत् सर्वं कारुण्यान्मनवे नम इति झ. ।
१४. प्रतिष्ठायज्ञसम्भारमिति ग. ।
१५. स्फुरत्तारकसन्निभमिति ।
१६. ततः पशुपतिं जप्त्वा इति ख. ग. च ।
१७. भव इति ख. घ. च ।
१८. गुरुर्वस्त्राणीत्यादिः, स्नानमण्डपमित्यन्तः पाठो झ. पुस्तके नास्ति ।
१९. आदिवर्णस्य शेषाद्वा इति झ. ।
२०. स्वातन्त्र्या व्याप्तिरीरिता इति ग.। स्वतत्त्वव्याप्तिभाविता इति छ.। स्वतन्त्रव्याप्तिभेदत इति ज.
२१. साप्य इति झ. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भुवनाधिपतीनाञ्च स्थानं यत्र व्यवस्थितिः । अण्डवृद्धिप्रधानान्तं त्रितत्त्वं ब्रह्मणः पदं ॥
तन्मात्रादिप्रधानान्तं[१] पदमेतत् त्रिकं हरेः[२] । नाटयेशगणमातॄणां यक्षेशशरजन्मनां ॥७३॥
अण्डजाः शुद्धविद्यान्तं पदं गणपतेस्तथा । मायांशदेशशक्त्यन्तं शिवाशिवोन्नरोचिषां[३] ॥७४॥
पदमीश्वरपर्य्यन्तं व्यक्ताचासु च कीर्त्तितं । कूर्म्माद्यं कीर्त्तितं यच्च यच्च रत्नादिपञ्चकं[४] ॥७५॥
प्रक्षिपेत् पीठगर्त्ते च पञ्चब्रह्मशिलां विना । षड्भिर्विभाजिते गर्त्ते[५] त्यक्त्वा भागञ्च पृष्ठतः॥
स्थापनं पञ्चमांशे च यदि वा वसुभाजिते । स्थापनं सप्तमे भागे प्रतिमासु सुखावहं ॥७७॥
धारणाभिर्विशुद्धिः स्यात् स्थापने लेपचित्रयोः । स्नानादि मानसन्तत्र शिलारत्नादिवेशनं[६]॥
नेत्रोद्घाटनमन्त्रेष्टमासनादिप्रकल्पनं । पूजा निरम्बुभिः पुष्पैर्यथा चित्रं न दुष्यति ॥७९॥
विधिस्तु चललिङ्गेषु सम्प्रत्येव निगद्यते। पञ्चभिर्वा त्रिभिर्वापि पृथक् कुर्य्याद्[७] विभाजिते[८]॥
भागत्रयेण भागांशो भवेद्भागद्वयेन वा । स्वपीठेष्वपि[९] तद्वत् स्याल्लिङ्गेषु तत्त्वभेदतः ॥८१॥
सृष्टिमन्त्रेण संस्कारो विधिवत् स्फाटिकादिषु । किञ्च ब्रह्मशिलारत्नप्रभूतेश्चानिवेदनं[१०] ॥
योजनं पिण्डिकायाश्च मनसा परिकल्पयेत । स्वयम्भूवाणलिङ्गादौ[११] संस्कृतौ नियमो न हि॥
स्नापनं संहितामन्त्रैर्न्यासं होमञ्च कारयेत् । नदीसमुद्ररोहाणां स्थापनं पूर्ववन् मतं ॥८४॥
ऐहिकं मृण्मयं लिङ्गं पिष्टकादि च तक्षणात्[१२]। कृत्वा सम्पूजयेच्छुद्धं दीक्षणादिविधानतः[१३]॥
समादाय ततो मन्त्रानात्मानं सन्निधाय च । तज्जले प्रक्षिपेल्लिङ्गं वत्सरात् कामदं भवेत् ॥८६॥
विष्ण्वादिस्थापनं चैव पृथङ्मन्त्रैः समाचरेत ।

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये शिवप्रतिष्ठा[१४] नाम
सप्तनवतितमोऽध्यायः ।

---

१. तन्मात्रादिप्रयाणान्तमिति ख० ।　२. तत्त्वमेकं त्रिकं हरेरिति घ. ।
३. स्नानं सरस्वतीत्यादिः, रोचिषामित्यन्तः पाठो झ० पुस्तके नास्ति ।
४. यद्रत्नादिकपञ्चकमिति ज. ।　५. षड्भिर्विभाजिते गर्भे इति ।
६. शिलावाहादिवेशनं इति झ. । शिलारत्ननिवेशनमिति ख. ।
७. पृथक् पीठे इति ख. ग. घ. च ।
८. स्थापनमित्यादिः कुर्याङ् विभाजिते इत्यन्तः पाठो ङ. पुस्तके नास्ति ।
९. स्वपीठे स्नपिते इति ख. ।　१०. प्रभूतेष्वधिवेशनम् इति घ. ।
११. वाणलिङ्गानामिति ज. ।　१२. पिष्टकादि च तत्क्रमादिति छ. ज. च ।
१३. सृष्टिमन्त्रेणेत्यादिः दीक्षणादिविधानत इत्यन्तः पाठो ग. पुस्तके नास्ति ।
१४. शिवपूजा इति क. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अष्टनवतितमोऽध्यायः

गौरीप्रतिष्ठाकथनं ।

ईश्वर उवाच

वक्ष्ये गौरीप्रतिष्ठाञ्च पूजया सहितां शृणु । मण्डपाद्यं पुरो यच्च[1] संस्थाप्य चाधिरोपयेत् ॥

शय्यायान्तांञ्च विन्यस्य मन्त्रान्मूर्त्त्यादिकान् गुह ।
आत्मविद्याशिवान्तञ्च[2] कुर्यादीशनिवेशनं ॥ २ ॥
शक्तिं परां ततो[3] न्यस्य हुत्वा[4] जप्त्वा च पूर्ववत् ।
सन्धाय च तथा पिण्डीं[5] क्रियाशक्तिस्वरूपिणीं ॥ ३ ॥

सदेशव्यापिकां ध्यात्वा न्यस्तरत्नादिकां तथा । एवं संस्थाप्य तां पश्चाद्देवीन्तस्यान्नियोजयेत् ॥ परशक्तिस्वरूपान्तां स्वाणुना[6] शक्तियोगतः । ततो न्यसेत् क्रियाशक्तिं पीठे ज्ञानञ्च विग्रहे ॥ ततोपि व्यापिनीं शक्तिं समावाह्य नियोजयेत् । अम्बिकां शिवनाम्नीञ्च समालभ्य[7] प्रपूजयेत् ॥

ओँ आधारशक्तये नमः । ओं कूर्माय नमः । ओँ स्कन्दाय च तथा नमः । ओँ ह्रीँ नाराथणाय नमः । ओँ ऐश्वर्याय नमः । ओं अं अधश्छदनाय नमः । ओँ पद्मासनाय नमः । ओं ऊर्द्ध्वच्छदनाय नमः । ओं पद्मासनाय नमः । अथ सम्पूज्याः केशवास्तथा । ओँ ह्रीं कर्णिकायै नमः । ओँ क्षं पुष्कराद्येभ्य[8] इहार्चयेत् । ओँ हाँ पुष्ट्यै ह्रीं च ज्ञानायै ह्रूं क्रियायै ततो नमः । ओँ नालाय नमः । रुं धर्माय नमः[9] । रुं ज्ञानाय वै नमः[10] । ओँ वैराग्याय नमः । ओं वै अधर्माय नमः[11] । ओं रुं अज्ञानाय वै नमः । ओं अवैराग्याय वै नमः । अं अनैश्वर्याय नमः । हुं वाचे हुं च रागिण्यै क्रैं ज्वालिन्यै ततो नमः । ओँ ह्रौं शमायै[12] च नमः । हुँ ज्येष्ठायै ततो नमः । ओँ ह्रौं रौं क्रौं नवशक्त्यै गौं च गौर्यासनाय च । गौं गौरीमूर्त्तये नमः । गौर्य्या मूलमथोच्यते । ओँ ह्रीं सः[13] महागौरि रुद्रदयिते स्वाहा । गौर्य्यै नमः । गां ह्रूं ह्रीं शिवो गूं स्यात् शिखायै कवचाय च । गौं नेत्राय च गौं अस्त्राय ओं गौं विज्ञानशक्तये, ओँ गूं क्रियाशक्तये नमः[14] । पूर्वादौ

---

१. मण्डपाद्यं प्रविशेच्च इति ग० । २. शिवास्त्रं च इति घ० ।
३. तथा शक्तिं परामिति ख० । ४. स्तुत्वेति ज० ।
५. चण्डीमिति ख० । ६. आत्मनेति छ० ।
७. त्र्यम्बकेशीतिनाम्नीञ्च समारभ्येति ज० ।
८. ओं खं पुष्करेभ्य इति ख. । ९. धं धर्म्माय नम इति ख. ।
१०. वं ज्ञानाय नम इति ख. । ११. रुं अधर्माय वै नम इति ङ. ।
१२. वामायै इति ख. ग. घ. ङ. च । १३. ॐ हूं स इति घ. ।
१४. ह्रीं क्रियाशक्तये नम इति झ. । ओं क्रियाशक्तये नम इति घ. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शक्रादिकान्। ओँ सुं सुभगायै नमः। ह्रीं वीजललिता ततः। ओँ ह्रीं कामिन्यै च नमः। ओँ ह्रूँ स्यात कामशालिनीमन्त्रैर्गौरीं प्रतिष्ठाप्य प्राचर्च्य जप्त्वाथ सर्वभाक्[१] ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये गौरीप्रतिष्ठा नामाष्ट-
नवतितमोऽध्यायः।

एकोनशततमोऽध्यायः

सूर्य्यप्रतिष्ठाकथनं।

ईश्वर उवाच

वक्ष्ये सूर्य्यप्रतिष्ठाञ्च पूर्ववन्मण्डपादिकं। स्नानादिकञ्च सम्पाद्य[२] पूर्वोक्तविधिना ततः ॥१॥
विद्यामासनशय्यायां साङ्गं विन्यस्य भास्करं। त्रितत्त्वं विन्यसेत्तत्र सस्वरं खादिपञ्चकं ॥
शुद्ध्यादि पूर्ववत् कृत्वा पिण्डीं संशोध्य पूर्ववत्। सदेशपदपर्य्यन्तं विन्यस्य तत्त्वपञ्चकं[३] ॥
शक्त्या च सर्वतोमुख्या संस्थाप्य विधिवत्ततः।
स्वाणुना[४] विधिवत् सूर्य्यं शक्त्यन्तं[५] स्थापयेद्गुरुः ॥ ४ ॥
स्वाम्यन्तमथवादित्यं पादान्तन्नाम धारयेत्। सूर्य्यमन्त्रास्तु[६] पूर्वोक्ता द्रष्टव्याः स्थापनेपि च[७] ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये सूर्य्यप्रतिष्ठा नामैकोन-
शततमोऽध्यायः।

शततमोऽध्यायः

द्वारप्रतिष्ठाकथनं।

ईश्वर उवाच

द्वाराश्रितप्रतिष्ठाया वक्ष्यामि विधिमप्यथ। द्वाराङ्गानि कषायाद्यैः संस्कृत्य शयने न्यसेत् ॥
विन्यस्य सन्निवेश्याथ[८] हुत्वा जप्त्वात्र रूपतः[९] ॥ मूलमध्याग्रभागेषु त्रयमात्मादिसेश्वरं।

---

१. जप्त्वानुरूपतः इति ग. छ. च। २. स्नानादिकं च सम्पूज्य इति ख. छ. च।
३. विन्यस्य पदपञ्चकमिति छ.। विन्यस्य रत्नपञ्चकमिति ज.।
४. आत्मनेति छ.। ५. शक्त्यर्थमिति ङ.।
६. सूर्य्यमन्त्राश्चेति छ.। ७. स्थापनेपि वेति ज.।
८. विन्यस्य च निवेश्याथ इति ख.। विन्यस्य सन्निबोध्याथेति ज.।
९. जप्त्वानुरूपत इति ग.।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

द्वारादथो यजेद्वास्तुन्तत्रैवानन्तमन्त्रतः । रत्नादिपञ्चकं न्यस्य शान्तिहोमं विधाय च ॥३॥
यवसिद्धार्थकाक्रान्ता ऋद्धिवृद्धिमहातिलाः । गोमृत्सर्षपरागेन्द्रमोहनीलक्ष्मणामृताः ॥४॥
रोचना रुग् वचो दूर्वा प्रासादाधश्च पोटलीं । प्रकृत्योदुम्बरे बद्ध्वा रक्षार्थं प्रणवेन तु ॥५॥
द्वारमुत्तरतः किञ्चिदाश्रितं सन्निवेशयेत् । आत्मतत्त्वमधो न्यस्य विद्यातत्त्वञ्च शाखयोः ॥
शिवमाकाशदेशे च व्यापकं सर्वमङ्गले[1] । ततो महेशनाथं च विन्यसेन्मूलमन्त्रतः ॥७॥

द्वाराश्रितांश्च तल्यादीन्[2] कृतयुक्तैः[3] स्वनामभिः ।
जुहुयाच्छतमर्द्धं वा द्विगुणं शक्तितोथवा[4] ॥ ८ ॥

न्यूनादिदोषमोषार्थं हेतितो जुहुयाच्छतं[5] । दिग्बलिम्पूर्ववद्धुत्वा[6] प्रदद्याद्दक्षिणादिकं ॥९॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये द्वारप्रतिष्ठा नाम शततमोऽध्यायः ।

एकाधिकशततमोऽध्यायः

प्रासादप्रतिष्ठा ।

ईश्वर उवाच

प्रासादस्थापनं वक्ष्ये तच्चैतन्यं स्वयोगतः[7] । शुकनाशासमाप्तौ तु पूर्ववेद्याश्च मध्यतः ॥१॥
आधारशक्तितः पद्मे विन्यस्ते प्रणवेन च[8] । स्वर्णाद्येकतमोद्भूतं पञ्चगव्येन संयुतं ॥२॥
मधुक्षीरयुतं कुम्भं न्यस्तरत्नादिपञ्चकं[9] । स्रग्वस्त्रं गन्धलिप्तञ्च गन्धवत्पुष्पभूषितं[10]॥३॥
चूतादिपल्लवानाञ्च कृती कृत्यञ्च विन्यसेत्[11] । पूरकेण समादाय सकलीकृतविग्रहः ॥४॥
सर्वात्मभिन्नमात्मानं स्वाणुना[12] स्वान्तमारुतः।आज्ञया बोधयेच्छम्भौ[13] रेचकेन ततो गुरुः॥

---

१. सर्वपुष्कलमिति ख. घ. च ।
२. नन्द्यादीन् इति ख. ।
३. कृत्ययुक्तैरिति ज. ।
४. शक्तितो यथा इति ग. ।
५. भागत्रयेणेत्यादिः. जुहुयाच्छतमित्यन्तः पाठो झ. पुस्तके नास्ति । अत्र कतिपयश्लोकाधिकोऽध्यायत्रयात्मकः पाठः पतितोऽस्ति ।
६. पूर्ववद् दत्वा इति ग. घ. च ।
७. तच्चैतन्यञ्च योगत इति ग. । तच्चैतन्यस्वयोगत इति छ. ।
८. विन्यस्ते प्रणवेन तु इति ख. छ. ज. झ. च । विन्यसेत् प्रणवेन तु इति ग. ।
९. मधुक्षीरयुतं न्यस्तरत्नादिपञ्चकं तत इति ग. ।
१०. गन्धवत्पुष्पधूपितमिति ग. ङ. छ. च ।
११. वह्निकृत पद्मं विन्यसेदिति ख. । वह्निकूपं यवं न्यसेदिति ग. । वह्निकूपेषु च न्यसेदिति ज. ।
१२. सर्वात्मभिन्नमात्मानं स्वात्मना इति ख. । सर्वात्माभिन्नमात्मा च स्थाणुनेति ज. ।
१३. बोधयेच्छक्तौ इति ख. घ. च ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

द्वादशान्तात्[१] समादाय स्फुरद्वह्निकणोपमं । निक्षिपेत् कुम्भगर्भे,च न्यस्ततन्त्रातिवाहिकं[२] ।।६।।
विग्रहन्तद्गुणानाञ्च बोधकञ्च कलादिकं । क्षान्तं वागीश्वरं[३] तत्तु त्रातं तत्र निवेशयेत् ।।७।।
दश नाडीर्दश प्राणानिन्द्रियाणि त्रयोदश । तदधिपाञ्च संयोज्य प्रणवाद्यैः स्वनामभिः ।।८।।

स्वकार्य्यकारणत्वेन[४] मायाकाशनियामिकाः[५] ।
विद्येशान्प्रेरकान् शम्भुं व्यापिनञ्च सुसम्वरैः[६] ।। ९ ।।

अङ्गानि च[७] विनिक्षिप्य निरुन्ध्याद्रोधमुद्रा[८] । सुवर्णाद्युद्भवं यद्वा पुरुषं पुरुषानुगं ।।१०।।
पञ्चगव्यकषायाद्यैः पूर्ववत् संस्कृतन्ततः । शय्यायां कुम्भमारोप्य ध्यात्वा रुद्रमुमापतिं ।।११।।
तस्मिंश्च शिवमन्त्रेण व्यापकत्वेन विन्यसेत् । सन्निधानाय होमञ्च प्रोक्षणं स्पर्शनं जपं ।।
सान्निध्याबोधनं[९] सर्वम्भागत्रयविभागतः । विधायैवं[१०] प्रकृत्यन्ते[११] कुम्भे तं विनिवेशयेत् ।।

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये प्रासादकृत्यप्रतिष्ठा नामै-
काधिकशततमोऽध्यायः ।

द्व्यधिकशततमोऽध्यायः

ध्वजारोपणं ।

ईश्वर उवाच

चूलके ध्वजदण्डे च[१२] ध्वजे देवकुले तथा । प्रतिष्ठा च यथोद्दिष्टा[१३] तथा स्कन्द वदामि ते[१४] ।।
तडागार्द्धप्रवेशाद्वा यद्वा सवार्द्धवेशनात् । ऐष्टके दारुजः[१५] शूलः शैलजे धाम्नि शैलजः[१६] ।।२।।

---

१. द्वादशान्तमिमि ग. ज. च. ।
२. न्यस्य तत्र यथाक्रममिति ग. । न्यस्य तत्राभिवाहिकमिति छ. । न्यस्य तत्राभिवादकमिति ज. ।
३. वामेश्वरमिति ख. । वागेश्वरमिति ङ. ।
४. अकार्य्यकारणत्वेनेति ख. छ. च. ।
५. प्रयामिका इति ख. छ. च ।
६. व्यापिनञ्च स्वशक्तित इति झ. । व्यापिनञ्चास्य संस्रवैरिति ङ. ।
७. अज्ञाने चेति घ. झ. च. । अङ्गादि चेति ङ. ।
८. निर्मञ्छ्य द्रोणमुद्रया इति ग. । निरुन्ध्याद् द्रवमुद्रया इति झ. ।
९. सन्निध्याबोधनमिति ख. छ. ज. च ।
१०. विधायैवेति ज. ।
११. प्रकृत्या तु इति ख. ।
१२. चूडके ध्वजदण्डे वा इति ज. ।
१३. यथादिष्टा इति झ. ।
१४. या ह्यहं वदामि ते इति ङ. ।
१५. ऐष्टे दारुभव इति घ. ज. च ।
१६. तडागार्द्धेत्यादिः, शैलज इत्यन्तः पाठो झ० पुस्तके नास्ति ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वैष्णवादौ च चक्राढ्यः कुम्भः स्यान्मूर्त्तिमानतः ।
स च त्रिशूलयुक्तस्तु अग्रचूलाभिधो मतः[१] ॥ ३ ॥

ईशशूलः[२] समाख्यातो मूर्द्ध्नि लिङ्गसमन्वितः । वीजपूरकयुक्तो वा शिवशास्त्रेषु तद्विधः ॥
चित्रो ध्वजश्च जङ्घातो यथा जङ्घार्द्धतो भवेत्[३] । भवेद्वा दण्डमानस्तु यदि वा तद्यदृच्छया[४] ॥
महाध्वजः समाख्यातो यस्तु पीठस्य वेष्टकः[५]। शक्रैर्ग्रहै रसैर्वापि हस्तैर्दण्डस्तु सम्मितः ॥६॥
उत्तमादिक्रमेणैव विज्ञेयः शूरिभिस्ततः । वंशजः शालजादिर्वा स दण्डः सर्वकामदः ॥७॥
अयमारोप्यमाणस्तु भङ्गमायाति वै यदि । राज्ञोनिष्टं[६] विजानीयाद्यजमानस्य वा तथा[७] ॥८॥
मन्त्रेण वहुरूपेण पूर्ववच्छान्तिमाचरेत् । द्वारपालादिपूजाञ्च मन्त्राणान्तर्प्पणन्तथा ॥९॥
विधाय चूलकं[८] दण्डं स्नापयेदस्त्रमन्त्रतः । अनेनैव तु मन्त्रेण ध्वजं सम्प्रोक्ष्य देशिकः ॥१०॥

मृदु कषायादिभिः[९] स्नानं प्रासादङ्कारयेत्ततः ।
विलिप्य रसमाच्छाद्य[१०] शय्यायां न्यस्य पूर्ववत् ॥ ११ ॥
चूडके[११] लिङ्गवणन्यासो न च ज्ञानं न च क्रिया ।
विशेषार्थां[१२] चतुर्थीं च न च कुण्डस्य[१३] कल्पना ॥ १२ ॥

दण्डे तयार्थतत्त्वञ्च[१४] विद्यातत्त्वं द्वितीयकं । सद्योजातानि वक्राणि[१५] शिवतत्त्वं पुनर्ध्वजे ।१३॥
निष्कलञ्च शिवन्तत्र न्यस्याङ्गानि प्रपूजयेत् । चूडके[१६] च ततो मन्त्री सान्निध्ये सहिताणुभिः[१७]।
होमयेत् प्रतिभागञ्च ध्वजे तैस्तु फडन्तकैः[१८] । अन्यथापि कृतं यच्च ध्वजसंस्कारणं[१९] क्वचित् ॥
अस्त्रयागविधावेवं[२०] तत्सर्वमुपदर्शितं । प्रासादे कारिते स्थाने[२१] स्रग्वस्त्रादिविभूषिते॥१६॥

---

१. अग्रं चूडाभिधो मत इति घ. । अस्त्रचूलादिदोषत इति छ. । ग्रहचूडाभिधो मत इति ङ. । अग्रं चूडादिदोषत इति ख. ।
२. ईशश्चूड इति ग. । ईशश्चूलं इति ङ. । ईशश्चूल इति छ. । ईशः शूल इति ज. ।
३. जङ्घातो यद्वा जङ्घार्द्धतो भवेदिति ख. । सङ्घातो यथा जङ्घार्द्धतो यजेदिति घ. ।
४. यदि वा तद्वदिच्छया इति ख. ।
५. यस्तु स्यात् पीठवेष्टक इति ङ. ।
६. राज्ञोरिष्टमिति ज. ।
७. वै तथा इति ज. ।
८. चूडकमिति ज. ।
९. मृत्काषायादिभिरिति ख. छ. च ।
१०. विलिप्य रसमादायेति ज. ।
११. चूलके इति घ. ङ. च ।
१२. विशेषाद्या इति घ. ।
१३. नवदण्डस्येति झ. ।
१४. तथात्मतत्त्वञ्चेति ग. घ. च. ।
१५. सद्योजातादि वक्राणीति झ. ।
१६. चूलके च इति ख., ज. च ।
१७. संहितास्त्रभिरिति ख. ग. च ।
१८. चूलके इति श्लोको झ. पुस्तके नास्ति ।
१९. तच्च ध्वजे संहरणमिति ख. छ. च । यच्च ध्वजसंस्करणमिति घ. ।
२०. अस्त्रयागे विधाने चेति ज. ।
२१. प्रासादकारितस्थाने इति ख. झ. च । प्रासादे कारितस्थाने इति ज. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जङ्घा वेदी तदूर्ध्वे तु त्रितत्त्वादि निवेश्य च। होमादिकं विधायाथ शिवं सम्पूज्य पूर्ववत्॥१७॥
सर्वतत्त्वमयं ध्यात्वा शिवञ्च व्यापकं न्यसेत्। अनन्तं कालरुद्रञ्च विभाव्य च पदाम्बुजे॥१८॥
कुष्माण्डहाटकौ पीठे पातालनरकैः[1] सह। भुवनैर्लोकपालैश्च शतरुद्रादिभिर्वृतं॥१९॥
ब्रह्माण्डकमिदं ध्यात्वा जङ्घायाञ्च विभावयेत्। वारितेजोनिलव्योमपञ्चाष्टकसमन्वितं[2]॥२०॥
सर्वावरणसञ्ज्ञञ्च वृद्धयोन्यग्रकान्वितं[3]। योगाष्टकसमायुक्तं[4] नाशावधि गुणत्रयं॥२१॥
पटस्थं पुरुषं सिंहं वामञ्च[5] परिभावयेत्। मञ्जरीवेदिकायाञ्च विद्यादिकचतुष्टयं॥२२॥
कण्ठे मायां सरुद्राञ्च[6] विद्याश्चामलसारके[7]। कलसे चेश्वरं विन्दुं विद्येश्वरसमन्वितं[8]॥२३॥
जटाजूटञ्च तं विद्याच्छूलं चन्द्रार्द्धरूपकं। शक्तित्रयं च तत्रैव दण्डे नादं विभाव्य च॥२४॥
ध्वजे च कुण्डलीं शक्तिमिति धाम्नि विभावयेत्। जगत्या वाथ सन्धाय लिङ्गं पिण्डिकयाथवा[9]॥
समुत्थाप्य सुमन्त्रैश्च[10] विन्यस्ते शक्तिपङ्कजे। न्यस्तरत्नादिके तत्र स्वाधारे विनिवेशयेत्॥२६॥
यजमानो ध्वजे लग्ने बन्धुमित्रादिभिः सह। धाम प्रदक्षिणीकृत्य लभते फलमीहितं[11]॥२७॥
गुरुः पाशुपतं ध्यायन्[12] स्थिरमन्त्राधिपैर्युतं[13]। अधिपान् शस्त्रयुक्तांश्च रक्षणाय निबोधयेत्[14]॥
न्यूनादिदोषशान्त्यर्थं हुत्वा[15] दत्वा च दिग्बलिं। गुरवे दक्षिणां दद्याद् यजमानो दिवं व्रजेत्॥
प्रतिमालिङ्गवेदीनां यावन्तः परमाणवः। तावद्युगसहस्राणि कर्त्तु भोगभुजः[16] फलं॥३०॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये ध्वजारोहणादिविधिर्नाम
द्व्यधिकशततमोऽध्यायः।

---

१. पातालनवकैरिति ङ. ज. च।
२. पञ्चाङ्गकसमन्वितमिति ग.।
३. बुद्धयोन्यन्तकान्वितमिति ग.।
४. यागष्टकसमायुक्तमिति झ.।
५. रागञ्चेति ख. ज. च।
६. कण्ठे मायाङ्गवक्त्रञ्चेति झ.।
७. विद्याश्चामनसारके इति ख. ग. च। विद्याद्या मनसारके इति ज.।
८. विश्वेश्वरसमन्वितमिति ख. घ. छ. च। विद्योत्तरसमन्वितमिति ग.। सर्वावरणसञ्ज्ञञ्चेत्यादिः विद्येश्वरसमन्वितमित्यन्तः पाठो ङ. पुस्तके नास्ति।
९. लिङ्गपिण्डिकयाथवेति घ. ङ. ज. च।
१०. स्वमन्त्रैश्चेति ग. ङ. च।
११. लभते फलमीप्सितमिति ङ.।
१२. पाशुपतं ध्यायेदिति ख. घ. च।
१३. शिवमन्त्राधिपैर्युतमिति घ. ङ. च।
१४. रक्षणाय निवेदयेदिति ख. छ. च।
१ . न्यूनादिदोषनाशार्थं कृत्वेति झ.। न्यूनादिदोषनाशाय हुत्वेति घ. ज. च।
१६. कर्त्तभोगवत इति ख. छ. च।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

त्र्यधिकशततमोऽध्यायः

जीर्णोद्धारः ।

ईश्वर उवाच

जीर्णादीनाञ्च लिङ्गानामुद्धारं विधिना वदे । लक्ष्मोज्झितञ्च भग्नञ्च स्थूलं वज्रहतं तथा ॥१॥
सम्पुटं स्फुटितं व्यङ्गं लिङ्गमित्येवमादिकं । इत्यादिदुष्टलिङ्गानां योज्या पिण्डी[1] तथा वृषः ॥२॥
चालितञ्चलितं लिङ्गमत्यर्थं[2] विषमस्थितं । दिङ्मूढं पातितं लिङ्गं मध्यस्थं पतितं तथा ॥३॥
एवं विधञ्च संस्थाप्य[3] निर्व्रणञ्च भवेद्यदि । नद्यादिकप्रवाहेन तदपाक्रियते यदि ॥४॥
ततोऽन्यत्रापि संस्थाप्य विधिदृष्टेन कर्म्मणा । सुस्थितं दुस्थितं वापि[4] शिवलिङ्गं न चालयेत ॥
शतेन स्थापनं कुर्य्यात सहस्रेण तु चालनं[5] । पूजादिभिश्च संयुक्तं जीर्णाद्यमपि सुस्थितं[6] ॥६॥
याम्ये मण्डपमीशे वा प्रत्यग्द्वारैकतोरणं । विधाय द्वारपूजादि स्थण्डिले मन्त्रपूजनं[7] ॥७॥
मन्त्रान् सन्तर्प्य सम्पूज्य वास्तुदेवांस्तु पूर्ववत् । दिग्बलिं च वहिर्दत्वा समाचम्य स्वयं गुरुः॥
ब्राह्मणान् भोजयित्वा तु शम्भुं[8] विज्ञापयेत्ततः । दुष्टलिंगमिदं शम्भोः शान्तिरुद्धरणस्य चेत्[9] ॥
रुचिस्तवादिविधिना[10] अधितिष्ठस्व मां शिव । एवं विज्ञाप्य देवेशं शान्तिहोमं समाचरेत् ।१०॥
मध्वाज्यक्षीरदूर्वाभिर्मूलेनाष्टाधिकं शतं । ततो लिङ्गं च संस्थाप्य पूजयेन् स्थण्डिले[11] तथा॥११॥
ओं व्यापकेश्वरायेति नात्यन्तं शिववादिना[12] ।
ओं व्यापकं हृदयेश्वराय नमः[13] । ओं व्यापकेश्वराय शिरसे नमः[14] । इत्याद्यङ्गमन्त्राः[15] ।
ततस्तत्राश्रितं तत्त्वं श्रावयेदस्त्रमस्ततः[16] ॥ १२ ॥

---

१. त्याज्या पिण्डीति घ. ।
२. निम्नमत्यर्थमिति ज. ।
३. सन्त्याज्यमिति झ. ।
४. दुस्थितं चापीति ग. ।
५. सहस्रेण च चालयेदिति ग. ।
६. जीर्णाद्यमपि संस्थितमिति ख. छ. च । पूजया रहितं यत्तदक्षिष्टमपि दुःस्थितमिति ख. घ. पुस्तकेऽधिकः पाठः ।
७. स्थण्डिलेऽप्रपूजनमिति ख. ग. ङ. छ. झ. च । स्थण्डिले सम्प्रपूजनमिति घ. ज. च ।
८. सर्वमिति क. ।
९. शान्तिरुद्धरणे न्यसेदिति ख. ग. घ. छ. च ।
१०. रुचिस्तवास्ति विधिनेति ख. ङ. छ. ज. च ।
११. स्थण्डिलमिति ख. घ. छ. ज. च ।
१२. ओं व्यापकेश्वरायेति तत्त्वेनाभ्यन्तरादिने इति ख. । ओं व्यापकेश्वरायेति नात्यन्तशिववाचिनेति घ. । ओं व्यापकेश्वरायेति तत्त्वेनात्यन्तवादिने इति छ. ।
१३. ओं व्यापकेश्वराय हृदयाय नम इति ख. ग. च । ओं व्यापकेश्वर हृदया नम इति झ. घ. च ।
१४. शिरसे स्वाहेति ज. ।
१५. इत्यङ्गमन्त्रा इति ख. ङ. च । इत्यादिमन्त्रा इति छ. ।
१६. स्नापयेदस्त्रमन्त्रत इति छ । धारयेदस्त्रमन्त्रत इति ज. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सत्त्वः कोपीह[१] यः कोपि लिङ्गमाश्रित्य तिष्ठति ।
लिङ्गन्त्यक्त्वा शिवाज्ञाभिर्यत्रेष्टं तत्र गच्छतु ॥ १३ ॥
विद्याविद्येश्वरैर्युक्तः स भवोत्र[२] भविष्यति । सहस्रं प्रतिभागे च ततः पाशुपताणुना[३] ॥१४॥
हुत्वा शान्त्यम्बुना प्रोक्ष्य स्पृष्ट्वा कुशैर्जपेत्ततः[४] ।
दत्त्वार्घं च विलोमेन तत्त्वतत्त्वाधिपांस्तथा ॥ १५ ॥
अष्टमूर्त्तीश्वरान् लिङ्ग[५] पिण्डिकासंस्थितान् गुरुः ।
विसृज्य स्वर्णपाशेन वृषस्कन्धस्थया तथा ॥ १६ ॥
रज्ज्वा बध्वा तया नीत्वा शिवमन्त्रं गृणन् जनैः । तज्जले निक्षिपेन् मंत्री पुष्ट्यर्थं जुहुयाच्छतं ॥
तृप्तये दिक्पतीनाञ्च वास्तुशुद्धौ[६] शतं शतं । रक्षां विधाय तद्धाम्नि महापाशुपता ततः ॥
लिङ्गमन्यत्ततस्तत्र विधिवत् स्थापयेद् गुरुः । असुरैर्मुनिभिर्गोत्रस्तन्त्र-विद्भिः[७] प्रतिष्ठितं ॥
जीर्णं वाप्यथवा भग्नं[८] विधिनापि न चालयेत् । एष एव विधिः कार्यो जीर्णधामसमुद्धृतौ ॥
खड्गे मन्त्रगणं न्यस्य कारयेन् मन्दिरान्तरं । सङ्कोचे मरणं प्रोक्तं विस्तारे तु धनक्षयः ॥
तद्द्रव्यं श्रेष्ठद्रव्यं वा तत् सकार्यं तत्प्रमाणकं[९] ।

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये जीर्णोद्धारो नाम
त्र्यधिकशततमोऽध्यायः ।

चतुरधिकशततमोऽध्यायः

प्रासादलक्षणं ।

ईश्वर उवाच

वक्ष्ये प्रासादसामान्यलक्षणं ते शिखिध्वज । चतुर्भागीकृते क्षेत्रे भित्तेर्भागेन विस्तरात् ॥१॥
अद्रिभागेन[१०] गर्भः स्यात् पिण्डिका पादविस्तरात् ।
पञ्चभागीकृते क्षेत्रेन्तर्भागे[११] तु पिण्डिका ॥ २ ॥
सुषिरं भागविस्तीर्णं भित्तयो भागविस्तरात् । भागौ द्वौ मध्यमे गर्भे ज्येष्ठभागद्वयेन तु[१२]॥३॥

---

१. सिद्ध्वः कोपीहेति घ. । २. शम्भुरत्रेति घ. ज. च । प्रभुरत्रेति ख. छ. च ।
३. पाशुपतात्मनेति ख. ग. छ. च. । ४. दर्भैर्जपेत्तत इति ङ. ।
५. मूर्त्तिमूर्त्तीश्वरान् लिङ्गे इति ख. घ. ङ. छ. च ।
६. वास्तुमध्ये घ. । ७. तत्त्वविद्भिरिति ख. घ. छ. ज. च. ।
८. जीर्णे प्राप्य यथा भग्नमिति ख. । ९. तत्प्रमाणत इति घ. ।
१०. अर्द्धभागेनेति ख. घ. छ. ज. च । ११. पञ्चभागीकृते वापि मध्यभागे इति घ.छ.ज.च ।
१२. भागौ द्वौ मध्यमो गर्भो ज्येष्ठो भागद्वयेन तु इति ङ. छ. ज. च. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

त्रिभिस्तु कन्यसागर्भः[१] शेषो भित्तिरिति क्वचित्। षोढाभक्तेथवा क्षेत्रे भित्तिर्भागैकविस्तरात्॥
गर्भो भागेन विस्तीर्णो भागद्वयेन पिण्डिका। विस्ताराद् द्विगुणो वापि सपादद्विगुणोऽपि वा॥
अर्द्धार्द्धद्विगुणो वापि[२] त्रिगुणः क्वचिदुच्छ्रयः। जगती विस्तरार्द्धेन त्रिभागेन क्वचिद्भवेत्॥
नेमिः पादोनविस्तीर्णा[३] प्रासादस्य समन्ततः। परिधिस्त्र्यंशको मध्ये रथकांस्तत्र कारयेत्॥
चामुण्डं भैरवं तेषु नाटयेशं च निवेशयेत्। प्रासादार्द्धेन देवानामष्टौ वा चतुरोऽपि वा॥८॥

प्रदक्षिणां वहिः कुर्यात् प्रासादादिषु[४] वा नवा।
आदित्याः पूर्वतः स्थाप्या स्कन्दोग्निर्वायुगोचरे[५] ॥ ९ ॥

एवं यमादयो न्यस्याः स्वस्यां स्वस्यां दिशि स्थिताः।
चतुर्द्धा शिखरं कृत्वा शुकनासा द्विभागिका॥ १० ॥

तृतीये वेदिका त्वग्नेः सकण्ठो मलसारकः[६]। वैराजः पुष्पकश्चान्यः कैलासो[७] मणिकस्तथा॥
त्रिविष्टपश्च पञ्चैव मेरुमूर्द्धनि संस्थिताः[८]। चतुरस्रस्तु तत्राद्यो द्वितीयोपि तदायतः॥१२॥
वृत्तो वृत्तायतश्चान्यो[९] ह्यष्टास्रश्चापि पञ्चमः। एकैको नवधाभेदैश्चत्वारिंशच्च पञ्च च॥१३॥
प्रासादः प्रथमो मेरुर्द्वितियो मन्दरस्तथा। विमानश्च तथा भद्रः सर्वतोभद्र एव च॥१४॥
चरुको[१०] नन्दिको नन्दिर्वर्द्धमानस्तथापरः। श्रीवत्सश्चेति वैराजान्ववाये च समुत्थिताः॥
वलभी गृहराजश्च शालागृहश्च मन्दिरं। विशालश्च समो ब्रह्म[११] मन्दिरं भुवनन्तथा॥१६॥
प्रभवः शिविका वेश्म नवैते पुष्पकोद्भवाः[१२]। बलयो[१३] दुन्दुभिः पद्मो महापद्मक[१४] एव च॥
वर्द्धनी वान्य उष्णोषः[१५] शङ्खश्च कलसस्तथा। खवृक्षश्च तथाप्येते वृत्ताः कैलाससम्भवाः[१६]॥
गजोथ वृषभो हंसो गरुत्मान्नृक्षनायकः। भूषणो[१७] भूधरश्चान्न्ये श्रीजयः पृथवीधरः[१८]॥

---

१. त्रिभिस्तु कलसो गर्भ इति ख. छ. च। २. अध्यर्द्धद्विगुणो वापीति घ. ज. च।
३. पादेन विस्तीर्णा इति घ. ज. च।
४. प्रासादाद्दिक्षु इति ख. घ. छ. ज. च। प्रासादे दिक्षु इति ङ.।
५. स्कन्दोग्निर्वामगोचरे इति क.।
६. सकण्ठोमवसारक इति ङ.। सकण्ठोमवसाधक इति छ.।
७. कैलास्य इति ङ. छ. च।
८. चतुर्द्धेत्यादिः, मेरुमूर्द्धनि संस्थिता इत्यन्तः पाठो ग. पुस्तके नास्ति।
९. चतुर्वृत्तायतश्चान्य इति घ.। १०. रुचका इति क.।
११. विशालश्च मनो ब्रह्मेति ख. घ. च। विशालश्च तथा ब्रह्मेति ग.।
१२. नवैते पुष्करोद्भवा इति ङ.। १३. पणव इति ज.।
१४. महापद्मश्च इति क.। १५. शकुनी चास्य उष्णीष इति ज.।
१६. वर्द्धनीत्यादिः, कैलाससम्भवा इत्यन्तः पाठो छ. पुस्तके नास्ति।
१७. वृषण इति ङ.। १८. खवृक्षश्चेत्यादिः, पृथिवीधर इत्यन्तः पाठो ज. पुस्तके नास्ति।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वृत्तायतात् समुद्भूता नवैते मणिकाह्वयात्[१] ।
वज्रं चक्रन्तथा चान्यत् स्वस्तिकं वज्रस्वस्तिकं[२] ॥ २० ॥
चित्रं स्वस्तिकखड्गञ्च गदा श्रीकण्ठ एव च । विजयो नामतश्चैते[३] त्रिविष्टपसमुद्भवाः॥२१॥
नगराणामिमाः सञ्ज्ञा लाटादीनामिमास्तथा[४] । ग्रीवार्द्धेनोन्नतञ्चूलम्पृथुलञ्च विभागतः[५]॥
दशधा वेदिकाङ्कृत्वा पञ्चभिः स्कन्धविस्तरः। त्रिभिः कण्ठं तु कर्तव्यं चतुर्भिस्तु प्रचण्डकं[६]॥
दिक्षु द्वाराणि कार्याणि न विदिक्षु कदाचन ।
पिण्डिका कोणविस्तीर्णा मध्यमान्ता ह्युदाहृता ॥ २४ ॥
क्वचित् पञ्चमभागेन महताङ्गर्भपादतः । उच्छ्राया द्विगुणास्तेषामन्यथा वा निगद्यते ॥२५॥
षष्ट्याधिकात् समारभ्य अङ्गुलानां शतादिह[७] । उत्तमान्यपि चत्वारि द्वाराणि दशहानितः[८]॥
त्रीण्येव मध्यमानि स्युस्त्रीण्येव कन्य सान्यतः।उच्छ्रायार्द्धेन विस्तारो ह्युच्छ्रायोऽभ्यधिकस्त्रिधा॥
चतुर्भिरष्टभिर्वापि दशभिरङ्गुलैस्ततः[९] । उच्छ्रायात् पादविस्तीर्णा विशाखास्तदुदुंबरे[१०] ॥२८॥
विस्तरार्द्धेन बाहुल्यं[११] सर्वेषामेव कीर्तितम् । द्विपञ्चसप्तनवभिः शाखाभिर्द्वारमिष्टदं ॥२९॥
अधः शाखाचतुर्थांशे प्रतीहारौ निवेशयेत । मिथुनैः पादवर्णाभिः[१२] शाखाशेषं विभूषयेत् ॥
स्तम्भविद्धे भृत्यता स्यात् वृक्षविद्धे त्वभूतिता । कूपविद्धे भयं द्वारे क्षेत्रविद्धे[१३] धनक्षयः ॥
प्रासादगृहशालादिमार्गविद्धेषु[१४] बन्धनं । सभाविद्धेन दारिद्र्यं वर्णविद्धे[१५] निराकृतिः॥३२॥
उलूखलेन दारिद्र्यं शिलाविद्धेन शत्रुता[१६]। छायाविद्धेन दारिद्र्यं वेधदोषो न जायते ॥३३॥
छेदादुत्पाटनाद्वापि तथा प्राकारलक्षणात् । सीमाया द्विगुणत्यागाद् वेधदोषो न जायते ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये सामान्यप्रासादलक्षणं नाम
चतुरधिकशततमोऽध्यायः ।

---

१. मणिकाक्षयात् इति ज. । २. वज्रहस्तिकमिति ख. ग. छ. च । वज्रमुष्टिकमिति ज. ।
३. विजयो नायकश्चैते इति ग. ।
४. नटादीनामिमास्तथेति ख. ङ. च । नाट्यादीनामिमास्तथेति ग. घ. च । नादादीनामिमास्तथेति ज. ।
५. पृथुलं स्वत्रिभागत इति ख. घ. छ. च । पृथुसमुद्रमागत इति ङ. ।
६. चतुर्भिस्तु तदण्डकमिति ख. ग. च । चतुर्भिः कृतदण्डकमिति ज. ।
७. षष्ट्याधिकांशमारभ्य अङ्गुलानां शताधिकमिति ज. ।
८. उत्तमान्यपि चत्वारि चत्वारि दशहानित इति ज. ।
९. दशभिर्वा गुणैः शुभ इति छ. । १०. विशाखास्थे त्वडुम्बरे इति छ. च ।
११. विशुद्धेन तु बाहुल्यमिति ख. । विस्तरार्द्धेन वा इत्यादिति झ. । विस्तरार्द्धेन बाहुल्यमिति ज. ।
१२. मिथुनैरथ वल्लीभिरिति ख. छ. च । १३. द्वारे श्वभ्रविद्धे इति ख. घ. ङ. च ।
१४. मार्गवेधैश्च इति छ. । १५. चुल्लीविद्धे इति ख. ङ. च ।
१६. शिलाविद्धेन मूढता इति ग. ज. च. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः

नगरादिवास्तुकथनं ।

ईश्वर उवाच

नगरग्रामदुर्गाद्या[1] गृहप्रासादवृद्धये । एकाशीतिपदैर्वास्तुं पूजयेत् सिद्धये ध्रुवं ॥१॥

प्रागास्या दशधा नाड्यस्तासां नामानि च ब्रुवे ।
शान्ता यशोवती कान्ता विशाला प्राणवाहिनी ॥ २ ॥

सती वसुमती नन्दा सुभद्राथ[2] मनोरमा[3] । उत्तरा द्वादशान्याश्च[4] एकाशीत्यङ्घ्रिकारिका ॥
हरिणी सुप्रभा लक्ष्मीर्विभूतिर्विमला प्रिया । जया ज्वाला विशोका च स्मृतास्तत्र पादतः[5]॥४॥
ईशाद्यष्टाष्टकं दिक्षु यजेदीशं धनञ्जयं । शक्रमर्कं तथा सत्यं[6] भृशं व्योम च पूर्वतः ॥५॥
हव्यवाहञ्च पूषाणं वितथं भौममेव च । कृतान्तमथ गन्धर्वं भृङ्गं मृगञ्च दक्षिणे ॥६॥
पितरं द्वारपालञ्च सुग्रीवं पुष्पदन्तकं । वरुणं दैत्यशेषौ च यक्ष्मागं पश्चिमे सदा ॥७॥

रोगाहिमुख्यो[7] भल्लाटः सौभाग्यमदितिर्दितिः[8] ।
नवान्तः पदगो ब्रह्मा पूज्योर्द्ध्वे च षडङ्घ्रिगाः[9] ॥ ८ ॥

ब्रह्मेशान्तरकोष्ठस्थ[10] मायाख्यान्तु पदद्वये । तदधश्चापवत्साख्यं केद्रान्तरेषु षट्पदे ॥९॥
मरीचिकाग्निमध्ये तु सविता द्विपदस्थितः । सावित्री तदधो द्व्यंशे विवस्वान् षट्पदे त्वधः ॥
पितृब्रह्मान्तरे विष्णुमिन्दुमिन्द्रं त्वधो जयं । वरुणब्रह्मणोर्म्मध्ये मित्राख्यं षट्पदे यजेत् ॥
रोगब्रह्मान्तरे नित्यं द्विपञ्च[11] रुद्रदासकम् । तदधो द्व्यऽङ्घ्रिगं यक्ष्म षट्सौम्येषु धराधरं[12]॥
चरकीं स्कन्दविकटं विदारीं पूतनां क्रमात् । जम्भं पापं[13] पिलिपिच्छं[14] यजेदीशादिवाह्यतः[15]॥
एकाशीपदं वेश्म मण्डपश्च शताङ्घ्रिकः[16]। पूर्ववद्देवताः पूज्या ब्रह्मा तु षोडशांशके[17] ॥१४॥

---

१. नगरग्रामदुर्गादौ इति ख. छ. ज. च । नगरग्रामदुर्गाख्यमिति घ. ।
२. सुभद्रा चेति ज. ।
३. मनोजवा इति ज. ।
४. उत्तरात्या दशान्याश्चेति ख. ग. घ. ङ. ज. च ।
५. सूत्रपादत इति ग. । सूक्ष्मपातत इति छ. ।
६. शक्रमेकं तथापत्यमिति झ. ।
७. रोगाहिमोचेति ख. छ. च ।
८. सोमरूप्यदितो दितिमिति ख. ।
९. षडङ्गका इति ग. ।
१०. गोष्ठस्थ इति छ. ।
११. द्विस्थश्चेति ख. ग. ज. च ।
१२. षट्सौम्येषु चराचरमिति झ. घ. च ।
१३. कुम्भपालमिति छ. ।
१४. पिल्लिपिञ्जमिति ख. । पिल्लिपिञ्छमिति छ. ।
१५. चरकीमित्यादिः, वाह्यत इत्यन्तः पाठो झ. पुस्तके नास्ति ।
१६. शतार्द्धकमिति झ. ।
१७. ब्रह्मान्तैः षोडशांतकैरिति ख. छ. च. ब्रह्मान्ताः षोडशांशके इति ग. ज. च ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मरीचिश्च विवस्वांश्च मित्रं पृथ्वीधरस्तथा[1]। दशकोष्ठस्थिता दिक्षु त्वन्ये वेशादिकोणगाः[2]॥
दैत्यमाता तथेशाग्नी[3] मृगाख्यौ पितरौ तथा। पापयक्ष्मानिलौ देवाः सर्वे सार्द्धांशके स्थिताः॥

यत्पाद्योकः[4] प्रवक्ष्यामि सङ्क्षेपेण क्रमाद् गुह।
सदिग्विंशतकरैर्दैर्घ्यादष्टाविंशति[5] विस्तरात्॥ १७॥

शिशिराश्रयः शिवाख्यश्च[6] रुद्रहीनः सदोभयोः। रुद्रद्विगुणिताःनाहाः पृथुष्णोभिर्विना त्रिभिः॥

स्याद्ग्रहद्विगुणं दैर्घ्यात्तिथिभिश्चैव[7] विस्तरात्[8]।
सावित्रः सालयः कुड्या[9] अन्येषां पृथक् त्रिंशांशतः॥ १९॥

कुड्यपृथुपजङ्घोच्चात् कुड्यन्तु त्रिगुणोच्छ्रयं। कुड्यसूत्रसमा पृथ्वी वीथी भेदादनेकधा॥२०॥
भद्रे तुल्यञ्च वीथीभिर्द्वारवीथी विनाग्रतः। श्रीजयं पृष्ठतो हीनं भद्रोयं पार्श्वयोस्त्रिना॥२१॥
गर्भपृथुसमा[10] वीथी तदर्द्धार्द्धेन वा क्वचित्। वीथ्यर्द्धेनोपवीथ्याद्यमेकद्वित्रिपुरान्वितम्॥२२॥
सामान्यानाथ गृहं वक्ष्ये सर्वेषां सर्वकामदं। एकद्वित्रिचतुःशालमष्टशालं यथाक्रमात्॥२३॥

एकं याम्ये च सौमास्यं द्वे चेत पश्चात् पुरोमुखम्[11]।
चतुःशालन्तु साम्मुख्यात्तयोरिन्द्रेन्द्रमुक्तयोः॥ २४॥

शिवास्यमम्बुपास्यैष इन्द्रास्येयमसूर्य्यकं[12]। प्राक्सौम्यस्थे च दण्डाख्यं प्राग्याम्येवातसञ्ज्ञकं॥

---

१. पृथ्वीधरन्तथेति ख.। २. त्वन्ये वेशादिके गणा इति ख. छ. च।
३. दैत्यमाता भवेशाग्नी इति ख.। दैत्यमाता हरेशाग्नौ इति घ. ज. च।
४. यज्ञाद्योक इति ङ.। ५. साष्टाविंशति इति ख. ङ. च।
६. शिवाश्रमः शिवाख्यस्येति ख.घ.झ. च। शिवाग्रकशिवाख्यस्येति ग.। शिवाग्रगः शिवाख्यस्येति ङ. ज. च। शिवाश्रयः शिवाख्यस्येति छ.।
७. दैर्घ्याद्दषिभिभिश्चैवेति घ.। ८. दैर्घ्यात् साष्टाविंशतिविस्तरादिति छ.।
९. सावित्रस्यालयः कुल्ला इति ख.। सावित्र इत्यादिः, त्रिगुणोच्छ्रयमित्यन्तः पाठो झ. पुस्तके नास्ति। १०. गर्भपीठसमा इति ख. घ. झ. च।
११. सौम्यास्यं द्वे द्वे पश्चात्पुरोमुखमिति ख.। सौम्याख्यं द्वे च पश्चादधोमुखमिति झ।
१२. सावित्रः सालयः कोटीनां तपसा सत्यलोकतः। अपुनर्मारका यत्र ब्रह्मलोको हि स स्मृतः। पादाद्यधस्तुर्भूर्लोको भुवः सूर्य्याद्ध्रुवः स्मृतः। स्वर्लोको भुवान्तश्च नियुतानि चतुर्दश। एकदण्डं कटाहेन वृतो ब्रह्माण्डविस्तरः। वारिवन्ह्यानलाशैस्ततो भूतादिनावधि। वृतं दशगुणैरण्डं भूतादिर्महता तथा। दशोत्तराण्यशेषाणि शुक्र कस्मान्महामुने। महान्तञ्च समावृत्य प्रधानं समवस्थितं। अनन्तस्य न तस्यान्तः संस्थानं न च विद्यते। हेतुभूतमशेषस्य प्रकृतिः सा पुरा मुने। असङ्ख्यातानि चाण्डानि तत्र जातानि च दशां। दारुण्यग्निर्यथा तैलं तेन तद्वत् पुमानिति। प्रधानेवस्थितो व्यापी चेतनात्मात्मवेदनः। प्रधानश्च पुमांश्चैव सर्वभूतात्मभूस्तथा। विष्णुशक्त्या महत्प्राज्ञवृत्तौ संश्रयधर्म्मिणौ। तयोः सैव पृथग्भावे कारणं संश्रयस्य च। महाख्यं स्वतलश्चाख्यं पातालं चापि सत्तम। कृष्णपीतारुणाः शुक्रशर्करांशैलकाञ्चनाः। भूमयस्तेषु

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आप्येन्दौ गृहवल्याख्यं[1] त्रिशूलं तद्विनर्द्धिकृत । पूर्वशालाविहीनं[2] स्यात सुत्तेत्रं वृद्धिदायकं ॥
याम्ये हीने भवेच्चूली त्रिशालं वृद्धिकृन परं[3]। यक्षघ्नं जलहीनौकः सुतघ्नं बहुशत्रुकृत् ॥२७॥
इन्द्रादिक्रमतो वच्मि[4] ध्वजाद्यष्टौ गृहाण्यहं । प्रक्षालानुरूगावासमग्नौ[5] तस्य महानसं ॥२८॥
याम्ये रसक्रिया शय्या धनुः शस्त्राणि रक्षसि । धनभुक्त्यम्वुपेशाख्ये[6] सम्यगन्धौ च[7] मारुते ॥
सौम्ये[8] धनपशू कुर्यादीशे दीक्षावरालयं[9] । स्वामिहस्तमितं वेश्म विस्तारायामपिण्डिकं ॥
त्रिगुणं हस्तसंयुक्तं कृत्वाष्टांशैर्हृतं तथा[10]। तच्छेषोयं स्थितस्तेन वायसान्तं ध्वजादिकं ॥३१॥
त्रयः पक्षाग्निवेदेषु रसर्षिवसुतो भवेत् । सर्वनाशकरं वेश्म मध्ये चान्ते च संस्थितं ॥३२॥
तस्माच्च[11] नवमे भागे शुभकृन्निलयो मतः । तन्मध्ये मण्डपः शस्तः समो वा द्विगुणायतः ॥
प्रत्यगाप्ये चेन्दुयमे[12] हट्ट एव गृहावली । एकैकभवनाख्यानि दिक्ष्वष्टाष्टकसङ्ख्यया[13] ॥३४॥
ईशाद्यदितिकान्तानि फलान्येषां यथाक्रमं[14] । भयं नारी चलत्वं च जयो वृद्धिः प्रतापकः ॥
धर्मः कलिश्चनैस्व्यञ्च प्राग्द्वारेष्वष्टसु ध्रुवं । दाहोऽसुखं सुहृन्नाशो धननाशो मृतिर्द्धनं[15] ॥३६॥

चान्येषु सन्ति दैत्यादयः सुखं । पातालानामधश्चान्ते शेषो विष्णोश्च तामसः । गुणानन्यान् स चानन्तः शिरसा धारयन्महीं । भुवोधो नरका लोकं नयते क्षत्रवैष्णवः । वारिणा भाविता पृथ्वी यावत्तावन्नभो मतं । सिद्धान्तमस्तुयाम्यैव, इन्द्रास्थे यमसूर्य्यकं ।

मल्लब्धेषु क. ख. ग. घ. ङ. छ. झ. चिह्नितपुस्तकेषु सावित्रः सालयः इत्यतः परं नैष पाठो वर्त्तते । तेषु तु मुद्रितपाठ एव वर्त्तते पुनः ज. चिह्नितपुस्तके सावित्रः सालय इत्यतः परं इन्द्रास्येयमसूर्य्यकमित्यन्तः पाठो नास्ति । ज. चिह्नितपुस्तके य उक्तपाठो दृश्यते तत्र पूर्वापरसङ्गतिर्नास्ति । प्रकरणान्तरीयपाठोयमत्र लेखकभ्रमात् समागत इति भाति ।

१. गृहशल्याख्यमिति ख. । २. पूर्वशाखाविहीनमिति ङ. ।
३. याम्ये हीने भवेच्चुल्ली त्रिशालं दिततत्परमिति झ. । याम्ये हीने भवेच्छत्री त्रिशालं वित्तहृत्परमिति ग. । ४. इन्द्रादिक्रमतो वन्हीति ख. छ. च. ।
५. प्रक्षालनात्ममागारः समग्नौ इति छ. । प्रक्षालानुग्रहावासमग्नौ इति ज. ।
६. धनभक्ताम्बुपशाव्ये इति ख. छ. च । ७. शस्यमञ्ची चेति झ. ।
८. याम्ये इति झ. । ९. दीक्षासुरालयमिति ख. ज. झ. च ।
१०. कृत्वाष्टांशैर्हृतं तथेति ग. । कृत्वाष्टाङ्गैर्हृतं तथेति घ. ज. च । कृत्वाष्टांशहृतस्तथेति झ. ।
११. तस्मात्तु इति झ. ।
१२. प्रागीशे चेन्दुयाम्ये वेति ख. । प्रागाप्ये चेन्दुयाम्ये इति छ. झ. च
१३. विस्पष्टाष्टकसङ्ख्ययेति क० ।
१४. सर्वनाशकरमित्यादिः, यथाक्रममित्यन्तः पाठो ज. पुस्तके नास्ति ।
१५. वनवासी मृतिर्धनमिति घ. । धर्म्मः कलिश्चैत्यादिः, मृतिर्धनमित्यन्तः पाठो झ. पुस्तके नास्ति ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शिल्पित्वं तनयः स्याच्च याम्यद्वारफलाष्टकं। आयुःप्राव्राज्यशस्यानि[१] धनशान्त्यर्थसङ्क्षयाः ॥
शोषं भोगं चापत्यञ्च[२] जलद्वारफलानि च। रोगो मदार्त्तिमुख्यत्वं चार्थायुः कृशता मतिः ॥
मानञ्च द्वारतः पूर्वे[३] उत्तरस्यान्दिशि क्रमात्।

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये गृहादिवास्तुर्नाम
पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः।

षडधिकशततमोऽध्यायः

नगरादिवास्तुः।

ईश्वर उवाच

नगरादिकवास्तुञ्च वक्ष्ये राज्यादिवृद्धये। योजनं योजनार्द्धं वा[४] तदर्थं स्थानमाश्रयेत् ॥१॥
अभ्यर्च्य वास्तुनगरं प्राकाराद्यन्तु कारयेत्। ईशादित्रिंशत्पदके पूर्वद्वारं च सूर्यके ॥२॥
गन्धर्वाभ्यां[५] दक्षिणे स्याद्वारुण्ये पश्चिमे तथा। सौम्यद्वारं सौम्यपदे कार्या हट्टास्तु विस्तराः ॥
येनेभादि सुखं गच्छेन् कुर्याद् द्वारं तु षट्करं। छिन्नकर्णं विभिन्नञ्च चन्द्रार्द्धाभं पुरं न हि ॥
वज्रसूचीमुखं[६] नेष्टं सकृद् द्वित्रिसमागमं। चापाभं वज्रनागाभं[७] पुरारम्भे हि शान्तिकृत् ॥५॥
प्राच्यं विष्णुहरार्कादीन्नत्वा दद्याद् बलिं वली[८]। आग्नेये स्वर्णकर्मारान्[९] पुरस्य विनिवेशयेत् ॥
दक्षिणे नृत्यवृत्तीनां[१०] वेश्यास्त्रीणां गृहाणि च। नटानाञ्चक्रिकादीनां[११] कैवर्त्तादेश्च नैर्ऋते ॥
रथानामायुधानाञ्च कृपाणानाञ्च वारुणे। शौण्डिकाः कर्माधिकृता वायव्ये परिकर्मिणः[१२] ॥
ब्राह्मणा यतयः सिद्धाः पुण्यवन्तश्च चोत्तरे। फलाद्यादिविक्रयिण ईशाने च वणिग्जनाः ॥
पूर्वतश्च बलाध्यक्षा आग्नेये विविधं बलम्। स्त्रीणामादेशिनो दक्षे काण्डारान्नैर्ऋते न्यसेत् ॥
पश्चिमे च महामात्यान् कोषपालांश्च कारुकान्। उत्तरे दण्डनाथांश्च नायकद्विजसङ्कुलान् ॥
पूर्वतः क्षत्रियान् दक्षे वैश्याञ्छूद्रांश्च पश्चिमे। दिक्षु वैद्यान् वाजिनश्च बलानि च चतुर्दिशं ॥
पूर्वेण चरलिङ्ग्याद्दीञ्छ्मशानादीनि दक्षिणे। पश्चिमे गोधनाद्यञ्च कृषिकर्तॄंस्तथोत्तरे ॥

---

१. आयुः प्रावाह्यशस्यानीति ख. छ. च।
२. भोगं च पत्यं चेति ख. छ. च।
३. द्वारतः प्रोक्त इति घ.।
४. योजनार्द्धन्तदर्द्धं च इति घ. ङ. च।
५. गन्धर्वाद्या इति ग. ज. च।
६. सूचीमुखं नष्टमिति झ. छ. च।
७. व्यायतं वज्रनाशाभमिति घ.। चापाभं चक्रनाभाभमिति ङ.।
८. स्तुत्वा नत्वा बलिं बली इति ङ.।
९. आग्नेये तु कर्मकारानिति ख.।
१०. दक्षिणे भृत्यधूर्त्तानामिति ज.।
११. नटानां वाह्लिकादीनामिति छ. ज. च।
१२. परिकर्मण इति छ. ज. च।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

न्यसेन्म्लेच्छांश्च कोणेषु ग्रामादिषु तथा स्थितिं[1] ।
श्रियं वैश्रवणं द्वारि[2] पूर्व्वे तौ[3] पश्यतां श्रियं ॥ १४ ॥
देवादीनां पश्चिमतः पूर्व्वास्यानि गृहाणि हि ।
पूर्व्वतः पश्चिमास्यानि दक्षिणे चोत्तराननान्[4] ॥ १५ ॥
नाकेशविष्ण्वादिधामानि रक्षार्थं नगरस्य च[5] । निर्द्दैवतन्तु नगरग्रामदुर्गगृहादिकं ॥१६॥
भुज्यते तत् पिशाचाद्यै रोगाद्यैः परिभूयते[6] । नगरादि सदैवं हि जयदं भुक्तिमुक्तिदं ॥१७॥
पूर्व्वायां श्रीगृहं प्रोक्तमाग्नेय्यां वै महानसं । शयनं दक्षिणस्यान्तु[7] नैर्ऋत्यामायुधाश्रयं ॥१८॥
भोजनं पश्चिमायान्तु वायव्यां धान्यसङ्ग्रहः । उत्तरे द्रव्यसंस्थानमैशान्यां देवतागृहं[8] ॥१९॥
चतुःशालं त्रिशालं वा द्विशालं चैकशालकं । चतुःशालगृहाणान्तु शालालिन्दकभेदतः[9] ॥२०॥
शतद्वयन्तु जायन्ते पञ्चाशत् पञ्च तेष्वपि । त्रिशालानि तु चत्वारि द्विशालानि तु पञ्चधा ॥
एकशालानि चत्वारि एकालिन्दानि वच्मि च । अष्टाविंशदलिन्दानि गृहाणि नगराणि च[10] ॥
चतुर्भिः सप्तभिश्चैव पञ्चपञ्चाशदेव तु । षडलिन्दानि विंशैव अष्टाभिर्विंश एव हि[11] ॥२३॥
अष्टालिन्दं भवेदेवं[12] नगरादौ गृहाणि हि ।

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये नगरादिवास्तुर्नाम षडधिकशततमोऽध्यायः ।

सप्ताधिकशततमोऽध्यायः

स्वायम्भुवसर्गः ।

अग्निरुवाच[13]

वक्ष्ये भुवनकोषञ्च पृथ्वीद्वीपादिलक्षणं । अग्निध्रश्चाग्निबाहुश्च वपुष्मान्द्युतिमांस्तथा ॥१॥
मेधा मेधातिथिर्भव्यः सवनः पुत्र एव च[14] । ज्योतिष्मान् दशमस्तेषां सत्यनामा सुतोऽभवत् ॥
प्रियव्रतसुताः ख्याताः सप्तद्वीपान्ददौ पिता । जम्बुद्वीपमथाग्नीध्रे प्लक्षं मेधातिथेर्ददौ ॥३॥
वपुष्मते शाल्मलञ्च ज्योतिष्मते कुशाह्वयं । क्रौञ्चद्वीपं द्युतिमते शाकं भव्याय दत्तवान् ।४॥

---

१. तथा स्थितमिति ख. घ. ङ. छ च । यथास्थितमिति ज. ।
२. वैश्रवणं वापि इति ग. ।
३. पूर्वत इति ख. ।
४. दक्षिणे चोत्तरेण चेति ख. ग. घ. च ।
५. नगरस्य हीति ख. छ. च ।
६. रोगाद्यैरभिभूयते इति ज. ।
७. दक्षिणायां त्विति ग. घ. झ. च ।
८. देवतालयमिति झ. ।
९. शालालिन्दप्रभेदत इति घ. ।
१०. गृहाणि नगरादिषु इति झ. । गृहाणि नगराणि तु इति ख. ।
११. विंश एव चेति ख. छ. च ।
१२. अष्टाभिर्विभजेदेवमिति छ. ।
१३. ईश्वर उवाचेति ख. छ. च ।
१४. सवनः क्षय एव च इति क० ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पुष्करं सवनायादादग्नीध्रेऽदात् सुते शतं[१]। जम्बूद्वीपं पिता लक्षं नाभेर्द्दत्तं हिमाह्वयं ॥५॥
हेमकूटं किम्पुरुषे हरिवर्षाय नैषधं। इलावृते मेरुमध्यं रम्ये नीलाचलाश्रितं[२] ॥६॥
हिरण्वते श्वेतवर्षं कुरूंस्तु कुरवे ददौ। भद्राश्वाय च भद्राश्वं केतुमालाय पश्चिमं ॥७॥
मेरोः प्रियव्रतः पुत्रानभिषिच्य ययौ वनं। शालग्रामे तपस्तप्त्वा ययौ विष्णोर्लयं नृपः ॥८॥
यानि किम्पुरुषाद्यानि ह्यष्टवर्षाणि सत्तम। तेषां स्वाभाविकी सिद्धिः सुखप्राया ह्ययत्नतः ॥९॥
जरामृत्युभयं नास्ति धर्म्माधर्म्मौ युगादिकं। नाधमं मध्यमन्तुल्या हिमाद्देशात्तु नाभितः[३] ॥
ऋषभो मेरुदेव्याञ्च ऋषभाद् भरतोऽभवत्। ऋषभो दत्तश्रीः पुत्रे शालग्रामे हरिङ्गतः ॥११॥
भरताद् भारतं वर्षं भरतात् सुमतिस्त्वभूत्[४]। भरतो दत्तलक्ष्मीकः शालग्रामे हरिं गतः ॥१२॥
स योगी योगप्रस्तावे[५] वक्ष्ये तच्चरितं पुनः। सुमतेस्तेजसस्तस्मादिन्द्रद्युम्नो व्यजायत[६] ॥१३॥
परमेष्ठी ततस्तस्मात् प्रतीहारस्तदन्वयः। प्रतीहारात् प्रतीहर्त्ता प्रतिहर्त्तुर्भुवस्ततः ॥१४॥
उद्गीतोथ च प्रस्तारो विभुः प्रस्तारतः सुतः[७]। पृथुश्चैव ततो नक्तो नक्तस्यापि गयः सुतः ॥१५॥
नरो गयस्य तनयः तत्पुत्रोऽभूद्विराट् ततः। तस्य पुत्रो महावीर्यो धीमांस्तस्मादजायत ॥१६॥
महान्तस्तत्सुतश्चाभून्मनस्यस्तस्य चात्मजः। त्वष्टा त्वष्टुश्च विरजा[८] रजस्तस्याप्यभूत् सुतः ॥
सत्यजिद्रजसस्तस्य जज्ञे पुत्रशतं मुने। विश्वज्योतिःप्रधानास्ते भारतन्तैर्विवर्द्धितं ॥१८॥
कृतत्रेतादिसर्गेण सर्गः स्वायम्भुवः स्मृतः।

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये स्वायम्भुवः सर्गो नाम सप्ताधिकशततमोऽध्यायः।

अष्टाधिकशततमोऽध्यायः

भुवनकोषः।

अग्निरुवाच

जम्बूप्लक्षाह्वयौ द्वीपौ शाल्मलिश्चापरो महान्। कुशः क्रौञ्चस्तथा शाकः पुष्करश्चेति सप्तमः ॥
एते द्वीपाः समुद्रैस्तु सप्त सप्तभिरावृताः। लवणेक्षुसुरासर्पिर्दधिदुग्धजलैः समं[९] ॥२॥
जम्बूद्वीपो द्वीपमध्ये[१०] तन्मध्ये मेरुरुच्छ्रितः[११]। चतुरशीतिसाहस्रो भूयिष्ठः[१२] षोडशाद्रिराट् ॥

१. सुतेभ्य उ इति ख. छ. च।
२. रम्येनीलाचलाश्रियमिति ख. छ. झ. च। रम्यं नीलाचले स्थितमिति घ.।
३. हिमाद्देशान्तनाभित इति छ.।
४. सुमतिस्तत इति ग.।
५. योगप्रस्तारे इति ग. ज. झ. च।
६. इन्द्रद्युम्नोभ्यजायतेति ख. छ. च।
७. प्रतीहारादित्यादिः, प्रस्तारतः सुत इत्यन्तः पाठो झ. पुस्तके नास्ति।
८. दुष्टादुष्टश्च विरजा इति ख.।
९. दधिदुग्धजलान्तका इति ख. छ. च।
१०. जम्बूद्वीपस्तस्य मध्ये इति ज.।
११. मेरुरुस्थित इति झ.।
१२. भूमिष्ठ इति घ. ज. च। भुवि स्थ इति ङ.।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

द्वात्रिंशन्मूर्द्ध्नि विस्तारात षोडशाधः[१] सहस्त्रवान् ।
भूयस्तस्यास्य[२] शैलोऽसौ कर्णिकाकारसंस्थितः ॥ ४ ॥

हिमवान् हेमकूटश्च निषधश्चास्य दक्षिणे । नीलः श्वेतश्च शृङ्गी च उत्तरे वर्षपर्व्वताः ॥५॥
लक्षप्रमाणौ द्वौ मध्ये दशहीनास्तथापरे । सहस्रद्वितयोच्छ्रायास्तावद्विस्तारिणश्च ते ॥६॥
भारतं प्रथमं वर्षन्ततः किम्पुरुषं स्मृतं । हरिवर्षन्तथैवान्यन्मेरोर्दक्षिणतो द्विज ॥७॥
रम्यकं चोत्तरे वर्षं तथैवान्यद्धिरण्मयं[३] । उत्तराः कुरवश्चैव यथा वै भारतं तथा ॥८॥
नवसाहस्रमेकैकमेतेषां मुनिसत्तम । इलावृतञ्च तन्मध्ये सौवर्णो मेरुरुच्छ्रितः ॥९॥
मेरोश्चतुर्दिशन्तत्र नवसाहस्रविस्तृतं[४] । इलावृतं महाभाग चत्वारश्चात्र पर्व्वताः ॥१०॥
विष्कम्भा रचिता मेरोर्य्योजनायुतविस्तृताः[५] । पूर्व्वेण मन्दरो नाम दक्षिणे गन्धमादनः ॥११॥
विपुलः पश्चिमे पार्श्वे सुपार्श्वश्चोत्तरे स्मृतः[६] । कदम्बस्तेषु जम्बुश्च पिप्पलो वट एव च ॥१२॥
एकादशशतायामाः पादपा गिरिकेतवः । जम्बूद्वीपेति सञ्ज्ञा स्यात् फलं जम्बा गजोपमं ॥१३॥
जम्बूनदीरसेनास्यास्त्विदं जाम्बूनदं[७] परं । सुपार्श्वः पूर्वतो मेरोः केतुमालस्तु पश्चिमे ॥१४॥
वनं चैत्ररथं पूर्व्वे दक्षिणे गन्धमादनः । वैभ्राजं पश्चिमे सौम्ये नन्दनञ्च सरांस्यथ ॥१५॥
अरुणोदं महाभद्रं संशितोदं[८] समानसं । शिताभश्चक्रमुञ्जाद्याः पूर्वतः केशराचलाः[९] ॥१६॥
दक्षिणेऽद्रेस्त्रिकूटाद्याः शिशिवासमुखा जले[१०] । शङ्कुकूटादयः सौम्ये मेरौ च ब्रह्मणः पुरी ॥१७॥
चतुर्दशसहस्राणि योजनानाञ्च दिक्षु च । इन्द्रादिलोकपालानां समन्तात् ब्रह्मणः पुरः ॥१८॥
विष्णुपादात् प्लावयित्वा चन्द्रं स्वर्गात् पतन्त्यपि । पूर्वेण शीता भद्राश्वाच्छैलाच्छैलाद्गतार्णवं ॥
तथैवालकनन्दापि दक्षिणेनैव भारतं[११] । प्रयाति सागरं कृत्वा सप्तभेदाथ पश्चिमं ॥२०॥
अब्धिश्च चक्षुःसौम्याब्धिं भद्रोत्तरकुरूनपि[१२] । आनीलनिषधायामौ[१३] माल्यवद्गन्धमादनौ ॥
तयोर्म्मध्यगता मेरुः कर्णिकाकारसंस्थितः । भारताः केतुमालाश्च भद्राश्वाः कुरवस्तथा ॥२२॥
पत्राणि लोकपद्मस्य मर्य्यादाशैलवाह्यतः । जठरो देवकूटश्च मर्य्यादापर्वतावुभौ[१४] ॥२३॥
तौ दक्षिणोत्तरायामावानीलनिषधायतौ । गन्धमादनकैलासौ पूर्ववच्चायतावुभौ[१५] ॥२४॥

---

१. षोडशांश इति झ. । २. भूपाद्मस्यास्य इति ख. ग. छ. च ।
३. तथैवात्र हिरण्मयमिति ग. । तथैवाथ हिरण्मयमिति ज. ।
४. इलावृतञ्चेत्यादिः, नवसाहस्रविस्तृतमित्यन्तः पाठो छ. पुस्तके नास्ति ।
५. योजनायुतमुच्छ्रिता इति घ. । ६. सुपार्श्वश्चोत्तरे स्थित इति घ. ।
७. रसेनास्माद्धेमजाम्बूनदमिति ख. ग. घ. ङ. छ. च ।
८. असितोदमिति ज. । ९. पूर्वतः शिशिराचला इति ख. ग. घ. ज. च ।
१०. शशिवासमुखा जले इति ख. घ. ङ. छ. च ।
११. दक्षिणेन च भारतमिति ख. । दक्षिणेनैति भारतमिति ग. ।
१२. भद्रोद्धवकुरूनपि इति ख. । १३. अलीननिषधायामा इति ख. छ. च ।
१४. रम्यकमित्यादिः, मर्यादापर्वतावुभावित्यन्तः पाठो झ. पुस्तके नास्ति ।
१५. पूर्वपश्चायतावुभौ इति घ. ङ. ज. च ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अशीतियोजनायामावर्णवान्तर्व्यवस्थितौ । निषधः पारिपात्रश्च मर्य्यादापर्वतावुभौ ॥२५॥
मेरोः पश्चिमदिग्भागे यथा पूर्वे तथा स्थितौ । त्रिशृङ्गो रुधिरश्चैव उत्तरौ वर्षपर्व्वतौ ॥२६॥
पूर्वपश्चायतावेतावर्णवान्तर्व्यवस्थितौ । जाठराद्याश्च मर्य्यादाशैला मेरोश्चतुर्दिशं ॥२७॥
केशरादिषु या द्रोण्यस्तासु सन्ति पुराणि हि । लक्ष्मीविष्ण्वग्निसूर्य्यादिदेवानां मुनिसत्तम ॥
भौमानां स्वर्गधर्म्माणां न पापास्तत्र यान्ति च[१] । भद्राश्वेऽस्ति हयग्रीवो वराहः केतुमालके ॥
भारते कूर्म्मरूपी च मत्स्यरूपः कुरुष्वपि । विश्वरूपेण सर्वत्र पूज्यते भगवान् हरिः ॥३०॥
किम्पुरुषाद्यष्टसु क्षुद्भीतिशोकादिकं न च । चतुर्विंशतिसाहस्रं प्रजा जीवन्त्यनामयाः ॥३१॥
कृतादिकल्पना नास्ति भौमान्यम्भांसि नाम्बुदाः । सर्वेष्वेतेषु वर्षेषु सप्त सप्त कुलाचलाः ॥३२॥
नद्यश्च शतशस्तेभ्यस्तीर्थभूताः प्रजज्ञिरे । भारते यानि तीर्थानि तानि तीर्थानि वच्मि ते ॥३३॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये भुवनकोषो नामाष्टाधिक-
शततमोऽध्यायः ।

नवाधिकशततमोऽध्यायः

तीर्थमाहात्म्यं ।

अग्निरुवाच

माहात्म्यं सर्वतीर्थानां वक्ष्ये यद्भुक्तिमुक्तिदं । यस्य हस्तौ च पादौ च मनश्चैव सुसंयतं[२] ॥१॥
विद्या तपश्च कीर्त्तिश्च स तीर्थफलमश्नुते । प्रतिग्रहादुपावृत्तो लघ्वाहारो जितेन्द्रियः ॥२॥
निष्पापस्तीर्थयात्री तु सर्वयज्ञफलं लभेत् । अनुपोष्य त्रिरात्राणि तीर्थान्यनभिगम्य च ॥३॥
अदत्वा काञ्चनं गाश्च दरिद्रो नाम जायते । तीर्थाभिगमने[३] तत् स्याद्यद्यज्ञेनाप्यते फलं ॥
पुष्करं परमं तीर्थं सान्निध्यं हि त्रिसन्ध्यकं । दशकोटिसहस्राणि तीर्थानां विप्र पुष्करे ॥५॥
ब्रह्मा सह सुरैरास्ते मुनयः सर्वमिच्छवः । देवाः प्राप्ताः सिद्धिमत्र स्नाताः पितृसुरार्च्चकाः[४]॥
अश्वमेधफलं प्राप्य[५] ब्रह्मलोकं प्रयान्ति ते । कार्त्तिक्यामन्नदानाच्च निर्म्मलो ब्रह्मलोकभाक्[६] ॥
पुष्करे दुष्करं गन्तुं[७] पुष्करे दुष्करं तपः । दुष्करं पुष्करे दानं वस्तुं चैव सुदुष्करं[८] ॥

---

१. भौमाः स्वर्गा धर्म्मिणान्ते न पापास्तत्र यान्ति च इति छ. ङ. च । भौमानां स्वर्गधर्म्माणां तनया ह्यत्र यान्ति चेति ग. घ. च । भोगिनां स्वर्गधर्म्माणां तनयास्तत्र यान्ति चेति ज. ।

२. स्वसंयतमिति घ. ।

३. तीर्थादिगमने इति घ. ।

४. पितृसुरार्चिता इति ख. ।

५. अश्वमेधफलञ्चाश्येति ख. ग. छ. च । अश्वमेधफलं चाप्येति घ. ।

६. ब्रह्मलोककमिति ख. ग. ङ. छ. च ।

७. दुष्करे गन्तुमिति ख. ।

८. वस्तुं तत्र सुदुष्करमिति ज. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तत्र वासाज्जपाच्छ्राद्धात् कुलानां शतमुद्धरेत् । जम्बुमाग च तत्रैव तीर्थन्तण्डुलिकाश्रमं ॥९॥
कर्णाश्रमं[1] कोटितीर्थं नर्म्मदा चार्वुदं परं । तीर्थञ्चम्मण्वती सिन्धुः सोमनाथः प्रभासकं ॥१०॥
सरस्वत्यब्धिसङ्गञ्च[2] सागरन्तीर्थमुत्तमं । पिण्डारकं द्वारका च गोमती सर्वसिद्धिदा ॥११॥
भूमितीर्थं ब्रह्मतुङ्गं[3] तीर्थं पञ्चनदं परं । भीमतीर्थं[4] गिरीन्द्रञ्च देविका पापनाशिनी ॥१२॥
तीर्थं विनशनं पुण्यं नागोद्भेदमघार्दनं । तीर्थं कुमारकोटिश्च सर्वदानीरितानि च ॥१३॥
कुरुक्षेत्रं गमिष्यामि कुरुक्षेत्रे वसाम्यहं । य एवं सततं ब्रूयात्सोऽमलः प्राप्नुयाद्दिवं ॥१४॥

तत्र विष्ण्वादयो देवास्तत्र वासाद्धरिं व्रजेत्[5] ।
सरस्वत्यां सन्निहित्यां स्नानकृद् ब्रह्मलोकभाक्[6] ॥ १५ ॥

पांशवोपि कुरुक्षेत्रे नयन्ति परमां गतिं । धर्म्मतीर्थं सुवर्णाख्यं गङ्गाद्वारमनुत्तमं ॥ १६ ॥
तीर्थं कणखलं पुण्यं भद्रकर्णह्रदन्तथा[7] । गङ्गासरस्वतीसङ्गं ब्रह्मावर्त्तमघार्दनं ॥१७॥
भृगुतुङ्गञ्च कुब्जाम्रं गङ्गोद्भेदमघान्तकं[8] । वाराणसी वरन्तीर्थमविमुक्तमनुत्तमं ॥१८॥
कपालमोचनं तीर्थन्तीर्थराजं प्रयागकं । गोमतीगङ्गयोः सङ्गं गङ्गा सर्वत्र नाकदा ॥१९॥
तीर्थं राजगृहं पुण्यं शालग्राममघान्तकं । वटेशं वामनन्तीर्थं कालिकासङ्गमुत्तमं[9] ॥२०॥
लौहित्यं करतोयाख्यं शोणञ्चाथर्षभं परं । श्रीपर्वतं कोल्वगिरिं[10] सह्याद्रिर्म्मलयो गिरिः ॥
गोदावरी तुङ्गभद्रा कावेरी वरदा नदी । तापी पयोष्णी रेवा च दण्डकारण्यमुत्तमं ॥२२॥
कालञ्जरं मुञ्जवटन्तीर्थं सूर्पारकं परं । मन्दाकिनी चित्रकूटं शृङ्गवेरपुरं परं[11] ॥२३॥
अवन्ती परमं तीर्थमयोध्या पापनाशनी । नैमिषं परमं तीर्थं भुक्तिमुक्तिप्रदायकं[12] ॥२४॥

इत्याग्नेये महापुराणे आग्नेये तीर्थयात्रामाहात्म्यं नाम
नवाधिकशततमोऽध्यायः ।

---

१. कण्वाश्रममिति घ. । २. सरस्वत्यब्धिसञ्ज्ञयेति ग. घ. ज. च ।
३. ऋषितीर्थं ब्रह्मतुङ्गमिति घ. । भूमीतीर्थं ब्रह्मसञ्ज्ञमिति छ. । ४. भीमातीर्थमिति घ. ।
५. वासाद्दिवं व्रजेदिति ज. । ६. ब्रह्मलोकग इति ख. ग. घ. ङ. छ. ज. च ।
७. तत्र कर्णह्रदं तथेति ख. । भद्रकं तु ह्रदं तथेति ग. ङ. च । ८. गङ्गोद्भेदमवन्तिकमिति ज ।
९. तीर्थं कणखलमित्यादिः, कालिकासङ्गमुत्तममित्यन्तः पाठो छ. पुस्तके नास्ति ।
१०. श्रीपर्वतं कोन्द्रगिरिरिति छ. । श्रीपर्वतं कोलगिरिमिति ज. ।
११. शृङ्गवेरपुरं वरमिति घ. ।
१२. अग्निरुवाच । माहात्म्यं सर्वतीर्थानामित्यादिः, नैमिषं परमन्तीर्थं भुक्तिमुक्तिप्रदायकं । इत्याग्नेये महापुराणे तीर्थयात्रामाहात्म्यमित्यन्तः पाठो झ. पुस्तके नास्ति ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दशाधिकशततमोऽध्यायः

गङ्गामाहात्म्यं ।

अग्निरुवाच

गङ्गामाहात्म्यमाख्यास्ये सेव्या सा भुक्तिमुक्तिदा ।
येषां मध्ये याति गङ्गा ते देशाः पावना वराः ॥ १ ॥

गतिर्गङ्गा तु[१] भूतानां गतिमन्वेषतां[२] सदा । गङ्गा तारयते[३] चोभौ वंशौ नित्यं हि सेविता ॥२॥
चान्द्रायणसहस्राच्च गङ्गाम्भःपानमुत्तमं । गङ्गां मासन्तु संसेव्य सर्वयज्ञफलं लभेत् ॥३॥
सकलाघहरी देवी स्वर्गलोकप्रदायिनी । यावदस्थि च गङ्गायां तावत् स्वर्गे स तिष्ठति ॥४॥
अन्धादयस्तु[४] तां सेव्य देवैर्गच्छन्ति तुल्यतां[५]। गङ्गातीर्थसमुद्भूतमृद्धारी सोऽवहार्कवत्[६]॥
दर्शनात् स्पर्शनात् पानात्तथा गङ्गेतिकीर्त्तनात् । पुनाति पुण्यपुरुषान् शतशोथ सहस्रशः ॥६॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये गङ्गामाहात्म्यं नाम दशाधिक-
शततमोऽध्यायः ।

एकादशाधिकशततमोऽध्यायः

प्रयागमाहात्म्यं ।

अग्निरुवाच

वक्ष्ये प्रयागमाहात्म्यं भुक्तिमुक्तिप्रदं परं[७]। प्रयागे ब्रह्मविष्णवाद्या देवा मुनिवराः स्थिताः ॥१॥
सरितः सागराः सिद्धा गन्धर्वाप्सरसस्तथा । तत्र त्रीण्यग्निकुण्डानि तेषां मध्ये तु जाह्नवी॥२॥
वेगेन समतिक्रान्ता सर्वतीर्थपुरस्कृता । तपनस्य सुता तत्र त्रिषु लोकेषु विश्रुता ॥३॥
गङ्गायमुनयोर्म्मध्यं[८] पृथिव्या जघनं स्मृतं । प्रयागं जघनस्यान्तरुपस्थमृषयो विदुः[९] ॥४॥

---

१. गतिर्गङ्गा हीति ग. ज. च ।
२. गतिर्गतिमतामिति झ. ।
३. गङ्गा पावयते इति झ. ।
४. पतितादयस्तु इति झ. ।
५. गच्छन्ति साम्यतामिति घ. झ. च ।
६. गङ्गातीरसमुद्भूतमृद्धारी सोऽघहार्कवदिति ख. ग. झ. च । गङ्गातीरसमुद्भूतमृदं मूर्द्धा बिभर्त्ति यः । बिभर्त्ति रूपं सोर्कस्य तमोनाशाय केवलमिति ङ ।
७. भक्तिमुक्तिफलप्रदमिति ग. । भक्तिमुक्तिप्रदायकमिति झ. ।
८. गङ्गायमुनयोर्मध्ये इति ख. ।
९. सरितः सागरा इत्यादिः उपस्थमृषयो विदुरित्यन्तः पाठो ग. पुस्तके नास्ति ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रयागं सप्रतिष्ठानं कम्बलाश्वतरावुभौ । तीर्थं भोगवती चैव वेदी प्रोक्ता प्रजापतेः ॥५॥
तत्र वेदाश्च यज्ञाश्च मूर्त्तिमन्तः प्रयागके । स्तवनादस्य[१] तीर्थस्य नामसङ्कीर्त्तनादपि ॥६॥
मृत्तिकालम्भनाद्वापि सर्वपापैः प्रमुच्यते । प्रयागे सङ्गमे दानं श्राद्धं जप्यादि चाक्षयं[२] ॥७॥
न वेदवचनाद्विप्र न लोकवचनादपि । मतिरुत्क्रमणीयान्ते प्रयागे मरणं प्रति ॥८॥
दशतीर्थसहस्राणि षष्टिकोट्यस्तथापराः । तेषां सान्निध्यमत्रैव प्रयागं परमन्ततः ॥९॥
वासुकेर्भोगवत्यत्र हंसप्रपतनं परं । गवां कोटिप्रदानाद्यत् त्र्यहं स्नानस्य[३] तत्फलं ॥१०॥
प्रयागे माघमासे तु एवमाहुर्म्मनीषिणः । सर्वत्र सुलभा गङ्गा त्रिषु स्थानेषु दुर्लभा ॥११॥
गङ्गाद्वारे प्रयागे च गङ्गासागरसङ्गमे । अत्र दानाद्दिवं[४] याति राजेन्द्रो जायतेऽत्र च ॥१२॥
वटमूले सङ्गमादौ मृतो विष्णुपुरीं व्रजेत् । उर्वशीपुलिनं रम्यं तीर्थं सन्ध्यावटस्तथा ॥१३॥
कोटीतीर्थञ्चाश्वमेधं गङ्गायमुनमुत्तमं । मानसं रजसा हीनं तीर्थं वासरकं परं[५] ॥१४॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये प्रयागमाहात्म्यं नाम एकादशाधिक-
शततमोऽध्यायः ।

द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः

वाराणसीमाहात्म्यम् ।

अग्निरुवाच

वाराणसी[६] परं तीर्थं गौर्य्यै प्राह महेश्वरः । भुक्तिमुक्तिप्रदं पुण्यं वसतां गृणतां हरिं[७] ॥१॥

रुद्र उवाच

गौरीक्षेत्रं न मुक्तं वै अविमुक्तं ततः स्मृतं । जप्तं तप्तं हुतं दत्तममविमुक्ते किलाक्षयं ॥२॥
अश्मना चरणौ हत्वा वसेत्काशीन्न हि त्यजेत्[८] । हरिश्चन्द्रं परं गुह्यं गुह्यमाम्रातकेश्वरं[९] ॥३॥
जप्येश्वरं परं गुह्यं[१०] गुह्यं श्रीपर्वतं तथा । महालयं[११] परं गुह्यं भृगुश्चण्डेश्वरं[१२] तथा ॥४॥
केदारं परमं गुह्यमष्टौ सन्त्यविमुक्तके । गुह्यानां परमं गुह्यमविमुक्तं परं मम ॥५॥
द्वियोजनन्तु पूर्वं स्याद् योजनार्द्धं तदन्यथा[१३]। वरणा च नदी चासीत् तयोर्मध्ये[१४] वाराणसी॥

---

१. श्रवणादस्येति ख. ग. घ. ङ. ज. च । २. श्राद्धद्रव्यादि चाक्षयमिति घ. ।
३. त्र्यहं स्नातस्येति घ. । ४. अन्नदानाद्दिवमिति ख. ग. घ. ङ. छ. ज. च. ।
५. तीर्थं वानरकं परमिति ख. ग. घ. ङ.च । ६. वाराणसीमिति ख. घ. च ।
७. वसतां शृण्वतां हरिमिति ग. घ. ङ. च । ८. काशीं तु न हि सन्त्यजेदिति ज. ।
९. परं गुह्यमविमुक्तं परं ममेति ज. । १०. जयेश्वरं परं गुह्यमिति ख. ।
११. महाबलमिति क. । १२. भूमिचण्डेश्वरमिति ग. ।
१३. तथान्यथेति झ. । १४. द्वयोर्मध्ये इति ख. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अत्र स्नानं जपो होमो मरणं देवपूजनं । श्राद्धं दानं निवासश्च यद्यत् स्याद्भुक्तिमुक्तिदं[१] ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये वाराणसीमाहात्म्यं नाम द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः ।

त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः

नर्मदादिमाहात्म्यम् ।

अग्निरुवाच

नर्मदादिकमाहात्म्यं वक्ष्येहं नर्मदां परां[२] । सद्यः पुनाति गाङ्गेयं दर्शनाद्वारि नार्म्मदं ॥१॥
विस्तराद्योजनशतं योजनद्वयमायता । षष्टिस्तीर्थसहस्राणि षष्टिकोट्यस्तथापराः ॥२॥
पर्वतस्य समन्तात्तु तिष्ठन्त्यमरकण्टके[३] । कावेरीसङ्गमं पुण्यं श्रीपर्वतमतः शृणु ॥३॥
गौरी श्रीरूपिणी तेपे तपस्तामब्रवीद्धरिः[४] । अवाप्स्यसि त्वमध्यात्म्यं नाम्ना श्रीपर्वतस्तत्र ॥
समन्ताद्योजनशतं महापुण्यं भविष्यति । अत्र दानन्तपो जप्यं[५] श्राद्धं सर्वमथाक्षयं[६] ॥५॥
मरणं शिवलोकाय सर्वदं तीर्थमुत्तमं । हरोऽत्र क्रीडते देव्या हिरण्यकशिपुस्तथा ॥६॥
तपस्तप्त्वा बली चाभून्मुनयः सिद्धिमाप्नुवन्[७] ।

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये नर्म्मदाश्रीपर्वतादिमाहात्म्यं नाम त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः ।

चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः

गयामाहात्म्यम् ।

अग्निरुवाच

गयामाहात्म्यमाख्यास्ये गयातीर्थोत्तमोत्तमं । गयासुरस्तपस्तेपे तत्तपस्तापिभिः[८] सुरैः ॥१॥
उक्तः क्षीराब्धिगो विष्णुः पालयास्मान् गयासुरात् ।
तथेत्युक्त्वा हरिर्दैत्यं वरं ब्रूहीति चाब्रवीत् ॥ २ ॥
दैत्योऽब्रवीत्पवित्रोऽहं भवेयं सर्वतीर्थतः । तथेत्युक्त्वा गतो विष्णुर्दैत्यं दृष्ट्वा न वा हरिं ॥३॥

---

१. यद्वत् स्याद्भुक्तिमुक्तिदमिति ङ. ।
२. नर्मदापरमिति झ. ।
३. निर्यान्त्यमरकण्टके इति झ. ।
४. तपस्तामब्रवीद्धर इति ग. ।
५. अत्र दानं तथा जप्यमिति झ. ।
६. सर्वमथाक्षरमिति ख. छ. च ।
७. सिद्धिमाप्नुयुरिति झ. ।
८. तत्तपस्तापितैरिति ग. घ. ङ. च ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

गताः शून्या मही स्वर्गे देवा ब्रह्मादयः सुराः[१]। गता ऊचुर्हरिं देवाः शून्या भूस्त्रिदिवं हरे ॥
दैत्यस्य दर्शनादेव ब्रह्माणञ्चाब्रवीद्धरिः। यागार्थं दैत्यदेहं त्वं प्रार्थय त्रिदशैः सह ॥५॥
तच्छ्रुत्वा ससुरो ब्रह्मा[२] गयासुरमथाब्रवीत। अतिथिः प्रार्थयामि त्वान्देहं यागाय पावनं ॥
गयासुरस्तथेत्युक्त्वापतत्तस्य शिरस्यथ[३]। यागं चकार चलिते देहि पूर्णाहुतिं[४] विभुः ॥७॥
पुनर्ब्रह्माब्रवीद्विष्णुं पूर्णकालेऽसुरोऽचलत्। विष्णुर्धर्ममथाहूय प्राह देवमयीं शिलां ॥८॥
धारयध्वं सुराः सर्वे यस्यामुपरि सन्तु ते। गदाधरो मदीयाथ मूर्त्तिः स्थास्यति सामरैः ॥
धर्मः शिलां देवमयीं[५] तच्छ्रुत्वाधारयत परां। या धर्माद्धर्मवत्याञ्च जाता धर्मव्रता सुता ॥
मरीचिर्ब्रह्मणः पुत्रस्तामुवाह तपोन्वितां[६]। यथा हरिः श्रिया रेमे गौर्य्या शम्भुस्तथा तया ॥
कुशपुष्पाद्यरण्याच्च आनीयातिश्रमान्वितः[७]। भुक्त्वा धर्मव्रतां प्राह पादसंवाहनं कुरु ॥१२॥
विश्रान्तस्य मुनेः पादौ तथेत्युक्त्वा प्रियाकरोत्। एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मा मुनौ सुप्ते तथागतः[८]॥
धर्मव्रताचिन्तयच्च किं ब्रह्माणं समर्चये। पादसंवाहनं कुर्वे ब्रह्मा पूज्यो गुरोर्गुरुः[९] ॥१४॥
विचिन्त्य पूजयामास ब्रह्माणं चार्हणादिभिः। मरीचिस्तामपश्यन् स[१०] शशापोक्तिव्यतिक्रमात्॥
शिला भविष्यसि क्रोधाद्धर्म्मव्रताऽब्रवीच्च तं[११]। पादाभ्यङ्गं परित्यज्य त्वद्गुरुः पूजितो मया ॥
अदोषाहं यतस्त्वं हि शापं प्राप्स्यसि शङ्करात्। धर्म्मव्रता पृथक् शापं धारयित्वाग्निमध्यगात ॥
तपश्चचार वर्षाणां सहस्राण्ययुतानि च। ततो विष्ण्वादयो देवा वरं ब्रूहीति चाब्रुवन् ॥
धर्मव्रताऽब्रवीद्देवान् शापन्निवर्त्तयन्तु मे।

देवा ऊचुः

दत्तो मरीचिना शापो भविष्यति न चान्यथा ॥ १९ ॥
शिला पवित्रा देवाङ्घ्रिलक्षिता त्वं[१२] भविष्यसि। देवव्रता देवशिला सर्व्वदेवादिरूपिणी ॥
सर्व्वदेवमयी[१३] पुण्या निश्चलायासुरस्य हि।

देवव्रतोवाच

यदि तुष्टा स्थ मे सर्वे मयि तिष्ठन्तु सर्वदा। ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्राद्या गौरीलक्ष्मीमुखाः सुराः॥

अग्निरुवाच

देवव्रतावचः श्रुत्वा तथेत्युक्त्वा दिवङ्गताः ॥
सा धर्मेणासुरस्यास्य धृता देवमयी शिला। सशिलश्चलितो दैत्यः स्थिता रुद्रादयस्ततः ॥

---

१. ब्रह्मादयः पुनः इति ख. ग. घ. ङ. छ. ज. झ. च।
२. तच्छ्रुत्वा सत्वरो ब्रह्मेति ङ.।
३. शिरस्तथेति झ.।
४. देहे पूर्णाहुतिमिति ख. छ. ज. च।
५. देहमयीमिति ग. ङ. छ. च।
६. तपश्रितामिति झ.।
७. समानीय श्रमान्वित इति ज.।
८. सुप्ते समागत इति घ. ङ. ज. झ. च।
९. धर्मव्रतेत्यादिः, गरोर्गुरुरित्यन्तः पाठः छ. पुस्तके नास्ति।
१०. मरीचिस्तामपश्यद्वै इति घ.।
११. धर्मव्रताऽब्रवीद्धच इति ज.।
१२. पवित्रा देवानां वन्दिता त्वमिति घ.।
१३. सर्वतीर्थमयी इति घ. झ. च।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सदेवश्चलितो दैत्यस्ततो देवैः[१] प्रसादितः। क्षीराब्धिगो हरिः प्रादात् स्वमूर्त्तिं श्रीगदाधरं॥

गच्छन्तु भोः स्वयं यास्ये[२] मूर्त्या वै देवगम्यया[३]।
स्थितो गदाधरो देवो व्यक्ताव्यक्तोभयात्मकः॥ २५॥

निश्चलार्थं स्वयं देवः स्थित आदिगदाधरः। गदो नामासुरो दैत्यः[४] स हतो विष्णुना पुरा॥
तदस्थिनिर्मिता[५] चाद्या गदा या विश्वकर्म्मणा। आद्यया गदया हेतिप्रमुखा राक्षसा हताः॥
गदाधरेण विधिवत्[६] तस्मादादिगदाधरः[७]। देवमय्यां शिलायां च[८] स्थिते चादिगदाधरे॥
गयासुरे निश्चलेथ ब्रह्मा पूर्णाहुतिं ददौ। गयासुरोऽब्रवीद्देवान् किमर्थं वञ्चितो ह्यहं[९]॥२९॥
विष्णोर्वचनमात्रेण किन्न स्यान्निश्चलो ह्यहं। आक्रान्तो यद्यहं देवा दातुमर्हत[१०] मे वरं॥

देवा ऊचुः

तीर्थस्य करणे यत्[११] त्वमस्माभिर्निश्चलीकृतः। विष्णोः शम्भोर्ब्रह्मणश्च क्षेत्रं तव भविष्यति॥
प्रसिद्धं सर्वतीर्थेभ्यः पित्रादेर्ब्रह्मलोकदं। इत्युक्त्वा ते स्थिता देवा देव्यस्तीर्थादयः स्थिताः॥

यागं कृत्वा ददौ ब्रह्मा ऋत्विग्भ्यो दक्षिणां तदा।
पञ्चक्रोशं गयाक्षेत्रं पञ्चाशत् पञ्च चार्पयेत्॥ ३३॥

ग्रामान् स्वर्णगिरीन्[१२] कृत्वा नदीर्दुग्धमधुश्रवाः। सरोवराणि दध्याज्यैर्बहूनन्नादिपर्वतान्[१३]॥
कामधेनुं कल्पतरुं स्वर्णरूप्यगृहाणि च। न याचयन्तु विप्रेन्द्रा अल्पानुक्त्वा[१४] ददौ प्रभुः॥
धर्मयागे प्रलोभात्तु प्रतिगृह्य धनादिकं। स्थिता यदा गयायान्ते शप्तास्ते ब्रह्मणा तदा॥
विद्याविवर्ज्जिता[१५] यूयं तृष्णायुक्ता भविष्यथ। दुग्धादिवर्जिता नद्यः शैलाः पाषाणरूपिणः॥
ब्रह्माणं ब्राह्मणाश्चोचुर्न्नष्टं शापेन चाखिलं। जीवनाय प्रसादन्नः कुरु विप्रांश्च सोऽब्रवीत्॥
तीर्थोपजीविका यूयं सचन्द्रार्क्कं[१६] भविष्यथ। ये युष्मान् पूजयिष्यन्ति गयायामागता नराः॥
हव्यकव्यैर्धनैः श्राद्धैस्तेषां कुलशतं व्रजेत्[१७]। नरकात् स्वर्गलोकाय[१८] स्वर्गलोकात् पराङ्गतिं॥

---

१. तदा देवैरिति ज.।
२. गच्छेत्युक्त्वा स्वयं गच्छेदिति झ.। गच्छन्तूक्त्वा स्वयं यास्ये इति ख. छ. च।
३. मूर्त्या देवैकगम्यया इति घ. ङ. च।
४. नामासुरो रौद्र इति घ. झ. च।
५. तदङ्गान्निर्मिता इति झ.। तदर्था निर्मिता इति छ.।
६. गदाधरेण देवेनेति झ.।
७. गदो नामासुर इत्यादिः, तस्मादादिर्गदाधर इत्यन्तः पाठो ज. पुस्तके नास्ति।
८. शिलायान्तु इति ज.।
९. वाञ्छितो ह्यहमिति ख. छ. च।
१०. दातुमर्हथेति ङ.।
११. तीर्थस्य कारणायेति घ. झ. च।
१२. ग्रामान् पुण्यगिरीनिति ङ.।
१३. दध्याद्यैर्बहूनन्नादिपर्वतानिति ज.।
१४. अन्यानथेति झ.। क्षपानुक्त्वा इति छ.।
१५. गन्धादिवर्जिता इति घ.।
१६. तीर्थोपजीवका यूयमाचन्द्रार्कमिति ख. ग. घ. ङ. च।
१७. कुलशतं महदिति ज.।
१८. स्वर्गलोकं चेति घ. ज. झ. च।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

गयोपि चाकरोद्यागं बह्वन्नं[1] बहुदक्षिणं । गयापुरी तेन नाम्ना पाण्डवा ईजिरे हरिं ॥४१॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये गयामाहात्म्यं नाम
चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः ।

पञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः

गयायात्राविधिः ।

अग्निरुवाच

उद्यतश्चेद्गयां यातुं[2] श्राद्धं कृत्वा विधानतः । विधाय कार्पटीवेशं ग्रामस्यापि प्रदक्षिणं ॥१॥
कृत्वा प्रतिदिनं गच्छेत् संयतश्चाप्रतिग्रही । गृहाच्चलितमात्रस्य गयायां गमनं प्रति ॥२॥
स्वर्गारोहणसोपानं पितॄणान्तु पदे पदे । ब्रह्मज्ञानेन किं कार्य्यं गोगृहे मरणेन किं ॥३॥
किं कुरुक्षेत्रवासेन यदा[3] पुत्रो गयां व्रजेत् । गयाप्राप्तं सुतं दृष्ट्वा पितॄणामुत्सवो भवेत् ॥४॥
पद्भ्यामपि जलं स्पृष्ट्वा अस्मभ्यं किन्न दास्यति । ब्रह्मज्ञानं गयाश्राद्धं गोगृहे मरणं तथा ॥
वासः पुंसां कुरुक्षेत्रे मुक्तिरेषा चतुर्व्विधा । काङ्क्षन्ति पितरः पुत्रं नरकाद्भयभीरवः ॥६॥
गयां यास्यति यः पुत्रः स नस्त्राता भविष्यति । मुण्डनञ्चोपवासश्च सर्व्वतीर्थेष्वयं विधिः ॥
न कालादि गयातीर्थे दद्यात् पिण्डांश्च नित्यशः । पक्षत्रयनिवासी च पुनात्यासप्तमं कुलं ॥८॥
अष्टकासु च वृद्धौ च[4] गयायां मृतवासरे । अत्र मातुः पृथक् श्राद्धमन्यत्र पतिना सह ॥९॥
पित्रादिनवदैवत्यं तथा द्वादशदैवतं । प्रथमे दिवसे स्नायात्तीर्थे ह्युत्तरमानसे ॥१०॥
उत्तरे मानसे पुण्यं आयुरारोग्यवृद्धये । सर्व्वाघौघविघाताय[5] स्नानं कुर्य्याद् विमुक्तये[6] ॥

सन्तर्प्य देवपित्रादीन् श्राद्धकृत् पिण्डदो भवेत् ।
दिव्यान्तरीक्षभौमस्थान्[7] देवान् सन्तर्पयाम्यहं ॥ १२ ॥

दिव्यान्तरीक्षभौमादि पितृमात्रादि तर्पयेत् । पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः ॥१३॥
माता पितामही चैव[8] तथैव प्रपितामही । मातामहः प्रमातामहो वृद्धप्रमातामहः[9] ॥१४॥
तेभ्योऽन्येभ्य[10] इमान् पिण्डानुद्धाराय ददाम्यहं । ओं नमः सूर्य्यदेवाय सोमभौमज्ञरूपिणे[11] ॥
जीवशुक्रशनैश्चारिराहुकेतुस्वरूपिणे । उत्तरे मानसे स्नात[12] उद्धरेत्सकलं कुलं ॥१६॥

---

१. बह्वर्थमिति ख. छ. च । बहुलमिति झ. ।
२. गन्तुमिति ख. ग. घ. छ. ज. च ।
३. यदि इति घ. ज. झ. च ।
४. अन्वष्टकासु वृद्धौ चेति घ. छ. च ।
५. सर्व्वाघौघविनाशायेति ख. घ. छ. च ।
६. स्नानं सर्वविमुक्तये इति छ. ।
७. दिव्यान्तरीक्षगान् भौमानिति ग. ।
८. माता मातामही चैवेति क. ख. ग. छ. ज. च ।
९. वृद्धप्रमातृकामह इति क. ग. छ. ज. च ।
१०. तेभ्यस्तेभ्य इति घ. ज. च ।
११. सोमभौमस्वरूपिणे इति घ. ।
१२. स्नात्वेति क. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सूर्य्यं नत्वा[१] व्रजेन्मौनी नरो दक्षिणमानसं[२]।
दक्षिणे मानसे स्नानं करोमि पितृतृप्तये[३] ॥ १७ ॥

गयायामागतः स्वर्गं यान्तु मे पितरोऽखिलाः । श्राद्धं पिण्डन्ततः कृत्वा सूर्य्यं नत्वा वदेदिदं ॥
ओं नमो भानवे भर्त्रे[४] भवाय भव मे विभो । भुक्तिमुक्तिप्रदः सर्व्वपितॄणां भवभावितः ॥१९॥
कव्यवालानलः सोमो यमश्चैवार्य्यमा तथा । अग्निष्वात्ता वर्हिषद आज्यपाः पितृदेवताः ॥२०॥
आगच्छन्तु महाभागा युष्माभी रक्षितास्त्विह । मदीयाः पितरो ये च मातृमातामहादयः ॥२१॥
तेषां पिण्डप्रदाताहमागतोऽस्मि गयामिमां । उदीच्यां मुण्डपृष्ठस्य देवर्षिगणपूजितं[५] ॥२२॥
नाम्ना कनखलं तीर्थं त्रिषु लोकेषु विश्रुतं । सिद्धानां प्रीतिजननैः पापानाञ्च भयङ्करैः ॥२३॥
लेलिहानैर्म्महानागै रक्ष्यते चैव नित्यशः । तत्र स्नात्वा दिवं[६] यान्ति क्रीडन्ते भुवि मानवाः ॥
फल्गुतीर्थं ततो गच्छेन्महानद्यां स्थितं परं । नागाज्जनार्दनात् कूपाद्वटाच्चोत्तरमानसात् ॥२५॥
एतद् गयाशिरः[७] प्रोक्तं फल्गुतीर्थं तदुच्यते । मुण्डपृष्ठनगाद्याश्च सारात् सारमथान्तरं ॥२६॥
यस्मिन् फलति श्रीर्गौर्व्वा कामधेनुर्जलं मही। दृष्टिरम्यादिकं यस्मात् फल्गुतीर्थं न फल्गुवत् ॥
फल्गुतीर्थे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा देवं गदाधरं । एतेन किं न पर्य्याप्तं नृणां सुकृतकारिणां ॥२८॥
पृथिव्यां यानि तीर्थानि आसमुद्रात्सरांसि च । फल्गुतीर्थं गमिष्यन्ति वारमेकं दिने दिने ॥
फल्गुतीर्थे तीर्थराजे करोति स्नानमादृतः । पितॄणां ब्रह्मलोकाप्त्यै आत्मनो भुक्तिमुक्तये ॥३०॥
स्नात्वा श्राद्धी पिण्डदोऽथ नमेद्देवं पितामहं । कलौ माहेश्वरा लोका अत्र देवो[८] गदाधरः ॥३१॥
पितामहो लिङ्गरूपी तन्नमामि महेश्वरं । गदाधरं बलं काममनिरुद्धं नरायणं[९] ॥३२॥
ब्रह्मविष्णुनृसिंहाख्यं वराहादिं नमाम्यहं । ततो गदाधरं दृष्ट्वा कुलानां शतमुद्धरेत् ॥३३॥
धर्मारण्यं द्वितीयेऽह्नि मतङ्गस्याश्रमे वरे । मतङ्गवाप्यां संस्नाय श्राद्धकृत् पिण्डदो[१०] भवेत्॥३४॥
मतङ्गेशं सुसिद्धेशं[११] नत्वा चेदमुदीरयेत् । प्रमाणं देवताः सन्तु लोकपालाश्च साक्षिणः॥३५॥
मयागत्य मतङ्गेऽस्मिन् पितॄणां निष्कृतिः कृता । स्नानतर्पणश्राद्धादिर्ब्रह्मतीर्थेऽथ[१२] कूपके ३६॥
तत्कूपयूपयोर्मध्ये श्राद्धं कुलशतोद्धृतौ । महाबोधतरुं नत्वा धर्मवान् स्वर्गलोकभाक् ॥३७॥
तृतीये ब्रह्मसरसि[१३] स्नानं कुर्य्याद्यतव्रतः[१४]। स्नानं ब्रह्मसरस्तीर्थे[१५] करोमि ब्रह्मभूतये ॥३८॥

---

१. सूर्यं दृष्ट्वा इति ङ. ।
२. ततो दक्षिणमानसमिति ग. घ. ज. झ. च ।
३. करोमि पितृदैवते इति ज. ।
४. भानवे तस्मै इति ङ. ।
५. देवर्षिगणसेवितमिति घ. ज. च । देवतागणसेवितमिति झ. ।
६. तत्र स्नाता दिवमिति ज. ।
७. फल्गुं गयाशिर इति ख. ङ. छ. च ।
८. अतो देव इति ख. ग. घ. छ. च ।
९. नारायणमिति ख. ग. ङ. च ।
१०. श्राद्धदः पिण्डद इति ख. ।
११. मतङ्गेशञ्च सिद्धेशमिति ज. ।
१२. ब्रह्मतीर्थेत्रेति ख. ।
१३. ब्रह्मसदसि इति ख. घ. ङ. ज. च ।
१४. मयागत्येत्यादिः, स्नानं कुर्य्यद्यतव्रत इत्यन्तः पाठश्छ. पुस्तके नास्ति ।
१५. ब्रह्मसदस्तीर्थे इति घ. । ब्रह्मशिरस्तीर्थे इति ख. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पितॄणां ब्रह्मलोकाय ब्रह्मर्षिगणसेविते । तर्पणं श्राद्धकृन् पिण्डं प्रदद्यात्तु प्रसेचनं[१] ॥
कुर्य्याच्च वाजपेयार्थी ब्रह्मयूपप्रदक्षिणं ॥ ३९ ॥

एको मुनिः कुम्भकुशाग्रहस्त आम्रस्य मूले सलिलन्ददाति ।
आम्राश्च सिक्ताः पितरश्च तृप्ता एका क्रिया द्व्यर्थकरी प्रसिद्धा ॥ ४० ॥

ब्रह्माणञ्च नमस्कृत्य कुलानां शतमुद्धरेत् । फल्गुतीर्थे चतुर्थेऽह्नि स्नात्वा देवादितर्पणं ॥४१॥
कृत्वा श्राद्धं सपिण्डञ्च गयाशिरसि कारयेत् । पञ्चक्रोशं गयाक्षेत्रं क्रोशमेकं गयाशिरः ॥४२॥
तत्र पिण्डप्रदानेन कुलानां शतमुद्धरेत । मुण्डपृष्ठे पदं न्यस्तं महादेवेन धीमता ॥४३॥
मुण्डपृष्ठे शिरः साक्षाद् गयाशिर उदाहृतं । साक्षाद् गयाशिरस्तत्र फल्गुतीर्थाश्रमं[२] कृतं ॥४४॥
अमृतं तत्र वहति पितॄणान्दत्तमक्षयं । स्नात्वा दशाश्वमेधे तु दृष्ट्वा देवं पितामहं ॥४५॥
रुद्रपादं नरः स्पृष्ट्वा नेह भूयोऽभिजायते । शमीपत्रप्रमाणेन पिण्डं दत्वा गयाशिरे[३] ॥४६॥
नरकस्था दिवं यान्ति स्वर्गस्था मोक्षमाप्नुयुः । पायसेनाथ पिष्टेन शक्तुना चरुणा तथा ॥४७॥
पिण्डदानं तण्डुलैश्च गोधूमैस्तिलमिश्रितैः । पिण्डं दत्वा रुद्रपदे कुलानां शतमुद्धरेत् ॥४८॥
तथा विष्णुपदे श्राद्धपिण्डदो ह्यृणमुक्तिकृत्[४] । पित्रादीनां शतकुलं स्वात्मानं[५] तारयेन्नरः ॥४९॥
तथा ब्रह्मपदे श्राद्धी[६] ब्रह्मलोकं नयेत्पितॄन् । दक्षिणाग्निपदे तद्वद्गार्हपत्यपदे तथा ॥५०॥
पदे वाहवनीयस्य श्राद्धी यज्ञफलंलभेत् । आवसथ्यस्य चन्द्रस्य[७] सूर्य्यस्य च गणस्य च॥५१॥
अगस्त्यकार्त्तिकेयस्यश्राद्धी तारयते कुलं । आदित्यस्य रथं नत्वा[८] कर्णादित्यं नमेन्नरः ॥५२॥
कनकेशपदं नत्वा गयाकेदारकं नमेत् । सर्वपापविनिर्मुक्तः पितॄन् ब्रह्मपुरं नयेत् ॥५३॥

विशालोऽपि गयाशीर्षे पिण्डदोऽभूच्च पुत्रवान् ।
विशालायां विशालोऽभूद्राजपुत्रोऽब्रवीद् द्विजान् ॥ ५४ ॥

कथं पुत्रादयः स्युर्म्मे द्विजा ऊचुर्व्विशालकं । गयायां पिण्डदानेन तव सर्वं भविष्यति ॥५५॥
विशालोऽपि गयाशीर्षे पितृपिण्डान्ददौ ततः[९] । दृष्ट्वाकाशे सितं रक्तं पुरुषांस्तांश्च पृष्टवान् ॥
के यूयन्तेषु चैवैकः सितः प्रोचे विशालकं । अहं सितस्ते जनक इन्द्रलोकं गतः शुभात् ॥
मम रक्तः पिता पुत्र कृष्णश्चैव पितामहः । अब्रवीत् नरकं प्राप्ता त्वया मुक्तीकृता वयं ॥५८॥
पिण्डदानाद् ब्रह्मलोकं व्रजाम इति ते गताः । विशालः प्राप्तपुत्रादी राज्यं कृत्वा हरिं ययौ ॥

१. तर्पणश्राद्धकृत् पिण्डप्रदश्चापि प्रसेचनमिति ख. छ. च । तर्पणश्राद्धकृत् पिण्डप्रदश्चाम्रप्रसेचनमिति ग. घ. ङ. ज. च ।
२. फल्गुतीर्थाश्रयमिति ग. घ. ज. झ. च ।
३. पिण्डं दद्याद्गयाशिरे इति ज. ।
४. पिण्डदः कुलमुक्तिकृदिति ग. ज. च । पिण्डदो ह्यतिमुक्तिकृदिति घ. ।
५. स्वात्मनेति ज. ।
६. ब्रह्मपदे श्राद्धमिति झ. ।
७ वरुणस्याथ चेन्द्रस्येति ङ. । आवसथ्यस्य चेन्द्रस्येति छ. । आवसथ्यस्य सेन्द्रस्येति ज. ।
८. रथं दृष्ट्वेति ख. छ. च ।
९. ददौ गत इति ख. ग. घ. ङ. छ. ज. च ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रेतराजः स्वमुक्त्यै च वणिजञ्चेदमब्रवीत् । प्रेतैः सर्व्वैः सहार्त्तः सन् सुकृतं भुज्यते फलं ॥
श्रवणद्वादशीयोगे कुम्भः सान्नश्च सोदकः[1] । दत्तः पुरा स मध्याह्ने जीवनायोपतिष्ठते ॥६१॥
धनं गृहीत्वा मे गच्छ गयायां पिण्डदो भव । वणिग्धनं गृहीत्वा तु गयायां पिण्डदोऽभवत् ॥
प्रेतराजः सह प्रेतैर्मुक्तो नीतो हरेः पुरं । गयाशीर्षे पिण्डदानादात्मानं स्वपितॄंस्तथा[2] ॥६३॥
पितृवंशे मृता ये च मातृवंशे तथैव च । गुरुश्वशुरबन्धूनां ये चान्ये बान्धवा मृताः ॥६४॥
ये मे कुले लुप्तपिण्डाः पुत्रदारविवर्जिताः[3] । क्रियालोपगता ये च जात्यन्धाः पङ्गवस्तथा ॥
विरूपा आमगर्भा ये ज्ञाताज्ञाताः कुले मम । तेषां पिण्डो मया दत्तो ह्यक्षय्यमुपतिष्ठतां । ६६॥
ये केचित् प्रेतरूपेण तिष्ठन्ति पितरो मम । ते सर्वे तृप्तिमायान्तु पिण्डदानेन[4] सर्वदा ॥६७॥
पिण्डो देयस्तु सर्वेभ्यः सर्वैर्वै कुलतारकैः । आत्मनस्तु तथा देयो ह्यक्षयं लोकमिच्छता ॥
पञ्चमेऽह्नि गदालोले स्नायान्मन्त्रेण बुद्धिमान् । गदाप्रक्षालने तीर्थे गदालोलेऽतिपावने ॥६९॥
स्नानं करोमि संसारगदशान्त्यै जनार्दन । नमोऽक्षयवटायैव अक्षयस्वर्गदायिने ॥७०॥
पित्रादीनामक्षयाय सर्वपापक्ष- ाय च । श्राद्धं वटतले[5] कुर्य्याद् ब्राह्मणानाञ्च भोजनं । ७१॥
एकस्मिन् भोजिते विप्रे कोटिर्भवति भोजिता । किम्पुनर्बहुभिर्भुक्तैः पितॄणां दत्तमक्षयं ॥७२॥
गयायामन्नदाता यः पितरस्तेन पुत्रिणः । वटं वटेश्वरं नत्वा पूजयेत् प्रपितामहं ॥७३॥
अक्षयांल्लभते लोकान् कुलानां शतमुद्धरेत् । क्रमतोऽक्रमतो वापि गयायात्रा महाफला ॥७४॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये गयामाहात्म्ये गयायात्रा नाम
पञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः ।

षोडशाधिकशततमोऽध्यायः

गयायात्राविधिः ।

अग्निरुवाच

गायत्र्यैव महानद्यां स्नातः[6] सन्ध्यां समाचरेत् ।
गायत्र्या अग्रतः प्रातः श्राद्धं पिण्डमथाक्षयं ॥ १ ॥

मध्याह्ने चोद्यति[7] स्नात्वा गीतवाद्यैर्ह्युपास्य च । सावित्रीपुरतः सन्ध्यां पिण्डदानञ्च तत्पदे ॥
अगस्त्यस्य पदे कुर्य्याद्योनिद्वारं प्रविश्य च । निर्गतो न पुनर्योनिं प्रविशेन्मुच्यते भवात्[8] ॥

---

१. सार्थश्च सोदक इति छ. ।
२. प्रेतराजेत्यादिः, स्वपितॄंस्तथेत्यन्तः पाठो झ. पुस्तके नास्ति ।
३. शुभकर्मविवर्जिता इति झ. ।
४. पिण्डेनानेनेति ङ. ।
५. वटतटे इति ज. ।
६. प्रात इति क. ।
७. मध्याह्ने सरसीति ग. ।
८. मुच्यते भयादिति छ. झ. च ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बलिं झाकशिलायाञ्च कुमारञ्च नमेत्ततः[१] । स्वर्गद्वार्य्यां सोमकुण्डे वायुतीर्थेऽथ पिण्डदः ॥
भवेदाकाशगङ्गायां कपिलायाञ्च पिण्डदः । कपिलेशं शिवं नत्वा रुक्मिकुण्डे च पिण्डदः॥५॥
कोटीतीर्थे च कोटीशं नत्वामोघपदे नरः[२] । गदालोले वानरके गोप्रचारे च पिण्डदः[३] ॥६॥
दत्वा गावं वैतरण्यामेकविंशकुलोद्धृतिः । श्राद्धपिण्डप्रदाता[४] स्यात् कौञ्चपादे च पिण्डदः[५] ॥
तृतीयायां विशालायां निश्चिरायाञ्च पिण्डदः । ऋणमोक्षे पापमोक्षे भस्मकुण्डेऽथ भस्मना॥
स्नानकृन्मुच्यते पापान्नमेद्देवं जनार्दनम् । एष पिण्डो मया दत्तस्तव हस्ते जनार्दन ॥९॥
परलोकगते मह्यमक्षय्यमुपतिष्ठतां । गयायां पितृरूपेण स्वयमेव जनार्दनः ॥१०॥
तं दृष्ट्वा पुण्डरीकाक्षं मुच्यते वै ऋणत्रयात् । मार्कण्डेयेश्वरं नत्वा नमेद्गृध्रेश्वरं नरः[६]॥११॥
मूलक्षेत्रे महेशस्य धारायां पिण्डदो भवेत । [७]गृध्रकूटे गृध्रवटे धौतपादे च पिण्डदः ॥१२॥
पुष्करिण्यां कर्दमाले रामतीर्थे च पिण्डदः । प्रभासेशन्नमेत प्रेतशिलायां पिण्डदो भवेत ॥
दिव्यान्तरीक्षभूमिष्ठाः पितरो बान्धवादयः । प्रेतादिरूपा मुक्ताः[८] स्युः पिण्डैर्दत्तैर्म्मयाखिलाः ॥
स्थानत्रये प्रेतशिला गयाशिरसि पावनी । प्रभासे प्रेतकुण्डे च पिण्डदस्तारयेत् कुलम् ॥१५॥
वसिष्ठेशन्नमस्कृत्य तदग्रे पिण्डदो भवेत् । गयानाभौ सुषुम्णायां महाकोष्ठ्याञ्च पिण्डदः ॥
गदाधराग्रतो मुण्डपृष्ठे देव्याश्च सन्निधौ । मुण्डपृष्ठं नमेदादौ क्षेत्रपालादिसंयुतम् ॥१७॥
पूजयित्वा भयं न स्याद्विषरोगादिनाशनम् । ब्रह्माणञ्च नमस्कृत्य ब्रह्मलोकं नयेत् कुलम् ॥
सुभद्रां बलभद्रञ्च प्रपूज्य पुरुषोत्तमम् । सर्वकामसमायुक्तः कुलमुद्धृत्य नाकभाक्[९] ॥१९॥
हृषीकेशं नमस्कृत्य तदग्रे पिण्डदो भवेन । माधवं पूजयित्वा च देवो वैमानिको[१०] भवेत् ॥
महालक्ष्मीं प्राचर्य्य गौरीं मङ्गलाञ्च सरस्वतीम् । पितॄनुद्धृत्य स्वर्गस्थो भुक्तभोगोऽत्र शास्त्रधीः ॥
द्वादशादित्यमभ्यर्च्य वह्निं रेवन्तमिन्द्रकम् । रोगादिमुक्तः स्वर्गी स्याच्छ्रीकपर्दिविनायकम्॥
प्रपूज्य कार्त्तिकेयञ्च निर्विघ्नः सिद्धिमाप्नुयात् । सोमनाथञ्च कालेशङ्केदारं प्रपितामहम्॥२३॥
सिद्धेश्वरञ्च रुद्रेशं रामेशं ब्रह्मकेश्वरम् । अष्टलिङ्गानि गुह्यानि पूजयित्वा तु[११] सर्वभाक् ॥
नारायणं वराहञ्च नारसिंहं नमेच्छ्रिये । ब्रह्मविष्णुमहेशाख्यं त्रिपुरघ्नमशेषदम् ॥२५॥

---

१. नमेन्नर इति ख. ग. घ. ङ. छ. च । २. मासपदेऽन्नद इति ख. घ. च ।
३. कपिलेशमित्यादिः. गोप्रचारे च पिण्डद इत्यन्तः पाठो ग. पुस्तके नास्ति ।
४. श्राद्धे पिण्डप्रदातेति ख. ।
५. भवेदाकाशगङ्गायामित्यादिः. क्रौञ्चपादे च पिण्डद इत्यन्तः पाठः छ. पुस्तके नास्ति ।
६. नमेद्भूतेश्वरं नर इति घ. ।
७. सर्वकामसमायुक्तः कुलमुद्धृत्य लोकभागिति पाठोत्र झ. पुस्तकेऽधिकोऽस्ति ।
८. प्रेतादिरूपमुक्ता इति ख. ग. घ. ङ. ज. च ।
९. कुलमुद्धृत्य लोकभागिति ग. ज. च । वशिष्ठेशमित्यादिः, कुलमुद्धृत्य नाकभागित्यन्तः पाठो झ. पुस्तके नास्ति ।
१०. देवैर्वैमानिक इति छ. ।
११. पूजयित्वाथेति क. घ. ङ. ज. च ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सीतां रामञ्च गरुडं वामनं सम्प्रपूज्य च । सर्वकामानवाप्नोति ब्रह्मलोकं नयेत् पितॄन् ॥
देवैः सार्द्धं सम्प्रपूज्य देवमादिगदाधरम् । ऋणत्रयविनिर्मुक्तस्तारयेत् सकलं कुलम् ॥२७॥
देवरूपा शिला पुण्या तस्माद्देवमयी शिला । गयायां नहि तत् स्थानं यत्र तीर्थं न विद्यते ॥
यन्नाम्ना पातयेत् पिण्डं तन्नयेद्ब्रह्म शाश्वतम् । फल्ग्वीशं फलगुचण्डीं च प्रणम्याङ्गारकेश्वरम् ॥
मतङ्गस्य पदे श्राद्धी भरताश्रमके भवेत् । हंसतीर्थे कोटितीर्थे तत्र पाण्डुशिलान्नदः ॥३०॥
तत्र स्यादग्निधारायां मधुस्रवसि पिण्डदः । रुद्रेशं किलिकिलेशं नमेद्वृद्धिविनायकम्[1] ॥
पिण्डदो धेनुकारण्ये पदे धेनोर्न्नमेच्च गाम् । सर्वान् पितॄंस्तारयेच्च सरस्वत्याञ्च पिण्डदः ॥
सन्ध्यामुपास्य सायाह्ने नमेद्देवीं सरस्वतीम् । त्रिसन्ध्याकृद्भवेद्विप्रो वेदवेदाङ्गपारगः ॥३३॥
गयां प्रदक्षिणीकृत्य गयाविप्रान्प्रपूज्य च । अन्नदानादिकं सर्वं कृतन्तत्राक्षयं भवेत् ॥३४॥
स्तुत्वा सम्प्रार्थयेद्देवमादिदेवं गदाधरम् । गदाधरं गयावासं पित्रादीनां गतिप्रदम् ॥३५॥
धर्म्मार्थकाममोक्षार्थं योगदं प्रणमाम्यहम् । देहेन्द्रियमनोबुद्धिप्राणाहङ्कारवर्जितम् ॥३६॥
नित्यशुद्धं बुद्धियुक्तं[2] सत्यं ब्रह्म नमाम्यहम् । आनन्दमद्वयं देवं देवदानववन्दितम् ॥३७॥
देवदेवीवृन्दयुक्तं सर्वदा प्रणमाम्यहम् । कलिकल्मषकालार्त्तिदमनं[3] वनमालिनम् ॥३८॥
पालिताखिललोकेशं[4] कुलोद्धरणमानसम् । व्यक्ताव्यक्तविभक्तात्माविभक्तात्मानमात्मनि॥३९॥
स्थितं स्थिरतरं[5] सारं वन्दे घोराघमर्दनम्[6]। आगतोऽस्मि गयां देव पितृकार्ये गदाधरः ॥४०॥
त्वं मे साक्षी भवाद्येह अनृणोऽहमृणत्रयात । साक्षिणः सन्तु मे देवा ब्रह्मेशानादयस्तथा ॥४१॥
मया गयां समासाद्य पितॄणां निष्कृतिः कृता । गयामाहात्म्यपठनाच्छ्राद्धादौ ब्रह्मलोकभाक् ॥
पितॄणामक्षयं श्राद्धमक्षयं ब्रह्मलोकदम् ।

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये गयामाहात्म्ये गयायात्रा नाम
षोडशाधिकशततमोऽध्यायः ।

सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः

श्राद्धकल्पः ।

अग्निरुवाच

कात्यायनो मुनीनाह यथा श्राद्धं तथा वदे । गयादौ श्राद्धं कुर्वीत सङ्क्रान्त्यादौ विशेषतः ॥१॥

---

१. नमेद्बुद्धिविनायकमिति ख. ग. छ. च । नमेद्वृद्धविनायकमिति घ. ।
२. नित्यशुद्धबुद्धियुक्तमिति घ. छ. च ।
३. कालार्त्तिनाशनमिति घ. । कालार्त्तिदलनमिति ग. ङ. घ. ज. च ।
४. पालिताखिलदेवेशमिति घ. ।
५. स्थिततरमिति ग. घ. ङ. च ।
६. वन्देऽहमरिमर्दनमिति ङ. । वन्दे संसारमर्दनमिति ज. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

काले वापरपक्षे च चतुर्थ्या ऊर्द्धमेव वा । सम्पाद्य च पदर्क्षे च[१] पूर्वेद्युश्च निमन्त्रयेत् ॥२॥

यतीन् गृहस्थसाधून् वा स्नातकाञ्छ्रोत्रियान् द्विजान् ।
अनवद्यान् कर्म्मनिष्ठान शिष्टानाचारसंयुतान्[२] ॥ ३ ॥
वर्ज्जयेच्छ्वित्रिकुष्ट्यादीन्न गृह्णीयान्निमन्त्रितान् ।
स्नाताञ्छुचींस्तथा दान्तान प्राङ्मुखान् देवकर्म्मणि ॥ ४ ॥

उपवेशयेत्त्रीन् पित्र्यादीनेकैकमुभयत्र वा । एवं मातामहादेश्च शाकैरपि च कारयेत् ॥५॥
तदह्नि ब्रह्मचारी स्यादकोपोऽत्वरितो मृदुः[३] । सत्योऽप्रमत्तोऽनध्वन्यो अस्वाध्यायश्च[४] वाग्यतः॥

सर्वांश्च पङ्क्तिमूर्द्धन्यान पृच्छेत् प्रश्ने तथासने ।
दर्भानास्तीर्य्य द्विगुणान् पित्रे देवादिकञ्चरेत ॥ ७ ॥

विश्वान्देवानावाहयिष्ये पृच्छेदावाहयेति च । विश्वेदेवास आवाह्य विकीर्य्याथ यवान् जपेत् ॥
विश्वे देवाः शृणुतेमं पितॄनावाहयिष्ये च । पृच्छेदावाहयेत्युक्ते उशन्तस्त्वा समाह्वयेत् ॥९॥
तिलान् विकीर्य्याथ जपेदायान्त्वित्यादि पित्रके । सपवित्रे निषिञ्चेद्वा शन्नो देवीरभि तृचा ॥

यवोऽसीति यवान् दत्वा पित्रे सर्वत्र वै तिलान् ।
तिलोऽसि सोमदेवत्यो गोसवो देवनिर्म्मितः ॥
प्रत्नमद्भिः पृक्तः स्वधया पितॄन् लोकान् प्रीणाहि नः स्वधा । इति ।
श्रीश्च तेति ददेत्पुष्पं पात्रे हैमेऽथ राजते ॥ ११ ॥

औदुम्बरे वा खड्गे वा पर्णपात्रे प्रदक्षिणम् । देवानामपसव्यं तु पितॄणां सव्यमाचरेत् ॥१२॥

एकैकस्य एकैकेन सपवित्रकरेषु च ।
या दिव्या आपः पयसा सम्बभूवुर्या अन्तरिक्षा उतपार्थिवीर्य्याः ।
हिरण्यवर्णा यज्ञियास्ता न आपः शिवाः संश्योनाः सुहवा भवन्तु ॥
विश्वे देवा एष वोऽर्घः स्वाहा च पितरेष ते ॥ १३ ॥

स्वधैवं पितामहादेः संस्रवात् प्रथमे चरेत्[५] । पितृभ्यः स्थानमसीति न्युब्जं पात्रं करोत्यधः॥
अत्र गन्धपुष्पधूपदीपाच्छादनदानकं । घृताक्तमन्नमुद्धृत्य पृच्छत्यग्नौ करिष्ये च ॥१५॥
कुरुष्वेत्यभ्यनुज्ञातो जुहुयात्साग्निकोऽनले । अनग्निकः पितृहस्ते[६] सपवित्रे तु मन्त्रतः ॥
अग्नये कव्यवाहनाय स्वाहेति[७] प्रथमाहुतिः । सोमाय पितृमतेऽथ यमायाङ्गिरसे परे ॥१७॥

हुतशेषं चान्नपात्रे दत्वा पात्रं समालभेत् ।
पृथिवी ते पात्रन्द्यौः पिधानं ब्राह्मणस्य मुखे अमृते अमृतं जुहोमि स्वाहेति ।
जप्त्वेदं विष्णुरित्यन्ने द्विजाङ्गुष्ठन्निवेशयेत् ॥ १८ ॥

अपहतेति च तिलान् विकीर्य्यान्नं प्रदापयेत् । जुषध्वमिति चोक्त्वाथ गायत्र्यादि ततो जपेत् ॥

---

१. सम्पाद्य परमर्क्षे चेति छ. । २. आचारसंस्कृतानिति ग. ज. च ।
३. अत्वरितोऽत्यजुरिति ङ । ४. सत्ये प्रपन्नोऽनध्वन्यो ह्यस्वाध्यायश्चेति ख. घ. च ।
५. एकैकस्येत्यादिः, प्रथमे चरेदित्यन्तः पाठो झ. पुस्तके नास्ति ।
६. अनग्निको जले चैवेति ङ. । ७. स्वधेति क. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

देवताभ्यः पितृभ्यश्च महायोगिभ्य एव च । नमः स्वधायै स्वाहायै नित्यमेव नमो नमः[१] ॥
तृप्तान् ज्ञात्वान्नं विकिरेदपो दद्यात् सकृत् सकृत् ।
गायत्रीं पूर्व्ववज्जप्त्वा मधु मध्विति वै जपेत् ॥ २१ ॥
तृप्ताः स्थ इति सम्पृच्छेत्तृप्ताः स्म इति वै वदेत् । शेषमन्नमनुज्ञाप्य सर्वमन्नमथैकतः ॥२२॥
उद्धृत्योच्छिष्टपार्श्वे तु कृत्वा चैवावनेजनं । दद्यात्कुशेषु त्रीन् पिण्डानाचान्तेषु परे जगुः ॥
आचान्तेपूदकं पुष्पाण्यक्षतानि प्रदापयेत् । अक्षय्योदकमेवाथ आशिषः प्रार्थयेन्नरः[२] ॥२४॥
अघोराः पितरः सन्तु गोत्रन्नो वर्द्धतां सदा । दातारो नोऽभिवर्द्धन्तां वेदाः सन्ततिरेव च ॥
श्रद्धा च नो माव्यगमद्बहुदेयं च नोऽस्त्विति । अन्नञ्च नो बहु भवेदतिथींश्च लभेमहि ॥
याचितारश्च नः सन्तु मा च याचिस्म कञ्चन ।
स्वधावाचनीयान् कुशानास्तीर्य्य सपवित्रकान्[३] ॥ २७ ॥
स्वधां वाचयिष्ये पृच्छेदनुज्ञातश्च वाच्यतां । पितृभ्यः पितामहेभ्यः प्रपितामहमुख्यके ॥२८॥
स्वधोच्यतामस्तु स्वधा उच्यमानस्तथैव च । अपो निषिञ्चेदुत्तानं पात्रं कृत्वाथ दक्षिणां ॥
यथाशक्ति प्रदद्याच दैवे पैत्रेऽथ वाचयेत् । विश्वे देवाः प्रीयन्ताञ्च वाजे वाजे विसर्जयेत् ॥
आमावाजस्येत्यनुव्रज्य कृत्वा विप्रान् प्रदक्षिणं ।
गृहे विशेदमावास्यां मासि मासि चरेत्तथा ॥ ३१ ॥
एकोद्दिष्टं प्रवक्ष्यामि श्राद्धं पूर्ववदाचरेत । एकं पवित्रमेकार्घं एकं पिण्डम्प्रदापयेत् ॥३२॥
नावाहनाग्नौकरणं विश्वे देवा न चात्र हि । तृप्तिप्रश्ने स्वदितमिति वदेत्सुस्वदितं द्विजः ॥
उपतिष्ठतामित्यक्षय्ये विसर्गे चाभिरम्यतां । अभिरताः स्म इत्यपरे शेषं पूर्व्ववदाचरेत् ॥
सपिण्डीकरणं वक्ष्ये अब्दान्ते मध्यतोऽपि वा । पितॄणां त्रीणि पात्राणि एकम्प्रेतस्य पात्रकं ॥
सपवित्राणि चत्वारि तिलपुष्पयुतानि च । गन्धोदकेन युक्तानि[४] पूरयित्वाभिषिञ्चति ॥३६॥
प्रेतपात्रं पितृपात्रे ये समना इति द्वयात् । पूर्व्ववत् पिण्डदानादि प्रेतानां पितृता भवेत् ॥
अथाभ्युदयिकं श्राद्धं वक्ष्ये सर्व्वं तु पूर्व्ववत् । जपेत् पितृमन्त्रवर्ज्जं पूर्व्वाह्णे तत् प्रदक्षिणं ॥
उपचारा ऋजुकुशास्तिलार्थैश्च यवैरिह[५] । तृप्तिप्रश्नस्तु सुसम्पन्नं वदेद्द्विजः ॥३९॥
दध्यक्षतवदराद्याः[६] पिण्डा नान्दीमुखान् पितॄन् ।
आवाहयिष्ये पृच्छेच्च प्रीयन्तामिति चाक्षये ॥ ४० ॥
नान्दीमुखाश्च पितरो वाचयिष्येऽथ पृच्छति ।
नान्दीमुखान् पितृगणान् प्रीयन्तामित्यथो वदेत् ॥ ४१ ॥

---

१. स्वाहायै नित्यमेव भवन्त्विति इति ख. छ. च । २. प्रार्थयेत्तत इति घ. ज. झ. च ।
३. अघोराः पितर इत्यादिः, आस्तीर्य सपवित्रकानित्यन्तः पाठः ख. छ. पुस्तकद्वये नास्ति ।
४. गन्धोदकेन सिक्तानि इति ज. ।
५. अथाभ्युदयिकमित्यादिः, यवैरिह इत्यन्तः पाठो झ. पुस्तके नास्ति ।
६. दध्यक्षतवदर्याद्या इति ग. छ. च ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नान्दीमुखाश्च पितरस्तत्पिता प्रपितामहः । मातामहः प्रमातामहो वृद्धप्रमातृकामहः ॥४२॥
स्वधाकारन्न युञ्जीत युग्मान् विप्रांश्च भोजयेत् । तृप्तिं वक्ष्ये पितॄणां च ग्राम्यैरोषधिभिस्तथा ॥
मासन्तृप्तिस्तथारण्यैः[1] कन्दमूलफलादिभिः । मत्स्यैर्म्मासद्वयं मार्गैस्त्रयं वै शाकुनेन च ॥४४॥
चतुरो रौरवेणाथ[2] पञ्च षट् छागलेन तु[3] । कूर्मेण सप्त चाष्टौ च वाराहेण नवैव तु ॥४५॥
मेषमांसेन दश च माहिषैः पार्षतैः शिवैः । संवत्सरन्तु गव्येन पयसा पायसेन वा ॥४६॥
वार्द्धीनसस्य मांसेन तृप्तिर्द्वादशवार्षिकी । खड्गमांसं कालशाकं लोहितच्छागलो[4] मधु ॥४७॥
महाशल्काश्च वर्षासु मघाश्राद्धमथाक्षयं[5] । मन्त्राध्याय्यग्निहोत्री च शाखाध्यायी षडङ्गवित् ॥
तृणाचिकेतः त्रिमधुर्द्धर्म्मद्रोणस्य[6] पाठकः । त्रिषपर्णज्येष्ठसामज्ञानी स्युः पङ्क्तिपावनाः॥४९॥
काम्यानां कल्पमाख्यास्ये[7] प्रतिपत्सु धनं बहु । स्त्रियः परा द्वितीयायाञ्चतुर्थ्यां धर्म्मकामदः ॥
पञ्चम्यां पुत्रकामस्तु षष्ठ्याञ्च श्रैष्ठ्यभागपि[8] । कृषिभागी च सप्तम्यामष्टम्यामर्थलाभकः ॥५१॥
नवम्याञ्च एकशफा[9] दशम्याङ्गोगणो भवेत् । एकादश्यां परीवारो द्वादश्यान्धनधान्यकं ॥५२॥
ज्ञातिश्रैष्ठ्यं त्रयोदश्यां चतुर्द्दश्याञ्च शस्त्रतः[10] । मृतानां श्राद्धं सर्व्वात्तममावास्यां समीरितं[11] ॥
सप्त व्याधा दशारण्ये[12] मृगाः कालञ्जरे गिरौ । चक्रवाकाः शरद्वीपे हंसाः सरसि मानसे ॥
तेऽपि जाताः[13] कुरुक्षेत्रे ब्राह्मणा वेदपारगाः । प्रस्थिता दूरमध्वानं यूयन्तेभ्योऽवसीदत॥५५॥
श्राद्धादौ पठिते श्राद्धं पूर्णं स्याद्ब्रह्मलोकदं । श्राद्धं कुर्य्याच्च पुत्रादिः[14] पितुर्ज्जीवति तत्पितुः॥
तत्पितुस्तत्पितुः कुर्य्याज्जीवति प्रपितामहे । पितुः पितामहस्याथ परस्य प्रपितामहात्[15]॥
एवं मात्रादिकस्यापि तथा मातामहादिके । श्राद्धकल्पं पठेद्यस्तु स लभेत् श्राद्धकृत्फलं[16]॥
तीर्थे युगादौ मन्वादौ श्राद्धं दत्तमथाक्षयं । अश्वयुच्छुक्लनवमी द्वादशी कार्त्तिके तथा ॥५९॥
तृतीया चैव माघस्य तथा भाद्रपदस्य च । फाल्गुनस्याप्यमावास्या पौषस्यैकादशी तथा ॥
आषाढस्यापि दशमी माघमासस्य सप्तमी । श्रावणे चाष्टमी कृष्णा तथाषाढे च पूर्णिमा ॥

---

१. तथा वन्यैरिति ख. ङ. च ।
२. वत्सरं रौरवेणायेति घ. ।
३. पञ्चकं छागलेन तु इति ङ. ।
४. लोहितच्छागक इति ग. घ. ङ. च ।
५. मघाश्राद्धमिहाक्षयमिति झ. ।
६. जलद्रोणस्येति झ. ।
७. कालमाख्यास्ये इति घ. झ. च ।
८. श्रेष्ठभाग्यपि इति ख. ग. ङ. छ. च । ज्येष्ठभागपि इति घ. ।
९. नवम्यां वै शफपतिरिति ज. ।
१०. चतुर्द्दश्याञ्च शास्त्रत इति ख. घ. च ।
११. मृतानां श्राद्धं सर्वासिरमावास्या समीरिता इति क. ।
१२. दशार्णेषु इति ख. ग. ङ. छ. च ।
१३. तेऽभिजाता इति ख. घ. च ।
१४. कुर्यात् सुपुत्रोऽपि इति छ. ।
१५. तत्पितुरित्यादिः. प्रपितामहादित्यन्तः पाठो झ. पुस्तके नास्ति ।
१६. यस्तु. लभेच्छ्राद्धकृतं फलमिति ख. छ. ज. च ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कार्त्तिकी फाल्गुनी तद्वज् ज्यैष्ठे पञ्चदशी सिता ।
स्वायम्भुवाद्या मनवस्तेषामाद्याः किलाक्षयाः ।। ६२ ।।
गया प्रयागो गङ्गा च कुरुक्षेत्रं च नर्म्मदा । श्रीपर्वतः प्रभासश्च शालग्रामो वराणसी[1] ।।६३।।
गोदावरी तेषु श्राद्धं श्रीपुरुषोत्तमादिषु ।

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये श्राद्धकल्पो नाम
सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः ।

अष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः

भारतवर्षं ।

अग्निरुवाच

उत्तरं यत् समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणं । वर्षं तद् भारतं नाम नवसाहस्रविस्तृतं ।।१।।
कर्म्मभूमिरियं स्वर्गमपवर्गं च गच्छतां । महेन्द्रो मलयः सह्यः शुक्तिमान् हेमपर्वतः[2] ।।२।।
विन्ध्यश्च पारिपात्रश्च सप्तात्र कुलपर्वताः । इन्द्रद्वीपः कसेरुश्च ताम्रवर्णो गभस्तिमान् ।।३।।
नागद्वीपस्तथा सौम्यो गान्धर्वस्त्वथ वारुणः । अयं तु नवमस्तेषां द्वीपः सागरसंवृतः ।।४।।
योजनानां सहस्राणि द्वीपोयं दक्षिणोत्तरात् । नव भेदा भारतस्य[3] मध्यभेदेऽथ पूर्वतः ।।५।।
किराता यवनाश्चापि ब्राह्मणाद्याश्च मध्यतः । वेदस्मृतिमुखा नद्यः पारिपात्रोद्भवास्तथा ।।६।।
विन्ध्याच्च नर्म्मदाद्याः स्युः सह्यात्तापी पयोष्णिका ।
गोदावरीभीमरथीकृष्णवेणादिकास्तथा ।। ७ ।।
मलयात् कृतमालाद्यास्त्रिसामाद्या महेन्द्रजाः । कुमाराद्याः शुक्तिमतो[4] हिमाद्रेश्चन्द्रभागका ।।
पश्चिमे कुरुपाञ्चालमध्यदेशादयः स्थिताः ।

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये भारतवर्षं नामाष्टादशाधिक-
शततमोऽध्यायः ।

एकोनविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

महाद्वीपादि ।

अग्निरुवाच

लक्षयोजनविस्तारं जम्वूद्वीपं समावृतम् । लक्षयोजनमानेन क्षीरोदेन समन्ततः ।।१।।

---

१. वाराणसी इति ख. ङ. छ. ज. च ।
२. शुक्तिमानृक्षपर्वत इति घ. छ. च । शुक्तिमानृक्षपर्वत इति ज. ।
३. नव भेदा भवन्त्यस्येति झ. । ४. शुक्तिमत इति ख. ग. घ. झ. च ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

संवेष्ट्य क्षारमुदधिं प्लक्षद्वीपस्तथा स्थितः[१] सप्त मेधातिथेः पुत्राः प्लक्षद्वीपेश्वरास्तथा ॥२॥
स्याच्छान्तभयः शिशिरः सुखोदय इतः परः। आनन्दश्च शिवः क्षेमो ध्रुवस्तन्नामवर्षकं॥
मर्य्यादाशैलो गोमेधश्चन्द्रो नारददुन्दुभी। सोमकः सुमनाः शैलो वैभ्राजास्तज्जनाः शुभाः॥
नद्यः प्रधानाः सप्तात्र प्लक्षाच्छाकान्तिकेषु च। जीवनं पञ्चसाहस्रं धर्म्मो वर्णाश्रमात्मकः[२]॥
आर्य्यकाः कुरवश्चैव विविंशा भाविनश्च ते। विप्राद्यास्तैश्च सोमोऽर्च्यो द्विलक्षश्चाब्धिलक्षकः॥
मानेनेक्षुरसोदेन वृतो द्विगुणशाल्मलः। वपुष्मतः सप्त पुत्राः शाल्मलेशास्तथाभवन ॥७॥
श्वेतोऽथ हरितश्चैव जीमूतो लोहितः क्रमात्। वैद्युतो मानसश्चैव सुप्रभो नाम वर्षकः॥
द्विगुणो द्विगुणेनैव सुरोदेन समावृतः। कुमुदश्चानलश्चैव[३] तृतीयस्तु बलाहकः॥९॥

द्रोणः कंकोऽथ[४] महिषः ककुद्मान् सप्त निम्नगाः।
कपिलाद्याश्चारुणाः पीताः कृष्णाः स्युर्ब्राह्मणादयः॥ १०॥

वायुरूपं यजन्ति स्म सुरोदेनायमावृतः[५]। ज्योतिष्मतः कुशेशाः स्युरुद्गिजो धेनुमान् सुतः॥
द्वैरथो लंवनो धैर्यः कपिलश्च प्रभाकरः। विप्राद्या दधिमुख्यास्तु ब्रह्मरूपं यजन्ति ते ॥१२॥
विद्रुमो[६] हेमशैलश्च द्युतिमान् पुष्पवांस्तथा। कुशेशयो हरिः शैलो वर्षार्थं मन्दराचलः ॥१३॥
वेष्टितोऽयं घृतोदेन क्रौञ्चद्वीपेन सोऽप्यथ। क्रौञ्चेश्वराः द्युतिमतः पुत्रास्तन्नामवर्षकाः॥
कुशलो मनोनुगश्चोष्णः प्रधानोऽथान्धकारकः। मुनिश्च दुन्दुभिः सप्त सप्त शैलाश्च निम्नगाः[७]॥
क्रौञ्चश्च वामनश्चैव तृतीयश्चान्धकारकः[८]। देवावृत् पुण्डरीकश्च दुन्दुभिर्द्विगुणो मिथः ॥१६॥
द्वीपा द्वीपेषु ये शैला यथा द्वीपानि ते तथा। पुष्कराः पुष्कला धन्यास्तीर्थाः[९] विप्रादयो हरिम्॥
यजन्ति क्रौञ्चद्वीपस्तु दधिमण्डोदकावृतः। संवृतः शाकद्वीपेन हव्याच्छाकेश्वराः सुताः॥
जलदश्च कुमारश्च सुकुमारो मणीवकः। कुशोत्तरथो मोदाकी द्रुमस्तन्नामवर्षकाः ॥१६॥
उदयाख्यो जलधरो रैवतः श्यामकोद्रकौ। आम्बिकेयस्तथा रम्यः केशरी सप्त निम्नगाः॥
मगा मगधमानस्या[१०] मन्दगाश्च द्विजातयः[११]। यजन्ति सूर्य्यरूपं तु[१२] शाकः क्षीराब्धिना वृतः॥
पुष्करेणावृतः सोऽपि द्वौ पुत्रौ सवनस्य च। महावीतो धातकिश्च वर्षे द्वे नामचिह्निते[१३]॥
एकोऽद्रिर्म्मानसाख्योऽत्र मध्यतो वलयाकृतिः। योजनानां सहस्राणि विस्तारोच्छ्रायतः समः॥
जीवनं दशसाहस्रं सुरैर्ब्रह्मात्र पूज्यते। स्वादूदकेनोदधिना वेष्टितो द्वीपमानतः ॥२४॥
ऊनातिरिक्तता चापां समुद्रेषु न जायते। उदयास्तमनेष्विन्दोः पक्षयोः शुक्लकृष्णयोः॥

---

१. द्वीपस्तथा स्मृत इति झ.।
२. वर्णाश्रमात्मज इति ख. घ. ज. च।
३. कुमुदश्चोन्नतश्चैवेति ख. ग. घ. ङ. च।
४. कर्कोऽथेति क.।
५. सुरोदेन समावृत इति घ.।
६. रुद्राभ इति क.। विक्रम इति ख. छ. च।
७. कुशल इत्यादिः, निम्नगा इत्यन्तः पाठो झ. पुस्तके नास्ति।
८. तृतीयश्चानुकारक इति घ. झ. च।
९. पुष्कलावत्यां तीर्थाः इति घ.।
१०. आगाम्यगधमालस्या इति ख. छ. च।
११. द्विजादय इति क. ख. ङ. छ. च।
१२. सूर्यरूपन्ते इति घ. ज. च।
१३. वर्षे द्वे भागचिह्निते इति झ.।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दशोत्तराणि पञ्चैव[1] अङ्गुलानां शतानि वै । अपां वृद्धिक्षयौ दृष्टौ सामुद्रीणां[2] महामुने ॥
स्वादूदका बहुगुणा[3] भूर्हैमी जन्तुवर्जिता । लोकालोकस्ततः शैलो योजनायुतविस्तृतः ॥२७॥
लोकालोकस्तु तमसावृतोऽथाण्डकटाहतः । भूमिः साण्डकटाहेन पञ्चाशत्कोटिविस्तरा[4] ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये द्वीपादिवर्णनं नामैकोनविंशतिशततमोऽध्यायः ।

विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

भुवनकोषः ।

अग्निरुवाच

विस्तारस्तु स्मृतो भूमेः सहस्राणि च सप्ततिः । उच्छ्रायो दशसाहस्रं पातालञ्चैकमेककं ॥१॥
अतलं वितलञ्चैव नितलञ्च गभस्तिमत् । महाख्यं सुतलञ्चाग्र्यं पातालञ्चापि सप्तमं ॥२॥
कृष्णपीतारुणाः शुक्लशर्कराशैलकाञ्चनाः । भूमयस्तेषु रम्येषु सन्ति दैत्यादयः सुखं ॥३॥
पातालानामधश्चास्ते शेषो विष्णुश्च तामसः । गुणानन्त्यात्स चानन्तः शिरसा धारयन्महीं ॥
भुवोऽधो नरका नैके न पतेत्तत्र वैष्णवः । रविणा भासिता पृथ्वी यावत्तावन्नभो मतं ॥५॥
भूमेर्योजनलक्षन्तु वशिष्ठरविमण्डलं । रवेर्लक्षेण चन्द्रश्च लक्षान्नाक्षत्रमिन्दुतः ॥६॥
द्विलक्षाद्भाद्बुधश्चास्ते बुधाच्छुक्रो द्विलक्षतः । द्विलक्षेण कुजः शुक्राद्भौमाद् द्विलक्षतो गुरुः ॥
गुरोर्द्विलक्षतः सौरिर्लक्षात्सप्तर्षयः शनेः । लक्षाद् ध्रुवो ह्यृषिभ्यस्तु त्रैलोक्यञ्चोच्छ्रयेण च ॥
ध्रुवात् कोट्या महर्लोको यत्र ते कल्पवासिनः । जनो द्विकोटितस्तस्माद्यत्रासन्[5] सनकादयः ॥
जनात्तपश्चाष्टकोट्या वैराजा यत्र देवताः । षण्णवत्या तु कोटीनान्तपसः सत्यलोककः ॥१०॥
अपुनर्मारका यत्र ब्रह्मलोको हि स स्मृतः । पादगम्यस्तु भूर्लोको भुवः सूर्य्यान्तरः स्मृतः॥११॥
स्वर्गलोको ध्रुवान्तस्तु नियुतानि[6] चतुर्दश । एतदण्डकटाहेन वृतो ब्रह्माण्डविस्तरः ॥१२॥
वारिवह्न्यनिलाकाशैस्ततो भूतादिना वहिः । वृतं दशगुणैरण्डं भूतादिर्म्महता तथा ॥१३॥
दशोत्तराणि शेषाणि एकैकस्मान्महामुने । महान्तञ्च समावृत्य प्रधानं समवस्थितं ॥१४॥
अनन्तस्य न तस्यान्तः सङ्ख्यानं नापि विद्यते[7] । हेतुभूतमशेषस्य प्रकृतिः सा परा मुने ॥१५॥

---

१. पञ्चात्रेति ग. ङ. च ।
२. समुद्राणामिति ग. ङ. झ. च ।
३. स्वादूदका द्वित्रिगुणेति ख. छ. च । स्वादूदका तु द्विगुणेति घ. ज. च । स्वादूदका तु त्रिगुणेति ग. ङ. च ।
४. पञ्चाशत्कोटिविस्तृतेति छ. ।
५. यत्र वै इति ङ. ।
६. अयुतानि इति ज. ।
७. सङ्ख्यानं नैव विद्यते इति घ. झ. च । सङ्ख्यानं न च विद्यते इति ग. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

असङ्ख्यातानि चाण्डानि तत्र जातानि चेदृशां । दारुण्यग्निर्यथा तैलं तिले तद्वत् पुमानिति[1] ॥
प्रधाने च स्थितो[2] व्यापी चेतनात्मात्मवेदनः । प्रधानञ्च पुमांश्चैव सर्व्वभूतात्मभूतया[3]॥१७॥
विष्णुशक्त्या महाप्राज्ञ वृतौ संश्रयधर्म्मिणौ । तयोः[4] सैव पृथग्भावे कारणं संश्रयस्य च ॥१८॥
क्षोभकारणभूतश्च सर्गकाले महामुने । यथा शैत्यं जले वातो विभर्त्ति कणिकागतं ॥१९॥
जगच्छक्तिस्तथा विष्णोः प्रधानप्रतिपादिकां । विष्णुशक्तिं समासाद्य देवाद्याः सम्भवन्ति हि॥
स च विष्णुः स्वयं ब्रह्म यतः सर्व्वमिदं जगत् । योजनानां सहस्राणि भास्करस्य रथो नव॥२१॥
ईशादण्डस्तथैवास्य द्विगुणो मुनिसत्तम । सार्द्धकोटिस्तथा सप्तनियुतान्यधिकानि वै ॥२२॥
योजनानान्तु तस्याक्षस्तत्र चक्रं प्रतिष्ठितं । त्रिनाभिमतिपञ्चारं षण्णेमि द्व्ययनात्मकं ॥२३॥
संवत्सरमयं कृत्स्नं कालचक्रं प्रतिष्ठितं । चत्वारिंशत्सहस्राणि द्वितीयाक्षो विवस्वतः ॥२४॥
पञ्चान्यानि तु सार्द्धानि स्यन्दनस्य महामते । अक्षप्रमाणमुभयोः प्रमाणन्तद्युगार्द्धयोः ॥२५॥
ह्रस्वोऽक्षस्तद्युगार्द्धञ्च ध्रुवाधारं रथस्य वै । हयाश्च सप्त छन्दांसि गायत्र्यादीनि सुव्रत ॥२६॥
उदयास्तमनं ज्ञेयं दर्शनादर्शनं रवेः । यावन्मात्रप्रदेशे तु वशिष्ठोऽवस्थितो ध्रुवः ॥२७॥
स्वयमायाति तावत्तु भूमेराभूतसम्प्लवे[5] । ऊर्द्धोत्तरमृषिभ्यस्तु ध्रुवो यत्र व्यवस्थितः ॥२८॥
एतद्विष्णुपदं दिव्यं तृतीयं व्योम्नि भास्वरं । निर्द्धूतदोषपङ्कानां यतीनां स्थानमुत्तमं ॥२९॥
ततो गङ्गा प्रभवति स्मरणात् पापनाशनी[6] । दिवि रूपं हरेर्ज्ञेयं शिशुमाराकृति प्रभो ॥३०॥
स्थितः पुच्छे ध्रुवस्तत्र भ्रमन् भ्रामयति ग्रहान् । स रथोऽधिष्ठितो देवैरादित्यैरृषिभिर्वरैः[7] ॥
गन्धर्वैरप्सरोभिश्च ग्रामणीसर्पराक्षसैः[8] । हिमोष्णवारिवर्षाणां कारणं भगवान् रविः ॥३२॥
ऋग्वेदादिमयो विष्णुः स शुभाशुभकारणं । रथस्त्रिचक्रः सोमस्य कुन्दाभास्तस्य वाजिनः[9] ॥
वामदक्षिणतो युक्ता दश तेन चरत्यसौ । त्रयस्त्रिंशत्सहस्राणि त्रयस्त्रिंशच्छतानि च ॥३४॥
त्रयस्त्रिंशत्तथा देवाः पिबन्ति क्षणदाकरं[10]। एकां कलाञ्च पितर एकामारश्मिसंस्थिताः ॥३५॥
वाय्वग्निद्रव्यसम्भूतो रथश्चन्द्रसुतस्य च । अष्टाभिस्तुरगैर्युक्तो बुधस्तेन चरत्यपि ॥३६॥
शुक्रस्यापि रथोऽष्टाश्वो भौमस्यापि रथस्तथा । बृहस्पते रथोऽष्टाश्वः शनेरष्टाश्वको रथः ॥३७॥
स्वर्भानोश्च रथोऽष्टाश्वः केतोश्चाष्टाश्वको रथः । यदद्य वैष्णवः कायस्ततो विप्र वसुन्धरा ॥३८॥
पद्माकारा समुद्भूता पर्वताद्यादिसंयुता । ज्योतिर्भुवननद्यद्रिसमुद्रवनकं हरिः ॥३९॥
यदस्ति नास्ति तद्विष्णुर्विष्णुज्ञानविजृम्भितं[11]। न विज्ञानमृते किञ्चिज् ज्ञानं विष्णुः परम्पदं॥

---

१. पुमानपि इति घ. झ. च । २. प्रधानेऽवस्थितं इति ख. ग. ङ. च ।
३. सर्वभूतानुभूतया इति ङ. । ४. द्वयोरिति झ. ।
५. भूमेराहूतसम्प्लवे इति घ. ज. च । ६. सर्वपापप्रणाशिनीति ज. ।
७. ऋषिभी रवेरिति ग. घ. ङ. ज. च ।
८. सरथ इत्यादिः, राक्षसैरित्यन्तः पाठः झ. पुस्तके नास्ति ।
९. कुन्दाभास्तत्र वाजिन इति क. घ. ङ. च । १०. क्षणदाचरमिति झ. ।
११. ज्ञानविज्ञानजृम्भितमिति ज. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तत् कुर्य्याद् येन विष्णुः स्यात् सत्यं ज्ञानमनन्तकं।
पठेद् भुवनकोषं हि यः सोऽवाप्तसुखात्मभाक् ॥ ४१ ॥
ज्योतिःशास्त्रादिविद्याश्च शुभाशुभाधिपो हरिः[१]।

इत्याग्निमहापुराणे आग्नेये भुवनकोषो नाम विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः।

एकविंशाधिकशततमोऽध्यायः

ज्योतिःशास्त्रं।

अग्निरुवाच

ज्योतिः शास्त्रं प्रवक्ष्यामि शुभाशुभविवेकदं। चातुर्लक्षस्य सारं यत् तज् ज्ञात्वा सर्व्वविद्भवेत ॥
षड़ष्टके[२] विवाहो न न च द्विर्द्वादशे स्त्रियाः। न त्रिकोणे ह्यथ प्रीतिः[३] शेषे च समसप्तके ॥२॥
द्विर्द्वादशे त्रिकोणे च मैत्रीक्षेत्रपयोर्यदि। भवेदेकाधिपत्यञ्च ताराप्रीतिरथापि वा ॥३॥
तथापि कार्य्यः संयोगो न तु षट्काष्टके पुनः।
जीवे भृगौ चास्तमिते म्रियते च पुमान् स्त्रिया ॥ ४ ॥
गुरुक्षेत्रगते सूर्ये सूर्य्यक्षेत्रगते गुरौ। विवाहं न प्रशंसन्ति कन्यावैधव्यकृद्भवेत ॥५॥
अतिचारे त्रिपक्षं स्याद्वक्रे मासचतुष्टयं। व्रतोद्वाहौ न कुर्व्वीत गुरोर्वक्रातिचारयोः ॥६॥
चैत्रे पौषे न रिक्तासु हरौ सुप्ते कुजे रवौ। चन्द्रक्षये चाशुभं स्यात् सन्ध्याकालः शुभावहः ॥
रोहिणी चोत्तरा मूलं स्वाती हस्तोऽथ रेवती। तुले न मिथुने शस्तो विवाहः परिकीर्त्तितः ॥
विवाहे कर्णवेधे च व्रते पुंसवने तथा। प्राशने चाद्यचूड़ायां विद्धर्क्षञ्च विवर्ज्जयेत्[४] ॥९॥
श्रवणे मूलपुष्ये च सूर्य्यमङ्गलजीवके। कुम्भे सिंहे च मिथुने कर्म्म पुंसवनं स्मृतं ॥१०॥
हस्ते मूले मृगे पौष्णे बुधे शुक्रे च निष्क्रृतिः। अर्केन्दुजीवभृगुजे मूले तांम्बूलभक्षणं ॥११॥
अन्नस्य प्राशनं शुक्रे जीवे मृगे च मीनके[५]। हस्तादिपञ्चके पुष्ये कृत्तिकादित्रये तथा ॥१२॥
अश्विन्यामथ रेवत्यां नवान्नफलभक्षणं। पुष्यो हस्ता तथा ज्येष्ठा रोहिणी श्रवणाश्विनौ ॥१३॥
स्वातिसौम्ये च भैषज्यं कुर्य्यादन्यत्र वर्जयेत्। पूर्वात्रयं[६] मघा याम्यं पावनं[७] श्रवणत्रयं ॥१४॥
भौमादित्यशनेर्व्वारे स्नातव्यं रोगमुक्तितः। पार्थिवे चाष्टह्रींकारं मध्ये नाम च दिक्षु च ॥१५॥
ह्रीं पुटं पार्थिवे दिक्षु ह्रीं विदिक्षु लिखेद्वसून्। गोरोचनाकुङ्कुमेन भूर्जे वस्त्रे गले धृतं ॥१६॥
शत्रवो वशमायान्ति मन्त्रेणानेन निश्चितं। श्रीं ह्रीं सम्पुटं नाम श्रीं ह्रीं पत्राष्टके क्रमात् ॥१७॥
गोरोचनाकुङ्कुमेन भूर्जेऽथ सुभगावृते। गोमध्यवागमः पत्रे हरिद्राया रसेन च ॥१८॥

---

१. शुभाशुभाश्रयो हरिरिति ख. छ. च।　२. षट्काष्टके इति ख. ग. घ. ङ. ज. च।
३. न त्रिकोणेषु प्रीतिः स्यादिति ज.।
४. विद्धमृक्षं विवर्जयेत् इति ख. ग. घ. ङ. छ. ज. च।　५. जीवे मकरमीनके इति झ.।
६. पूर्वात्रिकमिति ज.।　७. पावकमिति ङ.।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शिलापट्टेऽरीन् स्तम्भयति भूमावधोमुखीकृतं ॥ १९ ॥
ओं हूं सः[1] सम्पुटन्नाम ओं हूं सः[2] पत्राष्टके क्रमात् ।
गोरोचनाकुङ्कुमेन भूर्जे मृत्युनिवारणं । एकपञ्चनवप्रीत्यै[3] द्विषट्द्वादशयोगकाः ॥२०॥
त्रिसप्तैकादशे लाभो वेदाष्टद्वादशे रिपुः । तनुर्धनञ्च सहजः सुहृत सुतो रिपुस्तथा ॥२१॥
जाया निधनधर्म्मौ च कर्म्मायव्ययकं क्रमात् । स्फुटं मेषादिलग्नेषु नवतारावलं वदेत् ॥२२॥
जन्म सम्पद्विपत् क्षेमं प्रत्यरिः साधकः क्रमात् । निधनं मित्रपरममित्रं तारावलं विदुः ॥२३॥
वारे ज्ञगुरुशुक्राणां सूर्य्याचन्द्रमसोस्तथा । माघादिमासषट्के तु क्षौरमाद्यं प्रशस्यते ॥२४॥
कर्णवेधो वुधे जीवे पुष्ये श्रवणचित्रयोः । पञ्चमेऽब्दे चाध्ययनं षष्ठीं प्रतिपदन्त्यजेत् ॥२५॥
रिक्तां पञ्चदशीं भौमं प्राच्यं वाणीं हरिं श्रियं । माघादिमासषट्के तु[4] मेखलाबन्धनं शुभं ॥
चूडाकरणकार्यञ्च श्रावणादौ न शस्यते । अस्तं याते गुरौ शुक्रे क्षीणे च शशलाञ्छने ॥२७॥
उपनीतस्य विप्रस्य मृत्युं जाड्यं विनिर्दिशेत् । क्षौरर्क्षे शुभवारे च समावर्त्तनमिष्यते ॥२८॥
शुभक्षेत्रे विलग्नेषु शुभयुक्तेक्षितेषु च । अश्विनीमघाचित्रासु स्वातीयाम्योत्तरासु च ॥२९॥
पुनर्व्वसौ तथा पुष्ये धनुर्वेदः प्रशस्यते । भरण्यार्द्रा मघाश्लेषा वह्निभगर्क्षयोस्तथा ॥३०॥
जिजीविषुर्न्न कुर्व्वीत वस्त्रप्रावरणं नरः । गुरौ शुक्रे बुधे वस्त्रं विवाहादौ न भादिकं ॥३१॥
रेवत्यश्विधनिष्ठासु हस्तादिषु च पञ्चसु । शङ्खविद्रुमरत्नानां परिधानं प्रशस्यते ॥३२॥
याम्यसर्पधनिष्ठासु[5] त्रिषु पूर्व्वेषु वारुणे[6] । क्रीतं हानिकरं द्रव्यं विक्रीतं लाभकृद्भवेत् ॥३३॥
अश्विनीस्वातिचित्रासु रेवत्यां वारुणे हरौ । क्रीतं लाभकरं द्रव्यं विक्रीतं हानिकृद्भवेत् ॥
भरणी त्रीणि पूर्वाणि आर्द्राश्लेषा मघानिलाः । वह्निज्येष्ठाविशाखासु स्वामिनो नोपतिष्ठते ॥
द्रव्यं दत्तं प्रयुक्तं वा यत्र निक्षिप्यते धनं । उत्तरे श्रवणे शाक्रे कुर्याद्राजाभिषेचनं ॥३६॥
चैत्रं ज्येष्ठं तथा भाद्रमाश्विनं पौषमेव च । माघं चैव परित्यज्य शेषमासे गृहं शुभं ॥ ३७॥
अश्विनी रोहिणी मूलमुत्तरात्रयमैन्दवं । स्वाती हस्तानुराधा च गृहारम्भे प्रशस्यते ॥३८॥
आदित्यभौमवर्जन्तु वापीप्रासादके तथा । सिंहराशिगते जीवे गुर्व्वादित्ये मलिम्लुचे ॥
वाले वृद्धेऽस्तगे शुक्रे गृहकर्म्म विवर्जयेत् । अग्निदाहो भयं रोगो राजपीडा धनक्षतिः ॥४०॥
सङ्ग्रहे तृणकाष्ठानां कृते श्रवणपञ्चके । गृहप्रवेशनं कुर्य्याद्धनिष्ठोत्तरवारुणे ॥४१॥
नौकाया घटने द्वित्रिपञ्चसप्तत्रयोदशी । नृपदर्शी धनिष्ठासु हस्तापौष्णाश्विनीषु च ॥४२॥
पूर्वात्रयन्धनिष्ठार्द्रा वह्निः सौम्यविशाखयोः । अश्लेषा चाश्विनी चैत्र यात्रासिद्धिस्तु सम्पदा[7]॥
त्रिपूत्तरेषु रोहिण्यां सिनीवाली चतुर्दशी । श्रवणा चैव हस्ता च चित्रा च वैष्णवी तथा ॥
गोष्ठयात्रां न कुर्वीत प्रवेशं नैव कारयेत् । अनिलोत्तररोहिण्यां मृगमूलपुनर्वसौ ॥४५॥

---

१. ओं हंस इति छ. । २. ओं जूं स इति ख. । ओं हं स इति छ. ।
३. एकपञ्चनवशान्त्यै इति ज. । ४. माघादिमासषट्केषु इति झ. ।
५. याम्यसर्पविशाखासु इति घ. ज. च । ६. पूर्वेषु चानले इति ग. घ. ङ. च. ।
७. यात्रासिद्धिषु सम्पद इति ग. ज. च ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पुष्यश्रवणहस्तेषु कृषिकर्म्म समाचरेत्[१]। पुनर्वसूत्तरास्वातीभगमूलेन्द्रवारुणे[२] ॥४६॥
गुरोः शुक्रस्य वारे वा वारे च[३] सोमभास्वतोः। वृषलग्ने च कर्त्तव्यङ्कन्यायां मिथुने तथा ॥
द्विपञ्च[४] दशमी सप्त तृतीया च त्रयोदशी। रेवतीरोहिणीन्द्राग्निहस्तमैत्रोत्तरेषु[५] च ॥४८॥
मन्दारवर्ज्जं बीजानि वापयेत् सम्पदर्थ्यपि[६]। रेवतीहस्तमूलेषु श्रवणे भगमैत्रयोः ॥४९॥
पितृदैवे तथा सौम्ये धान्यच्छेदं मृगोदये। हस्तचित्रादितिस्वातौ रेवत्यां श्रवणत्रये ॥५०॥
स्थिरे लग्ने[७] गुरोर्वारे अथ[८] भार्गवसौम्ययोः। याम्यादितिमघाज्येष्ठासूत्तरेषु प्रवेशयेत् ॥
ओं धनदाय[९] सर्व्वधनेशाय देहि मे धनं स्वाहा[१०]।
ओं नवे वर्षे इलादेवि लोकसंवर्द्धनि कामरूपिणि देहि मे धनं स्वाहा ॥
पत्रस्थं लिखितं धान्यराशिस्थं धान वर्द्धनं। त्रिपूर्व्वासु विशाखायां धनिष्ठावारुणेऽपि च ॥
एतेषु षट्सु विज्ञेयं धान्यनिष्क्रमणं बुधैः। देवतारामवाप्यादिप्रतिष्ठोदङ्मुखे रवौ ॥५३॥
मिथुनस्थे रवौ दर्शाद्यदि स्याद् द्वादशी तिथिः। सदा तत्रैव कर्त्तव्यं शयनं चक्रपाणिनः ॥
सिंहतौलिङ्गते[११] चार्क्के दर्शाद्द्वादशीद्वयं। आदात्रिन्द्रसमुत्थानं प्रबोधश्च हरेः क्रमात् ॥
तथा कन्यागते भानौ[१२] दुर्गोत्थाने तथाष्टमी। त्रिपादेषु च ऋक्षेषु यदा भद्रा तिथिर्भवेत् ॥
भौमादित्यशनैश्चारि विज्ञेयं तत् त्रिपुष्करं। सर्वकर्म्मण्युपादेया विशुद्धिश्चन्द्रतारयोः[१३] ॥
जन्माश्रितस्त्रिषष्ठश्च सप्तमो दशमस्तथा। एकादशः शशी येषान्तेषामेव शुभं वदेत् ॥५८॥
शुक्लपक्षे द्वितीयश्च पञ्चमो नवमः शुभः। मित्रातिमित्रसाधकसम्पत्क्षेमादितारकाः ॥५९॥
जन्मना मृत्युमाप्नोति विपदा धनसङ्क्षयं। प्रत्यरौ मरणं विद्यान्निधने याति पञ्चतां ॥६०॥
कृष्णाष्टमीदिनादूर्द्ध्वं यावच्छुक्लाष्टमीदिनं[१४]। तावत् कालं शशी क्षीणः पूर्णस्तत्रोपरि स्मृतः॥
वृषे च मिथुने भानौ जीवे चन्द्रेन्द्रदैवते[१५]। पौर्णमासी गुरोर्वारे महाज्यैष्ठी प्रकीर्त्तिता ॥६२॥
ऐन्द्रे गुरुः शशी चैव प्राजापत्ये रविस्तथा। पूर्णिमा ज्येष्ठमासस्य महाज्यैष्ठी प्रकीर्त्तिता ॥६३॥
स्वात्यन्तरे यन्त्रनिष्ठे शक्रस्योत्थापयेद् ध्वजं।
हर्य्यृक्षपादे[१६] चाश्विन्यां सप्ताहान्ते विसर्जयेत् ॥ ६४ ॥

---

१. समारभेदिति घ. ङ. च।
२. भगमूले च वारुणे इति ख. छ. च।
३. वारे वा इति ज.।
४. त्रिपञ्चेति ज.।
५. हस्तमैत्रोत्तरासु इति ज.।
६. वापयेत् संयतोपि चेति ख. छ. ज. च।
७. नरे लग्ने इति झ.।
८. गुरोर्वारेऽथवा इति घ. ज. च।
९. ओं श्रीं धनदायेति ज.।
१०. "नवे वर्षे गुरोर्वारे अथ भार्गवसौम्ययोः" एष पाठोत्र छ. पुस्तकेधिकोऽस्ति।
११. सिंहतौलिगते इति ख.।
१२. कन्याराशिगते भानौ इति घ.।
१३. विशुद्धिश्चन्द्रसूर्ययोरिति ज.।
१४. कृष्णाष्टमीदलादूर्द्ध्वं यावच्छुक्लाष्टमीदलमिति ङ.।
१५. जीवे चन्द्रेन्द्रदैवतमिति ज.।
१६. इन्द्राद्यपाद इति ख. ग. च। हर्य्यद्यपादे इति ङ.।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सर्वं हेमसमन्दानं सर्वे ब्रह्मसमा द्विजाः । सर्वं गङ्गासमन्तोयं राहुग्रस्ते दिवाकरे ॥६५॥
ध्वाङ्क्षी महोदरी घोरा मन्दा मन्दाकिनी द्विजाः[1] ।
राक्षसी च क्रमेणार्कात्सङ्क्रान्तिर्नामभिः स्मृता ॥ ६६ ॥
बालवे कौलवे नागे तैतिले करणे यदि । उत्तिष्ठन् सङ्क्रमत्यर्कस्तदा लोकः[2] सुखी भवेत् ॥
गरे ववे वणिग्विष्टौ किन्तुघ्ने शकुनौ व्रजेत् । राज्ञो दोषेण लोकोऽयम्पीड्यते सम्पदा समं ॥
चतुष्पाद्विष्टिवाणिज्ये शयितः सङ्क्रमेद्रविः । दुर्भिक्षं राजपङ्ग्रामो दम्पत्योः संशयो भवेत् ॥
आधाने जन्मनक्षत्रे व्याधौ क्लेशादिकं भवेत् । कृत्तिकायान्नवदिनन्त्रिरात्रं रोहिणीषु च ॥
मृगशिरःपञ्चरात्रं आर्द्रासु[3] प्राणनाशनं । पुनर्वसौ च पुष्ये च सप्तरात्रं विधीयते ॥७१॥
नवरात्रं तथाश्लेषा श्मशानान्तं मघासु च । द्वौ मासौ पूर्वफाल्गुन्यामुत्तरासु त्रिपञ्चकम्[4] ॥
हस्ते तु दृश्यते चित्रा अर्द्धमासन्तु पीडनम् । मासद्वयन्तथा स्वातिर्विशाखा विंशतिर्दिनं ॥
मैत्रे चैव दशाहानि ज्येष्ठास्वेवार्द्धमासकम् । मूले न जायते मोक्षः पूर्वाषाढा त्रिपञ्चकम्[5] ॥
उत्तरा दिनविंशत्या द्वौ मासौ श्रवणेन च । धनिष्ठा चार्द्धमासञ्च वारुणे च दशाहकम् ॥७५॥
न च भाद्रपदे मोक्ष उत्तरासु त्रिपञ्चकम । रेवती दशरात्रञ्च अहोरात्रन्तथाश्विनौ ॥७६॥
भरण्यां प्राणहानिः स्याद् गायत्रीहोमतः शुभं । पञ्चधान्यतिलाज्याद्यैर्धेनुदानन्द्विजे शमं ॥७७॥
दशा सूर्य्यस्य षष्ठाब्दा इन्दोः पञ्चदशैव तु । अष्टौ वर्षाणि भौमस्य दशसप्तदशा बुधे ॥७८॥
दशाब्दानि दशा पङ्गोरूनविंशद्गुरोर्दशा । राहोर्द्वादशवर्षाणि भार्गवस्यैकविंशतिः ॥७९॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये ज्योतिःशास्त्रसारो नाम
एकविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ।

द्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

कालगणनं ।

अग्निरुवाच

कालः समागणो वक्ष्ये गणितं कालबुद्धये । कालः समागणोऽर्क्कघ्नो[6] मासैश्चैत्रादिभिर्युतः ॥१॥
द्विघ्नो द्विष्ठः सवेदः स्यात पञ्चाङ्गाष्टयुतो गुणः[7] । त्रिष्ठो मध्यो वसुगुणः पुनर्वेदगुणश्च सः ॥२॥

---

१. मन्दाकिनी तथेति ख. घ. छ. च । मन्दाकिनीति चेति झ. ।
२. तथा लोक इति ख. ।
३. आर्द्रायामिति ग. ज. च ।
४. उत्तरासु त्रिरात्रकमिति झ. ।
५. पूर्वाषाढादिनपञ्चकमिति क. । हस्ते तु दृश्यते इत्यादिः, पूर्वाषाढात्रिपञ्चकमित्यन्तः पाठः ङ. छ. पुस्तकद्वये नास्ति ।
६. समागणोर्कान्द इति ख. छ. च ।
७. पञ्चदशयुतो गण इति ज. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अष्टरन्ध्राग्निहीनः[1] स्यादधः सैकरसाष्टकैः । मध्यो हीनः षष्टिहतो[2] लब्धयुक्तस्तथोपरि ॥३॥
न्यूनः सप्तकृतो वारस्तदधस्तिथिनाडयः । सगुणो द्विगुणश्चोद्‌र्ध्वं त्रिभिरूनो गुणः पुनः ॥४॥
अधः खरामसंयुक्तो रसार्काष्टफलैर्युतः । अष्टाविंशच्छेषपिण्डस्तिथिनाड्या अधः स्थितः ॥५॥
गुणस्तिस्रभिरूनोर्द्धं द्वाभ्यां च गुणयेत पुनः । मध्ये रुद्रगुणः कार्य्यो ह्यधः सैको नवाग्निभि[1]ः॥
लब्धहीनो[2] भवेन्मध्यो द्वाविंशतिविवर्जितः । षष्टिशेषे ऋणं ज्ञेयं लब्धमूद्‌र्ध्वं विनिक्षिपेत् ॥७॥
सप्तविंशतिशेषस्तु ध्रुवो नक्षत्रयोगयोः । मासि मासि क्षिपेद् वारन्द्वात्रिंशद्‌घटिकास्तिथौ ॥
द्वे पिण्डे द्वे च नक्षत्रे नाड्य एकादश ह्यृणे । वारस्थाने तिथिन्दद्यात् सप्तभिर्भागमाहरेत्॥६॥
शेषवाराश्च सूर्य्याद्या घटिकासु च पातयेत् । पिण्डकेषु तिथिन्दद्याद्‌वरेच्चैव चतुर्द्दश ॥१०॥
ऋणं धनं धनमृणं क्रमाज् ज्ञेयं चतुर्द्दशे । प्रथमे त्रयोदशे पञ्च द्वितीयद्वादशे दश ॥११॥
पञ्चदशस्तृतीये च तथा चैकादशे स्मृतां । चतुर्थे दशमे चैव भवेदेकोनविंशतिः ॥१२॥
पञ्चमे नवमे चैव द्वाविंशतिरुदाहृताः । षष्ठाष्टमे त्वखण्डाः स्युश्चतुर्विंशतिरेव च ॥१३॥
सप्तमे पञ्चविंशः स्यात् खण्डशः पिण्डिकाद् भवेत्[3] ।
कर्कटादौ हरेद्राशिमृतुवेदत्रयैः क्रमात ॥ १४ ॥
तुलादौ प्रातिलोम्येन त्रयो वेदरसाः क्रमात् । मकरादौ दीयते च रसवेदत्रयः क्रमात् ॥१५॥
मेषादौ प्रातिलोम्येन त्रयो वेदरसाः क्रमात्[6] । खेषवः खयुगा मैत्रं मेषादौ विकला धनम् ॥
कर्कटे प्रातिलोम्यं स्याद्दणमेतत् तुलादिके । चतुर्गुणा तिथिर्ज्ञेया त्रिकलाश्चेह सर्वदा ॥१७॥
हन्याल्लिप्तागतागामिपिण्डसङ्ख्याफलान्तरैः ।
षष्ट्याप्तं प्रथमोच्चार्य्ये हानौ देयन्धने धनम् ॥ १८ ॥
द्वितीयोच्चरिते वर्गे वैपरीत्यमिति स्थितिः । तिथिर्द्विगुणिता कार्य्या षड्भागपरिवर्ज्जिता ॥
रविकर्म्मविपरीता तिथिनाडीसमायुता । ऋणे शुद्धे तु नाड्यः स्युरृणं शुध्येत नो यदा ॥
सषष्टिकं प्रदेयन्तत् षष्ट्याधिक्ये च तत्त्यजेत्[7]। नक्षत्रं तिथिमिश्रं स्याच्चतुर्भिर्गुणिता तिथिः ॥
तिथिस्त्रिभागसंयुक्ता ऋणेन च तथान्विता । तिथिरत्र चिता कार्य्या तद्वैदायोगशोधनं ॥
रविचन्द्रौ समौ कृत्वा योगो भवति निश्चलः । एकोना तिथिर्द्विगुणा सप्तभिन्ना कृतिर्द्विधा[8] ॥
तिथिश्च द्विगुणैकोना कृताङ्कैः करणन्निशि । कृष्णचतुर्द्दश्यन्ते शकुनिः पर्वणीह चतुष्पदं ॥
प्रथमे तिथ्यर्द्धतो हि किन्तुघ्नं प्रतिपन्मुखे ।
इत्यादिमहापुराणे आग्नेये कालगणनं नाम
द्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ।

---

१. अष्टचन्द्राग्निहीन इति ज. । २. षष्टिहृत इति ङ. ।
३. सैकेन सप्तकैरिति ख. ग. च । ४. ऋतुहीन इति ङ. ।
५. खण्डकः पिण्डकाद्भवेदिति ख. ग. घ. ङ. छ. ज. च ।
६. मकरादौ इत्यादिः, वेदरसाः क्रमादित्यन्तः पाठः छ. पुस्तके नास्ति ।
७. सन्त्यजेदिति घ. । ८. सप्तभिन्ना गतिर्द्विधेति ख. सप्तच्छिन्ना कृतिर्द्विधेति घ. ज. च ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

त्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

युद्धजयार्णवीयनानायोगाः ।

अग्निरुवाच

वक्ष्ये जयशुभाद्यर्थं सारं युद्धजयार्णवे । अइउएओ स्वराः स्युः क्रमान्नन्दादिका तिथिः ॥१॥
कादिहान्ता भौमरवी ज्ञसोमौ गुरुभार्गवौ । शनिर्दक्षिणनाड्यान्तु भौमार्कशनयः परे ॥२॥
खार्णवः खरसैर्गुण्यो रुद्रैर्भागं समाहरेत् । रसाहतन्तु तत् कृत्वा पूर्वभागेन भाजयेत् ॥३॥
वह्निभिश्चाहतं कृत्वा[1] रूपन्तत्रैव निक्षिपेत् । स्पन्दनं नाड्याः पलानि सप्राणस्पन्दनं पुनः ॥
अनेनैव तु मानेन उदयन्ति दिने दिने । स्फुरणैस्त्रिभिरुच्छ्वास उच्छ्वासैस्तु पलं स्मृतम् ॥
षष्टिभिश्च पलैर्लिप्ता लिप्तापष्टिस्त्वहर्निशं । पञ्चमार्द्धोदये बालकुमारयुववृद्धकाः ॥६॥
मृत्युर्येनोदयस्तेन चास्तमेकादशांशकैः । कुलागमे भवेद्भङ्गः समृत्युः पञ्चमोऽपि वा ॥७॥

स्वरोदयचक्रं ।

शनिचक्रे चार्द्धमासङ्ग्रहाणामुदयः क्रमात् । त्रिभागैः पञ्चदशभिः शनिभागस्तु मृत्युदः ॥८॥

शनिचक्रं ।

दशकोटिसहस्राणि अर्वुदान्यर्वुदं हरेत्[2] । त्रयोदशे च लक्षाणि प्रमाणं कूर्म्मरूपिणः ॥९॥
मघादौ कृत्तिकाद्यन्तस्तद्देशान्तः शनिस्थितौ ।

कूर्म्मचक्रं ।

राहुचक्रे च सप्तोर्द्ध्वमधः सप्त च संलिखेत्[3] ॥ १० ॥

वाय्वग्न्योश्चैव नैर्ऋत्ये पूर्णिमाग्नेयभागतः । अमावास्यां वायवे च राहुर्वै तिथिरूपकः ॥११॥
रकारं दक्षभागे तु हकारं वायवे लिखेत् । प्रतिपदादौ ककारादीन् सकारं नैर्ऋते पुनः ॥१२॥
राहोर्मुखे तु भङ्गः स्यादिति राहुरुदाहृतः । विष्टिरग्नौ[4] पौर्णमास्यां कराणीन्द्रे तृतीयकं ॥१३॥
घोरा याम्यान्तु सप्तम्यां दशम्यां रौद्रसौम्यगा । चतुर्दश्यान्तु वायव्ये चतुर्थ्यां वरुणाश्रये ॥
शुक्लाष्टम्यां दक्षिणे च एकादश्यां भृशन्त्यजेत् । रौद्रश्चैव तथा श्वेतो मैत्रः सारभटस्तथा ॥
सावित्रो विरोचनश्च जयदेवोऽभिजित्तथा[5] । रावणो विजयश्चैव नन्दी वरुण एव च ॥१५॥
यमसौम्यौ भवश्चान्ते दशपञ्चमुहूर्त्तकाः । रौद्रे रौद्राणि कुर्वीत श्वेते स्नानादिकं चरेत् ॥१७॥
मैत्रे कन्याविवाहादि शुभं सारभटे चरेत् । सावित्रे स्थापनाद्यं वा विरोचने नृपक्रिया ॥१८॥
जयदेवे जयं कुर्य्याद् रावणे रणकर्म्म च[6] । विजये कृषिवाणिज्यं पटबन्धं च नन्दिनि ॥१९॥

---

१. वह्निभिश्च हृतं कृत्वा इति घ. ।
२. अर्वुदान्यर्वुदं क्रमादिति झ. ।
३. सप्तरथांल्लिखेदिति झ. ।
४. विष्टिर्वह्नौ इति ग. ।
५. स्पन्दनमित्यादिः, जयदेवोभिजित्तथेत्यन्तः पाठः घ. पुस्तके नास्ति ।
६. जीवकर्म चेति ख. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वरुणे च तड़ागादि नाशकर्म्म यमे चरेत्। सौम्ये सौम्यादि कुर्व्वीत भवेल्लग्नमहर्दिवा॥२०॥
योगा नाम्ना विरुद्धाः स्युर्योगा नाम्नैव शोभनाः। राहुरिन्द्रात्समीरञ्च वायोर्दक्षं यमाच्छिवम्[१]॥
शिवादाप्यञ्जलादग्निरग्नेः सौम्यन्ततस्त्रयम्। ततश्च सङ्क्रमं हन्ति चतस्रो घटिका भ्रमन्॥

राहुचक्रं।

चण्डीन्द्राणी वाराही च मुशली गिरिकर्णिका। बला चातिबला क्षीरी मल्लिकाजातियूथिकाः॥
यथालाभं धारयेत्ताः श्वेतार्क्कश्च शतावरी। गुडूची वागुरी दिव्या ओषध्यो धारिता जये॥
ओं नमो भैरवाय[२] खड्गपरशुहस्ताय ओं हूं[३] विघ्नविनाशाय ओं हूं[४] फट्।
अनेनैव तु मन्त्रेण शिखाबन्धादिकृज्जये। तिलकञ्चाञ्जनञ्चैव धूपलेपनमेव च॥२५॥
स्नानपानानि तैलानि योगधूलिमतः शृणु। शुभगा मनःशिला तालं लाक्षारससमन्वितं॥
तरुणीक्षीरसंयुक्तो ललाटे तिलको वशे। विष्णुक्रान्ता च सर्पाक्षी सहदेवञ्च[४] रोचना॥२७॥
अजादुग्धेन संपिष्टं तिलको वश्यकारकः। प्रियङ्गु कुङ्कुमं कुष्ठं मोहनी तगरं घृतं॥२८॥
तिलको वश्यकृत्तच्च रोचना रक्तचन्दनं। निशा मनःशिला तालं प्रियङ्गुसर्षपास्तथा॥२९॥
मोहनी हरिता क्रान्ता सहदेवी शिखा तथा। मातुलङ्गरसैः पिष्टं ललाटे तिलको वशे।३०॥
सेन्द्राः सुरा वशं यान्ति किं पुनः क्षुद्रमानुषाः। मञ्जिष्ठा चन्दनं रक्तं कटुकन्दा विलासिनी॥
पुनर्नवासमायुक्तो लेपोऽयं भास्करो वशे। चन्दनं नागपुष्पञ्च मञ्जिष्ठा तगरं वचा[५]॥३२॥
लोध्रप्रियङ्गुरजनीमांसीतैलं वशङ्करं।

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये नानायोगा नाम
त्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः।

चतुर्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

युद्धजयार्णवीयज्योतिःशास्त्रसारः।

अग्निरुवाच

ज्योतिःशास्त्रादिसारञ्च वक्ष्ये युद्धजयार्णवे। विना मन्त्रौषधाद्यञ्च यथोमामीश्वरोऽब्रवीत्[५]॥

देव्युवाच।

देवैर्जिता दानवाश्च[६] येनोपायेन तद्वद। शुभाशुभविवेकाद्यं ज्ञानं युद्धजयार्णवं॥२॥

---

१. वायोर्याम्यं ततः शिवमिति घ.।
२. ओं नमो भगवते भैरवायेति ख. घ. च।
२. ३. ओं हूमिति ख. ज. च।
४. सहदेवा चेति ङ.।
५. मञ्जिष्ठा तगरन्तथेति क.। मञ्जिष्ठा भल्लकं वचेति छ.।
६. ईश्वरोऽवदत् इति घ.।
७. दानवाद्या इति ज.।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ईश्वर उवाच ।

मूलदेवेच्छया जाता शक्तिः पञ्चादशाक्षरा । चराचरं ततो जातं यामाराध्याखिलार्थवित्[1] ॥३॥
मन्त्रपीठं प्रवक्ष्यामि पञ्चमन्त्रसमुद्भवं । ते मन्त्राः सर्वमन्त्राणां जीविते मरणे स्थिते ॥४॥
ऋग्यजुःसामाथर्वाख्यवेदमन्त्राः क्रमेण ते । सद्योजातादयो मन्त्रा ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रकः॥५॥
ईशः सप्तशिखा देवाः शक्राद्याः पञ्च च स्वराः । अइउएओ कलाश्च मूलं ब्रह्मेति कीर्त्तितं ॥
काष्ठमध्ये यथा वह्निरप्रवृद्धो न दृश्यते । विद्यमाना तथा देहे शिवशक्तिर्न दृश्यते ॥७॥
आदौ शक्तिः समुत्पन्ना ओङ्कारस्वरभूषिता । ततो विन्दुर्महादेवि एकारेण व्यवस्थितः ॥
जातो नाद उकारस्तु नदते हृदि संस्थितः । अर्द्धचन्द्र इकारस्तु मोक्षमार्गस्य बोधकः ॥
अकारो व्यक्त उत्पन्नो भोगमोक्षप्रदः परः[2] । अकार ऐश्वरे भूमिर्निवृत्तिश्च कला स्मृता ॥

गन्धोनवीजः प्राणाख्य इडाशक्तिः स्थिरा स्मृता ।
इकारश्च प्रतिष्ठाख्यो रसो पालश्च पिङ्गला ॥ ११ ॥
क्रूरा शक्तिरीवीजः स्याद्रवीजोऽग्निरूपवान् ।
विद्या समाना गान्धारी शक्तिश्च दहनी स्मृता ॥ १२ ॥

प्रशान्तिर्वायुपस्पर्शो यश्चोदानश्चला क्रिया । ओङ्कारः शान्त्यतीताख्यः खशब्दयूथपाणिनः ॥
पञ्च वर्गाः स्वरा जाताः कुजज्ञगुरुभार्गवाः। शनिः क्रमादकाराद्याः ककाराद्यास्त्वधः स्थिताः॥
एतन्मूलमतः सर्वं ज्ञायते सचराचरं । विद्यापीठं प्रवक्ष्यामि प्रणवः शिव ईरितः ॥१५॥
उमा सोमः स्वयं शक्तिर्वामा ज्येष्ठा च रौद्रापि। ब्रह्मा विष्णुः क्रमाद्रुद्रो गुणाः सर्गादयस्त्रयः॥
रत्ननाडीत्रयञ्चैव[3] स्थूलः सूक्ष्मः परोऽपरः । चिन्तयेच्छ्वेतवर्णन्तं सुषुम्नानं परामृतं ॥१७॥
प्लाव्यमानं यथात्मानं चिन्तयेत्तं दिवानिशं । अजरत्वं भवेद्देवि शिवत्वमुपगच्छति[4] ॥१८॥
अङ्गुष्ठादौ न्यसेदङ्गान्नेत्रं मध्येऽथ देहके । मृत्युञ्जयं ततः प्राच्य रणादौ विजयी भवेत् ॥

शून्यो निरालयः शब्दः स्पर्शं तिर्यङ्नतं स्पृशेत् ।
रूपस्योद्र्ध्वगतिः प्रोक्ता जलस्याधः समाश्रिता ॥ २० ॥

सर्वस्थानविनिर्मुक्तो गन्धो मध्ये च मूलकं । नाभिमूले[5] स्थितं कन्दं शिवरूपन्तु मण्डितं॥
शक्तिव्यूहेन सोमोऽर्को हरिस्तत्र व्यवस्थितः । दशवायुसमोपेतं पञ्चतन्मात्रमण्डितं ॥२२॥
कालानलसमाकारं प्रस्फुरन्तं शिवात्मकं। तज्जीवं जीवलोकस्य[6] स्थावरस्य चरस्य च ॥२३॥
तस्मिन्नष्टे[7] मृतं मन्ये मन्त्रपीठेऽनिलात्मकं ।

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये युद्धजयार्णवे ज्योतिःशास्त्रसारो नाम
चतुर्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ।

---

१. यामाराध्याखिलात्मविदिति ख. ग. च । २. भोगमोक्षप्रदः शुभ इति ज. ।
३. बहुनात्रयञ्चैवेति क. ङ. च । ४. शिवत्वमधिगच्छतीति ज. ।
५. नाड़ीमूले इति ख. ।
६. तत्र वीजं जीवनायेति ख. छ. च । तत्र जीवं जीवलोक इति ङ । ७. तस्मिन्नस्ते इति घ. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पञ्चविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

युद्धजयार्णवीयनानाचक्राणि ।

ईश्वर उवाच

ओं ह्रीं कर्णमोटनि बहुरूपे बहुदंष्ट्रे हुं फट्[1] ओं हः ओं ग्रस ग्रस कृन्त कृन्त छक छक हुं फट्[2] नमः ।

पठ्यमानो ह्ययं मन्त्रः क्रुद्धः संरक्तलोचनः । मारणे पातने वापि मोहनोच्चाटने भवेत् ॥१॥

कर्णमोटी महाविद्या सर्ववर्णेषु रक्षिका ।

नानाविद्या ।

पञ्चोदयं प्रवक्ष्यामि स्वरोदयसमाश्रितं ॥ २ ॥

नाभिहृद्यन्तरं यावत्तावच्चरति मारुतः । उच्चाटयेद्रणादौ तु कर्णाक्षीणि प्रभेदयेत् ॥३॥

करोति साधकः क्रुद्धो जपहोमपरायणः । हृदयात्पायुकं कण्ठं ज्वरदाहारिमारणे[3] ॥४॥

कण्ठोद्भवो रसो वायुः शान्तिकं पौष्टिकं रसं ।
दिव्यं स्तम्भं समाकर्षं गन्धो नासान्तिको ध्रुवः ॥ ५ ॥

गन्धलीनं मनः कृत्वा स्तम्भयेन्नात्र संशयः। स्तम्भनं कीलनाद्यञ्च करोत्येव हि साधकः ॥६॥

चण्डघण्टा कराली च सुमुखी दुर्मुखी तथा। रेवती प्रथमा घोरा वायुचक्रेषु ता यजेत् ॥७॥

उच्चाटकारिका देव्यः स्थितास्तेजसि संस्थिताः ।
सौम्या च भीषणी देवी जया च विजया तथा ॥ ८ ॥

अजिता चापराजिता महाकोटी च रौद्रया। शुष्ककाया प्राणहरा रसचक्रे स्थिता अमूः ॥९॥

विरूपाक्षी परा दिव्यास्तथा चाकाशमातरः । संहारी जातहारी च दंष्ट्राला शुष्करेवती ॥१०॥

पिपीलिका पुष्टिहरा महापुष्टिप्रवर्द्धना । भद्रकाली सुभद्रा च भद्रभीमा सुभद्रिका ॥११॥

स्थिरा च निष्ठुरा दिव्या निष्कम्पा गदिनी तथा। द्वात्रिंशन्मातरश्चक्रे अष्टाष्टक्रमशः स्थिताः॥

एक एव रविश्चन्द्र एकश्चैकैकशक्तिका । भूतभेदेन तीर्थानि[4] यथा तोयं महीतले ॥१३॥

प्राण एको मण्डलैश्च भिद्यते भूतपञ्जरे। वामदक्षिणयोगेन दशधा सम्प्रवर्त्तते ॥१४॥

विन्दुमुण्डविचित्रञ्च तत्त्ववस्त्रेण वेष्टितं। ब्रह्माण्डेन[5] कपालेन पिवेत परमामृतं ॥१५॥

पञ्चवर्गबलाद्युद्धे जयो भवति तच्छृणु । अआकचटतपयाः श आद्यो वर्ग ईरितः ॥१६॥

इईखछठथफराः पो वर्गश्च द्वितीयकः। उऊगजडदवलाः सो वर्गश्च तृतीयकः ॥१७॥

एऐघझढधभवा हो वर्गश्च चतुर्थकः। ओ औ अं अः ङञणनमा मो वर्गः पञ्चमो भवेत् ॥१८॥

१.,२. ओं हुं फडिति ख. । ३. ज्वरदाहनिवारणे इति घ. ।
४. भूतभेदेन भिन्नानि इति ङ. । तानि भेदेन भिन्नानि इति घ. । ५. ब्रह्मदण्डे इति ङ. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वर्णाश्चाभ्युदये नृणां चत्वारिंशच्च पञ्च च । बालः कुमारो युवा स्याद्वृद्धो मृत्युश्च नामतः ।।
आत्मपीडा शोषकः स्यादुदासीनश्च कालकः । कृत्तिका प्रतिपद्भौम आत्मनो लाभदः स्मृतः ।।
षष्ठी भौमो मघा पीडा आर्द्रा चैकादशी कुजः । मृत्युर्मघा द्वितीया ज्ञो लाभश्चार्द्रा च सप्तमी ।।
बुधे हानिर्भरणी ज्ञः श्रवणं काल ईदृशः । जीवो लाभाय च भवेत्तृतीया पूर्वफल्गुनी ।।२२।।

जीवोऽष्टमी[1] धनिष्ठार्द्रा जीवोऽश्लेषा त्रयोदशी ।
मृत्यौ शुक्रश्चतुर्थी स्यात् पूर्वभाद्रपदा श्रिये ।। २३ ।।

पूर्व्वाषाढ़ा च नवमी शुक्रः पीडाकरो भवेत् । भरणी भूतजा शुक्रो यमदण्डो हि हानिकृत् ।।

कृत्तिका पञ्चमी मन्दो लाभाय तिथिरीरिता ।
अश्लेषा दशमी मन्दो योगः पीडाकरो भवेत्[2] ।। २५ ।।

मघा शनिः पूर्णिमा च योगो मृत्युकरः स्मृतः ।

तिथियोगः ।

पूर्वोत्तराग्निनैर्ऋत्यदक्षिणानिलचन्द्रमाः[3] ।। २६ ।।

ब्रह्माद्याः स्युर्दृष्टयः स्युः[4] प्रतिपन्नवमीमुखाः ।
राशिभिः सहिता दृष्टा ग्रहाद्याः सिद्धये स्मृताः ।। २७ ।।

मेषाद्याश्चतुरः कुम्भा जयः पूर्णेऽन्यथा मृतिः । सूर्य्यादिरिक्ता पूर्णा च क्रमादेवम्प्रदापयेत् ।।
रणे सूर्य्ये फलं नास्ति सोमे भङ्गः प्रशाम्यति । कुजेन कलहं विद्याद्बुधः कामाय वै गुरुः ।।
जयाय मनसे[5] शुक्रो मन्दे भङ्गो रणे भवेत् । देयानि पिङ्गलाचक्रे सूर्यगानि च भानि हि ।।
मुखे नेत्रे ललाटेऽथ शिरोहस्तोरुपादके । पादे मृतिस्त्रिऋक्षे स्यात्त्रीणि पक्षेऽर्थनाशनम् ।।
मुखस्थे च भवेत्पीडा शिरस्थे कार्यनाशनम् । कुक्षिस्थिते फलं स्याच्च राहुचक्रं वदाम्यहम् ।।
इन्द्राच्च नैर्ऋतं गच्छेन्नैर्ऋतात्सोममेव च । सोमाद्धुताशनं वन्हेराप्यमाप्याच्छिवालयं ।।
रुद्राद्यमं यमाद्वायुं वायोश्चन्द्रं व्रजेत् पुनः । भुङ्क्ते चतस्रो नाड्यस्तु राहुपृष्ठे जयो रणे ।।
अग्रतो मृत्युमाप्नोति तिथिराहुं वदामि ते । आग्नेयादिशिवान्तं च पूर्णिमामादितः प्रिये ।।
पूर्व्वे कृष्णाष्टमीं यावत् राहुदृष्टौ भयो भवेत् । ऐशान्याग्नेयनैर्ऋत्यवायव्ये फणिराहुकः ।।
मेषाद्या दिशि पूर्व्वादौ यत्रादित्योऽग्रतो मृतिः । तृतीया कृष्णपक्षे तु सप्तमी दशमी तथा ।।
चतुर्दशी तथा शुक्ले चतुर्थ्येकादशी तिथिः । पञ्चदशी विष्टयः स्युः पूर्णिमाग्नेयवायवे ।।३८।।
अकचटतपयशा वर्गाः सूर्य्यादयो ग्रहाः । गृध्रोलूकश्येनकाश्च पिङ्गलः कौशिकः क्रमात् ।।३९।।
सारसश्च मयूरश्च गोरङ्कुः पक्षिणः स्मृताः । आदौ साध्यो हुतो मन्त्र[6] उच्चाटे पल्लवः स्मृतः ।।
वश्ये ज्वरे तथाकर्षे प्रयोगः सिद्धिकारकः । शान्तौ प्रीतौ नमस्कारो वौषट् पुष्टौ वशादिषु ।।

---

१. जीवेऽष्टमीति ख. । २. भरणीत्यादिः, पीडाकरो भवेदित्यन्तः पाठः छ. पुस्तके नास्ति ।
३. दक्षाग्न्यनिलचन्द्रमा इति घ. । ४. ब्रह्माद्याः स्युस्त्रिदृष्टाः स्युरिति ख. ।
५. मणये इति ख, ङ, च । ६. आदौ हुताशनो मन्त्र इति ख. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हुं मृत्यौ[१] प्रीतिसन्नाशे विद्वेषोच्चाटने च फट्।
वषट् सुते च दीप्त्यादौ[२] मन्त्राणां जातयश्च षट्॥ ४२॥

ओषधीः सम्प्रवक्ष्यामि महारक्षाविधायिनीः। महाकाली तथा चण्डी वाराही चेश्वरी तथा॥
सुदर्शना तथेन्द्राणी गात्रस्था रक्षयन्ति तम्। बला चातिबला भीरुर्मुसली सहदेव्यपि॥४४॥
जाती च मल्लिका यूथी गारुडी भृङ्गराजकः। चक्ररूपा महौषध्यो धारिता विजयादिदाः॥
ग्रहणे च महादेवि उद्धृताः शुभदायिकाः। मृदा तु कुञ्जरङ्कृत्वा सर्वलक्षणलक्षितम्॥४६॥
तस्य पादतले कृत्वा स्तम्भयेच्छत्रुमात्मनः। नगाग्रे चैकवृक्षे च वज्राहतप्रदेशके॥४७॥
वल्मीकमृदमाहृत्य मातरौ योजयेत्ततः।

ओं नमो महाभैरवाय विकृतदंष्ट्रोग्ररूपाय पिङ्गलाक्षाय त्रिशूलखड्गधराय[३] वौषट्।

पूजयेत् कर्दमं देवि स्तम्भयेच्छस्त्रजालकम्॥ ४८॥

अग्निकार्य्यं प्रवक्ष्यामि रणादौ जयवर्द्धनम्।
श्मशाने निशि काष्ठाग्नौ नग्नो मुक्तशिखो नरः॥ ४९॥

दक्षिणास्यस्तु जुहुयान्नृमांसं रुधिरं विषम्। तुषास्थिखण्डमिश्रन्तु शत्रुनाम्ना शताष्टकम्॥

ओं नमो भगवति कौमारि लल लल लालय लालय घण्टादेवि अमुकं मारय मारय सहसा नमोऽस्तुते भगवति विद्ये स्वाहा।

अनया विद्यया होमाद्बन्धत्वञ्जायते रिपोः[४]।

ओं वज्रकाय वज्रतुण्ड कपिलपिङ्गल करालवदन ऊर्द्ध्वकेश महाबल रक्तमुख[५] तडिज्जिह्व महारौद्र दंष्ट्रोत्कट कह करालिन महादृढप्रहार लङ्केश्वरसेतुबन्ध शैलप्रवाह गगनचर एह्येहि भगवन्महाबलपराक्रम भैरवो ज्ञापयति एह्येहि महारौद्र दीर्घलाङ्गूलेन अमुकं वेष्टय वेष्टय जम्भय जम्भय खन खन वैते हूं फट्[६]।

अष्टत्रिंशच्छतन्देवि हनुमान् सर्व्वकर्म्मकृत्॥ ५१॥

पटे हनूमत्सन्दर्शनाद्भङ्गमायान्ति शत्रवः।

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये युद्धजयार्णवे नानाचक्राणि नाम
पञ्चविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः।

---

१. हुं मृतौ इति ख.। २. वषट् लाभे च दीप्त्यादाविति घ. छ. च.।
३. त्रिशूलखट्वाङ्गधरायेति ख. ग. घ. छ. च। त्रिशूलिने खड्गखट्वाङ्गधरायेति ज.।
४. दग्धत्वं जायते क्षणात् इति घ. ज. च। ५. वज्रमुख इति घ.।
६. हुं फडिति ख.।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

षड्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

नक्षत्रनिर्णयः ।

ईश्वर उवाच

वक्ष्याम्यृक्षात्मकं पिण्डं शुभाशुभविबुद्धये । यस्मिन्नृक्षे भवेत् सूर्य्यस्तदादौ त्रीणि मूर्द्धनि[१]॥
एकम्मुखे द्वयन्नेत्रे हस्तपादे चतुष्टयं । हृदि पञ्च सुते जानौ आयुर्बृद्धिं विचिन्तयेत् ॥२॥
शिरस्थे तु भवेद्राज्यं पिण्डतो वक्त्रयोगतः । नेत्रयोः कान्तसौभाग्यं हृदये द्रव्यसङ्ग्रहः ॥३॥
हस्ते धृतं तस्करत्वङ्गतासुरध्वगः[२] पदे । कुम्भाष्टके भानि लिख्य[३] सूर्य्यकुम्भस्तु रिक्तकः ॥
अशुभः सूर्यकुम्भः स्याच्छुभः पूर्व्वादिसंस्थितः । फणिराहुं[४] प्रवक्ष्यामि जयाजयविवेकदं ॥
अष्टाविंशांल्लिखेद्बिन्दून् पुनर्भाज्यस्त्रिभिस्त्रिभिः । अथ ऋक्षाणि चत्वारि रेखास्तत्रैव दापयेत् ॥
यस्मिन्नृक्षे स्थितो राहुस्तदृक्षं फणिमूर्द्धनि[५] । तदादि विन्यसेद् भानि सप्तविंशक्रमेण तु ॥
वक्त्रे सप्तगते ऋक्षे म्रियते सर्व आहवे । स्कन्धे भङ्गं विजानीयात्सप्तभेषु च मध्यतः ॥८॥
उदरस्थेन[६] पूजा च जयश्चैवात्मनस्तथा । कटिदेशे स्थिते योध आहवे हरते परान् ॥९॥
पुच्छस्थितेन कीर्त्तिः स्याद्राहुदृष्टे च भे मृतिः । पुनरन्यं प्रवक्ष्यामि रविराहुबलन्तव ॥१०॥
रविः शुक्रो बुधश्चैव सोमः सौरिर्गुरुस्तथा[७] । लोहितः संहिकश्चैव एते यामार्द्धभागिनः ॥
सौरिं रविञ्च राहुञ्च कृत्वा यत्नेन पृष्ठतः । स जयेत् सैन्यसङ्घातं द्यूतमध्वानमाहवं ॥१२॥
रोहिणी चोत्तरास्तिस्रो मृगः पञ्च स्थिराणि हि । अश्विनी रेवती स्वाती धनिष्ठा शततारका ॥
क्षिप्राणि पञ्चभान्येव यात्रार्थी चैव[८] योजयेत् । अनुराधाहस्तमूलं मृगः पुष्यं पुनर्वसुः ॥
सर्वकार्य्येषु चैतानि ज्येष्ठा चित्रा विशाखया । पूर्व्वास्तिस्रोऽग्निर्भरणी मघार्द्राश्लेषादारुणाः॥
स्थावरेषु स्थिरं ह्यृक्षं यात्रायां क्षिप्रमुत्तमं । सौभाग्यार्थे मृदून्येव उग्रेपूग्रन्तु कारयेत् ॥१६॥
दारुणे दारुणं कुर्य्यादूद्ध्वये चाधोमुखादिकं । कृत्तिका भरण्यश्लेषा विशाखा पितृनैरृतम् ॥
पूर्व्वात्रयमधोवक्त्रं कर्म्म चाधोमुखञ्चरेत्[९] । एषु कूपतडागादि विद्याकर्म्म भिषक्क्रिया ॥
स्थापनञ्चौकाभूपादिविधानं[१०] खननन्तथा । रेवती चाश्विनी चित्रा हस्ता स्वाती पुनर्वसु ॥
अनुराधा मृगो ज्येष्ठा नव वै पार्श्वतोमुखाः । एषु राज्याभिषेकञ्च पट्टबन्धङ्गजाश्वयोः ॥२०॥
आरामगृहप्रासादं प्राकारं क्षेत्रतोरणं । ध्वजचिह्नपताकाश्च[११] सर्व्वानेतांश्च कारयेत् ॥२१॥

---

१. त्रीणि मस्तके इति ज. । २. गतायुरध्वगः पदे इति ख. ।
३. भानि लिखेदिति घ. ज. च. । ४. कालराहुमिति ङ. ।
५. कालमूर्द्धनीति ङ. ज. च । ६. उदरस्थे चेति ख. ।
७. कटिदेश इत्यादिः, सौरिर्गुरुस्तथेत्यन्तः पाठः घ. पुस्तके नास्ति ।
८. यात्राध्वनि चेति ख. घ. च । ९. चाधोमुखं भवेदिति ख. ।
१०. नौकाद्यूतादिविधानमिति ग. घ. ङ. च । ११. वज्रचिह्नपताकाश्चेति ज. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

द्वादशी सूर्य्यदग्धा तु चन्द्रेणैकादशी तथा । भौमेन दशमी दग्धा तृतीया वै बुधेन च ॥२२॥
षष्ठी च गुरुणा दग्धा द्वितीया भृगुणा तथा । सप्तमी सूर्य्यपुत्रेण त्रिपुष्करमथो वदे ॥२३॥
द्वितीया द्वादशी चैव सप्तमी वै तृतीयया[1]। रविर्भौमस्तथा[2] शौरिः षडेतास्तु त्रिपुष्कराः[3] ॥२४॥
विशाखा कृत्तिका चैव उत्तरे द्वे पुनर्व्वसुः । पूर्व्वभाद्रपदा चैव षडेते तु त्रिपुष्कराः ॥२५॥
लाभो हानिर्जयो वृद्धिः पुत्रजन्म तथैव च । नष्टं भ्रष्टं विनष्टं वा तत्सर्व्वन्त्रिगुणं[4] भवेत् ॥२६॥
अश्विनी भरणी चैव अश्लेषा पुष्यमेव च । स्वातिश्चैव विशाखा च श्रवणं सप्तमं पुनः ॥२७॥
एतानि दृढ़चक्षूंषि पश्यन्ति च दिशो दश । यात्रासु दूरगस्यापि आगमः पुण्यगोचरे ॥२८॥
आषाढ़े रेवती चित्रा केकराणि पुनर्व्वसुः । एषु पञ्चसु ऋक्षेषु[5] निर्गतस्यागमो भवेत् ॥२६॥
कृत्तिका रोहिणी सौम्यं फल्गुनी च मघा तथा । मूलं ज्येष्ठानुराधा च धनिष्ठा शततारकाः ॥३०॥
पूर्व्वभाद्रपदा चैव चिपिटानि च तानि हि[6] । अध्वानं व्रजमानस्य पुनरेवागमो भवेत् ॥३१॥
हस्त उत्तरभाद्रश्च आर्द्राषाढा तथैव च । नष्टार्थाश्चैव दृश्यन्ते सङ्ग्रामो नैव विद्यते ॥३२॥
पुनर्वक्ष्यामि गण्डान्तमृक्षमध्ये यथा स्थितम् । रेवत्यन्ते चतुर्नाडी[7] अश्विन्यादिचतुष्टयम् ॥
उभयोर्यामिमात्रन्तु वर्जयेत्तत् प्रयत्नतः । अश्लेषान्ते मघादौ तु घटिकानां चतुष्टयम् ॥३४॥
द्वितीयं गण्डमाख्यातं तृतीयं भैरवि शृणु । ज्येष्ठाभमूलयोर्म्मध्ये उग्ररूपन्तु यामकम् ॥३५॥
न कुर्य्याच्छुभकर्म्माणि यदीच्छेदात्मजीवितम् । दारके जातकाले च[8] म्रियेते पितृमातरौ ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये नक्षत्रनिर्णयो नाम षड्विंशत्यधिक-
शततमोऽध्यायः ।

सप्तविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

नानाबलानि ।

ईश्वर[9] उवाच

विष्कुम्भे घटिकास्तिस्रः शूले पञ्च विवर्जयेत्[10] ।
षट् षट्[11] गण्डेऽतिगण्डे च नव व्याघातवज्रयोः ॥ १ ॥

---

१. तृतीयकेति ङ. ज. च ।
२. गुरुर्भौमस्तथेति क. ग. घ. ङ. च ।
३. षडेतास्त्रिषु पुष्करा इति क. ख. ङ. छ. च ।
४. तत्सर्वं द्विगुणमिति ख. छ. च ।
५. केकरेषु च ऋक्षेषु इति छ. ।
६. चिपिटानि च भानि हि इति क. छ. च ।
७. रेवत्यन्ते चतुष्कन्त इति ख. ग. घ. ङ. छ. ज. च ।
८. जातके चापीति ख. ।
९. अग्निरुवाचेति छ.
१०. पञ्च च वर्जयेदिति ख. ग. घ. ङ. च ।
११. षट् च गण्डेऽतिगण्डे चेति ख. घ. छ. च । सप्त गण्डेतिगण्डे चेति ग. ङ.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

परिघे च व्यतीपाते उभयोरपि तद्दिनम् । वैधृते तद्दिनञ्चैव यात्रायुद्धादिकन्त्यजेत् ॥३॥
ग्रहैः शुभाशुभं वक्ष्ये देवि मेषादिराशितः[1] । चन्द्रशुक्रौ च जन्मस्थौ वर्जितौ शुभदायकौ ।।
द्वितीयो मङ्गलोऽथार्कः सौरिश्चैव तु सैंहिकः । द्रव्यनाशमलाभञ्च आहवे भङ्गमादिशेत् ॥४॥

सोमो बुधो भृगुर्जीवो द्वितीयस्थाः शुभावहाः ।
तृतीयस्थो यदा भानुः शनिर्भौमो भृगुस्तथा ॥ ५ ॥

बुधश्चैवेन्दू राहुश्च सर्वे ते फलदा ग्रहाः । बुधशुक्रौ चतुर्थौ तु शेषाश्चैव भयावहाः ॥६॥

पञ्चमस्थो यदा जीवः शुक्रः सौम्यश्च चन्द्रमाः ।
ददेत[2] चेप्सितं लाभं षष्ठे स्थाने शुभो रविः ॥ ७ ॥

चन्द्रः सौरिर्म्मङ्गलश्च ग्रहा देवि स्वराशितः । बुधश्च शुभदः षष्ठे त्यजेत् षष्ठं गुरुं भृगुं ॥
सप्तमोऽर्कः शनिर्भौमो राहुर्हान्यै सुखाय च । जीवो भृगुश्च सौम्यश्च ज्ञशुक्रौ चाष्टमौ शुभौ ॥
शेषा ग्रहास्तथा हान्यै ज्ञभृगू नवमौ शुभौ । शेषा हान्यै च लाभाय दशमौ भृगुभास्करौ ॥१०॥
शनिर्भौमश्च राहुश्च चन्द्रः सौम्यः शुभावहः । शुभाश्चैकादशे सर्व्वे वर्जयेद्दशमे[3] गुरुम् ॥११॥

बुधशुक्रौ द्वादशस्थौ शेषान् द्वादशगांस्त्यजेत् ।
अहोरात्रे द्वादश स्यू राशयस्तान् वदाम्यहम् ॥ १२ ॥

मीनो मेषोऽथ मिथुनञ्चतस्रो नाडयो वृषः । षट् कर्कसिंहकन्याश्च तुला पञ्च च वृश्चिकः ॥
धनुर्नक्रो घटश्चैव सूर्य्यगो राशिराद्यकः । चरस्थिरद्विःस्वभावा मेषाद्याः स्युर्यथाक्रमम् ॥
कुलीरो मकरश्चैव तुलामेषादयश्चराः । चरकार्य्यं जयं काममाचरेच्च शुभाशुभम् ॥१५॥

स्थिरो वृषो हरिः कुम्भो वृश्चिकः स्थिरकार्य्यके ।
शीघ्रः समागमो नास्ति रोगार्त्तो नैव मुच्यते ॥ १६ ॥

मिथुनं कन्यका मीनो धनुश्च द्विःस्वभावकः । द्विःस्वभावाः शुभाश्चैते सर्वकार्य्येषु नित्यशः ॥
यात्रावाणिज्यसङ्ग्रामे विवाहे राजदर्शने । वृद्धिं जयन्तथा लाभं युद्धे जयमवाप्नुयात् ॥१८॥
अश्विनी विंशताराश्च तुरगस्याकृतिर्यथा । यद्यत्र कुरुते वृष्टिमेकरात्रं प्रवर्षति ॥१९॥
यमभे तु यदा वृष्टिः पक्षमेकन्तु वर्षति ।

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये युद्धजयार्णवे नानाबलानि नाम
सप्तविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ।

---

१. मेषादिराशिभिरिति ज. । २. ददातीति ख. ।
३. वर्जयेद्दशममिति ख. ग. घ. ङ. च ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अष्टाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

कोटचक्रम् ।

ईश्वर उवाच

कोटचक्रं प्रवक्ष्यामि चतुरस्रं पुरं लिखेत् । चतुरस्रं पुनर्मध्ये तन्मध्ये चतुरस्रकम् ॥१॥
नाडीत्रितयचिह्नाढयं मेषाद्याः पूर्वदिङ्मुखाः । कृत्तिका पूर्वभागे तु अश्लेषाग्नेयगोचरे ॥
भरणी दक्षिणे देया विशाखां नैरृते न्यसेत् । अनुराधां पश्चिमे च श्रवणं वायुगोचरे ॥३॥
धनिष्ठाञ्चोत्तरे न्यस्य ऐशान्यां रेवतीं तथा । वाह्यनाड्यां स्थितान्येव अष्टौ ह्यृक्षाणि यत्नतः ॥
रोहिणीपुष्यफलगुन्यः स्वाती ज्येष्ठा क्रमेण तु ।
अभिजिच्छततारा तु अश्विनी मध्यनाडिका ॥ ५ ॥
कोटमध्ये तु या नाड़ी कथयामि प्रयत्नतः । मृगश्चाभ्यन्तरे पूर्वं तस्याग्नेये पुनर्वसुः ॥६॥
उत्तराफलगुनी याम्ये चित्रा नैरृते तसंस्थिता । मूलन्तु पश्चिमे न्यस्योत्तरापाढ़ान्तु वायवे ॥७॥
पूर्वभाद्रपदा सौम्ये रेवती ईशगोचरे । कोटस्याभ्यन्तरे नाडी ह्यृक्षाष्टकसमन्विता ॥८॥
आर्द्रा हस्ता तथापाढा चतुष्कञ्चोत्तरात्रिकम् ।
मध्ये स्तम्भचतुष्कन्तु दद्यात् कोटस्य कोटरे ॥ ९ ॥
एवं दुर्गस्य विन्यासं वाह्ये स्थानं दिशाधिपात् ।
आगन्तुको यदा योद्धा ऋक्षवान् स्यात्फलान्वितः ॥ १० ॥
कोटमध्ये ग्रहाः सौम्या यदा ऋक्षान्विताः पुनः ।
जयं मध्यस्थितानान्तु भङ्गमागामिनो विदुः ॥ ११ ॥
प्रवेशभे प्रवेष्टव्यं निर्गमभे च निर्गमेत् । भृगुः सौम्यस्तथा भौम ऋक्षान्तं सकलं यदा ॥१२॥
तदा भङ्गं विजानीयाज्जयमागन्तुकस्य च । प्रदेशर्क्षचतुष्के तु सङ्ग्रामञ्चारभेद् यदा ॥
तदा सिद्ध्यति तद्दुर्गं न कुर्य्यात्तत्र विस्मयम् ।

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये युद्धजयार्णवे कोटचक्रं नामाष्टाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ।

ऊनत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

अर्घकाण्डम् ।

ईश्वर उवाच

अर्घमानं प्रवक्ष्यामि उल्कापातोऽथ भूश्चला । निर्घातो ग्रहणं वेशो दिशां दाहो भवेद्यदा ॥१॥
लक्षयेन्मासि मास्येवं यद्येते स्युश्च चैत्रके । अलङ्कारादि सङ्गृह्य षड्भिर्म्मासैश्चतुर्गुणम् ॥
वैशाखे चाष्टमे मासि षड्गुणं सर्वसङ्ग्रहं । ज्यैष्ठे मासि तथापाढे यवगोधूमधान्यकैः ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

श्रावणे घृततैलाद्यैराश्विने वस्त्रधान्यकैः । कार्त्तिके धान्यकैः क्रीतैर्म्मासे स्यान्मार्गशीर्षके ॥४॥
पुष्ये कुङ्कुमगन्धाद्यैर्ल्लाभो धान्यैश्च माघके । गन्धाद्यैः फाल्गुने क्रीतैरर्घकाण्डमुदाहृतम् ॥५॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये अर्घकाण्डं नाम ऊनत्रिंशदधिक-
शततमोऽध्यायः ।

त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

घातचक्रम् ।

ईश्वर उवाच

मण्डलानि प्रवक्ष्यामि चतुर्द्धा विजयाय हि । कृत्तिका च मघा पुष्यं पूर्व्वा चैव तु फल्गुनी ॥
विशाखा भरणी चैव पूर्वभाद्रपदा तथा । आग्नेयमण्डलं भद्रे तस्य वक्ष्यामि लक्षणं ॥२॥
यद्यत्र चलते वायुर्व्वेष्टनं शशिसूर्य्ययोः । भूमिकम्पोऽथ निर्घातो ग्रहणं चन्द्रसूर्य्ययोः ॥३॥
धूमज्वाला दिशां दाहः केतोश्चैव प्रदर्शनं । रक्तवृष्टिश्चोपतापः पाषाणपतनन्तथा ॥४॥
नेत्ररोगोऽतिसारश्च अग्निश्च प्रबलो भवेत् । स्वल्पक्षीरास्तथा गावः स्वल्पपुष्पफला द्रुमाः ॥
विनाशश्चैव शस्यानां स्वल्पवृष्टिं विनिर्दिशेत् ।
चातुर्व्वर्णाः प्रपीड्यन्ते क्षुधार्त्ता अखिला नराः ॥ ६ ॥
सैन्धवा यामुनाश्चैव गुर्ज्जका भोजवाह्लिकाः । जालन्धरं च काश्मीरं सप्तमञ्चोत्तरापथम् ॥
देशाश्चैते विनश्यन्ति तस्मिन्नुत्पातदर्शने । हस्ता चित्रा मघा स्वाती मृगो वाथ पुनर्वसुः ॥
उत्तराफल्गुनी चैव अश्विनी च तथैव च ।
यदात्र भवते[१] किञ्चिद्वायव्यन्तं विनिर्द्दिशेत् ॥ ९ ॥
नष्टधर्म्माः प्रजाः सर्व्वा हाहाभूता विचेतसः । डाहलः कामरूपश्च कलिङ्गः कोशलस्तथा ॥
अयोध्या च अवन्ती च नश्यन्ते कोङ्कणान्ध्रकाः । अश्लेषा चैव मूलन्तु पूर्व्वाषाढा तथैव च ॥
रेवती वारुणं ह्यृक्षन्तथा भाद्रपदोत्तरा । यदात्र चलते[२] किञ्चिद्वारुणं तं विनिर्द्दिशेत् ॥१२॥
बहुक्षीरघृता गावो बहुपुष्पफला द्रुमाः । आरोग्यं तत्र जायेत बहुशस्या च मेदिनी ॥१३॥
धान्यानि च समर्घानि सुभिक्षं पार्थिवं भवेत् । परस्परं नरेन्द्राणां सङ्ग्रामो दारुणो भवेत् ॥
ज्येष्ठा च रोहिणी चैव अनुराधा च वैष्णवम् । धनिष्ठा चोत्तराषाढा अभिजित् सप्तमन्तथा ॥
यदात्र चलते[३] किञ्चिन माहेन्द्रं तं विनिर्दिशेत् ।
प्रजाः समुदितास्तस्मिन् सर्व्वरोगविवर्ज्जिताः ॥ १६ ॥
सन्धिं कुर्वन्ति राजानः सुभिक्षं पार्थिवं शुभम् । ग्रामस्तु द्विविधो ज्ञेयो मुखपुच्छकरो महान् ॥
चन्द्रो राहुस्तथादित्य एकराशौ यदि स्थितः[४] । मुखग्रामस्तु विज्ञेयो यामित्रे पुच्छ उच्यते ॥१८॥

---

१. यद्यत्र भवते इति ज. । २. ३ यदात्र लभते इति छ ।
४. यथा स्थित इति ख. ग. घ. ङ. ज. च । यदा स्थित इति ज. ञ. च ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भानोः पञ्चदशे ह्यृक्षे यदा चरति चन्द्रमाः। तिथिच्छेदे[1] तु सम्प्राप्ते सोमग्रामं विनिर्दिशेत्॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये युद्धजयार्णवे मण्डलं नाम
त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः।

एकत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

घातचक्रादिः।

ईश्वर उवाच

प्रदक्षिणमकारादीन् स्वरान् पूर्व्वादितो लिखेत्। चैत्राद्यं भ्रमणाच्चक्रं प्रतिपत् पूर्णिमा तिथिः॥
त्रयोदशी चतुर्दशी अष्टम्येका च सप्तमी। प्रतिपत्त्रयोदश्यन्तास्तिथयो द्वादश स्मृताः॥२॥
चैत्रचक्रे तु संस्पर्शाज्जयलाभादिकं विदुः। विषमे तु शुभं ज्ञेयं समे चाशुभमीरितम्॥३॥
युद्धकाले समुत्पन्ने यस्य नाम ह्युदाहृतम्। मात्रारूढन्तु यन्नाम आदित्यो गुरुरेव च॥४॥
जयस्तस्य सदाकालं सङ्ग्रामे चैव भीषणे। ह्रस्वनाम यदा योधो म्रियते ह्यनिवारितः[2]॥
प्रथमो दीर्घ आदिस्थो द्वितीयो मध्ये अन्तकः। द्वौ मध्येन प्रथमान्तौ जायेते नात्र संशयः॥
पुनश्चान्ते यदा चादौ[3] स्वरारूढन्तु दृश्यते। ह्रस्वस्य मरणं विद्याद् दीर्घस्यैव जयो भवेत्॥
नरचक्रं प्रवक्ष्यामि ह्यृक्षपिण्डात्मकं यथा। प्रतिमामालिखेत् पूर्वं पश्चादृक्षाणि विन्यसेत्॥
शीर्षे त्रीणि मुखे चैकं द्वे ऋक्षे नेत्रयोर्न्यसेत्। वेदसङ्ख्यानि हस्ताभ्यां कर्णे ऋक्षद्वयं पुनः॥
हृदये भूतसङ्ख्यानि षडृक्षाणि तु पादयोः। नाम ह्यृक्षं स्फुटं कृत्वा चक्रमध्ये तु विन्यसेत्॥
नेत्रे शिरोदक्षकर्णे याम्यहस्ते च पादयोः। हृद्ग्रीवावामहस्ते तु पुनर्गुह्ये तु पादयोः॥११॥

यस्मिन्नृक्षे स्थितः सूर्य्यः सौरिर्भौमस्तु सैंहिकः।
तस्मिन् स्थाने स्थिते विद्याद् घातमेव न संशयः॥ १२॥
जयचक्रं प्रवक्ष्यामि आदिहान्तांश्च वै लिखेत्।
रेखास्त्रयोदशालिख्य षड्रेखास्तिर्यगा लिखेत्॥ १३॥
दिग् ग्रहा मुनयः सूर्य्या ऋत्विग्रुद्रास्तिथिः क्रमात्।
मूर्च्छनास्मृतिवेदर्क्षजिना[4] अकडमा ह्यधः॥ १४॥
आदित्याद्याः सप्तहृते नामान्ते बलिनो ग्रहाः।
आदित्यसौरिभौमाख्या जये सौम्याश्च सन्धये॥ १५॥

---

१. तिथिभेदे इति झ.।
२. म्रियते ह्यविचारित इति ख.। म्रियते ह्यविचारत इति ग. घ. ङ. च।
३. यथा चादौ इति क. ग. घ. ङ. च।
४. मूर्च्छनास्मृतिवेदाङ्गजिना इति ञ.।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रेखा द्वादश चोद्धृत्य षट् च याम्यास्तथोत्तराः ।
मनुश्चैव तु[१] ऋक्षाणि नेत्रे च रविमण्डलं ॥ १६ ॥
तिथयश्च रसा वेदा अग्निः सप्तदशाथवा । वसुरन्ध्राः समाख्याता अकटपानथो न्यसेत् ॥
एकैकमक्षरन्न्यस्त्वा शेषाण्येवङ्क्रमान् न्यसेत् । नामाक्षरकृतं पिण्डं वसुभिर्भाजयेत्ततः ॥१८॥
वायसान्मण्डलोऽप्युग्रो मण्डलाद्रासभो वरः । रासभाद्वृषभः श्रेष्ठो वृषभात् कुञ्जरो वरः ॥१९॥
कुञ्जराच्च पुनः सिंहः सिंहाच्चैव खरुर्वरः । खरोश्चैव वली धूम्रः एवमादि वलाबलं ॥२०॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये घातचक्रादिर्नामैकत्रिंशदधिक-
शततमोऽध्यायः ।

द्वात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

सेवाचक्रं ।

ईश्वर उवाच

सेवाचक्रं प्रवक्ष्यामि लाभालाभानुसूचकं[२] । पिता माता तथा भ्राता दम्पती च विशेषतः ॥१॥
तस्मिंश्चक्रे तु विज्ञेयं यो यस्माल्लभते फलं । षडूर्द्ध्वाः स्थापयेद्रेखा भिन्नाश्चाष्टौ तु तिर्य्यगाः ॥
कोष्ठकाः पञ्चत्रिंशच्च तेषु वर्णान् समालिखेन् ।
स्वरान् पञ्च समुद्धृत्य स्पर्शान् पश्चात् समालिखेत् ॥ ३ ॥
ककारादिहकारान्तान् हीनाङ्गांस्त्रीन्विवर्ज्जयेत् । सिद्धः साध्यः सुसिद्धश्च अरिर्मृत्युश्च नामतः ॥
अरिर्मृत्युश्च द्वावेतौ वर्जयेत् सर्वकर्म्मसु । एषां मध्ये यदा नाम लक्षयेत्तु प्रयत्नतः ॥५॥
आत्मपक्षे[३] स्थिताः सत्त्वाः सर्वे ते शुभदायकाः । द्वितीयः पोषकश्चैव तृतीयश्चार्थदायकः ॥
आत्मनाशश्चतुर्थस्तु[४] पञ्चमो मृत्युदायकः । स्थानमेवार्थलाभाय मित्रभृत्यादिवान्धवाः ॥
सिद्धः साध्यः सुसिद्धश्च सर्वे ते फलदायकाः । अरिर्मृत्युश्च द्वावेतौ वर्जयेन् सर्वकर्म्मसु[५] ॥
अकारान्तं यथा प्रोक्तं अइउएओ विदुस्तथा । पुनश्चैवांशकान् वक्ष्ये वर्गाष्टकसुसंस्कृतान् ॥
देवा अकारवर्गे तु दैत्याः कवर्गमाश्रिताः । नागाश्चैव चवर्गाः स्युर्गन्धर्वाश्च टवर्गजाः ॥
तवर्गे ऋषयः प्रोक्ताः पवर्गे राक्षसाः स्मृताः । पिशाचाश्च यवर्गे च शवर्गे मानुषाः स्मृताः ॥
देवेभ्यो बलिनो दैत्या दैत्येभ्यः पन्नगास्तथा[६] । पन्नगेभ्यश्च गन्धर्वा गन्धर्वादृषयो वराः ॥

---

१. मन्त्रश्चैव तु इति ख. घ. ज. ञ. च । २. लाभालाभार्थसूचकमिति झ. ञ. च ।
३. स्वार्थपक्षे इति ख. घ. ज. ञ. च । स्वात्मपक्षे इति झ. ।
४. स्वार्थनाशश्चतुर्थस्तु इति ख. घ. ङ. । ज. ञ. च ।
५. अरिर्मृत्युरित्यादिः, सर्वकर्मसु इत्यन्तः पाठः छ. पुस्तके नास्ति ।
६. पन्नगास्तत इति क. ग. घ. ङ. ञ. च । पन्नगाः स्मृता इति झ. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ऋषिभ्यो राक्षसाः शूरा राक्षसेभ्यः पिशाचकाः। पिशाचेभ्यो मानुषाः स्युर्दुर्बलं वर्जयेद्बली॥
पुनर्म्मित्रविभागन्तु ताराचक्रं क्रमाच्छृणु। नामाद्यक्षरमृक्षन्तु स्फुटं कृत्वा तु पूर्वतः ॥१४॥
ऋक्षे तु संस्थितास्तारा नवत्रिका यथाक्रमात्। जन्मसम्पद्विपत् क्षेमं नामर्क्षात्तारका इमाः॥
प्रत्यरा धनदा षष्ठी नैधनामैत्रके परे। परमैत्रान्तिमा तारा जन्मतारा त्वशोभना ॥१६॥
सम्पत्तारा महाश्रेष्ठा विपत्तारा तु निष्फला। क्षेमतारा सर्व्वकार्य्ये प्रत्यरा अर्थनाशिनी[1]॥
धनदा राज्यलाभादि नैधना कार्य्यनाशिनी। मैत्रतारा च मित्राय परमित्रा हितावहा[2]॥१८॥

ताराचक्रं।

मात्रा वै स्वरसञ्ज्ञा स्यान्नाममध्ये क्षिपेत् प्रिये।
विंशत्या च हरेद्भागं यच्छेषं तत् फलं भवेत्॥ १९॥

उभयोर्न्नाममध्ये तु लक्षयेच्च धनं ऋणं। हीनमात्रा ऋणं ज्ञेयन्धनं मात्राधिकं पुनः ॥२०॥
धनेन मित्रता नॄणां ऋणेनैव ह्युदासता। सेवाचक्रमिदं प्रोक्तं लाभालाभादिदर्शकं ॥२१॥
मेषमिथुनयोः प्रीतिर्मैत्री मिथुनसिंहयोः। तुलासिंहौ महामैत्री एवं धनुर्घटे पुनः ॥२२॥
मित्रसेवां न कुर्व्वीत मित्रौ मीनवृषौ मतौ। वृषकर्कटयोर्मैत्री कुलीरघटयोस्तथा ॥२३॥
कन्यावृश्चिकयोरेवन्तथा मकरकीटयोः। मीनमकरयोर्मैत्री तृतीयैकादशे स्थिता ॥२४॥
तुलामेषौ महामैत्री विद्विष्टौ वृषवृश्चिकौ। मिथुनधनुषोः प्रीतिः कर्कटमकरयोस्तथा ॥२५॥

मृगकुम्भकयोः प्रीतिः कन्यामीनौ तथैव च।

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये युद्धजयार्णवे सेवाचक्रं नाम
द्वात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः।

त्रयस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

नानाबलानि।

ईश्वर उवाच

गर्भजातस्य वक्ष्यामि क्षेत्राधिपस्वरूपकं। नातिदीर्घः कृशः स्थूलः समाङ्गो गौरपैत्तिकः ॥१॥
रक्ताक्षो गुणवान् शूरो गृहे सूर्य्यस्य जायते। सौभाग्यो मृदुसारश्च जातश्चन्द्रगृहोदये ॥२॥
वाताधिकोऽतिलुब्धादिर्जातो भूमिभुवो गृहे। बुद्धिमान् सुभगो मानी जातः सौम्यगृहोदये॥
वृहत्क्रोधश्च शुभगो जातो गुरुगृहे नरः। त्यागी भोगी च सुभगो जातो भृगुगृहोदये ॥४॥

बुद्धिमाञ्छुभगो मानी जातश्चार्किगृहे नरः।
सौम्यलग्ने तु सौम्यः स्यात् क्रूरः स्यात् क्रूरलग्नके॥ ५॥

दशाफलञ्चौरि वक्ष्ये नामराशौ तु संस्थितं। गजाश्वधनधान्यानि राज्यश्रीर्विपुला भवेत्॥

---

१. प्रत्यरा आत्मनाशिनी इति छ.। २. हिताय चेति ङ.।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पुनर्धनागमश्चापि दशायां भास्करस्य तु । दिव्यस्त्रीदा चन्द्रदशा भूमिलाभः सुखं कुजे ॥
भूमिर्धान्यं धनं बौधे गजाश्वादिधनं गुरौ । खाद्यपानधनं शुक्रे शनौ व्याध्यादिसंयुतः ॥८॥
स्नानसेवादिनाध्वानं वाणिज्यं राहुदर्शने । वामनाडीप्रवाहे स्यान्नाम चेद्विषमाक्षरं ॥९॥
तदा जयति सङ्ग्रामे शनिभौमससैंहिकाः । दक्षनाडीप्रवाहेर्के वाणिज्ये चैव निष्फला ॥१०॥
सङ्ग्रामे जयमाप्नोति समनामा नरो ध्रुवं । अधश्चारे जयं विद्यादूर्ध्वचारे रणे मृतिं॥११॥

ओं हूं ओं ह्रूं ओं स्फें अस्त्रं मोटय[1] ओं चूर्णय २ ओं सर्व्वशत्रुं मर्दय २ ओं ह्रूं ओं हः फट् ।

सप्तवारन्न्यसेन्मन्त्रं ध्यात्वात्मानन्तु भैरवं । चतुर्भुजन्दशभुजं त्रिंशद्बाह्वात्मकं, शुभं ॥१२॥
शूलखट्वाङ्गहस्तन्तु खड्गकट्टारिकोद्यतं । भक्षणं परसैन्यानामात्मसैन्यपराङ्मुखं ॥१३॥
सम्मुखं शत्रुसैन्यस्य शतमष्टोत्तरं जपेत् । जपाड्डमरुकाच्छब्दाच्छस्त्रं त्यक्त्वा पलायते॥१४॥
परसैन्यं शृणु भङ्गं प्रयोगेण पुनर्वदे । श्मशानाङ्गारमादाय विष्ठाञ्चोलूककाकयोः ॥१५॥
कर्पटे प्रतिमां लिख्य साध्यस्यैवाक्षरं यथा । नामाथ नवधा लिख्य रिपोश्चैव यथाक्रमं ॥१६॥
मूर्द्ध्नि वक्त्रे ललाटे च हृदये गुह्यपादयोः । पृष्ठे तु बाहुमध्ये तु[2] नाम वै नवधा लिखेत् ॥१७॥
मोटयेद्युद्धकाले तु[3] उच्चरित्वा तु विद्यया । तार्क्ष्यचक्रं प्रवक्ष्यामि जयार्थं त्रिमुखाक्षरं[4] ॥१८॥
क्षिप ओं स्वाहा तार्क्ष्यात्मा शत्रुरोगविषादिनुत् । दुष्टभूतग्रहार्त्तस्य व्याधितस्यातुरस्य च ॥
करोति यादृशङ्कर्म्म तादृशं सिद्ध्यते खगात् । स्थावरं जङ्गमञ्चैव लूताश्च कृत्रिमं विषं ॥
तत्सर्वं नाशमायाति[5] साधकस्यावलोकनात् । पुनर्ध्यायेन्महातार्क्ष्यं द्विपक्षं मानुषाकृतिं ॥२१॥
द्विभुजं वक्रचञ्चुं च[6] गजकूर्म्मधरं प्रभुं । असङ्ख्योरगपादस्थमागच्छन्तं खमध्यतः ॥२२॥
ग्रसन्तश्चैव खादन्तं तुदन्तं चाहवे रिपून् । चञ्चवाहताश्च द्रष्टव्याः केचित्पादैश्च चूर्णिताः ॥
पक्षपातैश्चूर्णिताश्च केचिन्नष्टा दिशो दश । तार्क्ष्यध्यानान्वितो यश्च त्रैलोक्ये ह्यजयो भवेत्[7] ॥

पिच्छिकान्तु प्रवक्ष्यामि मन्त्रसाधनजां क्रियां ।

ओं ह्रूं पक्षिन् क्षिप ओं हूं सः महाबलपराक्रम सर्वसैन्यं भक्षय २ ओं मर्दय २ ओं चूर्णय २ ओं विद्रावय २ ओं हूं खः ओं भैरवो ज्ञापयति स्वाहा ।

अमुश्चन्द्रग्रहणे तु जपङ्कृत्वा तु पिच्छिकां ॥ २५ ॥

मन्त्रयेद् भ्रामयेत्सैन्यं सम्मुखं गजसिंहयोः । ध्यानाद्द्रवान् मर्दयेच्च सिंहारूढो मृगाधिकान् ॥
शब्दाद्भङ्गं प्रवक्ष्यामि दूरं मन्त्रेण[8] बोधयेत् । मातॄणां चरुकं दद्यात् कालरात्र्या विशेषतः ॥

१. मोचयेति ख. छ. च । २. बाहुमूले तु इति ग. ।
३. मोचयेद्युद्धकाले तु इति ज. झ. च ।
४. जयार्थं भूमुखाक्षरमिति ख. ग. घ. ङ. छ. ज. ञ. च ।
५. नाशमाप्नोतीति ज. । ६. वज्रचञ्चुं चेति ग. घ. ङ. ञ. च. ।
७. अभयो भवेदिति ग. घ. ङ. च ।
८. हरमन्त्रेणेति क. । मूलमन्त्रेणेति ख. घ. ज. ञ. च ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

श्मशानभस्मसंयुक्तं मालती चामरी तथा[१]। कार्पासमूलमात्रन्तु तेन दूरन्तु बोधयेत् ॥२८॥

ओं अहे हे महेन्द्रि अहे महेन्द्रि भञ्ज हि ओं जहि मसानंहि खाहि खाहि किलि किलि ओं हुं फट्।

अरेर्न्नाशं दूरशब्दाज्जप्तया भङ्गविद्यया। अपराजिता च धुस्तूरस्ताभ्यान्तु तिलकेन हि ॥२९॥

ओं किलि किलि विकिलि इच्छाकिलि भूतहनि शङ्खिनि उमे दण्डहस्ते रौद्रि माहेश्वरि उल्कामुखि ज्वालामुखि शङ्कुकर्णे शुष्कजङ्घे अलम्बुषे हर ओं सर्वदुष्टान् खन ओं यन्मान्निरीक्षयेद्देवि तांस्तान मोहय ओं रुद्रस्य हृदये स्थिता रौद्रि सौम्येन भावेन आत्मरक्षान्ततः कुरु स्वाहा।

बाह्यतो मातृः संलिख्य सकलाकृतिवेष्टिताः। नागपत्रे[२] लिखेद्विद्यां सर्वकामार्थसाधनीं॥

हस्ताद्यैर्द्धारिता पूर्वं ब्रह्मरुद्रेन्द्रविष्णुभिः। गुरुसङ्ग्रामकाले तु विद्यया रक्षिताः सुराः ॥३१॥

रक्षया नारसिंह्या च भैरव्या शक्तिरूपया। सर्वे त्रैलोक्यमोहिन्या गौर्य्या देवासुरे रणे॥

वीजसम्पुटितं नाम कर्णिकायां दलेषु च। पूजाक्रमेण चाङ्गानि रक्षायन्त्रं[३] स्मृतं शुभे ॥३३॥

मृत्युञ्जयं प्रवक्ष्यामि नामसंस्कारमध्यग। कलाभिर्वेष्टितं पश्चात् सकारेण निबोधितं ॥३४॥

जकारं विन्दुसंयुक्तं ओङ्कारेण समन्वितं। धकारोदरमध्यस्थं वकारेण निबोधितं[४] ॥३५॥

चन्द्रसम्पुटमध्यस्थं सर्वदुष्टविमर्दकम्[५]। अथवा कर्णिकायाञ्च लिखेन्नाम च कारणम्॥

पूर्व्वे दले तथोङ्कारं स्वदक्षे चोत्तरे लिखेत्। आग्नेय्यादौ च हूङ्कारन्दले षोडशके स्वरान्॥

चतुस्त्रिंशद्दले काद्यान् बाह्ये मन्त्रञ्च मृत्युजित्। लिखेद्वै भूर्ज्जपत्रे तु रोचनाकुङ्कुमेन च ॥३८॥

कर्पूरचन्दनाभ्याञ्च श्वेतसूत्रेण वेष्टयेत्। सिक्थकेन परिच्छाद्य कलशोपरि पूजयेत् ॥३९॥

यन्त्रस्य[६] धारणाद्रोगाः शाम्यन्ति रिपवो मृतिः। विद्यान्तु भेलखीं वक्ष्ये विप्रयोगमृतेर्हरीं[७]॥

ओं वातले वितले विडालमुखि इन्द्रपुत्रि उद्भवो वायुदेवेन खीलि आजी हाजा मयि वाह इहादि दुःखनित्यकण्ठोच्चैर्मुहूर्तान्वया अह मां यस्महं उपाडि ओं भेलखि ओं स्वाहा।

नवदुर्गासप्तजप्तान्मुखस्तम्भो सुखस्थितात्।

ओं चण्डि ओं हूं फट् स्वाहा।

गृहीत्वा सप्तजप्तं तु खड्गयुद्धेऽपराजितः ॥ ४१ ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये युद्धजयार्णवे नानाबलानि नाम त्रयस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः।

---

१. मालती वानरी तथेति छ. ञ. च। २. नागयन्त्रे इति घ. ञ. च।

३. रक्षामन्त्रमिति ख. ग. ङ. ज. च।

४. ककारोदरमध्यस्थं चकारेणेति ख.। चकारोदरमध्यस्थं चकारेणेति ग. झ. च.। वकारोदरमध्यस्थं ठकारेणेति ङ. छ. च। ५. सर्वदुःखविमर्दकमिति झ.।

६. मन्त्रस्येति क. ख. ग. छ. च। ७. रिपुरोगमृतेर्हरीमिति ग. घ. ङ. ज. झ. ञ. च।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

चतुस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

त्रैलोक्यविजयविद्या ।

ईश्वर उवाच

त्रैलोक्यविजयां वक्ष्ये सर्व्वयन्त्रविमर्द्दिनीं[1] ।

ओं हूं क्षूं हूं ओं नमो भगवति दंष्ट्रिणि भीमवक्त्रे महोग्ररूपे हिलि हिलि रक्तनेत्रे किलि किलि महानिस्वने कुलु ओं विद्युज्जिह्वे कुलु ओं निर्म्मांसे कट कट गोनसाभरणे चिलि चिलि शवमालाधारिणि द्रावय ओं महारौद्रि सार्द्रचर्म्मकृताच्छदे[2] विजृम्भ ओं नृत्य असिलताधारिणि भृकुटीकृतापाङ्गे विषमनेत्रकृतानने वसामेदोविलिप्तगात्रे कह २ ओं हस २ क्रुद्ध २ ओं नीलजीमूतवर्णे अभ्रमालाकृताभरणे विस्फुर ओं घण्टारवावकीर्णदेहे ओं सिंसिंस्थे अरुणवर्णे ओं ह्रां ह्रीं ह्रूं रौद्ररूपे हूं ह्रीं क्लीं ओं ह्रीं हूं ओं आकर्ष ओं धून २ ओं हे हः खः वज्रिणि हूं क्षूं क्षां क्रोधरूपिणि प्रज्वल २ ओं भीमभीषणे भिन्द ओं महाकाये च्छिन्द ओं करालिनि किटि २ महाभूतमातः सर्व्वदुष्टनिवारिणि जये ओं विजये ओं त्रैलोक्यविजये हूं फट् स्वाहा ।

नीलवर्णां प्रेतसंस्थां विंशहस्तां यजेज्जये ॥ १ ॥
न्यासं कृत्वा तु पञ्चाङ्गं रक्तपुष्पाणि होमयेत् ।
सङ्ग्रामे सैन्यभङ्गः स्यात् त्रैलोक्यविजयापठात् ॥ २ ॥

ओं बहुरूपाय स्तम्भय स्तम्भय ओं मोहय ओं सर्व्वशत्रून् द्रावय ओं ब्रह्माणमाकर्षय विष्णुमाकर्षय ओं माहेश्वरमाकर्षय ओं इन्द्रं टालय ओं पर्वतान् चालय ओं सप्तसागरान् शोषय ओं छिन्द छिन्द बहुरूपाय नमः ।

भुजङ्गनाममृन्मूर्त्तिसंस्थं विद्यादरिन्ततः ।

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये युद्धजयार्णवे त्रैलोक्यविजयविद्या नाम
चतुस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ।

पञ्चत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

सङ्ग्रामविजयविद्या ।

ईश्वर उवाच

सङ्ग्रामविजयां विद्यां पदमालां वदाम्यहं ।

ओं ह्रीं चामुण्डे श्मशानवासिनि खट्वाङ्गकपालहस्ते[3] महाप्रेतसमारूढे महाविमा-

---

१. सर्वमन्त्रविमर्दिनीमिति ख. ।
२. सार्द्रचर्मकृताम्बरे इति झ. ।
३. खड्गकपालहस्ते इति झ. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नसमाकुले कालरात्रि महागणपरिवृते महामुखे बहुभुजे घण्टाडमरुकिङ्किणीअट्टाट्टहासे किलि किलि ओं हूं फट् दंष्ट्राघोरान्धकारिणि नादशब्दबहुले गजचर्म्मप्रावृतशरीरे मांसदिग्धे लेलिहानोग्रजिह्वे महाराक्षसि रौद्रदंष्ट्राकराले भीमाट्टाट्टहासे स्फुरद्विद्युत्प्रभे चल चल ओं चकोरनेत्रे चिलि चिलि ओं ललज्जिह्वे ओं भीं भ्रुकुटीमुखि हुङ्कारभयत्रासनिकपालमालावेष्टितजटामुकुटशशाङ्कधारिणि अट्टाट्टहासे किलि किलि ओं हूं दंष्ट्राघोरान्धकारिणि सर्व्वविघ्नविनाशिनि इदं कर्म्म साधय२ ओं शीघ्रं कुरु२ ओं फट् ओं अङ्कुशेन शमय प्रवेशय ओं रङ्ग रङ्ग कम्पय२ ओं चालय ओं रुधिरमांसमद्यप्रिये हन२ ओं कुट्ट२ ओं छिन्द ओं मारय ओं अनुक्रमय ओं वज्रशरीरम्पातय[1] ओं त्रैलोक्यगतन्दुष्टमदुष्टं वा गृहीतमगृहीतं वा आवेशय ओं नृत्य ओं वन्द-ओं कोटराक्षि ऊर्द्ध्वकेशि उलूकवदने करङ्किणि ओं करङ्कमालाधारिणि दह ओं पच२ ओं गृह्ण ओं मण्डलमध्ये प्रवेशय ओं किं विलम्बसि ब्रह्मसत्येन विष्णुसत्येन रुद्रसत्येन ऋषिसत्येन आवेशय ओं किलि किलि ओं खिलि खिलि विलि विलि ओं विकृतरूपधारिणि कृष्णभुजङ्गवेष्टितशरीरे सर्वग्रहावेशनि प्रलम्बौष्ठिनि भ्रूभङ्गलग्ननासिके विकटमुखि कपिलजटे ब्राह्मि भञ्ज[2] ओं ज्वालामुखि[3] स्वन ओं पातय ओं रक्ताक्षि घूर्णय भूमिं पातय ओं शिरो गृह्ण चक्षुर्म्मीलय ओं हस्तपादौ गृह्ण मुद्रां स्फोटय ओं फट् ओं विदारय ओं त्रिशूलेन च्छेदय ओं वज्रेण हन ओं दण्डेन ताडय२ ओं चक्रेण च्छेदय२ ओं शक्त्या भेदय दंष्ट्रया कीलय ओं कर्णिकया पाटय ओं अङ्कुशेन गृह्ण ओं शिरोक्षिज्वरमैकाहिकं द्व्याहिकं त्र्याहिकञ्चातुर्थिकं डाकिनीस्कन्दग्रहान् मुञ्च मुञ्च ओं पच ओं उत्सादय ओं भूमिं पातय ओं गृह्ण ओं ब्रह्माणि एहि ओं माहेश्वरि एहि ओं कौमारि एहि ओं वैष्णवि एहि ओं वाराहि एहि ओं ऐन्द्रि एहि ओं चामुण्डे एहि ओं रेवति एहि ओं आकाशरेवति एहि ओं हिमवच्चारिणि एहि ओं रुरुमर्द्दिनि असुरक्षयङ्करि आकाशगामिनि पाशेन बन्ध बन्ध अङ्कुशेन कट२ समयं तिष्ठ ओं मण्डलं प्रवेशय ओं गृह्ण मुखम्बन्ध ओं चक्षुर्बन्ध हस्तपादौ च बन्ध दुष्टग्रहान् सर्व्वान् बन्ध ओं दिशो बन्ध ओं विदिशो बन्ध अधस्ताद्बन्ध ओं सर्व्वं बन्ध ओं भस्मना पानीयेन वा मृत्तिकया सर्षपैर्व्वा सर्वानावेशय ओं पातय ओं चामुण्डे किलि किलि ओं विच्चे हुं फट् स्वाहा ।

पदमाला जयाख्येयं सर्व्वकर्म्मप्रसाधिका ॥ १ ॥

सर्व्वदा होमजप्याद्यैः पाठाद्यैश्च रणे जयः । अष्टाविंशभुजा ध्येया असिखेटकवत्करौ[4] ॥२॥
गदादण्डयुतौ[5] चान्यौ शरचापधरौ परौ । मुष्टिमुद्गरयुक्तौ च[6] शङ्खखड्गयुतौ परौ ॥३॥

---

१. रुद्रशरीरं पातयेति ख. । रुद्रशरीरं घातयेति घ. ञ. च ।
२. कपिलजटाधारिणि भञ्ज भञ्जेति ञ. । ३. ज्वलज्ज्वालामुखि इति ग. घ. ङ. ञ. च ।
४. असिखेटलसत्कराविति ख. । असिखेटकधृक्करौ इति ञ. ।
५. गदामुण्डयुतौ इति ञ. । ६. मुष्टिमुद्गरसंयुक्तौ इति ञ. । ऋष्टिमुद्गरयुक्तौ चेति ञ. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ध्वजवज्रधरौ चान्यौ सचक्रपरशू परौ। डमरुदर्पणाढ्यौ च शक्तिकुन्तधरौ परौ ॥४॥
हलेन मुषलेनाढ्यौ पाशतोमरसंयुतौ। ढक्कापणवसंयुक्तौ अभयमुष्टिकान्वितौ[1] ॥५॥
तर्ज्जयन्ती च महिषं घातनी होमतोऽरिजित्। त्रिमध्वाक्ततिलैर्होमो न देया यस्य कस्य चित् ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये युद्धजयार्णवे सङ्ग्रामविजयविद्या नाम
पञ्चत्रिंदधिकशततमोऽध्यायः।

षट्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

नक्षत्रचक्रं।

ईश्वर उवाच

अथ चक्रं प्रवक्ष्यामि यात्रादौ च फलप्रदम्। अश्विन्यादौ लिखेचक्रं त्रिनाड़ीपरिभूषितं ॥
अश्विन्याद्र्रादिभिः पूर्व्वा ततश्चोत्तरफल्गुनी। हस्ता ज्येष्ठा तथामूलं वारुणं चाप्यजैकपात् ॥
नाडीयं प्रथमा चान्या याम्यं मृगशिरस्तथा। पुष्यं भाग्यन्तथा चित्रा मैत्रञ्चाप्यं च वासवं ॥
अहिर्व्बध्नं तृतीयाथ कृत्तिका रोहिणी ह्यहिः। चित्रा स्वाती विशाखा च श्रवणा रेवती च भं ॥
नाडीत्रितयसंजुष्टग्रहाज् ज्ञेयं शुभाशुभं। चक्रम्फणीश्वरन्तत्तु[2] त्रिनाड़ीपरिभूषितं ॥५॥
रविभौमार्कराहुस्थमशुभं स्याच्छुभं परं। देशग्रामयुता भ्रातृभार्य्याद्या एकशः शुभाः ॥६॥

अ, भ, कृ, रो, मृ, आ, पु, पु, अ, म, पू, उ, ह, चि, स्वा, वि, अ, ज्ये, मू, पू, उ, श्र, ध, श, पू, उ, रे। अत्र सप्तविंशतिनक्षत्राणि ज्ञेयानि।

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये युद्धजयार्णवे नक्षत्रचक्रं नाम
षट्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः।

सप्तत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

महामारीविद्या।

ईश्वर उवाच

महामारीं प्रवक्ष्यामि विद्यां शत्रुविमर्द्दिनीं।

ओं ह्रीं महामारि रक्ताक्षि कृष्णवर्णे यमस्याज्ञाकरिणि सर्व्वभूतसंहारकारिणि अमुकं हन२ ओं दह२ पच२ ओं छिन्द२ ओं मारय२ ओं उत्सादय२ ओं सर्व्वसत्त्ववशङ्करि सर्वकामिके हुं फट् स्वाहेति।

---

१. अभयस्वस्तिकान्वितौ इति ख. ग. ङ. छ. झ. च। अभयस्तम्भिकान्वितौ इति ज.।
२. चक्रम्फणीश्वरन्तद्वत् इति ग. घ. ङ. झ. ञ. च।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ओं ह्रीं महामारि रक्ताक्षि कृष्णवर्णे यमस्याज्ञाकारिणि सर्वभूतसंहारकारिणि अमुकं हनर ओं दहर पचर ओं छिन्दर ओं मारयर ओं उत्सादयर ओं सर्वसत्त्ववशङ्करि सर्वकामिके हुं फट् स्वाहेति।

ओं मारि हृदयायनमः। ओं महामारि शिरसे स्वाहा। ओं कालरात्रि शिखायै वौषट्। ओं कृष्णवर्णे खः कवचाय हुं। ओं तारकाक्षि विद्युज्जिह्वे सर्वसत्त्वभयङ्करि रक्षर सर्व्वकार्य्येषु ह्रं त्रिनेत्राय वषट्। ओं महामारि सर्वभूतदमनि महाकालि अस्त्राय हुं फट्।

एष न्यासो महादेवि कर्त्तव्यः साधकेन तु ॥ १ ॥

शवादिवस्त्रमादाय चतुरस्रन्त्रिहस्तकं। कृष्णवर्णां त्रिवक्त्राञ्च चतुर्बाहुं समालिखेत् ॥२॥
पटे विचित्रवर्णैश्च धनुः शूलञ्च कर्तृकां[1]। खट्वाङ्गन्धारयन्तीं च कृष्णाभं पूर्वमाननं ॥३॥
तस्य दृष्टिनिपातेन भक्षयेदग्रतो नरं। द्वितीयं याम्यभागे तु रक्तजिह्वं भयानकं ॥४॥
लेलिहानं करालं च दंष्ट्रोत्कटभयानकं। तस्य दृष्टिनिपातेन भक्ष्यमागं हयादिकं ॥५॥
तृतीयं च मुखं देव्याः श्वेतवर्णं गजादिनुत्। गन्धपुष्पादिमध्वाज्यैः पश्चिमाभिमुखं यजेत् ॥
मन्त्रस्मृतेरक्षिरोगशिरोरोगादि नश्यति। वश्याः स्युर्यक्षरक्षाश्च नाशमायान्ति शत्रवः ॥७॥
समिधो निम्बवृक्षस्य ह्यजारक्तविमिश्रिताः। मारयेत् क्रोधसंयुक्तो होमादेव न संशयः ॥८॥
परसैन्यमुखो भूत्वा सप्ताहं जुहुयाद्यदि। व्याधिभिर्गृह्यते सैन्यम्भङ्गो भवति वैरिणः ॥९॥
समिधोऽष्टसहस्रन्तु यस्य नाम्ना तु होमयेत्। अचिरान् म्रियते सोपि ब्रह्मणा यदि रक्षितः ॥
उन्मत्तसमिधो रक्तविषयुक्तसहस्रकं। दिनत्रयं ससैन्यश्च नाशमायाति वै रिपुः ॥११॥
राजिकालवणैर्होमाद्भङ्गोऽरेः स्याद् दिनत्रयात्। खररक्तसमायुक्तहोमादुच्चाटयेद्रिपुं ॥१२॥
काकरक्तसमायोगाद्धोमादुत्सादनं ह्यरेः। वधाय कुरुते सर्व्वं यत् किञ्चिन्मनसेप्सितं ॥१३॥
अथ सङ्ग्रामसमये गजारूढस्तु साधकः। कुमारीद्वयसंयुक्तो मन्त्रसन्नद्धविग्रहः ॥१४॥
दूरशङ्खादिवाद्यानि विद्यया ह्यभिमन्त्रयेत्। महामायापटं गृह्य उच्छेत्तव्यं रणाजिरे ॥१५॥
परसैन्यमुखो भूत्वा दर्शयेत्तं महापटं। कुमारीर्भोजयेत्तत्र पश्चात्पिण्डीञ्च भ्रामयेत् ॥१६॥
साधकश्चिन्तयेत्सैन्यम्पाषाणमिव निश्चलं। निरुत्साहं विभग्नञ्च मुह्यमानञ्च भावयेत् ॥१७॥

एष स्तम्भो मया प्रोक्तो न देयो यस्य कस्य चित्।
त्रैलोक्यविजया माया दुर्गैवं भैरवी तथा ॥ १८ ॥
कुब्जिका भैरवो रुद्रो नारसिंहपटादिना।

इत्याग्नेये महापुराणे आग्नेये युद्धजयार्णवे महामारी नाम
सप्तत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः।

---

१. सधनुःशूलकर्तृकामिति ख. ग. घ. ङ. ज.ञ. च।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अष्टत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

षट्कर्माणि ।

ईश्वर उवाच

षट्कर्म्माणि प्रवक्ष्यामि सर्व्वमन्त्रेषु तच्छृणु ।
आदौ साध्यं लिखेत् पूर्वं चान्ते मन्त्रसमन्वितं ॥ १ ॥

पल्लवः स तु विज्ञेयो महोच्चाटकरः परः । आदौ मन्त्रः ततः साध्यो मध्ये साध्यः पुनर्म्मनुः ॥२॥
योगाख्यः सम्प्रदायोऽयङ्कुलोत्सादेषु योजयेत् ।
आदौ मन्त्रपदन्द्द्यान्मध्ये साध्यं नियोजयेत् ॥ ३ ॥

पुनश्चान्ते लिखेन्मन्त्रं साध्यं मन्त्रपदं पुनः । रोधकः सम्प्रदायस्तु स्तम्भनादिषु योजयेत् ॥४॥
अधोदूर्ध्वं याम्यवामे तु[1] मध्ये साध्यन्तु योजयेत् ।
सम्पुटः स तु विज्ञेयो वश्याकर्षेषु योजयेत् ॥ ५ ॥

मन्त्राक्षरं यदा साध्यं प्रथितञ्चाक्षराक्षरं । प्रथमः सम्प्रदायः स्यादाकृष्टिवशकारकः ॥६॥
मन्त्राक्षरद्वयं लिख्य एकं साध्याक्षरं पुनः । विदर्भः स तु विज्ञेयो वश्याकर्षेषु योजयेन ॥७॥
आकर्षणादि यत् कर्म्म वसन्ते चैव कारयेत् । तापज्वरे तथा वश्ये स्वाहा चाकर्षणे शुभं ॥८॥
नमस्कारपदञ्चैव शान्तिवृद्धौ प्रयोजयेत् । पौष्टिकेषु वषट्कारमाकर्षे वशकर्म्मणि ॥९॥
विद्वेषोच्चाटने मृत्यौ फट् स्यात् खण्डीकृतौ शुभे ।
लाभादौ मन्त्रदीक्षादौ वषट्कारस्तु सिद्धिदः ॥ १० ॥

यमोऽसि यमराजोऽसि कालरूपोऽसि धर्म्मराट् । मया दत्तमिनं शत्रुमचिरेण निपातय ॥११॥
निपातयामि यत्नेन निर्वृत्तो भव साधक । संहृष्टमनसा[2] ब्रूयादेशिकोऽरिप्रसूदनः ॥१२॥
पद्मे शुक्ले यमं प्राच्य होमादेतत प्रसिद्ध्यति ।
आत्मानम्भैरवं ध्यात्वा ततो मध्ये कुलेश्वरीं ॥ १३ ॥

रात्रो वार्त्तां विजानाति आत्मनश्च परस्य च । दुर्गे दुर्गे रक्षणीति दुर्गां प्राच्यारिहा भवेत् ॥१४॥
जप्त्वा हसक्षमलवरयुग्भैरवीं घातयेदरिं ।

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये युद्धजयार्णवे षट्कर्माणि नामाष्टत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ।

---

१. अध ऊर्द्ध्वे याम्यवामे इति ख. ।   २. संरम्भमनसेति छ. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ऊनचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

षष्टिसंवत्सराः ।

ईश्वर उवाच ।

षष्ट्यब्दानां प्रवक्ष्यामि शुभाशुभमतः शृणु । प्रभवे यज्ञकर्म्माणि विभवे सुखिनो जनाः ॥१॥
शुक्ले च सर्वशस्यानि प्रमोदेन प्रमोदिताः । प्रजापतौ प्रवृद्धिः स्यादङ्गिरा भोगवर्द्धनः ॥२॥
श्रीमुखे वर्द्धते लोको भावे भावः प्रवर्द्धते । पूरणो पूरते शक्रो धाता सर्व्वौषधीकरः ॥३॥
ईश्वरः क्षेम आरोग्यबहुधान्यसुभिक्षदः । प्रमाथी मध्यवर्षस्तु विक्रमे शस्यसम्पदः ॥४॥
वृषो वृष्यति सर्वांश्च चित्रभानुश्च चित्रतां । स्वर्भानुः क्षेममारोग्यं तारणे जलदाः शुभाः ॥
पार्थिवे शस्यसम्पत्तिरतिवृष्टिस्तथा जयः । सर्वजित्युत्तमा वृष्टिः सर्वधारी सुभिक्षदः ॥६॥
विरोधी जलदान् हन्ति विकृतश्च भयङ्करः । खरे भवेत् पुमान् वीरो नन्दने नन्दते प्रजा ॥७॥
विषयः शत्रुहन्ता च शत्रुरोगादि मर्दयेत् । ज्वरार्त्तो मन्मथे लोको दुष्करे दुष्करा प्रजाः ॥
दुर्मुखे दुर्मुखो लोको[1] हेमलम्बे न सम्पदः । संवत्सरो महादेवि विलम्बस्तु सुभिक्षदः ॥९॥
विकारी शत्रुकोपाय विजये सर्वदा कचित् । प्लवे प्लवन्ति तोयानि शोभने शुभकृत्प्रजा ॥
राक्षसे निष्ठुरो लोको विविधन्धान्यमानने । सुवृष्टिः पिङ्गले कापि काले ह्युक्तो धनक्षयः ॥
सिद्धार्थे सिद्ध्यते सर्व्वं रौद्रे रौद्रं प्रवर्त्तते । दुर्म्मतौ मध्यमा वृष्टिर्दुन्दुभिः क्षेमधान्यकृत् ॥
स्रवन्ते रुधिरोद्गारी रक्ताक्षः क्रोधनो जयः । क्षये क्षीणधनो लोकः[2] षष्टिसंवत्सराणि तु ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये युद्धजयार्णवे षष्टिसंवत्सराणि नाम
ऊनचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥

चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

वश्यादियोगाः ।

ईश्वर उवाच

वश्यादियोगान् वक्ष्यामि लिखेद् द्व्यष्टपदे त्विमान् ।
भृङ्गराजः सहदेवी[3] मयूरस्य शिखा तथा ॥ १ ॥
पुत्रञ्जीवकृतञ्जली ह्यधःपुष्पा रुदन्तिका । कुमारी रुद्रजटा[4] स्याद्विष्णुक्रान्ता शितोऽर्क्कः ॥
लज्जालुका मोहलता कृष्णधुस्तूरसञ्ज्ञिता[5] । गोरक्षः कर्क्कटी चैव मेषशृङ्गी स्नुही तथा ॥

---

१. दुर्मुखे मुखरो लोक इति ख. घ. ङ. ञ. च ।
२. क्षीणधवो लोक इति क. । क्षीणजनो लोक इति ज. ।
३. सहदेवा इति ख. घ. ङ. छ. च ।
४. कुमारी वज्रजटा इति छ. ।
५. कृष्णधुस्तूरसञ्ज्ञिकेति ख. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ऋत्विजो १६ वह्नयो ३ नागाः ८ पक्षौ २ मुनि ३ मनू १४ शिवः ११ ।
वसवो ८ दिक् १० रसा ६ वेदा ४ ग्रह९र्त्तु ६ रवि १२ चन्द्रमाः १ ॥ ४ ॥

तिथयश्च १५ क्रमाद्भागा ओषधीनां प्रदक्षिणं । प्रथमेन चतुष्केण धूपश्चोद्वर्त्तनं परं ॥५॥
तृतीयेनाञ्जनं कुर्य्यात् स्नानं कुर्य्याच्चतुष्कतः । भृङ्गराजातुलोमाच चतुर्द्धा लेपनं स्मृतं ॥६॥

मुनयो दक्षिणे पार्श्वे युगाद्याश्चोत्तराः स्मृताः ।
भुजगाः पादसंस्थाश्च ईश्वरा मूर्द्ध्नि संस्थिता ॥ ७ ॥

मध्येन सार्क्कशशिभिर्धूपः स्यात सर्वकार्य्यके । एतैर्विलिप्तदेहस्तु त्रिदशैरपि पूज्यते[1] ॥८॥
धूपस्तु षोडशाद्यस्तु गृहाद्युद्वर्त्तने स्मृतः । युगाद्याश्चाञ्जने प्रोक्ता वाणाद्याः स्नानकर्म्मणि ॥
रुद्राद्या भक्षणे प्रोक्ताः पक्षाद्याः पानके स्मृताः । ऋत्विग्वेदर्त्तुनयनैस्तिलकं लोकमोहनं ॥
सूर्य्यत्रिदशपक्षैश्च शैलैः स्त्री लेपतो वशा । चन्द्रेन्द्रफणिरुद्रैश्च योनिलेपाद्वशाः स्त्रियः ॥११॥
तिथिदिग्युगवाणैश्च गुटिका तु वशङ्करी । भक्ष्ये भोज्ये तथा पाने दातव्या गुटिका वशे ॥
ऋत्विग्ग्रहाक्षिशैलैश्च शस्त्रस्तम्भे मुखे धृता । शैलेन्द्रवेदरन्ध्रैश्च अङ्गलेपाज्जले वसेत् ॥१३॥
वाणाक्षिमनुरुद्रैश्च गुटिका क्षुत्तृषादितुत् । त्रिपडीशदिशावाणैर्ल्लेपात् स्त्री दुर्भगा शुभा ॥
त्रिदशाक्षिदिशानेत्रैर्ल्लेपात क्रीडेच्च पन्नगैः। त्रिदशादेशभुजगैर्ल्लेपात् स्त्री सूयते सुखं ॥१५॥
सप्तदिङ्मुनिरन्ध्रैश्च घृतजिह्वस्तलेपतः । त्रिदशाक्ष्यब्धिमुनिभिर्ध्वजलेपात्[2] रतौ सुतः ॥१६॥
ग्रहाब्धिसूर्य्यत्रिदशैर्गुटिका स्याद् वशङ्करी। ऋत्विक्पदस्थितौषध्याः प्रभावः प्रतिपादितः ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये युद्धजयार्णवे षोड़शपदका नाम
चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ।

एकचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

षट्त्रिंशत्पदकज्ञानं ।

ईश्वर उवाच

षट्त्रिंशत्पदसंस्थानामोषधीनां वदे फलं । अमरीकरणं नृणां ब्रह्मरुद्रेन्द्रसेवितं ॥१॥
हरीतक्यक्षयधात्र्यश्च मरीचम्पिप्पलीशिफा । वह्निः शुण्ठी पिप्पली च गुडूचीवचनिम्बकाः[3] ॥
वासकः शतमूली च सैन्धवं सिन्धुवारकं । कण्टकारी गोक्षुरका बिल्वम्पौनर्नवं बला ॥३॥
एरण्डमुण्डी रुचको भृङ्गः क्षारोऽथ पर्पटः । धन्याको जीरकश्चैव शतपुष्पी जवानिका ॥४॥
विड़ङ्गः खदिरश्चैव कृतमालो हरिद्रया । वचा सिद्धार्थ एतानि षट्त्रिंशत्पदगानि हि ॥५॥

---

१. त्रिदशैरपि एह्यते इति घ. ङ. च ।
२. त्रिदशाक्ष्यब्धिमनुभिर्ध्वजलेपादिति ग, घ. ङ. छ. च ।
३. चव्यनिम्बका इति ज. झ. च ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

क्रमादेकादिसञ्ज्ञानि ह्यौषधानि महान्ति हि । सर्वरोगहराणि स्युरमरीकरणानि च ॥६॥
वलीपलितभेत्तृणि[१] सर्वकोष्ठगतानि तु । एषां चूर्णञ्च वटिका रसेन परिभाविता ॥७॥
अवलेहः कषायो वा मोदको गुडखण्डकः । मधुतो घृततो वापि घृतन्तैलमथापि वा ॥८॥
सर्व्वात्मनोपयुक्तं हि मृतसञ्जीवनम्भवेत् । कर्षार्द्धं कर्षमेकं वा पलार्द्धं पलमेककं ॥९॥
यथेष्टाचारनिरतो[२] जीवेद्वर्षशतत्रयं । मृतसञ्जीवनीकल्पे योगो नास्मात् परोऽस्ति हि ॥१०॥
प्रथमान्नवकाद्योगात् सर्वरोगैः प्रमुच्यते । द्वितीयाच्च तृतीयाच्च चतुर्थान्मुच्यते रुजः ॥११॥
एवं षट्काच्च प्रथमाद् द्वितीयाच्च तृतीयतः । चतुर्थात्पञ्चमात् षष्ठात्तथा नवचतुष्कतः ॥१२॥
एकद्वित्रिचतुःपञ्चषट्सप्ताष्टमतोऽनिलात् । अग्निभास्करषड्विंशसप्तविंशैश्च पित्ततः ॥१३॥
वाणत्तुं शैलवसुभिस्तिथिभिर्मुच्यते कफात् । वेदाग्निभिर्वाणगुणैः षड्गुणैः स्याद्वशे धृते ॥१४॥
ग्रहादिग्रहणान्तैश्च सर्वैरेव विमुच्यते । एकद्वित्रिरसैः शैलैर्वसुग्रहशिवैः क्रमात् ॥१५॥

द्वात्रिंशत्तिथिसूर्य्यैश्च नात्र कार्य्या विचारणा ।
षट्त्रिंशत्पदकज्ञानं न देयं यस्य कस्य चित् ॥ १६ ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये युद्धजयार्णवे नाम षट्त्रिंशत्पदकज्ञानं नाम एकचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ।

द्विचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

मन्त्रौषधादिः ।

ईश्वर उवाच

मन्त्रौषधानि चक्राणि[३] वक्ष्ये सर्व्वप्रदानि च । चौरनाम्नो वर्णगुणो द्विघ्नो मात्राश्चतुर्गुणाः ॥
नाम्ना हृते भवेच्छेषश्चौरोऽथ जातकं वदे । प्रश्ने ये विषमा वर्णास्ते गर्भे पुत्रजन्मदाः ॥२॥

नामवर्णैः समैः काणो वामेऽक्षिण विषमैः पुनः ।
दक्षिणाक्षि भवेत् काणं स्त्रीपुन्नामाक्षरस्य च ॥ ३ ॥

मात्रावर्णाश्चतुर्निघ्ना वर्णपिण्डे गुणे कृते । समे स्त्री विषमे ना स्याद्विशेषे च[४] मृतिः स्त्रियाः ॥
प्रथमं रूपशून्येऽथ प्रथमं म्रियते पुमान् । प्रश्नं सूक्ष्माक्षरैर्गृह्य द्रव्यैर्भागेऽखिले मतम् ॥५॥
शनिचक्रं प्रवक्ष्यामि तस्य दृष्टिं परित्यजेत् । राशिस्थः सप्तमे दृष्टिश्चतुर्दशशतेद्धिका ॥६॥
एकद्व्यष्टद्वादशमः पाददृष्टिश्च तं त्यजेत् । दिनाधिपः प्रहरभाक् शेषा यामार्द्धभागिनः[५] ॥

---

१. वलीपलितभेदीनीति ङ. ।
२. यथेच्छाचारनिरत इति ज. ।
३. मन्त्रौषधादिचक्राणीति घ. ञ. च ।
४. विशेषेणेति ख. ।
५. यामार्द्धभोगिन इति क. ग. ङ. ज. च ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शनिभागन्त्वजेद्युद्धे दिनराहुं वदामि ते । रवौ पूर्वेऽनिले मन्दे गुरौ याम्येऽनले भृगौ ॥८॥
अग्नौ कुजे भवेत् सोम्ये स्थिते राहुर्बुधे सदा । फणिराहुस्तु प्रहरमैशे वह्नौ च राक्षसे ॥९॥
वायौ संवेष्टयित्वा च शत्रुं हन्तीशसम्मुखं । तिथिराहुं प्रवक्ष्यामि पूर्णिमाग्नेयगोचरे ॥१०॥

अमावास्या वायवे च राहुः सम्मुखशत्रुहा ।
काद्या जान्ताः सम्मुखे स्युः साद्या दान्ताश्च दक्षिणे ॥ ११ ॥
शुक्ले त्यजेत् कुजगुणान् धाद्या मान्ताश्च पूर्वतः ।
याद्या हान्ता उत्तरे स्युस्तिथिदृष्टिं विवर्जयेत् ॥ १२ ॥
पूर्वाश्च दक्षिणास्तिस्रो रेखा वै मूलभेदके ।
सूर्य्यराश्यादि संलिख्य दृष्टौ हानिर्जयोऽन्यथा ॥ १३ ॥

विष्टिराहुं प्रवक्ष्यामि अष्टौ रेखास्तु पातयेत् । शिवाद्यमं यमाद्वायुं वायोरिन्द्रं ततोऽम्बुपं ॥
नैर्ऋताच्च नयेच्चन्द्रं चन्द्रादग्निं ततो जले । जलादीशे चरेद्राहुर्विष्ट्या सह महाबलः ॥१५॥

ऐशान्यां च तृतीयादौ सप्तम्यादौ च याम्यके ।
एवं कृष्णे सिते पक्षे वायौ राहुश्च हन्त्यरीन् ॥ १६ ॥
इन्द्रादीन् भैरवादींश्च ब्रह्माण्यादीन् ग्रहादिकान् ।
अष्टाष्टकञ्च पूर्वादौ याम्यादौ वातयोगिनीं ॥ १७ ॥

यान्दिशं वहते वायुस्तत्रस्थो घातयेदरीन् । दृढीकरणमाख्यास्ये कण्ठे वाह्वादिधारिता ॥१८॥

पुष्योद्धृता काण्डलक्ष्यं वारयेत् शरपुङ्खिका ।
तथा पराजिता पाठा द्वाभ्यां खड्गं निवारयेत् ॥ १९ ॥

ओं नमो भगवति वज्रशृङ्खले हन२ ओं भक्ष२ ओं खाद ओं अरे रक्तं पिव कपालेन रक्ताक्षि रक्तपटे भस्माङ्गि भस्मलिप्तशरीरे वज्रायुधे वज्रयाकारानेचिते पूर्वां दिशं बन्ध२ ओं दक्षिणां दिशम्बन्ध२ ओं पश्चिमां दिशम्बन्ध२ उत्तरां दिशम्बन्ध२ नागान् बन्ध२ नागपत्नीर्बन्ध२ ओं असुरान् बन्ध२ ओं यक्षराक्षसपिशाचान् बन्ध२ ओं प्रेतभूतगन्धर्वादयो ये केचिदुपद्रवास्तेभ्यो रक्ष२ ओं उद्ध्वं रक्ष२ अधो रक्ष२ ओं क्षुरिक बन्ध२ ओं ज्वल महाबले घटि२ ओं मोटि२ सटावलिवज्राग्निवज्रप्राकारे हुं फट् ह्रीं ह्रूं श्रीं फट् ह्रीं हः फूं फें फः सर्वग्रहेभ्यः सर्वव्याधिभ्यः सर्वदुष्टोपद्रवेभ्यो ह्रीं अशेषेभ्यो रक्ष२ ।

ग्रहज्वरादिभूतेषु सर्व्वकर्म्मसु योजयेत ।

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये युद्धजयार्णवे मन्त्रौषधादिर्नाम
द्विचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

त्रिचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

कुब्जिकापूजा ।

ईश्वर उवाच

कुब्जिकाक्रमपूजाञ्च[१] वक्ष्ये सर्व्वार्थसाधनीं । यया जिताः सुरा देवैः शस्त्राद्यैराज्यसंयुतैः ॥१॥
मायावीजं च गुह्याङ्गे षट्कमस्त्रं करे न्यसेत् । काली कालीति हृदयं दुष्टचाण्डालिका शिरः ॥
ह्रौं स्फें ह स ख क छ ड ओं कारो भैरवः शिखा ।
भेलखी कवचं दूती नेत्राख्या रक्तचण्डिका ॥ ३ ॥
ततो गुह्यकुब्जिकाख्यं मण्डले स्थानके यजेत् । अग्नौ कूर्चशिरो रुद्रे नैर्ऋत्येऽथ शिखानिले ॥
कवचम्मध्यतो नेत्रं अस्त्रन्दिक्षु च मण्डले ।
द्वात्रिंशता कर्णिकायां स्त्रीं हसक्षमलनववषड़सचात्ममन्त्रवीजकं ॥ ५ ॥
ब्रह्माणी चैव माहेशी कौमारी वैष्णवी तथा ।
वाराही चैव माहेन्द्री चामुण्डा चण्डिकेन्द्रकात् ॥ ६ ॥
यजेद्रवलकसहान् शिवेन्द्राग्नियमेऽग्निपे । जले तु कुसुममालामद्रिकाणां च पञ्चकं ॥७॥
जालन्धरं पूर्णगिरिं कामरूपं क्रमाद्यजेत् । मरुदीशाग्निनैर्ऋत्ये मध्ये वै वज्रकुब्जिकां ॥८॥
अनादिविमलः पूज्यः सर्व्वज्ञविमलस्ततः । प्रसिद्धविमलश्चाथ संयोगविमलस्ततः ॥९॥
समयाख्योऽथ विमल एतद्विमलपञ्चकं । मरुदीशाननैर्ऋत्ये वह्नौ चोत्तरशृङ्गके ॥१०॥
कुब्जार्थं खिंखिनी षष्ठा सोपन्ना सुस्थिरा तथा । रत्नसुन्दरी चैशाने शृङ्गे चाष्टादिनाथकाः ॥
मित्र ओडीशषष्ठ्याख्यौ वर्षा अग्न्यम्बुपेऽनिले । भवेद्गगनरत्नं स्याच्चाप्ये कवचरत्नकं ॥
त्रुं मर्त्यः पञ्चनामाख्यो[१] मरुदीशानवह्निगः । याम्याग्नेये पञ्चरत्नं ज्येष्ठा रौद्री तथाऽन्तिका ॥
तिस्रो ह्यासां महावृद्धाः पञ्चप्रणवतोऽखिलाः । सप्तविंशत्यष्टविंशभेदात् सम्पूजनं द्विधा ॥
ओं ऐं गूं क्रमगणपतिं प्रणवं वटुकं यजेत् । चतुरस्रे मण्डले च दक्षिणे गणपं यजेत् ॥१५॥
वामे च वटुकं कोणे गुरून् षोडशनाथकान् । वायव्यादौ चाष्ट दश प्रतिषट्कोणके ततः ॥
ब्रह्माद्याश्चाष्ट परितस्तन्मध्ये च नवात्मकः । कुब्जिका कुलटा चैव क्रमपूजा तु सर्व्वदा ॥१७॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये युद्धजयार्णवे कुब्जिकाक्रमपूजा नाम
त्रिचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ।

---

१. कुब्जिकाचक्रपूजाञ्चेति ख. छ. च । १. खं मृत्यौ वुञ्चनामाख्य इति ज. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

चतुश्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

कुब्जिकापूजा ।

ईश्वर उवाच

श्रीमतीं कुब्जिकां वक्ष्ये धर्म्मार्थादिजयप्रदां । पूजयेन्मूलमन्त्रेण परिवारयुतेन वा ॥१॥

ओं ऐं ह्रीं श्रीं खैं ह्रैं हसक्षमलचवयम्क्षगवति अम्बिके ह्रां ह्रीं क्ष्रीं क्ष्रौं क्ष्रूं क्रीं कुब्जिके ह्रां ओं ङञनणमे अघोरमुखि व्रां छ्रां छीं किलिर क्ष्रीं विच्चे ख्यौं श्रीं क्रों ओं ह्रीं ऐं वज्रकुब्जिनि[1] स्त्रीं त्रैलोक्यकर्षिणि ह्रीं कामाङ्गद्राविणि ह्रीं स्त्रीं महाक्षोभकारिणि ऐं ह्रीं क्ष्रीं ऐं ह्रीं श्रीं फें क्ष्रौं नमो भगवति क्ष्रौं कुब्जिके ह्रीं ह्रीं क्रैं ङञणनमे अघोरमुखि छ्रां छां विच्चे ओं किलिर ।

कृत्वा कराङ्गन्यासञ्च सन्ध्यावन्दनमाचरेत् । वामा ज्येष्ठा तथा रौद्री सन्ध्यात्रयमनुक्रमात् ॥

कुलवागीशि विद्महे महाकालीति धीमहि ।

तन्नः कौली प्रचोदयात् ।

मन्त्राः पञ्च प्रणवाद्याः पादुकां पूजयामि च । मध्ये नाम चतुर्थ्यन्तं द्विनवात्मकवीजकाः ॥

नमोन्ता वाऽथ षष्ठ्या तु सर्वे ज्ञेया वदामि तान् ।

कौलीशनाथः सुकला जन्मतः कुब्जिका ततः ॥ ४ ॥

श्रीकण्ठनाथः कौलेशो गगनानन्दनाथकः । चटुला देवी मैत्रीशी कराली तूर्णनाथकः ॥५॥

अतलदेवी श्रीचन्द्रा देवीत्यन्तास्ततस्त्विमे । भगात्मपुङ्गणदेवमोहिनीं पादुकां यजेत् ॥६॥

अतीतभुवनानन्दरत्नाढयां पादुकां यजेत् । ब्रह्मज्ञानाऽथ कमला परमा विद्यया सह ॥७॥

विद्यादेवीगुरुशुद्धिस्त्रिशुद्धिं प्रवदामि ते । गगनश्चटुली चात्मा पद्मानन्दो मणिः कला ॥८॥

कमलो माणिक्यकण्ठो गगनः कुमुदस्ततः । श्रीपद्मो भैरवानन्दो देवः कमल इत्यतः ॥९॥

शिवो भवोऽथ कृष्णश्च नवसिद्धाश्च षोडश । चन्द्रपूरोऽथ गुलमश्च शुभः कामोऽतिमुक्तकः[2]॥

कण्ठो वीरः[3] प्रयोगोऽथ कुशलो देवभोगकः । विश्वदेवः खड्गदेवो रुद्रो धाताऽसिरेव च ॥

मुद्रास्फोटो वंशपूरो भोजः षोडश सिद्धकाः । समयान्यस्तु देहस्तु षोढान्यासेन यन्त्रितः ॥

प्रक्षिप्य मण्डले पुष्पं मण्डलान्यथ पूजयेत् । अनन्तञ्च महान्तञ्च सर्वदा शिवपादुकां ॥१३॥

महाव्याप्तिञ्च शून्यञ्च पञ्चतत्त्वात्ममण्डलं । श्रीकण्ठनाथपादुकां शङ्करानन्तकौ भजेत् ॥१४॥

सदाशिवः पिङ्गलश्च भृग्वानन्दश्च नाथकः । लाङ्गूलानन्दसंवर्त्तौ मण्डलस्थानके यजेत् ॥

नैर्ऋत्ये श्रीमहाकालः पिनाकी च महेन्द्रकः । खड्गो भुजङ्गो वाणश्च अघासिः शब्दको वशः ॥

आज्ञारूपो नन्दरूपो बलिन्दत्वा क्रमं यजेत् ।

---

१. वह्निकुब्जिनि इति ख. छ. च ।

२. कामोऽथ मुक्तके इति ज. छ. ञ. च ।

३. वटो वीर इति ज. छ. च ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ह्रीं खं खं हूं सौं वटुकाय अरु२ अर्घं पुष्पं धूपं दीपं गन्धं बलिं पूजां गृह्ण२ नमस्तुभ्यं। ओं ह्रां ह्रीं हूं क्षें क्षेत्रपालाय अवतर२ महाकपिलजटाभार भास्वरत्रिनेत्र-ज्वालामुख एह्येहि गन्धपुष्पबलिपूजां गृह्ण२ खः खः ओं कः ओं लः ओं महाडामराधि-पतये[1] स्वाहा।

बलिशेषेऽथ यजेत् ह्रीं हूं ह्रां श्रीं वै त्रिकूटकं॥ १७॥

वामे च दक्षिणे ह्यग्रे याम्ये निशानाथपादुकाः। दक्षे तमोरिनाथस्य ह्यग्रे कालानलस्य च॥
उड्डियाणं जालन्धरं पूर्णं वै कामरूपकं। गगनानन्ददेवञ्च स्वर्गानन्दं सवर्गकं[2]॥१९॥
परमानन्ददेवञ्च[3] सत्यानन्दस्य पादुकां[4]। नागानन्दञ्च वर्गाख्यमुक्तन्ते रत्नपञ्चकं॥२०॥
सौम्ये शिवे यजेत षट्कं सुरनाथस्य पादुकां। श्रीमत्समयकोटीशं विद्याकोटीश्वरं यजेत॥
कोटीशं विन्दुकोटीशं सिद्धकोटीश्वरन्तथा। सिद्धचतुष्कमाग्नेय्यां अमरीशेश्वरं यजेत्॥२२॥
चक्रीशनाथं कुरङ्गेशं वृत्रेशञ्चन्द्रनाथकं[5]। यजेद्गन्धादिभिश्चैतान् याम्ये विमलपञ्चकं॥२३॥
यजेदनादिविमलं सर्व्वज्ञविमलं ततः। यजेद्योगीशविमलं सिद्धाख्यं समयाख्यकं॥२४॥
नैर्ऋत्ये चतुरो देवान्[6] यजेत् कन्दर्पनाथकं। पूर्वाः शक्तीश्च सर्वाश्च[7] कुब्जिकापादुकां यजेत्॥
नवात्मकेन मन्त्रेण पञ्चप्रणवकेन वा। सहस्राक्षमनवद्यं विष्णुं शिवं सदा यजेत्[8]॥२६॥
पूर्व्वाच्छिवान्तं ब्रह्मादि ब्रह्माणी च महेश्वरी। कौमारी वैष्णवी चैव वाराही शक्रशक्तिका॥

चामुण्डा च महालक्ष्मीः पूर्व्वादीशान्तमर्च्चयेत्।
डाकिनी राकिनी पूज्या लाकिनी काकिनी तथा॥ २८॥
शाकिनी याकिनी पूज्या वायव्यादुग्रषट्सु च।
यजेद्ध्यात्वा ततो देवीं द्वात्रिंशद्वर्णकात्मकां॥ २९॥

पञ्चप्रणवकेनापि ह्रीं कारेणाथवा यजेत्। नीलोत्पलदलश्यामा षड्वक्त्रा[9] षट्प्रकारिका॥
चिच्छक्तिरष्टादशाख्या बाहुद्वादशसंयुता। सिंहासनसुखासीना प्रेतपद्मोपरिस्थिता॥३१॥
कुलकोटिसहस्राढ्या कर्कोटो मेखलास्थितः। तक्षकेणोपरिष्टाच्च गले हारश्च वासुकिः॥३२॥
कुलिकः कर्णयोर्यस्याः कूर्म्मः कुण्डलमण्डलः। भ्रुवोः पद्मो महापद्मो वामे नागः कपालकः॥
अक्षसूत्रञ्च खट्वाङ्गं शङ्खं पुस्तञ्च दक्षिणे। त्रिशूलन्दर्पणं खड्गं रत्नमालाङ्कुशन्धनुः[10]॥

---

१. प्रमथाधिपतये इति ङ.। महामात्राधिपतये इति ज.।
२. स्वर्गानन्दञ्च देवकमिति घ. ञ. च।
३. पन्नगानन्ददेवञ्चेति ञ.। पवनानन्ददेवञ्चेति ज.।
४. मर्त्यानन्दस्य पादुकामिति ख. ग. ङ. झ. ज. च।
५. भूतीशं मन्त्रनायकमिति ज.। भूतीशं मन्त्रनायकमिति ञ.।
६. चतुरो वेदानिति ख. छ. ज. च।
७. पूर्वान् सशक्तीन् सर्वांश्चेति ज. ञ. च।
८. सदाशिवं स्वयं यजेदिति ङ. छ. ज. च।
९. षड्वर्णेति ञ.।
१०. वनमालाङ्कुशं धनुरिति घ. ङ. च।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

श्वेतमूर्द्ध्वमुखन्देव्या ऊर्द्ध्वश्वेतन्तथापरं । पूर्व्वास्यं पाण्डरं क्रोधि दक्षिणं कृष्णवर्णकं ॥
हिमकुन्देन्दुभं सौम्यं ब्रह्मा पादतले स्थितः । विष्णुस्तु जघने रुद्रो हृदि कण्ठे तथेश्वरः ॥

सदाशिवो ललाटे स्याच्छिवस्तस्योर्द्ध्वतः स्थितः ।
आघूर्णिता कुब्जिकैवन्ध्येया पूजादिकर्म्मसु ॥ ३७ ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये युद्धजयार्णवे कुब्जिकापूजा नाम
चतुश्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ।

पञ्चचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

मालिनीनानामन्त्राः ।

ईश्वर उवाच

नानामन्त्रान् प्रवक्ष्यामि षोढान्यासपुरःसरम् ।
न्यासस्त्रिधा तु षोढा स्युः शाक्तशाम्भवयामलाः ॥ १ ॥

शाम्भवे शब्दराशिः षट्षोड़शग्रन्थिरूपवान्[१] । त्रिविद्या तद्गहो न्यासस्त्रितत्त्वात्माभिधानकः ॥
चतुर्थो वनमालायाः श्लोकद्वादशरूपवान् । पञ्चमो रत्नपञ्चात्मा नवात्मा षष्ठ ईरितः ॥३॥
शाक्ते पक्षे च मालिन्यास्त्रिविद्यात्मा द्वितीयकः । अघोर्य्यष्टकरूपोऽन्यो द्वादशाङ्गश्चतुर्थकः ॥

पञ्चमस्तु षडङ्गः स्याच्छक्तिश्चान्यास्त्रचण्डिका[२] ।
क्रीं ह्रीं क्लीं श्रीं क्रूं फट् त्रयं स्यात्तूर्य्याख्यं सर्व्वसाधकं[३] ॥ ५ ॥
मालिन्या नादिफान्तं स्यात् नादिनी च शिखा स्मृता ।
अग्रसनी[४] शिरसि स्यात् शिरोमालानिवृत्तिः शः ॥ ६ ॥
ट शान्तिश्च शिरो भूयाच् चामुण्डा च त्रिनेत्रगा ।
ढ प्रियदृष्टिर्द्विनेत्रे च नासागा गुह्यशक्तिनी ॥ ७ ॥
न नारायणी द्विकर्णे च दक्षकर्णे त मोहनी ।
ज प्रज्ञा वामकर्णस्था वक्त्रे च वज्रिणी स्मृता ॥ ८ ॥
क कराली दक्षदंष्ट्रा वामांसा ख कपालिनी ।
ग शिवा ऊर्द्ध्वदंष्ट्रा स्याद् घ घोरा वामदंष्ट्रिका ॥ ९ ॥

---

१. षोडशप्रतिरूपवानिति झ. ।
२. शक्तिः स्याद्या त्रिवर्णिका इति ज. । शक्तिश्चान्या त्रिखण्डिकेति ज. ।
३. फट्त्रयं स्यात् तय्युंद्धे सर्व्वसाधकमिति ख. छ. च । ४. खश्वसनीति ख. छ. च ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उ शिखा दन्तविन्यासा ई माया जिह्वया स्मृता ।
अ स्याच्नागेश्वरी वाचि व कण्ठे शिखिवाहिनी ॥ १० ॥
भ भीषणी दक्षस्कन्धे वायुवेगा म वामके ।
ड नामा दक्षबाहौ तु ढ वामे च विनायका ॥ ११ ॥
प पूर्णिमा द्विहस्ते तु ओकाराद्यङ्गुलीयके ।
अं दर्शनी वामाङ्गुल्य अः स्यात्सञ्जीवनी करे ॥ १२ ॥
ट कपालिनी कपालं शूलदण्डे त दीपनी ।
त्रिशूले ज जयन्ती स्याद्वृद्धिर्यः साधनी[1] स्मृता ॥ १३ ॥
जीवे श परमाख्या स्याद् ह प्राणे चाम्बिका स्मृता ।
दक्षस्तने छ शरीरा न वामे पूतना स्तने ॥ १४ ॥
अ स्तनक्षीर आ मोटी लम्बोदर्य्युदरे च थ ।
नाभौ संहारिका क्ष स्यान् महाकाली नितम्बम ॥ १५ ॥
गुह्ये स कुसुममाला ष शुक्रे शुक्रदेविका । उरुद्वये त तारास्याद ज्ञाना दक्षजानुनि ॥१६॥
वामे स्यादौ क्रियाशक्तिरो गायत्री च जङ्घगा । ओ सावित्री वामजङ्घा दक्षे दो दोहनी पदे ॥
फ फेत्कारी वामपादे नवात्मा मालिनी मनुः ।
अ श्रीकण्ठः शिखायां स्यादावक्त्रे स्यादनन्तकः ॥ १८ ॥
इ सूक्ष्मो दक्षनेत्रे स्यादी त्रिमूर्त्तिस्तु वामके । उ दक्षकर्णेऽमरीश ऊ कर्णेवांशकोऽपरे ॥१९॥
ऋ भावभूतिर्नासाग्रे वामनासा तिथीश ॠ । ऌ स्थाणुर्दक्षगण्डे स्याद्वामगण्डे हरश्च ॡ ॥
कटीशो दन्तपङ्क्तावे भूतीशश्चोदूर्ध्वदन्त ऐ । सद्योजात ओ अधरे ऊर्द्धौष्ठेऽनुग्रहीश ओ ॥
अं क्रूरो घाटकायां स्यादः महासेनजिह्वया । क क्रोधीशो दक्षस्कन्धे खश्चण्डीशश्च बाहुषु ॥
पञ्चान्तकः कूर्परे गो घ शिखी दक्षकङ्कणे । ङ एकपादश्चाङ्गुल्यो वामस्कन्धे च कूर्म्मकः ॥
छ एकनेत्रो बाहौ स्याच्चतुर्वक्त्रो ज कूर्परे । झ राजसः कङ्कणगः ञः सर्वकामदोऽङ्गुली ॥
ट सोमेशो नितम्बे स्याद्दक्ष ऊरुठ लाङ्गली । ड दारुको दक्षजानौ जङ्घा ढोऽर्द्धजलेश्वरः ॥
ण उमाकान्तकोऽङ्गुल्यस्त आषाढी नितम्बके । थ दण्डी वाम ऊरौ स्याद भिदो वामजानुनि ॥
ध मीनो वामजङ्घायान्न मेषश्चरणाङ्गुली । प लोहितो दक्षकुक्षौ फ शिखी वामकुक्षिगः ॥२७॥
ब गलण्डः पृष्ठवंशे भो नाभौ च द्विरण्डकः । म महाकालो हृदये य वाणीशस्त्वविस्मृतः[2] ॥
र रक्ते स्याद्भुजङ्गेशो ल पिनाकी च मांसके ।
व खड्गीशः स्वात्मनि स्याद्बकश्चास्थिनि शः स्मृतः ॥ २९ ॥
ष श्वेतश्चैव मज्जायां स भृगुः शुक्रधातुके । प्राणे हो नकुलीशः स्यात् क्ष संवर्त्तश्च कोपगः ॥
रुद्रशक्तीः प्रपूज्य ह्रींबीजेनाखिलमाप्नुयात् ।

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये मालिनीमन्त्रादिन्यासो नाम
पञ्चचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ।

---

१. पावनीति ज. ञ. च ।　　　　२. य वाणीशस्तु विस्तृत इति ञ. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

षट्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

अष्टाष्टकदेव्यः ।

ईश्वर उवाच

त्रिखण्डीं सम्प्रवक्ष्यामि ब्रह्मविष्णुमहेश्वरीं ।

ओं नमो भगवते रुद्राय नमः । नमश्चामुण्डे नमश्चाकाशमातॄणां सर्व्वकामार्थसाधनीनामजरामरीणां सर्व्वत्राप्रतिहतगतीनां स्वरूपरूपपरिवर्त्तिनीनां सर्व्वसत्त्ववशीकरणोत्सादनोन्मूलनसमस्तकर्म्मप्रवृत्तानां सर्वमातृगुह्यं हृदयं परमसिद्धं परकर्म्मच्छेदनं परमसिद्धिकरन्मातॄणां वचनं शुभं ।

ब्रह्मखण्डपदे रुद्रैरेकविंशाधिकं शतं ॥ १ ॥

तद्यथा, ओं नमश्चामुण्डे ब्रह्माणि अघोरे अमोघे वरदे विच्चे स्वाहा । ओं नमश्चामुण्डे माहेश्वरि अघोरे अमोघे वरदे विच्चे स्वाहा । ओं नमश्चामुण्डे कौमारि अघोरे अमोघे वरदे विच्चे स्वाहा । ओं नमश्चामुण्डे वैष्णवि अघोरे अमोघे वरदे विच्चे स्वाहा । ओं नमश्चामुण्डे वाराहि अघोरे अमोघे वरदे विच्चे स्वाहा । ओं नमश्चामुण्डे इन्द्राणि अघोरे अमोघे वरदे विच्चे स्वाहा । ओं नमश्चामुण्डे चण्डि अघोरे अमोघे वरदे विच्चे स्वाहा । ओं नमश्चामुण्डे ईशानि अघोरे अमोघे वरदे विच्चे स्वाहा[1] ।

यथाक्षरपदानां हि विष्णुखण्डन्द्वितीयकं ।

ओं नमश्चामुण्डे ऊर्द्ध्वकेशि ज्वलितशिखरे[2] विद्युज्जिह्वे तारकाक्षि पिङ्गलभ्रुवे विकृतदंष्ट्रे क्रुद्धे ओं मांसशोणितसुरासवप्रिये हस २ ओं नृत्य २ ओं विजृम्भय २ ओं मायात्रैलोक्यरूपसहस्रपरिवर्त्तिनीनां ओं बन्ध २ ओं कुट्ट २ चिरि २ हिरि २ भिरि २ त्रासनि २ भ्रामणि २ ओं द्रावणि २ क्षोभणि २ मारणि २ संजीवनि २ हेरि २ गेरि २ घेरि २ ओं मुरि २ ओं नमो मातृगणाय नमो नमो विच्चे ।

एकत्रिंशत्पदं शम्भोः शतमन्त्रैकसप्ततिः ॥ २ ॥
हे वौं पञ्चप्रणवाद्यन्तां त्रिखण्डीञ्च जपेद्द्यजेत् ।
हे घों आकुञ्जिकाहृदयं पदसन्धौ तु योजयेत ॥ ३ ॥
अकुलादित्रिमध्यस्थं कुलादेश्च त्रिमध्यगं । मध्यमादि त्रिमध्यस्थं पिण्डं पादे त्रिमध्यगं ॥४॥
त्र्यार्द्धमात्रासंयुक्तं प्रणवाद्यं शिखाशिवां ।
ओं क्ष्रौं शिखाभैरवाय नमः । स्खीं स्खौं स्खें सवीजत्र्यक्षरः ।
ह्रां ह्रीं ह्रैं निर्वीजन्त्र्यणं द्वात्रिंशद्वर्णकम्परं ॥ ५ ॥

---

१. ओं नमश्चामुण्डे माहेश्वरीत्यादिः, विच्चे स्वाहेत्यन्तः पाठः छ. पुस्तके नास्ति ।
२. ज्वलितशिख इति ख. ङ. घ. ञ. च ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

क्षादयश्च ककारान्ता अकुला च कुलक्रमात् । शशिनी भानुनी चैव पावनी शिव इत्यतः ॥९॥
गान्धारी णश्च पिण्डाक्षी चपला गजजिह्विका । म मृषा भयसारा स्यान्मध्यमा फोऽजराय च ॥
कुमारी कालरात्री न सङ्कटा द ध कालिका । फ शिवा भवघोरा ण ट वीभत्सा त विद्युता ॥
ठ विश्वम्भरा शंशिन्या ढ ज्वालामालया तथा । कराली दुर्जया रङ्गी वामा ज्येष्ठा च रौद्रयपि ॥

ख काली क कुलालम्वी अनुलोमा द पिण्डिनी ।
आ वेदिनी इ रूपी वै शान्तिर्मूर्त्तिः कलाकुला ॥ १० ॥
ऋ खड्गिनी उ वलिता लृ कुला लॄ तथा यदि ।
सुभगा वेदनादिन्या कराली अं च मध्यमा ॥ ११ ॥

अः अपेतरया पीठे पूज्याश्च शक्तयः क्रमात् ।

स्खां स्खीं स्खौं महाभैरवाय नमः । अक्षोद्या ह्यृक्षकर्णी च राक्षसी क्षपणक्षया ॥१२॥
पिङ्गाक्षी चाक्षया क्षेमा ब्रह्माण्यष्टकसंस्थिताः । इला लीलावती नीला लङ्का लङ्केश्वरी तथा ॥
लालसा विमला माला[1] माहेश्वर्य्यऽष्टके स्थिताः । हुताशना विशालाक्षी हूङ्कारी वडवामुखी ॥

हाहारवा तथा क्रूरा क्रोधा बाला खरानना ।
कौमार्य्या देहसम्भूताः पूजिताः सर्वसिद्धिदाः ॥ १५ ॥

सर्वज्ञा तरला तारा ऋग्वेदा च हयानना । सारासारस्वयङ्ग्राहा शाश्वती[2] वैष्णवीकुले ॥
तालुजिह्वा च रक्ताक्षी विद्युज्जिह्वा करङ्किणी । मेघनादा प्रचण्डोग्रा कालकर्णी कलिप्रिया ॥
वाराहीकुलसम्भूताः पूजनीया जयार्थिना । चम्पा चम्पावती चैव प्रचम्पा ज्वलिताना ॥१८॥
पिशाची पिचुवक्त्रा च लोलपा ऐन्द्रीसम्भवाः । पावनी याचनी चैव वामनी दमनी तथा ॥
विन्दुवेला वृहत्कुक्षी विद्युता विश्वरूपिणी । चामुण्डाकुलसम्भूता मण्डले पूजिता जये ॥२०॥
यमजिह्वा जयन्ती च दुर्जया च यमान्तिका[3] । विडाली रेवती चैव जया च विजया तथा ॥

महालक्ष्मीकुले जाता अष्टाष्टकमुदाहृतं ।

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये अष्टाष्टकादिर्नाम षट्चत्वारिंश-
दधिकशततमोऽध्यायः ।

सप्तचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

त्वरितापूजादिः ।

ईश्वर उवाच

ओँ गुह्यकुब्जिके हुं फट् मम सर्वोपद्रवान् यन्त्रमन्त्रतन्त्रचूर्णप्रयोगादिकं येन कृतं कारितं कुरुते करिष्यति कारयिष्यति तान् सर्वान् हन२ दंष्ट्राकरालिनि हैं ह्रीं हुं गुह्य-

---

१. लोला इति ज. ।　　२. सात्त्विकी इति ज. ।　　३. जयन्तिकेति ख. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कुब्जिकायै स्वाहा । ह्रौं ओं खे[1] वों गुह्यकुब्जिकायै नमः ।

ह्रीं सर्वजनक्षोभणी जनानुकर्षिणी ततः ।
ओं खं ख्यां[2], सर्वजनवशङ्करी तथा स्याज्जनमोहनी ।। १ ।।
ओं ख्यौं[3], सर्वजनस्तम्भनी ऐं खं खां क्षोभणी तथा ।
ऐं त्रितत्त्वं बीजं श्रेष्ठकुले पञ्चाक्षरी तथा ।। २ ।।

फं श्रीं क्षीं श्रीं ह्रीं क्षें वच्छे क्षे क्षे हूं फट् ह्रीं नमः । ओं ह्रां क्षे वच्छे क्षे क्षो ह्रीं फट् नवेयं त्वरिता पुनर्ज्ञेयाऽर्चिता जये ।

ह्रौं सिंहायेत्यासनं स्यात ह्रीं क्षे हृदयमीरितं ।
वच्छेऽथ शिरसे स्वाहा त्वरितायाः शिवः स्मृतः ।। ३ ।।
क्षें ह्रीं शिखायै वौषट् स्याद् भवेत् क्षें कवचाय हुं ।
हूं नेत्रत्रयाय वौषट् ह्रीमन्तश्च फडन्तकं ।। ४ ।।
ह्रीं कारी[4] खेचरी चण्डा छेदनी क्षोभणी क्रिया ।
क्षेमकारी च ह्रींकारी फट्कारी नवशक्तयः ।। ५ ।।
अथ दूतीः प्रवक्ष्यामि पूज्या इन्द्रादिगाश्च ताः ।

ह्रीं नले बहुतुण्डे[5] च खगे ह्रीं[6] खेचरे ज्वालिनि ज्वल ख खे छ छे शवविभीषणे[7] च छे चण्डे छेदनि करालि ख खे छे क्षे खरहाङ्गी ह्रीं । क्षे वक्षे कपिले ह क्षे हूं क्रूंतेजोवति रौद्रि मातः ह्रीं फे वे फे फे वक्रे वरी रे । पुटि पुटि वोरे हूं फट्[8] ब्रह्मवेतालि मध्ये ।

गुह्याङ्गानि च तत्त्वानि त्वरितायाः पुनर्वदे ।। ६ ।।
ह्रौं हूं हः[9] हृदये प्रोक्तं ह्रौं हश्च शिरः स्मृतं ।
फां ज्वल ज्वलेति च शिखा वर्म्मं इले ह्रं हु हुं ।। ७ ।।
क्रों क्रूं श्रीं नेत्रमित्युक्तं क्षौं अस्त्रं वै ततश्च फट् हुं खे वच्छे क्षेः ह्रीं क्षें हुं फट् वा ।
हुं शिरश्चैव मध्ये स्यात् पूर्वादौ खे सदाशिवे ।
व ईशः छे मनोन्मानी मक्षे तार्क्ष्यो ह्रीं च माधवः ।। ८ ।।
क्षें ब्रह्मा हुं तथादित्यो दारुणं फट् स्मृताः सदा ।

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये युद्धजयार्णवे त्वरितापूजादिर्नाम सप्तचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ।

---

१. क्रीं ख ख ये ख्रौं इति छ. ।
२. ओं ख ख्यां इति छ. । ओं स्फूं इति ग. ।
३. ओं ख ख्रौं इति छ. । ओं स्फैं इति झ. ।
४ क्रींकारी इति छ. ।
५. हीं नले वज्रतुण्डे इति ज. ।
६. खगे क्रीमिति छ. ।
७. शरविभीषणे इति ज. ।
८. क्रूं फट् इति ज. ।
९. क्रीं हूं ह इति छ. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अष्टचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

सङ्ग्रामविजयपूजा ।

ईश्वर उवाच

ओं डे ख ख्यां सूर्य्याय सङ्ग्रामविजयाय नमः । ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं ह्रौं ह्रः ।
षडङ्गानि तु सूर्य्यस्य सङ्ग्रामे जयदस्य हि ।
ओं हं खं खशोल्काय स्वाहा । स्फूं ह्रूं हुं क्रूं ओं ह्रौं क्रैं ।
प्रभूतं विमलं सारमाराध्यं परमं सुखं ॥ १ ॥

धर्म्मज्ञानञ्च वैराग्यमैश्वर्य्याद्यष्टकं यजेत् । अनन्तासनं सिंहासनं पद्मासनमतः परं ॥२॥
कर्णिकाकेशराण्येत्र सूर्य्यसोमाग्निमण्डलं । दीप्ता सूक्ष्मा[१] जया भद्रा विभूतिर्विमला तथा ॥
अमोघा विद्युता पूज्या नवमी सर्वतोमुखी । सत्त्वं रजस्तमश्चैव प्रकृतिं पुरुषं तथा ॥४॥
आत्मानञ्चान्तरात्मानं परमात्मानमर्च्चयेत् । सर्वे विन्दुसमायुक्ता मायानिलसमन्विताः ॥
उषा प्रभा च सन्ध्या च साया माया बलान्विता । विन्दुविष्णुसमायुक्ता[२] द्वारपालास्तथाष्टकं ॥
सूर्य्यं चण्डं प्रचण्डञ्च पूजयेद्गन्धकादिभिः । पूजया जपहोमाद्यैर्युद्धादौ विजयो भवेत् ॥७॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये युद्धजयार्णवे सङ्ग्रामविजयपूजा नाम
अष्टचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ।

ऊनपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

लक्षकोटिहोमः ।

ईश्वर उवाच

होमाद्रणादौ विजयो राज्याप्तिर्विघ्ननाशनं । कृच्छ्रेण शुद्धिमुत्पाद्य प्राणायामशतेन च ॥१॥
अन्तर्जले च गायत्रीं जप्त्वा षोडशधाचरेत् । प्राणायामांश्च पूर्वाह्णे जुहुयात् पावके हविः ॥
भैक्ष्ययावकभक्षी च फलमूलाशनोऽपि वा । क्षीरशक्तुघृताहार एकमाहारमाश्रयेत् ॥३॥
यावत्समाप्तिर्भवति लक्षहोमस्य पार्वति । दक्षिणा लक्षहोमान्ते गावो वस्त्राणि काञ्चनं ॥४॥
सर्वोत्पातसमुत्पत्तौ पञ्चभिर्दशभिर्द्विजैः । नास्ति लोके स उत्पातो यो ह्यनेन न शाम्यति ॥
मङ्गल्यं परमं नास्ति यदस्मादतिरिच्यते । कोटिहोमन्तु यो राजा कारयेत पूर्ववद्द्विजैः ॥
न तस्य शत्रवः सङ्ख्ये जातु तिष्ठन्ति कर्हिचित् ।
नं तस्य मारको देशे व्याधिर्वा जायते क्वचित् ॥ ७ ॥
अतिवृष्टिरनावृष्टिर्मूषकाः शलभाः शुकाः । राक्षसाद्याश्च शाम्यन्ति सर्वे च रिपवो रणे ॥८॥
कोटिहोमे तु वरयेद्ब्राह्मणान्विंशतिं तथा । शतञ्चाथ सहस्रं वा यथेष्टाम्भृतिमाप्नुयात ॥६॥

---

१. दीता धूमेति ञ. ।
२. विन्दु विन्दु समायुक्ता इति छ. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कोटिहोमन्तु यः कुर्य्याद् द्विजो भूपोऽथवा च विट्।
यदिच्छेत प्राप्नुयात्तत्तत् सशरीरो दिवं दिवं व्रजेत् ॥ १० ॥
गायत्र्या ग्रहमन्त्रैर्वा कुष्माण्डीजातवेदसैः। ऐन्द्रवारुणवायव्ययाम्याग्नेयैश्च वैष्णवैः ॥११॥
शाक्तेयैः शाम्भवैः सौरैर्मन्त्रैर्होमाच्चर्चनात्ततः।
अयुतेनाल्पसिद्धिः स्याल्लक्षहोमोऽखिलार्त्तिनुत ॥ १२ ॥
सर्वपीडादिनाशाय कोटिहोमोऽखिलार्थदः। यवव्रीहितिलक्षीरघृतकुशप्रसातिकाः ॥१३॥
पङ्कजोशीरविल्वाम्रदला होमे प्रकीर्त्तिताः। अष्टहस्तप्रमाणेन कोटिहोमेषु खातकं॥१४॥
तस्मादर्द्धप्रमाणेन लक्षहोमे विधीयते। होमोऽयुतेन लक्षेण कोट्याद्याद्यैः प्रकीर्त्तितः ॥१५॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये युद्धजयार्णवे अयुतलक्षकोटिहोमो नामो-
नपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः।

पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

मन्वन्तराणि।

अग्निरुवाच

मन्वन्तराणि वक्ष्यामि आद्यः स्वाम्भुवो मनुः। अग्नीध्राद्यास्तस्य सुता यमो नाम तदा सुराः॥
और्वाद्याश्च सप्तर्षय इन्द्रश्चैव शतक्रतुः। पारावताः सतुषिता देवाः स्वारोचिषेऽन्तरे ॥२॥
विपश्चित्तत्र देवेन्द्र ऊर्जस्तम्भादयो द्विजाः। चैत्रकिम्पुरुषाः पुत्रास्तृतीयश्चोत्तमो मनुः ॥३॥
सुशान्तिरिन्द्रो देवाश्च सुधामाद्या वशिष्ठजाः। सप्तर्षयोऽजाद्याः पुत्राश्चतुर्थस्तामसो मनुः ॥
स्वरूपाद्याः सुरगणाः शिखिरिन्द्रः सुरेश्वरः। ज्योतिर्द्धामादयो विप्रा नव ख्यातिमुखाः सुताः॥
रैवते वितथश्चेन्द्रो अमिताभास्तथा सुराः। हिरण्यरोमाद्या मुनयो[1] बलबन्धादयः सुताः॥६॥
मनोजवश्चाक्षुषेऽथ इन्द्रः स्वात्यादयः सुराः। सुमेधाद्या महर्षयः पुरुप्रभृतयः सुताः ॥७॥
विवस्वतः सुतो विप्रः श्राद्धदेवो मनुस्ततः। आदित्यवसुरुद्राद्या देवा इन्द्रः पुरन्दरः ॥८॥
वशिष्ठः काश्यपोऽथात्रिर्जमदग्निः सगोतमः। विश्वामित्रभरद्वाजौ मुनयः सप्त साम्प्रतं ॥९॥
इक्ष्वाकुप्रमुखाः पुत्रा अंशेन हरिराभवत्। स्वायम्भुवे मानसोऽभूदजितस्तदनन्तरे ॥१०॥
सत्यी हरिर्देववरो वैकुण्ठो वामनः क्रमात्। छायाजः सूर्य्यपुत्रस्तु भविता चाष्टमो मनुः ॥११॥
पूर्वस्य च सवर्णोऽसौ सावर्णिर्भविताष्टमः। सुतपाद्या देवगणा दीप्तिमद्द्रौणिकादयः ॥१२॥
मुनयो बलिरिन्द्रश्च विरजप्रमुखाः सुताः। नवमो दक्षसावर्णिः पाराद्याश्च तदा सुराः[2]॥१३॥
इन्द्रश्चैवाद्भुतस्तेषां सवनाद्या द्विजोत्तमाः। धृतकेत्वादयः पुत्रा ब्रह्मसावर्णिरित्यतः ॥१४॥
सुखादयो देवगणास्तेषां शान्तिः शतक्रतुः। हविष्याद्याश्च मुनयः सुक्षेत्राद्याश्च तत्सुताः ॥१५॥

---

१. हिरण्यरोमाद्या ऋषय इति ञ.। २. तथा सुरा इति छ.।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

धर्म्मसावर्णिकश्चाथ विहङ्गाद्यास्तदा सुराः। गणश्चेन्द्रो निश्चराद्या मुनयः पुत्रका मनोः ॥१६॥
सर्वत्रगाद्या रुद्राख्यः सावर्णिर्भविता मनुः। ऋतधामा सुरेन्द्रश्च हरिताद्याश्च देवताः ॥१७॥
तपस्याद्याः सप्तर्षयः सुता वै देववन्मुखाः। मनुस्त्रयीदशी रौच्यः सुत्रामाणादयः सुराः॥१८॥
इन्द्रो दिवस्पतिस्तेषां दानवादिविमर्दनः। निर्मोहाद्याः सप्तर्षयश्चित्रसेनादयः सुताः ॥१६॥
मनुश्चतुर्दशो भौत्यः शुचिरिन्द्रो भविष्यति। चाक्षुषाद्याः सुरगणा अग्निबाह्वादयो द्विजाः॥२०॥
चतुर्दशस्य भौत्यस्य पुत्रा ऊरुमुखा मनोः। प्रवर्त्तयन्ति वेदांश्च भुवि सप्तर्षयो दिवः ॥२१॥
देवा यज्ञभुजस्ते तु भूः पुत्रैः परिपाल्यते। ब्रह्मणो दिवसे ब्रह्मन्मनवस्तु चतुर्दश ॥२२॥
मन्वाद्याश्च हरिर्वेदं द्वापरान्ते विभेद सः। आद्यो वेदश्चतुष्पादः शतसाहस्रसम्मितः ॥२३॥
एकश्चासीद् यजुर्वेदस्तं चतुर्द्धा व्यकल्पयत्। आध्वर्य्यवं यजुर्भिस्तु ऋग्भिर्होत्रं तथा मुनिः॥
औद्गात्रं सामभिश्चक्रे ब्रह्मत्वञ्चाप्यथर्वभिः। प्रथमं व्यासशिष्यस्तु पैलो ह्यृग्वेदपारगः॥२५॥
इन्द्रः प्रमतये प्रादाद्बास्कलाय च संहितां। बौध्यादिभ्यो ददौ सोपि चतुर्द्धा निजसंहितां॥२६॥
यजुर्वेदतरोः शाखाः सप्तविंशन्महामतिः। वैशम्पायननामासौ व्यासशिष्यश्चकार वै ॥२७॥
काण्वा वाजसनेयाद्या याज्ञवल्क्यादिभिः स्मृताः।
सामवेदतरोः शाखा व्यासशिष्यः सजैमिनिः॥ २८॥
समन्तुश्च सुकर्म्मा च एकैकां संहितां ततः। गृह्णते च सुकर्म्माख्यः सहस्रं संहितां गुरुः ॥२६॥
सुमन्तुश्चाथर्वतरुं व्यासशिष्यो विभेद तं। शिष्यानध्यापयामास पैप्यलादान् सहस्रशः॥३०॥
पुराणसंहितां चक्रे सूतो व्यासप्रसादतः।

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये मन्वन्तराणि नाम
पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः।

एकपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

वर्णेतरधर्माः।

अग्निरुवाच

मन्वादयो भुक्तिमुक्तिधर्म्मांश्चीर्त्त्वाप्नुवन्ति यान्। प्रोचे परशुरामाय वरुणोक्तन्तु पुष्करः॥
वर्णाश्रमेतराणान्ते धर्मान्वक्ष्यामि सर्वदान्। मन्वादिभिर्निगदितान् वासुदेवादितुष्टिदान् ॥२॥

पुष्कर उवाच

अहिंसा सत्यवचनन्दया भूतेष्वनुग्रहः। तीर्थानुसरणं दानं ब्रह्मचर्य्यममत्सरः ॥३॥
देवद्विजातिशुश्रूषा गुरूणाञ्च भृगूत्तम। श्रवणं सर्वधर्म्माणां पितॄणां पूजनं तथा ॥४॥
भक्तिश्च नृपतौ नित्यं तथा सच्छास्त्रनेत्रता। आनृशंस्यन्तितिक्षा च तथा चास्तिक्यमेव च॥
वर्णाश्रमाणां सामान्यं धर्म्माधर्मं[1] समीरितं। यजनं याजनं दानं वेदाद्यध्यापनक्रिया ॥६॥

---

१. धर्मरूपमिति ग. घ. ङ. छ. ञ. च।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रतिग्रहश्चाध्ययनं विप्रकर्माणि निर्दिशेत् । दानमध्ययनञ्चैव यजनञ्च यथाविधि ॥७॥
क्षत्रियस्य सवैश्यस्य कर्मेदं परिकीर्त्तितं । क्षत्रियस्य विशेषेण पालनं दुष्टनिग्रहः ॥८॥
कृषिगोरक्ष्यवाणिज्यं वैश्यस्य परिकीर्त्तितं । शूद्रस्य द्विजशुश्रूषा सर्वशिल्पानि वाप्यथ ॥९॥
मौञ्जीबन्धनतो जन्म विप्रादेश्च द्वितीयकं । आनुलोम्येन वर्णानां जातिर्म्मातृसमा स्मृता ॥१०॥
चण्डालो ब्राह्मणीपुत्रः शूद्राच्च प्रतिलोमतः । सूतस्तु क्षत्रियाज्जातो वैश्याद्वै देवलस्तथा ॥११॥

पुक्कसः क्षत्रियापुत्रः शूद्रात् स्यात् प्रतिलोमजः ।
मागधः स्यात्तथा वैश्याच्छूद्रादायोगवो भवेत् ॥ १२ ॥

वैश्यायां प्रतिलोमेभ्यः प्रतिलोमाः सहस्रशः । विवाहः सदृशैस्तेषां नोत्तमैर्नाधमैस्तथा ॥१३॥
चण्डालकर्म्म निर्द्दिष्टं बध्यानां घातनं तथा । स्त्रीजीवन्तु तद्रक्षाप्रोक्तं[1] वैदेहकस्य च ॥१४॥
सूतानामश्वसारथ्यं पुक्कसानाञ्च व्याधता । स्तुतिक्रिया मागधानां तथा चायोगवस्य च ॥
रङ्गावतरणं प्रोक्तं तथा शिल्पैश्च जीवनं । वहिर्ग्रामनिवासश्च मृतचेलस्य धारणं ॥१६॥
न संस्पर्शस्तथैवान्यैश्चण्डालस्य विधीयते । ब्राह्मणार्थे गवार्थे वा देहत्यागोऽत्र यः कृतः ॥
स्त्रीबालाद्युपपत्तौ वा वाह्यानां सिद्धिकारणं । सङ्करे जातयो ज्ञेयाः पितुर्मातुश्च कर्मतः ॥१८॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये वर्णान्तरधर्मा नामैकपञ्चाश-
दधिकशततमोऽध्यायः ।

द्विपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

गृहस्थवृत्तिः ।

पुष्कर उवाच

आजीवंस्तु यथोक्तेन ब्राह्मणः स्वेन कर्मणा । क्षत्रविट्शूद्रधर्मेण जीवेन्नैव तु शूद्रजात् ॥१॥
कृषिवाणिज्यगोरक्ष्यं कुशीदञ्च द्विजश्चरेत् । गोरसं गुडलवणलाक्षामांसानि वर्जयेत् ॥२॥
भूमिं भित्वौषधीश्छित्वा हत्वा कीटपिपीलिकान् । पुनन्ति खलु यज्ञेन कर्षका देवपूजनात् ॥
हलमष्टगवं धर्म्यं षड्गवं जीवितार्थिनां । चतुर्गवं नृशंसानां द्विगवं धर्मघातिनाम् ॥४॥
ऋतामृताभ्यां जीवेत मृतेन प्रमृतेन वा । सत्यानृताभ्यामपि वा न स्ववृत्त्या कदा चन ॥५॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये गृहस्थवृत्तयो नाम द्विपञ्चाश-
दधिकशततमोऽध्यायः ।

---

१. स्त्रीजीवनञ्च तत्र स्यात् प्रोक्तमिति ग. घ. ङ. ञ. च ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

त्रिपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मचर्याश्रमधर्मः ।

पुष्कर उवाच

धर्ममाश्रमिणां वक्ष्ये भुक्तिमुक्तिप्रदं शृणु । षोडशर्त्तु निशा स्त्रीणामाद्यास्तिस्रस्तु गर्हिताः ॥
व्रजेद्युग्मासु पुत्रार्थी कर्माधानिकमिष्यते । गर्भस्य स्पष्टताज्ञाने सवनं स्पन्दनात् पुरा ॥२॥
षष्ठेऽष्टमे वा सीमन्तं पुत्रीयं नामभं शुभं । अच्छिन्ननाड्यां कर्त्तव्यं जातकर्म विचक्षणैः ॥३॥
अशौचे तु व्यतिक्रान्ते नामकर्म विधीयते । शर्म्मान्तं ब्राह्मणस्योक्तं वर्मान्तं क्षत्रियस्य तु ॥
गुप्तदासात्मकं नाम प्रशस्तं वैश्यशूद्रयोः । शर्मान्तं ब्रह्मणस्योक्तं वर्मान्तं क्षत्रियस्य च ॥५॥
गुप्तदासात्मकं नाम प्रशस्तं वैश्यशूद्रयोः । बालं निवेदयेद्भर्त्रे तव पुत्रोऽयमित्युत ॥६॥
यथाकुलन्तु चूडाकृद् ब्राह्मणस्योपनायनं । गर्भाष्टमेऽष्टमे वाब्दे गर्भादेकादशे नृपे ॥७॥

गर्भात्तु द्वादशे वैश्ये षोड़शाब्दादितो न हि ।
मुञ्जानां वल्कलानान्तु क्रमान्मौञ्जाः प्रकीर्त्तिताः ॥ ८ ॥

मार्गवैयाघ्रवास्तानि चर्माणि व्रतचारिणां । पर्णपिप्यलविल्वानां क्रमाद्दण्डाः प्रकीर्तिताः ॥
केशदेशललाटास्यतुल्याः प्रोक्ताः क्रमेण तु । अवक्राः सत्वचः सर्वे नाविप्लुष्टास्तु दण्डकाः ॥
वासोपवीते कार्पासक्षौमोर्णानां यथाक्रमं । आदिमध्यावसानेषु भवच्छब्दोपलक्षितं ॥११॥
प्रथमं तत्र भिक्षेत यत्र भिक्षा ध्रुवं भवेत् । स्त्रीणाममन्त्रतस्तानि विवाहस्तु समन्त्रकः ॥१२॥
उपनीय गुरुः शिष्यं सिक्षयेच्छौचमादितः । आचारमग्निकार्य्यं च सन्ध्योपासनमेव च ॥

आयुष्यं प्राङ्मुखो भुङ्क्ते यशस्यं दक्षिणामुखः ।
श्रियं प्रत्यङ्मुखो भुङ्ते ऋतं भुङ्क्ते उदङ्मुखः ॥ १४ ॥

सायं प्रातश्च जुहुयान् नामेध्यं व्यस्तहस्तकं । मधु मांसं जनैः सार्द्धं गीतं नृत्यञ्च वै त्यजेत्[१]॥
हिंसाम्परापवादं च अश्लीलं च विशेषतः । दण्डादि धारयेन्नष्टमप्सु क्षिप्त्वान्यधारणं ॥१६॥
वेदस्वीकरणं कृत्वा स्नायाद्वै दत्तदक्षिणः । नैष्ठिको ब्रह्मचारी वा देहान्तं निवसेद्गुरौ ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये ब्रह्मचर्याश्रमो नाम त्रिपञ्चाश-

दधिकशततमोऽध्यायः ।

---

१. नृत्यञ्च वर्जयेदिति ख. ग. घ. ङ. छ. ञ. ट. च । सायं प्रातश्चेत्यादिः, नृत्यञ्च वै त्यजेदि-
त्यन्तः पाठः ज. पुस्तके नास्ति ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

चतुःपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

विवाहः ।

पुष्कर उवाच

विप्रश्चतस्रो विन्देत भार्य्यास्तिस्रस्तु भूमिपः ।
द्वे च वैश्यो यथाकामं भार्य्यैकामपि चान्त्यजः ॥ १ ॥

धर्म्मकार्य्याणि सर्वाणि न कार्य्याण्यसवर्णया । पाणिर्ग्राह्यः सवर्णासु गृह्णीयात क्षत्रिया शरं ॥
वैश्या प्रतोदमादद्यादृशां वै चान्त्यजा तथा । सकृत् कन्या प्रदातव्या हरंस्तां चौरदण्डभाक् ॥
अपत्यविक्रयासक्ते निष्कृतिर्न्न विधीयते । कन्यादानं शचीयागो[1] विवाहोऽथ चतुर्थिका ॥
विवाहमेतत् कथितं नामकर्म्मचतुष्टयं । नष्टे मृते प्रव्रजिते क्लीवे च पतिते पतौ ॥५॥
पञ्चस्वापत्सु नारीणां पतिरन्यो विधीयते । मृते तु देवरे देयात् तदभावे यथेच्छया ॥६॥
पूर्व्वात्रितयमाग्नेयं वायव्यं चोत्तरात्रयं । रोहिणी चेति चरणे भगणः शस्यते सदा ॥७॥
नैकगोत्रान्तु वरयेन्नैकार्षेयाञ्च भार्गव । पितृतः सप्तमादूर्द्ध्वं मातृतः पञ्चमात्तथा ॥८॥
आहूय दानं ब्राह्मः स्यात् कुलशीलयुताय तु । पुरुषांस्तारयेत्तज्जो नित्यं कन्याप्रदानतः ॥९॥
तथा गोमिथुनादानाद्विवाहस्त्वार्ष उच्यते । प्रार्थिता दीयते यस्य प्राजापत्यः स धर्म्मकृत् ॥
शुल्केन चासुरो मन्दो गान्धर्व्वो वरणान्मिथः । राक्षसो युद्धहरणात् पैशाचः कन्यकाच्छलात् ॥
वैवाहिकेऽह्नि[2] कुर्व्वीत कुम्भकारमृदा शचीं । जलाशये तु तां पूज्य वाद्याद्यैः[3] स्त्रीं गृहन्नयेत् ॥
प्रसुप्ते केशवे नैव विवाहः कार्य्य एव हि । पौषे चैत्रे कुजदिने रिक्ताविष्टितिथौ न च ॥१३॥
न शुक्रजीवेऽस्तमिते न शशाङ्के ग्रहार्द्दिते । अर्कार्किभौमयुक्ते भे व्यतीपातहते न हि ॥१४॥
सौम्यं पित्र्यञ्च वायव्यं सावित्रं रोहिणी तथा । उत्तरात्रितयं मूलं मैत्रं पौष्णं विवाहभं ॥१५॥
मनुषाख्यस्तथा लग्नो मानुषाख्यांशकः शुभः । तृतीये च तथा षष्ठे दशमैकादशेऽष्टमे ॥१६॥
अर्कार्किचन्द्रतनयाः प्रशस्ता न कुजोऽष्टमः । सप्तान्त्याष्टमवर्गेषु शेषाः शस्ता ग्रहोत्तमाः ॥
तेषामपि तथा मध्यात् षष्ठः शुक्रो न शस्यते । वैवाहिके भे कर्त्तव्या तथैव च चतुर्थिका ॥
न दातव्या ग्रहास्तत्र चतुराद्यास्तथैकगाः । पर्व्ववर्जं स्त्रियं गच्छेत् सत्या दत्ता सदा रतिः ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये विवाहो नाम चतुःपञ्चाशदधिक-
शततमोऽध्यायः ।

---

१. शतीयोग इति ख. छ. च । २. वैवाहिकेन्द्रे इति घ. ङ. ञ. ट. च ।
३. वाद्यौघैरिति ग. घ. ञ. च ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पञ्चपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

आचारः ।

पुष्कर उवाच

ब्राह्मे मुहूर्त्ते चोत्थाय विष्णवादीन् दैवतान् स्मरेत् ।
उभे मूत्रपुरीषे तु दिवा कुर्य्यादुदङ्मुखः ॥ १ ॥
रात्रौ च दक्षिणे कुर्य्यादुभे सन्ध्ये यथा दिवा ।
न मार्गादौ जले वीथ्यां सतृणायां सदाचरेत् ॥ २ ॥

शौचं कृत्वा मृदाचम्य भक्षयेदन्तधावनं । नित्यं नैमित्तिकं काम्यं क्रियाङ्गं मलकर्षणं ॥३॥
क्रियास्नानं तथा षष्ठं षोढा स्नानं प्रकीर्त्तितं । अस्नातस्याफलं कर्म्म प्रातःस्नानं चरेत्ततः ॥
भूमिष्ठमुद्धृतात् पुण्यं ततः प्रस्रवणोदकं । ततोऽपि सारसं पुण्यं तस्मान्नादेयमुच्यते ॥५॥
तीर्थतोयं ततः पुण्यं गाङ्गं पुण्यन्तु सर्वतः । संशोधितमलः पूर्व्वं निमग्नश्च जलाशये ॥६॥
उपस्पृश्य ततः कुर्य्यादम्भसः परिमार्जनं । हिरण्यवर्णास्तिसृभिः शन्नो देवीति चाप्यथ ॥७॥
आपोहिष्ठेति तिसृभिरिदमापस्तथैव च । ततो जलाशये मग्नः कुर्य्यादन्तर्जलं जपं ॥८॥
तत्राघमर्षणं सूक्तं द्रुपदां वा तथा जपेत् । युञ्जते मन इत्येवं सूक्तं वाप्यथ पौरुषं ॥९॥
गायत्रीं तु विशेषेण अघमर्षणसूक्तके । देवता भाववृत्तस्तु ऋषिश्चैवाघमर्षणः ॥१०॥
छन्दश्चानुष्टुभं तस्य भाववृत्तो हरिः स्मृतः । आपीडमानः शाटीं तु देवतापितृतर्पणं[१] ॥११॥
पौरुषेण तु सूक्तेन ददेच्चैवोदकाञ्जलिं । ततोऽग्निहवनं[२] कुर्य्याद्दानं दत्वा[३] तु शक्तितः ॥१२॥
ततः समभिगच्छेत योगक्षेमार्थमीश्वरं । आसनं शयनं यानं जायाऽपत्यकमण्डलुः ॥१३॥
आत्मनः शुचिरेतानि परेषां न शुचिर्भवेत् । भाराक्रान्तस्य गुर्व्विण्याः पन्था देयो गुरुष्वपि॥
न पश्येच्चार्कमुद्यन्तन्नास्तं यान्तं न चाम्भसि । नेक्षेन्नग्नां स्त्रियं कूपं शूनास्थानमघौघिनं ॥
कार्पासास्थि तथा भस्म नाक्रामेद् यच्च कुत्सितं । अन्तःपुरं वित्तगृहं परदौत्यं व्रजेन्न हि[४] ॥
नारोहेद्विषमान्नावन्न वृक्षं न च पर्वतं । अर्थायतनशास्त्रेषु तथैव स्यात् कुतूहली ॥१७॥
लोष्टमर्दी तृणच्छेदी नखखादी विनश्यति । मुखादिवादनं नेहेद् विना दीपं न रात्रिगः[५]॥
नाद्वारेण विशेद्वेश्म न च वक्त्रं विरागयेत् । कथाभङ्गं न कुर्व्वीत न च वासोविपर्य्ययं ॥
भद्रं भद्रमिति ब्रूयान्नानिष्टं कीर्त्तयेत् कचित् । पालाशमासनं वर्ज्यं देवाद्रिच्छाययाऽ[६] व्रजेत् ॥

---

१. तत्राघमर्षणमित्यादिः देवतापितृतर्पणमित्यन्तः पाठः झ. पुस्तके नास्ति ।
२. ततोऽग्निहरणमिति ङ. छ. च ।
३. दीपं दत्वेति झ. ।
४. परभृतो भवेन्न हि इति झ. ।
५. लोष्टमर्दीत्यादिः, नरात्रिग इत्यन्तः पाठः, ग पुस्तके नास्ति ।
६. देवाद्रिच्छाययेति ख. छ. ग. च ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

न मध्ये पूज्ययोर्यायात् नोच्छिष्टस्तारकादिदृक्।
नद्यान्नान्यां नदीं ब्रूयान्न कण्डूयेद् द्विहस्तकं ॥ २१ ॥

असन्तर्प्य पितॄन् देवान्नदीपारञ्च न व्रजेत् । मलादि प्रक्षिपेन्नाप्सु[१] न नग्नः स्नानमाचरेत् ॥
ततः समभिगच्छेत योगक्षेमार्थमीश्वरं । स्रजन्नात्मनापनयेत् खरादिक-रजस्त्यजेत ॥२३॥
हीनान्नावहसेत् गच्छेन्नादेशे निवसेच्च तैः । वैद्यराजनदीहीने म्लेच्छस्त्रीबहुनायके ॥२४॥
रजस्वलादिपतितैर्न भाषेत केशवं स्मरेत् । नासंवृतमुखः कुर्य्याद्धासं[२] जृम्भां तथा क्षुतं ॥२५॥
प्रभोरप्यवमानं स्वङ्गोपयेद्वचनं बुधः । इन्द्रियाणां नानुकूली वेगरोधं न कारयेत् ॥२६॥

नोपेक्षितव्यो व्याधिः स्याद्रिपुरल्पोऽपि[३] भार्गव ।
रथ्यातिगः सदाचामेत्[४] विभृयान्नाग्निवारिणी ॥ २७ ॥

न हुङ्कुर्य्याच्छिवं पूज्यं पादं पादेन नाक्रमेत् । प्रत्यक्षं वा परोक्षं वा कस्य चिन्नाप्रियं वदेत् ॥
वेदशास्त्रनरेन्द्रर्षिदेवनिन्दां विवर्जयेत । स्त्रीणामीर्षा[५] न कर्त्तव्या विश्वासन्तासु वर्जयेत् ॥
धर्मश्रुति देवरतिं[६] कुर्य्याद्धर्मादि नित्यशः[७] । सोमस्य पूजां जन्मर्क्षे विप्रदेवादिपूजनं ॥३०॥
षष्ठीचतुर्दश्यष्टम्यामभ्यङ्गं वर्जयेत्तथा । दूराद्गृहान् मूत्रविष्ठे नोत्तमैर्वैरमाचरेत् ॥३१॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये आचाराध्यायो नाम पञ्चपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ।

षट्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

द्रव्यशुद्धिः ।

पुष्कर उवाच

द्रव्यशुद्धिं प्रवक्ष्यामि पुनःपाकेन मृण्मयं । शुद्ध्येन् मूत्रपुरीषाद्यैः स्पृष्टन्ताम्रं सुवर्णकं ॥१॥
आवर्त्तितञ्चान्यथा तु वारिणाम्लेन ताम्रकं । क्षारेण कांस्यलोहानां मुक्तादेः क्षालनेन तु ॥२॥
अब्जानां[८] चैव भाण्डानां सर्वस्याश्ममयस्य च । शाकरज्जुमूलफलवैदलानां तथैव च ॥३॥
मार्जनाद्यज्ञपात्राणां पाणिना यज्ञकर्मणि । उष्णाम्बुना सस्नेहानां शुद्धिः सम्मार्जनाद् गृहे ॥

---

१. मलादि क्षेपयेन्नाप्सु इति ख. ट. च । २. कुर्याद्धास्यमिति ख. ट. च ।
३. रिपुर्वत्सोपि इति ङ. । ४. समाचामेदिति छ. ।
५. स्त्रीणामिच्छेति क. ।
६. देवनतिमिति ग. घ. ङ. ञ. ट. च । वेदनतिमिति ख. छ. च ।
७. भद्रं भद्रमिति ब्रूयादित्यादिः, कुर्याद्धर्मादि नित्यश इत्यन्तः पाठः झ. पुस्तके नास्ति ।
८. दुष्टानामिति ट. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शोधनान्म्रक्षणाद्वस्त्रे[1] मृत्तिकाद्भिर्विशोधनं । बहुवस्त्रे प्रोक्षणाच्च दारवाणाञ्च तक्षणात ॥५॥
प्रोक्षणात् संहतानान्तु द्रवाणाञ्च तथोत्प्लवात् । शयनासनयानानां शूर्पस्य शकटस्य च ॥६॥
शुद्धिः सम्प्रोक्षणाज् ज्ञेया पलालेन्धनयोस्तथा । सिद्धार्थकानाङ्कल्केन शृङ्गदन्तमयस्य च ॥

गोवालैः पलपात्राणामस्थ्नां स्याच्छृङ्गवत्तथा ।
निर्यासानां गुडानाञ्च लवणानां च शोषणात् ॥ ८ ॥

कुसुम्भकुसुमानाञ्च ऊर्णाकार्पासयोस्तथा । शुद्धन्नदीगतं तोयं पुण्यन्तद्वत् प्रसारितं ॥९॥
मुखवर्जञ्च गौः शुद्धा शुद्धमश्वाजयोर्मुखं । नारीणाञ्चैव वत्सानां शकुनीनां शुनो मुखं ॥

मुखैः प्रस्रवणे वृत्ते मृगयायां सदा शुचि ।
भुक्त्वा क्षुत्त्वा तथा सुप्त्वा पीत्वा चाम्भो विगाह्य च ॥ ११ ॥

रथ्यामाक्रम्य चाचामेद्वासो विपरिधाय च । मार्जारश्चङ्क्रमाच्छुद्धश्चतुर्थेऽह्नि रजस्वला ॥

स्नाता स्त्री पञ्चमे योग्या दैवे पित्र्ये च कर्म्मणि ।
पञ्चापाने दशैकस्मिन्नुभयोः सप्त मृत्तिकाः ॥ १३ ॥

एकां लिङ्गे मृदं दद्यात् करयोस्त्रिद्विमृत्तिकाः । ब्रह्मचारिवनस्थानां यतीनाञ्च चतुर्गुणं ॥१४॥
श्रीफलैरंशुपट्टानां क्षौमाणाङ्गौरसर्षपैः । शुद्धिः पर्युदय तोयेन मृगलोम्नां प्रकीर्त्तिता ॥१५॥

पुष्पाणाञ्च फलानाञ्च प्रोक्षणाज्जलतोऽखिलं ।

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये द्रव्यशुद्धिर्नाम षट्पञ्चाशदधिक-
शततमोऽध्यायः ।

सप्तपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

शावाशौचादिः ।

पुष्कर उवाच

प्रेतशुद्धिं प्रवक्ष्यामि सूतिकाशुद्धिमेव च । दशाहं शावमाशौचं सपिण्डेषु विधीयते ॥१॥
जनने च तथा शुद्धिर्ब्राह्मणानां भृगूत्तम । द्वादशाहेन राजन्यः पक्षाद्वैश्योऽथ मासतः ॥२॥
शूद्रोऽनुलोमतो दासे स्वामितुल्यन्त्वशौचकं । षड्भिस्त्रिभिरथैकेन क्षत्रविट्शूद्रयोनिषु ॥३॥
ब्राह्मणः शुद्धिमाप्नोति क्षत्रियस्तु तथैव च । विट्शूद्रयोनेः शुद्धिः स्यात् क्रमात् परशुरामक ॥
षड्रात्रेण त्रिरात्रेण षड्भिः शूद्रे तथा विशः । आदन्तजननात् सद्य आचूडान्नैशिकी श्रुतिः[2] ॥
त्रिरात्रमाव्रतादेशाद्दशरात्रमतः परं । ऊनत्रैवार्षिके शूद्रे पञ्चाहाच्छुद्धिरिष्यते ॥६॥
द्वादशाहेन शुद्धिः स्यादतीते वत्सरत्रये । गतैः संवत्सरैः षड्भिः शुद्धिर्मासेन कीर्त्तिता ॥

स्त्रीणामकृतचूड़ानां विशुद्धिर्नैशिकी स्मृता ।
तथा च कृतचूड़ानां त्र्यहाच्छुद्ध्यन्ति बान्धवाः ॥ ८ ॥

---

१. शोधनाम्युक्षणाद्वस्त्रे इति घ. ङ. च । २. आचडान्नैशिकी तथेति ट. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विवाहितासु नाशौचं पितृपक्षे विधीयते । पितुर्गृहे प्रसूतानां विशुद्धिर्नैशिकी स्मृता ॥९॥
सूतिका दशरात्रेण शुद्धिमाप्नोति नान्यथा । विवाहिता हि चेत् कन्या म्रियते पितृवेश्मनि ॥
तस्यास्त्रिरात्राच्छुद्ध्यन्ति बान्धवा नात्र संशयः । समानं लघ्वशौचन्तु प्रथमेन समापयेत् ॥
असमानं द्वितीयेन धर्म्मराजवचो यथा । देशान्तरस्थः श्रुत्वा तु कुल्यानां मरणोद्भवौ ॥१२॥
यच्छेषं दशरात्रस्य तावदेवाशुचिर्भवेत् । अतीते दशरात्रे तु त्रिरात्रमशुचिर्भवेत् ॥१३॥
तथा संवत्सरेऽतीते स्नात एव विशुद्ध्यति । मातामहे तथाऽतीते आचार्य्ये च तथा मृते ॥
रात्रिभिर्म्मासतुल्याभिर्गर्भस्रावे विशोधनं । सपिण्डे ब्राह्मणे वर्णाः सर्व्वे एवाविशेषतः ॥
दशरात्रेण शुद्ध्यन्ति द्वादशाहेन भूमिपः । वैश्याः पञ्चदशाहेन शूद्रा मासेन भार्गव ॥१६॥
उच्छिष्टसन्निधावेकं तथा पिण्डं निवेदयेत् । कीर्त्तयेच्च तथा तस्य नामगोत्रे समाहितः ॥
भुक्तवत्सु द्विजेन्द्रेषु पूजितेषु धनेन च[१] । विसृष्टाक्षततोयेषु गोत्रनामानुकीर्त्तनैः ॥१८॥
चतुरङ्गुलविस्तारं तत्खातन्तावदन्तरं । वितस्तिदीर्घं कर्त्तव्यं विकर्षूणां तथा त्रयं ॥१९॥
विकर्षूणां समीपे च ज्वालयेज् ज्वलनत्रयं । सोमाय वह्नये राम यमाय च समासतः ॥२०॥
जुहुयादाहुतीः सम्यक् सर्वत्रैव चतुस्त्रयः । पिण्डनिर्व्वपणं कुर्य्यात् प्राग्वदेव पृथक् पृथक् ॥
अन्नेन दध्ना मधुना तथा मांसेन पूरयेत् । मध्ये चेदधिमासः स्यात् कुर्य्यादभ्यधिकन्तु तत् ॥
अथवा द्वादशाहेन सर्व्वमेतत समापयेत् । संवत्सरस्य मध्ये च यदि स्यादधिमासकः ॥
तदा द्वादशके श्राद्धे कार्य्यं तदधिकं भवेत् । संवत्सरे समाप्ते तु श्राद्धं श्राद्धवदाचरेत् ॥
प्रेताय तत ऊर्द्ध्वं च तस्यैव पुरुषत्रये । पिण्डान् विनिर्वपेत्तद्वच्चतुरस्तु समाहितः ॥२५॥
सम्पूज्य दत्वा पृथिवी समाना इति चाप्यथ । योजयेत् प्रेतपिण्डं तु पिण्डेष्वन्येषु भार्गव ॥
प्रेतपात्रं च पात्रेषु तथैव विनियोजयेत् । पृथक् पृथक् प्रकर्त्तव्यं कर्मैतत कर्म्मपात्रके ॥२७॥
मन्त्रवर्जमिदं कर्म्म शूद्रस्य तु विधीयते । सपिण्डीकरणं स्त्रीणां कार्य्यमेवं तदा भवेत्[२] ॥२८॥
श्राद्धं कुर्य्याच्च प्रत्यब्दं प्रेते कुम्भान्नमब्दकं । गङ्गायाः सिकता धारा यथा वर्षति वासवे ॥

शक्या गणयितुं लोके नत्वतीताः पितामहाः ।
काले सततगे स्थैर्यं नास्ति तस्मात क्रियां चरेत् ॥ ३० ॥

देवत्वे यातनास्थाने प्रेतः श्राद्धं कृतं लभेत । नोपकुर्य्यान्नरः शोचन् प्रेतस्यात्मन एव वा ॥
भृग्वग्निपाशकाम्भोभिर्म्मृतानामात्मघातिनां । पतितानां च नाशौचं विद्युच्छस्त्रहताश्च ये ॥३२॥
यतिव्रतिब्रह्मचारिनृपकारुकदीक्षिताः । राजाज्ञाकारिणो[३] ये च स्नायाद्वै प्रेतगाम्यपि ॥३३॥
मैथुने कटधूमे च सद्यः स्नानं विधीयते । द्विजं न निर्हरेत्[४] प्रेतं शूद्रेण तु कथञ्चन ॥३४॥
न च शूद्रं द्विजेनापि तयोर्दोषो हि जायते[५] । अनाथविप्रप्रेतस्य वहनात स्वर्गलोकभाक् ॥

---

१. धनेषु चेति क. ख. घ. ङ. छ. ज. ञ. च ।
२. कार्यमेवं तथा भवेदिति छ. ङ. ञ. च । कार्यमेतत्तथा भवेदिति झ. ।
३. राजाज्ञाकारका इति ट. ।
४. न निर्दहेदिति ख. ।
५. तयोर्दोषोऽभिजायते इति ट. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सङ्ग्रामे जयमाप्नोति प्रेतेऽनाथे च काष्ठदः । सङ्कल्प्य बान्धवं प्रेतमपसव्येन तां चितिं ॥
परिक्रम्य ततः स्नानं कुर्य्युः सर्व्वे सवाससः । प्रेताय च तथा दद्युर्स्त्रीश्चैवोदकाञ्जलीन् ॥
द्वार्य्यश्मनि पदं दत्वा प्रविशेयुस्तथा गृहं । अक्षतान्निक्षिपेद्वह्नौ निम्बपत्रं विदश्य च ॥३८॥
पृथक् शयीरन् भूमौ च क्रीतलब्धाशनो भवेत् ।
एकः पिण्डो दशाहे तु श्मश्रुकर्म्मकरः शुचिः ॥ ३९ ॥
सिद्धार्थकैस्तिलैर्व्विद्वान् मज्जेद्वासोपरं दधत्[1] । अजातदन्ते तनये शिशौ गर्भस्नुते तथा ॥
कार्य्यो नैवाग्निसंस्कारो नैव चास्योदकक्रिया । चतुर्थे च दिने कार्य्यस्तथास्थ्नां चैव सञ्चयः ॥
अस्थिसञ्चयनादूर्द्ध्वमङ्गस्पर्शो विधीयते ।

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये शावाशौचं नाम सप्तपञ्चाशदधिक-
शततमोऽध्यायः ।

अष्टपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

स्नावाद्यशौचं ।

पुष्कर उवाच

स्नावाशौचं प्रवक्ष्यामि मन्वादिमुनिसम्मतं । रात्रिभिर्म्मासतुल्याभिर्गर्भस्नावे त्र्यहेण वा ॥
चातुर्म्मासिकपातान्ते दशाहं पञ्चमासतः । राजन्ये च चतूरात्रं वैश्ये पञ्चाहमेव च ॥२॥
अष्टाहेन तु शूद्रस्य द्वादशाहादतः परं । स्त्रीणां विशुद्धिरुदिता[2] स्नानमात्रेण वै पितुः ॥३॥
न स्नानं हि सपिण्डे स्यात्त्रिरात्रं सप्तमाष्टयोः । सद्यः शौचं सपिण्डानामादन्तजननात्तथा ॥४॥
आचूडादेकरात्रं स्यादाव्रताच्च त्रिरात्रकं । दशरात्रं भवेदस्मान्मातापित्रोस्त्रिरात्रकं ॥५॥
अजातदन्ते तु मृते कृतचूडेऽर्भके तथा । प्रेते न्यूने त्रिभिर्व्वर्षैर्म्मृते शुद्धिस्तु नैशिकी ॥६॥
द्व्यहेण क्षत्रिये शुद्धिस्त्रिभिर्व्वैश्ये मृते तथा ।
शुद्धिः शूद्रे पञ्चभिः स्यात प्राग्विवाहाद् द्विषट्त्वहः[3] ॥ ७ ॥
यत्र त्रिरात्रं विप्राणामशौचं सम्प्रदृश्यते । तत्र शूद्रे द्वादशाहः षण्णव क्षत्रवैश्ययोः ॥८॥
द्व्यब्दे नैवाग्निसंस्कारो मृते तन्निखनेद् भुवि । न चोदकक्रिया तस्य नाम्नि चापि कृते सति ॥
जातदन्तस्य वा कार्य्या स्यादुपनयनादश । एकाहाच्छुद्ध्यते विप्रो योऽग्निवेदसमन्वितः ॥१०॥
हीने हीनतरे चैव त्र्यहश्चतुरहस्तथा । पञ्चाहेनाग्निहीनस्तु दशाहाद्ब्राह्मणब्रुवः ॥११॥
क्षत्रियो नवसप्ताहाच्छुद्ध्येद्विप्रो गुणैर्युतः । दशाहात् सगुणो वैश्यो विंशाहाच्छूद्र एव च ॥१२॥

---

१. सिद्धार्थकैस्तिलैर्विप्रान् यजद्वासोऽपरं दधदिति घ. ङ. ञ. च । सिद्धार्थकैस्तिलैर्विद्वान् स्नाया-द्वासोऽपरं दधदिति ग. ट. च ।
२. विशुद्धिः कथितेति घ. ङ. ञ. च ।　　३. द्विषट्कमिति ट. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दशाहाच्छुद्ध्यते विप्रो द्वादशाहेन भूमिपः। वैश्यः पञ्चदशाहेन शूद्रो मासेन शुद्ध्यति ॥१३॥
गुणोत्कर्षे दशाहाप्तौ त्र्यहमेकाहकं त्र्यहे। एकाहाप्तौ सद्यः शौचं सर्वत्रैवं समूहयेत् ॥१४॥
दासान्तेवासिभृतकाः शिष्याश्चैकत्र वासिनः। स्वामितुल्यमशौचं स्यान्मृते पृथक् पृथग्भवेत् ॥
मरणादेव कर्त्तव्यं संयोगो यस्य नाग्निभिः। दाहादूद्र्ध्वमशौचं स्याद्यस्य वैतानिको विधिः॥
सर्वेषामेव वर्णानान्त्रिभागात् स्पर्शनम्भवेत्। त्रिचतुः पञ्चदशभिः स्पृश्यवर्णाः क्रमेण तु॥१७॥
चतुर्थे पञ्चमे चैव सप्तमे नवमे तथा। अस्थिसञ्चयनं कार्यं वर्णानामनुपूर्व्वशः ॥१८॥
अहस्त्वदत्तकन्यासु प्रदत्तासु त्र्यहं भवेत्। पक्षिणी संस्कृतास्वेव स्वस्रादिषु विधीयते॥१९॥
पितृगोत्रं कुमारीणां व्यूढानां भर्त्तृगोत्रता। जलप्रदानं पित्रे च उद्वाहे चोभयत्र तु ॥२०॥
दशाहोपरि पित्रोश्च दुहितुर्मरणे त्र्यहं। सद्यः शौचं सपिण्डानां पूर्वं चूडाकृतेर्द्विज ॥२१॥
एकाहतो ह्याविवाहादूद्र्ध्वं हस्तोदकात त्र्यहं। पक्षिणी भ्रातृपुत्रस्य सपिण्डानां च सद्यतः॥२२॥
दशाहाच्छुद्ध्यते विप्रो जन्महानौ स्वयोनिषु। षड्भिस्त्रिभिरहैकेन क्षत्रविट्शूद्रयोनिषु ॥२३॥
एतज् ज्ञेयं सपिण्डानां वक्ष्ये चानौरसादिषु। अनौरसेषु पुत्रेषु भार्य्यास्वन्यगतासु च ॥२४॥
परपूर्वासु च स्त्रीषु त्रिरात्राच्छुद्धिरिष्यते। वृथासङ्करजातानां प्रव्रज्यासु च तिष्ठतां ॥२५॥
आत्मनस्त्यागिनाञ्चैव निवर्त्ततोदकक्रिया। मात्रैकया द्विपितरौ भ्रातरावन्यगामिनौ ॥२६॥
एकाहः सूतके तत्र मृतके तु द्व्यहो भवेत्[1]। सपिण्डानामशौचं हि समानोदकतां वदे ॥२७॥
बाले देशान्तरस्थे च पृथक्पिण्डे च संस्थिते। सवासा जलमाप्लुत्य सद्य एव विशुद्ध्यति॥२८॥

दशाहेन सपिण्डास्तु शुद्ध्यन्ति प्रेतसूतके।
त्रिरात्रेण सकुल्यास्तु स्नानात्[2] शुद्ध्यन्ति गोत्रिणः ॥ २९ ॥

सपिण्डता तु पुरुषे सप्तमे विनिवर्त्तते। समानोदकभावस्तु निवर्त्तेताचतुर्दशात ॥३०॥
जन्मनामस्मृते वैतत् तत्परं गोत्रमुच्यते। विगतन्तु विदेशस्थं श्रृणुयाद्यो ह्यनिर्द्दशं ॥३१॥
यच्छेषं दशरात्रस्य तावदेवाशुचिर्भवेत्। अतिक्रान्ते दशाहे तु त्रिरात्रमशुचिर्भवेत् ॥३२॥
संवत्सरे व्यतीते तु स्पृष्ट्वैवापो विशुद्ध्यति। मातुले पक्षिणी रात्रिः शिष्यर्त्विग्बान्धवेषु च ॥
मृते जामातरि प्रेते दौहित्रे भगिनीसुते[3]। श्यालके तत्सुते चैव स्नानमात्रं विधीयते ॥३४॥
मातामह्यां तथाचार्य्ये मृते मातामहे त्र्यहं। दुर्भिक्षे राष्ट्रसम्पाते आगतायां तथापदि ॥३५॥
उपसर्गमृतानाञ्च दाहे ब्रह्मविदान्तथा। सत्रिव्रति[4] ब्रह्मचारिसङ्ग्रामे देशविप्लवे ॥३६॥
दाने यज्ञे विवाहे च सद्यः शौचं विधीयते। विप्रगोनृपहन्तॄणामनुक्तं चात्मघातिनां ॥३७॥
असाध्यव्याधियुक्तस्य स्वाध्याये चाक्षमस्य च। प्रायश्चित्तमनुज्ञातमग्नितोयप्रवेशनं ॥३८॥
अपमानात्तथा[5] क्रोधात् स्नेहात्परिभवाद्भयात्। उद्बध्य म्रियते नारी पुरुषो वा कथञ्चन॥३९॥
आत्मघाती चैकलक्षं वसेत्स नरके शुचौ। वृद्धः श्रौतस्मृतेर्लुप्तः परित्यजति यस्त्वसून् ॥४०॥

---

१. मृतके तु त्र्यहो भवेदिति घ. ङ. ञ. च। मतके तु तथा भवेदिति झ.।
२. स्नाता इति ख. ग. घ. ङ. छ. ज. च।
३. प्रेते, भगिनीसुत इत्यपि इति ट.।
४. यतिव्रतीति ञ.।
५. अपमानादथेति ख. ग. घ. ङ. छ. ञ. च।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

त्रिरात्रं तत्र चाशौचं द्वितीये चास्थिसञ्चयं । तृतीये तूदकं कार्य्यं चतुर्थे श्राद्धमाचरेत् ॥४१॥
विद्युदग्निहतानाञ्च त्र्यहं शुद्धिः सपिण्डके[1] । पाषण्डाश्रिता भर्तृघ्न्यो नाशौचोदकगाः स्त्रियः॥
पितृमात्रादिपाते तु आर्द्रवासा ह्युपोषितः । अतीतेऽब्दे प्रकुर्वीत प्रेतकार्य्यं यथाविधि ॥४३॥
यः कश्चित्तु हरेत् प्रेतमसपिण्डं कथञ्चन । स्नात्वा सचेलः स्पृष्ट्वाग्निं घृतं प्राश्य विशुद्ध्यति॥
यद्यन्नमत्ति तेपान्तु दशाहेनैव शुद्ध्यति । अनदन्नन्नमह्न्येव न वै तस्मिन् गृहे वसेत् ॥४५॥
अनाथं ब्राह्मणं प्रेतं ये वहन्ति द्विजातयः । पदे पदे यज्ञफलं शुद्धिः स्यात् स्नानमात्रतः ॥४६॥
प्रेतीभूतं द्विजः शूद्रमनुगच्छंस्त्र्यहाच्छुचिः । मृतस्य बान्धवैः सार्द्धं कृत्वा च परिदेवनं ॥४७॥
वर्जयेत्तदहोरात्रं दानश्राद्धादि कामतः[2] । शूद्रायाः प्रसवो गेहे शूद्रस्य मरणं तथा ॥४८॥
भाण्डानि तु परित्यज्य त्र्यहाद्भूलेपतः शुचिः । न विप्रं स्वेषु तिष्ठत्सु मृतं शूद्रेण नाययेत् ॥
नयेत् प्रेतं स्नापितञ्च पूजितं कुसुमैर्दहेत् । नग्नदेहं दहेन् नैव किञ्चिद्देहं परित्यजेत् ॥५०॥
गोत्रजस्तु गृहीत्वा तु चितां चारोपयेत्तदा । आहिताग्निर्यथान्यायं दग्धव्यस्त्रिभिरग्निभिः ॥
अनाहिताग्निरेकेन लौकिकेनापरस्तथा । अस्मात् त्वमभिजातोऽसि त्वदयं जायतां पुनः ॥
असौ स्वर्गाय लोकाय मुखाग्निं प्रददेत्सुतः । सकृत्प्रसिञ्चन्त्युदकं नामगोत्रेण बान्धवाः ॥
एवं मातामहाचार्य्यप्रेतानाञ्चोदकक्रिया । काम्योदकं सखिप्रेतस्वस्रीयश्वशुरर्त्विजां ॥५४॥
अपो नः शोशुचदयं दशाहञ्च सुतोऽर्पयेत् । ब्राह्मणे दशपिण्डाः स्युः क्षत्रिये द्वादश स्मृताः ॥

वैश्ये पञ्चदश प्रोक्ताः शूद्रे त्रिंशत् प्रकीर्त्तिता ।
पुत्रो वा पुत्रिकान्यो वा पिण्डं दद्याच्च पुत्रवत् ॥ ५६ ॥

विदश्य निम्बपत्राणि नियतो द्वारि वेश्मनः । आचम्य चाग्निमुदकं गोमयं गौरसर्षपान् ॥
प्रविशेयुः समालभ्य कृत्वाश्मनि पदं शनैः । अक्षारलवणान्नाः स्युर्न्निर्मांसा भूमिशायिनः ॥
क्रीतलब्धाशनाः स्नाता आदिकर्त्ता दशाहकृत् । अभावे ब्रह्मचारी तु कुर्य्यात्पिण्डोदकादिकं ॥
यथेदं शावमाशौचं सपिण्डेषु विधीयते । जननेप्येवमेवं स्यान्निपुणां शुद्धिमिच्छतां ॥६०॥
सर्वेषां शावमाशौचं मातापित्रोश्च सूतकं । सूतकं मातुरेव स्यादुपस्पृश्य पिता शुचिः ॥६१॥
पुत्रजन्मदिने श्राद्धं कर्त्तव्यमिति निश्चितं । तदहस्तत्प्रदानार्थं गोहिरण्यादिवाससां ॥६२॥
मरणं मरणेनैव सूतकं सूतकेन तु । उभयोरपि यत् पूर्वं तेनाशौचेन शुद्ध्यति ॥६३॥
सूतके मृतकं चेत्स्यात् मृतके त्वथ सूतकं । तत्राधिकृत्य मृतकं शौचं कुर्य्यान्न सूतकं ॥६४॥

समानं लघ्वशौचन्तु प्रथमेन समापयेत् ।
असमानं द्वितीयेन धर्म्मराजवचो यथा ॥ ६५ ॥

शावान्तः शाव आयाते[3] पूर्वाशौचेन शुद्ध्यति । गुरुणा लघु बाध्येत लघुना नैव तद्गुरु ॥
मृतके सूतके वापि रात्रिमध्येऽन्यदापतेत् । तच्छेषेणैव शुद्ध्येरन् रात्रिशेषे द्व्यहाधिकात् ॥

---

१. विद्युदादिहतानाञ्च त्र्यहाच्छुद्धिर्विधीयते इति ट. । २. दानश्राद्धादिकर्म्म चेति झ. ।
३. आपात इति ख. छ. च ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रभाते यद्यशौचं स्याच्छुद्धेरंश्च त्रिभिर्दिनैः। उभयत्र दशाहानि कुलस्यान्नं न भुज्यते ॥
दानादि विनिवर्त्तेत भोजने कृत्यमाचरेत्। अज्ञाते पातकं नाद्ये भोक्तुरेकमहोऽन्यथा[1] ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये स्नानाद्यशौचं नाम अष्टपञ्चाशदधिक-
शततमोऽध्यायः।

ऊनषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

असंस्कृतादिशौचं।

पुष्कर उवाच

संस्कृतस्यासंस्कृतस्य स्वर्गो मोक्षो हरिस्मृतेः।
अस्थ्नाङ्गाम्भसि क्षेपात् प्रेतस्याभ्युदयो भवेत् ॥ १ ॥
गङ्गातोये नरस्यास्थि यावत्तावद्दिवि स्थितिः।
आत्मनस्त्यागिनां नास्ति पतितानां तथा क्रिया ॥ २ ॥

तेषामपि तथा गाङ्गे तोयेऽस्थ्नां पतनं हितं। तेषां दत्तं जलं चान्नं गगने तत् प्रलीयते ॥३॥
अनुग्रहेण महता प्रेतस्य पतितस्य च। नारायणबलिः कार्य्यस्तेनानुग्रहमश्नुते ॥४॥
अक्षयः पुण्डरीकाक्षस्तत्र दत्तं न नश्यति। पतनात्त्रायते तस्मात् तस्मात् पात्रं जनार्दनः ॥
पततां भुक्तिमुक्त्यादिप्रद एको हरिर्ध्रुवं। दृष्ट्वा लोकान् म्रियमाणान् सहायं धर्ममाचरेत् ॥
मृतोऽपि बान्धवः शक्तो नानुगन्तुं नरं मृतं। जायावर्जं हि सर्वस्य याम्यः पन्था विभिद्यते[2] ॥
धर्म एको[3] व्रजत्येनं यत्र क्वचन गामिनं। श्वः कार्यमद्य कुर्वीत पूर्वाह्णे चापराह्णिकं ॥८॥
न हि प्रतीक्षते मृत्युः कृतं वास्य न वा कृतं। क्षेत्रापणगृहासक्तमन्यत्रगतमानसं ॥९॥
वृकीवोरणमासाद्य मृत्युरादाय गच्छति। न कालस्य प्रियः कश्चिद् द्वेष्यश्चास्य न विद्यते ॥
आयुष्ये कर्मणि क्षीणे प्रसह्य हरते जनं। नाप्राप्तकालो म्रियते विद्धः शरशतैरपि ॥११॥
कुशाग्रेणापि संस्पृष्टः प्राप्तकालो न जीवति। औषधानि[4] न मन्त्राद्यास्त्रायन्ते मृत्युनान्वितं ॥
वत्सवत् प्राक्तनं कर्म कर्त्तारं विन्दति ध्रुवं। अव्यक्तादि व्यक्तमध्यमव्यक्तनिधनं जगत् ॥
कौमारादि यथा देहे तथा देहान्तरागमः। नवमन्यद्यथा वस्त्रं गृह्णात्येवं शरीरकं ॥१४॥
देही नित्यमवध्योऽयं यतः शोकं ततस्त्यजेत्।

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये शौचं नामैकोनषष्ट्यधिक-
शततमोऽध्यायः।

---

१. जननेप्येवमेवं स्यादित्यादिः, भोक्तुरेकमहोन्यथेत्यन्तः पाठः घ. झ. ञ. पुस्तकत्रयेषु नास्ति।
२. पन्था विभज्यते इति ग.। ३. धर्म एवेति ज.। ४. औषधादीति क.।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

वानप्रस्थाश्रमः ।

पुष्कर उवाच

वानप्रस्थयतीनाञ्च[1] धर्मं वक्ष्येऽधुना शृणु । जटित्वमग्निहोत्रित्वं भूशय्याजिनधारणं ॥१॥
वने वासः पयोमूलनीवारफलवृत्तिता । प्रतिग्रहनिवृत्तिश्च त्रिःस्नानं ब्रह्मचारिता ॥२॥
देवातिथीनां पूजा च धर्मोऽयं वनवासिनः । गृही ह्यपत्यापत्यञ्च दृष्ट्वारण्यं[2] समाश्रयेत् ॥३॥
तृतीयमायुषो भागमेकाकी वा सभार्य्यकः । ग्रीष्मे पञ्चतपा नित्यं वर्षास्वभ्रावकाशिकः ॥
आर्द्रवासाश्च हेमन्ते तपश्चोग्रञ्चरेद्बली[3] । अपरावृत्तिमास्थाय व्रजेद्दिशमजिह्मगः[4] ॥५॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये वानप्रस्थाश्रमो नाम षष्ट्यधिक-
शततमोऽध्यायः ।

एकषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

यतिधर्मः ।

पुष्कर उवाच

यतिधर्मं प्रवक्ष्यामि ज्ञानमोक्षादिदर्शकं । चतुर्थमायुषो भागं प्राप्य सङ्गात् परिव्रजेत्[5] ॥१॥
यदह्नि विरजेद्धीरस्तदह्नि[6] च परिव्रजेत् । प्राजापत्यां निरूप्येष्टिं सर्वदेवसदक्षिणां ॥२॥
आत्मन्यग्नीन् समारोप्य प्रव्रजेद्ब्राह्मणो गृहात् । एक एव चरेन्नित्यं ग्रासमन्नाथमाश्रयेत् ॥
उपेक्षकोऽसञ्चयिको मुनिर्ज्ञानसमन्वितः । कपालं वृक्षमूलञ्च[7] कुचेलमसहायता ॥४॥
समता चैव सर्वस्मिन्नेतन्मुक्तस्य[8] लक्षणं । नाभिनन्देत मरणं नाभिनन्देत जीवनं[9] ॥५॥
कालमेव प्रतीक्षेत निदेशं भृतको यथा । दृष्टिपूतं न्यसेत्पादं वस्त्रपूतं जलं पिवेत ॥६॥
सत्यपूतां वदेद्वाचं मनःपूतं समाचरेत् । अलावुदारुपात्राणि मृण्मयं वैणवं यतेः ॥७॥
विधूमे न्यस्तमुषले व्यङ्गारे भुक्तवज्जने । वृत्ते शरावसम्पाते भिक्षां नित्यं यतिश्चरेत् ॥८॥

---

१. यतीनान्तु इति ङ. ।
२. दृष्ट्वा वश्यमिति ङ. ।
३. तपश्चोग्रं वने चरेदिति ङ. ।
४. भजेद्दिशमजिह्मग इति ङ. ।
५. सङ्गान् परित्यजेदिति छ. ।
६. विरजेद्वापि तदह्नि इति ङ. ।
७. वृक्षमूलानीति ख. घ. छ. झ. च । वृक्षमूलादि इति ट. ।
८. एतच्छुद्धस्येति ङ. ।
९. जीवितमिति ख. घ. ङ. छ. ज. च ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

माधूकरमसङ्क्लिप्तं प्राक्प्रणीतमयाचितं। तात्कालिकञ्चोपपन्नं भैक्षं पञ्चविधं स्मृतं ॥९॥
पाणिपात्री भवेद्वापि पात्रे पात्रात् समाचरेत्। अवेक्षेत गतिं नृणां कर्मदोषसमुद्भवां ॥१०॥
शुद्धभावश्चरेद्धर्मं यत्र तत्राश्रमे रतः। समः सर्वेषु भूतेषु न लिङ्गं धर्मकारणं ॥११॥
फलं कतकवृक्षस्य यद्यप्यम्बुप्रसादकं। न नामग्रहणादेव तस्य वारि प्रसीदति ॥१२॥
अजिह्मः पण्डकः पङ्गुरन्धो वधिर एव च। सद्भिश्च मुच्यते सद्भिरज्ञानात् संसृतो द्विजः॥

अह्नि रात्र्याञ्च यान् जन्तून् हिनस्त्यज्ञानतो यतिः।
तेषां स्नात्वा विशुद्ध्यर्थं प्राणायामान् षडाचरेत्[1] ॥ १४ ॥

अस्थिस्थूणं स्नायुयुतं मांसशोणितलेपनं। चर्मावनद्धं दुर्गन्धं पूर्णं मूत्रपुरीषयोः ॥१५॥
जराशोकसमाविष्टं रोगायतनमातुरं। रजस्वलमनित्यञ्च भूतावासमिमन्त्यजेत् ॥१६॥
धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं[2] शौचमिन्द्रियनिग्रहः। ह्रीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्म्मलक्षणं॥
चतुर्व्विधं भैक्षवस्तु कुटीरकवहूदके। हंसः परमहंसश्च यो यः पश्चात् स उत्तमः ॥१८॥
एकदण्डी त्रिदण्डी वा[3] योगी मुच्येत बन्धनात्। अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्य्याऽपरिग्रहौ॥
यमाः पञ्चाथ नियमाः शौचं सन्तोषणन्तपः। स्वाध्यायेश्वरपूजा च पद्मकाद्यासनं यतेः[4]॥
प्राणायामस्तु द्विविधः स गर्भोऽगर्भ एव च। जपध्यानयुतो गर्भो विपरीतस्त्वगर्भकः ॥२१॥
प्रत्येकं त्रिविधः सोपि पूरकुम्भकरेचकैः। पूरणात् पूरको वायोर्न्निश्चलत्वाच्च कुम्भकः ॥२२॥
रेचनाद्रेचकः प्रोक्तो मात्राभेदेन च त्रिधा। द्वादशात्तु चतुर्विंशः षट्त्रिंशन्मात्रिकोऽपरः।२३॥
तालो लघ्वक्षरो मात्रा प्रणवादि चरेच्छनैः। प्रत्याहारो जापकानां ध्यानमीश्वरचिन्तनं॥२४॥
मनोधृतिर्द्धारणा स्यात् समाधिर्ब्रह्मणि स्थितिः। अयमात्मा परं ब्रह्म सत्यं ज्ञानमनन्तकं॥२५॥
विज्ञानमानन्दं ब्रह्म तत्त्वमस्यऽहमस्मि तत्। परं ब्रह्म ज्योतिरात्मा वासुदेवो विमुक्त ओं॥
देहेन्द्रियमनोबुद्धिप्राणाहङ्कारवर्जितं । जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यादिमुक्तं[5] ब्रह्म तुरीयकं ॥२७॥
नित्यशुद्धबुद्धयुक्तसत्यमानन्दमद्वयं[6] । अहं ब्रह्म परं ज्योतिरक्षरं सर्वगं हरिः ॥२८॥
योऽसावादित्यपुरुषः सोऽसावहमखण्ड ओं। सर्वारम्भपरित्यागी समदुःखसुखः क्षमी ॥२९॥
भावशुद्धश्च ब्रह्माण्डं भित्त्वा ब्रह्म भवेन्नरः। आषाढ्यां पौर्णमास्याञ्च चातुर्मास्यं व्रतञ्चरेत्॥
ततो व्रजेत् नवम्यादौ ह्यृतुसन्धिषु वापयेत्। प्रायश्चित्तं यतीनाञ्च ध्यानं वायुयमस्तथा॥३१॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये यतिधर्म्मा नामैकषष्ट्यधिक-
शततमोऽध्यायः।

---

१. समाचरेदिति ख. छ. च।
२. दयास्तेयमिति ङ.।
३. त्रिदण्डी चेति ङ.।
४. पद्मकाद्यासनं महत् इति ट.।
५. जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्याद्यन्तमुक्तमिति ङ. छ. ज. च।
६. इत्याग्नेये अशौचनिर्णय इत्यादिः, सत्यमानन्दमद्वयमित्यन्तः पाठो ग. पुस्तके नास्ति।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

द्विषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

धर्मशास्त्रकथनं ।

पुष्कर उवाच

मनुर्विष्णुर्याज्ञवल्को हारीतोऽत्रिर्यमोऽङ्गिराः । वसिष्ठदक्षसंवर्त्तशातातपपराशराः ॥१॥
आपस्तम्बोशनोव्यासाः कात्यायनबृहस्पती । गोतमः शङ्खलिखितौ धर्ममेते यथाऽब्रुवन् ॥२॥
तथा वक्ष्ये समासेन भुक्तिमुक्तिप्रदं शृणु । प्रवृत्तञ्च निवृत्तञ्च द्विविधङ्कर्म्म वैदिकं ॥३॥
काम्यं कर्म्म प्रवृत्तं स्यान्निवृत्तं ज्ञानपूर्वकं । वेदाभ्यासस्तपो ज्ञानमिन्द्रियाणाञ्च संयमः ॥४॥
अहिंसा गुरुसेवा च निःश्रेयसकरं परं । सर्वेषामपि चैतेषामात्मज्ञानं परं स्मृतं ॥५॥
तच्चाग्र्यं सर्वविद्यानां प्राप्यते ह्यमृतं ततः । सर्वभूतेषु चात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि ॥६॥
समम्पश्यन्नात्मयाजी स्वाराज्यमधिगच्छति । आत्मज्ञाने समे च स्याद्वेदाभ्यासे च यत्नवान् ॥
एतद् द्विजन्मसामर्थ्यं[1] ब्राह्मणस्य विशेषतः । वेदशास्त्रार्थतत्त्वज्ञो यत्र तत्राश्रमे वसन् ॥८॥
इहैव लोके तिष्ठन् हि ब्रह्मभूयाय कल्प्यते[2] । स्वाध्यायानामुपाकर्म श्रावण्यां श्रवणेन तु ॥९॥
हस्ते चौषधिवारे च पञ्चम्यां श्रावणस्य वा । पौषमासस्य रोहिण्यामष्टकायामथापि वा ॥
जलान्ते छन्दसाङ्कुर्य्यादुत्सर्गं विधिवद्बहिः । त्र्यहं प्रेतेष्वनध्यायः शिष्यर्त्विग्गुरुबन्धुषु ॥
उपाकर्मणि चोत्सर्गे स्वशाखाश्रोत्रिये तथा[3] । सन्ध्यागर्जितनिर्घाते भूकम्पोल्कानिपातने ॥
समाप्य वेदं ह्यनिशमारण्यकमधीत्य च । पञ्चदश्यां चतुर्दश्यामष्टम्यां राहुसूतके ॥१३॥
ऋतुसन्धिषु भुक्त्वा वा श्राद्धिकं प्रतिगृह्य च । पशुमण्डूकनकुलश्वाहिमार्जारशूकरैः[4] ॥१४॥
कृतेन्तरे त्वहोरात्रं शक्रपाते तथोच्छ्रये । श्वक्रोष्टुगर्धभोलूकमासवाणर्त्तु निस्वने ॥१५॥
अमेध्यशवशूद्रान्त्यश्मशानपतितान्तिके । अशुभासु च तारासु विद्युत्स्तनितसम्प्लवे ॥१६॥
भुक्त्वार्द्रपाणिरम्भोन्तरर्द्धरात्रेऽतिमारुते । पांशुवर्षे दिशान्दाहे सन्ध्यानीहारभीतिषु ॥१७॥
धावतः प्राणिबाधे च विशिष्टे गृहमागते । खरोष्ट्रयानहस्त्यश्वनौकावृक्षादिरोहणे ॥१८॥
सप्तत्रिंशदनध्यायानेतांस्तात्कालिकान्विदुः ।

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये धर्म्मशास्त्रं नाम द्विषष्ट्यधिक-
शततमोऽध्यायः ।

---

१. एतद्द्विजन्मसामग्र्यमिति ख. ङ. झ. ञ. ट. च । एतद्द्विजन्मसामग्रीति घ. ।
२. ब्रह्मचर्य्याय कल्प्यते इति ङ. ।
३. स्वशाखाश्रोत्रिये मृते इति घ. झ. ञ. ट. च ।
४. श्वश्मार्जारशूकरैरिति ङ. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

त्रिषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

श्राद्धकल्पकथनं ।

पुष्कर उवाच ।

श्राद्धकल्पं प्रवक्ष्यामि भुक्तिमुक्तिप्रदं शृणु । निमन्त्र्य विप्रान् पूर्वेद्युः स्वागतेनापराह्णतः ॥
प्राच्योपवेशयेत् पीठे युग्मान्दैवेऽथ पित्र्यके । अयुग्मान् प्राङ्मुखान्दैवे त्रीन् पैत्रे चैकमेव वा॥
मातामहानामप्येवन्तन्त्रं वा वैश्वदेविकं । पाणिप्रक्षालनं दत्त्वा विष्टरार्थं कुशानपि ॥३॥
आवाहयेदनुज्ञातो विश्वेदेवासइत्यृचा । यवैरन्ववकीर्य्याथ भाजने सपवित्रके ॥४॥
शन्नोदेव्या पयः क्षिप्त्वा यवोऽसीति यवांस्तथा । यादिव्या इतिमन्त्रेण हस्ते ह्यर्घं विनिक्षिपेत् ॥
दत्त्वोदकं गन्धमाल्यं धूपदानं प्रदीपकं । अपसव्यं ततः कृत्वा पितॄणामप्रदक्षिणं ॥६॥
द्विगुणांस्तु कुशान् कृत्वा ह्युशन्तस्त्वेत्यृचा पितॄन् । आवाह्य तदनुज्ञातो जपेदायान्तु नस्ततः ॥

यवार्थास्तु तिलैः कार्य्याः कुर्यादर्घ्यादि पूर्ववत् ।
दत्त्वार्घ्यं संश्रवान् शेषान् पात्रे कृत्वा विधानतः ॥ ८ ॥

पितृभ्यः स्थानमसीति न्युब्जं पात्रं करोत्यधः । अग्नौ करिष्य आदाय पृच्छत्यन्नं घृतप्लुतं ॥
कुरुष्वेति ह्यनुज्ञातो हुत्वाग्नौ पितृयज्ञवत् । हुतशेषं प्रदद्यात्तु भाजनेषु समाहितः ॥१०॥
यथालाभोपपन्नेषु रौप्येषु तु विशेषतः । दत्त्वान्नं पृथिवीपात्रमिति पात्राभिमन्त्रणं ॥११॥
कृत्वेदं विष्णुरित्यन्ने द्विजाङ्गुष्ठं निवेशयेत् । सव्याहृतिकां गायत्रीं मधुवाता इति त्यृचं ।
जप्त्वा यथासुखं वाच्यं भुञ्जीरंस्तेऽपि वाग्यताः । अन्नमिष्टं हविष्यञ्च दद्याज्जप्त्वा पवित्रकं ॥
अन्नमादाय तृप्ताः स्थ शेषं चैवान्नमस्य च । तदन्नं विकिरेद् भूमौ दद्याच्चापः सकृत् सकृत्॥
सर्वमन्नमुपादाय सतिलं दक्षिणामुखः । उच्छिष्टसन्निधौ पिण्डान् प्रदद्यात् पितृयज्ञवत् ॥१५॥
मातामहानामप्येवं दद्यादाचमनं ततः । स्वस्ति वाच्यं ततः कुर्य्यादक्षय्योदकमेव च ॥१६॥

दत्वा तु दक्षिणां शक्त्या स्वधाकारमुदाहरेत् ।
वाच्यतामित्यनुज्ञातः स्वपितृभ्यः स्वधोच्यतां[1] ॥ १७ ॥

कुर्य्युरस्तु स्वधेत्युक्ते भूमौ सिञ्चेत्ततो जलं । प्रीयन्तामिति वा दैवं विश्वे देवा जलं ददेत् ॥
दातारो नोऽभिवर्द्धन्तां वेदाः सन्ततिरेव च । श्रद्धा च नो माव्यगमद्बहुदेयं च नोऽस्त्विवति ॥
इत्युक्त्वा तु प्रिया वाचः प्रणिपत्य विसर्जयेत् । वाजे वाज इति प्रातपितृपूर्व्वं विसर्जनं[2] ॥
यस्मिस्तु संश्रवाः पूर्व्वमर्घपात्रे निपातिताः । पितृपात्रं तदुत्तानं कृत्वा विप्रान् विसर्जयेत् ॥२१॥
प्रदक्षिणमनुव्रज्य भुक्त्वा तु पितृसेवितं । ब्रह्मचारी भवेत्तान्तु रजनीं ब्राह्मणैः सह ॥२२॥

एवं प्रदक्षिणं कृत्वा वृद्धौ नान्दीमुखान् पितॄन् ।
यजेत दधिकर्कन्धुमिश्रान् पिण्डान् यवैः क्रिया ॥ २३ ॥

---

१. मातामहानामित्यादिः, स्वपितृभ्यः स्वधोच्यतामित्यन्तः पाठः झ. पुस्तके नास्ति ।
२. पितृपूर्वं विसर्जयेदिति ख. छ. झ. च ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

एकोद्दिष्टं दैवहीनमेकार्घैकपवित्रकं । आवाहनाग्नौकरणरहितं ह्यपसव्यवत् ॥२४॥
उपतिष्ठतामित्यक्षय्यस्थाने पितृविसर्जने । अभिरम्यतामिति वदेद् ब्रूयुस्तेऽभिरताः स्म ह ॥
गन्धोदकतिलैर्युक्तं कुर्य्यात् पात्रचतुष्टयं । अर्घार्थपितृपात्रेषु प्रेतपात्रं प्रसेचयेत ॥२६॥
ये समाना इति द्वाभ्यां शेषं पूर्व्ववदाचरेत् । एतत् सपिण्डीकरणमेकोद्दिष्टं स्त्रिया सह[१] ॥
अर्व्वाक्सपिण्डीकरणं यस्य संवत्सराद भवेत् । तस्याप्यन्नं सोदकुम्भं दद्यात् संवत्सरं द्विजे॥
मृताहनि च कर्त्तव्यं प्रतिमासन्तु वत्सरं । प्रतिसंवत्सरं कार्य्यं श्राद्धं वै मासिकान्नवत् ॥२९॥
हविष्यान्नेन वै मासं पायसेन तु वत्सरं । मात्स्यहारिणकौरभ्रशाकुनच्छागपार्षतैः[२] ॥३०॥
ऐणरौरववाराहशाशैर्मांसैर्यथाक्रमं । मासवृद्ध्याऽभितृप्यन्ति दत्तैरेव[३] पितामहाः ॥३१॥
खड्गामिषं महाशल्कं मधुयुक्तान्नमेव च[४] । लोहामिषं कालशाकं मांसं वार्द्धीनसस्य च ॥
यद्ददाति गयास्थश्च सर्वमानन्त्यमुच्यते[५] । तथा वर्षात्रयोदश्यां मघासु च न संशयः ॥३३॥
कन्यां प्रजां वन्दिनश्च पशून् मुख्यान् सुतानपि । घृतं कृषिं च वाणिज्यं द्विशफैकशफं तथा ॥
ब्रह्मवर्च्चस्विनः पुत्रान् स्वर्णरूप्ये सकुप्यके । ज्ञातिश्रैष्ठ्यं सर्व्वकामानाप्नोति श्राद्धदः सदा॥
प्रतिपत्प्रभृतिष्वेतान्वर्जयित्वा चतुर्द्दशीं । शस्त्रेण तु हता ये वै तेषां तत्र प्रदीयते ॥३६॥
स्वर्गं[६] ह्यपत्यमोजश्च शौर्य्यं क्षेत्रं बलं तथा । पुत्रश्रैष्ठ्यं ससौभाग्यमपत्यं मुख्यतां सुतान् ॥
प्रवृत्तचक्रतां पुत्रान् वाणिज्यं प्रभुतां तथा । अरोगित्वं यशो वीतशोकतां परमाङ्गतिं ॥३८॥
धनं विद्यां भिषक्सिद्धिं रूप्यं गाश्चाप्यजाविकं । अश्वानायुश्च विधिवत् यः श्राद्धं सम्प्रयच्छति॥
कृत्तिकादिभरण्यन्ते स कामानाप्नुयादिमान् । वसुरुद्रादितिसुताः पितरः श्राद्धदेवताः ॥

प्रीणयन्ति मनुष्याणां[७] पितॄन् श्राद्धेन तर्पिताः ।
आयुः प्रजां धनं[८] विद्यां स्वर्गं मोक्षं सुखानि च ॥ ४१ ॥
प्रयच्छन्ति तथा राज्यं प्रीता नृणां पितामहाः[९] ।

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये श्राद्धकल्पो नाम त्रिषष्ट्यधिक-
शततमोऽध्यायः ।

---

१. स्त्रिया अपीति ख. छ. च ।
२. मात्स्याविहारिणौरभ्रशाकुनच्छागपार्षतैरिति छ. ।
३. दत्तैरिहेति घ. ङ. ञ. च ।
४. मधुमुद्गान्नमेव वेति ङ. ।
५. सर्वमानन्त्यमश्नुते इति घ. ङ. च ।
६. स्वर्णमिति ख. छ. च ।
७. मनुष्यादीनिति ख. छ. च ।
८. आयुः प्रज्ञाधनमिति ञ. । आयुः प्रजां बलमिति घ. ।
९. प्रीताः पितृपितामहा इति ङ. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

चतुःषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

नवग्रहहोमः ।

पुष्कर उवाच

श्रीकामः शान्तिकामो वा ग्रहयज्ञं समारभेत् । वृष्ट्यायुःपुष्टिकामो वा तथैवाभिचरन् पुनः ।
सूर्य्यः सोमो मङ्गलश्च बुधश्चाथ बृहस्पतिः । शुक्रः शनैश्चरो राहुः केतुश्चेति ग्रहाः स्मृताः ॥२॥
ताम्रकात स्फटिकाद्रक्तचन्दनात् स्वर्णकादुभौ । रजतादयसः शीशात् ग्रहाः कार्य्याः क्रमादिमे ॥
सुवर्णैर्व्वा यजेल्लिख्य गन्धमण्डलकेषु वा । यथावर्णं प्रदेयानि वासांसि कुसुमानि च ॥४॥
गन्धाश्च वलयश्चैव धूपो देयस्तु गुग्गुलुः । कर्त्तव्या मन्त्रवन्तश्च चरवः प्रतिदैवतं ॥५॥

आकृष्णेन इमं देवा अग्निर्मूर्द्धा दिवः ककुत् ।
उद्बुध्यस्वेति च ऋचो यथासङ्ख्यं प्रकीर्त्तिताः ॥ ६ ॥

बृहस्पते अतियदर्यस्तथैवाल्पात् परिश्रुतः । शन्नो देवीस्तथा काण्डात् केतुं कृन्वन्निमास्तथा ॥

अर्कः पालाशः खदिरो ह्यपामार्गोथ[1] पिप्पलः ।
उदुम्बरः शमी दुर्व्वा कुशाश्च समिधः क्रमात् ॥ ८ ॥

एकैकस्यात्राष्टशतमष्टाविंशतिरेव वा । होतव्या मधुसर्पिर्भ्यां दध्ना चैव समन्विताः ॥९॥
गुडौदनं पायसं च हविष्यं क्षीरयष्टिकं । दध्योदनं हविः पूपान् मांसं चित्रान्नमेव च ॥१०॥
दद्याद्ग्रहक्रमादेतद्द्विजेभ्यो भोजनं बुधः । शक्तितो वा यथालाभं सत्कृत्य विधिपूर्वकं ॥११॥

धेनुः शङ्खस्तथानड्वान् हेम वासो हयस्तथा ।
कृष्णा गौरायसश्छाग एता वै दक्षिणाः क्रमात् ॥ १२ ॥

यश्च यस्य यदा दूष्यः[2] स तं यत्नेन पूजयेत् । ब्रह्मणैषां वरो दत्तः पूजिताः पूजितस्य च ॥१३॥

ग्रहाधीना नरेन्द्राणा[3] मुच्छ्रयाः पतनानि च ।
भावाभावौ च जगतस्तस्मात् पूज्यतमा ग्रहाः ॥ १४ ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये नवग्रहहोमो नाम चतुःषष्ट्यधिक-
शततमोऽध्यायः ।

षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

नानाधर्म्माः ।

अग्निरुवाच

ध्येय आत्मा स्थितो योऽसौ हृदये दीपवत प्रभुः । अनन्यविषयं कृत्वा मनो बुद्धिस्मृतीन्द्रियं ॥१॥

---

१. खदिरस्त्वपामार्गोऽथेति ग. घ. ञ. च । २. सदा दुःस्थ इति ख. छ. च ।
३. मनुष्याणामिति ङ. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

श्राद्धन्तु ध्यायिने देयं[1] गव्यं दधि घृतं पयः । प्रियङ्गवो मसूराश्च वार्त्ताकुः कोद्रवो न हि ॥२॥
सैंहिकेयो यदा सूर्यं ग्रसते पर्वसन्धिषु । हस्तिच्छाया तु सा ज्ञेया श्राद्धदानादिकेऽक्षया ॥३॥
पित्रे चैव यदा सोमो हंसे चैव करे स्थिते । तिथिर्वैवस्वती नाम सा छाया कुञ्जरस्य तु ॥
अग्नौकरणशेषन्तु न दद्याद्वैश्वदेविके । अग्न्यभावे तु विप्रस्य हस्ते दद्यात्तु दक्षिणे ॥५॥
न स्त्री दुष्यति जारेण न विप्रो वेदकर्म्मणा । बलात्कारोपभुक्ता चेद्वैरिहस्तगतापि वा[2] ॥
सन्त्यजेद् दूषितान्नारीमृतुकाले न शुद्ध्यति । य आत्मव्यतिरेकेण द्वितीयं नात्र पश्यति[3] ॥
ब्रह्मभूतः स एवेह योगी चात्मरतोऽमलः । विषयेन्द्रियसंयोगात् केचिद् योगं वदन्ति वै ॥
अधर्मो धर्मबुद्धया तु गृहीतस्तैरपण्डितैः । आत्मनो मनसश्चैव संयोगञ्च तथा परे ॥९॥
वृत्तिहीनं मनः कृत्वा क्षेत्रज्ञं परमात्मनि । एकीकृत्य विमुच्येत बन्धाद्योगोऽयमुत्तमः ॥१०॥
कुटुम्बैः पञ्चभिर्ग्रामः षष्ठस्तत्र महत्तरः । देवासुरमनुष्यैर्वा स जेतुं नैव शक्यते[4] ॥११॥
वहिर्मुखानि सर्वाणि कृत्वा चाभिमुखानि वै । मनस्येवेन्द्रियग्रामं मनश्चात्मनि योजयेत् ॥
सर्वभावविनिर्मुक्तं क्षेत्रज्ञं ब्रह्मणि न्यसेत् । एतज्ज्ञानञ्च ध्यानञ्च शेषोऽन्यो ग्रन्थविस्तरः[5] ॥
यन्नास्ति सर्वलोकस्य तदस्तीति विरुध्यते । कथ्यमानं तथाऽन्यस्य हृदये नावतिष्ठते ॥१४॥

असंवेद्यं हि तद् ब्रह्म[6] कुमारी स्त्रीसुखं यथा ।
अयोगी नैव जानाति जात्यन्धो हि घटं यथा ॥ १५ ॥

सन्न्यसन्तं द्विजं दृष्ट्वा स्थानाच्चलति भास्करः । एष मे मण्डलं भित्त्वा परं ब्रह्माऽधिगच्छति ॥
उपवासव्रतञ्चैव स्नानन्तीर्थं फलन्तपः । द्विजसम्पादनञ्चैव सम्पन्नन्तस्य तत् फलं ॥१७॥
एकाक्षरं परं ब्रह्म प्राणायामः परन्तपः । सावित्र्यास्तु परं नास्ति पावनं परमं स्मृतं ॥१८॥
पूर्वं स्त्रियः सुरैर्भुक्ताः सोमगन्धर्ववह्निभिः । भुञ्जते मानुषाः पश्चान्नैता दुष्यन्ति केनचित् ॥
असवर्णेन यो गर्भः स्त्रीणां योनौ निषिच्यते । अशुद्धा तु भवेन्नारी यावच्छल्यं न मुञ्चति ॥
निःसृते तु ततः शल्ये रजसा शुद्ध्यते ततः । ध्यानेन सदृशन्नास्ति शोधनं पापकर्मणां ॥

श्वपाकेष्वपि भुञ्जानो ध्यानेन हि विशुद्ध्यति ।
आत्मा ध्याता मनो ध्यानं ध्येयो विष्णुः फलं हरिः ॥ २२ ॥

अक्षयाय यतिः श्राद्धे पङ्क्तिपावनपावनः । आरूढो नैष्ठिकन्धर्मं यस्तु प्रच्यवते द्विजः ॥

प्रायश्चित्तं न पश्यामि येन शुद्ध्येत्स आत्महा ।
ये च प्रव्रजिताः पत्न्यां या चैषां वीजसन्ततिः ॥ २४ ॥

विदुरा नाम चण्डाला जायन्ते नात्र संशयः । शतिको म्रियते गृध्रः श्वासौ द्वादशिकस्तथा ॥

---

१. ध्यापिने देयमिति ङ. ।
२. चौरहस्तगतापि वेति ख. घ. ञ. च ।
३. द्वितीयं नानुपश्यतीति घ. ट. च ।
४. स जेतुं न च शक्यत इति ग. ङ. च ।
५. शेषा ये ग्रन्थविस्तरा इति ङ ।
६. स्वसंवेद्यं हि तद् ब्रह्म इति ग. ङ. च । सुसंवेद्यं हि तद् ब्रह्म इति ज. ट. च । स्वयं वेद्यं हि तद् ब्रह्म इति घ. ञ. च ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

चतुःषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

नवग्रहहोमः ।

पुष्कर उवाच

श्रीकामः शान्तिकामो वा ग्रहयज्ञं समारभेत् । वृष्ट्यायुःपुष्टिकामो वा तथैवाभिचरन् पुनः ।
सूर्य्यः सोमो मङ्गलश्च वुधश्चाथ वृहस्पतिः । शुक्रः शनैश्चरो राहुः केतुश्चेति ग्रहाः स्मृताः ॥२॥
ताम्रकात स्फटिकाद्रक्तचन्दनात् स्वर्णकादुभौ । रजतादयसः शीशात् ग्रहाः कार्य्याः क्रमादिमे ॥
सुवर्णैर्व्वा यजेल्लिख्य गन्धमण्डलकेषु वा । यथावर्णं प्रदेयानि वासांसि कुसुमानि च ॥४॥
गन्धाश्च वलयश्चैव धूपो देयस्तु गुग्गुलुः । कर्त्तव्या मन्त्रवन्तश्च चरवः प्रतिदैवतं ॥५॥

आकृष्णेन इमं देवा अग्निर्मूर्द्धा दिवः ककुत् ।
उद्बुध्यस्वेति च ऋचो यथासङ्ख्यं प्रकीर्त्तिताः ॥ ६ ॥

वृहस्पते अतियदर्य्यस्तथैवाल्पात् परिश्रुतः । शन्नो देवीस्तथा काण्डात् केतुं कृन्वन्निमास्तथा ॥

अर्कः पालाशः खदिरो ह्यपामार्गोथ[१] पिप्पलः ।
उदुम्बरः शमी दुर्व्वा कुशाश्च समिधः क्रमात् ॥ ८ ॥

एकैकस्यात्राष्टशतमष्टाविंशतिरेव वा । होतव्या मधुसर्पिर्भ्यां दध्ना चैव समन्विताः ॥९॥
गुडौदनं पायसं च हविष्यं क्षीरयष्टिकं । दध्योदनं हविः पूपान् मांसं चित्रान्नमेव च ॥१०॥
दद्याद्ग्रहक्रमादेतद्द्विजेभ्यो भोजनं वुधः । शक्तितो वा यथालाभं सतकृत्य विधिपूर्व्वकं ॥११॥

धेनुः शङ्खस्तथानड्वान् हेम वासो हयस्तथा ।
कृष्णा गौरायसश्छाग एता वै दक्षिणाः क्रमात् ॥ १२ ॥

यश्च यस्य यदा दूष्यः[२] स तं यत्नेन पूजयेत् । ब्रह्मणैषां वरो दत्तः पूजिताः पूजितस्य च ॥१३॥

ग्रहाधीना नरेन्द्राणा[३] मुच्छ्रयाः पतनानि च ।
भावाभावौ च जगतस्तस्मात् पूज्यतमा ग्रहाः ॥ १४ ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये नवग्रहहोमो नाम चतुःषष्ट्यधिक-
शततमोऽध्यायः ।

षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

नानाधर्म्माः ।

अग्निरुवाच

ध्येय आत्मा स्थितो योऽसौ हृदये दीपवत् प्रभुः । अनन्यविषयं कृत्वा मनो बुद्धिस्मृतीन्द्रियं ॥

---

१. खदिरस्त्वपामार्गोऽथेति ग. घ. ञ. च । २. सदा दुःस्थ इति ख. छ. च ।
३. मनुष्याणामिति ङ. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

श्राद्धन्तु ध्यायिने देयं[1] गव्यं दधि घृतं पयः । प्रियङ्गवो भसूराश्च वार्त्ताकुः कोद्रवो न हि ।।२।।
सैंहिकेयो यदा सूर्य्यं ग्रसते पर्वसन्धिषु । हस्तिच्छाया तु सा ज्ञेया श्राद्धदानादिकेऽक्षया ।।३।।
पित्रे चैव यदा सोमो हंसे चैत्र करे स्थिते । तिथिर्वैवस्वती नाम सा छाया कुञ्जरस्य तु ।।
अग्नौकरणशेषन्तु न दद्याद्वैश्वदेविके । अग्न्यभावे तु विप्रस्य हस्ते दद्यात्तु दक्षिणे ।।५।।
न स्त्री दुष्यति जारेण न विप्रो वेदकर्म्मणा । बलात्कारोपभुक्ता चेद्वैरिहस्तगतापि वा[2] ।।
सन्त्यजेद् दूषितान्नारीमृतुकाले न शुद्धयति । य आत्मव्यतिरेकेण द्वितीयं नात्र पश्यति[3] ।।
ब्रह्मभूतः स एवेह योगी चात्मरतोऽमलः । विषयेन्द्रियसंयोगात् केचिद् योगं वदन्ति वै ।।
अधर्मो धर्मबुद्धया तु गृहीतस्तैरपण्डितैः । आत्मनो मनसश्चैव संयोगञ्च तथा परे ।।९।।
वृत्तिहीनं मनः कृत्वा क्षेत्रज्ञं परमात्मनि । एकीकृत्य विमुच्येत बन्धाद्योगोऽयमुत्तमः ।।१०।।
कुटुम्बैः पञ्चभिर्यामः षष्ठस्तत्र महत्तरः । देवासुरमनुष्यैर्वा स जेतुं नैव शक्यते[4] ।।११।।
वहिर्मुखानि सर्वाणि कृत्वा चाभिमुखानि वै । मनस्येवेन्द्रियग्रामं मनश्चात्मनि योजयेत् ।।
सर्वभावविनिर्मुक्तं क्षेत्रज्ञं ब्रह्मणि न्यसेत् । एतज्ज्ञानञ्च ध्यानञ्च शेषोऽन्यो ग्रन्थविस्तरः[5] ।।
यन्नास्ति सर्वलोकस्य तदस्तीति विरुध्यते । कथ्यमानं तथाऽन्यस्य हृदये नावतिष्ठते ।।१४।।

असंवेद्यं हि तद् ब्रह्म[6] कुमारी स्त्रीसुखं यथा ।
अयोगी नैव जानाति जात्यन्धो हि घटं यथा ।। १५ ।।

सन्न्यसन्तं द्विजं दृष्ट्वा स्थानाच्चलति भास्करः । एष मे मण्डलं भित्त्वा परं ब्रह्माऽधिगच्छति ।।
उपवासव्रतञ्चैव स्नानन्तीर्थं फलन्तपः । द्विजसम्पादनञ्चैव सम्पन्नन्तस्य तत् फलं ।।१७।।
एकाक्षरं परं ब्रह्म प्राणायामः परन्तपः । सावित्र्यास्तु परं नास्ति पावनं परमं स्मृतं ।।१८।।
पूर्वं स्त्रियः सुरैर्भुक्ताः सोमगन्धर्ववह्निभिः । भुञ्जते मानुषाः पश्चान्नैता दुष्यन्ति केनचित् ।।
असवर्णेन यो गर्भः स्त्रीणां योनौ निषिच्यते । अशुद्धा तु भवेन्नारी यावच्छल्यं न मुञ्चति ।।
निःसृते तु ततः शल्ये रजसा शुद्ध्यते ततः । ध्यानेन सदृशन्नास्ति शोधनं पापकर्मणां ।।

श्वपाकेष्वपि भुञ्जानो ध्यानेन हि विशुद्ध्यति ।
आत्मा ध्याता मनो ध्यानं ध्येयो विष्णुः फलं हरिः ।। २२ ।।

अक्षयाय यतिः श्राद्धे पङ्क्तिपावनपावनः । आरूढो नैष्ठिकन्धर्मं यस्तु प्रच्यवते द्विजः ।।

प्रायश्चित्तं न पश्यामि येन शुद्ध्येत्स आत्महा ।
ये च प्रव्रजिताः पत्न्यां या चैषां वीजसन्ततिः ।। २४ ।।

विदुरा नाम चण्डाला जायन्ते नात्र संशयः । शतिको म्रियते गृध्रः श्वासौ द्वादशिकस्तथा ।।

---

१. ध्यापिने देयमिति ङ. ।
२. चौरहस्तगतापि वेति ख. घ. ञ. च ।
३. द्वितीयं नानुपश्यतीति घ. ट. च ।
४. स जेतुं न च शक्यत इति ग. ङ. च ।
५. शेषा ये ग्रन्थविस्तरा इति ङ ।
६. स्वसंवेद्यं हि तद् ब्रह्म इति ग. ङ. च । सुसंवेद्यं हि तद् ब्रह्म इति ज. ट. च । स्वयं वेद्यं हि तद् ब्रह्म इति घ. ञ. च ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भासो विंशतिवर्षाणि शूकरो दशभिस्तथा। अपुष्पो विफलो वृक्षो जायते कण्टकावृतः॥
ततो दावाग्निदग्धस्तु स्थाणुर्भवति सानुगः। ततो वर्षशतान्यष्टौ द्वे च तिष्ठत्यचेतनः ॥२७॥
पूर्णे वर्षसहस्रे तु जायते ब्रह्मराक्षसः। प्लवेन लभते मोक्षं कुलस्योत्सादनेन वा ॥२८॥
योगमेव निषेवेत नान्यं मन्त्रमघापहं।

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये नानाधर्मा नाम पञ्चषष्ट्यधिक-
शततमोऽध्यायः।

षट्षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

वर्णधर्मादिकथनं।

पुष्कर उवाच

वेदस्मार्त्तं प्रवक्ष्यामि धर्मं वै पञ्चधा स्मृतं[1]। वर्णत्वमेकमाश्रित्य योऽधिकारः प्रवर्त्तते ॥१॥
वर्णधर्मः स विज्ञेयो यथोपनयनन्त्रिषु। यस्त्वाश्रमं समाश्रित्य पदार्थः संविधीयते ॥२॥
उक्त आश्रमधर्मस्तु भिन्नपिण्डादिको यथा। उभयेन निमित्तेन यो विधिः सम्प्रवर्त्तते ॥३॥
नैमित्तिकः स विज्ञेयः प्रायश्चित्तविधिर्यथा। ब्रह्मचारी गृही चापि वानप्रस्थो यतिर्नृप॥
उक्त आश्रमधर्म्मस्तु धर्म्मः स्यात् पञ्चधा परः[2]।
षाड्गुण्यस्याभिधाने यो दृष्टार्थः स उदाहृतः॥ ५॥
स त्रेधा मन्त्रयागाद्यदृष्टार्थं इति मानवाः। उभयार्थो व्यवहारस्तु दण्डधारणमेव च ॥६॥
तुल्यार्थानां विकल्पः स्याद् यागमूलः प्रकीर्त्तितः।
वेदे तु विहितो धर्म्मः स्मृतौ तादृश एव च॥ ७॥
अनुवादं स्मृतिः सूते[3] कार्य्यार्थमिति मानवाः। गुणार्थः परिसंख्यार्थो वानुवादो विशेषतः[4]॥
विशेषदृष्ट एवासौ फलार्थ इति मानवाः। स्यादष्टचत्वारिंशद्भिः संस्कारैर्ब्रह्मलोकगः ॥९॥
गर्भाधानं पुंसवनं सीमन्तोन्नयनं ततः। जातकर्म्म नामकृतिरन्नप्राशनचूडकं ॥१०॥
संस्कारश्चोपनयनं वेदव्रतचतुष्टयं। स्नानं स्वधर्म्मचारिण्या योगः स्याद्यज्ञपञ्चकं ॥११॥
देवयज्ञः पितृयज्ञो मनुष्यभूतयज्ञकौ। ब्रह्मयज्ञः सप्तपाकयज्ञसंस्थाः पुरोऽष्टका: ॥१२॥
पार्व्वणश्राद्धं श्रावण्याग्रहायणी च चैत्र्यपि। आश्वयुजी सप्तहविर्यज्ञसंस्थास्ततः स्मृताः॥१३॥
अग्न्याधेयमग्निहोत्रं[5] दर्शः स्यात पौर्णमासकः। चातुर्मास्याग्रहायणेष्टिर्निरूढः पशुबन्धकः॥
सौत्रामणिसप्तसोमसंस्थाग्निष्टोम आदितः। अत्यग्निष्टोम उक्थश्च षोड़शी वाजपेयकः॥१५॥

---

१. धर्मं वै परमामृतमिति ख. छ. च। २. धर्मं एष सनातन इति ङ.।
३. अर्थवादं स्मृतिः सूत इति ख. छ. च। ४. वार्थवादो विशेषत इति ख. छ. च।
५. अग्न्याधानमग्निहोत्रमिति ख. छ. च।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अतिरात्रास्तथा स्तोमा अष्टौ चात्मगुणास्ततः। दया क्षमाऽनसूया च अनायासोऽथ मङ्गलं ॥
अकार्पण्यास्पृहाशौचं यस्यैते स परं व्रजेत्। प्रचारे मैथुने चैव प्रस्रावे दन्तधावने ॥१७॥
स्नानभोजनकाले च षट्सु मौनं समाचरेत्। पुनर्दानं पृथक्पानमाज्येन पयसा निशि ॥१८॥
दन्तच्छेदनमुष्णं च सप्त शक्तुषु वर्ज्जयेत्। स्नात्वा पुष्पं न गृह्णीयात् देवायोग्यन्तदीरितं ॥
अन्यगोत्रोप्यसम्बद्धः[1] प्रेतस्याग्निन्ददाति यः। पिण्डञ्चोदकदानञ्च स दशाहं समापयेत् ॥
उदकञ्च तृणं भस्म द्वारम्पन्थास्तथैव च। एभिरन्तरितं कृत्वा पङ्क्तिदोषो न विद्यते ॥२१॥

पञ्च प्राणाहुतीर्दद्यादनामाङ्गुष्ठयोगतः।

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये वर्णधर्म्मादिर्नाम षट्षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः।

सप्तषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

अयुतलक्षकोटिहोमाः।

अग्निरुवाच

श्रीशान्तिविजयाद्यर्थं ग्रहयज्ञं पुनर्वदे। ग्रहयज्ञोऽयुतहोमलक्षकोट्यात्मकस्त्रिधा ॥१॥
वेदेरैशे ह्यग्निकुण्डाद् ग्रहानावाह्य मण्डले। सौम्ये गुरुर्बुधश्चैशे शुक्रः पूर्वदले शशी ॥२॥
आग्नेये दक्षिणे भौमो मध्ये स्याद्भास्करस्तथा। शनिराप्येऽथ नैर्ऋत्ये राहुः केतुश्च वायवे ॥
ईशश्चोमा गुहो विष्णुर्ब्रह्मेन्द्रौ यमकालकौ। चित्रगुप्तश्चाधिदेवा अग्निरापः क्षितिर्हरिः ॥४॥
इन्द्र ऐन्द्री देवता च प्रजेशोऽहिर्विधिः क्रमात्। एते प्रत्यधिदेवाश्च गणेशो दुर्गयानिलः ॥
खमश्विनौ च सम्पूज्य यजेद्वीजैश्च वेदजैः। अर्कः पलाशः खदिरो ह्यपामार्गश्च पिप्पलः ॥
उदुम्बरः शमी दुर्व्वा कुशाश्च समिधः क्रमात्। मध्वाज्यदधिसंमिश्रा होतव्याश्चाष्टधा शतम् ॥
एकाष्टचतुरः कुम्भान् पूर्य्य पूर्णाहुतिन्तथा। वसोर्द्धारान्ततो दद्याद्दक्षिणाश्च ततो ददेत् ॥८॥
यजमानं चतुर्भिस्तैरभिषिञ्चेत् समन्त्रकैः। सुरास्त्वामभिषिञ्चन्तु ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥९॥
वासुदेवो जगन्नाथस्तथा सङ्कर्षणः प्रभुः। प्रद्युम्नश्चानिरुद्धश्च भवन्तु विजयाय ते ॥१०॥
आखण्डलोऽग्निर्भगवान् यमो वै नैर्ऋतस्तथा। वरुणः पवनश्चैव धनाध्यक्षस्तथा शिवः ॥

ब्रह्मणा सहितः शेषो दिक्पालाः पान्तु वः सदा।
कीर्त्तिर्लक्ष्मीर्धृतिर्म्मेधा पुष्टिः श्रद्धा क्रिया मतिः ॥ १२ ॥
बुद्धिर्ल्लज्जा वपुः शान्तिस्तुष्टिः कान्तिश्च मातरः।
एतास्त्वामभिषिञ्चन्तु धर्म्मपत्न्यः समागताः ॥ १३ ॥

आदित्यश्चन्द्रमा भौमो बुधजीवशितार्क्कजाः। ग्रहास्त्वामभिषिञ्चन्तु राहुः केतुश्च तर्पिताः ॥

---

१. अन्यगोत्रोऽन्यसम्बन्ध इति ख. घ. ञ. च।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भासो विंशतिवर्षाणि शूकरो दशभिस्तथा । अपुष्पो विफलो वृक्षो जायते कण्टकावृतः ॥
ततो दावाग्निदग्धस्तु स्थाणुर्भवति सानुगः । ततो वर्षशतान्यष्टौ द्वे च तिष्ठत्यचेतनः ॥२७॥
पूर्णे वर्षसहस्रे तु जायते ब्रह्मराक्षसः । प्लवेन लभते मोक्षं कुलस्योत्सादनेन वा ॥२८॥
योगमेव निषेवेत नान्यं मन्त्रमघापहं ।

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये नानाधर्मा नाम पञ्चषष्ट्यधिक-
शततमोऽध्यायः ।

षट्षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

वर्णधर्मादिकथनं ।

पुष्कर उवाच

वेदस्मार्त्तं प्रवक्ष्यामि धर्मं वै पञ्चधा स्मृतं[१] । वर्णत्वमेकमाश्रित्य योऽधिकारः प्रवर्त्तते ॥१॥
वर्णधर्मः स विज्ञेयो यथोपनयनन्त्रिषु । यस्त्वाश्रमं समाश्रित्य पदार्थः संविधीयते ॥२॥
उक्त आश्रमधर्मस्तु भिन्नपिण्डादिको यथा । उभयेन निमित्तेन यो विधिः सम्प्रवर्त्तते ॥३॥
नैमित्तिकः स विज्ञेयः प्रायश्चित्तविधिर्यथा । ब्रह्मचारी गृही चापि वानप्रस्थो यतिर्नृप ॥
उक्त आश्रमधर्म्मस्तु धर्म्मः स्यात् पञ्चधा परः[२] ।
षाड्गुण्यस्याभिधाने यो दृष्टार्थः स उदाहृतः ॥ ५ ॥
स त्रेधा मन्त्रयागाद्यदृष्टार्थ इति मानवाः । उभयार्थो व्यवहारस्तु दण्डधारणमेत्र च ॥६॥
तुल्यार्थानां विकल्पः स्याद् यागमूलः प्रकीर्त्तितः ।
वेदे तु विहितो धर्म्मः स्मृतौ तादृश एव च ॥ ७ ॥
अनुवादं स्मृतिः सूते[३] कार्य्यार्थमिति मानवाः । गुणार्थः परिसंख्यार्थो वानुवादो विशेषतः[४] ॥
विशेषदृष्ट एवासौ फलार्थं इति मानवाः । स्यादष्टचत्वारिंशद्भिः संस्कारैर्ब्रह्मलोकगः ॥९॥
गर्भाधानं पुंसवनं सीमन्तोन्नयनं ततः । जातकर्म्म नामकृतिरन्नप्राशनचूडकं ॥१०॥
संस्कारश्चोपनयनं वेदव्रतचतुष्टयं । स्नानं स्वधर्म्मचारिण्या योगः स्याद्यज्ञपञ्चकं ॥११॥
देवयज्ञः पितृयज्ञो मनुष्यभूतयज्ञकौ । ब्रह्मयज्ञः सप्तपाकयज्ञसंस्थाः पुरोऽष्टकाः ॥१२॥
पार्व्वणश्राद्धं श्रावण्याग्रहायणी च चैत्र्यपि । आश्वयुजी सप्तहविर्यज्ञसंस्थास्ततः स्मृताः ॥१३॥
अग्न्याधेयमग्निहोत्रं[५] दर्शः स्यात् पौर्णमासकः । चातुर्मास्याग्रहायणेष्टिर्निरूढः पशुबन्धकः ॥
सौत्रामणिसप्तसोमसंस्थाग्निष्टोम आदितः । अत्यग्निष्टोम उक्थश्च षोड़शी वाजपेयकः ॥१५॥

---

१. धर्मं वै परमामृतमिति ख. छ. च ।
२. धर्म एष सनातन इति ङ. ।
३. अर्थवादं स्मृतिः सूत इति ख. छ. च ।
४. वार्थवादो विशेषत इति ख. छ. च ।
५. अग्न्याधानमग्निहोत्रमिति ख. छ. च ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अतिरात्रास्तथा स्तोमा अष्टौ चात्मगुणास्ततः। दया क्षमाऽनसूया च अनायासोऽथ मङ्गलं ॥
अकार्पण्यास्पृहाशौचं यस्यैते स परं व्रजेत्। प्रचारे मैथुने चैव प्रस्रावे दन्तधावने ॥१७॥
स्नानभोजनकाले च षट्सु मौनं समाचरेत्। पुनर्दानं पृथक्पानमाज्येन पयसा निशि ॥१८॥
दन्तच्छेदनमुष्णं च सप्त शक्तुषु वर्ज्जयेत्। स्नात्वा पुष्पं न गृह्णीयात् देवायोग्यन्तदीरितं ॥
अन्यगोत्रोप्यसम्बद्धः[1] प्रेतस्याग्निन्ददाति यः। पिण्डञ्चोदकदानञ्च स दशाहं समापयेत् ॥
उदकञ्च तृणं भस्म द्वारम्पन्थास्तथैव च। एभिरन्तरितं कृत्वा पङ्क्तिदोषो न विद्यते ॥२१॥

पञ्च प्राणाहुतीर्दद्यादनामाङ्गुष्ठयोगतः।

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये वर्णधर्म्मादिर्नाम षट्षष्ट्यधिक-
शततमोऽध्यायः।

सप्तषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

अयुतलक्षकोटिहोमाः।

अग्निरुवाच

श्रीशान्तिविजयाद्यर्थं ग्रहयज्ञं पुनर्वदे। ग्रहयज्ञोऽयुतहोमलक्षकोट्यात्मकस्त्रिधा ॥१॥
वेदेरैशे ह्यग्निकुण्डाद् ग्रहानावाह्य मण्डले। सौम्ये गुरुर्बुधश्चैशे शुक्रः पूर्वदले शशी ॥२॥
आग्नेये दक्षिणे भौमो मध्ये स्याद्भास्करस्तथा। शनिराप्येऽथ नैरृत्ये राहुः केतुश्च वायवे ॥
ईशश्चोमा गुहो विष्णुर्ब्रह्मेन्द्रौ यमकालकौ। चित्रगुप्तश्चाधिदेवा अग्निरापः क्षितिर्हरिः ॥४॥
इन्द्र ऐन्द्री देवता च प्रजेशोऽहिर्विधिः क्रमात्। एते प्रत्यधिदेवाश्च गणेशो दुर्गथानिलः ॥
खमश्विनौ च सम्पूज्य यजेद्वीजैश्च वेदजैः। अर्कः पलाशः खदिरो ह्यपामार्गश्च पिप्पलः ॥
उदुम्बरः शमी दुर्व्वा कुशाश्च समिधः क्रमात्। मध्वाज्यदधिसंमिश्रा होतव्याश्चाष्टधा शतम् ॥
एकाष्टचतुरः कुम्भान् पूर्य्य पूर्णाहुतिन्तथा। वसोर्द्धारान्तता दद्याद्दक्षिणाञ्च ततो ददेत् ॥८॥
यजमानं चतुर्भिस्तैरभिषिञ्चेत् समन्त्रकैः। सुरास्त्वामभिषिञ्चन्तु ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥९॥
वासुदेवो जगन्नाथस्तथा सङ्कर्षणः प्रभुः। प्रद्युम्नश्चानिरुद्धश्च भवन्तु विजयाय ते ॥१०॥
आखण्डलोऽग्निर्भगवान् यमो वै नैरृतस्तथा। वरुणः पवनश्चैव धनाध्यक्षस्तथा शिवः ॥

ब्रह्मणा सहितः शेषो दिक्पालाः पान्तु वः सदा।
कीर्त्तिर्लक्ष्मीर्धृतिर्म्मेधा पुष्टिः श्रद्धा क्रिया मतिः ॥ १२ ॥
बुद्धिर्ल्लज्जा वपुः शान्तिस्तुष्टिः कान्तिश्च मातरः।
एतास्त्वामभिषिञ्चन्तु धर्म्मपत्न्यः समागताः ॥ १३ ॥

आदित्यश्चन्द्रमा भौमो बुधजीवशितार्क्कजाः। ग्रहास्त्वामभिषिञ्चन्तु राहुः केतुश्च तर्पिताः ॥

---

१. अन्यगोत्रोऽन्यसम्बन्ध इति ख. घ. ञ. च।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

देवदानवगन्धर्वा यक्षराक्षसपन्नगाः। ऋषयो मनवो गावो देवमातर एव च ॥१५॥
देवपत्न्यो द्रुमा नागा दैत्याश्चाप्सरसाङ्गणाः। अस्त्राणि सर्वशास्त्राणि राजानो वाहनानि च ॥
औषधानि च रत्नानि कालस्यावयवाश्च ये। सरितः सागराः शैलास्तीर्थानि जलदा नदाः ॥
एते त्वामभिषिञ्चन्तु सर्व्वकामार्थसिद्धये[१]। अलङ्कृतस्ततो दद्याद्धेमगोन्नभुवादिकं ॥१८॥
कपिले सर्वदेवानां पूजनीयासि रोहिणि। तीर्थदेवमयी यस्मादतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥१९॥
पुण्यस्त्वं शङ्ख पुण्यानां मङ्गलानाञ्च मङ्गलं। विष्णुना विधृतो नित्यमतः शान्तिं प्रयच्छ मे।
धर्म्म त्वं वृषरूपेण जगदानन्दकारकः। अष्टमूर्त्तेरधिष्ठानमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥२१॥
हिरण्यगर्भगर्भस्थं हेमबीजं विभावसोः। अनन्तपुण्यफलदमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥२२॥
पीतवस्त्रयुगं यस्माद्वासुदेवस्य वल्लभं। प्रदानात्तस्य वै विष्णुरतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥२३॥
विष्णुस्त्वं मत्स्यरूपेण यस्मादमृतसम्भवः। चन्द्रार्कवाहनो नित्यमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥
यस्मात्त्वं पृथिवी सर्वा धेनुः केशवसन्निभा। सर्वपापहरा नित्यमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥
यस्मादायसकर्म्माणि तवाधीनानि सर्वदा। लाङ्गलाद्यायुधादीनि अतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥
यस्मात्त्वं सर्वयज्ञानामङ्गत्वेन व्यवस्थितः। योनिर्विभावसोर्नित्यमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥
गवामङ्गेषु तिष्ठन्ति भुवनानि चतुर्दश। यस्मात्तस्माच्छिवं मे स्यादिह लोके परत्र च॥२८॥
यस्मादशून्यं शयनं केशवस्य शिवस्य च। शय्या ममाप्यशून्याऽस्तु दत्ता जन्मनि जन्मनि[२] ॥
यथा रत्नेषु सर्वेषु सर्वे देवाः प्रतिष्ठिताः। तथा शान्तिं प्रयच्छन्तु रत्नदानेन मे सुराः ॥३०॥
यथा भूमिप्रदानस्य कलां नार्हन्ति षोड़शीं। दानान्यन्यानि मे शान्तिर्भूमिदानाद्भवत्विह॥३१॥
ग्रहयज्ञोऽयुतहोमो दक्षिणाभी रणे जितिः। विवाहोत्सवयज्ञेषु प्रतिष्ठादिषु कर्म्मसु ॥३२॥
सर्वकामाप्तये लक्षकोटिहोमद्वयं मतं। गृहदेशे मण्डपेऽथ[३] अयुते हस्तमात्रकं ॥३३॥
मेखलायोनिसंयुक्तं कुण्डञ्चत्वार ऋद्विजः। स्वयमेकोऽपि वा लक्षे सर्वं दशगुणं हि तत् ॥३४॥
चतुर्हस्तं द्विहस्तं वा तार्क्ष्यश्चात्राधिकं यजेत्। सामध्वनिशरीरस्त्वं वाहनं परमेष्ठिनः ॥३५॥
विषयापहरो नित्यमतः शान्तिं प्रयच्छ मे। पूर्ववत् कुण्डमामन्त्र्य लक्षहोमं समाचरेत्॥३६॥
वसोर्द्धारां ततो दद्याच्छय्याभूषादिकं ददेत्। तत्रापि दश चाष्टौ च लक्षहोमे तथर्त्विजः॥३७॥
पुत्रान्नराज्यविजयभुक्तिमुक्त्यादि[४] चाप्नुयात्। दक्षिणाभिः फलेनास्माच्छत्रुघ्नः कोटिहोमकः॥
चतुर्हस्तं चाष्टहस्तं कुण्डन्द्वादश च द्विजाः। पञ्चविंशं षोडशं वा पटे द्वारे चतुष्टयं ॥३९॥
कोटिहोमी सर्वकामी विष्णुलोकं स गच्छति। होमस्तु ग्रहमन्त्रैर्व्वा गायत्र्या वैष्णवैरपि ॥४०॥
जातवेदोमुखैः शैवैः[५] वैदिकैः प्रथितैरपि। तिलैर्यवैर्घृतैर्द्धान्यैरश्वमेधफलादिभाक् ॥४१॥
विद्वेषणाभिचारेषु त्रिकोणं कुण्डमिष्यते। समिधो वामहस्तेन श्येनास्थ्यनलसंयुताः ॥४२॥

---

१. धर्म्मकामार्थसिद्धये इति ख.। २. तथा जन्मनि जन्मनीति ङ।
३. गृहादौ मण्डपे वाथेति ख.। गृहादौ मण्डपे चैवमिति ञ.।
४. पुत्रार्थराज्यविजयभुक्तिमुक्त्यादीति ख. ङ. च।
५. जातवेदोमुखैः सौरैरिति ख.।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रक्तभूषैर्मुक्तकेशैर्ध्यायद्भिरशिवं रिपोः। दुर्म्मित्रियास्तस्मै सन्तु यो द्वेष्टि हुं फडिति च ॥४३॥
छिन्द्यात् क्षुरेण प्रतिमां पिष्टरूपं रिपुं हनेत्[1]। यजेदेकं पीड़कं वा यः स कृत्वा दिवं व्रजेत् ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये अयुतकोटिलक्षहोमा नाम सप्तषष्ट्यधिक-शततमोऽध्यायः।

अष्टषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

महापातकादिकथनम्।

पुष्कर उवाच

दण्डं कुर्य्यान्नृपो नृणां प्रायश्चित्तमकुर्वतां। कामतोऽकामतो वापि प्रायश्चित्तं कृतं चरेत् ॥१॥
मत्तक्रुद्धातुराणां च न भुञ्जीत कदाचन। महापातकिना स्पृष्टं यच्च स्पृष्टमुदक्यया ॥२॥
गणान्नं गणिकान्नं च[2] वार्द्धुषेर्गायनस्य च। अभिशप्तस्य षण्डस्य यस्याश्चोपपतिर्गृहे ॥३॥
रजकस्य नृशंसस्य वन्दिनः कितवस्य च। मिथ्यातपस्विनश्चैव चौरदण्डिकयोस्तथा[3] ॥४॥
कुण्डगोलस्त्रीजितानां वेदविक्रयिणस्तथा। शैलूपतन्त्रवायान्नं कृतघ्नस्यान्नमेव च ॥५॥
कर्म्मारस्य निषादस्य चेलनिर्णेजकस्य च। मिथ्याप्रव्रजितस्यान्नम्पुंश्चल्यास्तैलिकस्य च ॥
आरूढपतितस्यान्नं विद्विष्टान्नं च वर्ज्जयेत्। तथैव ब्राह्मणस्यान्नं ब्राह्मणेनानिमन्त्रितः ॥७॥
ब्राह्मणान्नञ्च शूद्रेण नाद्याच्चैव निमन्त्रितः। एषामन्यतमस्यान्नममत्या वा त्र्यहं क्षपेत् ॥८॥
मत्या भुक्त्वा चरेत् कृच्छ्रं रेतोविण्मूत्रमेव च। चण्डाश्वपचान्नन्तु भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥
अनिर्दशं च प्रेतान्नं गवाघ्रातं तथैव च। शूद्रोच्छिष्टं शुनोच्छिष्टं पतितान्नं तथैव च ॥१०॥
तप्तकृच्छ्रं प्रकुर्व्वीत अशौचे कृच्छ्रमाचरेत्। अशौचे यस्य यो भुङ्क्ते सोप्यशुद्धस्तथा भवेत् ॥
मृतपञ्चनखात् कूपादमेध्येन सकृद्युतात्। अपः पीत्वा त्र्यहं तिष्ठेत् सोपवासो द्विजोत्तमः ॥१२॥
सर्वत्र शूद्रे पादः स्याद् द्वित्रयं वैश्यभूपयोः[4]। विड्वराहखरोष्ट्राणां गोमायोः कपिकाकयोः ॥
प्राश्य मूत्रपुरीषाणि द्विजश्चान्द्रायणं चरेत्। शुष्काणि जग्ध्वा मांसानि[5] प्रेतान्नं करकाणि च ॥
क्रव्यादशूकरोष्ट्राणां गोमायोः कपिकाकयोः। गोनराश्वखरोष्ट्राणां छत्राकं ग्रामकुक्कुटं ॥१५॥
मांसं जग्ध्वा कुञ्जरस्य तप्तकृच्छ्रेण शुद्ध्यति। आमश्राद्धे तथा भुक्त्वा ब्रह्मचारी मधु त्वदन् ॥
लशुनं गृञ्जनं चाद्यात प्राजापत्यादिना शुचिः[6]।
भुक्त्वा चान्द्रायणं कुर्य्यान् मांसञ्चात्मकृतन्तथा ॥ १७ ॥
पेलुगव्यञ्च पेयूषं तथा श्लेष्मातकं मृदं। वृथाकृशरसंयावपायसापूपशष्कुलीः ॥१८॥

---

१. रिपुं हरेदिति ङ. ञ. च।
२. गणानां गणिकानाञ्चेति ङ. ञ. च।
३. चौरदाम्भिकयोस्तथेति ञ.।
४. द्वितीयं वैश्यशूद्रयोरिति क. ख. ङ. ञ. च।
५. शुष्काणि दग्धमांसानि इति ङ.।
६. प्राजापत्याद्द्विजः शुचिरिति ख.।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अनुपाकृतमांसानि देवान्नानि हवींषि च। गवाञ्च महिषीणां च वर्ज्जयित्वा तथाप्यजां॥१६॥
सर्वक्षीराणि वर्ज्याणि तासाञ्चैवाप्यनिर्दशं। शशकः शल्यकी गोधा खड्गः कूर्म्मस्तथैव च॥२०॥

भक्ष्याः पञ्चनखाः प्रोक्ताः परिशेषाश्च वर्जिताः।
पाठीनरोहितान्मत्स्यान् सिंहतुण्डांश्च भक्षयेत्॥ २१॥

यवगोधूमजं सर्व्वं पयसश्चैव विक्रियाः। वागषाड्गवचक्रादीन सस्नेहमुषितं तथा। २२॥
अग्निहोत्रपरीद्धाग्निर्ब्राह्मणः कामचारतः। चान्द्रायणं चरेन्मासं वीरवध्वासनं हितं॥२३॥
ब्रह्महत्या सुरापानं स्तेयं गुर्वङ्गनागमः। महान्ति पातकान्याहुः संयोगश्चैव तैः सह॥२४॥
अनृते च समुत्कर्षो राजगामि च पैशुनं। गुरोश्चालीकनिर्बन्धः समानं ब्रह्महत्यया[1]॥२५॥
ब्रह्मोज्झयवेदनिन्दा च कौटसाक्ष्यं सुहृद्वधः। गर्हितान्नाज्ययोर्जग्धिः[2] सुरापानसमानि षट्॥
निक्षेपस्यापहरणं नराश्वरजतस्य च। भूमिवज्रमणीनाञ्च रुक्मस्तेयसमं स्मृतं॥२७॥
रेतःसेकः स्वयोन्यासु कुमारीष्वन्त्यजासु च। सख्युः पुत्रस्य च[3] स्त्रीषु गुरुतल्पसमं विदुः॥
गोवधाऽयाज्य संयाज्य पारदार्य्यात्मविक्रयः। गुरुमातृपितृत्यागः स्वाध्यायाग्न्योः सुतस्य च॥
परिवित्तितानुजेन परिवेदनमेव च। तयोर्दानञ्च कन्यायास्तयोरेव च याजनं॥३०॥
कन्याया दूषणञ्चैव वार्द्धुष्यं व्रतलोपनं। तडागारामदाराणामपत्यस्य च विक्रयः॥३१॥
व्रात्यता बान्धवत्यागो भृताध्यापनमेव च। भृताच्चाध्ययनादानमविक्रेयस्य विक्रयः॥३२॥
सर्वाकारेष्वधीकारो महायन्त्रप्रवर्त्तनं। हिंसौषधीनां स्त्र्याजीवः क्रियालङ्घनमेव च॥३३॥
इन्धनार्थमशुष्काणां द्रुमाणाञ्चैव पातनं। योषितां ग्रहणञ्चैव स्त्रीनिन्दकसमागमः॥३४॥
आत्मार्थञ्च क्रियारम्भो निन्दितान्नादनन्तथा। अनाहिताग्नितास्तेयमृणानाञ्चानपक्रिया॥
असच्छास्त्राधिगमनं दौःशील्यं व्यसनं क्रिया। धान्यकुप्यपशुस्तेयं मद्यपस्त्रीनिषेवणं॥३६॥
स्त्रीशूद्रविट्क्षत्रवधो नास्तिक्यञ्चोपपातकं। ब्राह्मणस्य रुजः कृत्यं घ्रातिरघ्रेयमद्ययोः॥३७॥
जैम्भं पुंसि च मैथुन्यं जातिभ्रंशकरं स्मृतं। श्वखरोष्ट्रमृगेन्द्राणामजाव्योश्चैव मारणं[4]॥३८॥
सङ्कीर्णकरणं ज्ञेयं मीनाहिनकुलस्य च। निन्दितेभ्यो धनादानं वाणिज्यं शूद्रसेवनं॥३९॥
अपात्रीकरणं ज्ञेयमसत्यस्य च भाषणं। कृमिकीटवयोहत्या मद्यानुगतभोजनं॥४०॥

फलैधःकुसुमस्तेयमधैर्य्यञ्च मलावहं।

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये महापातकादिकथनं नामाष्ट-
षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः।

---

१. समानि ब्रह्महत्ययेति ख. ङ. ञ. च। २. गर्हितानामन्नजग्धिरिति ङ.।
३. सख्युः सुतस्य चेति ङ.। ४. मार्जारस्यैव मारणमिति ङ.।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

एकोनसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

प्रायश्चित्तानि ।

पुष्कर उवाच

एतत्प्रभृतिपापानां प्रायश्चित्तं वदामि ते । ब्रह्महा द्वादशाब्दानि कुटीङ्कृत्वा वने वसेत् ॥१॥
भिक्षेतात्मविशुद्ध्यर्थं कृत्वा शवशिरोध्वजं । प्रास्येदात्मानमग्नौ वा समिद्धे त्रिरवाक्शिराः ॥
यजेत वाश्वमेधेन स्वर्जिता गोसवेन वा । जपन्वान्यतमं वेदं योजनानां शतं ब्रजेत् ॥३॥
सर्वस्वं वा वेदविदे ब्राह्मणायोपपादयेत् । व्रतैरेतैर्व्यपोहन्ति महापातकिनो मलं ॥४॥
उपपातकसंयुक्तो गोघ्नो मासं यवान् पिवेत । कृतवापो वसेद्गोष्ठे चर्म्मणा तेन संवृतः ॥५॥
चतुर्थकालमश्नीयादक्षारलवणं मितं । गोमूत्रेण चरेत् स्नानं द्वौ मासौ नियतेन्द्रियः ॥६॥
दिवानुगच्छेद्गाश्चैव तिष्ठन्नूर्द्ध्वं रजः पिवेत् । वृषभैकादशा गास्तु दद्याद्विचरितव्रतः[1] ॥
अविद्यमाने सर्वस्वं वेदविद्भ्यो निवेदयेत् । पादमेकञ्चरेद्रोधे द्वौ पादौ बन्धने चरेत् ॥८॥
योजने पादहीनं स्याचरेत् सर्वं निपातने । कान्तारेष्वथ दुर्गेषु विषमेषु भयेषु च ॥९॥
यदि तत्र विपत्तिः स्यादेकपादो विधीयते । घण्टाभरणदोषेण तथैवार्द्धं विनिर्द्दिशेत् ॥१०॥
दमने दामने रोधे शकटस्य नियोजने । स्तम्भश्रृङ्खलपाशेषु मृते पादोनमाचरेत् ॥११॥
श्रृङ्गभङ्गेऽस्थिभङ्गे च लाङ्गूलच्छेदने तथा । यावकन्तु पिवेत्तावद्यावत् सुस्था तु गौर्भवेत् ॥

गोमतीञ्च जपेद्विद्यां गोस्तुतिं गोमतीं स्मरेत् ।
एका चेद्बहुभिर्दैवाद् यत्र व्यापादिता भवेत् ॥ १३ ॥

पादं पादन्तु हत्यायाश्चरेयुस्ते पृथक् पृथक् । उपकारे क्रियमाणे विपत्तौ नास्ति पातकं ॥
एतदेव व्रतं कुर्य्युरुपपातकिनस्तथा । अवकीर्णिवर्जं शुद्ध्यर्थञ्चान्द्रायणमथापि वा ॥१५॥
अवकीर्णी तु कालेन गर्द्दभेन चतुष्पथे । पाकयज्ञविधानेन यजेत निर्ऋतिं निशि ॥१६॥
कृत्वाग्निं विधिवद्धीमानन्ततस्तु समित्तृचा । चन्द्रेन्द्रगुरुवह्नीनां जुहुयात् सर्पिषाहुतिं[2] ॥१७॥
अथवा गार्द्दभञ्चर्म्म वसित्वाब्दञ्चरेन्महीं । हत्वा गर्भमविज्ञातं ब्रह्महत्याव्रतं चरेत् ॥१८॥
सुरां पीत्वा द्विजो मोहादग्निवर्णां सुरां पिवेत् । गोमूत्रमग्निवर्णं वा पिवेदुदकमेव वा ॥१९॥
सुवर्णस्तेयकृद्विप्रो राजानमभिगम्य तु । स्वकर्म्म ख्यापयन् ब्रूयान्मां भवाननुशास्त्विति ॥
गृहीत्वा मुशलं राजा सकृद्धन्यात् स्वयन्तं । बधेन शुद्ध्यते स्तेयो ब्राह्मणस्तपसैव वा ॥२१॥
गुरुतल्पो निकृत्यैव शिश्नञ्च वृषणं स्वयं । निधाय चाञ्जलौ गच्छेदानिपाताच्च नैर्ऋतिं ॥
चान्द्रायणान् वा त्रीन्मासानभ्यसेन्नियतेन्द्रियः । जातिभ्रंशकरं कर्म कृत्वान्यतममिच्छया ॥
चरेच्छान्तपनं कृच्छ्रं प्राजापत्यमनिच्छया । सङ्करीपात्रकृत्यासु मासं शोधनमैन्दवं ॥२४॥
मलिनीकरणीयेषु तप्तं स्याद्यावकं त्र्यहं । तुरीयो ब्रह्महत्यायाः क्षत्रियस्य वधे स्मृतः ॥२५॥

---

१. दद्यात् सुचरितव्रत इति ङ. ।   २. जुहुयात्सर्पिषाहुतीरिति ख. ङ. ज. च ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वैश्येऽष्टमांशो वृत्तस्थे शूद्रे ज्ञेयस्तु षोडशः । मार्जारनकुलौ हत्वा चासं मण्डूकमेव च ॥२६॥
श्वगोधोलूककाकांश्च शूद्रहत्याव्रतं चरेत् । चतुर्णामपि वर्णानां नारीं हत्वानवस्थितां ॥
अमत्यैव प्रमाप्य स्त्रीं शूद्रहत्याव्रतं चरेत् । सर्पादीनां वधे नक्तमनस्थ्नां वायुसंयमः ॥२८॥
द्रव्याणामल्पसाराणां स्तेयं कृत्वान्यवेश्मतः। चरेच्छान्तपनं कृच्छ्रं व्रतं निर्वाप्य शुद्ध्यति॥
भक्ष्यभोज्यापहरणे यानशय्यासनस्य च । पुष्पमूलफलानाञ्च पञ्चगव्यं विशोधनं ॥३०॥
तृणकाष्ठद्रुमाणान्तु शुष्कान्नस्य गुडस्य च । चेलचर्म्मामिषाणान्तु[१] त्रिरात्रं स्यादभोजनं ॥
मणिमुक्ताप्रवालानां ताम्रस्य रजतस्य च । अयःकांस्योपलानां च द्वादशाहं कणान्नभुक् ॥
कार्पासकीटजोर्णानां द्विशफैकशफस्य च । पक्षिगन्धौषधीनान्तु रज्वा चैव त्र्यहम्पयः ॥३३॥
गुरुतल्पव्रतं कुर्य्याद्रेतः सिक्त्वा स्वयोनिषु । सख्युः पुत्रस्य च स्त्रीषु कुमारीष्वन्त्यजासु च ॥
पितृस्वस्रेयीं भगिनीं स्वस्रीयां मातुरेव च । मातुश्च भ्रातुराप्तस्य गत्वा चान्द्रायणञ्चरेत् ॥
अमानुषीषु पुरुष उदक्यायामयोनिषु । रेतः सिक्त्वा जले चैव कृच्छ्रं शान्तपनञ्चरेत् ॥

मैथुनन्तु समासेव्य पुंसि योषिति वा द्विजः ।
गोयानेऽप्सु दिवा चैव सवासाः स्नानमाचरेत् ॥ ३७ ॥
चाण्डालान्त्यस्त्रियो गत्वा भुक्त्वा च प्रतिगृह्य च ।
पतत्यज्ञानतो विप्रो ज्ञानात् साम्यन्तु गच्छति ॥ ३८ ॥

विप्रदुष्टां स्त्रियं भर्त्ता निरुन्ध्यादेकवेश्मनि । यत् पुंसः परदारेषु तदेनाञ्चारयेद्व्रतं ॥३९॥

सा चेत्पुनः प्रदुष्येत सदृशेनोपमन्त्रिता ।
कृच्छ्रञ्चान्द्रायणञ्चैव तदस्याः पावनं स्मृतं ॥ ४० ॥

यत् करोत्येकरात्रेण वृषलीसेवनं द्विजः । तद्भैक्ष्यभुक् जपेन्नित्यं त्रिभिर्वर्षैर्व्यपोहति ॥४१॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये प्रायश्चित्तानि नाम एकोनसप्तत्यधिक-
शततमोऽध्यायः ।

सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

प्रायश्चित्तानि ।

पुष्कर उवाच

महापापानुयुक्तानां[२] प्रायश्चित्तानि[३] वच्मि ते । संवत्सरेण पतति पतितेन सहाचरन् ॥१॥
याजनाद्ध्यापनाद्यौनान्न तु यानाशनासनात् । यो येन पतितेनैषां संसर्गं याति मानवः ॥२॥
स तस्यैव व्रतं कुर्य्यात्तत्संसर्गस्य शुद्धये । पतितस्योदकं कार्य्यं सपिण्डैर्बान्धवैः सह ॥३॥

---

१. वेणुचर्मामिषाणाञ्चेति झ ।
२. महापापोपपन्नानामिति ङ. ।
३. प्रायश्चित्तं वदामि त इति झ. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

निन्दितेऽहनि सायाह्ने ज्ञात्यृत्विग्गुरुसन्निधौ । दासो घटमपां पूर्णं पर्य्यस्येत् प्रेतवत्पदा[1] ॥
अहोरात्रमुपासीरन्नशौचं बान्धवैः सह । निवर्त्तयेरंस्तस्मात्तु ज्येष्ठांशम्भाषणादिके ॥५॥
ज्येष्ठांशम्प्राप्नुयाचास्य यवीयान् गुणतोऽधिकः । प्रायश्चित्ते तु चरिते पूर्णं कुम्भमपां नवं ॥
तेनैव सार्द्धं प्राश्येयुः स्नात्वा पुण्यजलाशये । एवमेव विधिं कुर्युर्योषित्सु पतितास्वपि ॥७॥
वस्त्रान्नपानन्देयन्तु वसेयुश्च गृहान्तिके । तेषां द्विजानां सावित्री नानूद्येत[2] यथाविधि ॥८॥

तांश्चारयित्वा त्रीन् कृच्छ्रान् यथाविध्युपनाययेत् ।
विकर्मस्थाः परित्यक्तास्तेषा मप्येतदादिशेत ॥ ९ ॥
जपित्वा त्रीणि सावित्र्याः सहस्राणि समाहितः ।
मासङ्गोष्ठे पयः पीत्वा मुच्यतेऽसत्प्रतिग्रहात् ॥ १० ॥

व्रात्यानां याजनं कृत्वा परेषामन्त्यकर्म च । अभिचारमहीनानान्त्रिभिः कृच्छ्रै र्व्यपोहति[3] ॥
शरणागतं परित्यज्य वेदं विप्लाव्य च द्विजः । संवत्सरं यताहारस्तत्पापमपसेधति ॥१२॥
श्वशृगालखरैर्दष्टो ग्राम्यैः क्रव्याद्भिरेव च । नरोष्ट्राश्ववैर्वराहैश्च[4] प्राणायामेन शुद्ध्यति ॥
स्नातकव्रतलोपे च कर्मत्यागे ह्यभोजनं । हुङ्कारं[5] ब्राह्मणस्योक्त्वा त्वङ्कारञ्च गरीयसः ॥१४॥
स्नात्वानश्नन्नहः शेषमभिवाद्य प्रसादयेत् । अवगूर्य्य चरेत्कृच्छ्रमतिकृच्छ्रन्निपातने ॥१५॥
कृच्छ्रातिकृच्छ्रं कुर्वीत विप्रस्योत्पाद्य शोणितं । चाण्डालादिरविज्ञातो यस्य तिष्ठेत वेश्मनि ॥
सम्यग् ज्ञातस्तु कालेन तस्य कुर्वीत शोधनं । चान्द्रायणं पराकं वा द्विजानान्तु विशोधनं ॥१७॥
प्राजापत्यन्तु शूद्राणां शेषन्तदनुसारतः । गुडङ्कुसुम्भं लवणं तथा धान्यानि यानि च ॥१८॥
कृत्वा गृहे ततो द्वारि तेषान्दद्याद्धुताशनं । मृण्मयानान्तु भाण्डानां त्याग एव विधीयते ॥१९॥
द्रव्याणां परिशेषाणां द्रव्यशुद्धिर्विधीयते । कूपैकपानसक्ता ये स्पर्शात्सङ्कल्पदूषिताः[6] ॥२०॥
शुद्धयेयुरुपवासेन पञ्चगव्येन वाप्यथ । यस्तु संस्पृश्य चण्डालमश्नीयाच्च स्वकामतः ॥२१॥
द्विजश्चान्द्रायणं कुर्य्यात्तप्तकृच्छ्रमथापि वा । भाण्डसङ्कुलसङ्कीर्णश्चाण्डालादिजुगुप्सितैः ॥२२॥
भुक्त्वा पीत्वा तथा तेषां षड्रात्रेण विशुद्ध्यति । अन्त्यानां भुक्तशेषन्तु भक्षयित्वा द्विजातयः ॥
व्रतं चान्द्रायणं कुर्य्युस्त्रिरात्रं शूद्र एव तु । चण्डालकूपभाण्डेषु अज्ञानात्पिबते जलं ॥२४॥
द्विजः शान्तपनं कुर्य्याच्छूद्रश्चोपवसेद्दिनं । चण्डालेन तु संस्पृष्टो[7] यस्त्वपः पिबते द्विजः ॥२५॥
त्रिरात्रन्तेन कर्त्तव्यं शूद्रश्चोपवसेद्दिनं । उच्छिष्टेन यदि[8] स्पृष्टः शुना शूद्रेण वा द्विजः ॥२६॥
उपोष्य रजनीमेकां पञ्चगव्येन शुद्ध्यति । वैश्येन क्षत्रियेणैव स्नानं नक्तं समाचरेत् ॥२७॥
अध्वानं प्रस्थितो विप्रः कान्तारे यद्यनूदके । पक्वान्नेन गृहीतेन मूत्रोच्चारङ्करोति वै ॥२८॥

---

१. प्रेतवत् सदेति ख. ग. घ. ङ. च ।
२. न युज्येतेति ख. ।
३. कृच्छ्रै र्विशुद्ध्यति इति ग. घ. ङ. च ।
४. नरोष्ट्रविड्वराहैश्चेति ङ. ।
५. क्रूङ्कारमिति ख. घ. छ. च । ओङ्कारमिति ग. ङ. च । इङ्कारञ्चेति ख. ।
६. स्पर्शसङ्कल्पभूषिता इति झ. ।
७. संसृष्ट इति क. ।
८. यदेति ख. ग. घ ङ. छ. च ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अनिधायैव तद्द्रव्यं अङ्के कृत्वा तु संस्थितं। शौचं कृत्वान्नमभ्युक्ष्य अर्कस्याग्नेश्च दर्शयेत् ॥
म्लेच्छैर्गतानां चौरैर्वा कान्तारे वा प्रवासिनां।
भक्ष्याभक्ष्यविशुद्ध्यर्थं[१] तेषां वक्ष्यामि निष्कृतिं ॥ ३० ॥
पुनः प्राप्य स्वदेशञ्च वर्णानामनुपूर्वशः। कृच्छ्रस्यान्ते ब्राह्मणस्तु पुनः संस्कारमर्हति॥३१॥
पादोनान्ते क्षत्रियश्च अर्द्धान्ते वैश्य एव च। पादं कृत्वा तथा शूद्रो दानं दत्वा विशुद्ध्यति ॥
उदक्या तु सवर्णा या स्पृष्टा चेत स्यादुदक्यया।
तस्मिन्नेवाहनि स्नाता शुद्धिमाप्नोत्यसंशयं ॥ ३३ ॥
रजस्वला तु नाश्नीयात् संस्पृष्टा हीनवर्णया। यावन्न शुद्धिमाप्नोति शुद्धिस्नानेन शुद्ध्यति॥३४॥
मूत्रं कृत्वा व्रजन्वर्त्म स्मृतिभ्रंशाज्जलं पिबेत्। अहोरात्रोषितो भूत्वा पञ्चगव्येन शुद्ध्यति॥३५॥
मूत्रोच्चारं द्विजः कृत्वा अकृत्वा शौचमात्मनः।
मोहाद्भुक्त्वा[२] त्रिरात्रन्तु यवान् पीत्वा विशुद्ध्यति ॥ ३६ ॥
ये प्रत्यवसिता विप्राः प्रव्रज्यादिबलात्तथा। अनाशकनिवृत्ताश्च तेषां शुद्धिः प्रचक्ष्यते ॥३७॥
चारयेत्त्रीणि कृच्छ्राणि चान्द्रायणमथापि वा। जातकर्म्मादिसंस्कारैः संस्कुर्यात्तं तथा पुनः ॥
उपानहममेध्यं च यस्य संस्पृशते मुखं। मृत्तिकागोमयौ तत्र पञ्चगव्यञ्च शोधनं ॥३९॥
वापनं विक्रयञ्चैव नीलवस्त्रादिधारणं। तपनीयं हि विप्रस्य त्रिभिः कृच्छ्रैर्विशुद्ध्यति ॥
अन्त्यजातिश्वपाकेन[३] संस्पृष्टा स्त्री रजस्वला। चतुर्थेऽहनि शुद्धा सा त्रिरात्रं तत्र आचरेत्[४] ॥
चाण्डालश्वपचौ स्पृष्ट्वा तथा पूयञ्च सूतिकां।
शवं तत्स्पर्शिनं स्पृष्ट्वा[५] सद्यः स्नानेन शुद्ध्यति ॥ ४२ ॥
नारं स्पृष्ट्वास्थि सस्नेहं स्नात्वा विप्रो विशुद्ध्यति। रथ्याकर्दमतोयेन अधोनाभेर्मृदोदकैः ॥
वान्तो विविक्तः स्नात्वा तु घृतं प्राश्य विशुद्ध्यति।
स्नानात् क्षुरकर्मकर्त्ता कृच्छ्रकृद्ग्रहणेऽन्नभुक् ॥ ४४ ॥
अपाङ्क्तेयाशी गव्याशी शुना दष्टस्तथा शुचिः।
कृमिदष्टश्चात्मघाती कृच्छ्राज्जप्याच्च होमतः ॥ ४५ ॥
होमाद्यैश्चानुतापेन पूयन्ते पापिनोऽखिलाः[६]।

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये प्रायश्चित्तानि नाम सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः।

---

१. भक्ष्यभोज्यविशुद्ध्यर्थमिति झ.। २. लोभाद्भुक्त्वेति ख. ग. घ. ङ. छ. च।
३. अन्त्यजैश्च स्वपाकेनेति ङ.।
४. अन्त्यजातिश्वपाकेनेत्यादिः, तत्र आचरेदित्यन्तः पाठः छ. पुस्तके नास्ति।
५. शवन्तत्स्पर्शिनं श्वानमिति ख.। शवन्तत्स्पृष्टिनं श्वानमिति घ. ज. च।
६. मूत्रोच्चारं द्विजः कृत्वेत्यादिः, पूयन्ते पापिनोऽखिला इत्यन्तः पाठः ज. झ. पुस्तके नास्ति।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

एकसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

प्रायश्चित्तानि ।

पुष्कर उवाच

प्रायश्चित्तं रहस्यादि वक्ष्ये शुद्धिकरं परं । पौरुषेण तु सूक्तेन मासं जप्यादिनाघहा ॥१॥
मुच्यते पातकैः सर्व्वैर्ज्जप्त्वा त्रिरघमर्षणं । वेदजप्याद्वायुयमाद् गायत्र्या व्रततोऽघहा[1] ॥२॥
मुण्डनं सर्वकृच्छ्रेषु स्नानं होमो हरेर्यजिः । उत्थितस्तु दिवा तिष्ठेदुपविष्टस्तथा निशि ॥३॥
एतद्वीरासनं प्रोक्तं कृच्छ्रकृत्तेन पापहा । अष्टभिः प्रत्यहं ग्रासैर्यतिचान्द्रायणं स्मृतं ॥४॥
प्रातश्चतुर्भिः सायञ्च शिशुचान्द्रायणं स्मृतं । यथाकथञ्चित् पिण्डानां चत्वारिंशच्छतद्वयं ॥
मासेन भक्षयेदेतत् सुरचान्द्रायणं चरेत् । त्र्यहमुष्णं पिवेदापस्त्र्यहमुष्णं पयः पिवेत् ॥६॥
त्र्यहमुष्णं घृतं पीत्वा वायुभक्षी भवेत् त्र्यहं । तप्तकृच्छ्रमिदं प्रोक्तं शीतैः शीतं प्रकीर्त्तितं ॥७॥
कृच्छ्रातिकृच्छ्रं पयसा दिवसानेकविंशतिं । गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकं ॥८॥
एकरात्रोपवासश्च कृच्छ्रं शान्तपनं स्मृतं । एतच्च प्रत्यहाभ्यस्तं महाशान्तपनं स्मृतं ॥९॥
त्र्यहाभ्यस्तमथैकैकमतिशान्तपनं स्मृतं । कृच्छ्रं पराकसञ्ज्ञं स्याद्द्वादशाहमभोजनं ॥१०॥
एकभक्तं त्र्यहाभ्यस्तं क्रमान्नक्तमयाचित । प्राजापत्यमुपोष्यान्ते पादः स्यात् कृच्छ्रपादकः ॥

फलैर्म्मासं फलं कृच्छ्रं विल्वैः श्रीकृच्छ्र ईरितः ।
पद्माक्षैः स्यादामलकैः पुष्पकृच्छ्रं तु पुष्पकैः ॥ १२ ॥

पत्रकृच्छ्रन्तथा पत्रैस्तोयकृच्छ्रं जलेन तु । मूलकृच्छ्रन्तथा मूलैर्दध्ना क्षीरेण तक्रतः ॥१३॥
मासं वायव्यकृच्छ्रं स्यात्पाणिपूरान्नभोजनात् । तिलैर्द्वादशरात्रेण कृच्छ्रमाग्नेयमार्त्तिनुत ॥
पाक्षं प्रसृत्या लाजानां ब्रह्मकूर्चं तथा भवेत् । उपोषितश्चतुर्दश्यां पञ्चदश्यामनन्तरं ॥१५॥
पञ्चगव्यं समश्नीयाद्धविष्याशीत्यनन्तरं । मासेन द्विर्न्नरः कृत्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥१६॥
श्रीकामः पुष्टिकामश्च स्वर्गकामोऽघनष्टये । देवताराधनपरः कृच्छ्रकारी स सर्वभाक् ॥१७॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये रहस्यादिप्रायश्चित्तं नाम एकसप्तत्यधिक-
शततमोऽध्यायः ।

द्विसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

सर्वपापप्रायश्चित्तानि ।

पुष्कर उवाच

परदारपरद्रव्यजीवहिंसादिके यदा । प्रवर्त्तते नृणां चित्तं प्रायश्चित्तं स्तुतिस्तदा ॥१॥

---

१. जपतोऽघहेति ख. घ. ज. च ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विष्णवे विष्णवे नित्यं विष्णवे विष्णवे[1] नमः । नमामि विष्णुं चित्तस्थमहङ्कारगतिं हरिं ॥
चित्तस्थमीशमव्यक्तमनन्तमपराजितं । विष्णुमीड्यमशेषेण अनादिनिधनं विभुं ॥३॥
विष्णुश्चित्तगतो यन्मे विष्णुर्बुद्धिगतश्च यत् । यच्चाहङ्कारगो विष्णुर्यद्विष्णुर्मयि संस्थितः ॥
करोति कर्मभूतोऽसौ स्थावरस्य चरस्य च । तत् पापन्नाशमायातु तस्मिन्नेव हि चिन्तिते ॥
ध्यातो हरति यत् पापं स्वप्ने दृष्टस्तु भावनात् । तमुपेन्द्रमहं विष्णुं प्रणतार्त्तिहरं हरिं ॥६॥
जगत्यस्मिन्निराधारे मज्जमाने तमस्यधः । हस्तावलम्बनं विष्णुं प्रणमामि परात् परं ॥७॥
सर्वेश्वरेश्वर विभो परमात्मन्नधोक्षज । हृषीकेश हृषीकेश हृषीकेश नमोऽस्तु ते ॥८॥
नृसिंहानन्त गोविन्द भूतभावन केशव । दुरुक्तं दुष्कृतं ध्यातं शमयाघन्नमोऽस्तु ते ॥९॥
यन्मया चिन्तितं दुष्टं स्वचित्तवशवर्त्तिना । अकार्य्यमहदत्युग्रन्तच्छमन्नय केशव ॥१०॥
ब्रह्मण्यदेव गोविन्द परमार्थपरायण । जगन्नाथ जगद्धातः पापं प्रशमयाच्युत ॥११॥
यथापराह्णे सायाह्णे मध्याह्णे च तथा निशि । कायेन मनसा वाचा कृतं पापमजानता ॥१२॥
जानता च हृषीकेश पुण्डरीकाक्ष माधव । नामत्रयोच्चारणतः स्वप्ने यातु मम क्षयं ॥१३॥
शारीरं मे हृषीकेश पुण्डरीकाक्ष माधव । पापं प्रशमयाद्य त्वं[2] वाक्कृतं मम माधव ।.१४॥
यद्भुञ्जन्यत्स्वपंस्तिष्ठन् गच्छन् जाग्रद् यदास्थितः। कृतवान् पापमद्याहं कायेन मनसा गिरा॥
यत् स्वल्पमपि यत् स्थूलं कुयोनिनरकावहं । तद्यातु प्रशमं सर्व्वं वासुदेवानुकीर्त्तनात् ॥१६॥
परं ब्रह्म परं धाम पवित्रं परमञ्च यत् । तस्मिन्[3] प्रकीर्त्तिते विष्णौ यत् पापं तत् प्रणश्यतु ॥
यत् प्राप्य न निवर्त्तन्ते गन्धस्पर्शादिवर्जितं । सूरयस्तत् पदं विष्णोस्तत् सर्वं शमयत्वघं[4] ॥
पापप्रणाशनं स्तोत्रं यः पठेच्छृणुयादपि[5] । शारीरैर्म्मानसैर्व्वागजैः कृतैः पापैः प्रमुच्यते ॥
सर्व्वपापग्रहादिभ्यो याति विष्णोः परं पदं । तस्मात् पापे कृते जप्यं स्तोत्रं सर्वाघमर्दनं ॥
प्रायश्चित्तमघौघानां स्तोत्रं व्रतकृते वरं । प्रायश्चित्तैः स्तोत्रजपैर्व्रतैर्न्नश्यति पातकं ॥२१॥
ततः कार्याणि[6] संसिद्ध्यै तानि वै भुक्तिमुक्तये ।

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये सर्वपापप्रायश्चित्ते पापनाशनस्तोत्रं नाम
द्विसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ।

---

१. विष्णवे जिष्णवे इति ज. झ. च ।
२. प्रशमात्यर्थमिति ख. घ. ज. च ।
३. अस्मिन्निति घ. ।
४. सर्वं शमयत्वघमिति झ. ।
५. यः पठेच्छ्रद्धया नर इति ज. झ. च । यः पठेच्छृणुयान्नर इति ञ. ।
६. ततः कर्माणीति ख. ग. घ. छ. च ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

त्रिसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

प्रायश्चित्तं ।

अग्निरुवाच

प्रायश्चित्तं ब्रह्मणोक्तं वक्ष्ये पापोपशान्तिदं । स्यात् प्राणवियोगफलो व्यापारो हननं स्मृतः ॥१॥
रागाद् द्वेषात् प्रमादाच्च स्वतः परत एव वा । ब्राह्मणं घातयेद्यस्तु स भवेद् ब्रह्मघातकः॥२॥
बहूनामेककार्य्याणां सर्व्वेषां शस्त्रधारिणां। यद्येको घातकस्तत्र सर्व्वे ते घातकाः स्मृताः॥३॥
आक्रोशितस्ताडितो वा धनैर्व्वा परिपीडितः । यमुद्दिश्य त्यजेत् प्राणांस्तमाहुर्ब्रह्मघातकं ॥४॥
औषधाद्युपकारे तु न पापं स्यात् कृते मृते । पुत्रं शिष्यन्तथा भार्य्यां शासते न मृते ह्यघं ॥५॥

देशं कालञ्च यः शक्तिं पापञ्चावेक्ष्य यत्नतः ।
प्रायश्चित्तं प्रकल्प्यं स्याद्यत्र प्रोक्ता न निष्कृतिः[1] ॥ ६ ॥

गवार्थे ब्राह्मणार्थे वा सद्यः प्राणान् परित्यजेत् । प्रास्येदात्मानमग्नौ वा मुच्यते ब्रह्महत्यया ॥७॥

शिरःकपाली ध्वजवान् भैक्षाशी कर्म्म वेदयन् ।
ब्रह्महा द्वादशाब्दानि मितभुक् शुद्धिमाप्नुयात् ॥ ८ ॥

षड्भिर्व्वर्षैः शुद्धचारी ब्रह्महा पूयते नरः । विहितं यदकामानां कामात्तु द्विगुणं स्मृतं ॥९॥
प्रायश्चित्तं प्रवृत्तस्य बधे स्यात्तु[2] त्रिवार्षिकं । ब्रह्मघ्नि क्षत्रे द्विगुणं विट्च्छूद्रे द्विगुणं त्रिधा ॥१०॥
अन्यत्र विप्रे सकलं पादोनं क्षत्रिये मतं । वैश्येऽर्द्धपादं क्षत्रे स्याद् वृद्धस्त्रीबालरोगिषु ॥११॥
तुरीयो ब्रह्महत्यायाः क्षत्रियस्य बधे स्मृतं । वैश्येऽष्टमांशो वृत्तस्थे शूद्रे ज्ञेयस्तु षोड़शः ॥१२॥
अप्रदुष्टां स्त्रियं हत्वा शूद्रहत्याव्रतं चरेत् । पञ्चगव्यं पिवेद् गोघ्नो मासमासीत संयतः ॥१३॥
गोष्ठेशयो गोऽनुगामी गोप्रदानेन शुद्ध्यति । कृच्छ्रञ्चैवातिकृच्छ्रं वा पादह्रासो नृपादिषु ॥१४॥
अतिवृद्धामतिकृशामतिबालाञ्च रोगिणीं । हत्वा पूर्व्वविधानेन चरेदर्द्धव्रतं द्विजः ॥१५॥
ब्राह्मणान् भोजयेच्छक्त्या दद्याद्धेमतिलादिकं । मुष्टिचपेटकीलेन तथा शृङ्गादिमोटने ॥१६॥
लगुडादिप्रहारेण गोबधं तत्र निर्दिशेत् । दमने दामने चैव शकटादौ च योजने ॥१७॥
स्तम्भशृङ्खलपाशैर्व्वा मृते पादोनमाचरेत् । काष्ठे शान्तपनं कुर्य्यात् प्राजापत्यन्तु लोष्ठके ॥१८॥
तप्तकृच्छ्रन्तु पाषाणे शस्त्रे चाप्यतिकृच्छ्रकं । मार्ज्जारगोधानकुलमण्डूकश्वपतत्रिणः ॥१९॥
हत्वा त्र्यहं पिवेत् क्षीरं कृच्छ्रं चान्द्रायणं चरेत् । व्रतं रहस्ये रहसि प्रकाशेऽपि प्रकाशकं ॥२०॥
प्राणायामशतं कार्य्यं सर्वपापापनुत्तये । पानकं द्राक्षमधुकं खार्ज्जूरन्तालमैक्षवं ॥२१॥
माध्वीकं टङ्कमाध्वीकं मैरेयं नारिकेलजं । न मद्यान्यपि मद्यानि पैष्टी मुख्या सुरा स्मृता ॥२२॥

त्रैवर्णस्य निषिद्धानि पीत्वा तप्त्वाप्यपः शुचिः ।
कणान् वा भक्षयेदब्दं पिण्याकं वा सकृन्निशि ॥ २३ ॥

---

१. न संस्कृतिरिति छ. । २. बधेऽस्य तु इति छ. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सुरापाणापनुत्यर्थं बालवासा जटी ध्वजी । अज्ञानात् प्राश्य विण्मूत्रं सुरासंस्पृष्टमेव च ॥
पुनः संस्कारमर्हन्ति त्रयो वर्णा द्विजातयः । मद्यभाण्डस्थिता आपः पीत्वा सप्तदिनं व्रती ॥
चाण्डालस्य तु पानीयं पीत्वा स्यात् षड्दिनं व्रती ।
चण्डालकूपभाण्डेषु पीत्वा शान्तपनं चरेत् ॥ २६ ॥
पञ्चगव्यं त्रिरान्ते पीत्वा चान्त्यजलं द्विजः । मत्स्यकण्टकशम्बूकशङ्खशुक्तिकपर्दकान् ॥२७॥
पीत्वा नवोदकं चैव पञ्चगव्येन शुद्धयति । शवकूपोदकं पीत्वा त्रिरात्रेण विशुद्धयति ॥२८॥
अन्त्यावसायिनामन्नं भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत । आपत्काले शूद्रगृहे मनस्तापेन शुद्धयति ॥
शूद्रभाजनभुक् विप्रः पञ्चगव्यादुपोषितः । कन्दुपक्वं स्नेहपक्वं स्नेहं च दधिशक्तवः ॥३०॥
शूद्रादनिन्द्यान्येतानि गुडक्षीररसादिकं। अस्नातभुक् चोपवासी दिनान्ते तु जपाच्छुचिः॥३१॥
मूत्रोच्चार्य्यशुचिर्भुक्त्वा त्रिरात्रेण विशुद्धयति । केशकीटावपन्नं च पादस्पृष्टञ्च कामतः ॥
भ्रूणघ्नावेक्षित्तं चैव संस्पृष्टं वाप्युदक्यया । काकाद्यैरवलीढं च शुना संस्पृष्टमेव च ॥३३॥
गवाद्यैरन्नमाघ्रातं भुक्त्वा त्र्यहमुपावसेत्। रेतोविण्मूत्रभक्षी तु प्राजापत्यं समाचरेत् । ३४॥
चान्द्रायणं नवश्राद्धे पराको मासिके मतः । पक्षत्रयेऽतिकृच्छ्रं स्यात् षण्मासे कृच्छ्रमेव च ॥३५॥
आब्दिके पादकृच्छ्रं स्यादेकाहः पुनराब्दिके । पूर्व्वेद्युर्व्वार्षिकं श्राद्धं परेद्युः पुनराब्दिकं ॥
निषिद्धभक्षणे भुक्ते प्रायश्चित्तमुपोषणं । भूस्तृणं लशुनं भुक्त्वा[1] शिशुकं कृच्छ्रमाचरेत्[2]॥३७॥
अभोज्यानान्तु भुक्त्वान्नं स्त्रीशूद्रोच्छिष्टमेव च । जग्ध्वा मांसमभक्ष्यञ्च सप्तरात्रं पयः पिबेत ॥
मधु मांसञ्च योऽश्नीयाच्छावं सूतकमेव वा । प्राजापत्यं चरेत् कृच्छ्रं ब्रह्मचारी यतिर्व्रती ॥
अन्यायेन परस्वापहरणं स्तेयमुच्यते । मुसलेन हतो राज्ञा स्वर्णस्तेयी विशुद्ध्यति ॥४०॥
अधःशायी जटाधारी पर्णमूलफलाशनः । एककालं समश्नानो द्वादशाब्दे विशुद्ध्यति ॥४१॥
रुक्मस्तेयी सुरापश्च ब्रह्महा गुरुतल्पगः । स्तेयं कृत्वा सुरां पीत्वा कृच्छ्रञ्चाब्दं चरेन्नरः॥४२॥
मणिमुक्ताप्रवालानां ताम्रस्य रजतस्य च । अयस्कांस्योपलानाञ्च द्वादशाहं कणान्नभुक्॥४३॥
मनुष्याणान्तु हरणे स्त्रीणां क्षेत्रगृहस्य च । वापीकूपतडागानां शुद्धिश्चान्द्रायणं स्मृतं ॥४४॥
भक्ष्यभोज्यापहरणे यानशय्यासनस्य च । पुष्पमूलफलानाञ्च पञ्चगव्यं विशोधनं ॥४५॥
तृणकाष्ठद्रुमाणाञ्च शुष्कान्नस्य गुडस्य च । चेलचर्म्मामिषाणाञ्च त्रिरात्रं स्यादभोजनं ॥४७॥
पितुः पत्नीञ्च भगिनीमाचार्य्यतनयान्तथा । आचार्य्याणीं सुतां स्वाञ्च गच्छंश्च गुरुतल्पगः॥
गुरुतल्पेऽभिभाष्यैनस्तप्ते पच्यादयोमये । शूर्मीं ज्वलन्तीञ्चाश्लिष्य मृत्युना स विशुद्धयति॥
चान्द्रायणान् वा त्रीन्मासानभ्यस्य गुरुतल्पगः। एवमेव विधिं कुर्य्याद् योषित् सुपतितास्वपि॥
यत् पुंसः परदारेषु तच्चैनां कारयेद्व्रतं । रेतः सिक्त्वा कुमारीषु चाण्डालीषु सुतासु च ॥
सपिण्डापत्यदारेषु प्राणत्यागो विधीयते । यत् करोत्येकरात्रेण वृषलीसेवनं द्विजः ॥५२॥
तद्भैक्ष्यभुग्[3] जपन्नित्यं त्रिभिर्वर्षैर्व्यपोहति । पितृव्यदारगमने भ्रातृभार्य्यागमे[4] तथा ॥५३॥

---

१. लशुनं गृञ्जनं भुक्त्वेति ङ. । २. शिशुकृच्छ्रं समाचरेदिति ख. ।
३. हविष्यभुगिति ग. ट. च । ४. मातृजायागमे इति ग. छ. ट. च ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

चाण्डालीं पुक्कसीं वापि स्नुषाञ्च भगिनीं सखीं ।
मातुः पितुः स्वसारञ्च निक्षिप्तां शरणागतां ॥ ५४ ॥
मातुलानीं स्वसारञ्चसगोत्रामन्यमिच्छतीं। शिष्यभार्य्यां गुरोर्भार्य्यां गत्वा चान्द्रायणञ्चरेत्॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये प्रायश्चित्तानि नाम त्रिसप्तत्यधिक-
शततमोऽध्यायः ।

चतुःसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

प्रायश्चित्तानि ।

अग्निरुवाच

देवाश्रमार्च्चनादीनां प्रायश्चित्तन्तु लोपतः । पूजालोपे चाष्टशतं जपेद्द्विगुणपूजनं ॥ १ ॥
पञ्चोपनिषदैर्म्मन्त्रैर्हुत्वा ब्राह्मणभोजनं । सूतिकान्त्यजकोदक्यास्पृष्टे देवे शतं जपेत्[1] ॥२॥
पञ्चोपनिषदैः पूजां द्विगुणं स्नानमेव च । विप्रभोज्यं होमलोपे होमस्नानं तथार्च्चनं ॥३॥
होमद्रव्ये मूषिकाद्यैर्भक्षिते कीटसंयुते । तावन्मात्रं परित्यज्य प्रोक्ष्य देवादि पूजयेत् ॥४॥
अङ्कुरार्पणमात्रन्तु छिन्नं भिन्नं परित्यजेत् । अस्पृश्यैश्चैव संस्पृष्टे अन्यपात्रे तदर्पणं ॥
देवमानुषविघ्नघ्नं पूजाकाले तथैव च। मन्त्रद्रव्यादिव्यत्यासे मूलं जप्त्वा पुनर्ज्जपेत् ॥६॥
कुम्भेनाष्टशतजपो देवे तु पतिते करात् । भिन्ने नष्टे चोपवासः शतहोमाच्छुभं भवेत्[2] ॥७॥
कृते पापेऽनुतापो वै यस्य पुंसः प्रजापते । प्रायश्चित्तन्तु तस्यैकं हरिसंस्मरणं परं ॥८॥
चान्द्रायणं पराको वा प्राजापत्यमघौघनुत् । सूर्येशशक्तिश्रीशादिमन्त्रजप्यमघौघनुत् ॥९॥
गायत्रीप्रणवस्तोत्रमन्त्रजप्यमघान्तकं । काद्यैरावीजसंयुक्तैराद्यैराद्यैस्तदन्तकैः ॥१०॥

सूर्य्येशशक्तिश्रीशादिमन्त्राः कोट्यधिकाः पृथक् ।
ओंह्रीमाद्याश्चतुर्थ्यन्ता नमोन्ताः सर्वकामदाः ॥ ११ ॥

नृसिंहद्वादशाष्टार्णमालामन्त्राद्यघौघनुत् । आग्नेयस्य पुराणस्य पठनं श्रवणादिकं ॥१२॥
द्विविद्यारूपको विष्णुरग्निरूपस्तु गीयते । परमात्मा देवमुखं सर्ववेदेषु गीयते ॥१३॥
प्रवृत्तौ तु निवृत्तौ तु इज्यते भुक्तिमुक्तिदः[3] । अग्निरूपस्य विष्णोर्हि हवनं ध्यानमर्च्चनं ॥
जप्यं स्तुतिश्च प्रणतिः शारीराशेषाघौघनुत् । दशस्वर्णानि दानानि धान्यद्वादशमेव च ॥१५॥
तुलापुरुषमुख्यानि महादानानि षोडश । अन्नदानानि मुख्यानि सर्वाण्यघहराणि हि ॥१६॥
तिथिवारर्क्षसङ्क्रान्तियोगमन्वादिकालके । व्रतादि सूर्य्येशशक्तिश्रीशादेरघघातनं[4] ॥१७॥
गङ्गा गया प्रयागश्च काश्ययोध्या ह्यवन्तिका । कुरुक्षेत्रं पुष्करञ्च नैमिषं पुरुषोत्तमः ॥१८॥

---

१. शतं शहुनेदिति ख. छ. च । २. शतहोमाच्छुचिर्भवेदिति ख. घ. ञ. च. ।
३. प्रवृत्तैस्तु निवृत्तैस्तु पूज्यते भुक्तिमुक्तिद इति घ. ङ. झ. ञ. च । ४. अघनाशनमिति ग. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शालग्रामप्रभासाद्यं तीर्थञ्चाघौघघातकं। अहं ब्रह्म परं ज्योतिरितिध्यानमघौघनुत् ॥१९॥
पुराणं ब्रह्म चाग्नेयं ब्रह्मा विष्णुर्म्महेश्वरः। अवताराः सर्वपूजाः प्रतिष्ठाप्रतिमादिकं ॥२०॥
ज्योतिःशास्त्रपुराणानि स्मृतयस्तु तपोव्रतं[१]। अर्थशास्त्रञ्च सर्गाद्या आयुर्वेदो धनुर्म्मतिः ॥
शिक्षा छन्दो व्याकरणं निरुक्तञ्चाभिधानकं।
कल्पो न्यायश्च मीमांसा ह्यन्यत सर्वं हरिः प्रभुः ॥ २२ ॥
एके द्वयोर्यतो यस्मिन् यः सर्वमिति वेद यः। तं दृष्टान्यस्य पापानि विनश्यन्ति हरिश्च सः॥
विद्याष्टादशरूपश्च सूक्ष्मः स्थूलोऽपरो हरिः। ज्योतिः सदक्षरं ब्रह्म परं विष्णुश्च निर्म्मलः ॥

इत्याग्निमहापुराणे आग्नेये प्रायश्चित्तानि नाम चतुःसप्तत्यधिक-
शततमोऽध्यायः।

पञ्चसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

व्रतपरिभाषा।

अग्निरुवाच

तिथिवारर्क्षदिवसमासर्त्त्वब्दार्क्कसङ्क्रमे। नृस्त्रीव्रतादि[२] वक्ष्यामि वसिष्ठ शृणु तत् क्रमात्॥
शास्त्रोदितो हि नियमो व्रतं तच्च तपो मतं। नियमास्तु विशेषास्तु व्रतस्यैव दमादयः ॥२॥
व्रतं हि कर्त्तृसन्तापात्तप इत्यभिधीयते। इन्द्रियग्रामनियमान्नियमश्चाभिधीयते ।३॥
अनग्नयस्तु ये विप्रास्तेषां श्रेयोऽभिधीयते। व्रतोपवासनियमैर्नानादानैस्तथा द्विजः ॥४॥
ते स्युर्देवादयः[३] प्रीता भुक्तिमुक्तिप्रदायकाः। उपावृत्तस्य पापेभ्यो यस्तु वासो गुणैः सह॥
उपवासः स विज्ञेयः सर्वभोगविवर्जितः[४]। कांस्यं मांसं मसूरञ्च चणकं कोरदूपकं ॥६॥
शाकं मधु परान्नञ्च[५] त्यजेदुपवसन् स्त्रियं। पुष्पालङ्कारवस्त्राणि धूपगन्धानुलेनं ॥७॥
उपवासे न शस्यन्ति दन्तधावनमञ्जनं। दन्तकाष्ठं पञ्चगव्यं कृत्वा प्रातर्व्रतञ्चरेत् ॥८॥
असकृज्जलपानाच्च ताम्बूलस्य च भक्षणात्। उपवासः प्रदुष्येत दिवास्वप्नाच्च मैथुनात्॥९॥
क्षमा सत्यन्दया दानं शौचमिन्द्रियनिग्रहः। देवपूजाग्निहरणं[६] सन्तोषोऽस्तेयमेव च ॥१०॥
सर्वव्रतेष्वयं धर्मः सामान्यो दशधा स्मृतः। पवित्राणि जपेच्चैव जुहुयाच्चैव शक्तितः॥११॥

---

१. स्मृतयः श्रुतयो व्रतमिति क. घ. ङ. ञ. च। अहं ब्रह्मेत्यादिः, तपोव्रतमित्यन्तः पाठः ग. पुस्तके नास्ति। २. पुंस्त्री व्रतादीति ङ. ञ. च।
३. तैः स्युर्देवादय इति ग. छ. च।
४. सर्वपापविवर्जित इति ज. झ. च। सर्वतः परिवर्जित इति छ.।
५. शाकं दधि परान्नञ्चेति ख. छ. च। ६. देवपूजाग्निहवनमिति घ. ट. च।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नित्यस्नायी मिताहारो[1] गुरुदेवद्विजार्च्चकः। क्षारं क्षौद्रञ्च लवणं मधु मांसानि वर्जयेत् ॥
तिलमुद्गादृते शस्यं शस्ये गोधूमकोद्रवौ। चीनकं देवधान्यञ्च शमीधान्यं तथैक्षवं[2] ॥१३॥
शितधान्यं तथा पण्यं मूलं क्षारगणः स्मृतः। व्रीहिषष्टिकमुद्गाश्च कलायाः सतिला यवाः ॥
श्यामाकाश्चैव नीवारा गोधूमाद्या व्रते हिताः।
कुष्माण्डालाबुवार्त्ताकून् पालङ्कीम्पूतिकांस्त्यजेत् ॥ १५ ॥
चरुभैक्ष्यं शक्तुकणाः शाकन्दधि घृतं पयः। श्यामाकशालिनीवारा यवकं मूलतण्डुलं ॥१६॥
हविष्यं व्रतनक्तादावग्निकार्य्यादिके हितं। मधु मांसं विहायान्यद् व्रते वा हितमीरितं ॥१७॥
त्र्यहं प्रातस्त्र्यहं सायं त्र्यहमद्यादयाचितं। त्र्यहम्परञ्च नाश्नीयात् प्राजापत्यञ्चरन् द्विजः ॥
एकैकं ग्रासमश्नीयात् त्र्यहाणि त्रीणि पूर्ववत्। त्र्यहञ्चोपवसेदन्त्यमतिकृच्छ्रं चरन् द्विजः ॥
गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकं। एकरात्रोपवासश्च कृच्छ्रं शान्तपनं स्मृतं ॥२०॥
पृथक् शान्तपनद्रव्यैः षडहः सोपवासकः। सप्ताहेन तु कृच्छ्रोऽयं महाशान्तपनोऽघहा ॥२१॥
द्वादशाहोपवासेन पराकः सर्वपापहा। महापराकस्त्रिगुणस्त्वयमेव प्रकीर्त्तितः ॥२२॥
पौर्णमास्यां पञ्चदशग्रास्यमावास्यभोजनः। एकापाये ततो वृद्धौ चान्द्रायणमतोऽन्यथा ॥२३॥
कपिलागोः पलं मूत्रं अर्द्धाङ्गुष्ठञ्च गोमयं। क्षीरं सप्तपलन्दद्याद् दध्नश्चैव पलद्वयं[3] ॥२४॥
घृतमेकपलन्दद्यात् पलमेकं कुशोदकं। गायत्र्या गृह्य गोमूत्रं गन्धद्वारेति गोमयं ॥२५॥
आप्यायस्वेति च क्षीरं दधिक्रावृणेति वै दधि।
तेजोऽसीति तथा चाज्यं देवस्येति कुशोदकं[4] ॥ २६ ॥
ब्रह्मकूर्चो भवत्येवं आपो हिष्ठेत्यृचं जपेत्। अघमर्षणसूक्तेन संयोज्य प्रणवेन वा ॥२७॥
पीत्वा सर्वाघनिर्मुक्तो विष्णुलोकी ह्युपोषितः। उपवासी सायम्भोजी यतिः षष्ठात्मकालवान् ॥
मांसवर्जी चाश्वमेधी सत्यवादी दिवं व्रजेत्। अग्न्याधेयं प्रतिष्ठाञ्च यज्ञदानव्रतानि च ॥
देवव्रतवृषोत्सर्गचूडाकरणमेखलाः। माङ्गल्यमभिषेकञ्च मलमासे विवर्जयेत् ॥३०॥
दर्शाद्दर्शस्तु चान्द्रः स्यात् त्रिंशाहश्चैव सावनः।
मासः सौरस्तु सङ्क्रान्तेर्नाक्षत्रो भविवर्त्तनात् ॥ ३१ ॥
सौरो मासो विवाहादौ यज्ञादौ सावनः स्मृतः[5]।
आब्दिके पितृकार्य्ये च चान्द्रो मासः प्रशस्यते ॥ ३२ ॥
आषाढीमवधिं कृत्वा यः स्यात्पक्षस्तु पञ्चमः।
कुर्य्याच्छ्राद्धन्तत्र रविः कन्यां गच्छतु वा न वा ॥ ३३ ॥
मासि संवत्सरे चैव तिथिद्वैधं यदा भवेत्। तत्रोत्तरोत्तमा ज्ञेया पूर्वा तु स्यान्मलिम्लुचा ॥
उपोषितव्यं नक्षत्रं येनास्तं याति भास्करः। दिवा पुण्यास्तु तिथयो रात्रौ नक्तव्रते शुभाः ॥

१. अनाहार इति घ.। २. शमीधान्यं तथैव चेति ग. झ. च।
३. दध्नश्चैव पलत्रयमिति घ. ञ. ट. च.।
४. गायत्र्या इत्यादिः कुशोदकमित्यन्तः पाठः छ. पुस्तके नास्ति। ५. सावनो मतः इति छ.।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

युग्माग्निकृतभूतानि[1] षण्मुन्योर्वसुरन्ध्रयोः । रुद्रेण द्वादशी युक्ता चतुर्दश्याथ[2] पूर्णिमा ।।३६।।
प्रतिपदा त्वमावास्या तिथ्योर्युग्मं महाफलं । एतद्व्यस्तं महाघोरं हन्ति पुण्यं पुराकृतं ।।३७।।
नरेन्द्रमन्त्रिव्रतिनां[3] विवाहोपद्रवादिषु । सद्यः शौचं समाख्यातं कान्तारापदि संपदि ।।३८।।
आरब्धदीर्घतपसां न राजा व्रतहा स्त्रियाः । गर्भिणी सूतिका नक्तं कुमारी च रजस्वला ।।
यदाऽशुद्धा तदान्येन कारयेत क्रियाः सदा । क्रोधात् प्रमादाल्लोभाद्वा व्रतभङ्गो भवेद्यदि ।।
दिनत्रयं न भुञ्जीत मुण्डनं शिरसोऽथ वा । असामर्थ्ये व्रतकृतौ पत्नीं वा कारयेत् सुतं ।।४१।।
सूतके मृतके कार्यं प्रारब्धं पूजनोज्झितं । व्रतस्थं मूर्च्छितं दुग्धपानाद्यैरुद्धरेद् गुरुः ।।४२।।
अष्टौ तान्यव्रतघ्नानि आपो मूलं फलं पयः । हविर्ब्राह्मणकाम्या च गुरोर्वचनमौषधं ।।४३।।
कीर्त्तिसन्ततिविद्यादिसौभाग्यारोग्यवृद्धये । नैर्मल्यभुक्तिमुक्त्यर्थं कुर्व्वे व्रतपते व्रतं ।।४४।।
इदं व्रतं मया श्रेष्ठं गृहीतं पुरतस्तव । निर्विघ्नां सिद्धिमायातु त्वत्प्रसादात् जगत्पते ।।४५।।
गृहीतेऽस्मिन् व्रतवरे[4] यद्यपूर्णे म्रिये ह्यहं । तत्सर्वं पूर्णमेवास्तु प्रसन्ने त्वयि सत्पतौ ।।४६।।
व्रतमूर्त्तिं जगद्भूतिं मण्डले सर्वसिद्धये । आवाहये नमस्तुभ्यं सन्निधीभव केशव ।।४७।।
मनसा कल्पितैर्भक्त्या पञ्चगव्यैर्जलैः शुभैः । पञ्चामृतैः स्नापयामि त्वं मे च भव पापहा ।।
गन्धपुष्पोदकैर्युक्तमर्घ्यमर्घ्यपते शुभं । गृहाण पाद्यमाचाममर्घ्यार्हङ्कुरु मां सदा ।।४९।।
वस्त्रं वस्त्रपते पुण्यं गृहाण कुरु मां सदा । भूषणाद्यैः सुवस्त्राद्यैश्छादितं व्रतसत्पते ।।५०।।
सुगन्धिगन्धं विमलं गन्धमूर्त्ते गृहाण वै । पापगन्धविहीनं मां कुरु त्वं हि सुगन्धिकं ।।५१।।
पुष्पं गृहाण पुष्पादिपूर्णं मां कुरु सर्वदा । पुष्पगन्धं सुविमलं आयुरारोग्यवृद्धये ।।५२।।
दशाङ्गं गुग्गुलुघृतयुक्तं धूपं गृहाण वै । सधूप धूपितं मां त्वं कुरु धूपितसत्पते ।।५३।।
दीपमूर्द्धशिखं दीप्तं गृहाणाखिलभासकं । दीपमूर्त्ते प्रकाशाढ्यं सर्वदोर्द्ध्वगतिं कुरु ।।५४।।
अन्नादिकञ्च नैवेद्यं गृहाणान्नादि सत्पते । अन्नादिपूर्णं कुरु मामन्नदं सर्वदायकं ।।५५।।
मन्त्रहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं मया प्रभो । यत् पूजितं व्रतपते परिपूर्णन्तदस्तु मे ।।५६।।
धर्मं देहि धनं देहि सौभाग्यं गुणसन्ततिं । कीर्त्तिं विद्यां[5] देहि चायुः स्वर्गं मोक्षञ्च देहि मे ।।
इमां पूजां व्रतपते गृहीत्वा व्रज साम्प्रतं । पुनरागमनायैव वरदानाय वै प्रभो ।।५८।।
स्नात्वा व्रतवता सर्वव्रतेषु व्रतमूर्त्तयः । पूज्याः सुवर्णजास्ता वै शक्त्या वै भूमिशायिना ।।
जपो होमश्च सामान्यव्रतान्ते दानमेव च । चतुर्विंशा द्वादश वा पञ्च वा त्रय एककः ।।६०।।

विप्राः प्रपूज्या गुरवो[6] भोज्याः शक्त्या तु दक्षिणा ।
देया गावः सुवर्णाद्याः पादुकोपानहौ पृथक् ।। ६१ ।।

जलपात्रञ्चान्नपात्रमृत्तिकाच्छत्रमासनं[7] । शय्या वस्त्रयुगं कुम्भाः परिभाषेयमीरिता ।।६२।।

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये व्रतपरिभाषा नाम पञ्चसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ।

---

१. युग्माग्नियुगभूतानीति ज. झ. च । २. चतुर्दश्या चेति ग. ।
३. नरेन्द्रसत्रिव्रतिनामिति ख. घ. ज. ञ. च ।
४. व्रते देव इति ग. घ. ज. झ. ञ. ट. च । ५. कीर्त्तिं वृद्धिमिति ख. छ. च ।
६. विप्राः पूज्याः सगरव इति घ. ज. ट. च । ७. मुद्रिकाछत्रमासनमिति घ. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

षट्सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

प्रतिपद्व्रतानि ।

अग्निरुवाच

वक्ष्ये प्रतिपदादीनि व्रतान्यखिलदानि ते । कार्त्तिकाश्वयुजे चैत्रे प्रतिपद्ब्रह्मणस्तिथिः ॥१॥
पञ्चदश्यान्निराहारः प्रतिपद्यर्च्चयेदजं । ओं तत् सद्ब्रह्मणे नमो गायत्र्या वाब्दमेककं ॥२॥
अक्षमालाश्रुवं दक्षे[1] वामे श्रुचकमण्डलु[2] । लम्बकूर्चञ्च जटिलं हैमं ब्रह्माणमर्च्चयेत् ॥३॥
शक्त्या क्षीरं प्रदद्यात्तु ब्रह्मा मे प्रीयतामिति ।
निर्मलो भोगभुक् स्वर्गे भूमौ विप्रो धनी भवेत् ॥ ४ ॥
धन्यं व्रतं प्रवक्ष्यामि अधन्यो धन्यतां व्रजेत् । मार्गशीर्षे प्रतिपदि नक्तं हुत्वा ह्युपोषितः[3] ॥
अग्नये नम इत्यग्निं प्राच्यार्ब्दं सर्वभाग् भवेत् । प्रतिपद्येकभक्ताशी समाप्ते कपिलाप्रदः ॥६॥
वैश्वानरपदं याति शिखिव्रतमिदं स्मृतं ।

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये प्रतिपद्व्रतानि नाम षट्सप्तत्यधिक-
शततमोऽध्यायः ।

सप्तसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

द्वितीयाव्रतानि ।

अग्निरुवाच ।

द्वितीयाव्रतकं वक्ष्ये भुक्तिमुक्त्यादिदायकं । पुष्पाहारी द्वितीयायामश्विनौ पूजयेत् सुरौ ॥१॥
अब्दं स्वरूपसौभाग्यं स्वर्गभाग् जायते व्रती । कार्त्तिके शुक्लपक्षस्य[4] द्वितीयायां यमं यजेत् ॥
अब्दमुपोषितः स्वर्गं गच्छेन्न नरकं व्रती । अशून्यशयनं वक्ष्ये अवैधव्यादिदायकं ॥३॥
कृष्णपक्षे द्वितीयायां श्रावणस्य चरेदिदं । श्रीवत्सधारिन् श्रीकान्त श्रीधामन् श्रीपतेऽव्यय ॥
गार्हस्थ्यं मा प्रणाशं मे यातु धर्म्मार्थकामदं । अग्नयो मा प्रणश्यन्तु मा प्रणश्यन्तु देवताः ॥
पितरो मा प्रणश्यन्तु मत्तो दाम्पत्यभेदतः । लक्ष्म्या वियुज्यते देवो न कदाचिद्यथा भवान् ॥
तथा कलत्रसम्बन्धो देव मा मे विभिद्यतां । लक्ष्म्या न शून्यं वरद यथा ते शयनं विभो ॥
शय्या ममाप्यशून्यास्तु तथैव मधुसूदन । लक्ष्मीं विष्णुं यजेदब्दं दद्याच्छय्यां फलानि च ॥
प्रतिमासं च सोमाय दद्यादर्घ्यं समन्त्रकं । गगनाङ्गणसन्दीप दुग्धाब्धिमथनोद्भव ॥६॥

---

१. अक्षमालाश्रुचं दक्षे इति छ. ।
२. वामे दण्डकमण्डलु इति छ. झ. । वामे श्रुवकमण्डलु इति छ. ।
३. नक्तं कृत्वाभ्युपोषित इति ग. । ४. शुक्लपक्षे तु इति ग. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भाभासितादिगाभोग रामानुज नमोऽस्तु ते। ओं श्रीं श्रीधराय नमः सोमात्मानं हरिं यजेत् ।।
घं ढं भं हं श्रियै नमो दशरूपमहात्मने। घृतेन होमो नक्तञ्च शय्यां दद्याद्द्विजातये[१]।।११।।
दीपान्नभाजनैर्युक्तं छत्रोपानहमासनं। सोदकुम्भञ्च प्रतिमां विप्रायाथ च पात्रकं[२]।।१२।।
पत्न्या य एवं कुरुते भुक्तिमुक्तिमवाप्नुयात्। कान्तिव्रतं प्रवक्ष्यामि कार्त्तिकस्य सिते चरेत् ।।
नक्तभोजी द्वितीयायां पूजयेद् बलकेशवौ। वर्षं प्राप्नोति वै कान्तिमायुरारोग्यकादिकं।।१४।।
अथ विष्णुव्रतं वक्ष्ये मनोवाञ्छितदायकं। पौषशुक्लद्वितीयादि कृत्वा दिनचतुष्टयं।।१५।।

पूर्वं सिद्धार्थकैः स्नातं ततः कृष्णतिलैः[३] स्मृतं।
वचया च तृतीयेऽह्नि सर्वौषध्या चतुर्थके।। १६ ।।

मुरामांसी वचा कुष्ठं शैलेयं रजनीद्वयं[४]। सटी चम्पकमुस्तञ्च सर्वौषधिगणः स्मृतः ।।१७।।
नाम्ना कृष्णाच्युतानन्त हृषीकेशेति पूजयेत्। पादे नाभ्यां चक्षुषि च क्रमाच्छिरसि पुष्पकैः ।।
शशिचन्द्रशशाङ्केन्दुसञ्ज्ञाभिश्चार्घ्यं इन्दवे। नक्तं भुञ्जीत च नरो यावत्तिष्ठति चन्द्रमाः ।।१९।।
षण्मासं पावनं चाब्दं प्राप्नुयात् सकलं व्रती। एतद् व्रतं नृपैः स्त्रीभिः कृतं पूर्वं सुरादिभिः ।।

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये द्वितीयाव्रतानि नाम सप्तसप्तत्यधिक-
शततमोऽध्यायः।

अष्टसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

तृतीयाव्रतानि।

अग्निरुवाच

तृतीयाव्रतान्याख्यास्ये भुक्तिमुक्तिप्रदानि ते। ललितायां तृतीयायां मूलगौरीव्रतं शृणु ।।१।।
तृतीयायां चैत्रशुक्ले ऊढा गौरी हरेण हि। तिलस्नातोऽर्च्चयेच्छम्भुं गौर्य्या हैमफलादिभिः ।।

नमोऽस्तु पाटलायैव पादौ देव्याः शिवस्य च।
शिवायेति च सङ्कीर्त्य जयायै गुल्फयोर्यजेत्।। ३ ।।

त्रिपुरघ्नाय रुद्राय भवान्यै जङ्घयोर्द्वयोः। शिवं रुद्रायेश्वराय[५] विजयायैव जानुनी ।।४।।
ईशायेति कटिं देव्याः[६] शङ्करायेति शङ्करम्। कुक्षिद्वयञ्च कोटव्यै शूलिनं शूलपाणये ।।५।।
मङ्गलायै नमस्तुभ्यमुदरञ्चाभिपूजयेत्। सर्व्वात्मने नमो रुद्रमैशान्यै च कुचद्वयं ।।६।।

---

१. शय्यां दद्याद्द्वितीयके इति ख. ग. घ. ङ. छ. ज. ञ. ट. च।
२. विप्रायाथ च पानकमिति घ. ञ. च। ३. शुक्लतिलैरिति ग.।
४. पूर्वं सिद्धार्थकैरित्यादिः, रजनीद्वयमित्यन्तः पाठः झ. पुस्तके नास्ति।
५. शिवं रुद्राय विश्वायेति ख. छ. च। शिवं भद्रायेश्वरायेति ज. झ. ञ. ट. च।
६. ईशाय कट्यां देव्याश्च इति ङ.। ईशायेति ततो देव्या इति घ.।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शिवं देवात्मने तद्वत् ह्लादिन्यै[१] कण्ठमर्च्चयेत् । महादेवाय च शिवमनन्तायै करद्वयं ॥७॥
त्रिलोचनायेति हरं बाहुं कालानलप्रिये[२] । सौभाग्यायै महेशाय भूषणानि प्रपूजयेत् ॥८॥
अशोकमधुवासिन्यै ईश्वरायेति चौष्ठकौ । चतुर्मुखप्रिया चास्यं हराय स्थाणवे नमः ॥९॥
नमोऽर्द्धनारीशहरममिताङ्ग्यै च नासिकां । नम उग्राय लोकेशं ललितेति पुनर्भ्रुवौ ॥१०॥
सर्वाय पुरहन्तारं[३] वासन्त्यै चैव तालुकं[४] । नमः श्रीकण्ठनाथायै शितिकण्ठाय केशकं ॥११॥
भीमोग्राय सुरूपिण्यै शिरः सर्व्वात्मने नमः । मल्लिकाशोककमलकुन्दन्तगरमालती[५] ॥१२॥
कदम्बरकरवीरञ्च[६] वाणमम्लानकुङ्कुमं । सिन्धुवारञ्च मासेषु सर्व्वेषु क्रमशः स्मृतं ॥१३॥
उमामहेश्वरौ पूज्य सौभाग्याष्टकमग्रतः[७] । स्थापयेद्[८] घृतनिष्पावकुसुम्भक्षीरजीवकं ॥१४॥
तरुराजेक्षुलवणं[९] कुस्तुम्बुरुमथाष्टमं । चैत्रे शृङ्गोदकं प्राश्य देवदेव्यग्रतः स्वपेत् ॥१५॥
प्रातः स्नात्वा समभ्यर्च्य विप्रदाम्पत्यमर्च्चयेत्[१०] । तदष्टकं द्विजे दद्याल्ललिता प्रीययां मम[११] ॥१६॥
शृङ्गोदकं[१२] गोमयं च मन्दारं विल्वपत्रकं । कुशोदकं दधि क्षीरं कार्त्तिके पृषदाज्यकम् ॥१७॥
गोमूत्राज्यं कृष्णतिलं पञ्चगव्यं क्रमाशनं । ललिता विजया भद्रा भवानी कुमुदा शिवा ॥१८॥
वासुदेवी तथा गौरी मङ्गला कमला सती । चैत्रादौ दानकाले च प्रीयतामिति वाचयेत् ॥१९॥
फलमेकं परित्याज्यं[१३] व्रतान्ते शयनं ददेत् । उमामहेश्वरं हैमं वृषभञ्च गवा सह ॥२०॥
गुरुञ्च मिथुनान्यर्च्य[१४] वस्त्राद्यैर्भुक्तिमुक्तिभाक्[१५] । सौभाग्यारोग्यरूपायुः सौभाग्यशयनव्रतात् ॥
नभस्ये वाथ वैशाखे कुर्यान्मार्गशिरस्यथ[१६] । शुक्लपक्षे तृतीयायां ललितायै नमो यजेत् ॥२२॥
प्रतिपक्षं ततः प्रार्च्य व्रतान्ते[१७] मिथुनानि च । चतुर्विंशतिमभ्यर्च्य वस्त्राद्यैर्भुक्तिमुक्तिभाक् ॥
उक्तो मार्गो द्वितीयोऽयं सौभाग्यव्रतमावदे । फाल्गुनादितृतीयायां लवणं यस्तु वर्जयेत् ॥
समाप्ते शयनन्दद्याद्गृहञ्चोपस्करान्वितं । सम्पूज्य विप्रमिथुनं भवानी प्रीयतामिति[१८] ॥

---

१. शिवं वेदात्मने तद्वद्रूपिण्यै इति घ. ज. ञ. च ।
२. हरञ्चान्तकालानलप्रिये इति ख. घ. ज. ञ. च ।
३. पुरहर्त्तारमिति घ. ।
४. वासन्त्यै च तथालकमिति छ. ट. च ।
५. मल्लिकाशोककमलच्छदं तगरमालती इति ख. घ. ज. च ।
६. कुन्दञ्च करवीरञ्चेति ख. घ. ज. च ।
७. मल्लिकाशोकेत्यादिः, सौभाग्याष्टकमग्रत इत्यन्तः पाठः छ. पुस्तके नास्ति ।
८. अर्पयेदिति ख. छ. च ।
९. तृणराजेक्षुलवणमिति ख. छ. ट. च ।
१०. द्विजदाम्पत्यमर्च्चयेदिति ख. घ. छ. ट. च ।
११. ललिता प्रीयतामिति ट. ।
१२. पृष्ठोदकमिति ञ. कृगोदकमिति ज. झ. च ।
१३. परित्याज्यमिति क. ज. ट. च । परित्यजेति ख. छ. च । परिग्राह्यमिति ङ. ।
१४. गुरुं मिथुनमभ्यर्च्येति ङ. ।
१५. वस्त्राद्यैः सर्वमाप्नुयादिति ख. घ. छ. झ. ञ. ट. च ।
१६. कुर्याद्वा मार्गशीर्षके इति ङ. ञ. च ।
१७. वर्षान्ते इति ख. ङ. ट. च ।
१८. अलङ्काराणि सर्वाणि भवानी प्रीयतामिति ट. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सौभाग्यार्थं तृतीयोक्ता गौरीलोकादिदायिनी। माघे भाद्रे च वैशाखे तृतीयाव्रतकृत्तथा ॥
दमनकतृतीयाकृत् चैत्रं दमनकैर्यजेत्। आत्मतृतीया मार्गस्य प्राच्यैच्छाभोजनादिना ॥२७॥

गौरी काली उमा भद्रा दुर्गा कान्तिः सरस्वती।
वैष्णवी लक्ष्मीः प्रकृतिः शिवा नारायणी क्रमात्[1] ॥ २८ ॥
मार्गतृतीयामारभ्य सौभाग्यं स्वर्गमाप्नुयात्।

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये तृतीयाव्रतानि नाम अष्टसप्तत्यधिक-
शततमोऽध्यायः।

एकोनसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

चतुर्थीव्रतानि।

अग्निरुवाच

चतुर्थीव्रतान्याख्यास्ये भुक्तिमुक्तिप्रदानि ते[2]। माघे शुक्लचतुर्थ्यान्तु उपवासी यजेद् गणं ॥
पञ्चम्याञ्च तिलान्नादी वर्षान्निर्विघ्नतः[3] सुखी। गं स्वाहा[4] मूलमन्त्रोऽयं गामाद्यं हृदयादिकं ॥

आगच्छोलकाय चावाह्य गच्छोलकाय विसर्जनं।
उल्कान्तैर्गादिगन्धाद्यैः पूजयेन्मोदकादिभिः ॥ ३ ॥

ओं महोल्काय विद्महे वक्रतुण्डाय[5] धीमहि तन्नो दन्ती प्रचोदयात्।

मासि भाद्रपदे चापि चतुर्थीकृच्छिवं व्रजेत्। चतुर्थ्यङ्गारकेऽभ्यर्च्य गणं सर्वमवाप्नुयात् ॥
चतुर्थ्यां फाल्गुने नक्तमविघ्नाख्या चतुर्थ्यपि। चतुर्थ्यां दमनैः पूज्य चैत्रे प्राच्य गणं सुखी ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये चतुर्थीव्रतानि नाम एकोनाशीत्य-
धिकशततमोऽध्यायः।

---

१. दमनकतृतीयाकृदित्यादिः नारायणी क्रमादित्यन्तः पाठः ज. पुस्तके नास्ति।
२. चतुर्थीव्रतकं वक्ष्ये भुक्तिमुक्तिप्रदायकमिति ङ.।
३. वर्षन्निर्विघ्नत इति ङ. ज. च। वर्षन्निर्विघ्नवान् इति ग.।
४. हां स्वाहेति ख.।
५. चक्रमुण्डायेति ख. घ. च। वक्रमुण्डायेति ङ.। रक्ततुण्डायेत ज. झ. च।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

पञ्चमीव्रतानि ।

अग्निरुवाच

पञ्चमीव्रतकं वक्ष्ये आरोग्यस्वर्गमोक्षदं[1] । नभोनभस्याश्विने च कार्त्तिके शुक्लपक्षके ॥
वासुकिस्तक्षकः पूज्यः कालीयो मणिभद्रकः । ऐरावतो धृतराष्ट्रः कर्कोटकधनञ्जयौ ॥२॥
एते प्रयच्छन्त्यभयमायुर्विद्यायशःश्रियं ।

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये पञ्चमीव्रतानि नाम अशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ।

एकाशीत्यत्यधिकशततमोऽध्यायः

षष्ठीव्रतानि ।

अग्निरुवाच

षष्ठीव्रतानि वक्ष्यामि कार्त्तिकादौ समाचरेत्[2] ।
षष्ठ्यां फलाशनो[3] ऽर्घ्याद्यैर्भुक्तिमुक्तिमवाप्नुयात् ॥ १ ॥
स्कन्दषष्ठीव्रतं प्रोक्तं भाद्रे षष्ठ्यामथाक्षयं । कृष्णषष्ठीव्रतं वक्ष्ये मार्गशीर्षे चरेच्च तत्[4] ॥२॥
अनाहारो वर्षमेकं भुक्तिमुक्तिमवाप्नुयात् ।

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये षष्ठीव्रतानि नाम एकाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ।

द्व्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

सप्तमीव्रतानि ।

अग्निरुवाच

सप्तमीव्रतकं वक्ष्ये सर्वेषां भुक्तिमुक्तिदं[5] । माघमासेऽब्जके शुक्ले सूर्य्यं प्राच्र्य विशोकभाक् ॥

---

१. आरोग्यसुखमोक्षदमिति ङ. ।
२. ऐरावत इत्यादिः कार्त्तिकादौ समाचारेदित्यन्तः पाठः झ. पुस्तके नास्ति ।
३. षष्ठ्यां मलाशनोऽर्घाद्यैरिति ट. ।
४. मार्गशीर्षे चरेद्व्रतमिति घ. ज. झ. ट. च ।
५. सर्वथा भुक्तिमुक्तिदमिति घ. ज. झ. च. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सर्वावाप्तिस्तु सप्तम्यां मासि भाद्रेऽर्कपूजनात् ।
पौषे मासि सितेऽनश्नन् प्राच्यार्कं पापनाशनं ॥ २ ॥
कृष्णपक्षे तु माघस्य सर्वावाप्तिस्तु सप्तमी । फाल्गुने तु सिते नन्दा सप्तमी चार्कपूजनात् ॥
मार्गशीर्षे सिते प्राच्यं सप्तमी चापराजिता । मार्गशीर्षे सिते चाब्दं पुत्रीया सप्तमी स्त्रियाः ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये सप्तमीव्रतानि नाम द्व्यशीत्यधिक-
शततमोऽध्यायः ।

त्र्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

अष्टमीव्रतानि ।

अग्निरुवाच

वक्ष्ये व्रतानि चाष्टम्यां रोहिण्यां प्रथमं व्रतं । मासि भाद्रपदेऽष्टम्यां रोहिण्यामर्द्धरात्रके ॥१॥
कृष्णो जातो यतस्तस्यां जयन्ती स्यात्ततोऽष्टमी ।
सप्तजन्मकृतात् पापात् मुच्यते चोपवासतः ॥ २ ॥
कृष्णपक्षे भाद्रपदे अष्टम्यां रोहिणीयुते । उपोषितोऽर्च्चयेत् कृष्णं[1] भुक्तिमुक्तिप्रदायकं ॥३॥
आवाहयाम्यहं कृष्णं बलभद्रञ्च देवकीं । वासुदेवं यशोदाङ्गाः[2] पूजयामि नमोऽस्तु ते ॥४॥
योगाय योगपतये योगेशाय नमो नमः । योगादिसम्भवायैव गोविन्दाय नमो नमः ॥५॥
स्नानं कृष्णाय दद्यात्तु अर्घ्यं चानेन दापयेत् । यज्ञाय यज्ञेश्वराय यज्ञानां पतये नमः ॥६॥
यज्ञादिसम्भवायैव गोविन्दाय नमो नमः । गृहाण देव पुष्पाणि सुगन्धीनि प्रियाणि ते ॥
सर्वकामप्रदो देव भव मे देववन्दित । धूपधूपित धूपं त्वं धूपितैस्त्वं गृहाण मे ॥८॥
सुगन्धं धूपगन्धाढयं कुरु मां सर्व्वदा हरे । दीपदीप्त महादीपं दीपदीप्तिद सर्वदा[3] ॥९॥
मया दत्तं गृहाण त्वं कुरु चोर्द्ध्वगतिं च मां । विश्वाय विश्वपतये विश्वेशाय नमो नमः[4] ॥
विश्वादिसम्भवायैव गोविन्दाय निवेदितं । धर्म्माय धर्म्मपतये धर्मेशाय नमो नमः ॥११॥
धर्म्मादिसम्भवायैव गोविन्द शयनं कुरु । सर्व्वाय सर्व्वपतये सर्व्वेशाय नमो नमः ॥१२॥
सर्व्वादिसम्भवायैव गोविन्दाय च पावनं[5] । क्षीरोदार्णवसम्भूत अत्रिनेत्रसमुद्भव ॥१३॥
गृहाणार्घ्यं शशाङ्केदं रोहिण्या सहितो मम । स्थण्डिले स्थापयेद्देवं सचन्द्रां रोहिणीं यजेत ॥
देवकीं वासुदेवं च यशोदां नन्दकं बलं । अर्द्धरात्रे पयोधाराः पातयेद् गुड़सर्पिषा ॥१५॥
वस्त्रहेमादिकं दद्याद्ब्राह्मणान् भोजयेद्व्रती । जन्माष्टमीव्रतकरः पुत्रवान्विष्णुलोकभाक्[6] ॥

---

१. विष्णुमिति ट. ।
२. यशोदाञ्चेति ङ. ज. च ।
३. सर्वद इति घ. ङ. च ।
४. विश्वेशाय नमोऽस्तु ते इति ज. ।
५. पारगमिति ग. । सर्वायेत्यादिः पावनमित्यन्तः पाठः छ. पुस्तके नास्ति ।
६. कृष्णलोकभागिति छ. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वर्षे वर्षे तु यः कुर्य्यात् पुत्रार्थी वेत्ति नो भयं[१]। पुत्रान् देहि धनं देहि आयुरारोग्यसन्ततिं ॥
धर्म्मं कामं च सौभाग्यं स्वर्गं मोक्षं च देहि मे।

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये जयन्त्यष्टमीव्रतं नाम त्र्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः।

चतुरशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

अष्टमीव्रतानि।

अग्निरुवाच

ब्रह्मादिमातृयजनाज्जपेन् मातृगणाष्टमीं। कृष्णाष्टम्यां चैत्रमासे पूज्याब्दं कृष्णमर्थभाक् ॥१॥
कृष्णाष्टमीव्रतं वक्ष्ये मासे मार्गशिरे चरेत्। नक्तं कृत्वा शुचिर्भूत्वा गोमूत्रं प्राशयेन्निशि ॥
भूमिशायी निशायाञ्च शङ्करं पूजयेद् व्रती। पौषे शम्भुं घृतं प्राश्य माघे क्षीरं महेश्वरम्[२] ॥
महादेवं फाल्गुने च तिलाशी[३] समुपोषितः।
चैत्रे स्थाणुं यवाशी च वैशाखेऽथ शिवं यजेत् ॥ ४ ॥
कुशोदाशी पशुपतिं ज्यैष्ठे शृङ्गोदकाशनः। आषाढे गोमयाश्युग्रं श्रावणे सर्वमर्कभुक् ॥५॥
त्र्यम्बकं च भाद्रपदे विल्वपत्राशनो निशि। तण्डुलाशी चाश्वयुजे ईशं रुद्रन्तु कार्त्तिके ॥६॥
दध्याशी होमकारी स्याद्वर्षान्ते मण्डले यजेत्[४]। गोवस्त्रहेमं गुरवे दद्याद्विप्रेभ्य ईदृशं ॥७॥
प्रार्थयित्वा द्विजान् भोज्य[५] भुक्तिमुक्तिमवाप्नुयात्।
नक्ताशी त्वष्टमीषु स्याद् वत्सरान्ते च धेनुदः ॥ ८ ॥
पौरन्दरं पदं याति स्वर्गतिव्रतमुच्यते[६]। अष्टमी बुधवारेण पक्षयोरुभयोर्य्यदा ॥९॥
तदा व्रतं प्रकुर्व्वीत अथवा सगुड़ाशिता। तस्यां नियमकर्त्तारो न स्युः खण्डितसम्पदः ॥
तण्डुलस्याष्टमुष्टीनां वर्ज्जयित्वाङ्गुलीद्वयं। भक्तं कृत्वा चाम्रपुटे सकुशे सकुलाम्बिकां ॥११॥
सात्त्विकं पूजयित्वाङ्गं भुञ्जीत च कथाश्रवात्।
शक्तितो दक्षिणान्दद्यात् कर्क्कटीन्तण्डुलान्वितां[७] ॥ १२ ॥

---

१. पुत्रार्थी लभते सुतमिति ज. ट. च।
२. माघे क्षीरी महेश्वरमिति घ. छ. ञ. च।
३. तिलादीति ज.।
४. वर्षे वर्षे तु मण्डले इति ञ.।
५. द्विजान् तोष्य इति ज.।
६. सुगतिव्रतमुच्यते इति ख. घ. छ. ज. ञ. ट. च। सुखान्तव्रतमुच्यते इति ज.।
७. कर्करीन्तण्डुलान्वितामिति ख. घ. ङ. च। गगरीन्तण्डुलान्वितामिति झ.।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सर्वावाप्तिस्तु सप्तम्यां मासि भाद्रेऽर्कपूजनात् ।
पौषे मासि सितेऽनश्नन् प्राच्यार्कं पापनाशनं ।। २ ।।
कृष्णपक्षे तु माघस्य सर्वावाप्तिस्तु सप्तमी । फाल्गुने तु सिते नन्दा सप्तमी चार्कपूजनात् ।।
मार्गशीर्षे सिते प्राच्र्य सप्तमी चापराजिता । मार्गशीर्षे सिते चाव्दं पुत्रीया सप्तमी स्त्रियाः ।।

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये सप्तमीव्रतानि नाम द्व्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ।

त्र्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

अष्टमीव्रतानि ।

अग्निरुवाच

वक्ष्ये व्रतानि चाष्टम्यां रोहिण्यां प्रथमं व्रतं । मासि भाद्रपदेऽष्टम्यां रोहिण्यामर्द्धरात्रके ।।१।।
कृष्णो जातो यतस्तस्यां जयन्ती स्यात्ततोऽष्टमी ।
सप्तजन्मकृतात् पापात् मुच्यते चोपवासतः ।। २ ।।
कृष्णपक्षे भाद्रपदे अष्टम्यां रोहिणीयुते । उपोषितोऽर्च्चयेत् कृष्णं[1] भुक्तिमुक्तिप्रदायकं ।।३।।
आवाहयाम्यहं कृष्णं बलभद्रञ्च देवकीं । वासुदेवं यशोदाङ्गाः[2] पूजयामि नमोऽस्तु ते ।।४।।
योगाय योगपतये योगेशाय नमो नमः । योगादिसम्भवायैव गोविन्दाय नमो नमः ।।५।।
स्नानं कृष्णाय दद्यात्तु अर्घ्यं चानेन दापयेत् । यज्ञाय यज्ञेश्वराय यज्ञानां पतये नमः ।।६।।
यज्ञादिसम्भवायैव गोविन्दाय नमो नमः । गृहाण देव पुष्पाणि सुगन्धीनि प्रियाणि ते ।।
सर्वकामप्रदो देव भव मे देववन्दित । धूपधूपित धूपं त्वं धूपितैस्त्वं गृहाण मे ।।८।।
सुगन्धं धूपगन्धाढयं कुरु मां सर्व्वदा हरे । दीपदीप्त महादीपं दीपदीप्तिद सर्वदा[3] ।।९।।
मया दत्तं गृहाण त्वं कुरु चोर्द्ध्वगतिं च मां । विश्वाय विश्वपतये विश्वेशाय नमो नमः[4]।।
विश्वादिसम्भवायैव गोविन्दाय निवेदितं । धर्म्माय धर्म्मपतये धर्मेशाय नमो नमः ।।११।।
धर्म्मादिसम्भवायैव गोविन्द शयनं कुरु । सर्व्वाय सर्व्वपतये सर्व्वेशाय नमो नमः ।।१२।।
सर्व्वादिसम्भवायैव गोविन्दाय च पावनं[5] । क्षीरोदार्णवसम्भूत अत्रिनेत्रसमुद्भव ।।१३।।
गृहाणार्घ्यं शशाङ्केदं रोहिण्या सहितो मम । स्थण्डिले स्थापयेद्देवं सचन्द्रां रोहिणीं यजेत ।।
देवकीं वासुदेवं च यशोदां नन्दकं बलं । अर्द्धरात्रे पयोधाराः पातयेद् गुडसर्पिषा ।।१५।।
वस्त्रहेमादिकं दद्याद्ब्राह्मणान् भोजयेद्व्रती । जन्माष्टमीव्रतकरः पुत्रवान्विष्णुलोकभाक्[6] ।।

---

१. विष्णुमिति ट. ।
२. यशोदाञ्चेति ङ. ज. च ।
३. सर्वद इति घ. ङ. च ।
४. विश्वेशाय नमोऽस्तु ते इति ज. ।
५. पारगमिति ग. । सर्वायेत्यादिः पावनमित्यन्तः पाठः छ. पुस्तके नास्ति ।
६. कृष्णलोकभागिति छ. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वर्षे वर्षे तु यः कुर्य्यात् पुत्रार्थी वेत्ति नो भयं[१]। पुत्रान् देहि धनं देहि आयुरारोग्यसन्ततिं ॥
धर्म्मं कामं च सौभाग्यं स्वर्गं मोक्षं च देहि मे।

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये जयन्त्यष्टमीव्रतं नाम त्र्यशीत्यधिक-
शततमोऽध्यायः।

चतुरशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

अष्टमीव्रतानि।

अग्निरुवाच

ब्रह्मादिमातृयजनाज्जपेन् मातृगणाष्टमीं। कृष्णाष्टम्यां चैत्रमासे पूज्याब्दं कृष्णमर्थभाक् ॥१॥
कृष्णाष्टमीव्रतं वक्ष्ये मासे मार्गशिरे चरेत्। नक्तं कृत्वा शुचिर्भूत्वा गोमूत्रं प्राशयेन्निशि ॥
भूमिशायी निशायाञ्च शङ्करं पूजयेद् व्रती। पौषे शम्भुं घृतं प्राश्य माघे क्षीरं महेश्वरम्[२] ॥
महादेवं फाल्गुने च तिलाशी[३] समुपोषितः।
चैत्रे स्थाणुं यवाशी च वैशाखेऽथ शिवं यजेत् ॥ ४ ॥
कुशोदाशी पशुपतिं ज्यैष्ठे शृङ्गोदकाशनः। आषाढे गोमयाश्युग्रं श्रावणे सर्वमर्कभुक् ॥५॥
त्र्यम्बकं च भाद्रपदे बिल्वपत्राशनो निशि। तण्डुलाशी चाश्वयुजे ईशं रुद्रन्तु कार्त्तिके ॥६॥
दध्याशी होमकारी स्याद्वर्षान्ते मण्डले यजेत्[४]। गोवस्त्रहेमं गुरवे दद्याद्विप्रेभ्य ईदृशं ॥७॥
प्रार्थयित्वा द्विजान् भोज्य[५] भुक्तिमुक्तिमवाप्नुयात्।
नक्ताशी त्वष्टमीषु स्याद् वत्सरान्ते च धेनुदः ॥ ८ ॥
पौरन्दरं पदं याति स्वर्गतिव्रतमुच्यते[६]। अष्टमी बुधवारेण पक्षयोरुभयोर्य्यदा ॥९॥
तदा व्रतं प्रकुर्व्वीत अथवा सगुडाशिता। तस्यां नियमकर्त्तारो न स्युः खण्डितसम्पदः ॥
तण्डुलस्याष्टमुष्टीनां वर्ज्जयित्वाङ्गुलीद्वयं। भक्तं कृत्वा चाम्रपुटे सकुशे सकुलाम्बिकां ॥११॥
सात्त्विकं पूजयित्वाङ्गं भुञ्जीत च कथाश्रवात्।
शक्तितो दक्षिणान्दद्यात् कर्क्कटीन्तण्डुलान्वितां[७] ॥ १२ ॥

---

१. पुत्रार्थी लभते सुतमिति ज. ट. च।
२. माघे क्षीरी महेश्वरमिति घ. छ. ञ. च।
३. तिलादीति ज.।
४. वर्षे वर्षे तु मण्डले इति ञ.।
५. द्विजान् तोष्य इति ज.।
६. सुगतिव्रतमुच्यते इति ख. घ. छ. ज. ञ. ट. च। सुखान्तव्रतमुच्यते इति ज.।
७. कर्करीन्तण्डुलान्वितामिति ख. घ. ङ. च। गगरीन्तण्डुलान्वितामिति झ.।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

धीरो द्विजोऽस्य[1] भार्य्यास्ति रम्भा पुत्रस्तु कौशिकः ।
दुहिता विजया तस्य धीरस्य धनदो वृषः[2] ॥ १३ ॥
कौशिकस्तं गृहीत्वा तु गोपालैश्चारयन् वृषं । गङ्गायां स्नानकृत्येऽथ[3] नीतश्चौरैर्वृषस्तदा ॥
स्नात्वा वृषमपश्यन् स वृषं मार्गितुमागतः । विजयाभगिनीयुक्तो ददर्श स सरोवरे ॥१५॥
दिव्यस्त्रीयोपितां वृन्दमब्रवीद्देहि भोजनं । स्त्रीवृन्दमूचे व्रतकृद् भुङ्क्ष्व त्वमतिथिर्यतः ॥१६॥
व्रतं कृत्वा स बुभुजे प्राप्तवान् वनपालकं । गतो धीरः[4] सवृषभो विजयासहितस्तदा ॥१७॥
धीरेण[5] विजया दत्ता यमायान्तरितः पिता ।
व्रतभावात् कौशिकोऽपि ह्ययोध्यायां नृपोऽभवत् ॥ १८ ॥
पित्रोस्तु नरके दृष्ट्वा विजयार्तिं यने गता । मृगयामागतं प्रोचे मुच्यते नरकात् कथं ॥१९॥
व्रतद्वयाद्यमः प्रोचे प्राप्य तन् कौशिको ददौ । बुधाष्टमीद्वयफलं स्वर्गतौ पितरौ ततः[6] ॥२०॥
विजया हर्षिता चक्रे व्रतं भुक्त्यादिसिद्धये । अशोककलिकाश्चाष्टौ ये पिबन्ति पुनर्वसौ ॥
चैत्रे मासि सिताष्टम्यां न ते शोकमवाप्नुयुः । त्वामशोकहराभीष्ट मधुमाससमुद्भव ॥२२॥
पिबामि शोकसन्तप्तो मामशोकं सदा कुरु । चैत्रादौ मातृपूजाकृदष्टम्यां जयते रिपून् ॥२३॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये अष्टमीव्रतानि नाम चतुरशीत्यधिक-
शततमोऽध्यायः ।

पञ्चाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

नवमीव्रतानि ।

अग्निरुवाच

नवमीव्रतकं वक्ष्ये भुक्तिमुक्त्यादिसिद्धिदं । देवी पूज्याश्विने शुक्ले गौर्य्याख्यानवमीव्रतं ॥
पिष्टकाख्या तु नवमी पिष्टाशी देविपूजनात् । अष्टम्यामाश्विने शुक्ले कन्यार्कमूलभे यदा ॥
अघार्दना सर्वदा वै महती नवमी स्मृता । दुर्गा तु नवगेहस्था एकागारस्थिताऽथवा ॥३॥
पूजिताष्टादशभुजा शेषाः षोड़शसत्कराः[7] । शेषाः षोड़शहस्ताः स्युरञ्जनं डमरुन्तथा ॥४॥
रुद्रचण्डा प्रचण्डा च चण्डोग्रा चण्डनायिका ।
चण्डा चण्डवती पूज्या चण्डरूपातिचण्डिका ॥ ५ ॥

---

१. वीरो द्विजोऽस्येति ग. घ. ङ. ज. ञ. च ।
२. वीरस्य धनपो वृष इति ख. छ. ट. च । वीरस्य धनदो वृष इति घ. ङ. ज. ञ. च ।
३. स्नानकृत्येषु इति ट. ।
४. गतो वीर इति ख. ग. घ. ङ. ज. ञ. च ।
५. वीरेणेति ट. ।
६. पितरौ तदेति ख. ।
७. षोडशहस्तका इति ङ. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

क्रमान्मध्ये चोग्रचण्डा दुर्गा महिषमर्दिनी[1] । ओं दुर्गे दुर्गे रक्षणि स्वाहा दशाक्षरो मन्त्रः ॥
दीर्घाकारादिमन्त्रादिर्न्नवनेत्रो नमोऽन्तकः । षड्भिः पदैर्न्नमः स्वधावषट्कारहृदादिकं ॥
अङ्गुष्ठादिकनिष्ठान्तं न्यस्याङ्गानि जपेच्छिवां[2] । एतज्जपति[3] यो गुह्यं नासौ केनापि बाध्यते ॥
कपालं खेटकं घण्टां दर्पणन्तर्ज्जनीन्धनुः । ध्वजण्डमरुकं पाशं वामहस्तेषु बिभ्रतीं ॥९॥
शक्तिमुद्गरशूलानि वज्रं खड्गञ्च कुन्तकं । शङ्खं चक्रं शलाकां च आयुधानि च पूजयेत् ॥
पशुञ्च काली कालीति जप्त्वा खड्गेन घातयेन् । कालि कालि वज्रेश्वरि लौहदण्डायै नमः ॥
तदुत्थं रुधिरं मांसं पूतनायै च नैरृते । वायव्यां पापराक्षस्यै चरक्यै नम ईश्वरे ॥१२॥
विदारिकायै चाग्नेय्यां महाकौशिकमग्नये[4] । तस्याग्रतो नृपः स्नायाच्छत्रुं पिष्टमयं हरेत्[5] ॥

दद्यात् स्कन्दविशाखाभ्यां ब्राह्मयाद्या निशि ता यजेत् ।
जयन्ती मङ्गला काली भद्रकाली कपालिनी ॥ १४ ॥
दुर्गा शिवा क्षमा धात्री स्वाहा स्वधा नमोऽस्तु ते ।
देवीं पञ्चामृतैः स्नाप्य पूजयेच्चार्हणादिना ॥ १५ ॥
ध्वजादिरथयात्रादिबलिदानं वरादिकृत् ।

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये नवमीव्रतानि नाम पञ्चाशीत्यधिक-
शततमोऽध्यायः ।

षडशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

दशमीव्रतानि ।

अग्निरुवाच

दशमीव्रतकं वक्ष्ये धर्म्मकामादिदायकं । दशम्यामेकभक्ताशी समाप्ते दशधेनुदः ॥१॥
दिशश्च काञ्चनीर्द्दद्याद्ब्राह्मणाधिपतिर्भवेत् ।

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये दशमीव्रतानि नाम षडशीत्यधिक-
शततमोऽध्यायः ।

---

१. क्रमान् मध्ये चोग्रचण्डां कृत्वा महिषमर्दिनीमिति ग. ।
२. दीर्घाकारादीत्यादिः, जपेच्छिवामित्यन्तः पाठः घ. ज. झ. ञ. पुस्तकेषु नास्ति ।
३. एवं जपतीति ज. झ. च । ४. महाकौशिकं मण्डपे इति घ. ञ. च ।
५. पिष्टमयं हुनेदिति ख. छ. च ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सप्ताशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

एकादशव्रतानि ।

अग्निरुवाच

एकादशीव्रतं वक्ष्ये भुक्तिमुक्तिप्रदायकं । दशम्यान्नियताहारो मांसमैथुनवर्जितः[1] ॥१॥
एकादश्यां न भुञ्जीत पक्षयोरुभयोरपि । द्वादश्येकादशी यत्र तत्र सन्निहितो हरिः ॥२॥
तत्र[2] क्रतुशतं पुण्यं त्रयोदश्यां तु पारणे । एकादशी कला यत्र परतो द्वादशी गता[3] ॥३॥
तत्र क्रतुशतं पुण्यन्त्रयोदश्यान्तु पारणे । दशम्येकादशीमिश्रा नोपोष्या नरकप्रदा ॥४॥
एकादश्यान्निराहारो भुक्त्वा चैवापरेऽहनि । भोक्ष्येऽहं पुण्डरीकाक्ष शरणं मे भवाच्युत ॥५॥

एकादश्यां सिते पक्षे पुष्यर्क्षस्तु यदा भवेत् ।
सोपोष्याक्षय्यफलदा प्रोक्ता सा पापनाशिनी ॥ ६ ॥

एकादशी द्वादशी या श्रवणेन च संयुता । विजया सा तिथिः प्रोक्ता भक्तानां विजयप्रदा ॥

एवैव फाल्गुने मासि पुष्यर्क्षेण च संयुता ।
विजया प्रोच्यते सद्भिः कोटिकोटिगुणोत्तरा[4] ॥ ८ ॥
एकादश्यां विष्णुपूजा[5] कार्य्या सर्व्वोपकारिणी[6] ।
धनवान् पुत्रवान् लोके विष्णुलोके महीयते ॥ ९ ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये एकादशीव्रतं नाम सप्ताशीत्यधिक-
शततमोऽध्यायः ।

अष्टाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

द्वादशीव्रतानि ।

अग्निरुवाच

द्वादशीव्रतकं वक्ष्ये भुक्तिमुक्तिप्रदायकं । एकभक्तेन नक्तेन तथैवायाचितेन च ॥१॥
उपवासेन भैक्ष्येण चैवं द्वादशिकव्रती । चैत्रे मासि सिते पक्षे द्वादश्यां मदनं हरिं ॥२॥
पूजयेद् भुक्तिमुक्त्यर्थी[7] मदनद्वादशीव्रती । माघशुक्ले तु द्वादश्यां भीमद्वादशिकव्रती ॥३॥

---

१. मधुमांसैर्विवर्जित इति ग. । २. अत्रेति ख. छ. ज. च ।
३. द्वादशी मतेति घ. ञ. च । द्वादशी भवेदिति ङ. झ. च ।
४. कोटिकोटिगुणोत्तमेति ख. ।
५. एकादश्यामृषिं पूज्येति ख. छ. च । एकादश्यामृषिपूजेति ङ. ।
६. कार्य्या सर्वाघहारिणीति झ. ञ. च । ७. भुक्तिमुक्त्यर्थमिति छ. ञ. च ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नमो नारायणायेति यजेद्विष्णुं स सर्वभाक् । फाल्गुने च सिते पक्षे गोविन्दद्वादशीव्रती ॥४॥
विशोकद्वादशीकारी यजेदाश्वयुजे हरिं । लवणं मार्गशीर्षे तु कृष्णमभ्यच्चर्य यो नरः ॥५॥
ददाति शुक्लद्वादश्यां स सर्व्वरसदायकः । गोवत्सं पूजयेद् भाद्रे गोवत्सद्वादशीव्रती ॥६॥
माघ्यान्तु समतीतायां श्रवणेन तु संयुता । द्वादशी या भवेत् कृष्णा प्रोक्ता सा तिलद्वादशी ॥
तिलैः स्नानन्तिलैर्होमो नैवेद्यन्तिलमोदकं । दीपश्च तिलतैलेन तथा देयं तिलोदकं ॥८॥
तिलाश्च देया विप्रेभ्यः फलं होमोपवासतः । ओं नमो भगवतेऽथो वासुदेवाय वै यजेत् ॥९॥
सकुलः स्वर्गमाप्नोति षट्तिलद्वादशीव्रती । मनोरथद्वादशीकृत् फाल्गुने तु सितेऽच्चर्येत् ॥१०॥
नामद्वादशीव्रतकृत् केशवाद्यैश्च नामभिः । वर्षं यजेद्धरिं स्वर्गी न भवेन् नारकी नरः ॥११॥
फाल्गुनस्य सितेऽभ्यच्चर्य सुमतिद्वादशीव्रती । मासि भाद्रपदे शुक्ले अनन्तद्वादशीव्रती[१] ॥
अश्लेषर्क्षे तु मूले वा[२] माघे कृष्णाय वै नमः । यजेत्तिलांश्च जुहुयात्तिलद्वादशीकृन्नरः ॥१३॥
सुगतिद्वादशीकारी फाल्गुने तु सिते यजेत् । जय कृष्ण नमस्तुभ्यं वर्षं स्याद् भुक्तिमुक्तिगः[३]॥

पौषशुक्ले तु द्वादश्यां सम्प्राप्तिद्वादशीव्रती ।

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये नानाद्वादशीव्रतानि नामाष्टाशीत्यधिक-
शततमोऽध्यायः ।

एकोननवत्यधिकशततमोऽध्यायः

श्रवणद्वादशीव्रतानि ।

अग्निरुवाच

श्रवणद्वादशीं वक्ष्ये मासि भाद्रपदे सिते । श्रवणेन युता श्रेष्ठा[४] महती सा ह्युपोषिता ॥१॥
सङ्गमे सरितां स्नानाच्छ्रवणद्वादशीफलं[५] । बुधश्रवणसंयुक्ता दानादौ सुमहाफला ॥२॥
निषिद्धमपि कर्त्तव्यन्त्रयोदश्यान्तु पारणं । द्वादश्याञ्च निराहारो वामनं पूजयाम्यहं ॥३॥
उदकुम्भे स्वर्णमयन्त्रयोदश्यान्तु पारणं । आवाहयाम्यहं विष्णुं वामनं शङ्खचक्रिणं ॥४॥
सितवस्त्रयुगच्छन्ने घटे सच्छत्रपादुके । स्नापयामि जलैः शुद्धैर्विष्णुं[६] पञ्चामृतादिभिः ॥५॥
छत्रदण्डधरं विष्णुं वामनाय नमो नमः । अर्घ्यं ददामि देवेश अर्घ्यार्हाद्यैः सदार्चितः[७] ॥६॥
भुक्तिमुक्तिप्रजाकीर्त्तिसर्वैश्वर्य्ययुतं कुरु । वामनाय नमो गन्धं होमोऽनेनाष्टकं शतं ॥७॥
ओं नमो वासुदेवाय शिरः सम्पूजयेद्धरेः । श्रीधराय मुखं तद्वत् कण्ठे कृष्णाय वै नमः ॥८॥

---

१. मनोरथद्वादशीत्यादिः, अनन्तद्वादशी व्रतीत्यन्तः पाठः घ पुस्तके नास्ति ।
२. आवादर्क्षे तु मूले वा इति ख. ग. ज. ट. च ।
३. वर्षे स्याद् भुक्तिमुक्तिद इति ग. घ. च ।
४. श्रवणेन समायुक्तेति घ. ।
५. द्वादशद्वादशीफलमिति ख. ग. घ. ङ. छ. ञ. च ।
६. शुद्धैर्हरिमिति ग. ट. च ।
७. मुदार्चित इति ग. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नमः श्रीपतये वक्षो भुजौ सर्वास्त्रधारिणे । व्यापकाय नमो नाभिं वामनाय नमः कटिं ॥९॥
त्रैलोक्यजयकायेति[१] मेढ्रं जङ्घे यजेद्धरेः । सर्व्वाधिपतये पादौ विष्णोः सर्व्वात्मने नमः॥१०॥
घृतपक्वञ्च नैवेद्यं दद्याद् दध्योदनैर्घटान् । रात्रौ च जागरं कृत्वा प्रातः स्नात्वा च सङ्गमे॥११॥
गन्धपुष्पादिभिः पूज्य वदेत् पुष्पाञ्जलिस्त्विदं । नमो नमस्ते गोविन्द बुधश्रवणसञ्ज्ञित॥१२॥
अघौघसङ्क्षयं कृत्वा सर्वसौख्यप्रदो भव । प्रीयतान्देव देवेश मम नित्यञ्जनार्द्दन ॥१३॥
वामनो बुद्धिदो दाता द्रव्यस्थो वामनः स्वयं । वामनः प्रतिगृह्णाति वामनो मे ददाति च ॥
द्रव्यस्थो वामनो नित्यं वामनाय नमो नमः । प्रदत्तदक्षिणो विप्रान् सम्भोज्यान्नं स्वयञ्चरेत् ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये श्रवणद्वादशीव्रतं नामैकोननवत्यधिक-
शततमोऽध्यायः ।

नवत्यधिकशततमोऽध्यायः

अखण्डद्वादशीव्रतम् ।

अग्निरुवाच

अखण्डद्वादशीं वक्ष्ये व्रतसम्पूर्णताकृतं । मार्गशीर्षे सिते विष्णुं द्वादश्यां समुपोषितः ॥१॥
पञ्चगव्यजले स्नातो यजेत्तत्प्राशनो व्रती । यवव्रीहियुतम्पात्रन्द्वादश्यां हि द्विजेऽर्पयेत् ॥२॥
सप्तजन्मनि यत् किञ्चिन्मया खण्डं व्रतं कृतं । भगवंस्त्वत्प्रसादेन तदखण्डमिहास्तु मे ॥
यथाऽखण्डं जगत् सर्वं त्वमेव पुरुषोत्तम । तथाखिलान्यखण्डानि व्रतानि मम सन्तु वै ॥
एवमेवानुमासञ्च चातुर्मास्यो विधिः स्मृतः । अन्यच्चैत्रादिमासेषु शक्तुपात्राणि[२] चार्पयेत् ॥
श्रावणादिषु चारभ्य कार्त्तिकान्तेषु पारणं । सप्तजन्मसु वैकल्यं व्रतानां सफलं कृते ॥७॥
आयुरारोग्यसौभाग्यराज्यभोगादिमाप्नुयात्[३] ।

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये अखण्डद्वादशीव्रतं नाम नवत्यधिक-
शततमोऽध्यायः ।

---

१. त्रैलोक्यजननायेति झ. ञ. च । त्रैलोक्यजनकायेति ङ. ट. च ।
२. स्वर्णपात्राणि इति ख. घ. ञ. च ।
३. अग्निरुवाच अखण्डद्वादशीं वक्ष्ये इत्यादिः राज्यभोगादिमाप्नुयादित्यन्तः पाठः झ. पुस्तके नास्ति ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

एकनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

त्रयोदशीव्रतानि ।

अग्निरुवाच

त्रयोदशीव्रतानीह सर्वदानि वदामि ते। अनङ्गेन कृतामादौ वक्ष्येऽनङ्गत्रयोदशीं ॥१॥
त्रयोदश्यां मार्गशीर्षे शुक्लेऽनङ्गं हरं यजेत्[1] । मधु सम्प्राशयेद्रात्रौ घृतहोमस्तिलाक्षतैः ॥२॥

पौषे योगेश्वरं प्राच्र्य चन्दनाशी कृताहुतिः ।
महेश्वरं मौक्तिकाशी माघेऽभ्यच्चर्य दिवं व्रजेत् ॥ ३ ॥
काकोलं प्राश्य नीरं तु[2] फाल्गुने पूजयेद् व्रती ।
कर्पूराशी स्वरूपं च चैत्रे सौभाग्यवान् भवेत् ॥ ४ ॥

महारूपन्तु वैशाखे यजेज्जातीफलाश्यपि । लवङ्गाशी ज्यैष्ठदिने[3] प्रद्युम्नं पूजयेद् व्रती ॥५॥
तिलोदाशी तथाषाढे उमाभर्त्तारमर्च्चयेत् । श्रावणे गन्धतोयाशी पूजयेच्छूलपाणिनम् ॥६॥
सद्योजातं भाद्रपदे प्राशिता गुरुमर्च्चयेत् । सुवर्णवारि संप्राश्य आश्विने त्रिदशाधिपम् ॥७॥
विश्वेश्वरं कार्त्तिके तु मदनाशी यजेद्व्रती । शिवं हैमन्तु वर्षान्ते सञ्छाद्याम्रदलेन तु ॥८॥
वस्त्रेण पूजयित्वा तु दद्याद्विप्राय गान्तथा । शयनञ्छत्रकलशान् पादुकारसभाजनम् ॥९॥
त्रयोदश्यां सिते चैत्रे रतिप्रीतियुतं स्मरन् । अशोकाख्यं नगं लिख्य सिन्दूररजनीमुखैः ॥
अब्दं यजेत्तु कामार्थी कामत्रयोदशीव्रतम् ।

इत्याग्नेये महापुराणे आग्नेये त्रयोदशीव्रतानि नामैकनवत्यधिक-
शततमोऽध्यायः ।

द्विनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

चतुर्दशीव्रतानि ।

अग्निरुवाच

व्रतं वक्ष्ये चतुर्दश्यां भुक्तिमुक्तिप्रदायकम्[4] । कार्त्तिके तु चतुर्दश्यां निराहारो यजेच्छिवम् ॥
वर्षम्भोगधनायुष्मान्[5] कुर्वन् शिवचतुर्दशीम् । मार्गशीर्षे सितेऽष्टम्यां तृतीयायां मुनिव्रतः ॥

---

१. हरिं यजेदिति छ. ज. ञ. च । २. काकोलं प्राश्य चीनञ्चेति घ. ज. झ. ञ. च ।
३. ज्यैष्ठमासे इति ग. घ. ङ. ज. झ. ञ. च ।
४. भुक्तिमुक्तिप्रदं शृणु इति ख. घ. झ. ञ. ट. च । भुक्तिमुक्तिसुखप्रदमिति ङ. ज. ।
५. भोगबलायुष्मानिति ङ. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

द्वादश्यां वा चतुर्दश्यां फलाहारो यजेत् सुरं[1] ।
त्यक्त्वा फलानि दद्यात्तु कुर्व्वन फलचतुर्दशीं ॥ ३ ॥
चतुर्दश्यामथाष्टम्यां पक्षयोः शुक्लकृष्णयोः । अनश्नन् पूजयेच्छम्भुं स्वर्ग्युभयचतुर्दशी ॥४॥
कृष्णाष्टम्यान्तु नक्तेन तथा कृष्णचतुर्दशीं । इह भोगानवाप्नोति परत्र च शुभाङ्गतिं ॥५॥
कार्तिके च चतुर्दश्यां कृष्णायां स्नानकृत् सुखी । आराधिते महेन्द्रे तु ध्वजाकारासु यष्टिषु[2] ॥
ततः शुक्लचतुर्दश्यामनन्तं पूजयेद्धरिं । कृत्वा दर्भमयं चैव वारिधानी समन्वितं ॥७॥
शालिप्रस्थस्य पिष्टस्य पूपनाम्नः कृतस्य च । अर्द्धं विप्राय दातव्यमर्द्धमात्मनि योजयेत्[3] ॥
कर्त्तव्यं सरितां चान्ते कथां कृत्वा[4] हरेरिति ।
अनन्तसंसारमहासमुद्रे मग्नान् समभ्युद्धर वासुदेव ॥ ९ ॥
अनन्तरूपे विनियोजयस्व अनन्तरूपाय नमो नमस्ते ।
अनेन पूजयित्वाथ सूत्रं बद्ध्वा तु मन्त्रितं ॥ १० ॥
स्वके करे वा कण्ठे वा स्वनन्तव्रतकृत् सुखी ।

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये नानाचतुर्दशीव्रतानि नाम द्विनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ।

त्रिनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

शिवरात्रिव्रतम् ।

अग्निरुवाच

शिवरात्रिव्रतं वक्ष्ये भुक्तिमुक्तिप्रदं शृणु[5] । माघफाल्गुनयोर्म्मध्ये कृष्णा या तु चतुर्दशी ॥ १ ॥
कामयुक्ता तु सोपोष्या कुर्वन जागरणं व्रती । शिवरात्रिव्रतं कुर्व्वे चतुर्दश्यामभोजनं ॥२॥
रात्रिजागरणेनैव पूजयामि शिवं व्रती । आवाहयाम्यहं शम्भुं भुक्तिमुक्तिप्रदायकं ॥३॥
नरकार्णवकोत्तारनावं शिव नमोऽस्तु ते । नमः शिवाय शान्ताय प्रजाराज्यादिदायिने ॥४॥
सौभाग्यारोग्यविद्यार्थस्वर्गमार्गप्रदायिने[6] । धर्म्मन्देहि धनं देहि कामभोगादि देहि मे ॥५॥
गुणकीर्त्तिसुखं देहि स्वर्गं मोक्षं च देहि मे । लुब्धकः प्राप्तवान् पुण्यं पापी सुन्दरसेनकः ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये शिवरात्रिव्रतं नाम त्रिनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ।

---

१. यजेत् स्वयमिति घ. ।
२. वर्षे भोगघनायुष्मानित्यादिः ध्वजाकारासु यष्टिषु इत्यन्तः पाठः झ. पुस्तके नास्ति ।
३. भोजनमिति घ. ङ. ज. झ. ञ. ट. च. ।
४. कथां श्रुत्वेति झ. ।
५. भुक्तिर्मुक्तिप्रदायकमिति झ. ट. च ।
६. स्वर्गमोक्षप्रदायिने इति ङ. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

चतुर्नवत्यधिकशततमोऽध्यायः

अशोकपूर्णिमादिव्रतम् ।

अग्निरुवाच

अशोकपूर्णिमां वक्ष्ये भूधरं च भुवं यजेत् ।
फाल्गुन्यां सितपक्षायां वर्षं स्याद् भुक्तिमुक्तिभाक् ॥ १ ॥

कार्त्तिक्यान्तु वृषोत्सर्गं कृत्वा नक्तं समाचरेत् । शैवं पदमवाप्नोति वृषव्रतमिदं परं ॥२॥
पित्र्या यामावसी तस्यां पितॄणां दत्तमक्षयं । उपोष्याब्दं पितॄनिष्ट्वा निष्पापः स्वर्गमाप्नुयात् ॥
पञ्चदश्यां च माघस्य पूज्याजं सर्व्वमाप्नुयात् ।
वक्ष्ये सावित्र्यमावास्याम्भुक्तिमुक्तिकरीं शुभां ॥ ४ ॥
पञ्चदश्यां व्रती ज्यैष्ठे वटमूले महासतीं । त्रिरात्रोपोषिता नारी सप्तधान्यैः प्रपूजयेत् ॥५॥
प्ररूढैः कण्ठसूत्रैश्च रजन्यां कुङ्कुमादिभिः । वटावलम्बनं कृत्वा नृत्यगीतैः प्रभातके ॥६॥
नमः सावित्र्यै सत्यवते नैवेद्यं चार्पयेद् द्विजे ।
वेश्म गत्वा द्विजान् भोज्य स्वयं भुक्त्वा विसर्ज्जयेत् ॥ ७ ॥
सावित्री प्रीयतां देवी सौभाग्यादिकमाप्नुयात् ।

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये चतुर्थीव्रतानि नाम एकोनाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ।

पञ्चनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

वारव्रतानि ।

अग्निरुवाच

वारव्रतानि वक्ष्यामि भुक्तिमुक्तिप्रदानि हि । करं पुनर्व्वसुः सूर्य्ये स्नाने सर्वौषधी शुभा ॥
श्राद्धौ चादित्यवारे तु सप्तजन्मस्वरोगभाक् ।
सङ्क्रान्तौ सूर्य्यवारो यः सोऽर्कस्य हृदयः शुभः ॥ २ ॥
कृत्वा हस्ते सूर्य्यवारं रक्तेनाब्दं स सर्वभाक् । चित्राभसोमवाराणि सप्त कृत्वा सुखी भवेत् ॥
स्वात्यां गृहीत्वा चाङ्गारं सप्तनक्त्यार्त्तिवर्जितः । विशाखायां बुधं गृह्य सप्तनक्ती ग्रहार्त्तिनुत् ॥
अनुराधे देवगुरुं सप्तनक्ती ग्रहार्त्तिनुत्[१] । शुक्रं ज्येष्ठासु सङ्गृह्य सप्तनक्ती ग्रहार्त्तिनुत ॥५॥
मूले शनैश्चरं गृह्य सप्तनक्ती ग्रहार्त्तिनुत् ।

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये वारव्रतानि नाम पञ्चनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ।

---

१. अनुराधे इत्यादिः ग्रहार्त्तिनुदित्यन्तः पाठः झ. पुस्तके नास्ति ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

षण्णवत्यधिकशततमोऽध्यायः

नक्षत्रव्रतानि ।

अग्निरुवाच

नक्षत्रव्रतकं वक्ष्ये भे हरिः पूजितोऽर्थदः[1] । नक्षत्रपुरुषं चादौ चैत्रमासे हरिं यजेत् ॥१॥
मूले पादौ यजेज्जङ्घे रोहिणीस्वर्च्चयेद्धरिं । जानुनी चाश्विनीयोगे आषाढासूरुसञ्ज्ञके ॥
मेढ्रं पूर्व्वोत्तरास्वेव कटिं वै कृत्तिकासु च । पार्श्वे भाद्रपदाभ्यान्तु कुक्षिं वै रेवतीषु च ॥
स्तनौ चैवानुराधासु धनिष्ठासु च पृष्ठकं । भुजौ पूज्यौ विशाखासु पुनर्व्वस्वङ्गुलीर्यजेत् ॥
अश्लेषासु नखान् पूज्य कण्ठं ज्येष्ठासु पूजयेत् । श्रोत्रे विष्णोश्च श्रवणे मुखं पुष्ये हरेर्यजेत् ॥
यजेत् स्वातिषु दन्ताग्रमास्यं वारुणतोऽर्चयेत् । मघासु नासां नयने मृगशीर्षे ललाटकं ॥
चित्रासु चार्द्रासु कचानब्दान्ते स्वर्णकं हरिं । गुड़पूर्णे घृतेऽभ्यर्च्य शय्यागोर्थादि दक्षिणा[2] ॥
नक्षत्रपुरुषो विष्णुः पूजनीयः शिवात्मकः । शाम्भवायनीयव्रतकृन्मासभे पूजयेद्धरिं ॥८॥
कार्त्तिके कृत्तिकायां च मृगशीर्षे मृगास्यके । नामभिः केशवाद्यैस्तु अच्युताय नमोऽपि वा ॥
कार्त्तिके कृत्तिकाभेऽह्नि मासनक्षत्रगं हरिं । शाम्भवायनीयव्रतकं करिष्ये भुक्तिमुक्तिदं ॥१०॥
केशवादि महामूर्त्तिमच्युतं सर्व्वदायकं[3] । आवाहयाम्यहंदेवमायुरारोग्यवृद्धिदं ॥११॥
कार्त्तिकादौ सकासारमन्नं[4] मासचतुष्टयं[5] । फाल्गुनादौ च कृशरमाषाढादौ च पायसं ॥
देवाय ब्राह्मणेभ्यश्च नक्तन्नैवेद्यमाशयेत्[6] । पञ्चगव्यजले स्नातस्तस्यैव प्राशनाच्छुचिः ॥
अर्वाग्विसर्जनाद् द्रव्यं नैवेद्यं सर्वमुच्यते । विसर्जिते जगन्नाथे निर्म्माल्यम्भवति क्षणात् ॥

नमो नमस्तेऽच्युत मे क्षयोस्तु पापस्य वृद्धिं समुपैतु पुण्यं ।
ऐश्वर्य्यवित्तादि सदाऽक्षयं मे[7] क्षयञ्च मा सन्ततिरभ्युपैतु ॥ १५ ॥
यथाच्युतस्त्वम्परतः परस्तात् स ब्रह्मभूतः परतः परात्मन् ।
तथाच्युतं त्वं कुरु वाञ्छितं मे मया कृतम्पापहराप्रमेय ॥ १६ ॥

अच्युतानन्द गोविन्द प्रसीद यदभीप्सितं । अक्षयं माममेयात्मन् कुरुष्व पुरुषोत्तम ॥१७॥
सप्त वर्षाणि सम्पूज्य भुक्तिमुक्तिमवाप्नुयात् । अनन्तव्रतमाख्यास्ये नक्षत्रव्रतकेऽर्थदं[8] ॥१८॥
मार्गशीर्षे मृगशिरे गोमूत्राशी यजेद्धरिं । अनन्तं सर्वकामानामनन्तो भगवान् फलं ॥१९॥
ददात्यनन्तञ्च पुनस्तदेवान्यत्र जन्मनि । अनन्तपुन्योपचयङ्करोत्येतन्महाव्रतं ॥२०॥

---

१. हरिः सर्व्वत्र पूजित इति ग ।
२. शय्यागोश्वादि दक्षिणा इति ख. ट. च । शय्यागोन्नादि दक्षिणा इति घ. ञ. ज. च । शय्याधेन्वादि दक्षिणा इति ङ ।
३. सर्व्वपापहमिति ङ. ।
४. सर्व्वसारमन्नमिति ख. ग. घ. च ।
५. मासचतुष्टकमिति ख. ।
६. नक्तं नैवेद्यमर्पयेदिति झ. ।
७. ऐश्वर्य्यवित्तादि महोदयं मे इति झ. ।
८. नक्षत्रव्रतकामदमिति ख. ग. छ. । नक्षत्रव्रतकेऽन्नदमिति घ. ङ. ञ. च ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यथाभिलषितप्राप्तिं करोत्यक्षयमेव च। पादादि पूज्य नक्ते तु भुञ्जीयाच्चैलवर्जितं ॥२१॥
घृतेनानन्तमुद्दिश्य होमो मासचतुष्टयं। चैत्रादौ शालिना होमः पयसा श्रावणादिषु ॥२२॥
मान्धाताभूद् युवनाश्वादनन्तव्रतकात् सुतः।

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये नक्षत्रव्रतानि नाम षण्णवत्यधिक-
शततमोऽध्यायः।

सप्तनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

दिवसव्रतानि।

अग्निरुवाच

दिवसव्रतकं वक्ष्ये ह्यादौ धेनुव्रतं वदे। यश्चोभयमुखीन्दद्यात् प्रभूतकनकान्वितां ॥१॥
दिनं पयोव्रतस्तिष्ठेत् स याति परमम्पदं। त्र्यहं पयोव्रतं कृत्वा काञ्चनं कल्पपादपं ॥२॥
दत्त्वा ब्रह्मपदं याति कल्पवृक्षव्रतं स्मृतं। दद्याद्विंशत् पलादूर्द्ध्वं[1] महीङ्कृत्वा तु काञ्चनीं॥३॥
दिनं पयोव्रतस्तिष्ठेद्रुद्रगः स्याद्दिवाव्रती। पक्षे पक्षे त्रिरात्रन्तु भक्तेनैकेन यः क्षपेत्[2] ॥४॥
विपुलं धनमाप्नोति त्रिरात्रव्रतकृद्दिनं। मासे मासे त्रिरात्राशी एकभक्ती गणेशतां ॥५॥
यस्त्रिरात्रव्रतं[3] कुर्य्यात् समुद्दिश्य जनार्दनं। कुलानां शतमादाय स याति भवनं हरेः ॥६॥
नवम्याञ्च सिते पक्षे नरो मार्गशिरस्यथ[4]। प्रारभेत त्रिरात्राणां व्रतन्तु विधिवद् व्रती ॥७॥
ओं नमो वासुदेवाय सहस्रं वा शतं जपेत्। अष्टम्यामेकभक्ताशी दिनत्रयमुपावसेत् ॥८॥
द्वादश्यां पूजयेद् विष्णुं कार्त्तिके कारयेद् व्रतं।
विप्रान् सम्भोज्य वस्त्राणि शयनान्यासनानि च ॥ ९ ॥
छत्रोपवीतपात्राणि ददेत् सम्प्रार्थयेद् द्विजान्। व्रतेऽस्मिन् दुष्करे चापि विकलं यदभून्मम ॥
भवद्भिस्तदनुज्ञातं परिपूर्णं भवत्विति। भुक्तभोगो व्रजेद् विष्णुं त्रिरात्रव्रतकव्रती[5] ॥११॥
कार्त्तिकव्रतकं वक्ष्ये भुक्तिमुक्तिप्रदायकं। दशम्यां पञ्चगव्याशी एकादश्यामुपोषितः ॥१२॥
कार्त्तिकस्य सितेऽभ्यर्च्य[6] विष्णुं देवविमानगः। चैत्रे त्रिरात्रं नक्ताशी अजापञ्चप्रदः सुखी ॥
त्रिरात्रं पयसः पानमुपवासपरस्त्र्यहं। षष्ठ्यादि कार्त्तिके शुक्ले कृच्छ्रो माहेन्द्र उच्यते ॥१४॥
पञ्चरात्रं पयः पीत्वा दध्याहारो ह्युपोषितः। एकादश्यां कार्त्तिके तु कृच्छ्रोऽयं भास्करोर्थदः[7] ॥

---

१. दद्यात् त्रिंशत्पलादूर्द्ध्वमिति घ. ज. ञ. च।
२. क्षिपेदिति ख. ग. घ. ङ. ञ. च।
३. यस्त्रिरात्रशतं कुर्य्यादिति ग. घ. ज.।
४. मार्गशिरस्य चेति ख. घ. ज. ञ. च।
५. त्रिरात्रव्रतकव्रती इति ख. घ. ञ. च.। त्रिरात्रव्रतकृद् व्रती इति ङ.।
६. कार्त्तिकस्य सिते प्राच्यं इति ख. ग. घ. ङ. छ. ज. ञ. च।
७. भास्करोऽन्नद इति ख. ग. घ. ज. ञ. च।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यवागूं यावकं शाकं दधि क्षीरं घृतं जलं । पञ्चम्यादि सिते पक्षे कृच्छ्रः शान्तपनः स्मृतः ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये दिवसव्रतानि नाम सप्तनवत्यधिक-
शततमोऽध्यायः ।

अष्टनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

मासव्रतानि ।

अग्निरुवाच

मासव्रतकमाख्यास्ये भुक्तिमुक्तिप्रदायकं । आषाढादिचतुर्मासमभ्यङ्गं वर्जयेत् सुधीः ॥१॥
वैशाखे पुष्पलवणन्त्यक्त्वा गोदो नृपो भवेत् । गोदो मासोपवासी च[1] भीमव्रतकरो हरिः[2] ॥
आषाढादिचतुर्म्मासं प्रातः स्नायी च विष्णुगः । माघे मास्यथ चैत्रे वा गुडधेनुप्रदो भवेत् ॥
गुडव्रतस्तृतीयायां गौरीशः स्यान्महाव्रती । मार्गशीर्षादिमासेषु नक्तकृद्विष्णुलोकभाक् ॥४॥
एकभक्तव्रती तद्वद् द्वादशीव्रतकं पृथक्[3] । फलव्रती चतुर्म्मासं फलं त्यक्त्वा प्रदापयेत् ॥५॥
श्रावणादिचतुर्मासं व्रतैः सर्व्वं लभेद्व्रती । आषाढस्य सिते पक्षे एकादश्यामुपोषितः ॥६॥
चातुर्मास्यव्रतानान्तु कुर्व्वीत परिकल्पनं । आषाढ्याञ्चाथ सङ्क्रान्तौ कर्क्कटस्य[4] हरिं यजेत् ॥
इदं व्रतं मया देव गृहीतं पुरतस्तव । निर्विघ्नां सिद्धिमायातु प्रसन्ने त्वयि केशव ॥८॥
गृहीतेऽस्मिन् व्रते देव यद्यपूर्णे म्रिये ह्यहं । तन्मे भवतु सम्पूर्णं त्वत्प्रसादाज्जनार्दन ॥९॥
मांसादि त्यक्त्वा[5] विप्रः स्यात्तैलत्यागी हरिं यजेत् ।
एकान्तरोपवासी च त्रिरात्रं विष्णुलोकभाक् ॥ १० ॥
चान्द्रायणी विष्णुलोकी मौनी स्यान्मुक्तिभाजनं । प्राजापत्यव्रती स्वर्गी शक्तुयावकभक्षकः ॥
दुग्धाद्याहारवान् स्वर्गी पञ्चगव्याम्बुभुक्तथा । शाकमूलफलाहारी नरो विष्णुपुरीं व्रजेत्[6] । १२॥
मांसवर्ज्जी यवाहारो रसवर्ज्जी हरिं व्रजेत् । कौमुदव्रतमाख्यास्ये आश्विने समुपोषितः ॥१३॥
द्वादश्यां पूजयेद्विष्णुं प्रलिप्याब्जोत्पलादिभिः । घृतेन तिलतैलेन दीपनैवेद्यमर्पयेत् ॥१४॥
ओं नमो वासुदेवाय मालत्या मालया यजेत् । धर्म्मकामार्थमोक्षांश्च प्राप्नुयात् कौमुदव्रती ॥
सर्व्वं लभेद्धरिं प्राच्य मासोपवासकव्रती ।

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये मासव्रतानि नाम अष्टनवत्यधिक-
शततमोऽध्यायः ।

---

१. मासे यवाशी चेति ख. ।
२. भीमव्रतपरो हरिरिति ङ. ।
३. द्वादशीव्रतकं परमिति ङ. ।
४. आषाढ्यां वृषसङ्क्रान्त्यां कर्कटे चेति झ. ।
५. मत्स्यादि त्यक्त्वेति ख. घ. छ. च । मत्स्यत्यागी तु इति ङ ।
६. विष्णुपुरं व्रजेदिति ख. ट. च ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

एकोनशताधिकशततमोऽध्यायः

नानाव्रतानि ।

अग्निरुवाच

ऋतुव्रतान्यहं वक्ष्ये भुक्तिमुक्तिप्रदानि ते । इन्धनानि तु यो दद्याद्वर्षादिचतुरो ह्यृतून् ॥१॥
घृतधेनुप्रदश्चान्ते ब्राह्मणोऽग्निव्रती भवेत् । कृत्वा मौनन्तु सन्ध्यायां मासान्ते घृतकुम्भदः ॥
तिलघण्टावस्त्रदाता सुखी सारस्वतव्रती[1] । पञ्चामृतेन स्नपनं कृत्वाब्दं धेनुदो नृपः ॥३॥
एकादश्यान्तु नक्ताशी चैत्रे भक्तं निवेदयेत् ।
हैमं विष्णोः पदं याति मासान्ते विष्णुसद्व्रती ॥ ४ ॥
पायसाशी गोयुगदः श्रीभाग्देवीव्रती भवेत् । निवेद्य पितृदेवेभ्यो यो भुङ्क्ते स भवेन्नृपः ॥
वर्षव्रतानि चोक्तानि[2] सङ्क्रान्तिव्रतकं वदे । सङ्क्रान्तौ स्वर्गलोकी स्याद्रात्रिजागरणान्नरः ॥
अमावास्यां तु सङ्क्रान्तौ शिवार्क्कयजनात्तथा । उत्तरे त्वयने चाज्यप्रस्थस्नानेन केशवे ॥
द्वात्रिंशत्पलमानेन सर्वपापैः प्रमुच्यते । घृतक्षीरादिना स्नाप्य प्राप्नोति विषुवादिषु ॥८॥
स्त्रीणामुमाव्रतं श्रीदं तृतीयास्वष्टमीषु च । गौरीं महेश्वरं चापि यजेत सौभाग्यमाप्नुयात् ॥
उमामहेश्वरौ प्राच्र्य अवियोगादि चाप्नुयात् । मूलव्रतकरी स्त्री च उमेशव्रतकारिणी ॥१०॥
सूर्य्यभक्ता तु या नारी ध्रुवं सा पुरुषो भवेत् ।

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये नानाव्रतानि नाम एकोनशताधिक-
शततमोऽध्यायः ।

द्विशततमोऽध्यायः

दीपदानव्रतं ।

अग्निरुवाच

दीपदानव्रतं वक्ष्ये भुक्तिमुक्तिप्रदायकं । देवद्विजातिकगृहे दीपदोऽब्दं स सर्व्वभाक् ॥१॥
चतुर्मासं विष्णुलोकी कार्त्तिके स्वर्गलोक्यपि । दीपदानात् परं नास्ति न भूतं न भविष्यति ॥
दीपेनायुष्यचक्षुष्मान्दीपाल्लक्ष्मीसुतादिकं । सौभाग्यं दीपदः प्राप्य स्वर्गलोके महीयते ॥३॥
विदर्भराजदुहिता ललिता दीपदात्मभाक् । चारुधर्म्मक्ष्मापपत्नी शतभार्याधिकाऽभवत् ॥४॥
ददौ दीपसहस्रं सा विष्णोरायतने सती । पृष्टा सा दीपमाहात्म्यं सपत्नीभ्य उवाच ह ॥५॥

---

१. सुधीः सारस्वतव्रती इति ख. ग. घ. छ. ट. च ।
२. सर्वव्रतानि चोक्तानीति ख. छ. ज. च ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ललितोवाच

सौवीरराजस्य पुरा मैत्रेयोऽभूत् पुरोहितः । तेन चायतनं विष्णोः कारितं देविकातटे ॥६॥
कार्त्तिके दीपकस्तेन दत्तः सम्प्रेरितो मया । वक्त्रप्रान्तेन नश्यन्त्या मार्ज्जारस्य तदा भयात् ॥
निर्व्वाणवान् प्रदीप्तोऽभूद्वर्त्त्या मूषिकया तदा । मृता राजात्मजा जाता राजपत्नी शताधिका ॥
असङ्कल्पितमप्यस्य प्रेरणं यत् कृतं मया । विष्णायतनदीपस्य तस्येदं भुज्यते फलं ॥९॥
जातिस्मरा ह्यतो दीपान् प्रयच्छामि त्वहर्न्निशं । एकादश्यां दीपदो वै विमाने दिवि मोदते ॥
जायते दीपहर्त्ता तु मूको वा जड़ एव च । अन्धे तमसि दुष्पारे नरके पतते किल ॥११॥
विक्रोशमानांश्च नरान् यमकिङ्करआहतान् । विलापैरलमत्रापि किं वो विलपिते फलं ॥१२॥
यदा प्रमादिभिः पूर्वमत्यन्तसमुपेक्षितः । जन्तुर्जन्मसहस्रेभ्यो ह्येकस्मिन् मानुषो यदि ॥१३॥
तत्राप्यतिविमूढ़ात्मा किं भोगानभिधावति । स्वहितं[1] विषयास्वादैः क्रन्दनं तदिहागतं ॥१४॥
भुज्यते च कृतं पूर्वमेतत् किं वो न चिन्तितं । परस्त्रीषु कुचाभ्यङ्गं प्रीतये दुःखदं हि वः ॥
मुहूर्त्तविषयास्वादोऽनेककोट्यब्ददुःखदः । परस्त्रीहारियद्गीतं हा मातः किं विलप्यते ॥१६॥
कोऽतिभारो हरेर्नाम्नि जिह्वया परिकीर्त्तने । वर्त्तितैलेऽल्पमूल्येऽपि यदग्निर्लभ्यते सदा ॥१७॥
दानाशक्तैर्हरेर्दीपो हृतस्तद्वोऽस्ति दुःखदं । इदानीं किं विलापेन सहध्वं यदुपागतं ॥१८॥

अग्निरुवाच

ललितोक्तञ्च ताः श्रुत्वा दीपदानाद्दिवं ययुः । तस्माद्दीपप्रदानेन व्रतानामधिकं फलं ॥१९॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये दीपदानव्रतं द्विशत-
तमोऽध्यायः ।

एकाधिकद्विशततमोऽध्यायः

नवव्यूहार्च्चनं ।

अग्निरुवाच

नवव्यूहार्च्चनं वक्ष्ये नारदाय हरीरितं । मण्डलेऽब्जेऽर्च्चयेन्मध्ये अवीजं वासुदेवकं ॥१॥
आवीजञ्च सङ्कर्षणम् प्रद्युम्नं च दक्षिणे । अः अनिरुद्धं नैर्ऋते ओं नारायणमप्सु च ॥२॥
तत् सद्ब्रह्माणमनिले हुं विष्णुं क्षौं नृसिंहकं[2] । उत्तरे भूर्व्वराहञ्च ईशे द्वारि च पश्चिमे ॥३॥
कं टं सं शं गरुत्मन्तं पूर्व्ववक्त्रञ्च दक्षिणे[3] । खं छं वं हुं फड़िति च खं ठं फं शं गदां विधौ ॥
वं णं मं क्षं कोणेशञ्च घं दं भं हं श्रियं यजेत् । दक्षिणे चोत्तरे पुष्टिं गं डं वं शं स्ववीजकं ॥५॥

---

१. हर्षितमिति ख. ग. घ. च । दूषितमिति ङ. ।
२. क्रं विष्णुं क्षौं नृसिंहकमिति ख. छ. ज. च । ३. पक्षिराजञ्च दक्षिणे इति ङ. ।

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पीठस्य पश्चिमे धं वं वनमालाञ्च पश्चिमे। श्रीवत्सं चैव सं हं लं छं तं यं कौस्तुभं जले ॥६॥
दशमाङ्कमाद्विष्णोर्नमोऽनन्तमधोऽर्च्चयेत्। दशाङ्गादिमहेन्द्रादीन् पूर्व्वादौ चतुरो घटान् ॥
तोरणानि वितानं च अग्न्यनिलेन्दुवीजकैः। मण्डलानि क्रमाद्ध्यात्वा तनुं वन्ध्य ततः प्लवेत् ॥
अम्बरस्थं ततो ध्यात्वा सूक्ष्मरूपमथात्मनः। सितामृते निमग्नञ्च[1] चन्द्रविम्बात् स्रुतेन च ॥
तदेव चात्मनो वीजममृतं प्लवसंस्कृतं। उत्पद्यमानं पुरुषमात्मानमुपकल्पयेत ॥१०॥
उत्पन्नोऽस्मि स्वयं विष्णुर्वीजं द्वादशकं न्यसेत्। हृच्छिरस्तु शिखा चैव कवचं चास्त्रमेव च ॥
वक्षोमूर्द्धशिखापृष्ठलोचनेषु न्यसेत् पुनः। अस्त्रं करद्वये न्यस्य ततो दिव्यतनुर्भवेत् ॥१२॥
यथात्मनि तथा देवे शिष्यदेहे न्यसेत्तथा। अनिर्म्माल्यया स्मृता पूजा यद्धरेः पूजनं हृदि ॥१३॥
सनिर्म्माल्यया मण्डलादौ वद्धनेत्राश्च शिष्यकाः। पुष्पं क्षिपेयुर्यन्मूर्त्तौ तस्य तन्नाम कारयेत् ॥
निवेश्य वामतः शिष्यांस्तिलव्रीहिघृतं हुनेत्। शतमष्टोत्तरं हुत्वा सहस्रं कायशुद्धये ॥१५॥
नवव्यूहस्य मूर्त्तीनामङ्गानां च शताधिकं। पूर्णान्दत्त्वा दीक्षयेत्तान् गुरुः पूज्यश्च तैर्धनैः ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये नवव्यूहार्चनं नाम एकाधिक-
द्विशततमोऽध्यायः।

द्व्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

पुष्पाध्यायकथनं।

अग्निरुवाच

पुष्पगन्धधूपदीपनैवेद्यैस्तुष्यते हरिः। पुष्पाणि देवयोग्यानि ह्ययोग्यानि वदामि ते ॥१॥
पुष्पं श्रेष्ठं मालती च तमालो भुक्तिमुक्तिमान्। मल्लिका सर्व्वपापघ्नी यूथिका विष्णुलोकदा ॥
अतिमुक्तमयं तद्वत् पाटला विष्णुलोकदा। करवीरैर्विष्णुलोकी जवापुष्पैश्च पुण्यवान् ॥३॥
पावन्तीकुब्जकाद्यैश्च नगरैर्विष्णुलोकभाक्। कर्णिकारैर्विष्णुलोकः कुरुण्ठैः पापनाशनं ॥४॥
पद्मैश्च केतकीभिश्च कुन्दपुष्पैः परा गतिः। वाणपुष्पैर्व्वर्वराभिः कृष्णाभिर्हरिलोकभाक् ॥५॥
अशोकैस्तिलकैस्तद्वदटरूषभवैस्तथा। मुक्तिभागी विल्वपत्रैः शमीपत्रैः परा गतिः ॥६॥
विष्णुलोकी भृङ्गराजैस्तमालस्य दलैस्तथा। तुलसी कृष्णगौराख्या कल्हारोत्पलकानि च ॥
पद्मं कोकनदं पुण्यं शताब्जमालया हरिः। नीपार्जुनकदम्बैश्च[2] वकुलैश्च सुगन्धिभिः ॥८॥
किंशुकैर्मुनिपुष्पैस्तु गोकर्णैर्नागकर्णकैः। सन्ध्यापुष्पैर्विल्वतकै रञ्जनीकेतकीभवैः[3] ॥९॥
कुष्माण्डतिमिरोत्थैश्च कुशकाशशरोद्भवैः। द्युतादिभिर्मरुतकैः पत्रैरम्यैः सुगन्धकैः ॥१०॥
भुक्तिर्मुक्तिः पापहानिर्भक्त्या सर्वैस्तु तुष्यति। स्वर्णलक्षाधिकं पुष्पं माला कोटिगुणाधिका ॥

---

१. सितासिते निमग्नञ्चेति ख. ज. च।
२. मुक्तिभागी कदम्बैश्चेति ङ.।
३. रजनीकेतकीभवैरिति ख. ङ. छ. ज. च।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

स्ववनेऽन्यवने पुष्पैस्त्रिगुणं वनजैः फलं[1] । विशीर्णैर्नार्च्चयेद्विष्णुन्नाधिकाङ्गैर्न मोटितैः ॥१२॥
काञ्चनारैस्तथोन्मत्तैर्गिरिकर्णिकया तथा । कुटजैः शाल्मलीयैश्च[2] शिरीषैर्न्नरकादिकं ॥१३॥
सुगन्धैर्ब्रह्मपद्मैश्च[3] पुष्पैर्नीलोत्पलैर्हरिः[4] । अर्कमन्दारधुस्तूरकुसुमैरच्चर्यते[5] हरः ॥१४॥
कुटजैः कर्क्कटीपुष्पैः केतकीन्न शिवे ददेत् । कुष्माण्डनिम्बसम्भूतं पैशाचं गन्धवर्जितं ॥१५॥

अहिंसा इन्द्रियजयः[5] क्षान्तिर्ज्ञानं[6] दया श्रुतं ।
भावाष्टपुष्पैः सम्पूज्य देवान् स्याद् भुक्तिमुक्तिभाक् ॥ १६ ॥

अहिंसा प्रथमं पुष्पं पुष्पमिन्द्रियनिग्रहः । सर्वपुष्पं दया भूते पुष्पं शान्तिर्विशिष्यते ॥१७॥
शमः पुष्पं तपः पुष्पं ध्यानं पुष्पं च सप्तमं । सत्यञ्चैवाष्टमं पुष्पमेतैस्तुष्यति केशवः ॥१८॥
एतैरेवाष्टभिः पुष्पैस्तुष्यत्येवार्चितो हरिः । पुष्पान्तराणि सन्त्यत्र वाह्यानि मनुजोत्तम ॥१९॥
भक्त्या दयान्वितैर्विष्णुः पूजितः परितुष्यति[7] । वारुणं सलिलं पुष्पं सौम्यं घृतपयोदधि ॥
प्राजापत्यं तथान्नादि आग्नेयं धूपदीपकं । फलं पुष्पादिकञ्चैव वानस्पत्यन्तु पञ्चमं ॥२१॥
पार्थिवं कुशमूलाद्यं वायव्यं गन्धचन्दनं । श्रद्धाख्यं विष्णुपुष्पञ्च सर्वदा चाष्टपुष्पिकाः॥२२॥
आसनं मूर्त्तिपञ्चाङ्गं[8] विष्णुर्वा चाष्टपुष्पिकाः । विष्णोस्तु वासुदेवाद्यैरीशानाद्यैः शिवस्य वा ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये पुष्पाध्यायो नाम द्व्यधिक-
द्विशततमोऽध्यायः ।

त्र्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

नरकस्वरूपम् ।

अग्निरुवाच ।

पुष्पाद्यैः पूजनाद्विष्णोर्न्न याति नरकान्वदे । आयुषोऽन्ते नरः प्राणैरनिच्छन्नपि मुच्यते ॥
जलमग्निर्व्विषं शस्त्रं क्षुद्व्याधिः पतनं गिरेः । निमित्तं किञ्चिदासाद्य देही प्राणैर्विमुच्यते ॥
अन्यच्छरीरमादत्ते यातनीयं स्वकर्म्मभिः । भुङ्क्तेऽथ पापकृन् दुःखं सुखं धर्म्माय सङ्गतः ॥
नीयते यमदूतैस्तु यमं प्राणिभयङ्करैः । कुपथे दक्षिणद्वारि धार्म्मिकः पश्चिमादिभिः ॥४॥
यमाज्ञप्तैः किङ्करैस्तु पात्यते नरकेषु च[9] । स्वर्गे तु नीयते धर्म्माद् वसिष्ठाद्युक्तिसंश्रयात् ॥

---

१. जलजैः फलमिति ङ. ।
२. शाल्मलिजैश्चेति ख. ग. ङ. च ।
३. सुगन्धैः पत्रपुष्पैश्चेति ङ. ।
४. पूज्यो नीलोत्पलैर्हरिरिति ख. ग. ङ. ज. च ।
५. अहिंसा इन्द्रिययम इति ग. ।
६. क्षान्तिर्दानमिति ख. ।
७. अहिंसा प्रथमं पुष्पमित्यादिः, पूजितः परितुष्यति इत्यन्तः पाठः ख. ग. घ. ङ. छ. ज. ञ. ट. पुस्तकेषु नास्ति ।
८. आसनं मूर्त्तिषोढाङ्गमिति ख. ।
९. पात्यते नरकेष्वपि इति ख. । पात्यते नरके सदा इति ङ. पीड्यते नरकेऽधुनेति घ. छ. च ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

गोघाती तु महावीच्यां वर्षलक्षन्तु पीड्यते । आमकुम्भे महादीप्ते ब्रह्महा भूमिहारकः ॥६॥
महाप्रलयकं यावद्रौरवे पीड्यते शनैः । स्त्रीबालवृद्धहन्ता तु यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥७॥
महारौरवके रौद्रे गृहक्षेत्रादिदीपकः । दह्यते कल्पमेकं स चौरस्तामिस्रके पतेत् ॥८॥
नैककल्पन्तु शूलाद्यैर्भिद्यते यमकिङ्करैः । महातामिस्रके सर्पजलौकाद्यैश्च पीड्यते ॥९॥
यावद्भूमिर्मातृहाद्या असिपत्रवनेऽसिभिः[1] । नैककल्पन्तु नरके करम्भवालुकासु च ॥१०॥
येन दग्धो जनस्तत्र दह्यते वालुकादिभिः । काकोले कृमिविष्ठाशी एकाकी मिष्टभोजनः ॥
कुट्टले मूत्ररक्ताशी पञ्चयज्ञक्रियोज्झितः । सुदुर्गन्धे रक्तभोजी भवेच्चाभक्ष्यभक्षकः ॥१२॥
तैलपाके तु तिलवत् पीड्यते परपीड़कः । तैलपाके तु पच्येत शरणागतघातकः ॥१३॥
निरुच्छ्वासे दाननाशी रसविक्रयकोऽध्वरे । नाम्ना वज्रकवाटेन महापाते तदाऽनृती ॥१४॥
महाज्वाले पापबुद्धिः क्रकचेऽगम्यगामिनः । सङ्करी गुडपाके च[2] प्रतुदेत् परमर्मनुत् ॥१५॥
क्षारह्रदे[3] प्राणिहन्ता क्षुरधारे च भूमिहृत् । अम्बरीषे गोस्वर्णहृद् द्रुमच्छिद्वज्रशस्त्रके ॥
मधुहर्त्ता परीतापे कालसूत्रे परार्थहृत् । कश्मलेऽत्यन्तमांसाशी उग्रगन्धे ह्यपिण्डदः ॥१७॥
दुर्द्धरे तु काचभक्षी वन्दिग्राहरताश्च ये । मञ्जुषे नरके लोहेऽप्रतिष्ठे श्रुतिनिन्दकः ॥१८॥
पूतिवक्त्रे कूटसाक्षी परिलुण्ठे धनापहा । बालस्त्रीवृद्धघाती च कराले ब्राह्मणार्त्तिकृत् ॥१९॥
विलेपे मद्यपी विप्रो महाताम्रे तु भेदिनः[4] ॥ २० ॥
तथाक्रम्य पारदारान् ज्वलन्तीमायसीं शिलां । शाल्मलाख्ये तमालिङ्गेन्नारी बहुनरङ्गमा ॥२१॥
अस्फोटजिह्वोद्धरणं सोक्षणान्नेत्रभेदनं । अङ्गारराशौ क्षिप्यन्ते मातृपुत्र्यादिगामिनः ॥२२॥
चौराः क्षुरैश्च भिद्यन्ते स्वमांसाशी च मांसभुक् । मासोपवासकर्त्ता वै न याति नरकन्नरः ॥२३॥
एकादशीव्रतकरी भीष्मपञ्चकसद्व्रती ।

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये नरकस्वरूपवर्णनं नाम त्र्यधिक-
द्विशततमोऽध्यायः ।

चतुरधिकद्विशततमोऽध्यायः

मासोपवासव्रतम् ।

अग्निरुवाच

व्रतं मासोपवासञ्च[5] सर्वोत्कृष्टं वदामि ते । कृत्वा तु वैष्णवं यज्ञं गुरोराज्ञामवाप्य च ॥१॥
कृच्छ्राद्यैःस्वबलं बुद्ध्वा कुर्य्यान्मासोपवासकं । वानप्रस्थो यतिर्वाथ नारी वा विधवा मुने ॥

---

१. असिपत्रवनेऽग्निभिरिति ङ. ।
२. गुरुपाके चेति ख. ज. च ।
३. क्षारकूपे इति ख. छ. च ।
४. महाप्रेते तु भेदिन इति ख. ग. घ. ङ. छ. ज. च ।
५. व्रतं मासोपवासाख्यमिति घ. ज. च ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आश्विनस्यामले पक्षे एकादश्यामुपोषितः । व्रतमेतत्तु गृह्णीयाद्यावत्त्रिंशद्दिनानि तु ॥३॥
अद्यप्रभृत्यहं विष्णो यावदुत्थानकन्तव । अर्च्चये त्वामनश्नन् हि यावत् त्रिंशद्दिनानि तु ॥
कार्त्तिकाश्विनयोर्विष्णोर्यावदुत्थानकन्तव । म्रियेे यद्यन्तरालेऽहं व्रतभङ्गो न मे भवेत् ॥५॥
त्रिकालं पूजयेद्विष्णुं त्रिःस्नातो गन्धपुष्पकैः । विष्णोर्गीतादिकं जप्यन्ध्यानं कुर्य्याद् व्रती नरः ॥
वृथावादम्परिहरेदर्थाकाङ्क्षां विवर्जयेत्[१] । नाव्रतस्थं स्पृशेत् कश्चिद्विकर्म्मस्थान्न चालयेत् ॥
देवतायतने तिष्ठेद्यावत् त्रिंशद्दिनानि तु । द्वादश्यां पूजयित्वा तु भोजयित्वा द्विजान्व्रती ॥८॥
समाप्य दक्षिणां दत्त्वा पारणन्तु समाचरेत् । भुक्तिमुक्तिमवाप्नोति कल्पांश्चैव त्रयोदश ॥९॥
कारयेद्वैष्णवं यज्ञं यजेद्विप्रांस्त्रयोदश । तावन्ति वस्त्रयुग्मानि भाजनान्यासनानि च ॥१०॥
छत्राणि सपवित्राणि तथोपानद्युगानि च[२] । योगपट्टोपवीतानि दद्याद्विप्राय तैर्म्मतः[३] ॥११॥
अन्यविप्राय शय्यायां हैमं विष्णुं प्रपूज्य च । आत्मनश्च तथामूर्त्तिं वस्त्राद्यैश्च प्रपूजयेत् ॥१२॥
सर्व्वपापविनिर्मुक्तो विप्रो विष्णुप्रसादतः । विष्णुलोकं गमिष्यामि विष्णुरेव भवाम्यहं ॥१३॥
व्रज व्रज देवबुद्धे विष्णोः स्थानमनामयं । विमानेनामलस्तत्र तिष्ठेद् विष्णुस्वरूपधृक् ॥
द्विजानुक्त्वाथ[४] तां शय्यां गुरवेऽथ निवेदयेत् । कुलानां शतमुद्धृत्य विष्णुलोकन्नयेद् व्रती ॥
मासोपवासी यद्देशे स देशो निर्म्मलो भवेत् । किं पुनस्तत्कुलं सर्व्वं यत्र मासोपवासकृत् ॥१६॥
व्रतस्थं मूर्च्छितं दृष्ट्वा क्षीराज्यञ्चैव पाययेत् । नैते व्रतं विनिघ्नन्ति हविर्विप्रानुमोदितं ॥१७॥
क्षीरं गुरोर्हितौषध्य आपो मूलफलानि च । विष्णुर्म्महौषधं कर्त्ता व्रतमस्मात् समुद्धरेत् ॥१८॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये मासोपवासव्रतं नाम चतुरधिक-
द्विशततमोऽध्यायः ।

पञ्चाधिकद्विशततमोऽध्यायः

भीष्मपञ्चकव्रतं ।

अग्निरुवाच

भीष्मपञ्चकमाख्यास्ये व्रतराजन्तु सर्वदं । कार्त्तिकस्यामले पक्षे एकादश्यां समाचरेत् ॥१॥
दिनानि पञ्च त्रिःस्नायी पञ्चव्रीहितिलैस्तथा[५] । तर्पयेद्देवपित्रादीन् मौनी सम्पूजयेद्धरिं ॥२॥
पञ्चगव्येन संस्नाप्य देवं पञ्चामृतेन च । चन्दनाद्यैः समालिप्य गुग्गुलुं सघृतन्दहेत् ॥३॥
दीपं दद्याद्दिवारात्रौ नैवेद्यं परमान्नकं । ओं नमो वासुदेवाय जपेदष्टोत्तरं शतं ॥४॥

---

१. अन्नाकाङ्क्षां विवर्जयेदिति घ. ङ. च ।
२. ततः पानयुतानि चेति ख. ।
३. वै नत इति घ. ।
४. द्विजान् नत्वायेति ङ. ।
५. यवव्रीहितिलैस्तथेति घ. ङ. छ. ज. च ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जुहुयाच्च घृताभ्यक्तांस्तिलव्रीहींस्ततो व्रती। षड़क्षरेण मन्त्रेण स्वाहाकारान्वितेन च ॥५॥
कमलैः पूजयेत् पादौ द्वितीये विल्वपत्रकैः। जानु सक्थि तृतीयेऽथ नाभिं भृङ्गरजेन तु ॥
वाणविल्वजवाभिस्तु चतुर्थे पञ्चमेऽहनि। मालत्या भूमिशायी स्यादेकादश्यान्तु गोमयं ॥
गोमूत्रं दधि दुग्धं च पञ्चमे पञ्चगव्यकं। पौर्णमास्याञ्चरेन्नक्तं भुक्तिं मुक्तिं लभेद् व्रती ॥
भीष्मः कृत्वा हरिं प्राप्तस्तेनैव[1] भीष्मपञ्चकं। ब्रह्मणः पूजनाद्यैश्च उपवासादिकं व्रतं[2] ॥६॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये भीष्मपञ्चकं नाम पञ्चाधिक-
द्विशततमोऽध्यायः।

षडधिकद्विशततमोऽध्यायः

अगस्त्यार्घ्यदानकथनं।

अग्निरुवाच

अगस्त्यो भगवान्विष्णुस्तमभ्यर्च्याप्नुयाद्धरिं।
अप्राप्ते भास्करे कन्यां सत्रिभागैस्त्रिभिर्दिनैः॥ १ ॥

अर्घ्यं दद्यादगस्त्याय पूजयित्वा ह्युपोषितः। काशपुष्पमयीं मूर्त्तिं प्रदोषे विन्यसेद् घटे ॥
मुनेर्यजेत्तां कुम्भस्थां रात्रौ कुर्य्यात् प्रजागरं। अगस्त्य मुनिशार्दूल तेजोराशे महामते[3] ॥
इमां मम कृतां पूजां गृह्णीष्व प्रियया सह। आवाह्यार्घ्ये च साम्मुख्यं प्राचर्चयेच्चन्दनादिना ॥
जलाशयसमीपे तु प्रातर्नीत्वार्घ्यमर्पयेत्। काशपुष्पप्रतीकाश अग्निमारुतसम्भव[4] ॥५॥
मित्रावरुणयोः पुत्र कुम्भयोने नमोऽस्तु ते। आतापिर्भक्षितो येन वातापिश्च महासुरः ॥६॥

समुद्रः शोषितो येन सोऽगस्त्यः सम्मुखोऽस्तु मे।
अगस्ति प्रार्थयिष्यामि कर्म्मणा मनसा गिरा॥ ७ ॥

अर्च्चयिस्याम्यहं मैत्रं परलोकाभिकाङ्क्षया। द्वीपान्तरसमुत्पन्नं देवानां परमं प्रियं ॥८॥
राजानं सर्व्ववृक्षाणां चन्दनं प्रतिगृह्यतां[5]। धर्म्मार्थकाममोक्षाणां भाजनी पापनाशनी ॥९॥
सौभाग्यारोग्यलक्ष्मीदा पुष्पमाला प्रगृह्यतां। धूपोऽयं गृह्यतां देव भक्तिं मे ह्यचलाङ्कुरु ॥१०॥
ईप्सितं मे वरं देहि परत्र च शुभाङ्गतिं। सुरासुरैर्मुनिश्रेष्ठ सर्व्वकामफलप्रद ॥११॥

---

१. हरिं लेभे तेनैतदिति ग.। हरिं प्राप तेनैतदिति ङ.। हरिं प्राप्तस्तेनैतदिति ज. ट. च।
२. पूजनात्पञ्च उपवासादजव्रतमिति ग. घ. ङ. ज. ञ. ट. च।
३. तेजोराशे महाद्युते इति ग. घ. छ. ज. झ. ञ. ट. च। तेजोराशे जगत्पते इति ङ.।
४. वह्निमारुतसम्भवेति झ.। ५. चन्दनं मे प्रगृह्यतामिति ज. ञ. च।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वस्त्रव्रीहिफलैर्हेम्ना दत्तस्त्वर्घ्यो ह्ययं[1] मया। अगस्त्यं बोधयिष्यामि यन्मया मनसोद्धृतं[2]॥
फलैरर्घ्यं प्रदास्यामि गृहाणार्घ्यं महामुने।
अगस्त्य एवं खनमानः खनित्रैः प्रजामपत्यं बलमीहमानः।
उभौ कर्णावृषिरुग्रतेजाः पुपोष सत्या देवेष्वाशिषो जगाम॥ १३॥

राजपुत्रि नमस्तुभ्यं मुनिपत्नि महाव्रते। अर्घ्यं गृह्णीष्व देवेशि लोपामुद्रे यशस्विनि॥१४॥
पञ्चरत्नसमायुक्तं हेमरूप्यसमन्वितं। सप्तधान्यवृतं[3] पात्रं दधिचन्दनसंयुतं॥१५॥
अर्घ्यं दद्यादगस्त्याय स्त्रीशूद्राणामवैदिकं। अगस्त्य मुनिशार्दूल तेजोराशे च सर्वद॥१६॥
इमां मम कृतां पूजां गृहीत्वा व्रज शान्तये। त्यजेदगस्त्यमुद्दिश्य धान्यमेकं फलं रसं॥१७॥
ततोऽन्नं भोजयेद्विप्रान् घृतपायसमोदकान्। गां वासांसि सुवर्णञ्च[4] तेभ्यो दद्याच्च दक्षिणां॥
घृतपायसयुक्तेन पात्रेणाच्छादिताननं। सहिरण्यञ्च तं कुम्भं ब्राह्मणायोपकल्पयेत्[5]॥१९॥
सप्तवर्षाणि दत्त्वार्घ्यं सर्व्वे सर्वमवाप्नुयुः। नारी पुत्रांश्च सौभाग्यं पतिं कन्या नृपोद्भवं॥२०॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये अगस्त्यार्घ्यदानव्रतं नाम षडधिक-
द्विशततमोऽध्यायः।

सप्ताधिकद्विशततमोऽध्यायः

कौमुदव्रतं।

अग्निरुवाच

कौमुदाख्यं मयोक्तञ्च चरेदाश्वयुजे सिते। हरिं यजेन्मासमेकमेकादश्यामुपोषितः॥१॥
आश्विने शुक्लपक्षेऽहमेकाहारो हरिं जपन्। मासमेकं भुक्तिमुक्त्यै करिष्ये कौमुदं व्रतं॥२॥
उपोष्य विष्णुं द्वादश्यां यजेद्देवं विलिप्य च। चन्दनागुरुकाश्मीरैः कमलोत्पलपुष्पकैः॥
कल्हारैर्व्वाथ मालत्या दीपं तैलेन वाग्यतः। अहोरात्रं च नैवेद्यं पायसापूपमोदकैः।४॥
ओं नमो वासुदेवाय विज्ञाप्याथ क्षमापयेत्। भोजनादि[6] द्विजे दद्याद्यावद् देवः प्रबुद्ध्यते॥
तावन्मासोपवासः स्यादधिकं फलमप्यतः।

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये कौमुदव्रतं नाम सप्ताधिक-
द्विशततमोऽध्यायः।

---

१. दत्तस्त्वर्घ्योऽक्षय इति ङ.।
२. मनसेप्सितमिति ग. घ. झ. च। मनसेहितमिति ङ.।
३. सप्तधान्ययुतमिति ज.।
४. प्रतिमाञ्च सुवर्णञ्चेति क.।
५. ब्राह्मणायोपपादयेदिति घ. ङ. ज. ञ. च।
६. भोजनानि इति ग. ज. च।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अष्टाधिकद्विशततमोऽध्यायः

व्रतदानादिसमुच्चयः ।

अग्निरुवाच

व्रतदानानि सामान्यं प्रवदामि समासतः । तिथौ प्रतिपदादौ च सूर्य्यादौ कृत्तिकासु च ॥१॥
विष्कुम्भादौ च मेषादौ काले च ग्रहणादिके ।
यत् काले यद् व्रतं दानं यद् द्रव्यं नियमादि यत् ॥ २ ॥
तद् द्रव्याख्यञ्च कालाख्यं सर्वं वै विष्णुदैवतं । रवीशब्रह्मलक्ष्म्याद्याः[1] सर्वे विष्णोर्विभूतयः ॥३॥
तमुद्दिश्य व्रतं दानं पूजादि स्यात्तु सर्वदं । जगत्पते समागच्छ आसनं पाद्यमर्घ्यकं ॥४॥
मधुपर्कं तथाचामं स्नानं वस्त्रञ्च गन्धकं । पुष्पं धूपञ्च दीपञ्च नैवेद्यादि नमोऽस्तु ते ॥५॥
इति पूजाव्रते दाने दानवाक्यं समं शृणु । अद्यामुकसगोत्राय विप्रायामुकशर्म्मणे ॥६॥
एतद् द्रव्यं विष्णुदैवं सर्वपापोपशान्तये । आयुरारोग्यवृद्ध्यर्थं सौभाग्यादिविवृद्धये[2] ॥७॥
गोत्रसन्ततिवृद्ध्यर्थं विजयाय धनाय च । धर्म्मार्थैश्वर्यकामाय तत्पापशमनाय च ॥८॥
संसारमुक्तये दानन्तुभ्यं सम्प्रददे ह्यहं । एतद्दानप्रतिष्ठार्थं तुभ्यमेतद् ददाम्यहं । ९॥
एतेन प्रीयतां नित्यं सर्व्वलोकपतिः प्रभुः । यज्ञदानव्रतपते विद्याकीर्त्त्यादि देहि मे ॥१०॥
धर्म्मकामार्थमोक्षांश्च देहि मे मनसेप्सितं । यः पठेच्छृणुयान्नित्यं व्रतदानसमुच्चयं ॥११॥
स प्राप्तकामो विमलो भुक्तिमुक्तिमवाप्नुयात् । तिथिवारर्क्षसङ्क्रान्तियोगमन्वादिकं व्रतं ॥१२॥
नैकधा वासुदेवादेर्नियमात् पूजनाद्भवेत् ।

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये व्रतदानसमुच्चयो नाम अष्टाधिक-
द्विशततमोऽध्यायः ।

नवाधिकद्विशततमोऽध्यायः

दानपरिभाषाकथनं ।

अग्निरुवाच

दानधर्म्मान् प्रवक्ष्यामि भुक्तिमुक्तिप्रदान् शृणु । दानमिष्टं तथा पूर्त्तं धर्म्मं कुर्व्वन् हि सर्वभाक् ॥१॥
वापीकूपतड़ागानि देवतायतनानि च । अन्नप्रदानमारामाः पूर्त्तं धर्मं च मुक्तिदं ॥२॥
अग्निहोत्रं तपः सत्यं वेदानाञ्चानुपालनं । आतिथ्यं वैश्वदेवञ्च प्राहुरिष्टञ्च नाकदं ॥३॥

---

१. रवीशब्रह्मलोकेशा इति ज. ।
२. सौभाग्याय सुवृद्धये इति क. छ. ट. च । सौभाग्याय सुबुद्धये इति घ. ज. ञ. च ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ग्रहोपरागे यद्दानं सूर्यसङ्क्रमणेषु च। द्वादश्यादौ च यद्दानं पूर्त्तं तदपि नाकदं ॥४॥
देशे काले च पात्रे च दानं कोटिगुणं भवेत्। अयने विषुवे पुण्ये व्यतीपाते दिनक्षये ॥५॥
युगादिषु च सङ्क्रान्तौ चतुर्दश्यष्टमीषु च। सितपञ्चदशीसर्वद्वादशीष्वष्टकासु च ॥६॥
यज्ञोत्सवविवाहेषु तथा मन्वन्तरादिषु। वैधृते दृष्टदुःस्वप्ने द्रव्यब्राह्मणलाभतः ॥७॥
श्रद्धा वा यद्दिने तत्र सदा वा दानमिष्यते। अयने द्वे विषुवे द्वे चतस्रः षड़शीतयः ॥८॥
चतस्रो विष्णुपद्यश्च सङ्क्रात्यो द्वादशोत्तमाः। कन्यायां मिथुने मीने धनुष्यपि रवेर्गतिः ॥९॥
षड़शीतिमुखाः प्रोक्ताः षड़शीतिगुणाः फलैः। अतीतानागते पुण्ये द्वे उदग्दक्षिणायने ॥१०॥
त्रिंशत् कर्कटके नाडयो मकरे विंशतिः स्मृताः। वर्त्तमाने तुलामेषे नाड्यस्तूभयतो दश ॥
षडशीत्यां व्यतीतायां षष्टिरुक्तास्तु नाडिकाः। पुण्याख्या विष्णुपद्याञ्च प्राक्पश्चादपि षोड़श ॥
श्रवणाश्विधनिष्ठासु नागदैवतमस्तके। यदा स्याद्रविवारेण व्यतीपातः स उच्यते ॥१३॥
नवम्यां शुक्लपक्षस्य कार्त्तिके निरगात् कृतं। त्रेता सिततृतीयायां वैशाखे द्वापरं युगं ॥१४॥
दर्शे वै माघमासस्य त्रयोदश्यां नभस्यके। कृष्णे कलिं विजानीयाज् ज्ञेया मन्वन्तरादयः ॥
अश्वयुक्च्छुक्लनवमी द्वादशी कार्त्तिके तथा। तृतीया चैत्र माघस्य तथा भाद्रपदस्य च ॥
फाल्गुनस्याप्यमावास्या पौषस्यैकादशी तथा। आषाढ़स्यापि दशमी माघमासस्य सप्तमी ॥
श्रावणे चाष्टमी कृष्णा तथाषाढे च पूर्णिमा। कार्त्तिके फाल्गुने तद्वज् ज्यैष्ठे पञ्चदशी तथा॥१८॥
ऊर्ध्वे चैवाग्रहायण्या अष्टकास्तिस्र ईरिताः। अष्टकाख्या चाष्टमी स्यादासु[1] दानानि चाक्षयं ॥
गयागङ्गाप्रयागादौ तीर्थे देवालयादिषु। अप्रार्थितानि दानानि विद्यार्थं कन्यका न हि ॥
दद्यात् पूर्वमुखो दानं गृह्णीयादुत्तरामुखः। आयुर्विवर्द्धते दातुर्ग्रहीतुः क्षीयते न तत् ॥२१॥
नाम गोत्रं समुच्चार्य्य सम्प्रदानस्य चात्मनः। सम्प्रदेयं प्रयच्छन्ति कन्यादाने पुनस्त्रयं ॥२२॥
स्नात्वाभ्यर्च्च्य व्याहृतिभिर्दद्यादानन्तु सोदकं। कनकाश्वतिला नागा दासीरथमहीगृहाः ॥
कन्या च कपिला धेनुर्महादानानि वै दश। श्रुतशौर्य्यतपःकन्यायाज्यशिष्यादुपागतं ॥२४॥
शुल्कं धनं हि सकलं शुल्कं शिल्पानुवृत्तितः। कुशीदकृषिवाणिज्यप्राप्तं यदुपकारतः ॥२५॥
पाशकद्यूतचौर्य्यादिप्रतिरूपकसाहसैः। व्याजेनोपार्जितं कृत्स्नं त्रिविधं त्रिविधं फलं ॥२६॥
अध्यग्न्यध्यावाहनिकं दत्तञ्च प्रीतिकर्म्मणि। भ्रातृमातृपितृप्राप्तं षड्विधं स्त्रीधनं स्मृतं[2] ॥
ब्रह्मक्षत्रविशां द्रव्यं शूद्रस्यैषामनुग्रहात। बहुभ्यो न प्रदेयानि गौर्गृहं शयनं स्त्रियः ॥२८॥
कुलानान्तु शतं हन्यादप्रयच्छन् प्रतिश्रुतं। देवानाञ्च गुरूणाञ्च मातापित्रोस्तथैव च॥२९॥
पुण्यं देयं प्रयत्नेन यत् पुण्यञ्चार्जितं कचित्। प्रतिलाभेच्छया दत्तं यद्धनं तदगार्थकं ॥३०॥
श्रद्धया साध्यते धर्म्मो दत्तं वार्य्यपि चाक्षयं। ज्ञानशीलगुणोपेतः परपीड़ावहिष्कृतः ॥३१॥
अज्ञानां पालनात् त्राणात्तत् पापं परमं स्मृतं। मातुः शतगुणं दानं सहस्रं पितुरुच्यते ॥३२॥
अनन्तं दुहितुर्दानं सोदर्ये दत्तमक्षयं। अमनुष्ये समं दानं पापे ज्ञेयं महाफलं ॥३३॥

---

१. स्यादत्रेति ग. घ. ज. ञ. च।

२. कुशीदेत्यादिः स्त्रीधनं स्मृतमित्यन्तः पाठः छ. पुस्तके नास्ति।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वर्णसङ्करे द्विगुणं शूद्रे दानं चतुर्गुणं। वैश्ये चाष्टगुणं क्षत्रे षोड़शत्वं द्विजब्रुवे ॥३४॥
वेदाध्याये शतगुणमनन्तं वेदबोधके[1]। पुरोहिते याजकादौ[2] दानमक्षयमुच्यते ॥३५॥
श्रीविहीनेषु यद्दत्तं तदनन्तं च यज्वनि। अतपस्व्यनधीयानः प्रतिग्रहरुचिर्द्विजः ॥३६॥
अम्भस्यश्मप्लवेनैव सह तेनैव मज्जति। स्नातः सम्यगुपस्पृश्य गृह्णीयात् प्रयतः शुचिः ॥
प्रतिग्रहीता सावित्रीं सर्वदैव प्रकीर्त्तयेत्[3]। ततस्तु कीर्त्तयेत्सार्द्धं द्रव्येण सह दैवतं ॥३८॥
प्रतिग्राही पठेदुच्चैः प्रतिगृह्य द्विजोत्तमात्। मन्दं पठेत् क्षत्रियात्तु उपांशु च तथा विशः ॥
मनसा च तथा शूद्रात् स्वस्तिवाचनकं तथा। अभयं सर्वदैवत्यं भूमिर्वै विष्णुदेवता ॥४०॥
कन्या दासस्तथा दासी प्राजापत्याः प्रकीर्त्तिताः। प्राजापत्यो गजः प्रोक्तस्तुरगो यमदैवतः॥
तथा चैकशफं सर्वं याम्यश्च महिषस्तथा। उष्ट्रश्च नैर्ऋतो धेनू रौद्री छागोऽनलस्तथा ॥४२॥
आप्यो मेषो हरिः क्रोड़ आरण्याः पशवोऽनिलाः। जलाशयं वारुणं स्याद्वारिधानीघटादयः॥
समुद्रजानि रत्नानि हेमलौहानि चानलः। प्राजापत्यानि शस्यानि पक्वान्नमपि सत्तम ॥
गान्धर्व्वं गन्धमित्याहुर्वस्त्रं वार्हस्पतं स्मृतं। वायव्याः पक्षिणः सर्व्वे विद्या ब्राह्मी तथाङ्गकं॥
सारस्वतं पुस्तकादि विश्वकर्म्मा तु शिल्पके। वनस्पतिर्द्रुमादीनां द्रव्यदेवा हरेस्तनुः ॥
छत्रं कृष्णाजिनं शय्या रथ आसनमेव च। उपानहौ तथा यानमुत्तानाङ्गिर ईरितं ॥४७॥
रणोपकरणं शस्त्रं ध्वजाद्यं सर्वदैवतं। गृहञ्च सर्वदैवत्यं सर्वेषां विष्णुदेवता ॥४८॥

शिवो वा न ततो द्रव्यं व्यतिरिक्तं यशोऽस्ति हि[4]।
द्रव्यस्य नाम गृह्णीयाद्ददानीति तथा वदेत् ॥ ४९ ॥

तोयं दद्यात्ततो हस्ते दाने विधिरयं स्मृतः। विष्णुर्दाता विष्णुर्द्रव्यं प्रतिगृह्णामि वै वदेत् ॥
स्वस्ति प्रतिग्रहं धर्म्मं भुक्तिमुक्ती फलद्वयं। गुरून् भृत्यान्न जिहीर्षु रर्च्चिष्यन् देवताः पितॄन्॥
सर्वतः प्रतिगृह्णीयान्न तु तृप्येत् स्वयन्ततः। शूद्रीयन्न तु यज्ञार्थं धनं शूद्रस्य तत्फलं ॥
गुड़तक्ररसाद्याश्च शूद्राद् ग्राह्या निवर्त्तिना। सर्वतः प्रतिगृह्णीयादवृत्त्याकर्षितो द्विजः ॥५२॥
नाध्यापनाद्याजनाद्वा गर्हिताद्वा प्रतिग्रहात्। दोषो भवति विप्राणां ज्वलनार्क्कसमा हि ते ॥
कृते तु दीयते गत्वा त्रेतास्वानीय दीयते। द्वापरे याचमानाय कलौ त्वनुगमान्विते ॥५५॥
मनसा पात्रमुद्दिश्य जलं भूमौ विनिक्षिपेत्। विद्यते सागरस्यान्तो नान्तो दानस्य विद्यते[5]॥
अद्य सोमार्कग्रहणसङ्क्रान्त्यादौ च कालके। गङ्गागयाप्रयागादौ तीर्थदेशे महागुणे ॥५७॥
तथा चामुकगोत्राय तथा चामुकशर्म्मणे। वेदवेदाङ्गयुक्ताय पात्राय सुमहात्मने ॥५८॥
यथानाम महाद्रव्यं विष्णुरुद्रादिदैवतं। पुत्रपौत्रगृहैश्वर्य्यपत्नीधर्म्मार्थसद्गुणा ॥५९॥
कीर्त्तिविद्यामहाकामसौभाग्यारोग्यवृद्धये। सर्व्वपापोपशान्त्यर्थं स्वर्गार्थं भुक्तिमुक्तये ॥६०॥

---

१. ब्रह्मबोधके इति घ. ङ. ज. ञ. ट. च। २. पुरोहिते याचकादाविति ख. छ. ट. च।
३. सर्व्वत्रैव प्रकीर्त्तयेदिति ख. ग. घ. ङ. ज. ञ. ट. च। ४. यातोत्र हीति ज.।
५. न तद्दानस्य विद्यते इति ख. ग. घ. ङ. छ. ज. ञ. ट. च।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

एतत्तुभ्यं सम्प्रददे प्रीयतां मे हरिः शिवः। दिव्यान्तरीक्षभौमादिसमुत्पातौघघातकृत्[१] ।।६१।।
धर्म्मार्थकाममोक्षाप्त्यै ब्रह्मलोकप्रदोऽस्तु मे । यथानामसगोत्राय विप्रायामुकशर्म्मणे ।।६२।।
एतद्दानप्रतिष्ठार्थं सुवर्णं दक्षिणां ददे । अनेन दानवाक्येन सर्व्वदानानि वै ददेत् ।।६३।।

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये दानपरिभाषा नाम नवाधिक-
द्विशततमोऽध्यायः ।

दशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

महादानानि ।

अग्निरुवाच

सर्व्वदानानि वक्ष्यामि महादानानि षोड़श । तुलापुरुष आद्यन्तु हिरण्यगर्भदानकं ।।१।।
ब्रह्माण्डं कल्पवृक्षश्च गोसहस्रञ्च पञ्चमं । हिरण्यकामधेनुश्च हिरण्याश्वश्च सप्तमं ।।२।।
हिरण्याश्वरथस्तद्वद्धेमहस्तिरथस्तथा । पञ्चलाङ्गलकन्तद्वद्धरादानं तथैव च ।।३।।
विश्वचक्रं कल्पलता सप्तसागरकं परं । रत्नधेनुर्महाभूतघटः शुभदिनेऽर्पयेत् ।।४।।
मण्डपे मण्डले दानं देवान् प्राच्यार्पयेद्द्विजे। मेरुदानानि पुण्यानि मेरवो दश तान् शृणु।।५।।
धान्यद्रोणसहस्रेण उत्तमोऽर्द्धार्द्धतः परौ । उत्तमः षोड़शद्रोणः कर्त्तव्यो लवणाचलः ।।६।।
दशभारैर्गुड़ाद्रिः स्यादुत्तमोऽर्द्धार्द्धतः परौ । उत्तमः पलसाहस्रैः स्वर्णमेरुस्तथा परौ ।।७।।
दशद्रोणैस्तिलाद्रिः स्यात् पञ्चभिश्च त्रिभिः क्रमात्। कार्पासपर्वतो विंशभारैश्च दशपञ्चभिः।।८।।
विंशत्या घृतकुम्भानामुत्तमः स्याद् घृताचलः[२] । दशभिः पलसाहस्रैरुत्तमो रजताचलः ।।९।।
अष्टभारैः शर्क्कराद्रिर्म्मध्यो मन्दोऽर्द्धतोऽर्द्धतः। दश धेनूः प्रवक्ष्यामि या दत्त्वा भुक्तिमुक्तिभाक्।।
प्रथमा गुड़धेनुः स्याद् घृतधेनुस्तथाऽपरा । तिलधेनुस्तृतीया च चतुर्थी जलधेनुका ।।११।।
क्षीरधेनुर्म्मधुधेनुः शर्करादधिधेनुके । रसधेनुः स्वरूपेण दशमी विधिरुच्यते ।।१२।।
कुम्भाः स्युर्द्रवधेनूनामितरासान्तु राशयः। कृष्णाजिनञ्चतुर्हस्तं प्राग्ग्रीवं विन्यसेद्भुवि ।१३।।
गोमयेनानुलिप्तायां दर्भानास्तीर्य्य सर्व्वतः। लघ्वैणकाजिनं तद्वद्वत्सस्य परिकल्पयेत् ।।१४।।
प्राङ्मुखीं कल्पयेद्धेनुमुदक् पादां सवत्सकां । उत्तमा गुडधेनुः स्यात् सदा भारचतुष्टयात् ।।
वत्सं भारेण कुर्व्वीत भाराभ्यां मध्यमा स्मृता । अर्द्धभारेण वत्सः स्यात् कनिष्ठा भारकेण तु ।।
चतुर्थांशेन वत्सः स्याद् गुड़वित्तानुसारतः । पञ्च कृष्णलका माषस्ते सुवर्णस्तु षोडश।।१७।।

---

१. समुत्पाताद्यपापहृत् इति ङ. । समुत्पातादिपापहृदिति घ. ।

२. अत्र रत्नाचलबोधकपाठः पतितः दशविधाचलविभागस्य प्रतिज्ञातत्वात् मत्स्यपुराणीयसप्तसप्तत्यध्याये रत्नशैलस्तथाष्टम इत्यनेन रत्नाचलस्य दशविधाचलान्तर्गतत्वेनोल्लेखनाच्च ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पलं सुवर्णाश्चत्वारस्तुला पलशतं स्मृतं। स्याद्भारो विंशतितुला द्रोणस्तु चतुराढकः ॥१८॥
धेनुवत्सौ गुडस्योभौ सितसूक्ष्माम्बरावृतौ। शुक्तिकर्णाविक्षुपादौ शुचिमुक्ताफलेक्षणौ॥१९॥
सितसूत्रशिरालौ च सितकम्बलकम्बलौ। ताम्रगड्डुकपृष्ठौ तौ सितचामररोमकौ ॥२०॥
विद्रुमभ्रूयुगावेतौ नवनीतस्तनान्वितौ। चौमपुच्छौ कांस्यदोहाविन्द्रनीलकतारकौ ॥२१॥
सुवर्णशृङ्गाभरणौ रजतक्षुरसंयुतौ । नानाफलमया दन्ता गन्धघ्राणप्रकल्पितौ ॥२२॥
रचयित्वा यजेद्धेनुमिमैर्म्मन्त्रैर्द्विजोत्तम। या लक्ष्मीः सर्वभूतानां या च देवेष्ववस्थिता ॥
धेनुरूपेण सा देवी मम शान्तिं प्रयच्छतु। देहस्था या च रुद्राणी शङ्करस्य सदा प्रिया ॥
धेनुरूपेण सा देवी मम पापं व्यपोहतु। विष्णुवक्षसि या लक्ष्मीः स्वाहा या च विभावसोः॥
चन्द्रार्क्कऋक्षशक्तिर्या धेनुरूपास्तु सा श्रिये। चतुर्मुखस्य या लक्ष्मीर्या लक्ष्मीर्द्धनदस्य च॥
लक्ष्मीर्या लोकपालानां सा धेनुर्वरदास्तु मे। स्वधा त्वं पितृमुख्यानां स्वाहा यज्ञभुजां यतः॥
सर्वपापहरा धेनुस्तस्माच्छान्तिं प्रयच्छ मे। एवं मामन्त्रितां धेनुं ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥
समानं सर्वधेनूनां विधानं चैतदेव हि। सर्वयज्ञफलं प्राप्य निर्म्मलो भुक्तिमुक्तिभाक् ॥२९॥
स्वर्णशृङ्गी शफै रौप्यैः सुशीला वस्त्रसंयुता। कांस्योपदोहा दातव्या क्षीरिणी गौः सदक्षिणा॥
दातास्याः स्वर्गमाप्नोति वत्सरान् रोमसम्मितान्। कपिला चेत्तारयति भूयश्चासप्तमं कुलं॥

स्वर्णशृङ्गीं रौप्यखुरां कांस्यदोहनकान्वितां।
शक्तितो दक्षिणायुक्तां दत्त्वा स्याद्भुक्तिमुक्तिभाक्॥ ३२ ॥

सवत्सरोमतुल्यानि युगान्युभयतोमुखीं। दत्त्वा स्वर्गमवाप्नोति पूर्व्वेण विधिना ददेत् ॥३३॥
आसन्नमृत्युना देया सवत्सा गौस्तु पूर्व्ववत्। यमद्वारे महाघोरे तप्ता वैतरणी[1] नदी ॥३४॥
तान्तर्त्तुञ्च ददाम्येनां[2] कृष्णां वैतरणीञ्च गां।

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये महादानानि नाम दशाधिक-
द्विशततमोऽध्यायः।

एकादशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

नानादानानि।

अग्निरुवाच

एकाङ्गां दशगुर्द्द्याद्दश दद्याच्च गोशती। शतं सहस्रगुर्द्द्यात सर्वे तुल्यफला हि ते ॥१॥
प्रासादा यत्र सौवर्णा वसोर्द्धारा च यत्र सा। गन्धर्व्वाप्सरसो यत्र तत्र यान्ति सहस्रदाः॥
गवां शतप्रदानेन मुच्यते नरकार्णवात्। दत्त्वा वत्सतरीं चैव स्वर्गलोके महीयते ॥३॥

१. कृष्णा वैतरणी इति ज. झ. ट. च।
२. तान्तर्त्तु वै ददाम्येनामिति छ.।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

गोदानादायुरारोग्यसौभाग्यस्वर्गमाप्नुयात् । इन्द्रादिलोकपालानां या राजमहिषी शुभा ॥४॥
महिषीदानमाहात्म्यादस्तु मे सर्वकामदा[१] । धर्म्मराजस्य साहाय्ये[२] यस्याः पुत्रः प्रतिष्ठितः ॥
महिषासुरस्य जननी या सास्तु वरदा मम । महिषीदानाच्च सौभाग्यं वृषदानादिवं व्रजेत् ॥
संयुक्तहलपङ्क्त्याख्यं दानं सर्वफलप्रदं । पङ्क्तिर्दशहला प्रोक्ता दारुजा वृषसंयुता ॥७॥
सौवर्णपट्टसन्नद्धान्दत्त्वा स्वर्गे महीयते । दशानां कपिलानां तु दत्तानां ज्येष्ठपुष्करे ॥८॥
तत् फलञ्चाक्षयं प्रोक्तं[३] वृषभस्य तु मोक्षणे[४]। धर्म्मोऽसिस्त्वञ्चतुष्पादश्चतस्रस्ते प्रिया इमाः ॥
नमो ब्रह्मण्यदेवेश पितृभूतर्षिपोषक । त्वयि मुक्तेऽक्षया लोका मम सन्तु निरामयाः ॥१०॥

मा मे ऋणोऽस्तु दैवत्यो[५] भौतः पैत्रोऽथ मानुषः ।
धर्म्मस्त्वं त्वत्प्रपन्नस्य या गतिः साऽस्तु मे ध्रुवा ॥ ११ ॥

अङ्कयेच्चक्रशूलाभ्यां मन्त्रेणानेन चोत्सृजेत् । एकादशाहे प्रेतस्य यस्य चोत्सृज्यते वृषः ॥१२॥
मुच्यते प्रेतलोकात्तु षण्मासे चाब्दिकादिषु । दशहस्तेन कुण्डेन त्रिंशत्कुण्डान्निवर्त्तनं ॥१३॥
तान्येव दशविस्ताराद्गोचर्मे तत्प्रदोऽघभित्[६]। गोभूहिरण्यसंयुक्तं कृष्णाजिनन्तु योऽर्पयेत्[७]॥
सर्वदुष्कृतकर्म्मापि सायुज्यं ब्रह्मणो व्रजेत् । भाजनन्तिलसम्पूर्णं मधुना पूर्णमेव च ॥१५॥
दद्यात् कृष्णतिलानाञ्च प्रस्थमेकञ्च मागधं। शय्यां दत्त्वा तु सगुणां[८] भुक्तिमुक्तिमवाप्नुयात् ॥

हैमीं प्रतिकृतिं कृत्वा दत्त्वा स्वर्गस्तथात्मनः ।
त्रिपुलन्तु गृहं कृत्वा दत्त्वा स्याद्भुक्तिमुक्तिभाक् ॥ १७ ॥

गृहं मठं सभां स्वर्गीदत्वा स्याच्च प्रतिश्रयं । दत्त्वा कृत्वा गोगृहञ्च निष्पापः स्वर्गमाप्नुयात् ॥
यममाहिषदानात्तु निष्पापः स्वर्गमाप्नुयात् । ब्रह्मा हरी हरिर्देवैर्म्मध्ये च यमदूतकः ॥१९॥

पाशी[९] तस्य शिरश्छित्त्वा तं दद्यात् स्वर्गभाग्भवेत् ।
त्रिमुखाख्यमिदं दानं गृहीत्वा तु द्विजोऽघभाक् ॥ २० ॥

चक्रं रूप्यमयं कृत्वा के धृत्वा तत् प्रदापयेत् । हेमयुक्तं द्विजायैतत कालचक्रमिदम्महत् ॥२१॥
आत्मतुल्यन्तु यो लौहं ददेन्न नरकं व्रजेत् । पञ्चाशत्पलसंयुक्तं लौहदण्डं तु योऽर्पयेत् ॥
वस्त्रेणाच्छाद्य विप्राय यमदण्डो न विद्यते । मूलं फलादि वा द्रव्यं संहतं वाथ चैकशः ॥२३॥
मृत्युञ्जयं समुद्दिश्य दद्यादायुर्विवर्द्धये । पुमान् कृष्णतिलैः कार्य्यो रौप्यदन्तः सुवर्णदृक् ॥
खड्गोद्यतकरो दीर्घो जवाकुसुममण्डलः । रक्ताम्बरधरः स्रग्वी शङ्खमालाविभूषितः ॥२५॥
उपानद्युगयुक्तङ्घ्रिः कृष्णकम्बलपार्श्वकः । गृहीतमांसपिण्डश्च वामे वै कालपूरुषः ॥२६॥

---

१. गवां शतप्रदानेनेत्यादिः, सर्वकामदा इत्यन्तः पाठः झ. पुस्तके नास्ति ।
२. धर्मराजस्य माहात्म्ये इति ञ. ।
३. तत्फलं चाक्षयं स्याद्वै इति ट. ।
४. वृषभस्य विमोक्षणे इति ख. । वृषभस्य च मोक्षणादिति ञ. ।
५. दैवोऽयेति ख. छ. च ।
६. तत्प्रदोऽधनुदिति ग. । तत्पदोऽघजिदिति घ. ङ. च ।
७. यस्तु कृष्णाजिनं ददेदिति ट. ।
८. दत्त्वोत्तमगुणामिति घ. ।
९. पापो इति ख. छ. ञ. च ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सम्पूज्य तञ्च गन्धाद्यैः[१] ब्राह्मणायोपपादयेत् । मरणव्याधिहीनः स्याद्राजराजेश्वरो भवेत् ॥

गोवृषौ तु द्विजे दत्त्वा भुक्तिमुक्तिमवाप्नुयात् ।
रेवन्ताधिष्ठितञ्चाश्वं हैमं दत्त्वा न मृत्युभाक् ॥ २८ ॥
घण्टादिपूर्णमप्येकं दत्त्वा स्याद्भुक्तिमुक्तिभाक् ।
सर्वान् कामानवाप्नोति यः प्रयच्छति काञ्चनम् ॥ २९ ॥

सुवर्णे दीयमाने तु रजतं दक्षिणेष्यते । अन्येषामपि दानानां सुवर्णं[२] दक्षिणा स्मृता ॥३०॥
सुवर्णं रजतं ताम्रं तण्डुलं धान्यमेव च । नित्यश्राद्धं देवपूजा सर्वमेतददक्षिणं ॥३१॥
रजतं दक्षिणा पित्रे धर्मकामार्थसाधनं । सुवर्णं रजतं ताम्रं मणिमुक्तावसूनि च ॥३२॥
सर्वमेतन्महाप्राज्ञो ददाति वसुधान्ददत् । पितॄंश्च पितृलोकस्थान् देवस्थाने च देवताः ॥
सन्तर्पयति शान्तात्मा यो ददाति वसुन्धराम् । खर्वटं खेटकं वापि ग्रामं वा शस्यशालिनं ॥
निवर्त्तनशतं वापि तदर्द्धं वा गृहादिकं । अपि गोचर्ममात्रान्वा दत्त्वोर्वीं सर्वभाग् भवेत् ॥
तैलविन्दुर्यथा चाप्सु प्रसर्पेद् भूगतं तथा । सर्वेषामेवदानानामेकजन्मानुगं फलं ॥३६॥
हाटकक्षितिगौरीणां सप्तजन्मानुगं फलं । त्रिसप्तकुलमुद्धृत्य कन्यादो ब्रह्मलोकभाक् ॥३७॥
गजं सदक्षिणं दत्त्वा निर्मलः स्वर्गभाग् भवेत् ।अश्वं दत्त्वायुरारोग्यसौभाग्यस्वर्गमाप्नुयात्॥

दासीं दत्त्वा द्विजेन्द्राय अप्सरोलोकमाप्नुयात ।
दत्त्वा ताम्रमयीं स्थालीं पलानां पञ्चभिः शतैः ॥ ३९ ॥

अर्द्धैस्तदर्द्धैरर्द्धैर्वा भुक्तिमुक्तिमवाप्नुयात्[३] । शकटं वृषसंयुक्तं दत्त्वा यानेन नाकभाक् ॥४०॥
वस्त्रदानाल्लभेदायुरारोग्यं स्वर्गमक्षयं । धान्यगोधूमकलमयवादीन् स्वर्गभाग् ददत ॥४१॥
आसनं तैजसं पात्रं लवणं गन्धचन्दननं । धूपं दीपञ्च ताम्बूलं लोहं रूप्यञ्च रत्नकं[४] ॥४२॥

दिव्यानि नानाद्रव्याणि दत्त्वास्याद् भुक्तिमुक्तिभाक् ।
तिलांश्च तिलपात्रञ्च दत्त्वा स्वर्गमवाप्नुयात् ॥ ४३ ॥

अन्नदानात् परं नास्ति न भूतं न भविष्यति । हस्त्यश्वरथदानि दासीदासगृहाणि च ॥४४॥
अन्नदानस्य सर्वाणि कलां नार्हन्ति षोडशीं । कृत्वापि सुमहत्पापं यः पश्चादन्नदो भवेत् ॥४५॥
सर्वपापविनिर्मुक्तो लोकानाप्नोति चाक्षयान् । पानीयञ्च प्रपान्दत्त्वा भुक्तिमुक्तिमवाप्नुयात् ॥
अग्निं काष्ठञ्च मार्गादौ दत्त्वा दीप्त्यादिमाप्नुयात्[५] । देवगन्धर्वनारीभिर्विमाने सेव्यते दिवि ॥
घृतं तैलञ्च लवणं दत्त्वा सर्वमवाप्नुयात् । छत्रोपानहकाष्ठादि दत्त्वा स्वर्गे सुखी वसेत्[६]॥४८॥
प्रतिपत्तिथिमुख्येषु विष्कुम्भादिकयोगके । चैत्रादौ वत्सरादौ च अश्विन्यादौ हरिं हरं ॥४९॥

---

१. सम्पूज्य वस्त्रगन्धाद्यैरिति ङ. । २. हिरण्यमिति ट. ।
३. ततोर्द्धतस्तदर्द्धैर्युक्तां भुक्तिमवाप्नुयात् इति छ. ।
४. धूपदीपञ्च नैवेद्यं ताम्बूलं लोहरत्नकमिति ख. । ५. दीप्ताग्निमाप्नुयादिति ङ. ।
६. स्वर्गे महीयते इयि ग. । स्वर्गेसुखी भवेदेति घ. ङ. च ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ब्रह्माणं लोकपालादीन् प्रार्च्य दानं महाफलं। वृक्षारामान् भोजनादीन् मार्गसंवाहनादिकान् ॥
पादाभ्यङ्गादिकं दत्त्वा भुक्तिमुक्तिमवाप्नुयात् । त्रीणि तुल्यफलानीह गावः पृथ्वी सरस्वती ॥
ब्राह्मीं सरस्वतीन्दत्त्वा निर्मलो ब्रह्मलोकभाक् । सप्तद्वीपमहीदः स ब्रह्मज्ञानं ददाति यः॥५२॥
अभयं सर्वभूतेभ्यो यो दद्यात् सर्वभाङ् नरः । पुराणं भारतं वापि रामायणमथापि वा ॥५३॥
लिखित्वा पुस्तकं दत्त्वा भुक्तिमुक्तिमवाप्नुयात् । वेदशास्त्रं नृत्यगीतं योऽध्यापयति नाकभाक् ॥
वित्तं दद्यादुपाध्याये छात्राणां भोजनादिकं । किमदत्तं भवेत्तेन धर्मकामादिदर्शिना ॥५५॥
वाजपेयसहस्रस्य सम्यग्दत्तस्य यत् फलं । तत्फलं सर्वमाप्नोति विद्यादानान्न संशयः ॥५६॥
शिवालये विष्णुगृहे सूर्य्यस्य भवने तथा। सर्वदानप्रदः स स्यात् पुस्तकं वाचयेत्तु यः ॥५७॥
त्रैलोक्ये चतुरो वर्णाश्चत्वारश्चाश्रमाः पृथक् । ब्रह्माद्या देवताः सर्वा विद्यादाने प्रतिष्ठिताः॥५८॥
विद्या कामदुघा धेनुर्विद्या धेनुर्विद्या चक्षुरनुत्तमं । उपवेदप्रदानेन गन्धर्वैः सह मोदते ॥
वेदाङ्गानाञ्च दानेन स्वर्गलोकमवाप्नुयात । धर्मशास्त्रप्रदानेन धर्मेण सह मोदते ॥६०॥
सिद्धान्तानां प्रदानेन मोक्षमाप्नोत्यसंशयं । विद्यादानमवाप्नोति प्रदानात् पुस्तकस्य तु ॥

शास्त्राणि च पुराणानि दत्त्वा सर्वमवाप्नुयात् ।
शिष्यांश्च शिक्षयेद्यस्तु पुण्डरीकफलं लभेत् ॥ ६२ ॥

येन जीवति तद्दत्त्वा फलस्यान्तो न विद्यते । लोके श्रेष्ठतमं सर्वमात्मनश्चापि यत् प्रियं ॥६३॥
सर्वं पितॄणां दातव्यं तेषामेवाक्षयार्थिना । विष्णुं रुद्रं पद्मयोनिं देवीविघ्नेश्वरादिकान् ॥६४॥
पूजयित्वा प्रदद्याद्यः पूजाद्रव्यं स सर्वभाक् । देवालयं च प्रतिमां कारयन् सर्वमाप्नुयात् ॥
सम्मार्जनं चोपलेपं कुर्वन् स्यान्निर्मलः पुमान् । नानामण्डलकार्य्यग्रे मण्डलाधिपतिर्भवेत्[१] ॥
गन्धं पुष्पं धूपदीपं नैवेद्यञ्च प्रदक्षिणं । घण्टाध्वजवितानञ्च प्रेक्षणं वाद्यगीतकं ॥६७॥
वस्त्रादि दत्त्वा देवाय भुक्तिमुक्तिमवाप्नुयात । कस्तूरिकां शिह्लकञ्च श्रीखण्डमगुरुन्तथा ॥
कर्पूरञ्च तथामुस्तं गुग्गुलुं विजयं ददेत् । घृतप्रस्थेन संस्थाप्य सङ्क्रान्त्यादौ स सर्वभाक् ॥
स्नानं पलशतं ज्ञेयमभ्यङ्गं पञ्चविंशतिः । पलानान्तु सहस्रेण महास्नानं प्रकीर्त्तितं ॥७०॥
दशापराधास्तोयेन क्षीरेण स्नापनाच्छतं । सहस्रं पयसा दध्ना घृतेनायुतमिष्यते ॥७१॥
दासीदासमलङ्कारं गोभूम्यश्वगजादिकं । देवाय दत्त्वा सौभाग्यं धनायुष्मान् व्रजेद्दिवं ॥

इत्याग्नेये महापुराणे आग्नेये नानादानानि नामैकादशाधिक-
द्विशततमोऽध्यायः ।

---

१. सम्मार्जनमित्यादिः मण्डलाधिपतिर्भवेदित्यन्तः पाठः ज. पुस्तके नास्ति ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

द्वादशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

मेरुदानानि ।

अग्निरुवाच

काम्यदानानि वक्ष्यामि सर्वकाम प्रदानि ते । नित्यपूजां मासि मासि कृत्वाथो काम्यपूजनं ॥
व्रतार्हणं गुरोः पूजा वत्सरान्ते महार्चनं । अश्वं वै मार्गशीर्षे तु कमलं पिष्टसम्भवं ॥२॥
शिवाय पूज्य यो दद्यात् सूर्यलोके चिरं वसेत्[1] । गजं पौषे पिष्टमयं त्रिसप्तकुलमुद्धरेत् ॥३॥
माघे चाश्वरथं पैष्टं दत्त्वा न नरकं व्रजेत् । फाल्गुने तु वृषं पैष्टं स्वर्गभुक् स्यान्महीपतिः ॥
चैत्रे चेक्षुमयीं गावन्दासदासीसमन्वितां । दत्त्वा स्वर्गे चिरं स्थित्वा तदन्ते स्यान्महीपतिः ॥
सप्तव्रीहींश्च वैशाखे दत्त्वा शिवमयो भवेत् । वलिमण्डलकश्चान्नैः कृत्वाषाढे शिवो भवेत् ॥
विमानं श्रावणे पौष्पं दत्त्वा स्वर्गी ततो नृपः । शतद्वयं फलानान्तु दत्त्वोद्धृत्य कुलं नृपः ॥
गुग्गुलादि दहेद्भाद्रे स्वर्गी स स्यात्ततो नृपः । क्षीरसर्पिर्भृतं पात्रमाश्विने स्वर्गदम्भवेत् ॥
कार्त्तिके गुड़खण्डाज्यं दत्त्वा स्वर्गी ततो नृपः । मेरुदानं द्वादशकं वक्ष्येऽहं भुक्तिमुक्तिदं ॥
मेरुव्रते तु कार्त्तिक्यां रत्नमेरुन्ददेद्द्विजे । सर्व्वेषाञ्चैव मेरूणां प्रमाणं क्रमशः श्रृणु ॥
वज्रपद्ममहानीलनीलस्फटिकसञ्ज्ञितः । पुष्पं मरकतं मुक्त्वा प्रस्थमात्रेण चोत्तमः ॥११॥

मध्योऽर्द्धः स्यात्तदर्द्धोऽधो वित्तशाठ्यं विवर्जयेत् ।
कर्णिकायां न्यसेन्मेरुं ब्रह्मविष्ण्वीशदैवतं ॥ १२ ॥

माल्यवान् पूर्वतः पूज्यस्तत्पूर्वे भद्रसञ्ज्ञितः । अक्षरक्षस्ततः प्रोक्तो निषधो मेरुदक्षिणे ॥
हेमकूटोऽथ हिमवान् त्रयं सौम्ये तथा त्रयं । नीलः श्वेतश्च श्रृङ्गी च पश्चिमे गन्धमादनः ॥
वैकङ्कः केतुमालः स्यान्मेरुर्द्वादशसंयुतः । सोपवासोऽर्च्चयेद्विष्णुं शिवं वा स्नानपूर्वकं॥१५॥
देवाग्रे चार्च्य मेरुञ्च मन्त्रैर्व्विप्राय वै ददेत । विप्रायामुकगोत्राय मेरुन्द्रव्यमयम्परं ॥१६॥
भुक्त्यै मुक्त्यै निर्म्मलत्वे विष्णुदैवं ददामि ते । इन्द्रलोके ब्रह्मलोके शिवलोके हरेः पुरे ॥
कुलमुद्धृत्य क्रीडेत विमाने देवपूजितः । अन्येष्वपि च कालेषु सङ्क्रान्त्यादौ प्रदापयेत् ॥
पलानान्तु सहस्रेण हेममेरुम्प्रकल्पयेत् । श्रृङ्गत्रयसमायुक्तं ब्रह्मविष्णुहरान्वितं ॥१९॥
एकैकं पर्व्वतन्तस्य शतैकैकेन कारयेत् । मेरुणा सह शैलास्तु ख्यातास्तत्र त्रयोदश ॥२०॥
अयने ग्रहणादौ च विष्णवग्रे हरिमर्च्य च । स्वर्णमेरुं द्विजायार्प्य विष्णुलोके चिरं वसेत् ॥
परमाणवो यावन्त इह राजा भवेच्चिरं । रौप्यमेरुं द्वादशाद्रियुतं सङ्कल्पतो ददेत्[2] ॥२२॥
प्रागुक्तं च फलं तस्य विष्णुं विप्रम्प्रपूज्य च । भूमिमेरुञ्च विषयं मण्डलं ग्राममेव च[3] ॥२३॥
परिकल्प्याष्टमांशेन शेषांशाः[4] पूर्ववत् फलं । द्वादशाद्रिसमायुक्तं हस्तिमेरुस्वरूपिणं ॥२४॥

---

१. स्वर्गलोके चिरं वसेदिति ग. घ. ङ. ट. च । शिवलोके चिरं वसेदिति झ. ।
२. सङ्कल्प्य तद्ददेदिति घ. ङ. ट. च । ३. मण्डलं ग्राममेव वेति ग. झ. ।
४. शेषाङ्गा इति ख. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ददेत्त्रिपुरुषैर्युक्तं दत्त्वानन्तं फलं लभेत् । त्रिपञ्चाश्वैरमेरुं हयद्वादशसंयुतं ॥२५॥
विष्ण्वादीन् पूज्य तं दत्त्वा भुक्तभोगो नृपो भवेत् । अश्वसङ्ख्याप्रमाणेन गोमेरुं पूर्ववद्ददेत ॥
पट्टवस्त्रैर्भारमात्रैर्वस्त्रमेरुश्च मध्यतः । शैलैर्द्वादशवस्त्रैश्च दत्त्वा तच्चाक्षयं फलं ॥२७॥
घृतपञ्चसहस्रैश्च पलानामाज्यपर्वतः । शतैः पञ्चभिरेकैकः पर्वतेऽस्मिन् हरिं यजेत् ॥२८॥
विष्ण्वग्रे ब्राह्मणायार्प्य सर्वं प्राप्य हरिं व्रजेत् । एवं च खण्डमेरुञ्च कृत्वा दत्त्वाप्नुयात फलं ॥
धान्यमेरुः पञ्चखारोऽपर एकैकखारकाः । स्वर्णत्रिशृङ्गकाः सर्वे ब्रह्मविष्णुमहेश्वरान् ॥३०॥
सर्वेषु पूज्य विष्णुं वा विशेषादक्षयं फलं । एवं दशांशमानेन तिलमेरुं प्रकल्पयेत् । ३१॥
शृङ्गाणि पूर्ववत्तस्य तथैवान्यनगेषु च । तिलमेरुं प्रदायाथ बन्धुभिर्विष्णुलोकभाक्[१] ॥३२॥
नमो विष्णुस्वरूपाय धराधराय वै नमः । ब्रह्मविष्णवीशशृङ्गाय धरानाभिस्थिताय च ॥३३॥
नगद्वादशनाथाय सर्वपापापहारिणे । विष्णुभक्ताय शान्ताय त्राणं मे कुरु सर्वथा ॥३४॥
निष्पापः पितृभिः सार्द्धं विष्णुं गच्छामि ओं नमः । त्वं हरिस्तु हरेरग्रे अहं विष्णुश्च विष्णवे ॥
निवेदयामि भक्त्या तु भुक्तिमुक्त्यर्थहेतवे ।

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये मेरुदानानि नाम द्वादशाधिक-
द्विशततमोऽध्यायः ।

त्रयोदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

पृथ्वीदानानि ।

अग्निरुवाच

पृथ्वीदानं प्रवक्ष्यामि पृथिवी त्रिविधा मता । शतकोटिर्योजनानां सप्तद्वीपा ससागरा ॥१॥
जम्बुद्वीपावधिः सा च उत्तमा मेदिनीरिता । उत्तमां पञ्चभिर्भारैः काञ्चनैश्च प्रकल्पयेत् ॥२॥
तदर्द्धान्तरजं कूर्म्मं तथा पद्मं समादिशेत् । उत्तमा कथिता पृथ्वी द्व्यंशेनैव तु मध्यमा ॥३॥
कन्यसा च त्रिभागेन[२] त्रिहान्या कूर्म्मपङ्कजे । पलानान्तु सहस्रेण कल्पयेत् कल्पपादपं ॥४॥
मूलदण्डं सपत्रञ्च फलपुष्पसमन्वितं । पञ्चस्कन्धन्तु सङ्कल्प्य पञ्चानान्दापयेत् सुधीः ॥५॥
एतद्दाता ब्रह्मलोके पितृभिर्मोदते चिरं । विष्ण्वग्रे कामधेनुन्तु पलानां पञ्चभिः शतैः ॥६॥
ब्रह्मविष्णुमहेशाद्या देवा धेनौ व्यवस्थिताः । धेनुदानं सर्वदानं सर्वदं ब्रह्मलोकदं ॥७॥
विष्ण्वग्रे कपिलां दत्त्वा तारयेत् सकलं कुलं । अलङ्कृत्य स्त्रियं दद्यादश्वमेधफलं लभेत्[३] ॥

---

१. बन्धुभिर्ब्रह्मलोकभागिति झ. ।
२. खल्पा सा तु त्रिभागेनेति ङ. ट. च ।
३. नरमेधफलं लभेदिति ग. ङ. ञ. च ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भूमिं दत्त्वा सर्वभाक् स्यात् सर्वशस्यप्ररोहिणीम् ।
ग्रामं वाथ पुरं वापि[1] खेटकञ्च ददत् सुखी ॥ ९ ॥
कार्त्तिक्यादौ[2] वृषोत्सर्गं कुर्वंस्तारयते कुलं[3] ।

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये पृथ्वीदानादि नाम त्रयोदशाधिक-
द्विशततमोऽध्यायः ।

चतुर्दशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

मन्त्रमाहात्म्यकथनम् ।

अग्निरुवाच

नाडीचक्रं प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञानाज् ज्ञायते हरिः । नाभेरधस्ताद्यत् कन्दमङ्कुरास्तत्र निर्गताः ॥
द्वासप्ततिसहस्राणि नाभिमध्ये व्यवस्थिताः । तिर्य्यगूर्द्ध्वमधश्चैव व्याप्तन्ताभिः समन्ततः ॥
चक्रवत्संस्थिता ह्येताः प्रधाना दशनाडयः । इडा च पिङ्गला चैव सुषुम्णा च तथैव च ॥
गान्धारी हस्तिजिह्वा च पृथा चैव यशा तथा । अलम्बुषा हुहुश्चैव शङ्खिनी दशमी स्मृता ॥
दश प्राणवहा ह्येता नाडयः परिकीर्त्तिताः । प्राणोऽपानः समानश्च उदानो व्यान एव च ॥५॥
नागः कूर्म्मोऽथ कृकरो देवदत्तो धनञ्जयः । प्राणस्तु प्रथमो वायुर्दशानामपि स प्रभुः ॥६॥
प्राणः प्राणयते प्राणं विसर्गात् पूरणं प्रति । नित्यमापूरयत्येष प्राणिनामुरसि स्थितः ॥७॥
निःश्वासोच्छ्वासकासैस्तु प्राणो जीवसमाश्रितः ।
प्रयाणं कुरुते यस्मात्तस्मात् प्राणः प्रकीर्त्तितः ॥ ८ ॥
अधो नयत्यपानस्तु आहारञ्च नृणामधः । मूत्रशुक्रवहो वायुरपानस्तेन कीर्त्तितः ॥९॥
पीतभक्षितमाघ्रातं रक्तपित्तकफानिलं । समन्नयति गात्रेषु समानो नाम मारुतः ॥१०॥
स्पन्दयत्यधरं वक्त्रं नेत्ररागप्रकोपनं । उद्वेजयति मर्म्माणि उदानो नाम मारुतः ॥११॥
व्यानो विनामयत्यङ्गं व्यानी व्याधिप्रकोपनः । प्रतिदानं तथा कण्ठाद्व्यापनाद्व्यान उच्यते ॥
उद्गारे नाग इत्युक्तः कूर्मश्चोन्मीलने स्थितः । कृकरो भक्षणे चैव देवदत्तो विजृम्भिते ॥
धनञ्जयः स्थितो घोषे मृतस्यापि न मुञ्चति । जीवः प्रयाति दशधा नाडीचक्रं हि तेन तत् ॥१४॥
सङ्क्रान्तिर्विषुवञ्चैव अहोरात्रायनानि च । अधिमास ऋणञ्चैव ऊनरात्र धनन्तथा[4] ॥१५॥
ऊनरात्रं भवेद्धिक्का अधिमासो विजृम्भिका । ऋणञ्चात्र भवेत् कासो निश्वासो धनमुच्यते[5] ॥
उत्तरं दक्षिणं ज्ञेयं वामं दक्षिणसञ्ज्ञितं । मध्ये तु विषुवं प्रोक्तं पुटद्वयविनिःसृतं ॥१७॥

---

१. पुरीं वापीति ख. । २. कार्त्तिकादाविति ख. ट. च ।
३. कुर्व्वन् सन्तारयेत् कुलमिति ग. घ. ङ. ट. च ।
४. बलन्तयेति ञ. । ५. बलमुच्यत इति ञ. झ. च ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सङ्क्रान्ति पुनरस्यैव स्वस्थानात स्थानयोगतः । सुसुम्णा मध्यमे ह्यङ्गे इड़ा वामे प्रतिष्ठिता ॥
पिङ्गला दक्षिणे विप्र ऊद्र्ध्वं प्राणो ह्यहः स्मृतं । अपानो रात्रिरेवं स्यादेको वायुर्दशात्मकः ॥
आयामो देहमध्यस्थः सोमग्रहणमिष्यते । देहातितत्वमायामं आदित्यग्रहणं विदुः ॥२०॥
उदरं पूरयेत्तावद्वायुना यावदीप्सितं । प्राणायामो भवेदेप पूरको देहपूरकः ॥२१॥
पिधाय सर्व्वद्वाराणि निश्वासोच्छासवर्जितः । सम्पूर्णकुम्भवत्तिष्ठेन प्राणायामः स कुम्भकः ॥
मुञ्चेद्वायुं ततस्तूद्र्ध्वं श्वासेनैकेन मन्त्रवित् । उच्छासयोगयुक्तश्च वायुमूद्र्ध्वं विरेचयेत् ॥
उच्चरति स्वयं यस्मात् स्वदेहावस्थितः शिवः । तस्मात् तत्त्वविदाञ्चैव स एव जप उच्यते ॥
अयुते द्वे सहस्रैकं षट्शतानि तथैव च । अहोरात्रेण योगीन्द्रो जपसङ्ख्यां करोति सः ॥२५॥
अजपा नाम गायत्री ब्रह्मविष्णुमहेश्वरी । अजपां जपते यस्तां पुनर्जन्म न विद्यते ॥२६॥
चन्द्राग्निरविसंयुक्ता आद्या कुण्डलिनी मता । हृत्प्रदेशे तु सा ज्ञेया अङ्कुराकारसंस्थिता ॥२७॥
सृष्टिन्यासो भवेत्तत्र स वै सर्गावलम्बनात । स्रवन्तं चिन्तयेत्तस्मिन्नमृतं सात्त्विकोत्तमः ॥२८॥
देहस्थः सकलो ज्ञेयो निष्फलो देहवर्जितः[1] । हंसहंसेति यो ब्रूयाद्धंसो देवः सदाशिवः ॥२९॥
तिलेषु च यथा तैलं पुष्पे गन्धः समाश्रितः । पुरुषस्य तथा देहे स वाह्याभ्यन्तरं स्थितः ॥
ब्रह्मणो हृदये स्थानं कण्ठे विष्णुः समाश्रितः । तालुमध्ये[2] स्थितो रुद्रो ललाटे तु महेश्वरः ॥
प्राणाग्रन्तु शिवं विद्यात्तस्यान्ते तु परापरं । पञ्चधा सकलः प्रोक्तो विपरीतस्तु निष्फलः । ३२॥
प्रासादं नादमुत्थाप्य शततन्तु जपेद्यदि । षण्मासात्सिद्धिमाप्नोति योगयुक्तो न संशयः ॥३३॥
गमागमस्य ज्ञानेन सर्व्वपापक्षयो भवेत् । अणिमादिगुणैश्वर्य्यं षड्भिर्म्मासैरवाप्नुयात ॥३४॥

स्थूलः सूक्ष्मः परश्चेति प्रासादः कथितो मया ।
ह्रस्वो दीर्घः प्लुतश्चेति प्रासादं लक्षयेत्त्रिधा ॥ ३५ ॥
ह्रस्वो दहति पापानि दीर्घो मोक्षप्रदो भवेत् ।
आप्यायने प्लुतश्चेति मूद्र्ध्नि विन्दुविभूपितः ॥ ३६ ॥
आदावन्ते च ह्रस्वस्य फट्कारो मारणे हितः ।
आदावन्ते च हृदयमाकृष्टौ सम्प्रकीर्त्तितम् ॥ ३७ ॥

देवस्य दक्षिणां मूर्त्तिं पञ्चलक्षं स्थितो भवेत् । जपान्ते घृतहोमस्तु दशसाहस्त्रिको भवेत् ॥
एवमाप्यायितो मन्त्रो वश्योच्चाटादि कारयेत् । ऊद्र्ध्वे शून्यमधः शून्य मध्ये शून्यं निरामयं ॥
त्रिशून्यं यो विजानाति मुच्यतेऽसौ ध्रुवं द्विजः । प्रासादं यो न जानाति पञ्चमन्त्रमहातनुं ॥
अष्टत्रिंशतकलायुक्तं न स आचार्य्य उच्यते । तथोङ्कारञ्च गायत्रीं रुद्रादीन् वेत्त्यऽसौ गुरुः ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये मन्त्रमाहात्म्यं नाम चतुर्दशाधिक-
द्विशततमोऽध्यायः ।

---

१. देहपूजित इति ख. घ. छ. च ।

२. तालुमूले इति ख. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पञ्चदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

सन्ध्याविधिः ।

अग्निरुवाच

ओङ्कारं यो विजानाति स योगी स हरिः पुमान्। ओङ्कारमभ्यसेत्तस्मान्मन्त्रसारन्तु सर्वदं ॥
सर्वमन्त्रप्रयोगेषु प्रणवः प्रथमः स्मृतः। तेन सम्परिपूर्णं यत्तत् पूर्णं कर्म्म नेतरत् ॥२॥
ओङ्कारपूर्व्विकास्तिस्रो महाव्याहृतयोऽव्ययाः। त्रिपदा चैव सावित्री विज्ञेयं ब्रह्मणो मुखं ॥
योऽधीतेऽहन्यहन्येतास्त्रीणि वर्षाण्यतन्द्रितः। स ब्रह्मपरमभ्येति वायुभूतः खमूर्त्तिमान् ॥४॥
एकाक्षरं परं ब्रह्म प्राणायामपरन्तपः। सावित्र्यास्तु परन्नास्ति मौनात् सत्यं विशिष्यते ॥
सप्तावर्त्ता पापहरा दशभिः प्रापयेद्दिवं। विंशावर्त्ता तु सा देवी नयते हीश्वरालयं ॥६॥
अष्टोत्तरशतं जप्त्वा तीर्णः संसारसागरात्। रुद्रकुष्माण्डजप्येभ्यो गायत्री तु विशिष्यते ॥७॥
न गायत्र्याः परञ्जप्यं न व्याहृतिसमं हुतं। गायत्र्याः पादमप्यर्द्धमृगर्द्धमेव वा ॥८॥
ब्रह्महत्या सुरापानं सुवर्णस्तेयमेव च। गुरुदारागमश्चैव जप्येनैव पुनाति सा ॥९॥
पापे कृते तिलैर्होमो गायत्रीजप ईरितः। जप्त्वा सहस्रं गायत्र्या उपवासी स पापहा[1] ॥१०॥
गोघ्नः पितृघ्नो मातृघ्नो ब्रह्महा गुरुतल्पगः। ब्रह्मघ्नः स्वर्णहारी च सुरापो लक्षजप्यतः ॥११॥

शुध्यते वाऽथ वा स्नात्वा शतमन्तर्ज्जले जपेत्।
अपः शतेन पीत्वा तु गायत्र्याः पापहा भवेत् ॥ १२ ॥

शतं जप्ता तु गायत्री पापोपशमनी स्मृता। सहस्रं जप्ता सा देवी उपपातकनाशिनी ॥१३॥
अभीष्टदा कोटिजप्या देवत्वं राजतामियात। ओङ्कारं पूर्व्वमुच्चार्य्य भूर्भुवः स्वस्तथैव च ॥
गायत्री प्रणवश्चान्ते जपे चैवमुदाहृतं। विश्वामित्र ऋषिच्छन्दो गायत्रं सविता तथा ॥१५॥
देवतोपनये जप्ये विनियोगो हुते तथा। अग्निर्व्वायू रविर्व्विद्युत् यमो जलपतिर्गुरुः ॥१६॥
पर्जन्य इन्द्रो गन्धर्वः पूषा च तदनन्तरं। मित्रोऽथ वरुणस्त्वष्टा वसवो मरुतः शशी ॥१७॥
अङ्गिरा विश्वधासत्यौ कस्तथा सर्वदेवताः। रुद्रो ब्रह्मा च विष्णुश्च क्रमशोऽक्षरदेवताः ॥
गायत्र्या जपकाले तु कथिताः पापनाशनाः। पादाङ्गुष्ठौ च गुल्फौ च नलकौ जानुनी तथा ॥
जङ्घे शिश्नश्च वृषणौ कटिर्न्नाभिस्तथोदरं। स्तनौ च हृदयं ग्रीवा मुखन्तालु च नासिके ॥
चक्षुषी च भ्रुवोर्मध्यं ललाटं पूर्वमाननं। दक्षिणोत्तरपार्श्वे द्वे शिर आस्यमनुक्रमात् ॥२१॥
पीतः श्यामश्च कपिलो मरकतोऽग्निसन्निभः। रुक्मविद्युद्धूम्रकृष्णरक्तगौरेन्द्रनीलभाः ॥२२॥
स्फटिकस्वर्णपाण्ड्वाभाः पद्मरागोऽखिलद्युतिः[2]। हेमधूम्ररक्तनीलरक्तकृष्णसुवर्णभाः ॥२३॥
शुक्लकृष्णपालाशाभा[3] गायत्र्या वर्णका क्रमात्। ध्यानकाले पापहरा हुत्तैष सर्वकामदा ॥२४॥
गायत्र्या तु तिलैर्होमः सर्वपापप्रणाशनः। शान्तिकामो यवैः कुर्य्यादायुष्कामो घृतेन च ॥

---

१. उपपातकपापहेति ग. घ. ङ. च।
२. पद्मरागोऽमलद्युतिरिति ख. छ. ज. ट. च।
३. शुक्लपद्मपलाशाभेति ङ. झ. च।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सिद्धार्थकैः कर्मसिद्धयै पयसा ब्रह्मवर्च्चसे। पुत्रकामस्तथा दध्ना धान्यकामस्तु शालिभिः ॥
क्षीरिवृक्षसमिद्भिस्तु ग्रहपीडोपशान्तये। धनकामस्तथा बिल्वै श्रीकामः कमलैस्तथा ॥२७॥
आरोग्यकामो दूर्वाभिर्गुरूत्पाते स एव हि। सौभाग्येच्छुर्गुग्गुलुना विद्यार्थी पायसेन च ॥
अयुतेनोक्तसिद्धिः स्याल्लक्षेण मनसेप्सितं। कोट्या ब्रह्मवधान् मुक्तः कुलोद्धारी हरिर्भवेत् ॥
ग्रहयज्ञमुखो वापि होमोऽयुतमुखोऽर्थकृत्। आवाहनञ्च गायत्र्यास्तत ओङ्कारमभ्यसेत् ॥
स्मृत्वौङ्कारन्तु गायत्र्या निबध्नीयाच्छिखान्ततः।
पुनराचम्य हृदयं नाभिं स्कन्धौ च संस्पृशेत् ॥ ३१ ॥
प्रणवस्य ऋषिर्ब्रह्मा गायत्रीच्छन्द एव च। देवोऽग्निः परमात्मा स्याद्योगो वै सर्वकर्मसु ॥
शुक्ला चाग्निमुखी दिव्या कात्यायनसगोत्रजा। त्रैलोक्यवरणा दिव्या पृथिव्याधारसंयुता ॥
अक्षसूत्रधरा देवी पद्मासनगता शुभा।
ओं तेजोऽसि महोऽसि बलमसि भ्राजोऽसि देवानान्धामनामासि।
विश्वमसि विश्वायुः सर्वमसि सर्व्वायुः ओं अभि भूः।
आगच्छ वरदे देवि जप्ये मे सन्निधौ भव ॥ ३४ ॥
व्याहृतीनान्तु सर्व्वासामृषिरेव प्रजापतिः। व्यस्ताश्चैव समस्ताश्च ब्राह्मनक्षरमोमिति ॥३५॥
विश्वामित्रो यमदग्निर्भरद्वाजोऽथ गोतमः। ऋषिरत्रिर्वशिष्ठश्च काश्यपश्च यथाक्रमं ॥३६॥
अग्निर्वायू रविश्चैव वाक्पतिर्वरुणस्तथा। इन्द्रो विष्णुर्व्याहृतीनां दैवतानि यथाक्रम ॥३७॥
गायत्र्युष्णिगनुष्टुप् च वृहती पङ्क्तिरेव च। त्रिष्टुप् च जगती चेति छन्दांस्याहुरनुक्रमात् ॥
विनियोगे व्याहृतीनां प्राणायामे च होमके। आपोहिष्ठेत्यृचा चापान्द्रुपदादीति वा स्मृता[१] ॥
तथा हिरण्यवर्णाभिः पावमानीभिरन्ततः। विप्रुषोऽष्टौ क्षिपेदूर्ध्वमाजन्मकृतपापजित् ॥४०॥
अन्तर्जले ऋतञ्चेति जपेत्त्रिरघमर्षणं। आपोहिष्ठेत्यृचोऽस्याश्च सिन्धुद्वीप ऋषिः स्मृतः ॥
ब्रह्मस्नानाय छन्दोऽस्य गायत्री देवता जलं। मार्जने विनियोगस्य हयावभृथके क्रतोः ॥४२॥
अवमर्षणसूक्तस्य ऋषिरेवाघमर्षणं। अनुष्टुप् च भवेच्छन्दो भाववृत्तस्तु दैवतं ॥४३॥
आपोज्योतीरस इति गायत्र्यास्तु शिरः स्मृतं। ऋषिः प्रजापतिस्तस्य छन्दोहीनं यजुर्यतः ॥
ब्रह्माग्निवायुसूर्य्याश्च देवताः परिकीर्त्तिताः। प्राणरोधात्तु वायुः स्याद्वायोरग्निश्च जायते ॥४५॥
अग्नेरापस्ततः शुद्धिस्ततश्चाचमनञ्चरेत्। अन्तश्चरति भूतेषु गुहायां विश्वमूर्त्तिषु ॥४६॥
तपोयज्ञवषट्कार आपो ज्योती रसोऽमृतं। उदुत्यं जातवेदसमृषिः प्रष्कन्न उच्यते ॥४७॥
गायत्रीच्छन्द आख्यातं सूर्य्यश्चैव तु दैवतम्। अतिरात्रे नियोगः स्यादग्नीषोमो नियोगकः ॥
चित्रं देवेति ऋचके ऋषिः कौत्स उदाहृतः।
त्रिष्टुप् छन्दो दैवतञ्च सूर्य्योऽस्याः परिकीर्त्तितं ॥ ४९ ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये सन्ध्याविधिर्नाम पञ्चदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः।

---

१. द्रुपदादीति वाप्यृचा इति ङ. ज. ञ. च।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

षोडशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

गायत्रीनिर्वाणम् ।

अग्निरुवाच

एवं सन्ध्याविधिं कृत्वा गायत्रीञ्च जपेत् स्मरेत् ।
गायञ्छिष्यान् यतस्त्रायेत् भार्य्यां प्राणांस्तथैव च[1] ॥ १ ॥

ततः स्मृतेयं गायत्री सावित्रीय ततो यतः । प्रकाशनात्सा सवितुर्वाग्रूपत्वात् सरस्वती ॥२॥

तज् ज्योतिः परमं ब्रह्म भर्गस्तेजो यतः स्मृतं ।
भा दीप्ताविति रूपं हि भ्रस्ज्ः पाकेऽथ तत् स्मृतं ॥ ३ ॥

ओषध्यादिकं पचति भ्राजृ दीप्तौ तथा भवेत् । भर्गः स्याद् भ्राजत इति बहुलं छन्द ईरितं॥
वरेण्यं सर्व्वतेजोभ्यः श्रेष्ठं वै परमं पदं । स्वर्गापवर्गकामैर्व्वा वरणीयं सदैव हि ॥५॥
वृणोतेर्व्वरणार्थत्वाज्जाग्रत्स्वप्नादिवर्जितं । नित्यशुद्धबुद्धमेकं सत्यन्तद्धीमहीश्वरं ॥६॥
अहं ब्रह्म परं ज्योतिर्ध्यायेमहि विमुक्तये । तज् ज्योतिर्भगवान् विष्णुर्जगज्जन्मादिकारणं ॥
शिवं केचित् पठन्ति स्म शक्तिरूपं पठन्ति च । केचित् सूर्य्यं केचिदग्निं वेदगा अग्निहोत्रिणः ॥
अग्न्यादिरूपी विष्णुर्हि वेदादौ ब्रह्म गीयते । तत् पदं परमं विष्णोर्देवस्य सवितुः स्मृतं॥
महदाज्यं सूयते हि स्वयं ज्योतिर्हरिः प्रभुः । पर्जन्यो वायुरादित्यः शीतोष्णाद्यैश्च पाचयेत् ॥
अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते । आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः ॥११॥
दधातेर्व्वा धीमहीति मनसा धारयेमहि । नोऽस्माकं यश्च भर्गश्च सर्वेषां प्राणिनां धियः ॥
चोदयात् प्रेरयेद् बुद्धीर्भोक्तॄणां सर्वकर्मसु । दृष्टादृष्टविपाकेषु विष्णुसूर्य्याग्निरूपवान् ॥१३॥
ईश्वरप्रेरितो गच्छेन् स्वर्गं वाऽश्वभ्रमेव वा । ईशावास्यमिदं सर्वं महदादिजगद्धरिः ॥१४॥
स्वर्गाद्यैः क्रीडते देवो योऽहं स पुरुषः प्रभुः । आदित्यान्तर्गतं यच्च भर्गाख्यं वै मुमुक्षुभिः ।
जन्ममृत्युविनाशाय दुःखस्य त्रिविधस्य च । ध्यानेन पुरुषोऽयञ्च द्रष्टव्यः सूर्य्यमण्डले ॥
तत्त्वं सदसि चिद्ब्रह्म विष्णोर्यत् परमं पदं । देवस्य सवितुर्भर्गो वरेण्यं हि तुरीयकं ॥१७॥
देहादिजाग्रदाब्रह्म अहं ब्रह्मेति धीमहि । योऽसावादित्यपुरुषः सोऽसावहमनन्त ओं ॥१८॥

ज्ञानानि शुभकर्मादीन् प्रवर्त्तयति यः सदा ।

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये गायत्रीनिर्वाणं नाम षोडशाधिक-
द्विशततमोऽध्यायः ।

---

१. कायान् प्राणांस्तथैव चेति ञ. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सप्तदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

गायत्रीनिर्वाणम् ।

अग्निरुवाच

लिङ्गमूर्त्तिं शिवं स्तुत्वा गायत्र्या योगमाप्तवान् ।
निर्वाणं[1] परमं ब्रह्म वसिष्ठोऽन्यश्च शङ्करात्[2] ॥ १ ॥
नमः कनकलिङ्गाय[3] वेदलिङ्गाय वै नमः । नमः परमलिङ्गाय[4] व्योमलिङ्गाय वै नमः ॥२॥
नमः सहस्रलिङ्गाय वह्निलिङ्गाय वै नमः । नमः पुराणलिङ्गाय श्रुतिलिङ्गाय वै नमः ॥३॥
नमः पातालिङ्गाय ब्रह्मलिङ्गाय वै नमः । नमो रहस्यलिङ्गाय सप्तद्वीपोर्द्धलिङ्गिने ॥४॥
नमः सर्वात्मलिङ्गाय सर्वलोकाङ्गलिङ्गिने । नमस्त्वव्यक्तलिङ्गाय बुद्धिलिङ्गाय वै नमः ॥५॥
नमोऽहङ्कारलिङ्गाय भूतलिङ्गाय वै नमः । नमो इन्द्रियलिङ्गाय नमस्तन्मात्रलिङ्गिने ॥६॥
नमः पुरुषलिङ्गाय भावलिङ्गाय वै नमः । नमो रजोर्द्धलिङ्गाय सत्त्वलिङ्गाय[5] वै नमः[6] ॥७॥
नमस्ते भवलिङ्गाय नमस्त्रैगुण्यलिङ्गिने । नमोऽनागतलिङ्गाय तेजोलिङ्गाय वै नमः ॥८॥
नमो वायूर्द्ध्वलिङ्गाय[7] श्रुतिलिङ्गाय वै नमः । नमस्तेऽथर्वलिङ्गाय सामलिङ्गाय[8] वै नमः ॥
नमो यज्ञाङ्गलिङ्गाय यज्ञलिङ्गाय वै नमः । नमस्ते तत्त्वलिङ्गाय देवानुगतलिङ्गिने[9] ॥१०॥
दिश नः परमं योगमपत्यं मत्समन्तथा । ब्रह्म चैवाक्षयं देव शमञ्चैव परं विभो[10] ॥११॥
अक्षयन्त्वञ्च वंशस्य धर्मे च मतिमक्षयां ।

अग्निरुवाच

वसिष्ठेन स्तुतः शम्भुस्तुष्टः श्रीपर्वते पुरा ॥ १२ ॥
वसिष्ठाय वरं दत्त्वा तत्रैवान्तरधीयत ।

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये गायत्रीनिर्वाणं नाम सप्तदशाधिक-
द्विशततमोऽध्यायः ।

---

१. निर्म्मलमिति ख. ।
२. वशिष्ठोप्येन शङ्करादिति ख. घ. च ।
३. कमललिङ्गायेति ट. ।
४. नमः पवनलिङ्गायेति ख. ग. घ. ङ. ट. च ।
५. तत्त्वलिङ्गायेति ख. घ. च ।
६. नम इन्द्रियलिङ्गायेत्यादिः सत्त्वलिङ्गाय वै नम इत्यन्तः पाठः ज. पुस्तके नास्ति ।
७. नमो वागूर्द्ध्वलिङ्गायेति घ. ।
८. नमस्ते सर्व्वलिङ्गाय नामलिङ्गायेति ख. छ. च ।
९. नमोऽनागतलिङ्गायेत्यादिः, देवानुगतलिङ्गिने इत्यन्तः, पाठः, ज. पुस्तके नास्ति ।
१०. परमात्मा परं विभो इति ज. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः

राज्याभिषेककथनम् ।

अग्निरुवाच

पुष्करेण च रामाय राजधर्म्मं हि पृच्छते । यथादौ कथितं तद्वद्वशिष्ठ कथयामि ते ॥१॥

पुष्कर उवाच

राजधर्मं प्रवक्ष्यामि सर्वस्मात् राजधर्मतः । राजा भवेत्[1] शत्रुहन्ता प्रजापालः सुदण्डवान् ॥
पालयिष्यति वः सर्वान् धर्म्मस्थान् व्रतमाचरेत् । संवत्सरं स वृणुयात् पुरोहितमथ द्विजं[2] ॥
मन्त्रिणश्चाखिलान्मज्ञान्महिषीं धर्म्मलक्षणां । संवत्सरं नृपः काले ससम्भारोऽभिषेचनं ॥४।
कुर्य्यान्मृते नृते नात्र कालस्य नियमः स्मृतः । तिलैः सिद्धार्थकैः स्नानं सांवत्सरपुरोहितौ ॥
घोषयित्वा जयं राज्ञो राजा भद्रासने स्थितः । अभयं घोषयेद् दुर्गान्मोचयेद्राज्यपालके ॥६॥

पुरोधसाऽभिषेकात् प्राक् कार्य्यैन्द्री शान्तिरेव च ।
उपवास्यभिषेकाहे वेद्यग्नौ जुहुयान्मनून्[3] ॥ ७ ॥
वैष्णवानैन्द्रमन्त्रांस्तु सावित्रान् वैश्वदैवतान् ।
सौम्यान् स्वस्त्ययनं शर्म्मआयुष्याभयदाम्मनून् ॥ ८ ॥

अपराजिताञ्च कलसं वह्नेर्दक्षिणपार्श्वगं । सम्पातवन्तं हैमञ्च पूजयेद्गन्धपुष्पकैः । ६॥
प्रदक्षिणावर्त्तशिखस्तप्तजाम्बूनदप्रभः । रथौघमेघनिर्घोषो विधूमश्च हुताशनः ॥१०॥
अनुलोमः सुगन्धश्च स्वस्तिकाकारसन्निभः । प्रसन्नार्चिर्म्महाज्वालः स्फुलिङ्गरहितो हितः ॥
न व्रजेयुश्च मध्येन मार्जारमृगपक्षिणः । पर्वताग्रमृदा तावन्मूर्द्धानं शोधयेन्नृपः ॥१२॥
वल्मीकाग्रमृदा कर्णौ वदनं केशवालयात् । इन्द्रालयमृदा[4] ग्रीवां हृदयन्तु नृपाजिरात् ॥१३॥
करिदन्तोद्धृतमृदा दक्षिणन्तु तथा भुजं । वृषशृङ्गोद्धृतमृदा वामश्चैव तथा भुजं ॥१४॥
सरोमृदा तथा पृष्ठमुदरं सङ्गमान् मृदा । नदीतटद्वयमृदा पार्श्वे संशोधयेत्तथा[5] ॥१५॥
वेश्याद्वारमृदा राज्ञः कटिशौचं विधीयते । यज्ञस्थानाथैवोरू गोस्थानाज्जानुनी तथा ॥१६॥
अश्वस्थानात्तथा जङ्घे रथचक्रमृदाङ्घ्रिके । मूर्द्धानं पञ्चगव्येन भद्रासनगतं नृपं ॥१७॥
अभिषिञ्चेदमात्यानां चतुष्टयमथो घटैः । पूर्वतो हेमकुम्भेन घृतपूर्णेन ब्राह्मणः ॥१८॥
रूप्यकुम्भेन याम्ये च क्षीरपूर्णेन क्षत्रियः । दध्ना च ताम्रकुम्भेन वैश्यः पश्चिमगेन च ॥१९॥
मृण्मयेन जलेनोदक् शूद्रामात्योऽभिषेचयेत् । ततोऽभिषेकं नृपतेर्बह्वृचप्रवरो द्विजः ॥२०॥
कुर्वीत मधुना विप्रश्छन्दोगश्च कुशोदकैः । सम्पातवन्तं कलशं तथा गत्वा पुरोहितः ॥२१॥

---

१. राजा हरिति छ. ख. घ. ज. ञ. ट. च ।
२. पुरोहितमथर्त्विजमिति ख. घ. छ. ज. ट. च । ३. जुहुयादमूनिति ङ ।
४. चन्द्रालयमृदेति ज. । ५. सरोमृदेत्यादिः संशोधयेत्तथेत्यन्तः पाठः ज. पुस्तकेनास्ति ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विधाय वह्निरक्षान्तु सदस्येषु यथाविधि। राजश्रियाभिषेके च ये मन्त्राः परिकीर्त्तिताः॥
तैस्तु दद्यान्महाभाग ब्राह्मणानांस्वनैस्तथा। ततः पुरोहितो गच्छेद्वेदिमूलन्तदेव तु[१] ॥२३॥
शतच्छिद्रेण पात्रेण सौवर्णेनाभिषेचयेत्। या ओषधीत्योषधीभीरथेत्युक्तेति गन्धकैः ॥२४॥
पुष्पैः पुष्पवतीत्येव ब्राह्मणेति च बीजकैः[२]। रत्नैराशः शिशानश्च ये देवाश्च कुशोदकैः॥
यजुर्वेद्यथर्व्ववेदी[३] गन्धद्वारेति संस्पृशेत्। शिरः कण्ठं रोचनया सर्वतीर्थोदकैर्द्विजाः ॥२६॥
गीतवाद्यादिनिर्घोषैश्चामरव्यजनादिभिः। सर्वौषधिमयं कुम्भं धारयेयुर्नृपाग्रतः ॥२७॥
तं पश्येद्दर्पणं राजा घृतं वै मङ्गलादिकं। अभ्यर्च्य विष्णुं ब्रह्माणमिन्द्रादींश्च ग्रहेश्वरान्[४]॥
व्याघ्रचर्म्मोत्तरां शय्यामुपविष्ठः पुरोहितः। मधुपर्कादिकं दत्त्वा पट्टबन्धं प्रकारयेत् ॥२८॥
राज्ञोमुकुटबन्धश्च पञ्चक्षन्मात्तरं ददेत्। ध्रुवाद्यैरिति च विशेद वृषजं वृषदंशजं ॥३०॥
द्वीपिजं सिंहजं व्याघ्रजातश्चर्म्म तदासने। अमात्यसचिवादींश्च प्रतीहारः प्रदर्शयेत् ॥३१॥
गोजाविगृहदानाद्यैः सांवत्सरपुरोहितौ। पूजयित्वा द्विजान् प्राच्य ह्यन्यभूगोन्नमुख्यकैः॥
वह्निं प्रदक्षिणीकृत्य गुरुं नत्वाथ पृष्ठतः। वृषमालभ्य गां वत्सां पूजयित्वाश्च मन्त्रितं ॥३३॥
अश्वमारुह्य नागश्च पूजयेत्तं समारुहेत्। परिभ्रमेद्राजमार्गे बलयुक्तः प्रदक्षिणं ॥३३॥
पुरं विशेच दानाद्यैः प्राच्य सर्वान् विसर्ज्जयेत्।

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये राज्याभिषेको नाम अष्टादशाधिक-
द्विशततमोऽध्यायः।

ऊनविंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

अभिषेकमन्त्राः।

पुष्कर उवाच

राजदेवाद्यभिषेकमन्त्रान्वक्ष्येऽघमर्दनान्। कुम्भात् कुशौदकैः सिञ्चेत्तेन सर्वं हि सिद्ध्यति॥
सुरास्त्वामभिषिञ्चन्तु ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः। वासुदेवः सङ्कर्षणः प्रद्युम्नश्चानिरुद्धकः ॥२॥
भवन्तु विजयायैते इन्द्राद्या दशदिग्गताः। रुद्रो धर्मो मनुर्दक्षो रुचिः श्रद्धा च सर्वदा ॥३॥
भृगुरत्रिर्वसिष्ठश्च सनकश्च सनन्दनः। सनत्कुमारोऽङ्गिराश्च पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः ॥४॥
मरीचिः कश्यपः पान्तु प्रजेशाः पृथिवीपतिः। प्रभासुरा वर्हिषद अग्निष्वात्ताश्च पान्तु ते ॥५॥
क्रव्यादाश्चोपहूताश्च आज्यपाश्च सुकालिनः। अग्निभिश्चाभिषिञ्चन्तु लक्ष्म्याद्या धर्म्मवल्लभाः॥
आदित्याद्याः कश्यपस्य बहुपुत्रस्य[५] वल्लभाः। कृशाश्वस्याग्निपुत्रस्य भार्य्याश्चारिष्टनेमिनः॥७॥

---

१. वेदिमूलन्तथैवतु इति ख।
२. दोषकैरिति ङ.।
३. यजुर्वेद्यथ ऋग्वेदी इति ङ.।
४. ग्रहादिकामिति ख. ग. घ. ङ।
५. देवपुत्रस्येति ज.।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अश्विन्याद्याश्च चन्द्रस्य पुलहस्य[1] तथा प्रियाः।
भूता च कपिशा दंष्ट्री सुरसा सरसा दनुः ॥ ८ ॥

श्येनी भासी तथा क्रौञ्ची धृतराष्ट्री शुकी तथा। पत्न्यस्त्वामभिषञ्चन्तु अरुणश्चार्क्कसारथिः ॥
आयतिर्न्नियतीरात्रिर्न्निद्रा लोकस्थितौ स्थिताः। उमा मेना शची पान्तु धूमोर्न्नानिर्ऋतिर्ज्जये ॥

गौरी शिवा च ऋद्धिश्च वेला या चैव नड्वला।
अशिक्नी च[2] तथा ज्योत्मा देवपत्न्यो वनस्पतिः ॥ ११ ॥

महाकल्पश्च कल्पश्च मन्वन्तरयुगानि च। संवत्सराणि वर्षाणि पान्तु त्वामयनद्वयं ॥१२॥
ऋतवश्च तथा मासा पक्षा रात्र्यहनी तथा। सन्ध्यातिथिमुहूर्त्ताश्च कालस्यावयवाकृतिः ॥१३॥

सूर्य्याद्याश्च ग्रहाः पान्तु मनुः स्वायम्भुवादिकः।
स्वायम्भुवः स्वारोचिष औत्तमिस्तामसी मनुः ॥ १४ ॥

रैवतश्चाक्षुषः षष्ठो वैवस्वत इहेरितः। सावर्णो ब्रह्मपुत्रश्च धर्मपुत्रश्च रुद्रजः ॥१५॥
दक्षजो रौच्यभौत्यौ च मनवस्तु चतुर्द्दश। विश्वभुक् च विपश्चिच्च सुचित्तिश्च शिखो विभुः ॥१६॥
मनोजवस्तथौजस्वी बलिरद्भुतशान्तयः। वृषश्च ऋतधामा च दिवस्पृक् कविरिन्द्रकः ॥१७॥
रेवन्तश्च कुमारश्च तथा वत्सविनायकः। वीरभद्रश्च नन्दी च विश्वकर्मा पुरोजव ॥१८॥
एते त्वामभिषिञ्चन्तु सुरमुख्याः समागताः। नासत्यौ देवभिषजौ ध्रुवाद्या वसवोऽष्ट च ॥१९॥
दश चाङ्गिरसो वेदास्त्वाभिषिञ्चन्तु सिद्धये। आत्मा ह्यायुर्मनो दक्षो मदः प्राणस्तथैव च ॥२०॥
हविष्मांश्च गरिष्ठश्च ऋतः सत्यश्च पान्तु वः। क्रतुर्द्दक्षो वसुः सत्यः कालकामो धुरिर्जये ॥२१॥
पुरूरवा माद्रवाश्च विश्वेदेवाश्च रोचनः। अङ्गारकाद्याः सूर्य्यस्त्वान्निर्ऋतिश्च तथा यमः ॥२२॥
अजैकपादहिर्व्रध्नो धूमकेतुश्च रुद्रजाः[3]। भरतश्च तथा मृत्युः कापालिरथ किङ्किणिः ॥२३॥
भवनो भावनः पान्तु स्वजन्यः स्वजनस्तथा[4]। क्रतुश्रवाश्च मूर्द्धा च याजनोऽभ्युशनास्तथा ॥
प्रसवश्चांव्ययश्चैव दक्षश्च भृगवः सुराः। मनोऽनुमन्त प्राणश्च नवीपानश्च वीर्य्यवान् ॥२५॥
वीतिहोत्रो नयः साध्यो हंसी नारायणोऽवतु। विभुश्चैव प्रभुश्चैव देवश्रेष्ठा जगद्धिता ॥२६॥

धाता मित्रोऽर्यमा पूषा शक्रोऽथ वरुणो भगः।
त्वष्टा विवस्वान् सविता विष्णुर्द्वादश भास्कराः ॥ २७ ॥

एकज्योतिश्च द्विज्योतिस्त्रिश्चतुर्ज्योतिरेव च। एकशक्रो द्विशक्रश्च त्रिशक्रश्च महाबलः ॥२८॥
इन्द्रश्च मेत्यादिशतु ततः प्रतिमकृत्तथा। मितश्च सम्मितश्चैव अमितश्च महाबलः ॥२९॥
ऋतजित् सत्यजिच्चैव सुषेणः सेनजित्तथा। अतिमित्रोऽनुमित्रश्च पुरुमित्रोऽपराजितः ॥३०॥
ऋतश्च ऋतवाग् धाता विधाता[5] धारणो ध्रुवः। विधारणो महातेजा वासवस्य परः सखा ॥

---

१. पुलस्त्यस्येति ग. घ. ज. च।　२. अषिता चेति ङ.।
३. रुद्रका इति ग. घ. ङ. ञ. च।　४. सुजनस्तथेत्ति ख. ष. च।
५. विश्वात्मेति ङ.।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ईदृक्षश्चाप्यदृक्षश्च[1] एतादृगमिताशनः । क्रीडितश्च सदृक्षश्च सरभश्च महातपाः ॥३२॥
धर्त्ता धुर्य्यो धुरिर्भीम अभिमुक्तः क्षपात्सह[2] । धृतिर्व्वसुरनाधृष्यो[3] रामः कामो जयो विराट् ॥
देवा एकोनपञ्चाशन्मरुतस्त्वामवन्तु ते । चित्राङ्गदश्चित्ररथः चित्रसेनश्च वै कलिः ॥३४॥
उर्णायुरुग्रसेनश्च धृतराष्ट्रश्च नन्दकः । हाहा हूहूर्नारदश्च विश्वावसुश्च तुम्बुरुः ॥३५॥
एते त्वामभिषिञ्चन्तु गन्धर्वा विजयाय ते । पान्तु ते कुरुपा मुख्या दिव्याश्चाप्सरसाङ्गणाः ॥
अनवद्या सुकेशी च मेनकाः सह जन्यया[4] । क्रतुस्थला घृताची च विश्वाची पुञ्जिकस्थला ॥३७॥
प्रम्लोचा चोर्व्वशी रम्भा पञ्चचूडा तिलोत्तमा । चित्रलेखा लक्ष्मणा च पुण्डरीका च वारुणी ॥
प्रह्लादो विरोचनोऽथ बलिर्व्वाणोऽथ तत्सुताः । एते चान्येऽभिषिञ्चन्तु दानवा राक्षसास्तथा ॥
हेतिश्चैव प्रहेतिश्च विद्युत्स्फुर्जथुरग्रकाः । यक्षः सिद्धात्मकः पातु माणिभद्रश्च नन्दनः ॥४०॥
पिङ्गयक्षो द्युतिमांश्चैव पुष्पवन्तो जयावहः । शङ्खः पद्मश्च मकरः कच्छपश्च निधिर्जये ॥४१॥
पिशाचा ऊर्द्ध्वकेशाद्या भूता भूम्यादिवासिनः । महाकालं पुरस्कृत्य नरसिंहश्च मातरः ॥४२॥

गुहः स्कन्दो विशाखस्त्वान्नैगमेयोऽभिषिञ्चतु ।
डाकिन्यो याश्च योगिन्यः खेचरा भूचराश्च याः ॥ ४३ ॥

गरुडश्चारुणः पान्तु सम्पातिप्रमुखाः खगाः । अनन्ताद्या महानागा शेषवासुकितक्षकाः ॥
ऐरावतो महापद्मः कम्बलाश्वतरावुभौ । शङ्खः कर्कोटकश्चैव धृतराष्ट्रो धनञ्जयः ॥४५॥
कुमुदैरावणौ पद्मः पुष्पदन्तोऽथ वामनः । सुप्रतीकोऽञ्जनो नागाः पान्तु त्वां सर्व्वतः सदाः ॥
पैतामहस्तथा हंसो वृषभः शङ्करस्य च । दुर्गासिंहश्च पान्तु त्वां यमस्य महिषस्तथा ॥४७॥
उच्चैःश्रवाश्चाश्वपतिस्तथा धन्वन्तरिः सदा । कौस्तुभः शङ्खराजश्च वज्रं शूलञ्च चक्रकं ॥
नन्दकोऽस्त्राणि रक्षन्तु धर्म्मश्च व्यवसायकः । चित्रगुप्तश्च दण्डश्च पिङ्गलो मृत्युकालकौ ॥
बालखिल्यादिमुनयो व्यासवाल्मीकिमुख्यकाः । पृथुर्दिलीपो भरतो दुष्यन्तः चक्रजिद्बली[5] ॥
मल्लः ककुत्स्थश्चानेन युवनाश्वो जयद्रथः । मान्धाता मुचुकुन्दश्च पान्तु त्वाञ्च पुरूरवाः ॥५१॥
वास्तुदेवाः पञ्चविंशत्तत्त्वानि विजयाय ते । रुक्मभौमः शिलाभौमः पातालो नीलमृर्त्तिकः[6] ॥
पीतरक्तः क्षितिश्चैव श्वेतभौमो रसातलं । भूर्ल्लोकोऽथ भुवर्मुख्या जम्बूद्वीपादयः श्रिये ॥५३॥
उत्तराः कुरवः पान्तु रम्या हिरण्यकस्तथा[7] । भद्राश्व केतुमालश्च वर्षश्चैव वलाहकः ॥५४॥
हरिवर्षः किम्पुरुष इन्द्रद्वीपः कशेरुमान् । ताम्रवर्णो गभस्तिमान् नागद्वीपश्च सौम्यकः ॥
गन्धर्वो वरुणो यश्च नवमः पान्तु राज्यदाः । हिमवान् हेमकूटश्च निषधो नील एव च ॥
श्वेतश्च शृङ्गवान् मेरुर्माल्यवान् गन्धमादनः । महेन्द्रो मलयः सह्यः शुक्तिमानृक्षवान् गिरिः ॥

---

१. ईदृक्षश्चान्यदृक्षश्चेति छ. । २. अभिमुक्तः क्षमासहेति ङ. ।
३. अनाधृष्य इति ग. घ. ञ. च । ४. सह कन्ययेति ज. ।
५. शत्रुजिद्बली इति क. ख. च ।
६. नीलमृत्तिक इति ख. घ. छ. ज. ञ. ट. च । नीलमूर्द्धज इति ङ ।
७. हैरण्यकस्तथेति घ. ङ. ज. च । हिरण्मयस्तथेति छ. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विन्ध्यश्च पारिपात्रश्च गिरयः शान्तिदास्तु ते। ऋग्वेदाद्याः षडङ्गानि इतिहासपुराणकं ॥
आयुर्वेदश्च गन्धर्व्वधनुर्वेदोपवेदकाः। शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं ज्योतिषाङ्गतिः ॥
छन्दोगानि च वेदाश्च मीमांसा न्यायविस्तरः। धर्म्मशास्त्रं पुराणञ्च विद्या ह्येताश्चतुर्दश ॥
साङ्ख्यं योगः पाशुपतं वेदा वै पञ्चरात्रकं। कृतान्तपञ्चकं ह्येतद् गायत्री च शिवा तथा।
दुर्गा विद्या च गान्धारी पान्तु त्वां शान्तिदाश्च ते। लवणेक्षुसुरासर्पिर्दधिदुग्धजलाब्धयः ॥
चत्वारः सागराः पान्तु तीर्थानि विविधानि च। पुष्करश्च प्रयागश्च प्रभासो नैमिषः परः॥
गयाशीर्षो ब्रह्मशिरस्तीर्थमुत्तरमानसं। कालोदको नन्दिकुण्डस्तीर्थं पञ्चनदस्तथा ॥६४॥
भृगुतीर्थं प्रभासञ्च तथा चामरकण्टकं। जम्बुमार्गञ्च विमलः कपिलस्य तथाश्रमः ॥६५॥
गङ्गाद्वारकुशावर्त्तौ विन्ध्यको नीलपर्वतः। वराहपर्वतश्चैव तीर्थङ्कणखलं तथा ॥६६॥
कालञ्जरश्च केदारो रुद्रकोटिस्तथैव च। वाराणसी महातीर्थं वदर्य्याश्रम एव च ॥६७॥
द्वारका श्रीगिरिस्तीर्थं तीर्थञ्च पुरुषोत्तमः। शालग्रामोथ वाराहः सिन्धुसागरसङ्गमः ॥६८॥
फल्गुतीर्थं विन्दुसरः करवीराश्रमस्तथा। नद्यो गङ्गासरस्वत्यः शतद्रुर्गण्डकी तथा ॥६९॥
अच्छोदा च विपाशा च वितस्ता देविका नदी। कावेरी वरुणा चैव निश्चिरा गोमती नदी॥
पारा चर्मण्वती रूपा मन्दाकिनी महानदी। तापी पयोष्णी वेणा च गौरी वैतरणी तथा ॥
गोदावरी भीमरथी तुङ्गभद्रा प्रणी तथा। चन्द्रभागा शिवा गौरी अभिषिञ्चन्तु पान्तु वः[1] ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये अभिषेकमन्त्रा नामोनविंशत्यधिक-
द्विशततमोऽध्यायः।

विंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

सहायसम्पत्तिः।

पुष्कर उवाच

सोऽभिषिक्तः सहामात्यो जयेच्छत्रून्नृपोत्तमः।
राज्ञा सेनापतिः कार्यो ब्राह्मणः क्षत्रियोऽथ वा ॥ १ ॥
कुलीनो नीतिशास्त्रज्ञः प्रतीहारश्च नीतिवित्। दूतश्च प्रियवादी स्यादक्षीणोऽतिबलान्वितः ॥
ताम्बूलधारी ना स्त्री वा भक्तः क्लेशसहप्रियः।
सान्धिविग्रहिकः कार्य्यः षाड्गुण्यादिविशारदः ॥ ३ ॥
खड्गधारी रक्षकः स्यात्सारथिः स्याद्बलादिवित्।
सूदाध्यक्षो हितो विज्ञो महानसगतो हि सः ॥ ४ ॥
सभासदस्तु धर्मज्ञाः लेखकोऽक्षरविद्धितः। आह्वानकालविज्ञाः स्युर्हिता दौवारिका जनाः॥

---

१. अभिषिञ्चन्तु पान्तु चेति ख. ग. घ. ङ. छ. ज. ञ. ट. च।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रत्नादिज्ञो धनाध्यक्षः अनुद्वारे हितो नरः । स्यादायुर्वेदविद्वैद्यो गजाध्यक्षोऽथ हस्तिवित् ॥
जितश्रमो गजारोही हयाध्यक्षो हयादिवित् । दुर्गाध्यक्षो हितो धीमान् स्थपतिर्वास्तुवेदवित् ॥
यन्त्रमुक्ते पाणिमुक्ते अमुक्ते मुक्तधारिते । अस्त्राचार्य्यो नियुद्धे च कुशलो नृपतेर्हितः ॥८॥
वृद्धश्चान्तःपुराध्यक्षः पञ्चाशद्वार्षिकाः स्त्रियः । सप्तत्यव्दास्तु पुरुषाश्चरेयुः सर्वकर्मसु ॥९॥
जाग्रत्स्यादायुधागारे ज्ञात्वा वृत्तिर्विधीयते । उत्तमाधममध्यानि बुद्ध्वा कर्माणि पार्थिवः ॥
उत्तमाधममध्यानि पुरुषाणि नियोजयेत् । जयेच्छुः पृथिवीं राजा सहायानानयेद्धितान् ॥११॥
धर्मिष्ठान् धर्मकार्येषु शूरान् सङ्ग्रामकर्मसु । निपुणानर्थकृत्येषु[1] सर्वत्र च तथा शुचीन् ॥१२॥
स्त्रीषु षण्डान्नियुञ्जीत तीक्ष्णान् दारुणकर्मसु । यो यत्र विदितो राज्ञा शुचित्वेन तु तन्नरं ॥१३॥
धर्मे चार्थे च कामे च नियुञ्जीताधमेऽधमान् । राजा यथार्हं कुर्य्याच्च उपधाभिः परीक्षितान् ॥
समन्त्र्य च यथान्यायात् कुर्य्याद्धस्तिवनेचरान् । तत्पदान्वेषणे यत्तानध्यक्षांस्तत्र कारयेत् ॥

यस्मिन् कर्मणि कौशल्यं यस्य तस्मिन् नियोजयेत् ।
पितृपैतामहान् भृत्यान सर्वकर्मसु योजयेत ॥ १६ ॥

विना दायादकृत्येषु तत्र ते हि समागताः । परराजगृहात् प्राप्तान् जनान् संश्रयकाम्यया[2] ॥
दुष्टानप्यथ वाऽदुष्टान् संश्रयेत प्रयत्नतः । दुष्टं ज्ञात्वा विश्वसेन्न तद्वृत्तिं वर्त्तयेद्वशे ॥१८॥
देशान्तरागतान् पार्श्वे चारैर्ज्ञात्वा हि पूजयेन । शत्रवोऽग्निर्विषं सर्पो निस्त्रिंशमपि चैकतः ॥
भृत्यावशिष्टं विज्ञेयाः कुभृत्याश्च तथैकतः । चारचक्षुर्भवेद्राजा नियुञ्जीत सदाचरान् ॥२०॥
जनस्याविहितान् सौम्यांस्तथाज्ञातान् परस्परं। वणिजो मन्त्रकुशलान् सांवत्सरचिकित्सकान् ॥
तथा प्रव्रजिताकारान् बलाबलविवेकिनः । नैकस्य राजा श्रद्दध्याच्छ्रद्दध्याद् बहुवाक्यतः ॥
रागापरागौ भृत्यानां जनस्य च गुणागुणान् । शुभानामशुभानाञ्च ज्ञानङ्कुर्य्याद्वशाय च ॥
अनुरागकरं कर्म चरेज्जह्याद्विरागजं । जनानुरागया लक्ष्म्यां राजा स्याज्जनरञ्जनात् ॥२४॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये सहायसम्पत्तिर्नाम विंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ।

एकविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

पुष्कर उवाच

भृत्यः कुर्यात्तु राजाज्ञां शिष्यवत्सच्छ्रियः पतेः । न क्षिपेद्वचनं राज्ञो अनुकूलं प्रियं वदेत् ॥
रहोगतस्य वक्तव्यमप्रियं यद्धितं भवेत् । न नियुक्तो हरेद्वित्तं नोपेक्षेत्तस्य मानकं ॥२॥
राज्ञश्च न तथाकार्य्यं वेशभाषाविचेष्टितं । अन्तःपुरचराध्यक्षो वैरभूतैर्निराकृतैः ॥३॥
संसर्गं न व्रजेद्भृत्यो राज्ञो गुह्यञ्च गोपयेत् । प्रदर्श्य कौशलं किञ्चिद्राजानन्तु विशेषयेत् ॥
राज्ञा यच्छ्रावितं गुह्यं न तल्लोके प्रकाशयेत् । आज्ञाप्यमाने वान्यस्मिन् किङ्करोमीति वा वदेत् ॥

---

१. रिपूननर्थकृत्येष्विति ख. ।
२. जनानाश्रयकाम्ययेति ख. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वस्त्रं रत्नमलङ्कारं राज्ञा दत्तं च धारयेत्[१] । नानिर्दिष्टो[२] द्वारि विशेन्नायोग्ये भुवि राजदृक् ॥
जृम्भान्निष्ठीवनङ्कासं कोपं पर्य्यन्तिकाश्रयं । भृकुटीं वातमुद्गारं तत्समीपे विसर्जयेत्[३] ॥
स्वगुणाख्यापने युक्त्या परानेव प्रयोजयेत्[४] । शाठ्यं लौल्यं सपैशून्यं नास्तिक्यं क्षुद्रता तथा ॥
चापल्यञ्च परित्याज्यं नित्यं राजानुजीविना । श्रुतेन विद्याशिल्पैश्च संयोज्यात्मानमात्मना ॥
राजसेवान्ततः कुर्याद् भूतये भूतिवर्द्धनः[५] । नमस्कार्याः सदा चास्य पुत्रवल्लभमन्त्रिणः ॥१०॥
सचिवैर्नास्य विश्वासो राजचित्तप्रियञ्चरेत् । त्यजेद्विरक्तं रक्तात्तु वृत्तिमीहेत राजवित् ॥
अपृष्टश्चास्य न ब्रूयात् कामं कुर्य्यात्तथापदि । प्रसन्नो वाक्यसङ्ग्राही रहस्ये न च शङ्कते ॥
कुशलादिपरिप्रश्नं सम्प्रयच्छति चासनं । तत्कथाश्रवणाद्धृष्टो अप्रियाण्यपि नन्दते ॥१३॥
अल्पं दत्तं प्रगृह्णाति स्मरेत कथान्तरेष्वपि । इति रक्तस्य कर्त्तव्यं सेवामन्यस्य वर्जयेत् ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये अनुजीविवृत्तं नामैकविंशत्यधिक-
द्विशततमोऽध्यायः ।

द्वाविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

दुर्गसम्पत्तिः ।

पुष्कर उवाच

दुर्गसम्पत्तिमाख्यास्ये दुर्गदेशे वसेन्नृपः । वैश्यशूद्रजनप्रायोऽह्यनाहार्य्यस्तथापरैः ॥१॥
किञ्चिद्ब्राह्मणसंयुक्तो बहुकर्म्मकरस्तथा । अदेवमातृको भक्तजलो देशः प्रशस्यते ॥२॥
परैरपीडितः पुष्पफलधान्यसमन्वितः[६] । अगम्यः परचक्राणां व्यालतस्करवर्जितः ॥३॥
षण्णामेकतमं दुर्गं तत्र कृत्वा वसेद् बली । धनुर्दुर्गं महीदुर्गं नरदुर्गं तथैव च ॥४॥
वार्क्षञ्चैवाम्बुदुर्गञ्च गिरिदुर्गञ्च भार्गव । सर्वोत्तमं शैलदुर्गमभेद्यं चान्यभेदनं ॥५॥
पुरन्तत्र च हट्टाद्यदेवतायतनादिकं । अनुयन्त्रायुधोपेतं सोदकं दुर्गमुत्तमं ॥६॥
राजरक्षां प्रवक्ष्यामि रक्ष्यो भूपो विषादितः । पञ्चाङ्गस्तु शिरीषः स्यान्मूत्रपिष्टो विषार्दनः ॥
शतावरी छिन्नरुहा विषघ्नी तण्डुलीयकं । कोषातकी च कल्हारी ब्राह्मी चित्रपटोलिका ॥८॥
मण्डूकपर्णी वाराही धात्र्यानन्दकमेव च । उन्मादिनी सोमराजी विषघ्नं रत्नमेव च ॥९॥
वास्तुलक्षणसंयुक्ते वसन् दुर्गे सुरान्यजेत् । प्रजाश्च पालयेद्दुष्टाञ्जयेद्दानानि दापयेत् ॥१०॥

---

१. राज्ञाऽदत्तं न धारयेदिति ख. । २. नानिर्दिष्टे इति ख. ग. घ. ञ. च ।
३. विवर्जयेदिति ग. घ. ञ. ट. च । ४. नियोजयेदिति ग. घ. ञ. च ।
५. भूतिवर्द्धिनीमिति ग. ट. च ।
६. पुष्पफलधान्यधनान्वित इति ग. घ. ञ. ट. च ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

देवद्रव्यादिहरणात् कल्पन्तु नरके वसेत् । देवालयानि कुर्वीत देवपूजारतो नृपः ॥११॥
सुरालयाः पालनीयाः स्थापनीयाश्च देवताः । मृण्मयाद्दारुजं पुण्यं दारुजादिष्टकामयं ॥१२॥
ऐष्टकाच्छैलजं पुण्यं शैलजात स्वर्णरत्नजं । क्रीडन् सुरगृहं कुर्वन् भुक्तिमुक्तिमवाप्नुयात् ॥१३॥
चित्रकृद् गीतवाद्यादिप्रेक्षणीयादिदानकृत । तैलाज्यमधुदुग्धाद्यैः स्नाप्य देवं दिवं व्रजेत् ॥१४॥
पूजयेत पालयेद्विप्रान द्विजस्वन्न हरेन्नृपः । सुवर्णमेकं गामेकां भूमेरप्येकमङ्गुलं ॥१५॥
हरन्नरकमाप्नोति यावदाहूतसम्लवं । दुराचारन्न द्विषेच्च सर्वपापेष्वपि स्थितं ॥१६॥
नैवास्ति ब्राह्मणवधात पापं गुरुतरं क्वचित । अदैवं दैवतं कुर्य्युः कुर्य्युर्दैवमदैवतं ॥१७॥
ब्राह्मणा हि महाभागास्तान्नमस्येत्सदैव तु[१] । ब्राह्मणी रुदती हन्ति कुलं राज्यं प्रजास्तथा ॥
साध्वीस्त्रीणां पालनञ्च राजा कुर्य्याच्च धार्मिकः । स्त्रिया प्रहृष्टया भाव्यं गृहकार्य्यैकदक्षया॥१६॥
सुसंस्कृतोपस्करया व्यये चामुक्तहस्तया । यस्मै दद्यात्पिता त्वेनां शुश्रूषेत्तं पति सदा ॥२०॥
मृते भर्त्तरि स्वर्य्यायात् ब्रह्मचर्ये स्थिताङ्गना । परवेश्मरुचिर्न्न स्यान्न स्यात् कलहशालिनी ॥
मण्डनं वर्जयेन्नारी तथा प्रोषितभर्तृका । देवताराधनपरा तिष्ठेद्भर्त्तृहिते रता ॥२२॥
धारयेन्मङ्गलार्थाय किञ्चिदाभरणन्तथा । भर्त्राग्नि या विशेन्नारी सापि स्वर्गमवाप्नुयात ॥२३॥
श्रियः सम्पूजनङ्कार्य्यं गृहसम्मार्जनादिकं । द्वादश्यां कार्त्तिके विष्णुं गां सवत्सां ददेत्तथा॥२४॥
सावित्र्या रक्षितो भर्त्ता सत्याचारव्रतेन च[२] । सप्तम्यां मार्गशीर्षे तु सितेऽभ्यर्च्य दिवाकरं ॥२५॥

पुत्रानाप्नोति च स्त्रीह नात्र कार्य्या विचारणा ।

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये राजधर्मो नाम द्वाविंशत्यधिक-

द्विशततमोऽध्यायः ।

त्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

राजधर्माः ।

पुष्कर उवाच

ग्रामस्याधिपतिं कुर्य्याद्दशग्रामाधिपं नृपः । शतग्रामाधिपञ्चान्यं तथैव विषयेश्वरं ॥१॥
तेषां भोगविभागश्च भवेत् कर्म्मानुरूपतः । नित्यमेव तथा कार्य्यं तेषाञ्चारैः परीक्षणं ॥२॥
ग्रामे दोषान् समुत्पन्नान ग्रामेशः प्रशमं नयेत् । अशक्तो दशपालस्य स तु गत्वा निवेदयेत् ॥
श्रुत्वापि दशपालोऽपि तत्र युक्तिमुपाचरेत । वित्ताद्याप्नोति राजा वै विषयात्तु सुरक्षितात् ॥४॥
धनवान्धर्म्ममाप्नोति धनवान कामश्नुते । उच्छिद्यन्ते विना ह्यर्थैः[३] क्रिया ग्रीष्मे सरिद्यथा ॥

---

१. तान्न हिंस्याद्यदैव तु इति ज. ।
२. सत्यवान् सुव्रतेन चेति घ. ञ. च ।
३. विना ह्यर्थमिति घ. ञ. च ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विशेषो नास्ति लोकेषु पतितस्याधनस्य च । पतितान्न तु गृह्णन्ति दरिद्रो न प्रयच्छति ॥६॥
धनहीनस्य भार्य्यापि नैका स्यादुपवर्त्तिनी[१] । राष्ट्रपीडाकरो राजा नरके वसते चिरं ॥७॥
नित्यं राज्ञा तथा भाव्यं गर्भिणी सहधर्मिणी । यथा स्वं सुखमुत्सृज्य गर्भस्य सुखमावहेत्[२] ॥
किं यज्ञैस्तपसा तस्य प्रजा यस्य न रक्षिताः । सुरक्षिताः प्रजा यस्य स्वर्गस्तस्य गृहोपमः ॥
अरक्षिताः प्रजा यस्य नरकं तस्य मन्दिरं । राजा षड्भागमादत्ते सुकृताद् दुष्कृतादपि ॥१०॥
धर्म्मागमो रक्षणाच्च पापमाप्नोत्यरक्षणात् । सुभगा विटभीतेव राजवल्लभतस्करैः ॥११॥
भक्ष्यमाणाः प्रजा रक्ष्याः कायस्थैश्च विशेषतः । रक्षिता तद्भयेभ्यस्तु राज्ञो भवति सा प्रजा[३] ॥
अरक्षिता सा भवति तेषामेवेह भोजनं । दुष्टसम्मर्दनं कुर्य्याच्छास्त्रोक्तं करमाददेत्[४] ॥१३॥
कोषे प्रवेशयेदर्द्धं नित्यञ्चार्द्धं द्विजे ददेत्[५] । निधिं द्विजोत्तमः प्राप्य गृह्णीयात्सकलं तथा ॥
चतुर्थमष्टमं भागं तथा षोडशमं द्विजः । वर्णक्रमेण दद्याच्च निधिं पात्रे तु धर्म्मतः ॥१५॥
अनृतन्तु वदन् दण्ड्यः[६] सुवित्तस्यांशमष्टमं । प्रणष्टस्वामिकमृक्थं राजा त्र्यब्दं निधापयेत् ॥
अर्वाक् त्र्यब्दाद्धरेत्स्वामी परेण नृपतिर्हरेत् । ममेदमिति यो ब्रूयात् सोऽर्थयुक्तो यथाविधि ॥
सम्पाद्य रूपसङ्ख्यादीन् स्वामी तद् द्रव्यमर्हति । बालदायादिकमृक्थं[७] तावद्राजानुपालयेत् ॥
यावत्स्यात्स समावृत्तो यावद्वातीतशैशवः । बालपुत्रासु चैवं स्याद्रक्षणं निष्कुलासु च ॥१६॥
पतिव्रतासु च स्त्रीषु विधवास्वातुरासु च । जीवन्तीनान्तु तासां ये संहरेयुः स्वबान्धवाः ॥

तांश्छिष्याच्चौरदण्डेन धार्म्मिकः पृथिवीपतिः ।
सामान्यतो हृतञ्चौरैस्तद्वै दद्यात स्वयं नृपः ॥ २१ ॥

चौररक्षाधिकारिभ्यो राजापि हृतमाप्नुयात् । अहृते यो हृतं ब्रूयान्निःसार्यो दण्ड्य एव सः ॥
न तद्राज्ञा प्रदातव्यं गृहे यद् गृहगैर्हृतं । स्वराष्ट्रपण्याददद्याद्राजा विंशतिमं द्विज ॥२३॥
शुल्कांशं परदेशाच्च क्षयव्ययप्रकाशकं । ज्ञात्वा सङ्कल्पयेच्छुल्कं लाभं वणिग्यथाप्नुयात् ॥
विंशांशं लाभमादद्याद्दण्डनीयस्ततोऽन्यथा । स्त्रीणां प्रव्रजितानाञ्च[८] तरशुल्कं विवर्जयेत् ॥२५॥
तरेषु दासदोषेण नष्टं दासांस्तु दापयेत् । शूकधान्येषु षड्भागं शिम्बिधान्ये तथाष्टमं ॥२६॥
राजा वन्यार्थमादद्याद्देशकालानुरूपकं । पञ्चषड्भागमादद्याद् राजा पशुहिरण्ययोः ॥२७॥
गन्धौषधिरसानाञ्च पुष्पमूलफलस्य च । पत्रशाकतृणानाञ्च वंशवैणवचर्म्मणां ॥२८॥
वैदलानाञ्च भाण्डानां सर्वस्याश्ममयस्य च । षड्भागमेव चादद्यान्मधुमांसस्य सर्पिषः ॥
म्रियन्नपि न चादद्याद् ब्राह्मणेभ्यस्तथा करं । यस्य राज्ञस्तु विषये श्रोत्रियः सीदति क्षुधा ॥

---

१. नैव स्याद्वशवर्त्तिनीति ख. ट. च । नैव स्याद्वशवर्त्तिनीति घ. ज. ञ. च. ।
२. सुखमाहरेदिति ज. ट. च ।　　३. स्वप्रजा इति घ. ञ. च ।
४. सुभगा विटभीतेवेत्यादिः करमाददेदित्यन्तः पाठः झ० पुस्तके नास्ति ।
५. द्विजेऽर्पयेदिति ञ. ट. च. ।　　६. अनृतं वदतो ग्राह्यमिति ट. ।
७. बालदायादिकं युक्तमिति ख. ग. घ. ञ. च ।
८. स्त्रीणाञ्चैव द्विजातीनामिति ट. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तस्य सीदति तद्राष्ट्रं व्याधिदुर्भिक्षतस्करैः । श्रुतं वृत्तन्तु विज्ञाय वृत्तिं तस्य प्रकल्पयेत् ॥
रक्षेच्च सर्वतस्त्वेनं पिता पुत्रमिवौरसं । संरक्ष्यमाणो राज्ञा यः कुरुते धर्ममन्वहं ॥३२॥
तेनायुर्वर्द्धते राज्ञो द्रविणं राष्ट्रमेव च । कर्म्म कुर्युर्न्नरेन्द्रस्य मासेनैकञ्च[1] शिल्पिनः ॥३३॥
भुक्तमात्रेण ये चान्ये स्वशरीरोपजीविनः ।

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये राजधर्मो नाम त्रयोविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ।

चतुर्विंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

राजधर्माः ।

पुष्कर उवाच

वक्ष्येऽन्तःपुरचिन्तां च धर्माद्याः पुरुषार्थकाः । अन्योन्यरक्षया तेषां सेवा कार्या स्त्रिया नृपैः ॥
धर्ममूलोऽर्थविटपस्तथा कर्म्मफलो महान् । त्रिवर्गपादपस्तत्र रक्षया फलभाग् भवेत् ॥२॥
कामाधीनाः[2] स्त्रियो राम तदर्थं रत्नसङ्ग्रहः । सेव्यास्ता नातिसेव्याश्च भूभुजा विषयैषिणा ॥
आहारो मैथुनन्निद्रा सेव्या नाति हि रुग् भवेत् ।
मञ्चाधिकारे[3] कर्त्तव्याः स्त्रियः सेव्याः स्वरामिकाः[4] ॥ ४ ॥
दुष्टान्याचरते[5] या तु नाभिनन्दति तत्कथां । ऐक्यं द्विषद्भिर्व्रजति गर्वं वहति चोद्धता ॥५॥
चुम्बिता मार्ष्टि वदनं दत्तन्न बहु मन्यते । स्वपित्यादौ प्रसुप्तापि तथा पश्चाद्विबुध्यते ॥६॥
स्पृष्टा धुनोति गात्राणि गात्रञ्च विरुणद्धि या । ईषच्छृणोति वाक्यानि प्रियाण्यपि पराङ्मुखी ॥
न पश्यत्यग्रदत्तन्तु जघनञ्च निगूहति । दृष्टे विवर्णवदना मित्रेष्वथ पराङ्मुखी[6] ॥८॥
तत्कामितासु च स्त्रीषु मध्यस्थेव च लक्ष्यते । ज्ञातमण्डनकालापि न करोति च मण्डनं ॥
या सा विरक्ता तान्त्यक्त्वा सानुरागां स्त्रियम्भजेत्[7] ।
दृष्ट्वैव हृष्टा भवति वीक्षिते च पराङ्मुखी ॥ १० ॥
दृश्यमाना तथान्यत्र दृष्टिं क्षिपति चञ्चलां । तथाप्युपावर्त्तयितुं नैव शक्नोत्यशेषतः ॥११॥
विवृणोति तथाङ्गानि स्वस्या गुह्यानि भार्गव । गर्हितञ्च तथैवाङ्गं प्रयत्नेन निगूहति ॥१२॥
तद्दर्शने च कुरुते बालालिङ्गनचुम्बनं । आभाष्यमाणा भवति सत्यवाक्या तथैव च ॥१३॥

---

१. मासेनैकेनेति छ. ज. च ।
२. कामाधारा इति घ. ञ. च ।
३. लज्जाधिकारे इति ख. छ. च ।
४. सुवासिका इति क. ।
५. द्विष्टान्याचक्षते इति ञ ।
६. न पश्यत्यग्रदत्तन्त्वित्यादिः, मित्रेष्वथ पराङ्मुखीत्यन्तः पाठः ज० पुस्तकेनास्ति ।
७. स्त्रियं व्रजेदिति घ. ञ. च ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

स्पृष्टा पुलकितैरङ्गैः स्वेदेनैव च भज्यते । करोति च तथा राम सुलभद्रव्ययाचनं ॥१४॥
ततः स्वल्पमपि प्राप्य करोति परमां मुदं । नामसङ्कीर्त्तनादेव मुदिता बहु मन्यते ॥१५॥
करजाङ्काङ्कितान्यस्य फलानि प्रेषयत्यपि । तत्प्रेषितञ्च हृदये विन्यसत्यपि चादरात् ॥१६॥
आलिङ्गनैश्च गात्राणि लिम्पतीवामृतेन या । सुप्ते स्वपित्यथादौ च तथा तस्य विबुध्यते ॥
ऊरू स्पृशति चात्यर्थं सुप्तञ्चैनं विबुध्यते । कपित्थचूर्णयोगेन तथा दध्नः स्रजा तथा ॥१८॥
घृतं सुगन्धि भवति दुग्धैः क्षिप्तैस्तथा यवैः । भोज्यस्य कल्पनैवं स्याद्गन्धयुक्तिः प्रदर्श्यते॥
शौचमाचमनं राम तथैव च विरेचनं । भावना चैव पाकश्च बोधनं धूपनन्तथा ॥२०॥
वासनञ्चैव निर्दिष्टं कर्म्माष्टकमिदं स्मृतं । कपित्थविल्वजम्बाम्रकरवीरकपल्लवैः ॥२१॥
कृत्वोदकन्तु यद्द्रव्यं शौचितं शौचनन्तु तत् । तेषामभावे शौचन्तु मृगदर्पाम्भसा भवेत् ॥
नखं कुष्ठं घनं मांसी स्पृक्कशैलेयजं जलं । तथैव कुङ्कुमं लाक्षा चन्दनागुरुनीरदं[१] ॥२३॥
सरलं देवकाष्ठञ्च[२] कर्पूरं कान्तया सह । बालः कुन्दुरुकश्चैव गुग्गुलुः श्रीनिवासकः ॥२४॥
सह सर्जरसेनैवं धूपद्रव्यैकविंशतिः । धूपद्रव्यगणादस्मादेकविंशाद्यथेच्छया ॥२५॥
द्वे द्वे द्रव्ये समादाय सर्जभागैर्व्वियोजयेत् । नखपिण्याकमलयैः संयोज्य मधुना तथा ॥२६॥
धूपयोगा भवन्तीह यथावत् स्वेच्छया कृताः । त्वचन्नाडीं फलन्तैलं कुङ्कुमं ग्रन्थिपर्वकं[३] ॥
शैलेयन्तगरं क्रान्तां चोलङ्कर्पूरमेव च[४] । मांसीं सुराञ्च कुष्ठञ्च स्नानद्रव्याणि निर्दिशेत् ॥२८॥
एतेभ्यस्तु समादाय द्रव्यत्रयमथेच्छया । मृगदर्पयुतं स्नानं कार्यं कन्दर्पवर्द्धनं ॥२९॥
त्वङ्मुरानलदैस्तुल्यैर्वालकार्द्धसमायुतैः । स्नानमुत्पलगन्धि स्यात् सतैलं कुङ्कुमायते ॥३०॥
जातीपुष्पसुगन्धि स्यात् तगरार्द्धेन योजितं । सद्ध्यामकं स्याद्बकुलैस्तुल्यगन्धि मनोहरं ॥
मञ्जिष्ठान्तगरं चोलं त्वचं व्याघ्रनखं नखं । गन्धपत्रञ्च विन्यस्य गन्धतैलं भवेच्छुभं ॥३२॥
तैलं निपीडितं राम तिलैः पुष्पाधिवासितैः । वासनात् पुष्पसदृशं गन्धेन तु भवेद् ध्रुवं ॥
एलालवङ्गककोलजातीफलनिशाकराः । जातीपत्रिकया सार्द्धं स्वतन्त्रा मुखवासकाः ॥३४॥
कर्पूरं कुङ्कुमं कान्ता मृगदर्पं हरेणुकं । कक्कोलैलालवङ्गञ्च जाती कोशकमेव च ॥३५॥
त्वक्पत्रं त्रुटिमुस्तौ चं लतां कस्तूरिकं तथा । कण्टकानि लवङ्गस्य फलपत्रे च जातितः ॥३६॥
कटुकञ्च[५] फलं राम कार्पिकाण्युपकल्पयेत् । तच्चूर्णे खदिरं सारं दद्यात्तुर्यं तु वासितं[६] ॥३७॥

सहकाररसेनास्मात् कर्त्तव्या गुटिकाः शुभाः[७] ।
मुखे न्यस्ताः सुगन्धास्ता मुखरोगविनाशनाः ॥ ३८ ॥

पूगं प्रक्षालितं सम्यक् पञ्चपल्लववारिणा । शक्त्या तु गुटिकाद्रव्यैर्वासितं मुखवासकं ॥३९॥

---

१. चन्दनागुरुशैलजमिति ख. छ. च । २. देवदारुश्चेति घ. ञ. च ।
३. ग्रन्थिपर्णकमिति ग. घ. ञ. च ।
४. सह सर्जरसेनेत्यादिः चोलं कर्पूरमेव चेत्यन्तः पाठः ट. पुस्तके नास्ति ।
५. कन्दुकञ्चेति ख. छ. च । ६. दद्यात्तुर्यं तुलोन्मितमिति ट० छ. च ।
७. कचोलैलेत्यादिः गुटिकाः शुभा इत्यन्तः पाठः घ. ज. पुस्तकद्वये नास्ति ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कटुकं दन्तकाष्ठञ्च गोमूत्रे वासितं त्र्यहं। कृतञ्च पूगवद्राम मुखसौगन्धिकारकं ॥४०॥
त्वक्पथ्ययोः समावंशौ शशिभागार्द्धसंयुतौ। नागवल्लीसमो भाति मुखवासो मनोहरः॥४१॥
एवं कुर्य्यात् सदा स्त्रीणां रक्षणं पृथिवीपतिः। न चासां विश्वसेज्जातु पुत्रमातुर्विशेषतः॥४२॥
न स्वपेत् स्त्रीगृहे रात्रौ विश्वासः कृत्रिमो भवेत्।

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये स्त्रीरक्षादिकामशास्त्रं नाम चतुर्विंशत्यधिक-द्विशततमोऽध्यायः।

पञ्चविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

राजधर्माः।

पुष्कर उवाच

राजपुत्रस्य रक्षा च कर्त्तव्या पृथिवीक्षिता। धर्मार्थकामशास्त्राणि धनुर्वेदञ्च शिक्षयेत्॥१॥
शिल्पानि शिक्षयेच्चैवमाप्तैर्मिथ्याप्रियंवदैः। शरीररक्षाव्याजेन रक्षिणोऽस्य नियोजयेत्॥२॥
न चास्य सङ्गो दातव्यः क्रुद्धलुब्धविमानितैः।
अशक्यन्तु गुणाधानं कर्त्तुं तं बन्धयेत् सुखैः॥ ३॥
अधिकारेषु सर्वेषु विनीतं विनियोजयेत्। मृगयां पानमक्षांश्च राज्यनाशं स्त्यजेन्नृपः॥४॥
दिवास्वप्नं वृथाट्याञ्च वाक्पारुष्यं विवर्जयेत्। निन्दाञ्च दण्डपारुष्यमर्थदूषणमुत्सृजेत्॥
आकाराणां समुच्छेदो दुर्गादीनामसत्क्रिया। अर्थानां दूषणं प्रोक्तं विप्रकीर्णत्वमेव च॥६॥
अदेशकाले यद्दानमपात्रे दानमेव च। अर्थेषु दूषणं प्रोक्तमसत्कर्मप्रवर्त्तनं॥७॥
कामं क्रोधं मदं मानं लोभं दर्पञ्च वर्जयेत। ततो भृत्यजयङ्कृत्वा पौरजानपदं जयेत॥८॥
जयेद्बाह्यानरीन् पश्चाद्बाह्याश्च त्रिविधारयः। गुरवस्ते यथा पूर्वं कुल्यानन्तरकृत्रिमाः॥६॥
पितृपैतामहं मित्रं सामन्तञ्च तथा रिपोः। कृत्रिमञ्च महाभाग मित्रन्त्रिविधमुच्यते॥१०॥
स्वाम्यमात्यञ्जनपदा दुर्गं दण्डस्तथैव च। कोषो मित्रञ्च धर्मज्ञ सप्ताङ्गं राज्यमुच्यते॥
मूलं स्वामी स वै रक्ष्यस्तस्माद्राज्यं[1] विशेषतः।
राज्याङ्गद्रोहिणं हन्यात्काले तीक्ष्णो मृदुर्भवेत्॥ १२॥
एवं लोकद्वयं राज्ञो भृत्यैर्हासं विवर्जयेत्। भृत्याः परिभवन्तीह नृपं हर्षणसत्कथं॥१३॥
लोकसङ्ग्रहणार्थाय कृतकव्यसनो भवेत्। स्मितपूर्वाभिभाषी स्यात् लोकानां रञ्जनं चरेत्॥
दीर्घसूत्रस्य नृपतेः कर्महानिर्ध्रुवं भवेत्। रागे दर्पे च माने च द्रोहे पापे च कर्मणि॥१५॥
अप्रिये चैव वक्तव्ये दीर्घसूत्रः प्रशस्यते। गुप्तमन्त्रो भवेद्राजा नापदो गुप्तमन्त्रतः॥१६॥

---

१. तस्माद्राष्ट्रमिति ख. ग. घ. छ. ज. ञ. ट. च।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ज्ञायते हि कृतं कर्म्म नारब्धं तस्य राज्यकं[1]। आकारैरिङ्गितैर्गत्या चेष्टया भाषितेन च ॥१७॥
नेत्रवक्त्रविकाराभ्यां गृह्यतेऽन्तर्गतं पुनः। नैकस्तु मन्त्रयेन्मन्त्रं न राजा बहुभिः सह ॥१८॥
बहुभिर्मन्त्रयेत कामं राजा मन्त्रान् पृथक् पृथक्। मन्त्रिणामपि नो कुर्यान्मन्त्री मन्त्रप्रकाशनं ॥
क्वापि कस्यापि[2] विश्वासो भवतीह सदा नृणां। निश्चयश्च तथा मन्त्रे कार्य्यं एकेन सूरिणा ॥२०॥
नश्येद्विनयाद्राजा राज्यञ्च विनयाल्लभेत्। त्रैविद्येभ्यस्त्रयीं विद्यां दण्डनीतिञ्च शाश्वतीं ॥२१॥
आन्वीक्षिकीञ्चार्थविद्यां वार्त्तारम्भांश्च लोकतः। जितेन्द्रियो हि शक्नोति वशे स्थापयितुं प्रजाः ॥
पूज्या देवा द्विजाः सर्वे दद्याद्दानानि तेषु च। द्विजे दानञ्चाक्षयोऽयं निधिः कैश्चिन्न नाश्यते ॥
सङ्ग्रामेष्वनिवर्त्तित्वं प्रजानां परिपालनं। दानानि ब्राह्मणानाञ्च राज्ञो निःश्रेयसम्परं ॥२४॥
कृपणानाथवृद्धानां विधवानाञ्च योषितां। योगक्षेमञ्च वृत्तिञ्च तथैव परिकल्पयेत् ॥२५॥
वर्णाश्रमव्यवस्थानं कार्यन्तापसपूजनं। न विश्वसेच्च सर्वत्र तापसेषु च विश्वसेत् ॥२६॥
विश्वासयेच्चापि परन्तत्त्वभूतेन हेतुना। वकवच्चिन्तयेदर्थं सिंहवच्च पराक्रमेत् ॥२७॥
वृकवच्चावलुम्पेत शशवच्च विनिष्पतेत्। दृढप्रहारी च भवेत् तथा शूकरवन्नृपः ॥२८॥
चित्राकारश्च शिखिवद् दृढभक्तिस्तथा श्ववत्। भवेच्च मधुराभाषी तथा कोकिलवन्नृपः ॥२९॥
काकशङ्की भवेन्नित्यमज्ञातां वसतिं वसेत्। नापरीक्षितपूर्वञ्च भोजनं शयनं स्पृशेत् ॥३०॥
नाविज्ञातां स्त्रियं गच्छेन्नाज्ञातां नावमारुहेत्। राष्ट्रकर्षी भ्रस्यते च राज्यार्थाच्चैव जीवितात् ॥
भृतो वत्सो जातबलः कर्मयोग्यो यथा भवेत। तथा राष्ट्रं महाभाग भृतं कर्मसहं भवेत ॥३२॥
सर्वं कर्मेदमायत्तं विधाने दैवपौरुषे। तयोर्दैवमचिन्त्यं हि पौरुषे विद्यते क्रिया ॥३३॥

जनानुरागप्रभवा राज्ञो राज्यमहीश्रियः।

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये राजधर्मो नाम पञ्चविंशत्यधिक-
द्विशततमोऽध्यायः।

षड्विंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

राजधर्माः।

पुष्कर उवाच

स्वमेव कर्म दैवाख्यं विद्धि देहान्तरार्जितं। तस्मात् पौरुषमेवेह श्रेष्ठमाहुर्मनीषिणः ॥१॥
प्रतिकूलं तथा दैवं पौरुषेण विहन्यते। सात्त्विकात् कर्म्मणः पूर्वात् सिद्धिः स्यात्पौरुषं विना ॥
पौरुषं दैवसम्पत्त्या काले फलति भार्गव। दैवं पुरुषकारश्च द्वयं पुंसः फलावहं ॥३॥
कृषेर्वृष्टिसमायोगात् काले स्युः फलसिद्धयः। सधर्म्मं पौरुषं कुर्यान्नालसो न च दैववान् ॥

---

१. तस्य कर्मकमिति ख.। २. क्वचित् कस्यापि इति ख. ग. घ. ज. ट. च.।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सामादिभिरुपायैस्तु सर्वे सिद्ध्यन्त्युपक्रमाः । साम चोपप्रदानञ्च भेददण्डौ तथापरौ ।५।।
मायोपेक्षेन्द्रजालञ्च उपायाः सप्त ताञ्छृणु । द्विविधं कथितं साम तथ्यञ्चातथ्यमेव च ।।६।।
तत्राप्यतथ्यं साधूनामाक्रोशायैव जायते । महाकुलीना ह्यृजवो धर्मनित्या जितेन्द्रियाः ।।७।।
सामसाध्या अतथ्यैश्च गृह्यन्ते राक्षसा अपि । तथा तदुपकाराणां कृतानाञ्चैव वर्णनं ।।८।।
परस्परन्तु ये द्विष्टाः क्रुद्धभीतावमानिताः । तेषाम्भेदं प्रयुञ्जीत परमं दर्शयेद्भयं[1] ।।६।।
आत्मीयान् दर्शयेदाशां येन दोषेण बिभ्यति । परास्तेनैव ते भेद्या रक्ष्यो वै ज्ञातिभेदकः ।।
सामन्तकोपो वाह्यस्तु मन्त्रामात्यात्मजादिकः[2] ।
अन्तःकोपञ्चोपशाम्यं कुर्वन् शत्रोश्च तं जयेत् ।। ११ ।।
उपायश्रेष्ठं दानं स्याद्दानादुभयलोकभाक् । न सोऽस्ति नाम दानेन वशगो यो न जायते ।।
दानवानेव शक्नोति संहतान् भेदितुं परान् । त्रयासाध्यं साधयेत्तं दण्डेन च कृतेन च ।।१३।।
दण्डे सर्वं स्थितं दण्डो नाशयेद् दुष्प्रणीकृतः ।
अदण्ड्यान् दण्डयन्नश्येद्दण्ड्यान् राजाप्यदण्डयन् ।। १४ ।।
देवदैत्योरगनराः सिद्धा भूताः पतत्रिणः । उत्क्रमेयुः स्वमर्यादां यदि दण्डान् न पालयेत् ।।
यस्माददान्तान् दमयत्यदण्ड्यान्दण्डयत्यपि । दमनाद्दण्डनाच्चैव तस्माद्दण्डं विदुर्बुधाः ।।
तेजसा दुर्न्निरीक्ष्यो हि राजा भास्करवत्ततः । लोकप्रसादं गच्छेत दर्शनाचन्द्रवत्ततः ।।१७।।
जगद्व्याप्नोति वै चारैरतो राजा समीरणः । दोषनिग्रहकारित्वाद्राजा वैवस्वतः प्रभुः ।।१८।।
यदा दहति दुर्बुद्धिं तदा भवति पावकः । यदा दानं द्विजातिभ्यो दद्यात् तस्माद्धनेश्वरः ।।
धनधाराप्रवर्षित्वाद्देवादौ वरुणः स्मृतः । क्षमया धारयंल्लोकान् पार्थिवः पार्थिवो भवेत् ।।२०।।
उत्साहमन्त्रशक्त्याद्यै रक्षेद्यस्माद्धरिस्ततः ।।

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये सामाद्युपायो नाम षड्विंशत्यधिक-
द्विशततमोऽध्यायः ।

सप्तविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

राजधर्माः ।

पुष्कर उवाच

दण्डप्रणयनं वक्ष्ये येन राज्ञः परा गतिः । त्रियवं कृष्णलं विद्धि माषस्तत्पञ्चकं भवेत् ।।१।।
कृष्णलानां तथा षष्ट्या[3] कर्षार्द्धं राम कीर्त्तितं । सुवर्णश्च विनिर्दिष्टो राम षोडशमाषकः ।।२।।
निष्कः सुवर्णाश्चत्वारो धरणं दशभिस्तु तैः । ताम्ररूप्यसुवर्णानां मानमेतत् प्रकीर्त्तितं ।।३।।

१. परस्माद्दर्शयेद्भयमिति ञ० । २. मन्त्रामात्यानुजादिक इति ञ० ।
३. तथा चाष्टौ इति छ. ज. च ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तास्त्रिकैः कार्षिको राम प्रोक्तः कार्षापणो बुधैः ।
पणानां द्वे शते सार्द्धं प्रथमः साहसः स्मृतः[1] ॥ ४ ॥
मध्यमः पञ्च विज्ञेयः सहस्रमपि चोत्तमः । चौरैरमूषितो यस्तु मूषितोऽस्मीति भाषते ॥५॥
तत्प्रदातरि भूपाले स दण्ड्यस्तावदेव तु । यो यावद्विपरीतार्थं मिथ्या वा यो वदेत्तु तं ॥६॥
तौ नृपेण ह्यधर्मज्ञौ दाप्यौ तद्द्विगुणं दमं[2] । कूटसाक्ष्यन्तु कुर्वाणांस्त्रीन् वर्णांश्च प्रदापयेत् ॥
विवासयेद् ब्राह्मणन्तु भोज्यो विधिर्न्न हीरितः ।
निक्षेपस्य समं मूल्यं दण्ड्यो निक्षेपभुक् तथा ॥ ८ ॥
वस्त्रादिकस्य धर्म्मज्ञ तथा धर्मो न हीयते । यो निक्षेपं घातयति यश्चानिक्षिप्य याचते ॥९॥
तावुभौ चौरवच्छास्यौ दण्ड्यौ वा द्विगुणं दमं ।
अज्ञानाद्यः पुमान् कुर्य्यात् परद्रव्यस्य विक्रयं ॥ १० ॥
निर्दोषो ज्ञानपूर्वन्तु चौरवद्दण्डमर्हति[3] । मूल्यमादाय यः शिल्पं न दद्याद् दण्ड्य एव सः ॥
प्रतिश्रुत्याप्रदातारं सुवर्णं दण्डयेन्नृपः । भृतिं गृह्य न कुर्य्याद्यः कर्माष्टौ कृष्णला दमः ॥१२॥
अकाले तु त्यजन् भृत्यं दण्ड्यः स्यात्तावदेव तु ।
क्रीत्वा विक्रीय वा किञ्चिद्यस्येहानुशयो भवेत् ॥ १३ ॥
सोऽन्तर्दशाहात्तत्स्वामी दद्याच्चैवाददीत च । परेण तु दशाहस्य नादद्यान्नैव दापयेत् ॥
आददद्धि ददच्चैव राज्ञा दण्ड्याः शतानि षट् ।
वरे दोषानविख्याप्य यः कन्यां वरयेदिह[4] ॥ १५ ॥
दत्ताप्यदत्ता सा तस्य राज्ञा दण्ड्यः शतद्वयं ।
प्रदाय कन्यां योऽन्यस्मै पुनस्तां सम्प्रयच्छति ॥ १६ ॥
दण्डः कार्य्यो नरेन्द्रेण तस्याप्युत्तमसाहसः । सत्यङ्कारेण वाचा च युक्तं पुण्यमसंशयं ॥
लुब्धोऽन्यत्र च विक्रेता षट्शतं दण्डमर्हति । दद्याद्धेनुं न यः पालो गृहीत्वा भक्तवेतनं ॥
स तु दण्ड्यः शतं राज्ञा सुवर्णं वाप्यरक्षिता । धनुःशतं परीणाहो ग्रामस्य तु समन्ततः ॥
द्विगुणं त्रिगुणं वापि नगरस्य च कल्पयेत् । वृतिं तत्र प्रकुर्वीत यामुष्ट्रो नावलोकयेत् ॥२०॥
तत्रापरिवृते धान्ये हिंसिते नैव दण्डनं । गृहन्तडागमारामं क्षेत्रं वा भीषया हरन् ॥२१॥
शतानि पञ्च दण्ड्यः स्यादज्ञानाद् द्विशतो दमः । मर्यादाभेदकाः सर्वे दण्ड्याः प्रथमसाहसं ॥
शतं ब्राह्मणमाक्रुश्य क्षत्रियो दण्डमर्हति । वैश्यश्च द्विशतं राम शूद्रश्च बधमर्हति ॥२३॥
पञ्चाशद्ब्राह्मणो दण्ड्यः क्षत्रियस्याभिशंसने । वैश्ये वाप्यर्द्धपञ्चाशच्छूद्रे द्वादशको दमः ॥
क्षत्रियस्याप्नुयाद्वैश्यः साहसं पूर्वमेव तु । शूद्रः क्षत्रियमाक्रुश्य जिह्वाच्छेदनमाप्नुयात् ॥
धर्मोपदेशं विप्राणां शूद्रः कुर्वंश्च दण्डभाक् । श्रुतदेशादिवितथी दाप्यो द्विगुणसाहसं ॥२६॥

---

१. तास्त्रिकैः कार्षिक इत्यादिः, साहसः स्मृत इत्यन्तः पाठः झ. पुस्तके नास्ति ।
२. यो यावदित्यादिः, तद्द्विगुणं दममित्यन्तः पाठः झ. पुस्तके नास्ति ।
३. चौरवद्वधमर्हतीति घ. ञ. च । ४. वरयेद्यदि इति घ. ञ. च ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उत्तमः साहसस्तस्य यः पापैरुत्तमान् क्षिपेत् । प्रमादाद्यैर्मया प्रोक्तं प्रीत्या दण्डार्द्धमर्हति ॥
मातरं पितरं ज्येष्ठं भ्रातरं श्वशुरं गुरुं । आक्षारयञ्छतं दण्ड्यः पन्थानं चाददद्गुरोः ॥
अन्त्यजातिर्द्विजातिन्तु येनाङ्गेनापराध्नुयात् । तदेवच्छेदयेत्तस्य क्षिप्रमेवाविचारयन् ॥२९॥
अवनिष्ठीवतो दर्पाद् द्वावोष्ठौ छेदयेन्नृपः । अपमूत्रयतो मेढ्रमपशब्दयतो गुदं ॥३०॥
उत्कृष्टासनसंस्थस्य नीचस्याधोनिकृन्तनं । यो यदङ्गं च रुजयेत्तदङ्गन्तस्य कर्त्तयेत् ॥३१॥
अर्द्धपादकराः कार्या गोगजाश्वोष्ट्रघातकाः । वृक्षन्तु विफलं कृत्वा सुवर्णं दण्डमर्हति ॥३२॥
द्विगुणं दापयेच्छिन्ने पथि सीम्नि जलाशये । द्रव्याणि यो हरेद्यस्य ज्ञानतोऽज्ञानतोऽपि वा ॥
स तस्योत्पाद्य तुष्टिन्तु राज्ञे दद्यात्ततो दमं । यस्तु रज्जुं घटं कूपाद्धरेच्छिन्द्याच्च तां प्रपां ॥

स दण्डं प्राप्नुयान्मासं दण्ड्यः स्यात् प्राणिताड़ने ।
धान्यं दशभ्यः कुम्भेभ्यो हरतोऽभ्यधिकं वधः ॥ ३५ ॥

शेषेऽप्येकादशगुणं तस्य दण्डं प्रकल्पयेत् । सुवर्णरजतादीनां नृस्त्रीणां हरणे वधः ॥३६॥
येन येन यथाङ्गेन स्तेनो नृषु विचेष्टते । तत्तदेव हरेदस्य प्रत्यादेशाय पार्थिवः ॥३७॥
ब्राह्मणः शाकधान्यादि अल्पं गृह्णन्न दोषभाक् । गोदेवार्थं हरंश्चापि हन्याद्दुष्टं बधोद्यतं ॥
गृहक्षेत्रापहर्त्तारं तथा पत्न्यभिगामिनं । अग्निदं गरदं हन्यात्तथा चाभ्युद्यतायुधं ॥३९॥
राजा गवाभिचाराद्यं हन्याच्चैवाततायिनः । परस्त्रियं न भाषेत प्रतिषिद्धो विशेन्न हि ॥४०॥
अदण्ड्या स्त्री भवेद्राज्ञा वरयन्ती पतिं स्वयं । उत्तमां सेवमानः स्त्रीं जघन्यो बधमर्हति ॥

भर्त्तारं लङ्घयेद्या तां श्वभिः सङ्घातयेत् स्थिरं ।
सवर्णदूषितां कुर्य्यात् पिण्डमात्रोपजीविनीं ॥ ४२ ॥

ज्यायसा दूषिता नारी मुण्डनं समवाप्नुयात् । वैश्यागमे तु विप्रस्य क्षत्रियस्यान्त्यजागमे ॥
क्षत्रियः प्रथमं वैश्यो दण्ड्यः शूद्रागमे भवेत् । गृहीत्वा वेतनं वेश्या लोभादन्यत्र गच्छति ॥
वेतनन्द्विगुणं दद्याद्दण्डञ्च द्विगुणं तथा । भार्या पुत्राश्च दासाश्च शिष्यो भ्राता च सोदरः ॥४५॥
कृतापराधास्ताड्याः स्यू रज्वा वेणुदलेन वा । पृष्ठेन मस्तके हन्याच्चौरस्याप्नोति किल्बिषं ॥४६॥
रक्षास्वधिकृतैर्यस्तु प्रजाऽत्यर्थं विलुप्यते । तेषां सर्वस्वमादाय राजा कुर्य्यात् प्रवासनं ॥४७॥
ये नियुक्ताः स्वकार्येषु हन्युः कार्याणि कर्मिणां । निर्घृणाः क्रूरमनसस्तान्निःस्वान् कारयेन्नृप ॥

अमात्यः प्राड्विवाको वा यः कुर्य्यात् कार्य्यमन्यथा ।
तस्य सर्वस्वमादाय तं राजा विप्रवासयेत् ॥ ४९ ॥

गुरुतल्पे भगः कार्य्यः सुरापाणे सुराध्वजः । स्तेयेषु श्वपदं विद्याद् ब्रह्महत्याशिरः पुमान् ॥५०॥
शूद्रादीन् घातयेद्राजा पापान् विप्रान् प्रवासयेत् । महापातकिनां वित्तं वरुणायोपपादयेत् ५१॥
ग्रामेष्वपि च ये केचिच्चौराणां भक्तदायकाः । भाण्डारकोषदाश्चैव सर्वांस्तानपि घातयेत् ॥५२॥
राष्ट्रेषु राष्ट्राधिकृतान् सामन्तान् पापिनो हरेत् । सन्धिं कृत्वा तु ये चौर्यं रात्रौ कुर्वन्ति तस्कराः ॥
तेषां च्छित्वा नृपो हस्तौ तीक्ष्णे शूले निवेशयेत् । तड़ागदेवतागारभेदकान् घातयेन्नृपः ॥
समुत्सृजेद्राजमार्गे यस्त्वमेध्यमनापदि । स हि कार्षापणन्दण्ड्यस्तममेध्यञ्च शोधयेत् ॥५५॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रतिमासङ्क्रमभिदो दद्युः पञ्चशतानि ते। समैश्च विषमं यो वा चरते मूल्यतोऽपि वा ॥
समाप्नुयान्नरः पूर्वं दमं मध्यममेव वा। द्रव्यमादाय वणिजामनर्घेणावरुन्धतां ॥५७॥
राजा पृथक् पृथक् कुर्य्याद्दण्डमुत्तमसाहसं। द्रव्याणां दूषको यश्च प्रतिच्छन्दकविक्रयी ॥५८॥
मध्यमं प्राप्नुयाद्दण्डं कूटकर्त्ता तथोत्तमं। कलहापकृतं देयं दण्डश्च द्विगुणस्ततः ॥५९॥
अभक्ष्यभक्ष्ये विप्रे वा शूद्रे वा कृष्णलो दमः। तुलाशासनकर्त्ता च कूटकृन्नाशकस्य च ॥६०॥
एभिश्च व्यवहर्त्तां यः स दाप्यो दममुत्तमं। विषाग्निदां पतिगुरुविप्रापत्यप्रमापिणीं ॥६१॥
विकर्णकरनासौष्ठीं कृत्वा गोभिः प्रवासयेत्। क्षेत्रवेश्मग्रामवनविदारकास्तथा नराः ॥६२॥
राजपत्न्यभिगामी च दग्धव्यास्तु कटाग्निना। ऊनं वाप्यधिकं वापि लिखेद्यो राजशासनं ॥
पारजायिकचौरौ च मुञ्चतो दण्ड उत्तमः। राजयानासनारोढ्दण्ड उत्तमसाहसः ॥६४॥
यो मन्येताजितोऽस्मीति न्यायेनापि पराजितः। तमायान्तं पराजित्य[१] दण्डयेद् द्विगुणं दमं ॥
आह्वानकारी बध्यः स्यादनाहूतमथाह्वयन्। दाण्डिकस्य च यो हस्तादभिमुक्तः पलायते ॥
हीनः पुरुषकारेण तद् दद्याद्दाण्डिको धनं।

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये दण्डप्रणयनं नाम सप्तविंशत्यधिक-
द्विशततमोऽध्यायः।

अष्टाविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

युद्धयात्रा।

पुष्कर उवाच

यदा मन्येत नृपतिराक्रन्देन बलीयसा। पार्ष्णिग्राहोऽभिभूतो मे तदा यात्रां प्रयोजयेत् ॥१॥
पुष्टा योधा भृता भृत्याः प्रभूतञ्च बलं मम। मूलरक्षासमर्थोऽस्मि तैर्गत्वा[२] शिविरे व्रजेत् ॥
शत्रोर्वा व्यसने यायात् दैवाद्यैः पीडितं परं। भूकम्पो यान्दिशं याति याञ्च केतुर्व्यदूषयत् ॥
विद्विष्टनाशकं सैन्यं सम्भूतान्तःप्रकोपनं[३]। शरीरस्फुरणे धन्ये तथा सुस्वप्नदर्शने ॥४॥
निमित्ते शकुने धन्ये जाते शत्रुपुरं व्रजेत्। पदातिनागबहुलां सेनां प्रावृषि योजयेत् ॥५॥
हेमन्ते शिशिरे चैव रथवाजिसमाकुलां। चतुरङ्गबलोपेतां वसन्ते वा शरन्मुखे[४] ॥६॥
सेना पदातिबहुला शत्रून् जयति सर्वदा। अङ्गदक्षिणभागे तु शस्तं प्रस्फुरणं भवेत् ॥७॥
न शस्तन्तु तथा वामे पृष्ठस्य हृदयस्य च। लाञ्छनं पिटकञ्चैव विज्ञेयं स्फुरणं तथा ॥८॥
विपर्य्ययेणाभिहितं सव्ये स्त्रीणां शुभं भवेत्।

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये यात्रा नाम अष्टाविंशत्यधिक-
द्विशततमोऽध्यायः।

---

१. पुनर्जित्वेति ग. घ. ज. च। २. तैर्वृत्वा इति साधुः।
३. सम्भूतान्तःप्रकोपदमिति ख. छ. च। ४. शरद्यथेति ञ. ट. च।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

एकोनत्रिंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

स्वप्नाध्यायः ।

पुष्कर उवाच

स्वप्नं शुभाशुभं वक्ष्ये दुःस्वप्नहरणन्तथा । नाभिं विनान्यत्र गात्रे तृणवृक्षसमुद्भवः ॥१॥
चूर्णनं मूर्द्धिन कांस्यानां मुण्डनं नग्नता तथा । मलिनाम्बरधारित्वमभ्यङ्गः पङ्कदिग्धता ॥२॥
उच्चात् प्रपतनञ्चैव विवाहो गीतमेव च । तन्त्रीवाद्यविनोदश्च दोलारोहणमेव च ॥३॥
अर्जनं पद्मलोहानां सर्पाणामथ मारणं । रक्तपुष्पद्रुमाणाञ्च चण्डालस्य तथैव च ॥४॥
वराहश्वखरोष्ट्राणां तथा चारोहणक्रिया । भक्षणं पक्षिमांसानां तैलस्य कृशरस्य च[१] ॥५॥
मातुः प्रवेशो जठरे चितारोहणमेव च । शक्रध्वजाभिपतनं पतनं शशिसूर्य्ययोः ॥६॥
दिव्यान्तरीक्षभौमानामुत्पातानाञ्च दर्शनं । देवद्विजातिभूपानां गुरूणाङ्कोप एव च ॥७॥
नर्त्तनं हसनञ्चैव विवाहो गीतमेव च[२] । तन्त्रीवाद्यविहीनानां वाद्यानामपि वादनं ।८।
स्रोतोवहाधोगमनं स्नानं गोमयवारिणा । पङ्कोदकेन च तथा मशीतोयेन वाप्यथ ॥९॥
आलिङ्गनं कुमारीणां पुरुषाणाञ्च मैथुनं[३] । हानिश्चैव स्वगात्राणां विरेको वमनक्रिया ॥१०॥
दक्षिणाशाप्रगमनं व्याधिनाभिभवस्तथा । फलानामुपहानिश्च धातूनां भेदनं तथा ॥११॥
गृहाणाञ्चैव पतनं गृहसम्मार्जनन्तथा । क्रीडा पिशाचक्रव्यादवानरान्त्यनरैरपि ॥१२॥
परादभिभवश्चैव तस्माच्च व्यसनोद्भवः । काषायवस्त्रधारित्वं तद्वस्त्रैः क्रीडनं तथा[४] ॥१३॥
स्नेहपानावगाहौ च रक्तमाल्यानुलेपनं । इत्यधन्यानि स्वप्नानि तेषामकथनं शुभं ॥१४॥
भूयश्च स्वपनं तद्वत् कार्य्यं स्नानं द्विजार्च्चनं । तिलैर्होमो हरिब्रह्मशिवार्कगणपूजनं ॥१५॥
तथा स्तुतिप्रपठनं पुंसूक्तादिजपस्तथा । स्वप्नास्तु प्रथमे यामे[५] संवत्सरविपाकिनः ॥१६॥
षड्भिर्मासैर्द्वितीये तु त्रिभिर्मासैस्त्रियामिकाः । चतुर्थे त्वर्द्धमासेन दशाहादरुणोदये ॥१७।
एकस्यामथ चेद्रात्रौ शुभं वा यदि वाऽशुभं । पश्चाद् दृष्टस्तु यस्तत्र तस्य पाकं विनिर्दिशेत् ॥
तस्मात्तु शोभने स्वप्ने पश्चात्स्वापो न शस्यते । शैलप्रासादनागाश्ववृषभारोहणं हितं ॥१९॥
द्रुमाणां श्वेतपुष्पाणां गगने च तथा द्विज । द्रुमतृणोद्भवो नाभौ तथा च बहुबाहुता ॥२०॥
तथा च बहुशीर्षत्वं पलितोद्भव एव च । सुशुक्लमाल्यधारित्वं सुशुक्लाम्बरधारिता ।२१॥
चन्द्रार्कताराग्रहणं परिमार्जनमेव च । शक्रध्वजालिङ्गनञ्च ध्वजोच्छ्रायक्रिया तथा ॥२२॥
भूम्यम्बुधाराग्रहणं[६] शत्रूणाञ्चैव विक्रिया । जयो विवादे द्यूते च सङ्ग्रामे च तथा द्विज ॥

---

१. तन्त्रीवाद्यविनोदश्चेत्यादिः, तैलस्य कृशरस्य चेत्यन्तः पाठः छ. झ. पुस्तकद्वये नास्ति ।
२. विवाहोत्सव एव चेति ज० ।
३. तासामेव च मैथुनमिति ज. ।
४. हानिश्चैवेत्यादिः, क्रीडनं तथेत्यन्तः पाठः ज. पुस्तके नास्ति ।
५. प्रथमे भागे इति ख. ।
६. भूम्यम्बुधीनां ग्रहणमिति क. छ. ज. च ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भक्षणञ्चार्द्रमांसानाम्पायसस्य च भक्षणं । दर्शनं रुधिरस्यापि स्नानं वा रुधिरेण च ॥२४॥
सुरारुधिरमद्यानां पानं क्षीरस्य वाप्यथ । अस्त्रैर्विचेष्टनं भूमौ निर्मलं गगनं तथा ॥२५॥
मुखेन दोहनं शस्तं महिषीणां तथा गवां । सिंहीनां हस्तिनीनाञ्च बडवानां तथैव च ॥२६॥
प्रसादो देवविप्रेभ्यो गुरुभ्यश्च तथा द्विज । अम्भसा चाभिषेकस्तु गवां शृङ्गच्युतेन च ॥
चन्द्राद् भ्रष्टेन वा राम ज्ञेयं राज्यप्रदं हि तत् । राज्याभिषेकश्च तथा छेदनं शिरसोऽप्यथ ॥
मरणं वह्निलाभश्च वह्निदाहो गृहादिषु । लब्धिश्च राजलिङ्गानां तन्त्रीवाद्याभिवादनं ॥२९॥
यस्तु पश्यति स्वप्नान्ते राजानं कुञ्जरं हयं । हिरण्यं वृषभञ्चाश्च कुटुम्बस्तस्य वर्द्धते ॥३२॥
वृषेभगृहशैलाग्रवृक्षारोहणरोदनं । घृतविष्ठानुलेपो वा अगम्यागमनं तथा ॥३२॥
सितवस्त्रं प्रसन्नाम्भः फली वृक्षो नभोऽमलं ।

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये स्वप्नाध्यायो नाम एकोनत्रिंशत्यधिक-
द्विशततमोऽध्यायः ।

त्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

शकुनानि ।

पुष्कर उवाच

औषधानि च युक्तानि धान्यं कृष्णमशोभनं । कार्पासं तृणशुष्कञ्च गोमयं वै धनानि च ॥
अङ्गारं गुडसर्जौ च[1] मुण्डाभ्यक्तञ्च नग्नकं । अयः पङ्कं चर्म्मकेशौ उन्मत्तञ्च नपुंसकं ॥२॥
चण्डालश्वपचाद्यानि नरा बन्धनपालकाः । गर्भिणी स्त्री च विधवाः पिण्याकादीनि वै मृतं ॥
तुषभस्मकपालास्थिभिन्नभाण्डमशस्तकं । अशस्तो वाद्यशब्दश्च भिन्नभैरवझर्झरः ॥४॥

एहीति पुरतः शब्दः शस्यते न तु पृष्ठतः ।
गच्छेति पश्चाच्छब्दोऽग्रयः पुरस्तात्तु विगर्हितः ॥ ५ ॥
क यासि तिष्ठ मा गच्छ किन्ते तत्र गतस्य च ।
अनिष्टशब्दा मृत्यर्थं क्रव्यादश्च ध्वजादिगः ॥ ६ ॥

स्खलनं वाहनानाञ्च शस्त्रभङ्गस्तथैव च । शिरोघातश्च द्वाराद्यैश्छत्रवासादिपातनं ॥७॥
हरिमभ्यर्च्य संस्तुत्य स्यादमङ्गलयनाशनं । द्वितीयन्तु ततो दृष्ट्वा विरुद्धं प्रविशेद् गृहं ॥८॥
श्वेताः सुमनसः श्रेष्ठाः पूर्णकुम्भो महोत्तमः । मांसं मत्स्या दूरशब्दा वृद्ध एकः पशुस्त्वजः ॥
गावस्तुरङ्गमा नागा देवाश्च ज्वलितोऽनलः । दूर्वार्द्रगोमयं वेश्या स्वर्णरूप्यञ्च रत्नकं ॥१०॥
वचासिद्धार्थकौषध्यो मुद्ग आयुधखड्गकं । छत्रं पीठं राजलिङ्गं शवं रुदितवर्जितं ॥११॥

---

१. गुडसर्पौ चेति ग. घ. ञ. च ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

एकोनत्रिंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

स्वप्नाध्यायः ।

पुष्कर उवाच

स्वप्नं शुभाशुभं वक्ष्ये दुःस्वप्नहरणन्तथा । नाभिं विनान्यत्र गात्रे तृणवृक्षसमुद्भवः ॥१॥
चूर्णनं मूर्द्धिन कांस्यानां मुण्डनं नग्नता तथा । मलिनाम्बरधारित्वमभ्यङ्गः पङ्कदिग्धता ॥२॥
उच्चात् प्रपतनञ्चैव विवाहो गीतमेव च । तन्त्रीवाद्यविनोदश्च दोलारोहणमेव च ॥३॥
अर्जनं पद्मलोहानां सर्पाणामथ मारणं । रक्तपुष्पद्रुमाणाञ्च चण्डालस्य तथैव च ॥४॥
वराहश्वखरोष्ट्राणां तथा चारोहणक्रिया । भक्षणं पक्षिमांसानां तैलस्य कृशरस्य च[1] ॥५॥
मातुः प्रवेशो जठरे चितारोहणमेव च । शक्रध्वजाभिपतनं पतनं शशिसूर्य्ययोः ॥६॥
दिव्यान्तरीक्षभौमानामुत्पातानाञ्च दर्शनं । देवद्विजातिभूपानां गुरूणाङ्कोप एव च ॥७॥
नर्त्तनं हसनञ्चैव विवाहो गीतमेव च[2] । तन्त्रीवाद्यविहीनानां वाद्यानामपि वादनं ॥८॥
स्रोतोवहाधोगमनं स्नानं गोमयवारिणा । पङ्कोदकेन च तथा मशीतोयेन वाप्यथ ॥९॥
आलिङ्गनं कुमारीणां पुरुषाणाञ्च मैथुनं[3] । हानिश्चैव स्वगात्राणां विरेको वमनक्रिया ॥१०॥
दक्षिणाशाप्रगमनं व्याधिनाभिभवस्तथा । फलानामुपहानिश्च धातूनां भेदनं तथा ॥११॥
गृहाणाञ्चैव पतनं गृहसम्मार्जनन्तथा । क्रीडा पिशाचक्रव्यादवानरान्त्यनरैरपि ॥१२॥
परादभिभवश्चैव तस्माच्च व्यसनोद्भवः । काषायवस्त्रधारित्वं तद्वस्त्रैः क्रीडनं तथा[4] ॥१३॥
स्नेहपानावगाहौ च रक्तमाल्यानुलेपनं । इत्यधन्यानि स्वप्नानि तेषामकथनं शुभं ॥१४॥
भूयश्च स्वपनं तद्वत् कार्य्यं स्नानं द्विजार्च्चनं । तिलैर्होमो हरिब्रह्मशिवार्कगणपूजनं ॥१५॥
तथा स्तुतिप्रपठनं पुंसूक्तादिजपस्तथा । स्वप्नास्तु प्रथमे यामे[5] संवत्सरविपाकिनः ॥१६॥
षड्भिर्मासैर्द्वितीये तु त्रिभिर्मासैस्त्रियामिकाः । चतुर्थे त्वर्द्धमासेन दशाहादरुणोदये ॥१७॥
एकस्यामथ चेद्रात्रौ शुभं वा यदि वाऽशुभं । पश्चाद् दृष्टस्तु यस्तत्र तस्य पाकं विनिर्द्दिशेत् ॥
तस्मात्तु शोभने स्वप्ने पश्चात्स्वापो न शस्यते । शैलप्रासादनागाश्ववृषभारोहणं हितं ॥१९॥
द्रुमाणां श्वेतपुष्पाणां गगने च तथा द्विज । द्रुमतृणोद्भवो नाभौ तथा च बहुबाहुता ॥२०॥
तथा च बहुशीर्षत्वं पलितोद्भव एव च । सुशुक्लमाल्यधारित्वं सुशुक्लाम्बरधारिता ॥२१॥
चन्द्रार्कताराग्रहणं परिमार्जनमेव च । शक्रध्वजालिङ्गनञ्च ध्वजोच्छ्रायक्रिया तथा ॥२२॥
भूम्यम्बुधाराग्रहणं[6] शत्रूणाञ्चैव विक्रिया । जयो विवादे द्यूते च सङ्ग्रामे च तथा द्विज ॥

---

१. तन्त्रीवाद्यविनोदश्चेत्यादिः, तैलस्य कृशरस्य चेत्यन्तः पाठः छ. झ. पुस्तकद्वये नास्ति ।
२. विवाहोत्सव एव चेति ज० ।
३. तासामेव च मैथुनमिति ज. ।
४. हानिश्चैवेत्यादिः, क्रीडनं तथेत्यन्तः पाठः ज. पुस्तके नास्ति ।
५. प्रथमे भागे इति ख. ।
६. भूम्यम्बुधीनां ग्रहणमिति क. छ. ज. च ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भक्षणञ्चार्द्रमांसानाम्पायसस्य च भक्षणं। दर्शनं रुधिरस्यापि स्नानं वा रुधिरेण च ॥२४॥
सुरारुधिरमद्यानां पानं क्षीरस्य वाप्यथ। अन्त्रैर्विचेष्टनं भूमौ निर्मलं गगनं तथा ॥२५॥
मुखेन दोहनं शस्तं महिषीणां तथा गवां। सिंहीनां हस्तिनीनाञ्च बडवानां तथैव च ॥२६॥
प्रसादो देवविप्रेभ्यो गुरुभ्यश्च तथा द्विज। अम्भसा चाभिषेकस्तु गवां शृङ्गच्युतेन च ॥
चन्द्राद् भ्रष्टेन वा राम ज्ञेयं राज्यप्रदं हि तत्। राज्याभिषेकश्च तथा छेदनं शिरसोऽप्यथ ॥
मरणं वह्निलाभश्च वह्निदाहो गृहादिषु। लब्धिश्च राजलिङ्गानां तन्त्रीवाद्याभिवादनं ॥२६॥
यस्तु पश्यति स्वप्नान्ते राजानं कुञ्जरं हयं। हिरण्यं वृषभञ्चाश्च कुटुम्बस्तस्य वर्द्धते ॥३२॥
वृषेभगृहशैलाग्रवृक्षारोहणरोदनं। घृतविष्ठानुलेपो वा अगम्यागमनं तथा ॥३२॥

सितवस्त्रं प्रसन्नाम्भः फली वृक्षो नभोऽमलं।

[इत्यादिमहापुराणे आग्नेये स्वप्नाध्यायो नाम एकोनत्रिंशदधिक-
द्विशततमोऽध्यायः।

त्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

शकुनानि।

पुष्कर उवाच

औषधानि च युक्तानि धान्यं कृष्णमशोभनं। कार्पासं तृणशुष्कञ्च गोमयं वै धनानि च ॥
अङ्गारं गुडसर्जौं च[1] मुण्डाभ्यक्तश्च नग्नकं। अयः पङ्कं चर्म्मकेशौ उन्मत्तश्च नपुंसकं ॥२॥
चण्डालश्वपचाद्यानि नरा बन्धनपालकाः। गर्भिणी स्त्री च विधवाः पिण्याकादीनि वै मृतं ॥
तुषभस्मकपालास्थिभिन्नभाण्डमशस्तकं। अशस्तो वाद्यशब्दश्च भिन्नभैरवझर्झरः ॥४॥

एहीति पुरतः शब्दः शस्यते न तु पृष्ठतः।
गच्छेति पश्चाच्छब्दोऽग्र्यः पुरस्तात्तु विगर्हितः ॥ ५ ॥
क यासि तिष्ठ मा गच्छ किन्ते तत्र गतस्य च।
अनिष्टशब्दा मृत्यर्थं क्रव्यादश्च ध्वजादिगः ॥ ६ ॥

स्खलनं वाहनानाञ्च शस्त्रभङ्गस्तथैव च। शिरोघातश्च द्वाराद्यैश्छत्रवासादिपातनं ॥७॥
हरिमभ्यर्च्य संस्तुत्य स्यादमङ्गल्यनाशनं। द्वितीयन्तु ततो दृष्ट्वा विरुद्धं प्रविशेद् गृहं ॥८॥
श्वेताः सुमनसः श्रेष्ठाः पूर्णकुम्भो महोत्तमः। मांसं मत्स्या दूरशब्दा वृद्ध एकः पशुस्त्वजः ॥
गावस्तुरङ्गमा नागा देवाश्च ज्वलितोऽनलः। दूर्वार्द्रगोमयं वेश्या स्वर्णरूप्यञ्च रत्नकं ॥१०॥
वचासिद्धार्थकौषध्यो मुद्ग आयुधखड्गकं। छत्रं पीठं राजलिङ्गं शवं रुदितवर्जितं ॥११॥

---

१. गुडसर्पौ चेति ग. घ. ञ. च।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

फलं घृतं दधि पयो अक्षतादर्शमाक्षिकं। शङ्ख इक्षुः शुभं वाक्यं भक्तवादित्रगीतकं ॥१२॥
गम्भीरमेघस्तनितं तडित्तुष्टिश्च मानसी। एकतः सर्वलिङ्गानि मनसस्तुष्टिरेकतः ॥१३॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये माङ्गल्याध्यायो नाम त्रिंशदधिक-
द्विशततमोऽध्यायः।

एकत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

शकुनानि।

पुष्कर उवाच

तिष्ठतो गमने प्रश्ने पुरुषस्य शुभाशुभं। निवेदयन्ति शकुना देशस्य नगरस्य च ॥१॥
सर्वः पापफलो दीप्तो निर्दिष्टो दैवचिन्तकैः। शान्तः शुभफलश्चैव दैवज्ञैः समुदाहृतः ॥२॥
षट्प्रकारा विनिर्दिष्टाः शकुनानाञ्च दीप्तयः। वेलादिग्देशकरणरुतजातिविभेदतः ॥३॥
पूर्वा पूर्वा च विज्ञेया सा तेषां बलवत्तरा। दिवाचरो रात्रिचरस्तथा रात्रौ दिवाचरः ॥४॥
क्रूरेषु दीप्ता विज्ञेया ऋक्षलग्नग्रहादिषु। धूमिता सा तु विज्ञेया याङ्गमिष्यति भास्करः ॥५॥

यस्यां स्थितः सा ज्वलिता मुक्ता चाङ्गारिणी मता।
एतास्तिस्रः स्मृता दीप्ताः पञ्च शान्तास्तथापराः ॥ ६ ॥
दीप्तायान्दिशि दिग्दीप्तं शकुनं परिकीर्त्तितं।
ग्रामेऽरण्या वने ग्राम्यास्तथा निन्दितपादपः ॥ ७ ॥

देशे चैवाशुभे ज्ञेयो देशदीप्तो द्विजोत्तमः। क्रियादीप्तो विनिर्दिष्टः स्वजात्यनुचितक्रियः ॥८॥
रुतदीप्तश्च कथितो भिन्नभैरवनिस्वनः। जातिदीप्तस्तथा ज्ञेयः केवलं मांसभोजनः ॥९॥
दीप्ताच्छान्तो विनिर्दिष्टः सर्वैर्भेदैः प्रयत्नतः। मिश्रैर्मिश्रो विनिर्दिष्टस्तस्य वाच्यं फलाफलं॥
गोश्वोष्ट्रगर्दभश्वानः सारिका गृहगोधिका। चटका भासकूर्माद्याः कथिता ग्रामवासिनः॥११॥
अजाविशुकनागेन्द्राः कोलो महिषवायसौ। ग्राम्यारण्या विनिर्दिष्टाः सर्वेऽन्ये वनगोचराः[१] ॥
मार्जारकुक्कुटौ ग्राम्यौ तौ चैव वनगोचरौ। तयोर्भवति विज्ञानं नित्यं वै रूपभेदतः ॥१३॥
गोकर्णशिखिचक्राह्वखरहारीतवायसाः। कुलाहकुक्कुभश्येनफेरुखञ्जनवानराः ॥१४॥
शतघ्नचटकश्यामचासश्येनकपिञ्जलाः। तित्तिरिः शतपत्रञ्च कपोतश्च तथा त्रयः ॥१५॥
खञ्जरीटकदात्यूहशुकराजीवकुक्कुटाः। भारद्वाजश्च सारङ्ग इति ज्ञेया दिवाचराः ॥१७॥
वागुर्युलूकशरभक्रौञ्चाः शशककच्छपाः। लोमासिकाः पिङ्गलिकाः कथिता रात्रिगोचराः ॥१७॥

---

१. सर्वेऽन्ये च वनेचरा इति झ.।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हंसाश्च मृगमार्जारनकुलर्क्षभुजङ्गमाः । वृकारिसिंहव्याघ्रोष्ट्रग्रामशूकरमानुषाः ॥१८॥
श्वाविद्वृषभगोमायुवृककोकिलसारसाः । तुरङ्गकौपीननरा गोधा ह्युभयचारिणः ॥१९॥
बलप्रस्थानयोः सर्वे पुरस्तात्सञ्चारिणः । जथावहा विनिर्दिष्टाः पश्चान्निधनकारिणः ॥२०॥
गृहाद्गम्य यदा चासो व्याहरेत् पुरतः स्थितः । नृपावमानं वदति वामः कलहभोजने ॥२१॥
याने तद्दर्शनं शस्तं सव्यमङ्गस्य वाप्यथ । चौरैर्मोषमथाख्याति मयूरो भिन्ननिस्वनः ॥२२॥
प्रयातस्याग्रतो राम मृगः प्राणहरो भवेत् । ऋक्षाखुजम्बुकव्याघ्रसिंहमार्जारगर्दभाः ॥२३॥
प्रतिलोमास्तथा राम खरश्च विकृतस्वनः । वामः कपिञ्जलः श्रेष्ठस्तथा दक्षिणसंस्थितः ॥२४॥
पृष्ठतो निन्दितफलस्तित्तिरिस्तु न शस्यते । एणा वराहाः पृषता वामा भूत्वा तु दक्षिणाः ॥
भवन्त्यर्थकरा नित्यं विपरीता विगर्हिताः । वृषाश्वजम्बुकव्याघ्राः सिंहमार्जारगर्दभाः[१] ॥२६॥
वाञ्छितार्थकरा ज्ञेया दक्षिणाद्वामतो गताः ।
शिवा श्यामाननाच्छूच्छूः पिङ्गला गृहगोधिका ॥ ७ ॥
शूकरी परपुष्टा च पुन्नामानश्च वामतः । स्त्रीसञ्ज्ञा भासकारूषकपिश्रीकर्णच्छित्कराः॥२८॥
कपिश्रीकर्णपिप्पीका[२] रुरुश्येनाश्च दक्षिणाः । जातोक्षाहिशशक्रोडगोधानां कीर्त्तनं शुभं ।२९॥
ततः सन्दर्शनं नेष्टं प्रतीपं वानरर्क्षयोः । कार्य्यकृद्बली शकुनः प्रस्थितस्य हि योऽन्वहं ॥
भवेत्तस्य फलं वाच्यं तदेव दिवसं बुधैः । मत्ता भक्ष्यार्थिनो बाला वैरसक्तास्तथैव च ॥३१॥
सीमान्तमभ्यन्तरिता विज्ञेया निष्फला द्विज । एकद्वित्रिचतुर्भिस्तु शिवा धन्या रुतैर्भवेत् ॥
पञ्चभिश्च तथा षड्भिरधन्या परिकीर्त्तिता । सप्तभिश्च तथा धन्या निष्फला परतो भवेत् ॥
नृणां रोमाञ्चजननी वाहनानां भयप्रदा । ज्वालानला सूर्य्यमुखी विज्ञेया भयवर्द्धनी ॥३४॥
प्रथमं सारङ्गे दृष्टे शुभे देशे शुभं भवेत् । संवत्सरं मनुष्यस्य अशुभे च शुभं तथा ॥३५॥
तथाविधन्नरः पश्येत्सारङ्गं प्रथमेऽहनि । आत्मनश्च तथात्वेन ज्ञातव्यं वत्सरं फलं ॥३६॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये शकुनानि नामैकत्रिंशदधिक-
द्विशततमोऽध्यायः ।

द्वात्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

शकुनानि ।

पुष्कर उवाच

विशन्ति येन मार्गेण वायसा बहवः पुरं । तेन मार्गेण रुद्धस्य पुरस्य ग्रहणं भवेत् ॥१॥

---

१. प्रतिलोमास्तथेत्यादिः, सिंहमार्जारगर्दभा इत्यन्तः पाठः ज. झ. पुस्तकद्वये नास्ति ।

२. पुन्नामानश्चेत्यादिः, पिप्पीका इत्यन्तः पाठोऽस्मल्लब्धेषु नवपुस्तकेषु प्रायः समान एव । तेषामेकतमस्यापि साहाय्येन शोधितुं न स शक्यते । अभिधानादिष्वपि तत्रत्यशब्दा नोपलभ्यन्ते । अतस्तत्र विरतिः ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सेनायां यदि वासार्थे निविष्टो वायसो रुवन् । वामो भयातुरस्त्रस्तो भयं वदति दुस्तरं[१] ॥२॥
छायाङ्गवाहनोपानच्छत्रवस्त्रादिकुट्टने । मृत्युस्तत्पूजने पूजा तदिष्टकरणे शुभं ॥३॥
प्रोषितागमकृत्काकः कुर्वन् द्वारि गतागतं । रक्तं दग्धं गृहे द्रव्यं क्षिपन्वह्निनिवेदकः ॥४॥
न्यसेद्रक्तं पुरस्ताच्च निवेदयति बन्धनं । पीतं द्रव्यं तथा रुक्म रूप्यमेव तु भार्गव ॥५॥
यच्चैवोपनयेद् द्रव्यं तस्य लब्धिं विनिर्दिशेत् । द्रव्यं वापनयेद्यत्तु तस्य हानिं विनिर्दिशेत् ॥६॥
पुरतो धनलब्धिः स्यादाममांसस्य छर्दने । भूलब्धिः स्यान्मृदः क्षेपे राज्यं रत्नार्पणे महत् ॥७॥
यातुः काकोऽनुकूलस्तु क्षेमः कर्मक्षमो भवेत् । न त्वर्थसाधको ज्ञेयः प्रतिकूलो भयावहः ॥८॥
सम्मुखेऽभ्येति विरुवन् यात्राघातकरो भवेत् । वामः काकः स्मृतो धन्यो दक्षिणोऽर्थविनाशकृत्[२] ॥
वामोऽनुलोमगः श्रेष्ठो मध्यमो दक्षिणः स्मृतः । प्रतिलोमगतिर्वामो गमनप्रतिषेधकृत ॥१०॥
निवेदयति यात्रार्थमभिप्रेतं गृहे गतः[३] । एकाक्षिचरणस्त्वर्कं वीक्षमाणो भयावहः ॥११॥
कोटरे वासमानश्च महानर्थकरो भवेत् । न शुभस्तूषरे काकः पङ्काङ्कः स तु शस्यते ॥१२॥
अमेध्यपूर्णवदनः काकः सर्वार्थसाधकः[४] । ज्ञेयाः पतत्रिणोऽन्येऽपि काकवद् भृगुनन्दन ॥१३॥
स्कन्धावारापसव्यस्थाः श्वानो विप्रविनाशकाः । इन्द्रस्थाने नरेन्द्रस्य पुरेशस्य तु गोपुरे ॥
अन्तर्गृहे गृहेशस्य मरणाय भवेद्भषन् । यस्य जिघ्रति वामाङ्गं तस्य स्यादर्थसिद्धये ॥१५॥
भयाय दक्षिणं चाङ्गं तथा भुजमदक्षिणं । यात्राघातकरो यातुर्भवेत् प्रतिमुखागतः ॥१६॥
मार्गावरोधको मार्गे चौरान् वदति भार्गव । अलाभोऽस्थिमुखः पापो रज्जुचीरमुखस्तथा ॥
सोपानत्कमुखो धन्यो मांसपूर्णमुखोऽपि च । अमङ्गल्यमुखद्रव्यं केशश्चैवाशुभं तथा ॥१८॥
अवमूत्याग्रतो याति यस्य तस्य भयं भवेत् । यस्यावमूत्र्य व्रजति शुभं देशन्तथा द्रुमं ॥१९॥
मङ्गल्यञ्च तथा द्रव्यं तस्य स्यादर्थसिद्धये । श्ववच्च राम विज्ञेयास्तथा वै जम्बुकादयः ॥२०॥
भयाय स्वामिनो ज्ञेयमनिमित्तं रुतङ्गवां । निशि चौरभयाय स्याद्विकृतं मृत्यवे तथा ॥२१॥
शिवाय स्वामिनो रात्रौ बलीवर्दो नदन् भवेत् । उत्सृष्टवृषभो राज्ञो विजयं सम्प्रयच्छति ॥२२॥
अभयं भक्षयन्त्यश्च गावो दत्तास्तथा स्वकाः । त्यक्तस्नेहाः स्ववत्सेषु गर्भक्षयकरा मताः ॥२३॥
भूमिं पादैर्विनिघ्नन्त्यो दीना भीता भयावहाः । आर्द्राङ्ग्यो हृष्टरोमाश्च शृङ्गलग्नमृदः शुभाः ॥
महिष्यादिषु चाप्येतत् सर्वं वाच्यं विजानता । आरोहणं तथाऽन्येन सपर्य्याणस्य[५] वाजिनः ॥
जलोपवेशनं नेष्टं भूमौ च परिवर्त्तनं । विपत्करन्तुरङ्गस्य सुप्तं वाप्यनिमित्ततः ॥२६॥
यवमोदकयोर्द्वेषस्त्वकस्माच्च न शस्यते । वदनाद्रुधिरोत्पत्तिर्वेपनं न च शस्यते ॥२७॥
क्रीडन् वकैः कपोतैश्च सारिकाभिर्मृतिं वदेत । साश्रुनेत्रो जिह्वया च पादलेही विनष्टये[६] ॥२८॥
वामपादेन च तथा विलिखंश्च वसुन्धरां । स्वपेद्वा वामपार्श्वेन दिवा वा न शुभप्रदः ॥२९॥

---

१. दुष्करमिति ख. छ. च । २. दक्षिणोऽन्नविनाशकृदिति ग. घ. ञ. च ।
३. नत्वर्थसाधक इत्यादिः, गृहे गत इत्यन्तः पाठः ट. पुस्तके नास्ति ।
४. कोटरे इत्यादिः, सर्वार्थसाधक इत्यन्तः पाठः ट. पुस्तके नास्ति ।
५. सपर्याहंस्येति साधुः । ६. विनाशकृदिति ज. ट. च ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भयाय स्यात् सकृन्मूत्री तथा निद्राविलाननः । आरोहणं न चेद्यात् प्रतीपं वा गृहं व्रजेन् ॥
यात्राविघातमाचष्टे वामपार्श्वं तथा स्पृशन् । हेषमाणः शत्रुयोधं पादस्पर्शी जयावहः ॥३१॥
ग्रामे व्रजति नागश्चेन्मैथुनं देशहा भवेत् । प्रसूतां नागवनिता मत्ता चान्ताय भूपतेः ॥३२॥
आरोहणं नचेद्यात् प्रतीपं वा गृहं व्रजेत् । मदं वा वारणो जह्याद्राजघातकरो भवेत् ॥३३॥
वामं दक्षिणपादेन पादमाक्रमते शुभः । दक्षिणञ्च तथा दन्तं परिमार्ष्टि करेण च ॥३४॥
वृषोऽश्वः कुञ्जरो वापि रिपुसैन्यगतोऽशुभः । खण्डमेघातिवृष्ट्या तु सेना नाशमवाप्नुयात् ॥
प्रतिकूलग्रहर्क्षात्तु तथा सम्मुखमारुतात्[1] । यात्राकाले रणे वापि छत्रादिपतनं भयं ॥३६॥
हृष्टा नराश्चानुलोमा ग्रहा वै जयलक्षणं । काकैर्योधाभिभवनं क्रव्याद्भिर्मण्डलक्षयः ॥३७॥

प्राचीपश्चिमकैशानी सौम्या प्रेष्ठा शुभा च दिक् ।

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये शकुनानि नाम द्वात्रिंशदधिक-
द्विशततमोऽध्यायः ।

त्रयस्त्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

यात्रामण्डलचिन्तादिः ।

पुष्कर उवाच

सर्वयात्रां प्रवक्ष्यामि राजधर्मसमाश्रयात् । अस्तङ्गते नीचगते विकले रिपुराशिगे ॥१॥
प्रतिलोमे च विध्वस्ते शुक्रे यात्रां विसर्जयेत्[2] । प्रतिलोमे बुधे यात्रां दिक्पत्तौ च तथा ग्रहे ॥
वैधृतौ च व्यतीपाते नागे च शकुनौ तथा । चतुष्पादे च किन्तुघ्ने तथा यात्रां विवर्जयेत् ॥
विपत्तारे नैधने च प्रत्यरौ चाथ जन्मनि । गण्डे विवर्जयेद्यात्रां रिक्तायाञ्च तिथावपि ॥
उदीची च तथा प्राची[3] तयोरैक्यं प्रकीर्त्तितं । पश्चिमा दक्षिणा या दिक् तयोरैक्यं तथैव च ॥
वाय्वग्निदिक्समुद्भूतं परिघन्न तु लङ्घयेत । आदित्यचन्द्रशौरास्तु दिवसाश्च न शोभनाः ॥६॥
कृत्तिकाद्यानि पूर्वेण मघाद्यानि च याम्यतः । मैत्राद्यान्यपरे चाथ वासवाद्यानि वाप्युदक् ॥
सर्वद्वाराणि शस्तानि छायामानं वदामि ते । आदित्ये विंशतिर्ज्ञेयाश्चन्द्रे षोडश कीर्त्तिताः॥८॥
भौमे पञ्चदशैवोक्ताश्चतुर्दश तथा बुधे । त्रयोदश तथा जीवे शुक्रे द्वादश कीर्त्तिताः ॥९॥
एकादश तथा सौरे सर्वकर्मसु कीर्त्तिताः । जन्मलग्ने शक्रचापे सम्मुखे न व्रजेन्नरः ॥१०॥
शकुनादौ शुभे यायाज्जयाय हरिमास्मरन् । वक्ष्ये मण्डलचिन्तान्ते कर्त्तव्यं राजरक्षणं ॥११॥
स्वाम्यमात्यं तथा दुर्गं कोषो दण्डस्तथैव च । मित्रञ्जनपदश्चैव राज्यं सप्ताङ्गमुच्यते ॥१२॥

---

१. वामं दक्षिणेत्यादिः, सम्मुखमारुतादित्यन्तः पाठः झ. पुस्तके नास्ति ।
२. विवर्जयेत् इति ख. ग. घ. ञ. च । ३. दिक् पूर्वा या तथोदीचीति ञ. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सप्ताङ्गस्य तु राज्यस्य विघ्नकर्तॄन् विनाशयेत् ।[१]मण्डलेषु च सर्वेषु वृद्धिः कार्य्या महीक्षिता ॥
आत्ममण्डलमेवात्र प्रथमं मण्डलं भवेत् । सामन्तास्तस्य विज्ञेया रिपवो मण्डलस्य तु ॥
उपेतस्तु सुहृज् ज्ञेयः शत्रुमित्रमतः परं । मित्रमित्रं ततो ज्ञेयं मित्रमित्ररिपुस्ततः ॥१५॥
एतत्पुरस्तात कथितं पश्चादपि निबोध मे । पार्ष्णिग्राहस्ततः पश्चात्ततस्त्वाक्रन्द उच्यते ॥

आसारस्तु ततोऽन्यः स्यादाक्रन्दासार उच्यते ।
जिगीषोः शत्रुयुक्तस्य विमुक्तस्य तथा द्विज ॥ १७ ॥

नात्रापि निश्चयः शक्यो वक्तुं मनुजपुङ्गव । निग्रहानुग्रहे शक्तो मध्यस्थः परिकीर्त्तितः ॥१८॥
निग्रहानुग्रहे शक्तः सर्वेषामपि यो भवेत् । उदासीनः स कथितो बलवान् पृथिवीपतिः ॥१९॥
न कस्यचिद्रिपुर्म्मित्रङ्कारणाच्छत्रुमित्रके । मण्डलं तव सम्प्रोक्तमेतद् द्वादशराजकं ॥२०॥
त्रिविधा रिपवो ज्ञेयाः कुल्यानन्तरकृत्रिमाः । पूर्वपूर्वो गुरुस्तेषां दुश्चिकित्स्यतमो मतः ॥२१॥
अनन्तरोऽपि यः शत्रुः सोऽपि मे कृत्रिमो मतः । पार्ष्णिग्राहो भवेच्छत्रोर्मित्राणि रिपवस्तथा ॥
पार्ष्णिग्राहमुपायैश्च शमयेच्च तथा स्वकं । मित्रेण शत्रोरुच्छेदं प्रशंसन्ति पुरातनाः ॥२३॥
मित्रञ्च शत्रुतामेति सामन्तत्वादनन्तरं । शत्रुं जिगीषुरुच्छिन्द्यात्[२] स्वयं शक्नोति चेद्यदि ॥
प्रतापवृद्धौ तेनापि नामित्राज्जायते भयं । यथास्य नोद्विजेल्लोको विश्वासश्च यथा भवेत् ॥

जिगीषुर्धर्म्मविजयी तथा लोकं वशन्नयेत् ।

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये यात्रामण्डलचिन्तादिर्नाम त्रयस्त्रिंशदधिक-
द्विशततमोऽध्यायः ।

चतुस्त्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

षाड्गुण्यम् ।

पुष्कर उवाच

सामभेदौ मया प्रोक्तौ दानदण्डौ तथैव च । दण्डः स्वदेशे कथितः परदेशे ब्रवीमि ते ॥१॥
प्रकाशश्चाप्रकाशश्च द्विविधो दण्ड उच्यते । लुण्ठनं ग्रामघातश्च शस्यघातोऽग्निदीपनं ॥२॥
प्रकाशोऽथ विषं वह्निर्विविधैः पुरुषैर्वधः । दूषणञ्चैव साधूनामुदकानाञ्च दूषणं ॥३॥
दण्डप्रणयणं प्रोक्तमुपेक्षां शृणु भार्गव । यदा मन्येत नृपती रणे न मम विग्रहः ॥४॥
अनर्थायानुबन्धः स्यात् सन्धिना च तथा भवेत् । सामलब्धास्पदञ्चात्र दानञ्चार्थक्षयङ्करं ॥
भेददण्डानुबन्धः स्यात्तदोपेक्षां समाश्रयेत् । न चायं मम शक्नोति किञ्चित् कर्त्तुमुपद्रवं ॥
न चाहमस्य शक्नोमि तत्रोपेक्षां समाश्रयेत् । अवज्ञोपहतस्तत्र राज्ञा कार्य्यो रिपुर्भवेत् ॥

---

१. मण्डलेषु च सर्वेषु सुरेश्वरसमा हि ते इत्यर्द्धश्लोक आसारस्त्वित्यस्य पूर्वं ट. पुस्तके वर्त्तते, परन्त्वसंलग्नः ।
२. शत्रुं जिहीषुरुच्छिन्द्यादिति घ. ञ. च ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मायोपायं प्रवक्ष्यामि उत्पातैरनृतैश्चरन् । शत्रोरुद्वेजनं शत्रोः शिविरस्थस्य पक्षिगः ॥८॥
स्थूलस्य तस्य पुच्छस्थां कृत्वोल्कां विपुलां द्विज । विसृजेच्च ततश्चैवमुल्कापातं प्रदर्शयेत् ॥
एवमन्ये दर्शनीया उत्पाता बहवोऽपि च । उद्वेजनं तथा कुर्य्यात् कुहकैर्विविधैर्द्विषां ॥१०॥
सांवत्सरास्तापसाश्च नाशं ब्रूयुः परस्य च । जिगीषुः पृथिवीं राजा तेन चोद्वेजयेत् परान् ॥
देवतानां प्रसादश्च कीर्त्तनीयः परस्य तु । आगतन्नोऽमित्रबलं प्रहरध्वमभीतवत् ॥१२॥
एवं ब्रूयाद्रणे प्राप्ते भग्नाः सर्वे परे इति । क्ष्वेडाः किलकिलाः कार्य्या वाच्यः शत्रुर्हतस्तथा ॥
देवाज्ञावृंहितो राजा सन्नद्धः समरं प्रति । इन्द्रजालं प्रवक्ष्यामि इन्द्रं कालेन दर्शयेत् ॥१४॥
चतुरङ्गं बलं राजा सहायार्थं दिवौकसां । बलन्तु दर्शयेत् प्राप्तं रक्तवृष्टिञ्चरेद्रिपौ ॥१५॥
छिन्नानि रिपुशीर्षाणि प्रासादाग्रेषु दर्शयेत्[१]। षाड्गुण्यं सम्प्रवक्ष्यामि तद्वरौ सन्धिविग्रहौ ॥
सन्धिश्च विग्रहश्चैव यानमासनमेव च । द्वैधीभावः संशयश्च षड्गुणाः परिकीर्त्तिताः ॥१७॥
पणबन्धः स्मृतः सन्धिरपकारस्तु विग्रहः । जिगीषोः शत्रुविषये यानं यात्राऽभिधीयते ॥
विग्रहेण स्वके देशे स्थितिरासनमुच्यते । बलार्द्धेन प्रयाणन्तु द्वैधीभावः स उच्यते ॥१९॥
उदासीनो मध्यमो वा संश्रयात्संश्रयः स्मृतः । समेन सन्धिरन्वेष्योऽहीनेन च बलीयसा ॥
हीनेन विग्रहः कार्यः स्वयं राज्ञा बलीयसा । तत्रापि शुद्धपार्ष्णिस्तु बलीयांसं समाश्रयेत् ॥
आसीनः कर्मविच्छेदं शक्तः कर्त्तुं रिपोर्यदा । अशुद्धपार्ष्णिश्चासीत विगृह्य वसुधाधिपः ॥
अशुद्धपार्ष्णिर्बलवान् द्वैधीभावं समाश्रयेत् । बलिना विगृहीतस्तु[२] योऽसन्देहेन पार्थिवः ॥
संश्रयस्तेन वक्तव्यो गुणानामधमो गुणः । बहुक्षयव्ययायासं[३] तेषां यानं प्रकीर्त्तितं ॥२४॥
बहुलाभकरं पश्चात्तदा राजा समाश्रयेत्[४] । सर्वशक्तिविहीनस्तु तदा कुर्य्यात्तु संश्रयं ॥२५॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये उपायषड्गुणादिर्नाम चतुस्त्रिंशदधिक-
द्विशततमोऽध्यायः ।

पञ्चत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

प्रात्यहिकराजकर्म ।

पुष्कर उवाच

अजस्रं कर्म वक्ष्यामि दिनं प्रति यदाचरेत् । द्विमुहूर्त्तावशेषायां रात्रौ निद्रान्त्यजेन्नृपः ॥१॥
वाद्यवन्दिस्वनैर्गीतैः पश्येद् गूढांस्ततो नरान् । विज्ञायते न ये लोकास्तदीया इति केनचित् ॥
आयव्ययस्य श्रवणं ततः कार्य्यं यथाविधि । वेगोत्सर्गं ततः कृत्वा राजा स्नानगृहं व्रजेत् ॥

---

१. प्रासादाग्रे प्रदर्शयेदिति ट. । २. निगृहीतस्तु इति ख ।
३. बहुक्षयव्ययायासमिति ख. छ. ट. च ।
४. आसीनः कर्मविच्छेदमित्यादिः, राजा समाश्रयेदित्यन्तः पाठः ज. पुस्तके नास्ति ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

स्नानं कुर्य्यान्नृपः पश्चाद्दन्तधावनपूर्वकं । कृत्वा सन्ध्यान्ततो जप्यं वासुदेवं प्रपूजयेत् ॥४॥
वह्नौ पवित्रान् जुहुयात तर्पयेदुदकैः पितॄन । दद्यात्सकाञ्चनीं धेनुं द्विजाशीर्वादसंयुतः ॥५॥
अनुलिप्तोऽलङ्कृतश्च मुखं पश्येच्च दर्पणे । ससुवर्णे घृते राजा शृणुयाद्दिवसादिकं ॥६॥
औषधं भिषजोक्तं च मङ्गलालम्भनञ्चरेत । पश्येद् गुरुं तेन दत्ताशीर्वादोऽथ व्रजेत्सभां ॥७॥
तत्रस्थो ब्राह्मणान् पश्येदमात्यान्मन्त्रिणस्तथा । प्रकृतीश्च महाभाग प्रतीहारनिवेदिताः ॥८॥
श्रुत्वेतिहासं कार्य्याणि कार्याणां कार्य्यनिर्णयम् । व्यवहारन्ततः पश्येन्मन्त्रं कुर्य्यात्तु मन्त्रिभिः ॥
नैकेन सहितः कुर्य्यान्न कुर्य्याद्बहुभिः सह । न च मूर्खैर्न्न चानाप्तैर्गुप्तं न प्रकटं चरेत्[1] ॥१०॥
मन्त्रं स्वधिष्ठितं कुर्य्याद्येन राष्ट्रं न बाधते । आकारग्रहणे राज्ञो मन्त्ररक्षा परा मता[2] ॥११॥
आकारैरिङ्गितैः प्राज्ञा मन्त्रं गृह्णन्ति पण्डिताः । सांवत्सराणां वैद्यानां मन्त्रिणां वचने रतः ॥१२॥
राजा विभूतिमाप्नोति[3] धारयन्ति नृपं हि ते । मन्त्रं कृत्वाथ व्यायामश्चक्रे याने च शस्त्रके ॥१३॥
निःसत्त्वादौ नृपः स्नातः पश्येद्विष्णुं सुपूजितम् । हुतञ्च पावकं पश्येद्विप्रान् पश्येत्सुपूजितान् ॥
भूषितो भोजनङ्कुर्य्याद् दानाद्यैः सुपरीक्षितं । भुक्त्वा गृहीतताम्बूलो वामपार्श्वेन संस्थितः[4] ॥

शास्त्राणि चिन्तयेद् दृष्ट्वा योधान कोष्ठायुधं गृहं ।
अन्वास्य पश्चिमां सन्ध्यां कार्य्याणि च विचिन्त्य तु ॥ १६ ॥

चरान् सम्प्रेष्य भुक्तान्नमन्तःपुरचरो भवेत् । वाद्यगीतैरक्षितोऽन्यैरेवन्नित्यञ्चरेन्नृपः ॥१७॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये आजस्रिकं नाम पञ्चत्रिंशदधिक-
द्विशततमोऽध्यायः ।

षट्त्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

रणदीक्षा ।

पुष्कर उवाच

यात्राविधानपूर्वन्तु वक्ष्ये साङ्ग्रामिकं विधिं । सप्ताहेन यदा यात्रा भविष्यति महीपतेः ॥१॥
पूजनीयो हरिः शम्भुर्मोदकाद्यैर्विनायकः । द्वितीयेऽहनि दिक्पालान् सम्पूज्य शयनञ्चरेत् ॥
शय्यायां वा तदग्रेऽथ देवान् प्राच्ये मनुं स्मरेत् । नमः शम्भो त्रिनेत्राय रुद्राय वरदाय च ॥
वामनाय विरूपाय स्वप्नाधिपतये नमः । भगवन्देवदेवेश शूलभृद्वृषवाहन ॥४॥
इष्टानिष्टे ममाचक्ष्व स्वप्ने सुप्तस्य शाश्वत । यज्जाग्रतो दूरमिति पुरोधा मन्त्रमुच्चरेत् ॥५॥

---

१. गुप्तं चाप्रकटं चरेदिति ग. ज. ट. च ।
२. आकारग्रहणे राज्ञो मन्त्ररक्षा परा मता इत्यस्य स्थाने आकारेङ्गिततत्त्वज्ञः कार्य्याकार्य्यविचक्षण इति ट. पुस्तके पाठः । ३. राजाधिभूतिमाप्नोतीति ज. ।
४. संविशेदिति ज. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तृतीयेऽहनि दिक्पालान् रुद्रांस्तान् दिक्पतीन्यजेत् ।
ग्रहान् यजेच्चतुर्थेऽह्नि पञ्चमे चाश्विनौ यजेत ॥ ६ ॥
मार्गे या देवतास्तासान्नद्यादीनाञ्च पूजनं । दिव्यान्तरीक्षभौमस्थदेवानाञ्च तथा बलिः ॥७॥
रात्रौ भूतगणानाञ्च वासुदेवादिपूजनं । भद्रकाल्याः श्रियः कुर्य्यात् प्रार्थयेत् सर्वदेवताः ॥८॥
वासुदेवः सङ्कर्षणः प्रद्युम्नश्चानिरुद्धकः । नारायणोऽब्जजो विष्णुर्न्नारसिंहो वराहकः ॥९॥
शिव ईशस्ततपुरुषो[१] ह्यघोरो राम सत्यजः[२] । सूर्य्यः सोमः कुजश्चान्द्रिजीवशुक्रशनैश्चराः ॥
राहुः केतुर्गणपतिः सेनानी चण्डिका ह्युमा । लक्ष्मीः सरस्वती दुर्गा ब्रह्माणीप्रमुखा गणाः ॥
रुद्रा इन्द्रादयो वह्निर्न्नागास्तार्द्योऽपरे सुराः । दिव्यान्तरीक्षभूमिष्ठा विजयाय भवन्तु मे ॥
मर्दयन्तु रणे शत्रून्[३] सम्प्रगृह्योपहारकं । सपुत्रमातृभृत्योऽहं[४] देवा वः शरणङ्गतः ॥१३॥
चमूनां पृष्ठतो गत्वा रिपुनाशा नमोऽस्तु वः[५] ।
त्रिनिवृत्तः प्रदास्यामि[६] दत्तादभ्यधिकं बलिं ॥ १४ ॥
षष्ठेऽह्नि विजयस्नानं कर्त्तव्यं चाभिषेकवत् । यात्रादिने सप्तमे च पूजयेच्च त्रिविक्रमं ॥१५॥
नीराजनोक्तमन्त्रैश्च आयुधं वाहनं यजेत् । पुण्याहजयशब्देन मन्त्रमेतन्निशामयेत् ॥१६॥
दिव्यान्तरीक्षभूमिष्ठाः सन्त्वायुर्दाः सुराश्च ते ।
देवसिद्धिं प्राप्नुहि त्वं देवयात्रास्तु[७] सा तव ॥ १७ ॥
रक्षन्तु देवताः सर्वा इति श्रुत्वा नृपो व्रजेत् । गृहीत्वा सशरञ्चापं धनुर्नागेति मन्त्रतः ॥१८॥
तद्विष्णोरिति जप्त्वाथ दद्याद्रिपुमुखे पदं । दक्षिणं पदं द्वात्रिंशदिक्षु प्राच्यादिषु क्रमात ॥
नागं रथं हयञ्चैव धुर्यांश्चैवारुहेत् क्रमात । आरुह्य वाद्यैर्गच्छेत पृष्ठतो नावलोकयेत् ॥२०॥
क्रोशमात्रं गतस्तिष्ठेत पूजयेद्देवता द्विजान् । परदेशं व्रजेत् पश्चादात्मसैन्यं हि पालयन्॥२१॥
राजा प्राप्य विदेशन्तु[८] देशपालन्तु पालयेत्[९] । देवानां पूजनं कुर्य्यान्न छिन्द्यादायमत्र तु ॥
नावमानयेत्तद्देश्यानागत्य स्वपुरं पुनः । जयं प्राप्यार्च्चयेद्देवान् दद्याद्दानानि पार्थिवः ॥२३॥
द्वितीयेऽहनि सङ्ग्रामो भविष्यति यदा तदा । स्नापयेद्गजमश्वादि यजेद्देवं नृसिंहकं ॥२४॥
छत्रादिराजलिङ्गानि शस्त्राणि निशि वै गणान् । प्रातर्नृसिंहकं पूज्य वाहनाद्यमशेषतः ॥२५॥
पुरोधसा हुतं पश्येद्वह्निं हुत्वा द्विजान्यजेत् । गृहीत्वा सशरञ्चापं गजाद्यारुह्य वै व्रजेत ॥२६॥
देशे त्वदृश्यः शत्रूणां कुर्य्यात् प्रकृतिकल्पनां । संहतान् योधयेदल्पान् कामं विस्तारयेद्बहून्॥
सूचीमुखमनीकं स्यादल्पानां बहुभिः सह । व्यूहाः प्राण्यङ्गरूपाश्च द्रव्यरूपाश्च कीर्त्तिताः ॥

१. तत्पुरत इति ख. ।
२. रात्रावित्यादिः, सत्यज इत्यन्तः पाठः ग. पुस्तके नास्ति ।
३. मर्दयन्तु च मे शत्रूनिति घ. ञ. च ।
४. भवन्तु मां स्वभृत्योऽहमिति ज. ट. च ।
५. चमूनां पृष्ठतश्चैव रिपुनाशो भवेद्ययेति ट. ।
६. जित्वा शत्रुं प्रदास्यामीति ट. ।
७. जैत्रा यात्रास्त्विति ट. ।
८. प्राप्तविदेशस्तु इति ग. घ. ञ. च ।
९. देशाचारन्तु पालयेदिति ख. । देशाचारेण पालयेदिति ग. घ. छ. ज. ञ. च ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

गरुडो मकरव्यूहश्चक्रः श्येनस्तथैव च। अर्द्धचन्द्रश्च वज्रश्च शकटव्यूह एव च ॥२९॥
मण्डलः सर्वतोभद्रः सूचीव्यूहश्च ते नराः। व्यूहानामथ सर्वेषां पञ्चधा सैन्यकल्पना ॥३०॥
द्वौ पक्षावनुपक्षौ द्वाववश्यं पञ्चमं भवेत्। एकेन यदि वा द्वाभ्यां भागाभ्यां युद्धमाचरेत् ॥
भागत्रयं स्थापयेत्तु तेषां रक्षार्थमेव च। न व्यूहकल्पना कार्य्या राज्ञो भवति कर्हिचित् ॥
मूलच्छेदे विनाशः स्यान्न युध्येच्च स्वयन्नृपः। सैन्यस्य पश्चात्तिष्ठेत्तु क्रोशमात्रे महीपतिः॥
भग्नसन्धारणं तत्र योधानां परिकीर्त्तितं। प्रधानभङ्गे सैन्यस्य नावस्थानं विधीयते ।।३४॥
न संहतान्न विरलान्योधान् व्यूहे प्रकल्पयेत। आयुधानान्तु सम्मर्दो यथा न स्यात् परस्परं ॥
भेत्तुकामः परानीकं संहतैरेव भेदयेत्। भेदरक्ष्याः परेणापि कर्त्तव्याः संहतास्तथा ॥३६॥
व्यूहं भेदावहं कुर्य्यात परव्यूहेषु चेच्छया। गजस्य पादरक्षार्थाश्चत्वारस्तु तथा द्विज ॥३७॥

रथस्य चाश्वाश्चत्वारः समास्तस्य च चर्म्मिणः।
धन्विनश्चर्म्मिभिस्तुल्याः पुरस्ताच्चर्म्मिणो रणे ॥ ३८ ॥

पृष्ठतो धन्विनः पश्चाद्धन्विनान्तुरगा रथाः। रथानां कुञ्जराः पश्चाद्दातव्याः पृथिवीक्षिता ॥
पदातिकुञ्जराश्वानां धर्म्मकार्य्यं प्रयत्नतः। शूराः प्रमुखतो देयाः स्कन्धमात्रप्रदर्शनं ॥४०॥
कर्त्तव्यं भीरुसङ्घेन शत्रुविद्रावकारकं[१]। दारयन्ति पुरस्तात्तु न देया भीरवः पुरः ॥४१॥
प्रोत्साहयन्त्येव रणे भीरून् शूराः पुरस्थिताः। प्रांशवः शुकनाशाश्च ये चाजिह्मेक्षणा[२] नराः॥
संहतभ्रूयुगाश्चैव क्रोधनाः कलहप्रियाः। नित्यहृष्टाः प्रहृष्टाश्च शूरा ज्ञेयाश्च कामिनः ॥
संहतानां हतानां च रणापनयनक्रिया[३]। प्रतियुद्धं गजानाञ्च तोयदानादिकश्च यत् ॥४४॥
आयुधानयनं चैव पत्तिकर्म्मं विधीयते। रिपूणां भेत्तुकामानां स्वसैन्यस्य तु रक्षणं ॥४५॥
भेदनं संहतानाञ्च चर्म्मिणां कर्म्म कीर्त्तितं। विमुखीकरणं युद्धे धन्विनां च तथोच्यते ॥४६॥
दूरापसरणं यानं सुहतस्य तथोच्यते। त्रासनं रिपुसैन्यानां रथकर्म्म तथोच्यते ॥४७॥
भेदनं संहतानाञ्च भेदानामपि संहतिः। प्राकारतोरणाट्टालद्रुमभङ्गश्च सद्गजे ॥४८॥
पत्तिभूर्विषमा ज्ञेया रथाश्वस्य तथा समा। सकर्द्दमा च नागानां युद्धभूमिरुदाहृता ॥४९॥
एवं विरचितव्यूहः कृतपृष्ठदिवाकरः। तथानुलोमशुक्रार्किदिक्पालमृदुमारुताः ॥५०॥
योधानुत्तेजयेत्सर्व्वान्नामगोत्रावदानतः। भोगप्राप्त्या च विजये स्वर्गप्राप्त्या मृतस्य च ॥

जित्वारीन् भोगसम्प्राप्तिः मृतस्य च परा गतिः।
निष्कृतिः स्वामिपिण्डस्य नास्ति युद्धसमा गतिः ॥ ५२ ॥

शूराणां रक्तमायाति तेन पापन्त्यजन्ति ते। घातादिदुःखसहनं रणे तन् परमन्तपः ॥५३॥
वराप्सरः सहस्राणि यान्ति शूरं रणे मृतं। स्वामी सुकृतमादत्ते भग्नानां विनिवर्त्तिनां ॥५४॥
ब्रह्महत्याफलं तेषां तथा प्रोक्तं पदे पदे। त्यक्त्वा सहायान् यो गच्छेद्देवास्तस्य विनष्टये ॥
अश्वमेधफलं प्रोक्तं शूराणामनिवर्त्तिनां। धर्म्मनिष्ठे जयो राज्ञि[४] योद्धव्याश्च समाः समैः॥

---

१. शत्रुविद्रावकारणमिति ख. ग. घ. ञ. च।
२. ये च जिह्मेक्षणा इति ख. ग. घ. ञ. च।
३. बलापनयनक्रियेति ज।
४. धर्म्मनिष्ठो जयो नित्य इति ख. छ. च।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

गजाद्यैश्च गजाद्याश्च न हन्तव्याः पलायिनः। न प्रेक्षकाः प्रविष्टाश्च अशस्त्राः पतितादयः॥
शान्ते निद्राभिभूते च अर्द्धोत्तीर्णे नदीवने। दुर्द्दिने कूटयुद्धानि शत्रुनाशार्थमाचरेत ॥५८॥
बाहू प्रगृह्य विक्रोशेद्भग्ना भग्नाः परे इति। प्राप्तं मित्रं बलं भूरि नायकोऽत्र निपातितः॥
सेनानीर्निहतश्चायं भूपतिश्चापि विप्लुतः। विद्रुतानान्तु योधानां सुखं घातो विधीयते॥
धूपाश्च देया धर्म्मज्ञ तथा च परमोहनाः। पताकाश्चैव सम्भारो वादित्राणां भयावहः॥
सम्प्राप्य विजयं युद्धे देवान्विप्रांश्च संयजेत्[१]। रत्नानि राजगामीनि अमात्येन कृते रणे॥
तस्य स्त्रियो न कस्यापि रक्ष्यास्ताश्च परस्य च। शत्रुं प्राप्य रणे मुक्तं पुत्रवत् परिपालयेत्॥
पुनस्तेन न योद्धव्यं देशाचारादि पालयेत्। ततश्च स्वपुरं प्राप्य ध्रुवे भे प्रविशेद् गृहं॥
देवादिपूजनं कुर्य्याद्रक्षेद्योधकुटुम्बकं। संविभागं परावाप्तैः कुर्य्याद् भृत्यजनस्य च॥६५॥
रणदीक्षा मयोक्ता ते जयाय नृपतेर्ध्रुवा।

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये रणदीक्षा नाम षट्त्रिंशदधिक-
द्विशततमोऽध्यायः।

सप्तत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

श्रीस्तोत्रम्।

पुष्कर उवाच

राज्यलक्ष्मीस्थिरत्वाय यथेन्द्रेण पुरा श्रियः। स्तुतिः कृता तथा राजा जयार्थं स्तुतिमाचरेत्॥

इन्द्र उवाच।

नमस्ये सर्वलोकानां[२] जननीमब्धिसम्भवां[३]। श्रियमुन्निद्रपद्माक्षीं विष्णुवक्षःस्थलस्थितां॥
त्वं सिद्धिस्त्वं स्वधा स्वाहा सुधा त्वं लोकपावनि।
सन्ध्या रात्रिः प्रभा भूतिर्म्मेधा श्रद्धा सरस्वती॥३॥
यज्ञविद्या महाविद्या गुह्यविद्या च शोभने। आत्मविद्या च देवि त्वं विमुक्तिफलदायिनी॥
आन्वीक्षिकी त्रयी वार्त्ता दण्डनीतिस्त्वमेव च। सौम्या सौम्यैर्जगद्रूपैस्त्वयैतद्देवि पूरितं॥
का त्वन्या त्वामृते देवि सर्वयज्ञमयं वपुः। अध्यास्ते देव देवस्य योगिचिन्त्यं गदाभृतः॥
त्वया देवि परित्यक्तं सकलं भुवनत्रयं। विनष्टप्रायमभवत् त्वयेदानीं समेधितं॥७॥
दाराः पुत्रास्तथागारं सुहृद्धान्यधनादिकं। भवत्येतन्महाभागे नित्यं त्वद्वीक्षणान् नृणां॥८॥
शरीरारोग्यमैश्वर्यमरिपक्षक्षयः सुखं[४]। देवि त्वद्दृष्टिदृष्टानां पुरुषाणां न दुर्ल्लभं॥९॥

---

१. देवान् विप्रान् गुरून् यजेदिति घ. ञ. च। २. सर्वभूतानामिति घ. ज. ञ. च।
३. जननीमम्बुसम्भवामिति ज.।
४. क्षयः स्त्रयमिति ख. ग. घ. झ. च। क्षयः शुभमिति छ.।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

त्वमम्बा सर्वभूतानां देवदेवो हरिः पिता । त्वयैतद्विष्णुना चाम्ब जगद्व्याप्तं चराचरं ॥१०॥
मानं कोषं तथा कोष्ठं मा गृहं मा परिच्छदं । मा शरीरं कलत्रञ्च त्यजेथाः सर्व्वपावनि ॥११॥
मा पुत्रान्मासुहृद्वर्गान्मा पशून्मा विभूषणं । त्यजेथा मम देवस्य[1] विष्णोर्वक्षःस्थलालये[2]॥१२॥
सत्त्वेन सत्यशौचाभ्यां तथा शीलादिभिर्गुणैः ।
त्यज्यन्ते ते नरा सद्यः सन्त्यक्ता ये त्वयामले ॥ १३ ॥
त्वयावलोकिताः सद्यः शीलाद्यैरखिलैर्गुणैः । कुलैश्वर्य्यैश्च युज्यन्ते पुरुषा निर्गुणा अपि ॥१४॥
स श्लाघ्यः स गुणी धन्यः स कुलीनः स बुद्धिमान् ।
स शूरः स च विक्रान्तो यस्त्वया देवि वीक्षितः ॥ १५ ॥
सद्यो वैगुण्यमायान्ति शीलाद्याः सकला गुणाः ।
पराङ्मुखी जगद्धात्री यस्य त्वं विष्णुवल्लभे ॥ १६ ॥
न ते वर्णयितुं शक्ता गुणान् जिह्वापि वेधसः । प्रसीद देवि पद्माक्षि नास्मांस्त्याक्षीः कदाचन ॥

पुष्कर उवाच ।

एवं स्तुता ददौ श्रीश्च वरमिन्द्राय चेप्सितं । सुस्थिरत्वं च राज्यस्य सङ्ग्रामविजयादिकं ॥१८॥
स्वस्तोत्रपाठश्रवणकर्तॄणां भुक्तिमुक्तिदं । श्रीस्तोत्रं तस्मात् पठेच्च शृणुयान्नरः ॥१९॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये श्रीस्तोत्रं नाम सप्तत्रिंशदधिक-
द्विशततमोऽध्यायः ।

अष्टत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

रामोक्तनीतिः ।

अग्निरुवाच

नीतिस्ते पुष्करोक्ता तु रामोक्ता लक्ष्मणाय या । जयाय तां प्रवक्ष्यामि शृणु धर्म्मादिवर्द्धनीं ॥

राम उवाच

न्यायेनार्ज्जनमर्थस्य वर्द्धनं रक्षणं चरेत् । सत्पात्रप्रतिपत्तिश्च राजवृत्तं चतुर्विधं ॥२॥
नयस्य विनयो मूलं विनयः शास्त्रनिश्चयात् । विनयो हीन्द्रियजयस्तैर्युक्तः पालयेन्महीं ॥३॥
शास्त्रं प्रज्ञा धृतिर्दाक्ष्यं प्रागल्भ्यं धारयिष्णुता ।
उत्साहो वाग्मितौदार्य्यमापत्कालसहिष्णुता[3] ॥ ४ ॥
प्रभावः शुचिता मैत्री त्यागः सत्यं कृतज्ञता । कुलं शीलं दमश्चेति गुणाः सम्पत्तिहेतवः ॥५॥
प्रकीर्णविषयारण्ये धावन्तं विप्रमाथिनं । ज्ञानाङ्कुशेन कुर्व्वीत वश्यमिन्द्रियदन्तिनं ॥६॥

---

१. देवदेवस्येति ट. । २. वक्षःस्थलाश्रये इति ख. ग. घ. ञ. च ।
३. वाग्मिता दार्ढ्यमापत्कालसहिष्णुतेति ख. घ. ञ झ. च ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कामः क्रोधस्तथा लोभो हर्षो मानो मदस्तथा। षड्वर्गमुत्सृजेदेनमस्मिंस्त्यक्ते सुखी नृपः ॥
आन्वीक्षिकीं त्रयीं वार्त्तां दण्डनीतिं च पार्थिवः। तद्विद्यैस्तत्क्रियोपेतैश्चिन्तयेद्विनयान्वितः ॥

आन्वीक्षिक्यार्थविज्ञानं धर्म्माधर्म्मौ त्रयीस्थितौ ।
अर्थानर्थौ तु वार्त्तायां दण्डनीत्यां नयानयौ ॥ ९ ॥
अहिंसा सूनृता वाणी सत्यं शौचं दया क्षमा ।
वर्णिनां लिङ्गिनां चैव सामान्यो धर्म्म उच्यते ॥ १० ॥

प्रजाः समनुगृह्णीयात् कुर्य्यादाचारसंस्थितिं । वाक् सूनृता दया दानं हीनोपगतरक्षणं[१] ॥
इति वृत्तं सतां साधुहितं सत्पुरुषव्रतं । आधिव्याधिपरीताय अद्य श्वो वा विनाशिने ॥१२॥
को हि राजा शरीराय धर्म्मापेतं समाचरेत् । न हि स्वसुखमन्विच्छन्[२] पीडयेत् कृपणं जनं ॥
कृपणः पीड्यमानो हि मन्युना हन्ति पार्थिवं । क्रियतेऽभ्यर्हणीयाय स्वजनाय यथाञ्जलिः ॥
ततः साधुतरः कार्यो दुर्जनाय शिवार्थिना । प्रियमेवाभिधातव्यं सत्सु नित्यं द्विषत्सु च ॥
देवास्ते प्रियवक्तारः पशवः क्रूरवादिनः । शुचिरास्तिक्यपूतात्मा पूजयेद्देवताः सदा ॥१६॥
देवतावद् गुरुजनमात्मवच्च सुहृज्जनं । प्रणिपातेन हि गुरुं सतोऽमृषानुचेष्टितैः ॥१७॥
कुर्व्वीताभिमुखान् भृत्यैर्देवान् सुकृतकर्म्मणा । मद्भावेन हरेन्मित्रं सम्भ्रमेण च बान्धवान् ॥
स्त्रीभृत्यान् प्रेमदानाभ्यां दाक्षिण्येनेतरं जनं । अनिन्दा परकृत्येषु स्वधर्म्मपरिपालनं ॥१९॥
कृपणेषु दयालुत्वं सर्वत्र मधुरा गिरः । प्राणैरप्युपकारित्वं मित्रायाव्यभिचारिणे ॥२०॥
गृहागते परिष्वङ्गः शक्त्या दानं सहिष्णुता । स्वसमृद्धिष्वनुत्सेकः परवृद्धिष्वमत्सरः ॥२१॥
अपरोपतापि वचनं मौनव्रतचरिष्णुता[३] । बन्धुभिर्बद्धसंयोगः स्वजने चतुरश्रता ॥२२॥

उचितानुविधायित्वमिति वृत्तं महात्मनां ।

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये रामोक्तनीतिर्नाम अष्टत्रिंशदधिक-
द्विशततमोऽध्यायः ।

ऊनचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

राजधर्माः ।

राम उवाच

स्वाम्यमात्यश्च राष्ट्रञ्च दुर्गं कोषो बलं सुहृत् । परस्परोपकारीदं सप्ताङ्गं राज्यमुच्यते ॥१॥

---

१. दीनोपगतरक्षणमिति ख. घ. छ. ज. ञ. ट. च ।

२. स्वसुखमन्विच्छुरिति ख. छ. च ।

३. स्वसमृद्धिष्वित्यादिः, मौनव्रतचरिष्णुरयन्तः पाठः ज. पुस्तके नास्ति ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

राज्याङ्गानां वरं राष्ट्रं साधनं पालयेत् सदा[१]। कुलं शीलं वयः सत्त्वं दाक्षिण्यं क्षिप्रकारिता ॥
अविसंवादिता सत्यं वृद्धसेवा कृतज्ञता । दैवसम्पन्नता बुद्धिरक्षुद्रपरिवारता ॥३॥
शक्यसामन्तता चैव तथा च दृढभक्तिता[२] । दीर्घदर्शित्वमुत्साहः शुचिता स्थूललक्षिता ॥४॥
विनीतत्वं धार्मिकता साधोश्च नृपतेर्गुणाः । प्रख्यातवंशमक्रूरं लोकसङ्ग्राहिणं शुचिं ॥५॥
कुर्व्वीतात्महिताकाङ्क्षी परिचारं महीपतिः । वाग्मी प्रगल्भः स्मृतिमानुदग्रो बलवान् वशी ॥
नेता दण्डस्य निपुणः कृतशिल्पपरिग्रहः[३] । पराभियोगप्रसहः सर्वदुष्टप्रतिक्रिया[४] ॥७॥
परवृत्तान्ववेक्षी च[५] सन्धिविग्रहतत्त्ववित् । गूढमन्त्रप्रचारज्ञो देशकालविभागवित् ॥८॥
आदाता सम्यगर्थानां विनियोक्ता च पात्रवित् । क्रोधलोभभयद्रोहदम्भचापलवर्ज्जितः ॥९॥
परोपतापपैशून्यमात्सर्य्येर्षानृतातिगः । वृद्धोपदेशसम्पन्नः शक्तो मधुरदर्शनः ॥१०॥
गुणानुरागस्थितिमानात्मसम्पद्गुणाः स्मृताः । कुलीनाः शुचयः शूराः श्रुतवन्तोऽनुरागिणः[६]॥
दण्डनीतेः प्रयोक्तारः सचिवाः स्युर्म्महीपतेः । सुविग्रहो जानपदः कुलशीलकलान्वितः ॥१२॥
वाग्मी प्रगल्भश्चक्षुष्मानुत्साही प्रतिपत्तिमान् । स्तम्भचापलहीनश्च मैत्रः क्लेशसहः शुचिः ॥१३॥
सत्यसत्त्वधृतिस्थैर्य्यप्रभावारोग्यसंयुतः । कृतशिल्पश्च[७] दक्षश्च प्रज्ञावान् धारणान्वितः ॥१४॥
दृढभक्तिरकर्त्ता च वैराणां सचिवो भवेत् । स्मृतिस्तत्परतार्थेषु चित्तज्ञो ज्ञाननिश्चयः[८]॥१५॥
दृढता मन्त्रगुप्तिश्च मन्त्रिसम्पत् प्रकीर्त्तिता । त्रय्यां च दण्डनीत्यां च कुशलः स्यात् पुरोहितः ॥
अथर्व्ववेदविहितं कुर्य्याच्छान्तिकपौष्टिकं । साधुतैषाममात्यानां तद्विद्यैः सह बुद्धिमान् ॥१७॥
चक्षुष्मत्तां च शिल्पञ्च परीक्षेत गुणद्वयं[९] । स्वजनेभ्यो विजानीयात् कुलं स्थानमवग्रहं ॥१८॥
परिकर्म्मसु दक्षञ्च विज्ञानं धारयिष्णुतां । गुणत्रयं परीक्षेत प्रागल्भ्यं प्रीतितां तथा[१०]॥१९॥
कथायोगेषु बुद्ध्येत वाग्मित्वं सत्यवादितां । उत्साहं च प्रभावं च तथा क्लेशसहिष्णुतां[११]॥२०॥
धृतिं चैवानुरागं च स्थैर्य्यञ्चापदि लक्षयेत् । भक्तिं मैत्रीं च शौचं च जानीयाद्व्यवहारतः ॥
संवासिभ्यो बलं सत्त्वमारोग्यं शीलमेव च[१२]। अस्तब्धतामचापल्यं वैराणां चाप्यकार्त्तनं॥२२॥
प्रत्यक्षतो विजानीयाद् भद्रतां क्षुद्रतामपि । फलानुमेयाः सर्वत्र परोक्षगुणवृत्तयः ॥२३॥
शस्याकरवती पुण्या खनिद्रव्यसमन्विता । गोहिता भूरिसलिला पुन्यैर्जनपदैर्युता ॥२४॥
रम्या सकुञ्जरबला वारिस्थलपथान्विता । अदेवमातृका चेति शस्यते भूरिभूतये ॥२५॥

---

१. स्वाम्यमात्येत्यादिः, पालयेत् सदेत्यन्तः पाठः ग. पुस्तके नास्ति ।
२. तद्वच्च दृढभक्तितेति ग. ।
३. कृतशिल्पः स्ववग्रह इति घ. ञ. च ।
४. सर्वदुष्टप्रतिग्रह इति ख. घ. छ. च ।
५. परच्छिद्रान्ववेक्षी चेति घ. ञ. च ।
६. गुणवन्तोऽनुगामिन इति ।
७. कृतशीलश्चेति ञ० ।
८. चिन्तको ज्ञाननिश्चय इति ग. ।
९. परीक्षेत कुणत्रयमिति ञ. ।
१०. प्रतिभां तथेति ञ ।
११. स्वजनेभ्य इत्यादिः क्लेशसहिष्णुतामित्यन्तः पाठः छ पुस्तके नास्ति ।
१२. सत्त्वमारोग्यं कुलमेव चेति ञ. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शूद्रकारुवणिक्प्रायो महारम्भः कृषीवलः। सानुरागो रिपुद्वेषी पीड़ासहकरः पृथुः ॥२६॥
नानादेश्यैः समाकीर्णो धार्म्मिकः पशुमान् बली। ईदृक्जनपदः शस्तोऽमूर्खव्यसनिनायकः[१] ॥
पृथुसीमं महाखातमुच्चप्राकारतोरणं[२]। पुरं समावसेच्छैलसरिन्मरुवनाश्रयं ॥२८॥
जलवद्धान्यधनवद्दुर्गं कालसहं महत्। औदकं पार्वतं वार्क्षमैरिणं धन्विनं च षट् ॥२९॥
ईप्सितद्रव्यसम्पूर्णः पितृपैतामहोचितः। धर्मार्जितो व्ययसहः कोषो धर्मादिवृद्धये ॥३०॥
पितृपैतामहो वश्यः संहतो दत्तवेतनः। विख्यातपौरुषो जन्यः कुशलः शकुनैर्वृतः ॥३१॥
नानाप्रहरणोपेतो नानायुद्धविशारदः। नानायोधसमाकीर्णो नीराजितहयद्विपः ॥३२॥
प्रवासायासदुःखेषु युद्धेषु च कृतश्रमः। अद्वैधक्षत्रियप्रायो दण्डो दण्डवतां मतः ॥३३॥
योगविज्ञानसत्त्वाढ्यं महापक्षं प्रियम्वदं। आयतिक्षममद्वैधं मित्रं कुर्वीत सत्कुलं[३] ॥३४॥
दूरादेवाभिगमनं स्पष्टार्थहृदयानुगा। वाक् सत्कृत्य प्रदानञ्च त्रिविधो मित्रसङ्ग्रहः ॥३५॥
धर्मकामार्थसंयोगो मित्रात्तु त्रिविधं फलं। औरसं तत्र सन्नद्धं[४] तथा वंशक्रमागतं ॥३६॥
रक्षितं व्यसनेभ्यश्च मित्रं ज्ञेयं चतुर्विधं। मित्रे गुणाः सत्यताद्याः समानसुखदुःखता। ३७॥
वक्ष्येऽनुजीविनां वृत्तं सेवी सेवेत भूपतिं। दक्षता भद्रता दाढर्य्यं क्षान्तिः क्लेशसहिष्णुता ॥
सन्तोषः शीलमुत्साहो मण्डयत्यनुजीविनं। यथाकालमुपासीत राजानं सेवको नयात् ॥३९॥
परस्थानगमं क्रौर्य्यमौद्धत्यं मत्सरन्त्यजेत्। विगृह्य कथनं भृत्यो न कुर्य्याज् ज्यायसा सह ॥

गुह्यं मर्म्म च मन्त्रञ्च न च भर्त्तुः प्रकाशयेत।
रक्ताद् वृत्तिं समीहेत विरक्तं सन्त्यजेन्नृपं॥ ४१॥

अकार्य्ये प्रतिषेधश्च कार्य्ये चापि प्रवर्त्तनं। सङ्क्षेपादिति सद्वृत्तं बन्धुमित्रानुजीविनां ॥४२॥
आजीव्यः सर्व्वसत्त्वानां राजा पर्जन्यवद्भवेत्। आयद्वारेषु चाप्त्यर्थं धनं चाददतीति च ॥
कुर्य्यादुद्योगसम्पन्नानध्यक्षान् सर्वकर्म्मसु। कृषिर्व्वणिक्पथो दुर्गं सेतुः कुञ्जरबन्धनं ॥४४॥
खन्याकरबलादानं शून्यानां च निवेशनं। अष्टवर्गमिमं राजा साधुवृत्तोऽनुपालयेत् ॥४५॥
आमुक्तिकेभ्यश्चौरेभ्यः पौरेभ्यो राजवल्लभात्। पृथिवीपतिलोभाच्च प्रजानां पञ्चधा भयं ॥
अवेक्ष्यैतद्भयं काले आददीत करं नृपः। अभ्यन्तरं शरीरं स्वं वाह्यं राष्ट्रञ्च[५] रक्षयेत्[६] ॥४७॥
दण्ड्यांस्तु दण्डयेद्राजा स्वं रक्षेच्च विषादितः। स्त्रियः पुत्रांश्च शत्रुभ्यो विश्वसेन्न कदाचन ॥४८॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये राजधर्म्मो नाम ऊनचत्वारिंशदधिक-
द्विशततमोऽध्यायः।

---

१. मख्यव्यसननायक इति ग.।
२. उच्चप्राकारगोपुरमिति घ. ञ. च।
३. मित्रं कुर्वीत सत्क्रियमिति ञ.।
४. तत्र सम्बद्धमिति ग.।
५. राज्यं राष्ट्रञ्चेति ख. छ. ञ. च।
६. लक्षयेदिति ञ.।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

चत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

षाड्गुण्यम् ।

राम उवाच

मण्डलं चिन्तयेन मुख्यं राजा द्वादशराजकं । अरिर्म्मित्रमरेर्म्मित्रं मित्रमित्रमतः परं ॥१॥
तथारिमित्रमित्रञ्च विजिगीषोः पुरः स्मृताः[1] । पार्ष्णिग्राहः स्मृतः पश्चादाक्रन्दस्तदनन्तरं ॥
आसारावनयोश्चैवं विजिगीषोश्च मण्डलं । अरेश्च विजिगीषोश्च मध्यमो भूम्यनन्तरः ॥३॥
अनुग्रहे संहतयोर्न्निग्रहे व्यस्तयोः प्रभुः । मण्डलाद्बहिरेतेषामुदासीनो बलाधिकः ॥४॥
अनुग्रहे संहतानां व्यस्तानां च वधे प्रभुः । सन्धिञ्च विग्रहं यानमासनादि वदामि ते ॥५॥
बलवद्विगृहीतेन सन्धिं कुर्य्याच्छ्रियाय च । कपाल उपहारश्च सन्तानः सन्नतस्तथा ॥६॥
उपन्यासः प्रतीकारः संयोगः पुरुषान्तरः । अदृष्टनर आदिष्ट आत्मापि स उपग्रहः ॥७॥
परिक्रमस्तथा छिन्नस्तथा च परदूषणं । स्कन्धोपनेयः सन्धिश्च सन्धयः षोडशेरिताः ॥८॥
परस्परोपकारश्च मैत्रः सम्बन्धकस्तथा[2] । उपहाराश्च चत्वारस्तेषु मुख्याश्च सन्धयः ॥९॥
बालो वृद्धो दीर्घरोगस्तथा बन्धुबहिस्कृतः । भीरुको भीरुकजनो लुब्धो लुब्धजनस्तथा ॥१०॥
विरक्तप्रकृतिश्चैव विषयेष्वतिशक्तिमान् । अनेकचित्तमन्त्रश्च देवब्राह्मणनिन्दकः ॥११॥
दैवोपहतकश्चैव दैवनिन्दक एव च । दुर्भिक्षव्यसनोपेतो बलव्यसनसङ्कुलः ॥१२॥
स्वदेशस्थो बहुरिपुर्मुक्तः कालेन यश्च ह । सत्यधर्मव्यपेतश्च विंशतिः पुरुषा अमी ॥१३॥
एतैः सन्धिं न कुर्वीत विगृह्णीयात्तु केवलं । परस्परापकारेण पुंसां भवति विग्रहः ॥१४॥
आत्मनोऽभ्युदयाकाङ्क्षी पीड्यमानः परेण वा । देशकालबलोपेतः प्रारभेतेह विग्रहं[3] ॥१५॥
राज्यस्त्रीस्थानदेशानां ज्ञानस्य च बलस्य च । अपहारो[4] मदो मानः पीडा वैषयिकी तथा ॥
ज्ञानात्मशक्तिधर्माणां[5] विघातो दैवमेव च । मित्रार्थञ्चापमानश्च तथा बन्धुविनाशनं ॥१७॥
भूतानुग्रहविच्छेदस्तथा मण्डलदूषणं । एकार्थाभिनिवेशित्वमिति विग्रहयोनयः ॥१८॥
सापत्न्यं वास्तुजं स्त्रीजं वाग्जातमपराधजं । वैरं पञ्चविधं प्रोक्तं साधनैः प्रशमन्नयेत् ॥१९॥
किञ्चित्फलं निष्फलं वा सन्दिग्धफलमेव च । तदात्वे दोषजननमायत्याञ्चैव निष्फलं ॥
आयत्याञ्च तदात्वे च दोषसञ्जननं तथा । अपरिज्ञातवीर्य्येण परेण स्तोभितोऽपि वा ॥२१॥
परार्थं स्त्रीनिमित्तञ्च दीर्घकालं द्विजैः सह । अकालदैवयुक्तेन बलोद्धतसखेन च ॥२२॥
तदात्वे फलसंयुक्तमायत्यां फलवर्जितं । आयत्यां फलसंयुक्तं तदात्वे निष्फलं तथा ॥२३॥
इतीमं षोडशविधन्न कुर्यादेव विग्रहं । तदात्वायतिसंशुद्धं कर्म राजा सदाचरेत् ॥२४॥
हृष्टं पुष्टं बलं मत्वा गृह्णीयाद्विपरीतकं । मित्रमाक्रन्द आसारो यदा स्युर्दृढभक्तयः ॥२५॥

---

१. पुरःस्थिता इति ख. छ. च । २. मैत्रः सुखकरस्तथेति ग. ।
३. आत्मन इत्यादिः, विग्रहमित्यन्तः पाठः ग. पुस्तके नास्ति ।
४. अवहार इति घ. । ५. ज्ञानार्थशक्तिधर्माणामिति ञ. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

परस्य विपरीतश्च तदा विग्रहमाचरेत्। विगृह्य सन्धाय तथा सम्भूयाथ प्रसङ्गतः ॥२६॥
उपेक्षया च निपुणैर्यानं पञ्चविधं स्मृतं। परस्परस्य सामर्थ्यविघातादासनं स्मृतं ॥२७॥
अरेश्च विजिगीषोश्च यानवत् पञ्चधा स्मृतं। बलिनोर्द्विषतोर्मध्ये वाचात्मानं समर्पयन् ॥२८॥
द्वैधीभावेन तिष्ठेत काकाक्षिवदलक्षितः। उभयोरपि सम्पाते सेवेत बलवत्तरं ॥२९॥
यदा द्वावपि नेच्छेतां संश्लेषं जातसंविदौ। तदोपसर्पेत्तच्छत्रुमधिकं वा स्वयं व्रजेत्[1] ॥३०॥
उच्छिद्यमानो बलिना निरुपायप्रतिक्रियः। कुलोद्भूतं सत्यमार्य्यमासेवेत बलोत्कटं[2] ॥३१॥
तद्दर्शनोपास्तिकता नित्यन्तद्भावभाविता। तत्कारितप्रश्रयिता वृत्तं संश्रयिणः श्रुतं ॥३२॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये षाड्गुण्यं नाम चत्वारिंशदधिक-
द्विशततमोऽध्यायः।

एकचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

सामादिः।

राम उवाच

प्रभावोत्साहशक्तिभ्यां मन्त्रशक्तिः प्रशस्यते। प्रभावोत्साहवान् काव्यो जितो देवपुरोधसा ॥
मन्त्रयेतेह कार्य्याणि नानाप्तैर्नाविपश्चिता। अशक्यारम्भवृत्तीनां कुतः क्लेशादृते फलं ॥२॥
अविज्ञातस्य विज्ञानं विज्ञातस्य च निश्चयः। अर्थद्वैधस्य सन्देहच्छेदनं शेषदर्शनं ॥३॥
सहायाः साधनोपाया विभागो देशकालयोः। विपत्तेश्च प्रतीकारः पञ्चाङ्गो मन्त्र इष्यते[3] ॥४॥
मनःप्रसादः श्रद्धा च तथा करणपाटवं। सहायोत्थानसम्पच्च कर्म्मणां सिद्धिलक्षणं ॥५॥
मदः प्रमादः कामश्च सुप्तप्रलपितानि च। भिन्दन्ति मन्त्रं प्रच्छन्नाः कामिन्यो रमतान्तथा ॥
प्रगल्भः स्मृतिमान्वाग्मी शस्त्रे शास्त्रे च निष्ठितः। अभ्यस्तकर्म्मा नृपतेर्दूतो भवितुमर्हति ॥
निसृष्टार्थो मितार्थश्च तथा शासनहारकः[4]।
सामर्थ्यात् पादतो हीनो दूतस्तु त्रिविधः स्मृतः ॥ ८ ॥
नाविज्ञातं पुरं शत्रोः प्रविशेच्च न संसदं। कालमीक्षेत कार्य्यार्थमनुज्ञातश्च निष्पतेत ॥९॥
छिद्रञ्च शत्रोर्जानीयात् कोषमित्रबलानि च। रागापरागौ जानीयाद् दृष्टिगात्रविचेष्टितैः[5] ॥
कुर्य्याच्चचतुर्विधं स्तोत्रं पक्षयोरुभयोरपि। तपस्विव्यञ्जनोपेतैः सुचरैः[6] सह संवसेत् ॥११॥

---

१. उभयोरित्यादिः, स्वयं व्रजेदित्यन्तः पाठः ज. पुस्तके नास्ति।
२. बलोत्करमिति ग. घ. ज. ञ. च।
३. नय इष्यते इति ख. घ. च।
४. शासनशासक इति ख. छ. च।
५. दृष्टिवक्त्रविचेष्टितैरिति ग. घ. छ. झ. ञ. ट च।
६. स्वचरैरिति ज.।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

चरः प्रकाशो दूतः स्यादप्रकाशश्चरो द्विधा। वणिक् कृषीबलो लिङ्गी भिक्षुकाद्यात्मकाश्चराः ॥
यायादरिं व्यसनिनं निष्फले[1] दूतचेष्टिते। प्रकृतिव्यसनं यत्स्यात्तत् समीक्ष्य समुत्पतेत् ॥१३॥
अनयाद्व्यस्यति श्रेयस्तस्मात्तद्व्यसनं स्मृतं। हुताशनो जलं व्याधिर्दुर्भिक्षं मरकं तथा ॥१४॥
इति पञ्चविधं दैवं व्यसनं मानुषं परं। दैवं पुरुषकारेण शान्त्या च प्रशमन्नयेत् ॥१५॥
उत्थापितेन नीत्या च मानुषं व्यसनं हरेत्। मन्त्रो मन्त्रफलावाप्तिः कार्य्यानुष्ठानमायतिः ॥
आयव्ययौ दण्डनीतिरमित्रप्रतिषेधनं। व्यसनस्य प्रतीकारो राज्यराजाभिरक्षणं ॥१७॥
इत्यमात्यस्य कर्म्मेदं हन्ति सव्यसनान्वितः। हिरण्यधान्यवस्त्राणि वाहनं प्रजया भवेत् ॥१८॥
तथान्ये द्रव्यनिचया हन्ति सव्यसना प्रजा। प्रजानामापदिस्थानां रक्षणं कोषदण्डयोः ॥१६॥
पौराद्याश्चोपकुर्वन्ति संश्रयादिह दुर्द्दिनं। तूष्णीं युद्धं जनत्राणं मित्रामित्रपरिग्रहः ॥२०॥
सामन्तादि कृते दोषे नश्येत्तद्व्यसनाच्च तत्। भृत्यानां भरणं दानं प्रजामित्रपरिग्रहः ॥२१॥
धर्म्मकामादिभेदश्च दुर्गसंस्कारभूषणं। कोषात्तद्व्यसनाद्धन्ति कोषमूलो हि भूपतिः ॥२२॥
मित्रामित्रावनीहेमसाधनं रिपुमर्द्दनं। दूरकार्य्याशुकारित्वं दण्डात्तद्व्यसनाद्धरेत् ॥२३॥
संस्तम्भयति मित्राणि अमित्रं नाशयत्यपि। धनाद्यैरुपकारित्वं मित्रात्तद्व्यसनाद्धरेत्[2] ॥२४॥
राजा सव्यसनी हन्याद्राजकार्य्याणि यानि च। वाग्दण्डयोश्च पारुष्यमर्थदूषणमेव च ॥२५॥
पानं स्त्री मृगया द्यूतं व्यसनानि महीपतेः। आलस्यं स्तब्धता दर्पः प्रमादो द्वैधकारिता ॥२६॥
इति पूर्व्वोपदिष्टश्च सचिवव्यसनं स्मृतं। अनावृष्टिश्च पीडादी राष्ट्रव्यसनमुच्यते ॥२७॥
विशीर्णयन्त्रप्राकारपरिखात्वमशस्त्रता। क्षीणया सेनया नद्धं दुर्गव्यसनमुच्यते ॥२८॥
व्ययीकृतः परिक्षिप्तोऽप्रजितोऽसञ्चितस्तथा। दूषितो दूरसंस्थश्च कोषव्यसनमुच्यते ॥२६॥
उपरुद्धं परिक्षिप्तममानितविमानितं। अभूतं व्याधितं श्रान्तं दूरायातन्नवागतं ॥३०॥
परिक्षीणं प्रतिहतं प्रहताग्रतरन्तथा। आशानिर्वेदभूयिष्ठमनृतप्राप्तमेव च ॥३१॥
कलत्रगर्भन्निक्षिप्तमन्तःशल्यं तथैव च। विच्छिन्नवीवधासारं शून्यमूलं तथैव च ॥३२॥
अस्वाम्यसंहतं वापि भिन्नकूटं तथैव च। दुष्पार्ष्णिग्राहमर्थञ्च बलव्यसनमुच्यते ॥३३॥
दैवोपपीडितं मित्रं ग्रस्तं शत्रुबलेन च। कामक्रोधादिसंयुक्तमुत्साहादरिभिर्भवेत् ॥३४॥
अर्थस्य दूषणं क्रोधात् पारुष्यं वाक्यदण्डयोः। कामजं मृगया द्यूतं व्यसनं पानकं स्त्रियः ॥
वाक्पारुष्यं परं लोके उद्वेजनमनर्थकं। असिद्धसाधनं दण्डस्तं युक्त्यावनयेन्नृपः ॥३६॥
उद्वेजयति भूतानि दण्डपारुष्यवान् नृपः। भूतान्युद्वेज्यमानानि द्विषतां यान्ति संश्रयं ॥३७॥
विवृद्धाः शत्रवश्चैव विनाशाय भवन्ति ते। दूष्यस्य दूषणार्थञ्च परित्यागो महीयसः ॥३८॥
अर्थस्य नीतितत्त्वज्ञैरर्थदूषणमुच्यते। पानान् कार्य्यादिनो ज्ञानं मृगयातोऽरितः क्षयः ॥
जितश्रमार्थं मृगयां विचरेद्रक्षिते वने। धर्म्मार्थप्राणनाशादि द्यूते स्यात् कलहादिकं ॥४०॥
कालातिपातो धर्म्मार्थपीडा स्त्रीव्यसनाद्भवेत्। पानदोषात् प्राणनाशः कार्य्याकार्यविनिश्चयः ॥

१. विफले इति घ. झ. ञ. च।
२. संस्तम्भयतीत्यादिः, मित्रात्तद्व्यसनाद्धरेदित्यन्तः पाठः छ. पुस्तके नास्ति।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

स्कन्धावारनिवेशज्ञो निमित्तज्ञो रिपुं जयेत् । स्कन्धावारस्य मध्ये तु सकोषं नृपतेर्गृहं ॥
मौलीभूतं श्रेणिसुहृद्द्विषदाटविकं बलं । राजहर्म्यं समावृत्य क्रमेण विनिवेशयेत्[1] ॥४३॥
सैन्यैकदेशः सन्नद्धः सेनापतिपुरःसरः । परिभ्रमेच्चत्वरांश्च मण्डलेन वहिर्न्निशि ॥४४॥
वार्त्ताः स्वका विजानीयाद्दूरसीमान्तचारिणः । निर्गच्छेत् प्रविशेच्चैव सर्व्व एवोपलक्षितः ॥
सामदानं च भेदश्च दण्डोपेक्षेन्द्रजालकं । मायोपायाः सप्त परे निक्षिपेत्साधनाय तान् ॥४६॥
चतुर्विधं स्मृतं साम उपकारानुकीर्त्तनात् । मिथःसम्बन्धकथनं मृदुपूर्व्वं च भाषणं ॥४७॥
आयाते दर्शनं वाचा तवाहमिति चार्पणं । यः सम्प्राप्तधनोत्सर्ग उत्तमाधममध्यमः ॥४८॥
प्रतिदानं तदा तस्य गृहीतस्यानुमोदनं । द्रव्यदानमपूर्व्वं च स्वयङ्ग्राहप्रवर्त्तनं[2] ॥४९॥
देयश्च प्रतिमोक्षश्च दानं पञ्चविधं स्मृतं । स्नेहरागापनयनसंहर्षोत्पादनं तथा ॥५०॥
मिथो भेदश्च भेदज्ञैर्भेदश्च त्रिविधः स्मृतः । वधोऽर्थहरणं चैव परिक्लेशस्त्रिधा दमः ॥५१॥
प्रकाशश्चाप्रकाशश्च लोकद्विष्टान् प्रकाशतः । उद्विजेत हतैर्ल्लोकस्तेषु पिण्डः प्रशस्यते ॥५२॥
विशेषेणोपनिषद्योगैर्हन्याच्छस्त्रादिना द्विषः । जातिमात्रं द्विजं नैव हन्यात् सामोत्तरं वशे ॥
प्रलिम्पन्निव चेतांसि दृष्ट्वासाधु पिबन्निव । ग्रसन्निवामृतं साम प्रयुञ्जीत प्रियं वचः ॥५४॥
मिथ्याभिशस्तः श्रीकाम आहूयाप्रतिमानितः । राजद्वेषी चातिकर आत्मसम्भावितस्तथा ॥
विच्छिन्नधर्म्मकामार्थः क्रुद्धो मानी विमानितः ।
अकारणात् परित्यक्तः कृतवैरोऽपि सान्त्वितः ॥ ५६ ॥
हृतद्रव्यकलत्रश्च पूजार्होऽप्रतिपूजितः । एतांस्तु भेदयेच्छत्रौ स्थितान्नित्यान् सुशङ्कितान् ॥
आगतान् पूजयेत् कामैर्न्निजांश्च प्रशमन्नयेत् । सामदृष्टानुसन्धानमत्युग्रभयदर्शनं ॥५८॥
प्रधानदानमानं च भेदोपायाः प्रकीर्त्तिताः । मित्रं हतं काष्ठमिव घुणजग्धं विशीर्य्यते ॥५९॥
त्रिशक्तिर्देशकालज्ञो दण्डेनास्तं नयेदरीन् । मैत्रीप्रधानं कल्याणबुद्धिं सान्त्वेन साधयेत् ॥६०॥
लुब्धं क्षीणञ्च दानेन मित्रानन्योन्यशङ्कया । दण्डस्य दर्शनाद्दुष्टान् पुत्रभ्रातादि सामतः ॥
दानभेदैश्चमूमुख्यान् योधान्[3] जनपदादिकान् ।
सामन्ताटविकान् भेददण्डाभ्यामपराद्धकान् ॥ ६२ ॥
देवताप्रतिमानान्तु पूजयान्तर्गतैर्न्नरैः । पुमान् स्त्रीवस्त्रसंवीतो निशि चाद्भुतदर्शनः ॥६३॥
वेतालोल्कापिशाचानां शिवानां च स्वरूपिकी । कामतो रूपधारित्वं शस्त्राग्न्यश्माम्बुवर्षणं ॥
तमोऽनिलोऽनलो मेघ इति माया ह्यमानुषी । जघान कीचकं भीम आस्थितः स्त्रीस्वरूपतां ॥
अन्याये व्यसने युद्धे प्रवृत्तस्यानिवारणं । उपेक्षेयं स्मृता भ्रातोपेक्षितश्च हिडिम्बया ॥६६॥
मेघान्धकारवृष्ट्यग्निपर्वताद्भुतदर्शनं । दूरस्थानं च सैन्यानां दर्शनं ध्वजशालिनां ॥६७॥
छिन्नपाटितभिन्नानां संस्रुतानां च दर्शनं । इतीन्द्रजालं द्विषताम्भीत्यर्थमुपकल्पयेत् ॥६८॥

इत्याग्नेये महापुराणे आग्नेये सामादिर्नाम एकचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ।

---

1. परिवेशयेदिति ख. । 2. तथैव सुप्रवर्त्तनमिति ज. ट. च ।
3. दानभेदैश्चैव मुख्यान् पौरानिति ज. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

द्विचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

राजनीतिः ।

राम उवाच

षड्विधन्तु बलं व्यूह्य देवान् प्राच्यं रिपुं व्रजेत । मौलं भूतं श्रेणिसुहृद् द्विपदाटविकं बलं ॥
पूर्वं पूर्वं गरीयस्तु बलानां व्यसनं तथा । षडङ्गं मन्त्रकोषाभ्यां पदात्यश्वरथद्विपैः ॥२॥
नद्यद्रिवनदुर्गेषु यत्र यत्र भयं भवेत् । सेनापतिस्तत्र तत्र गच्छेद् व्यूहीकृतैर्बलैः ॥३॥
नायकः पुरतो यायात् प्रवीरपुरुषावृतः । मध्येकलत्रं स्वामी च कोषः फल्गु च यद्बलं ॥४॥
पार्श्वयोरुभयोरश्वा वाजिनां पार्श्वयो रथाः । रथानां पार्श्वयोर्नागा नागानां चाटवीबलं ॥
पश्चात् सेनापतिः सर्वं पुरस्कृत्य कृती स्वयं । यायात्सन्नद्धसैन्यौघः खिन्नानाश्वासयञ्छनैः॥
यायाद् व्यूहेन महता मकरेण पुरोभये । श्येनेनोद्धृतपक्षेण सूच्या वा वीरवक्त्रया ॥७॥
पश्चाद्भये तु शकटं पार्श्वयोर्वज्रसञ्ज्ञितं[1] । सर्व्वतः सर्वतोभद्रं भये व्यूहं प्रकल्पयेत् ॥८॥
कन्दरे शैलगहने निम्नगावनसङ्कटे । दीर्घाध्वनि परिश्रान्तं क्षुत्पिपासाहितक्लमं ॥९॥
व्याधिदुर्भिक्षमरकपीड़ितं दस्युविद्रुतं । पङ्कपांशुजलस्कन्धं व्यस्तं पुञ्जीकृतं पथि ॥१०॥
प्रसुप्तं भोजनव्यग्रमभूमिष्ठमसुस्थितं । चौराग्निभयवित्रस्तं वृष्टिवातसमाहतं ॥११॥
इत्यादौ स्वचमूं रक्षेत् परसैन्यं च घातयेत् । विशिष्टो देशकालाभ्यां भिन्नविप्रकृतिर्बली ॥
कुर्यात प्रकाशयुद्धं हि कूटयुद्धं विपर्य्यये । तेष्ववस्कन्दकालेषु परं हन्यात्समाकुलं ॥१३॥
अभूमिष्ठं स्वभूमिष्ठः स्वभूमौ चोपजापतः । प्रकृतिप्रग्रहाकृष्टं पाशैर्वनचरादिभिः ॥१४॥
हन्यात् प्रवीरपुरुषैर्भङ्गदानापकर्षणैः । पुरस्ताद्दर्शनं दत्वा तल्लक्षकृतनिश्चयान् ॥१५॥
हन्यात्पश्चात् प्रवीरेण बलेनोपेत्य वेगिना । पश्चाद्वा सङ्कुलीकृत्य हन्याच्छूरेण पूर्वतः ॥१६॥
आभ्यां पार्श्वाभिघातौ तु व्याख्यातौ कूटयोधने । पुरस्ताद्विषमे देशे पश्चाद्धन्यात्तु वेगवान् ॥
पुरः पश्चात्तु विषमे एवमेव तु पार्श्वयोः । प्रथमं योधयित्वा तु दूष्यामित्राटवीबलैः ॥१८॥
श्रान्तं मन्दं निराक्रन्दं हन्यादश्रान्तवाहनं । दूष्यामित्रबलैर्व्वापि भङ्गन्दत्वा प्रयत्नवान् ॥१९॥
जितमित्येव विश्वस्तं हन्यान्मन्त्रव्यपाश्रयः । स्कन्धावारपुरग्रामशस्यस्वामिप्रजादिषु ॥२०॥
विश्रम्यन्तं परानीकमप्रमत्तो विनाशयेत् । अथवा गोग्रहाकृष्टं तल्लक्ष्यं मार्गबन्धनात् ॥२१॥
अवस्कन्दभयाद्रात्रिप्रजागरकृतश्रमं । दिवासुप्तं समाहन्यान्निद्राव्याकुलसैनिकं ॥२२॥
निशि विश्रब्धसंसुप्तं नागैर्व्वा खड्गपाणिभिः । प्रयाणे पूर्वयायित्वं वनदुर्गप्रवेशनं ॥२३॥
अभिन्नानामनीकानां भेदनं भिन्नसङ्ग्रहः । विभीषिकाद्वारघातं कोषरक्षेभकर्म्म च ॥२४॥
अभिन्नभेदनं मित्रसन्धानं रथकर्म्म च । वनदिङ्मार्गविचये वीवधासारलक्षणं ॥२५॥
अनुयानापसरणे शीघ्रकार्य्योपपादनं । दीनानुसरणं घातः कोटीनां जघनस्य च ॥२६॥
अश्वकर्म्माथ पत्तेश्च सर्वदा शस्त्रधारणं । शिविरस्य च मार्गादेः शोधनं वस्तिकर्म्म च ॥२७॥

---

१. वज्रसङ्कटमिति ख. छ. च ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

संस्थूलस्थाणुवल्मीकवृक्षगुल्मापकण्टकं। सापसारा पदातीनां भूर्नातिविषमा मता ॥२८॥
स्वल्पवृक्षोपला क्षिप्रलङ्घनीयनगा स्थिरा। निःशर्करा विपङ्का च सापसारा च वाजिभूः॥
निस्थाणुवृक्षकेदारा रथभूमिरकर्द्दमा। मर्दनीयतरुच्छेद्यव्रततीपङ्कवर्जिता ॥३०॥
निर्झरागम्यशैला[१] च विषमा गजमेदिनी। उरस्यादीनि भिन्नानि प्रतिगृह्णन् बलानि हि॥
प्रतिग्रह इति ख्यातो राजकार्य्यान्तरक्षमः। तेन शून्यस्तु यो व्यूहः स भिन्न इव लक्ष्यते॥
जयार्थी न च युद्ध्येत मतिमानप्रतिग्रहः। यत्र राजा तत्र कोषः कोषाधीना हि राजता ॥३३॥
योधेभ्यस्तु ततो दद्यात् किंचिद्दातुं[२] न युज्यते। द्रव्यलक्षं राजघाते तदर्द्धं तत्सुतार्दने ॥३४॥
सेनापतिवधे तद्वद्दद्याद्धस्त्यादिमर्दने। अथवा खलु युध्येरन् पत्त्यश्वरथदन्तिनः ॥३५॥
यथा भवेदसम्बाधो व्यायामविनिवर्त्तने। असङ्करेण युद्धरन् सङ्करः सङ्कुलावहः ॥३६॥
महासङ्कुलयुद्धेषु संश्रयेरन्मतङ्गजं। अश्वस्य प्रतियोद्धारो भवेयुः पुरुषास्त्रयः ॥३७॥
इति कल्प्यास्त्रयश्चाश्वा विधेयाः कुञ्जरस्य तु। पादगोपा भवेयुश्च पुरुषा दश पञ्च च ॥३८॥
विधानमिति नागस्य विहितं स्यन्दनस्य च। अनीकमिति विज्ञेयमिति कल्प्या नव द्विपाः॥
तथानीकस्य रन्ध्रन्तु पञ्चधा च प्रचक्षते। इत्यनीकविभागेन स्थापयेद् व्यूहसम्पदः ॥४०॥
उरस्यकक्षपक्षांस्तु कल्प्यानेतान् प्रचक्षते। उरःकक्षौ च पक्षौ च मध्यं पृष्ठं प्रतिग्रहः ॥४१॥
कोटी च व्यूहशास्त्रज्ञैः सप्ताङ्गो व्यूह उच्यते। उरस्यकक्षपक्षास्तु व्यूहोऽयं सप्रतिग्रहः॥
गुरोरेष च शुक्रस्य कक्षाभ्यां परिवर्जितः। तिष्ठेयुः सेनापतयः प्रवीरैः पुरुषैर्वृताः ॥४३॥
अभेदेन च युध्येरन् रक्षेयुश्च परस्परं। मध्यव्यूहे फल्गु सैन्यं युद्धवस्तु जघन्यतः ॥४४॥
युद्धं हि नायकप्राणं हन्यते तदनायकं। उरसि स्थापयेन्नागान् प्रचण्डान् कक्षयो रथान्॥
हयांश्च पक्षयोर्व्यूहो मध्यभेदी प्रकीर्त्तितः। मध्यदेशे हयानीकं रथानीकञ्च कक्षयोः ॥४६॥
पक्षयोश्च गजानीकं व्यूहोन्तर्भेद्ययं स्मृतः। रथस्थाने हयान् दद्यात् पदातींश्च हयाश्रये॥४७॥
रथाभावे तु द्विरदान् व्यूहे सर्वत्र दापयेत्। यदि स्याद्दण्डबाहुल्यमाबाधः सम्प्रकीर्त्तितः॥
मण्डलासंहतो भोगो दण्डस्ते बहुधा शृणु। तिर्य्यग्वृत्तिस्तु दण्डः स्याद् भोगोऽन्यावृत्तिरेव च॥
मण्डलः सर्वतोवृत्तिः पृथग्वृत्तिरसंहतः। प्रदरो दृढकोऽसह्यः चापो वै कुक्षिरेव च ॥५०॥
प्रतिष्ठः सुप्रतिष्ठश्च श्येनो विजयसञ्जयौ। विशालो विजयः शूची स्थूणाकर्णचमूमुखौ ॥५१॥
सर्पास्यो वलयश्चैव दण्डभेदाश्च दुर्जयाः। अतिक्रान्तः प्रतिक्रान्तः कक्षाभ्याञ्चैकपक्षतः॥

अतिक्रान्तस्तु पक्षाभ्यां त्रयोऽन्ये तद्विपर्य्यये।
पक्षोरस्यैरतिक्रान्तः प्रतिष्ठोऽन्यो विपर्य्ययः॥ ५३॥

स्थूणापक्षो धनुःपक्षो द्विस्थूणो दण्ड ऊर्द्ध्वगः। द्विगुणोन्तस्त्वतिक्रान्तपक्षोऽन्यस्य विपर्ययः॥
द्विचतुर्दण्ड इत्येते ज्ञेया लक्षणतः क्रमात्। गोमूत्रिकाहिसञ्चारीशकटो मकरस्तथा ॥५५॥
भोगभेदाः समाख्यातास्तथा पारिप्लवङ्गकः। दण्डपक्षौ युगोरस्यः शकटस्तद्विपर्य्यये ॥५६॥
मकरी व्यतिकीर्णश्च शेषः कुञ्जरराजिभिः। मण्डलव्यूहभेदौ तु सर्वतोभद्रदुर्जयौ ॥५७॥

---

१. निःशर्करा गम्यशैलेति ज.। २. किं हि दातुमिति घ. ञ. च।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अष्टानीको द्वितीयस्तु प्रथमः सर्वतोमुखः । अर्द्धचन्द्रक ऊर्द्ध्वाङ्गो वज्रभेदास्तु संहतेः॥५८॥
तथा कर्क्कटशृङ्गी च काकपादी च गोधिका । त्रिचतुःपञ्चसैन्यानां ज्ञेया आकारभेदतः ॥
दण्डस्य स्युः सप्तदश व्यूहा द्वौ मण्डलस्य च। असङ्घातस्य षट् पञ्च भोगस्यैव तु सङ्गरे॥६०॥
पक्षादीनामथैकेन हत्वा शेषैः परिक्षिपेत । उरसा वा समाहत्य कोटिभ्यां परिवेष्टयेत्[१] ॥६१॥
परे कोटी समाक्रम्य पक्षाभ्यामप्रतिग्रहात् । कोटिभ्याञ्जघनं हन्यादुरसा च प्रपीडयेत् ॥६२॥
यतः फल्गु यतो भिन्नं यतश्चान्यैरधिष्ठितं । ततश्चारिबलं हन्यादात्मनश्चोपबृंहयेत् ॥६३॥
सारं द्विगुणसारेण फल्गुसारेण पीडयेत् । संहतञ्च गजानीकैः प्रचण्डैर्दारयेद्बलं ॥६४॥
स्यात् कक्षपक्षोरस्यैश्च वर्त्तमानस्तु दण्डकः । तत्र प्रयोगो दण्डस्य स्थानन्तुर्य्येण दर्शयेत् ॥
स्याद्दण्डसमपक्षाभ्यामतिक्रान्तः प्रदारकः। भवेत्स पक्षकक्षाभ्यामतिक्रान्तो दृढः स्मृतः ॥६६॥
कक्षाभ्याञ्च प्रतिक्रान्तव्यूहोऽसह्यः स्मृतो यथा। कक्षपक्षावधः स्थाप्योरस्यैः क्रान्तश्च खातकः ॥
द्वौ दण्डौ बलयः प्रोक्तो व्यूहो रिपुविदारणः । दुर्जयश्चतुर्वलयः शत्रोर्बलविमर्दनः ॥६८॥
कक्षपक्षौरस्यैर्भोगो विषयं परिवर्त्तयन् । सर्पचारी गोमूत्रिका शकटः शकटाकृतिः ॥६९॥
विपर्य्ययोऽमरः प्रोक्तः सर्वशत्रुविमर्दकः। स्यात् कक्षपक्षोरस्यानामेकीभावस्तु मण्डलः॥७०॥
च क्रपद्मादयो भेदा मण्डलस्य प्रभेदकाः । एवञ्च सर्वतोभद्रो वज्राक्षवरकाकवत् ॥७१॥
अर्द्धचन्द्रश्च शृङ्गाटो ह्यचलो नामरूपतः[२] । व्यूहा यथासुखं कार्य्याः शत्रूणां बलवारणाः ॥

अग्निरुवाच ।

रामस्तु रावणं हत्वा अयोध्यां प्राप्तवान् द्विज । रामोक्तनीत्येन्द्रजितं हतवांल्लक्ष्मणः पुरा ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये रामोक्तराजनीतिर्नाम द्विचत्वारिंशदधिक-
द्विशततमोऽध्यायः ।

---

१. कोटिभ्यां परिकल्पयेदिति घ. ञ. च ।

२. अस्मल्लब्धपुस्तकानां मध्ये क. झ. चिह्नितपुस्तकद्वये दण्डादिकतिपयव्यूहानां विन्दु-विन्यासैस्तत्तन्नामसमीपे आकृतयः प्रदर्शिताः, परन्तु ता अशुद्धाः । ता यथा—दण्डव्यूहस्य००० । प्रदारकस्य : : ० । दृढव्यूहस्य : : : । असह्यव्यूहस्य ॰॰॰॰ । खातकव्यूहस्य : ० ० ० ० ० ० ० ० । वलयव्यूहस्य : : : : । दुर्जयव्यूहस्य : : : : : । भोगव्यूहस्य ००००० । गोमूत्रिकाव्यूहस्य ⋮ ⋮ ⋮ । शकटव्यूहस्य ⋮ ⋮ ⋮ ⋮ ⋮ । अमर-व्यूहस्य ००००००० । सर्वतोभद्रव्यूहस्य : : : : : : ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

त्रिचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

पुरुषलक्षणम् ।

अग्निरुवाच

रामोक्तोक्ता मया नीतिः स्त्रीणां राजन् नृणां वदे । लक्षणं यत्समुद्रेण गर्गायोक्तं यथा पुरा ॥

समुद्र उवाच ।

पुंसाञ्च लक्षणं वक्ष्ये स्त्रीणाञ्चैव शुभाशुभं । एकाधिको द्विशुक्लश्च त्रिगम्भीरस्तथैव च ॥२॥
त्रित्रिकस्त्रिप्रलम्बश्च त्रिभिर्व्याप्नोति यस्तथा । त्रिवलीमांस्त्रिविनतस्त्रिकालज्ञश्च सुव्रत ॥३॥
पुरुषः स्यात्सुलक्षण्यो विपुलश्च तथा त्रिषु । चतुर्लेखस्तथा यश्च तथैव च चतुःसमः ॥४॥
चतुष्किष्कुश्चतुर्दंष्ट्रः शुक्लकृष्णस्तथैव च । चतुर्गन्धश्चतुर्ह्रस्वः सूक्ष्मदीर्घश्च पञ्चसु ॥५॥
षडुन्नतोऽष्टवंशश्च सप्तस्नेहो नवामलः । दशपद्मो दशव्यूहो न्यग्रोधपरिमण्डलः ॥६॥
चतुर्दशसमद्वन्द्वः षोडशाक्षश्च शस्यते । धर्मार्थकामसंयुक्तो धर्मो ह्येकाधिको मतः ॥७॥
तारकाभ्यां विना नेत्रे शुक्लदन्तो द्विशुक्लकः । गम्भीरस्त्रिस्वरा नाभिः सत्त्वञ्चैकं त्रिकं स्मृतं ॥
अनसूया दया क्षान्तिर्मङ्गलाचारयुक्तता । शौचं स्पृहा त्वकार्पण्यमनायासश्च शौर्य्यता ॥६॥
त्रित्रिकस्त्रिप्रलम्बः स्याद्वृषणे भुजयोर्नरः । दिग्देशजातिवर्गांश्च तेजसा यशसा श्रिया ॥
व्याप्नोति यस्त्रिकव्यापी त्रिवलीमान्नरस्त्वसौ । उदरे वलयस्तिस्रो नरन्त्रिविनतं शृणु ॥
देवतानां द्विजानाञ्च गुरूणां प्रणतस्तु यः । धर्मार्थकामकालज्ञस्त्रिकालज्ञोऽभिधीयते ॥१२॥
उरो ललाटं वक्त्रञ्च त्रिविस्तीर्णो विलेखवान् । द्वौ पाणी द्वौ तथा पादौ ध्वजच्छत्रादिभिर्युतौ ॥
अङ्गुल्यो हृदयं पृष्ठं कटिः शस्तं चतुःसमं । षण्णवत्यङ्गुलोत्सेधश्चतुष्किष्कुप्रमाणतः ॥१४॥
दंष्ट्राश्चतस्रश्चन्द्राभाश्चतुःकृष्णं वदामि ते । नेत्रतारौ भ्रुवौ श्मश्रुः कृष्णाः केशास्तथैव च ॥
नासायां वदने स्वेदे कक्षयोर्विडगन्धकः । ह्रस्वं लिङ्गं तथा ग्रीवा जङ्घे स्याद्वेदह्रस्वकं ॥
सूक्ष्माण्यङ्गुलिपर्वाणि नखकेशद्विजत्वचः । हनू नेत्रे ललाटे च नासा दीर्घा स्तनान्तरं ॥

वक्षः कक्षौ नखा नासोन्नतं वक्त्रं कृकाटिका ।
स्निग्धास्त्वक्केशदन्ताश्च लोम दृष्टिर्नखाश्च वाक् ॥ १८ ॥

जान्वोरुर्वोश्च पृष्ठस्थ वंशौ द्वौ करनासयोः । नेत्रे नासपुटौ कर्णौ मेढ्रं पायुमुखेऽमलं ॥१९॥
जिह्वोष्ठे तालुनेत्रे तु हस्तपादौ नखास्तथा । शिश्नाग्रवक्त्रं शस्यन्ते पद्माभा दश देहिनां ॥
पाणिपादं मुखं ग्रीवा श्रवणे हृदयं शिरः । ललाटमुदरं पृष्ठं बृहन्तः पूजिता दश ॥२१॥
प्रसारितभुजस्येह मध्यमाग्रद्वयान्तरं । उच्छ्रायेण समं यस्य न्यग्रोधपरिमण्डलः ॥२२॥

पादौ गुल्फौ स्फिचौ पार्श्वौ वङ्क्षणौ वृषणौ कुचौ ।
कर्णौष्ठे सक्थिनी जङ्घे हस्तौ बाहू तथाक्षिणी ॥ २३ ॥

चतुर्दशसमद्वन्द्व एतत्सामान्यतो नरः । विद्याश्चतुर्दश द्व्यक्षैः पश्येद्यः षोडशाक्षकः ॥२४॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रूक्षं शिराततं गात्रमशुभं मांसवर्जितं । दुर्गन्धिविपरीतं यच्छस्तन्दृष्ट्या प्रसन्नया ॥२५॥
धन्यस्य मधुरा वाणी गतिर्म्मत्तेभसन्निभा । एककूपभवं रोम भये रक्षा सकृत् सकृत् ॥२६॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये पुरुषलक्षणं नाम त्रिचत्वारिंशदधिक-
द्विशततमोऽध्यायः ।

चतुश्चत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

स्त्रीलक्षणम् ।

समुद्र उवाच

शस्ता [1]स्त्री चारुसर्वाङ्गी मत्तमातङ्गगामिनी । गुरूरुजघना या च मत्तपारावतेक्षणा ॥१॥
सुनीलकेशी तन्वङ्गी विलोमाङ्गी मनोहरा । समभूमिस्पृशौ पादौ संहतौ च तथा स्तनौ ॥
नाभिः प्रदक्षिणावर्त्ता गुह्यमश्वत्थपत्रवत् । गुल्फौ निगूढौ मध्येन नाभिरङ्गुष्ठमानिका ॥३॥
जठरन्न प्रलम्बञ्च रोमरूक्षा न शोभना । नर्क्षवृक्षनदीनाम्नी न सदा[2] कलहप्रिया ॥४॥
न लोलुपा न दुर्भाषा शुभा देवादिपूजिता । गण्डैर्म्मधूकपुष्पाभैर्न शिराला न लोमशा ॥५॥
न संहतभ्रूकुटिला पतिप्राणा पतिप्रिया । अलक्षणापि लक्षण्या यत्राकारस्ततो गुणाः[3] ॥६॥
भुवङ्कनिष्ठिका यस्या न स्पृशेन्मृत्युरेव सा ।

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये स्त्रीलक्षणं नाम चतुश्चत्वारिंशदधिक-
द्विशततमोऽध्यायः ।

पञ्चचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

चामरादिलक्षणम् ।

अग्निरुवाच

चामरो रुक्मदण्डोऽग्र्यः छत्रं राज्ञः प्रशस्यते । हंसपक्षैर्विरचितं मयूरस्य शुकस्य च ॥१॥
पक्षैर्वाथ बलाकाया न कार्य्यं मिश्रपक्षकैः । चतुरस्रं ब्राह्मणस्य वृत्तं राज्ञश्च शुक्लकं ॥२॥

---

१. शुभा स्त्री इति ख । २. न शठेति छ. ।
३. जठरमित्यादिः, ततो गुणा इत्यन्तः पाठः घ. ञ. पुस्तकद्वये नास्ति ।

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

त्रिचतुःपञ्चषट्सप्तअष्टपर्वश्च दण्डकः। भद्रासनं क्षीरवृक्षैः पञ्चाशदङ्गुलोच्छ्रयैः[1] ॥३॥
विस्तारेण त्रिहस्तं[2] स्यात् सुवर्णाद्यैश्च चित्रितं। धनुर्द्रव्यत्रयं लोहं श्रृङ्गं दारु द्विजोत्तम ॥४॥
ज्याद्रव्यत्रितयञ्चैव वंशभङ्गत्वचस्तथा। दारुचापप्रमाणन्तु श्रेष्ठं हस्तचतुष्टयं ॥५॥
तदेव समहीनन्तु प्रोक्तं मध्यकनीयसि। मुष्टिग्राहनिमित्तानि मध्ये द्रव्याणि कारयेत् ॥६॥
स्वल्पकोटिस्त्वचा श्रृङ्गं शार्ङ्गलोहमये द्विज। कामिनीभ्रूलताकारा कोटिः कार्य्या सुसंयता ॥
पृथग्वा विप्र मिश्रं वा लौहं शार्ङ्गन्तु कारयेत्। शार्ङ्गं समुचितं कार्य्यं रुक्मविन्दुविभूषितं ॥
कुटिलं स्फुटितश्चापं सच्छिद्रश्च न शस्यते। सुवर्णं रजतं ताम्रं कृष्णायो धनुषि स्मृतं ॥९॥
माहिषं शारभं शार्ङ्गं रौहिषं वा धनुः शुभं। चन्दनं वेतसं सालं धावलङ्ककुभन्तरुः ॥१०॥
सर्वश्रेष्ठं धनुर्वंशैर्गृहीतैः शरदि श्रितैः। पूजयेत्तु धनुः[3] खड्गमन्त्रैस्त्रैलोक्यमोहनैः ॥११॥
अयसश्चाथ वंशस्य शरस्याप्यशरस्य च। ऋजवो हेमवार्णाभाः स्नायुश्लिष्टाः सुपत्रकाः ॥१२॥
रुक्मपुङ्खाः सुपुङ्खास्ते तैलधौताः सुवर्णकाः। यात्रायामभिषेकादौ यजेद्बाणधनुर्मुखान् ॥१३॥
सपताकास्त्रसङ्ग्राहसांवत्सरकरान्नृपः। ब्रह्मा वै मेरुशिखरे स्वर्गगङ्गातटेऽयजत् ॥१४॥
लोहदैत्यं स ददृशे विघ्नं यज्ञे तु चिन्तयन्। तस्य चिन्तयतो वह्नेः पुरुषोऽभूद्बली महान् ॥

ववन्देऽजश्च तन्देवा अभ्यनन्दन्त हर्षिताः[4]।
तस्मात्स नन्दकः[5] खड्गो देवोक्तो हरिरग्रहीत् ॥ १६ ॥

तं जग्राह शनैर्देवो[6] विकोपः सोऽभ्यपद्यत। खड्गो नीलो रत्नमुष्टिस्ततोऽभूच्छतबाहुकः ॥
दैत्यः स गदया देवान् द्रावयामास वै रणे। विष्णुना खड्गच्छिन्नानि दैत्यगात्राणि भूतले ॥
पतितानि तु संस्पर्शान्नन्दकस्य च तानि हि। लोहभूतानि सर्वाणि हत्वा तस्मै हरिर्वरं ॥
ददौ पवित्रमङ्गन्ते आयुधाय भवेद्भुवि। हरिप्रसादाद् ब्रह्मापि विना विघ्नं हरिं प्रभुं ॥२०॥
पूजयामास यज्ञेन वक्ष्येऽथो खड्गलक्षणं। खटीखट्टरजाता ये दर्शनीयास्तु ते स्मृताः ॥२१॥
कायच्छिदस्त्वार्षिकाः स्युर्दृढाः सूर्पारकोद्भवाः। तीक्ष्णाश्छेदसहा वङ्गास्तीक्ष्णाःस्युश्चाङ्गदेशजाः॥
शतार्द्धमङ्गुलानाञ्च श्रेष्ठं खड्गं प्रकीर्त्तितं। तदर्द्धं मध्यमं ज्ञेयं ततो हीनं न धारयेत् ॥२३॥
दीर्घं सुमधुरं शब्दं यस्य खड्गस्य सत्तम। किङ्किणीसदृशन्तस्य धारणं श्रेष्ठमुच्यते ॥२४॥
खड्गः पद्मपलाशाग्रो मण्डलाग्रश्च शस्यते। करवीरदलाग्राभो घृतगन्धो वियत्प्रभः ॥२५॥

समाङ्गुलस्थाः शस्यन्ते व्रणाः खड्गेषु लिङ्गवत्।
काकोलूकसवर्णाभा विषमास्ते न शोभनाः ॥ २६ ॥

खड्गे न पश्येद्वदनमुच्छिष्टो न स्पृशेदसिं। मूल्यं जातिं न कथयेन्निशि कुर्यान्न शीर्षके ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये आयुधलक्षणादिर्नाम पञ्चचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः।

---

१. चतुरस्रमित्यादिः, पञ्चाशदङ्गुलोच्छ्रयैरित्यन्तः पाठः ज. पुस्तके नास्ति।
२. द्विहस्तमिति ट.।
३. पूजयेत्तद्धनुरिति ग. घ. ज. च।
४. लोहदैत्यमित्यादिः, हर्षिता इत्यन्तः पाठः ज. पुस्तके नास्ति।
५. तस्मात्तु नन्दक इति घ. ञ. च।
६. महादेव इति ज.।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रूक्षं शिराततं गात्रमशुभं मांसवर्जितं । दुर्गन्धिविपरीतं यच्छस्तन्दृष्टया प्रसन्नया ॥२५॥
धन्यस्य मधुरा वाणी गतिर्म्मत्तेभसन्निभा । एककूपभवं रोम भये रक्षा सकृत् सकृत् ॥२६॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये पुरुषलक्षणं नाम त्रिचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ।

चतुश्चत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

स्त्रीलक्षणम् ।

समुद्र उवाच

शस्ता [1]स्त्री चारुसर्वाङ्गी मत्तमातङ्गगामिनी । गुरूरुजघना या च मत्तपारावतेक्षणा ॥१॥
सुनीलकेशी तन्वङ्गी विलोमाङ्गी मनोहरा । समभूमिस्पृशौ पादौ संहतौ च तथा स्तनौ ॥
नाभिः प्रदक्षिणावर्त्ता गुह्यमश्वत्थपत्रवत् । गुल्फौ निगूढौ मध्येन नाभिरङ्गुष्ठमानिका ॥३॥
जठरञ्च प्रलम्बञ्च रोमरूक्षा न शोभना । नर्क्षवृक्षनदीनाम्नी न सदा[2] कलहप्रिया ॥४॥
न लोलुपा न दुर्भाषा शुभा देवादिपूजिता । गण्डैर्म्मधूकपुष्पाभैर्न शिराला न लोमशा ॥५॥
न संहतभ्रूकुटिला पतिप्राणा पतिप्रिया । अलक्षणापि लक्षण्या यत्राकारस्ततो गुणाः[3] ॥६॥
भुवङ्कनिष्ठिका यस्या न स्पृशेन्मृत्युरेव सा ।

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये स्त्रीलक्षणं नाम चतुश्चत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ।

आत्माने II. वषे

---

५ पत्र

पञ्चचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

चामरादिलक्षणम् ।

अग्निरुवाच

चामरो रुक्मदण्डोऽग्र्यः छत्रं राज्ञः प्रशस्यते । हंसपक्षैर्विरचितं मयूरस्य शुकस्य च ॥१॥
पक्षैर्वाथ बलाकाया न कार्य्यं मिश्रपक्षकैः । चतुरस्रं ब्राह्मणस्य वृत्तं राज्ञश्च शुक्लकं ॥२॥

---

१. शुभा स्त्री इति ख । २. न शठेति छ. ।
३. जठरमित्यादिः, ततो गुणा इत्यन्तः पाठः घ. ञ. पुस्तकद्वये नास्ति ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

त्रिचतुःपञ्चषट्सप्तअष्टपर्वश्च दण्डकः । भद्रासनं क्षीरवृक्षैः पञ्चाशदङ्गुलोच्छ्रयैः[१] ॥३॥
विस्तारेण त्रिहस्तं[२] स्यात् सुवर्णाद्यैश्च चित्रितं । धनुर्द्रव्यत्रयं लोहं शृङ्गं दारु द्विजोत्तम ॥४॥
ज्याद्रव्यत्रितयञ्चैव वंशभङ्गत्वचस्तथा । दारुचापप्रमाणन्तु श्रेष्ठं हस्तचतुष्टयं ॥५॥
तदेव समहीनन्तु प्रोक्तं मध्यकनीयसि । मुष्टिग्राहनिमित्तानि मध्ये द्रव्याणि कारयेत् ॥६॥
स्वल्पकोटिस्त्वचा शृङ्गं शार्ङ्गलोहमये द्विज । कामिनीभ्रूलताकारा कोटिः कार्य्या सुसंयता ॥
पृथग्वा विप्र मिश्रं वा लौहं शार्ङ्गन्तु कारयेत् । शार्ङ्गं समुचितं कार्य्यं रुक्मविन्दुविभूषितं ॥
कुटिलं स्फुटितञ्चापं सच्छिद्रञ्च न शस्यते । सुवर्णं रजतं ताम्रं कृष्णायो धनुषि स्मृतं ॥६॥
माहिषं शारभं शार्ङ्गं रौहिषं वा धनुः शुभं । चन्दनं वेतसं सालं धावलङ्ककुभन्तरुः ॥१०॥
सर्वश्रेष्ठं धनुर्वंशैर्गृहीतैः शरदि श्रितैः । पूजयेत्तु धनुः[३] खड्गमन्त्रैस्त्रैलोक्यमोहनैः ॥११॥
अयसश्चाथ वंशस्य शरस्याप्यशरस्य च । ऋजवो हेमवर्णाभाः स्नायुश्लिष्टाः सुपत्रकाः ॥१२॥
रुक्मपुङ्खाः सुपुङ्खास्ते तैलधौताः सुवर्णकाः । यात्रायामभिषेकादौ यजेद्बाणधनुर्मुखान् ॥१३॥
सपताकास्त्रसङ्ग्राहसांवत्सरकरान्नृपः । ब्रह्मा वै मेरुशिखरे स्वर्गगङ्गातटेऽयजत् ॥१४॥
लोहदैत्यं स ददृशे विघ्नं यज्ञे तु चिन्तयन् । तस्य चिन्तयतो वह्नेः पुरुषोऽभूद्बली महान् ॥

ववन्देऽजञ्च तन्देवा अभ्यनन्दन्त हर्षिताः[४] ।
तस्मात्स नन्दकः[५] खड्गो देवोक्तो हरिग्रहीत् ॥ १६ ॥

तं जग्राह शनैर्देवो[६] विकोपः सोऽभ्यपद्यत । खड्गो नीलो रत्नमुष्टिस्ततोऽभूच्छतबाहुकः ॥
दैत्यः स गदया देवान् द्रावयामास वै रणे । विष्णुना खड्गच्छिन्नानि दैत्यगात्राणि भूतले ॥
पतितानि तु संस्पर्शान्नन्दकस्य च तानि हि । लोहभूतानि सर्वाणि हत्वा तस्मै हरिर्वरं ॥
ददौ पवित्रमङ्गन्ते आयुधाय भवेद्भुवि । हरिप्रसादाद् ब्रह्मापि विना विघ्नं हरिं प्रभुं ॥२०॥
पूजयामास यज्ञेन वक्ष्येऽथो खड्गलक्षणं । खटीखट्टरजाता ये दर्शनीयास्तु ते स्मृताः ॥२१॥
कायच्छिदस्त्वार्पिकाः स्युर्दृढाः सूर्पारकोद्भवाः । तीक्ष्णाश्छेदसहा वङ्गास्तीक्ष्णाः स्युश्चाङ्गदेशजाः ॥
शतार्द्धमङ्गुलानाञ्च श्रेष्ठं खड्गं प्रकीर्त्तितं । तदर्द्धं मध्यमं ज्ञेयं ततो हीनं न धारयेत् ॥२३॥
दीर्घं सुमधुरं शब्दं यस्य खड्गस्य सत्तम । किङ्किणीसदृशन्तस्य धारणं श्रेष्ठमुच्यते ॥२४॥
खड्गः पद्मपलाशाग्रो मण्डलाग्रश्च शस्यते । करवीरदलाग्राभो घृतगन्धो वियत्प्रभः ॥२५॥

समाङ्गुलस्थाः शस्यन्ते व्रणाः खड्गेषु लिङ्गवत् ।
काकोलूकसवर्णाभा विषमास्ते न शोभनाः ॥ २६ ॥

खड्गे न पश्येद्वदनमुच्छिष्टो न स्पृशेदसिं । मूल्यं जातिं न कथयेन्निशि कुर्यान्न शीर्षके ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये आयुधलक्षणादिर्नाम पञ्चचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ।

---

१. चतुरस्रमित्यादिः, पञ्चाशदङ्गुलोच्छ्रयैरित्यन्तः पाठः ज. पुस्तके नास्ति ।
२. द्विहस्तमिति ट. । ३. पूजयेत्तद्धनुरिति ग. घ. ञ. च ।
४. लोहदैत्यमित्यादिः, हर्षिता इत्यन्तः पाठः ज. पुस्तके नास्ति ।
५. तस्मात्तु नन्दक इति घ. ञ. च । ६. महादेव इति ज. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

षट्चत्वारिंशधिकद्विशततमोऽध्यायः

रत्नपरीक्षा ।

अग्निरुवाच

रत्नानां लक्षणं वक्ष्ये रत्नं धार्य्यमिदं नृपैः । वज्रं मरकतं रत्नं पद्मरागञ्च मौक्तिकं ॥१॥
इन्द्रनीलं महानीलं वैदूर्य्यं गन्धशस्यकं । चन्द्रकान्तं सूर्य्यकान्तं स्फटिकं पुलकं तथा ॥२॥
कर्केतनं पुष्परागं तथा ज्योतीरसं द्विज । स्फटिकं राजपट्टञ्च तथा राजमयं शुभं ॥३॥
सौगन्धिकं तथा गञ्जं शङ्खब्रह्ममयं तथा । गोमेदं रुधिराक्षञ्च तथा भल्लातकं द्विज ॥४॥
धूलीं मरकतञ्चैव तुथकं सीसमेव च । पीलुं प्रवालकञ्चैव गिरिवज्रं द्विजोत्तम ॥५॥
भुजङ्गममणिञ्चैव तथा वज्रमणिं शुभं । टिट्टिभञ्च तथा पिण्डं भ्रामरञ्च तथोत्पलं ॥६॥
सुवर्णप्रतिबद्धानि रत्नानि श्रीजयादिके । अन्तःप्रभावं वैमल्यं सुसंस्थानत्वमेव च ॥७॥
सुधार्य्या नैव धार्य्यास्तु निष्प्रभा मलिनास्तथा । खण्डाः सशर्करा ये च प्रशस्तं वज्रधारणम् ॥
अम्भस्तरति यद्वज्रमभेद्यं विमलं च यत् । षट्कोणं शक्रचापाभं लघु चार्कनिभं शुभम् ॥६॥
शुकपक्षनिभः स्निग्धः कान्तिमान्विमलस्तथा । स्वर्णचूर्णनिभैः सूक्ष्मैर्मरकतश्च विन्दुभिः ॥
स्फटिकजाः पद्मरागाः स्यू रागवन्तोऽतिनिर्म्मलाः । जातवज्ञा भवन्तीह कुरुविन्दसमुद्भवाः ॥
सौगन्धिकोत्थाः काषाया मुक्ताफलास्तु शुक्तिजाः ।
विमलास्तेभ्य उत्कृष्टा ये च शङ्खोद्भवा मुने ॥ १२ ॥
नागदन्तभवाश्चाग्र्याः कुम्भशूकरमत्स्यजाः । वेणुनागभवाः श्रेष्ठा मौक्तिकं नागजं वरं ॥१३॥
वृत्तत्वं शुक्लता स्वाच्छ्यं महत्त्वं मौक्तिके गुणाः । इन्द्रनीलं शुभं क्षीरे रजते भ्राजतेऽधिकं[1]॥
रञ्जयेत् स्वप्रभावेण तममूल्यं विनिर्दिशेत् । नीलरक्तन्तु वैदूर्य्यं श्रेष्ठं हारादिकं भजेत्[2] ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये रत्नपरीक्षा नाम षट्चत्वारिंशदधिक-
द्विशततमोऽध्यायः ।

सप्तचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

वास्तुलक्षणम् ।

अग्निरुवाच

वास्तुलक्ष्म प्रवक्ष्यामि विप्रादीनां च भूरिह । श्वेता रक्ता तथा पीता कृष्णा चैव यथाक्रमम् ॥
घृतरक्तान्नमद्यानां गन्धाढ्या वसतश्च भूः । मधुरा च कषाया च अम्लाद्युपरसा क्रमात् ॥
कुशैः शरैस्तथाकाशैर्दूर्वाभिर्या च संश्रिता । प्राच्यं विप्रांश्च निःशल्पां खातपूर्वन्तु कल्पयेत् ॥

---

१. भ्राजते स्थितमिति छ. ज. च । २. भवेदिति ग. घ. च ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

चतुःषष्टिपदं कृत्वा मध्ये ब्रह्मा चतुष्पदः। प्राक् तेषां वै गृहस्वामी कथितस्तु तथार्य्यमा ॥
दक्षिणेन विवस्वांश्च मित्रः पश्चिमतस्तथा। उदङ्महीधरश्चैव आपवत्सौ च वह्निगे ॥५॥
सावित्रश्चैव सविता जयेन्द्रौ नैर्ऋतेऽम्बुधौ। रुद्रव्याधी च वायव्ये पूर्व्वादौ कोणगाद्बहिः ॥
महेन्द्रश्च रविः सत्यो भृशः[1] पूर्व्वेऽथ दक्षिणे। गृहक्षतोऽर्यमधृती गन्धर्वाश्चाथ वारुणे ॥७॥
पुष्पदन्तोऽसुराश्चैव वरुणो यक्ष एव च। सौम्ये भल्लाटसोमौ च अदितिर्धनदस्तथा ॥८॥
नागः करग्रहश्चैशे अष्टौ दिशि दिशि स्मृताः। आद्यन्तौ तु तयोर्देवौ प्रोक्तावत्र गृहेश्वरौ ॥९॥
पर्ज्यन्यः प्रथमो देवो द्वितीयश्च करग्रहः। महेन्द्ररविसत्याश्च भृशोऽथ गगनन्तथा ॥१०॥
पवनः पूर्व्वतश्चैव अन्तरीक्षधनेश्वरौ। आग्नेये चाथ नैर्ऋत्ये मृगसुग्रीवकौ सुरौ ॥११॥
रोगो मुख्यश्च वायव्ये दक्षिणे पुष्पवित्तदौ। गृहक्षतो यमभृशौ गन्धर्वो नागपैतृकः ॥१२॥
आप्ये दौवारिकसुग्रीवौ पुष्पदन्तोऽसुरो जलं। यक्ष्मा रोगश्च शोषश्च उत्तरे नागराजकः ॥१३॥
मुख्यो भल्लाटशशिनौ अदितिश्च कुबेरकः। नागो हुताशः श्रेष्ठो वै[2] शक्रसूर्य्यौ च पूर्वतः ॥१४॥
दत्ते गृहक्षतः पुष्प आप्ये सुग्रीव उत्तमः। पुष्पदन्तो ह्युदग्द्वारि भल्लाटः पुष्पदन्तकः ॥१५॥
शिलेष्टकादिविन्यासं मन्त्रैः प्रार्च्य सुरांश्चरेत्। नन्दे नन्दय वासिष्ठे वसुभिः प्रजया सह ॥
जये भार्गवदायादे प्रजानाञ्जयमावह[3]। पूर्णेऽङ्गिरसदायादे पूर्णकामं कुरुष्व मां ॥१७॥
भद्रे काश्यपदायादे कुरु भद्रां मतिं मम। सर्वबीजसमायुक्ते सर्वरत्नौषधैर्वृते ॥१८॥
रुचिरे नन्दने नन्दे वासिष्ठे रम्यतामिह। प्रजापतिसुते देवि चतुरस्रे महीमये ॥१९॥
सुभगे सुव्रते भद्रे गृहे काश्यपि रम्यतां। पूजिते परमाचार्य्यैर्गन्धमाल्यैरलङ्कृते[4] ॥२०॥
भवभूतिकरे देवि गृहे भार्गवि रम्यतां। अव्यक्ते चाक्षते पूर्णे मुनेरङ्गिरसः सुते ॥२१॥
इष्टके त्वं प्रयच्छेष्टं प्रतिष्ठाङ्कारयाम्यहं। देशस्वामिपुरस्वामिगृहस्वामिपरिग्रहे ॥२२॥
मनुष्यधनहस्त्यश्वपशुवृद्धिकरी भव। गृहप्रवेशेऽपि तथा शिलान्यासं समाचरेत् ॥२३॥
उत्तरेण शुभः प्लक्षो वटः प्राक् स्याद् गृहादितः। उदुम्बरश्च याम्येन पश्चिमेऽश्वत्थ उत्तमः ॥
वामभागे तथोद्यानं कुर्य्याद्वासं गृहे शुभं। सायं प्रातस्तु धर्मान्तौ शीतकाले दिनान्तरे ॥२५॥
वर्षारात्रे भुवः शोषे सेक्तव्या रोपितद्रुमाः। विडङ्गघृतसंयुक्तान् सेचयेच्छीतवारिणा ॥२६॥
फलनाशे कुलत्थैश्च माषैर्मुद्गैस्तिलैर्यवैः। घृतशीतपयःसेकः फलपुष्पाय सर्वदा ॥२७॥
मत्स्याम्भसा तु सेकेन वृद्धिर्भवति शाखिनः। आविकाजसकृच्चूर्णं यवचूर्णं तिलानि च ॥
गोमांसमुदकञ्चेति सप्तरात्रं निधापयेत्। इत्सेकं सर्ववृक्षाणां फलपुष्पादिवृद्धिदं ॥२९॥
मत्स्योदकेन शीतेन आम्राणां सेक इष्यते[5]। प्रशस्तं चाप्यशोकानां कामिनीपादताडनं ॥
खर्जूरनारिकेलादेर्लवणाद्भिर्विवर्द्धनं। विडङ्गमत्स्यमांसाद्भिः सर्वेषां दोहदं शुभं ॥३१॥

इत्याग्नेये महापुराणे आग्नेये वास्त्वादिर्नाम सप्तचत्वारिंशदधिक-
द्विशततमोऽध्यायः।

---

१. भृगुरिति ज.। २. नागो हुताशनः श्रेष्ठ इति ख. छ. च। ३. विप्राणां जयमावहेति ख.।
४. गन्धमाल्यैरलङ्कृतैरिति ग. छ. च। ५. सेक उच्यते इति ख.।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अष्टचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

पुष्पादिपूजाफलम् ।

अग्निरुवाच

पुष्पैस्तु पूजनाद्विष्णुः सर्वकार्य्येषु सिद्धिदः। मालती मल्लिका यूथी पाटला करवीरकं ॥१॥
पावन्तिरतिमुक्तश्च[1] कर्णिकारः कुरण्टकः। कुब्जकस्तगरो नीपो वाणो वर्वरमल्लिका ॥२॥
अशोकस्तिलकः कुन्दः पूजायै स्यात्तमालजं। विल्वपत्रं शमीपत्रं पत्रं भृङ्गरजस्य तु ॥३॥
तुलसीकालतुलसीपत्रं वासकमर्च्चने। केतकीपत्रपुष्पं च पद्मं रक्तोत्पलादिकं ॥४॥
नार्क्कन्नोन्मत्तकङ्काञ्ची पूजने गिरिमल्लिका। कौटजं शाल्मलीपुष्पं कण्टकारीभवन्नहि ॥५॥
घृतप्रस्थेन विष्णोश्च स्नानङ्गोकोटिसत्फलं। आढकेन तु राजा स्यात घृतक्षीरैर्द्दिवं व्रजेत् ॥६॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये पुष्पादिपूजाफलं नाम अष्टचत्वारिंशदधिक-
द्विशततमोऽध्यायः।

ऊनपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

धनुर्वेदः ।

अग्निरुवाच

चतुष्पादं धनुर्वेदं वेर्द्द पञ्चविधं द्विज। रथनागाश्वपत्तीनां योधांश्चाश्रित्य कीर्त्तितं ॥१॥
यन्त्रमुक्तं पाणिमुक्तं मुक्तसन्धारितं तथा। अमुक्तं बाहुयुद्धञ्च पञ्चधा तन् प्रकीर्त्तितं ॥२॥
तत्र शस्त्रास्त्रसम्पत्त्या द्विविधं परिकीर्त्तितं। ऋजुमायाविभेदेन भूयो द्विविधमुच्यते ॥३॥
क्षेपणी चापयन्त्राद्यैर्यन्त्रमुक्तं प्रकीर्त्तितं। शिलातोमरयन्त्राद्यं पाणिमुक्तं प्रकीर्त्तितं ॥४॥
मुक्तसन्धारितं ज्ञेयं प्रासाद्यमपि यद्भवेत्। खड्गादिकममुक्तञ्च नियुद्धं विगतायुधं ॥५॥
कुर्य्याद्योग्यानि पात्राणि योद्धुमिच्छुर्जितश्रमः। धनुःश्रेष्ठानि युद्धानि प्रासमध्यानि तानि च॥
तानि खड्गजघन्यानि वाहुप्रत्यवराणि च। धनुर्वेदे गुरुर्विप्रः प्रोक्तो वर्णद्वयस्य च ॥७॥
युद्धाधिकारः शूद्रस्य स्वयं व्यापादि शिक्षया। देशस्थैः शङ्करै राज्ञः कार्य्या युद्धे सहायता॥
अङ्गुष्ठगुल्फपाण्यङ्घ्रयः श्लिष्टाः स्युः सहिता यदि। दृष्टं समपदं स्थानमेतल्लक्षणतस्तथा ॥९॥
वाह्याङ्गुलिस्थितौ पादौ स्तब्धजानुबलावुभौ। त्रिवितस्त्यन्तरास्थानमेतद्वैशाखमुच्यते॥
हंसपङ्क्त्याकृतिसमे दृश्येते यत्र जानुनी। चतुर्वितस्तिविच्छिन्ने तदेतन्मण्डलं स्मृतं ॥११॥
हलाकृतिमयं यच्च स्तब्धजानूरुदक्षिणं। वितस्त्यः पञ्च विस्तारे तदालीढं प्रकीर्त्तितं ॥१२॥

---

१. पावन्तिकातिमुक्तश्चेति ग.।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

एतदेव विपर्य्यस्तं प्रत्यालीढमिति स्मृतं[१] । तिर्य्यग्भूतो भवेद्वामो दक्षिणोऽपि भवेदृजुः ॥
गुल्फौ पार्ष्णिग्रहौ चैव स्थितौ पञ्चाङ्गुलान्तरौ । स्थानं जातं भवेदेतद् द्वादशाङ्गुलमायतं ॥
ऋजुजानुर्भवेद्वामो दक्षिणः सुप्रसारितः । अथवा दक्षिणञ्जानु कुब्जं भवति निश्चलं ॥१५॥
दण्डायतो भवेदेष चरणः सह जानुना । एवं विकटमुद्दिष्टं द्विहस्तान्तरमायतं ॥१६॥
जानुनी द्विगुणे स्यातामुत्तानौ चरणावुभौ । अनेन विधियोगेन सम्पुटं परिकीर्त्तितं ॥१७॥
किञ्चिद्विवर्त्तितौ पादौ समदण्डायतौ स्थिरौ । दृष्टमेव यथान्यायं षोडशाङ्गुलमायतं ॥१८॥
स्वस्तिकेनात्र कुर्वीत प्रणामं प्रथमं द्विज । कार्मुकं गृह्य वामेन वाणं दक्षिणकेन तु ॥१९॥
वैशाखे यदि वा जाते स्थितौ वाप्यथवायतौ । गुणान्तन्तु ततः कृत्वा कार्मुके प्रियकार्मुकः ॥
अधः कटिन्तु धनुषः फलदेशन्तु पत्रिणः । धरण्यां स्थापयित्वा त तोलयित्वा तथैव च ॥
भुजाभ्यामत्र कुब्जाभ्यां प्रकोष्ठाभ्यां शुभव्रत । यस्य वाणं धनुः श्रेष्ठं पुङ्खदेशे च पत्रिणः ॥
विन्यासो धनुषश्चैव द्वादशाङ्गुलमन्तरं । ज्यया विशिष्टः कर्त्तव्यो नातिहीनो न चाधिकः ॥
निवेश्य कार्मुकं नाभ्यां नितम्बे शरसङ्करं । उत्क्षिपेदुत्थितं हस्तमन्तरेणाक्षिकर्णयोः ॥२४॥
पूर्वेण मुष्टिना ग्राह्यस्तनाग्रे दक्षिणे शरः । हरणन्तु ततः कृत्वा शीघ्रं पूर्वं प्रसारयेत ॥२५॥

नाभ्यन्तरा नैव वाह्या नोद्ध्र्वका नाधरा तथा ।
न च कुब्जा न चोत्ताना न चला नातिवेष्टिता ॥ २६ ॥

समा स्थैर्य्यगुणोपेता पूर्वदण्डमिव स्थिता । छादयित्वा ततो लक्ष्यं पूर्व्वेणानेन मुष्टिना ॥२७॥
उरसा तूत्थितो यन्ता त्रिकोणविनतस्थितः । स्रस्तांशे निश्चलग्रीवो मयूराञ्चितमस्तकः ॥२८॥
ललाटनासावक्त्रांसाः कुर्य्युरश्वसमम्भवेत् । अन्तरं त्र्यङ्गुलं ज्ञेयं चिवुकस्यांसकस्य च ॥२९॥
प्रथमन्त्र्यङ्गुलं ज्ञेयं द्वितीये द्व्यङ्गुलं स्मृतं । तृतीयेऽङ्गुलमुद्दिष्टमायतश्चिवुकांसयोः ॥३०॥
गृहीत्वा सायकं पुङ्खात्तर्ज्जन्याङ्गुष्ठकेन तु । अनामया पुनर्गृह्य तथा मध्यमयापि च ॥३१॥
तावदाकर्षयेद्वेगाद्यावद्वाणः सुपूरितः । एवं विधमुपक्रम्य मोक्तव्यं विधिवत् खगं ॥३२॥
दृष्टिमुष्टिहतं लक्ष्यं भिन्द्याद्वाणेन सुव्रत । मुक्त्वा तु[२] पश्चिमं हस्तं क्षिपेद्वेगेन पृष्ठतः ॥३३॥
एतदुच्छेदमिच्छन्ति ज्ञातव्यं हि त्वया द्विज । कर्पूरन्तदधः कार्य्यमाकृष्य तु धनुष्मता ॥
ऊद्ध्र्वं विमुक्तके कार्ये लक्षश्लिष्टन्तु मध्यमं । श्रेष्ठं प्रकृष्टं विज्ञेयं धनुःशास्त्रविशारदैः ॥३५॥
ज्येष्ठस्तु सायको ज्ञेयो भवेद्द्वादशमुष्टयः । एकादश तथा मध्यः कनीयान्दशमुष्टयः ॥३६॥
चतुर्हस्तं धनुः श्रेष्ठं त्रयः साद्ध्र्वन्तु मध्यमं । कनीयस्तु त्रयः प्रोक्तं नित्यमेव पदातिनः ॥

अश्वे रथे गजे श्रेष्ठे तदेव परिकीर्तितं ।

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये धनुर्वेदो नाम ऊनपञ्चाशदधिक-
द्विशततमोऽध्यायः ।

---

१. प्रत्यालीढं प्रकीर्तितमिति ज । २. त्यक्त्वा इति ज. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

धनुर्व्वेदकथनम् ।

अग्निरुवाच

पूर्णायतं द्विजः कृत्वा ततो मांसर्गदायुधान् । सुनिर्धौतं धनुः कृत्वा यज्ञभूमौ विधापयेत् ॥१॥
ततो वाणं समागृह्य दंशितः सुसमाहितः । तूणमासाद्य बध्नीयाद्दृढां कक्षाञ्च दक्षिणाम् ॥२॥
विलक्ष्यमपि तद्वाणं तत्र चैव सुसंस्थितं । ततः समुद्धरेद्वाणं तूणाद्दक्षिणपाणिना ॥३॥
तेनैव सहितं मध्ये शरं सङ्गृह्य धारयेत् । वामहस्तेन वै कक्षां धनुस्तस्मात्समुद्धरेत् ॥४॥
अविषण्णमतिर्भूत्वा गुणे पुङ्खं निवेशयेत् । सम्पीड्य सिंहकर्णेन पुङ्खेनापि समे दृढं ॥५॥
वामकर्णोपविष्टञ्च फलं वामस्य धारयेत् । वर्णान् मध्यमया तत्र वामाङ्गुल्या च धारयेत् ॥
मनो लक्ष्यगतं कृत्वा मुष्टिना च विधानवित् । दक्षिणे गात्रभागे तु कृत्वा वर्णं विमोक्षयेत ॥
ललाटपुटसंस्थानं दण्डं लक्ष्ये निवेशयेत् । आकृष्य ताड़येत्तत्र चन्द्रकं षोड़शाङ्गुलम् ॥८॥

मुक्त्वा वाणं ततः पश्चादुल्काशिक्षस्तदा तया ।
निगृह्णीयान्मध्यमया ततोऽङ्गुल्या पुनः पुनः ॥ ९ ॥

अक्षिलक्ष्यं क्षिपेत्तूणाच्चतुरस्रञ्च दक्षिणम् । चतुरस्रगतं वेध्यमभ्यसेच्चादितः स्थितः ॥१०॥
तस्मादनन्तरं तीक्ष्णं परावृत्तं गतञ्च यत् । निम्नमुन्नतवेधञ्च अभ्यसेत् क्षिप्रकन्ततः ॥११॥
वेध्यस्थानेष्वथैतेषु सत्त्वस्य पुटकाद्धनुः । हस्तावापशतैश्चित्रैस्तर्ज्जयेद्दुस्तरैरपि ॥१२॥
तस्मिन्[१] वेध्यगते विप्र द्वे वेध्ये दृढसञ्ज्ञके । द्वे वेध्ये दुष्करे वेध्ये द्वे तथा चित्रदुष्करे ॥
न तु निम्नञ्च[२] तीक्ष्णञ्च दृढवेध्ये प्रकीर्त्तिते । निम्नं दुष्करमुद्दिष्टं वेध्यमूर्द्ध्वगतञ्च यत् ॥१४॥
मस्तकायनमध्ये तु चित्रदुष्करसञ्ज्ञके । एवं वेध्यगणङ्कृत्वा दक्षिणेनेतरेण च ॥१५॥
आरोहेत् प्रथमं वीरो जितलक्ष्यस्ततो नरः । एष एव विधिः प्रोक्तस्तत्र दृष्टः प्रयोक्तृभिः ॥
अधिकं भ्रमगं तस्य तस्माद् वेध्यात् प्रकीर्त्तितम् । लक्ष्यं स योजयेत्तत्र पत्रिपत्रगतं दृढम् ॥
भ्रान्तं प्रचलितञ्चैव स्थिरं यच्च भवेदति । समन्तात्ताडयेद् भिन्द्याच्छेदयेद्व्यथयेदपि ॥
कर्म्मयोगविधानज्ञो ज्ञात्वैवं विधिमाचरेत् । मनसा चक्षुषा दृष्ट्या योगशिक्षुर्यमं जयेत् ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये धनुर्वेदो नाम पञ्चाशदधिक-
द्विशततमोऽध्यायः ।

---

१. अस्मिन्निति ख. छ. ञ. च ।

२. नम्रञ्चेति घ. ञ. च ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

एकपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

धनुर्वेदकथनम् ।

अग्निरुवाच

जितहस्तो जितमतिर्जितदृग्लक्ष्यसाधकः । नियतां सिद्धिमासाद्य ततो वाहनमारुहेत् ॥१॥
दशहस्तो भवेत् पाशो वृत्तः करमुखस्तथा । गुणकार्पासमुञ्जानां भङ्गस्नाय्वर्क्कवर्म्मिणाम् ॥
अन्येषां सुदृढानाञ्च सुकृतं परिवेष्टितम् । तया त्रिंशत्समं पाशं बुधः कुर्य्यात् सुवर्त्तितम् ॥
कर्त्तव्यं शिक्षकैस्तस्य स्थानं कक्षासु वै तदा । वामहस्तेन सङ्गृह्य दक्षिणेनोद्धरेत्ततः ॥४॥
कुण्डलस्याकृतिं कृत्वा भ्राम्यैकं मस्तकोपरि । क्षिपेत् तूणमये तूर्णं पुरुषे चर्मवेष्टिते[१] ॥५॥
वल्गिते च प्लुते चैव तथा प्रव्रजितेषु च । समयोगविधिं कृत्वा[२] प्रयुञ्जीत सुशिक्षितम् ॥६॥

विजित्वा तु यथान्यायं ततो बन्धं समाचरेत् ।
कट्यामबद्ध्वा ततः खड्गं वामपार्श्वावलम्बितम् ॥ ७ ॥

दृढं विगृह्य वामेन, निष्कर्षेद्दक्षिणेन तु । षडङ्गुलपरीणाहं सप्तहस्तसमुच्छ्रितं ॥८॥
अयोमय्यः शलाकाश्च वर्माणि विविधानि च । अर्द्धहस्ते समे चैव तिर्य्यगूर्द्ध्वगतं तथा ॥
योजयेद्विधिना येन तथात्वङ्गदतः शृणु । तूणचर्मावनद्धाङ्गं स्थापयित्वा नवं दृढं ॥१०॥
करेणादाय लगुडं दक्षिणाङ्गुलकं नवं । उद्यम्य घातयेद्यस्य नाशस्तेन शिशोर्दृढं ॥११॥
उभाभ्यामथ हस्ताभ्यां कुर्य्यात्तस्य निपातनं । अक्लेशेन ततः कुर्वन् वधे सिद्धिः प्रकीर्त्तिता ॥

वाहानां श्रमकरणं प्रचारार्थं पुरा तत्र ।

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये धनुर्वेदो नाम एकपञ्चाशदधिक-
द्विशततमोऽध्यायः ।

द्विपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

धनुर्वेदकथनम् ।

अग्निरुवाच

भ्रान्तमुद्भ्रान्तमाविद्धमाप्लुतं विप्लुतं सृतं । सम्पातं समुदीशञ्च श्येनपातमथाकुलं ॥१॥
उद्धूतमवधूतञ्च सव्यं दक्षिणमेव च । अनालक्षितविस्फोटौ करालेन्द्रमहासखौ[३] ॥२॥
विकरालनिपातौ च विभीषणभयानकौ । समग्रार्द्धतृतीयांशपादपादार्द्धवारिजाः ॥३॥

---

१. वर्मवेष्टिते इति घ. । २. ज्ञात्वेति ट. ।
३. करालेन्द्रमहारवाविति क. ज. ट. च ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रत्यालीढमथालीढं वराहं लुलितन्तथा । इति द्वात्रिंशतो ज्ञेयाः खड्गचर्मविधौ रणे ॥४॥
परावृत्तमपावृत्तं गृहीतं लघुसञ्ज्ञितं । ऊर्द्ध्वात् क्षिप्तमधः क्षिप्तं सन्धारितविधारितं ॥
श्येनपातं गजपातं ग्राहग्राह्यन्तथैव च । एवमेकादशविधा ज्ञेयाः पाशविधा रणाः ॥६॥
ऋज्वायतं विशालञ्च तिर्य्यग्भ्रामितमेव च । पञ्चकर्म विनिर्दिष्टं व्यस्ते पाशे महात्मभिः ॥
छेदनं भेदनं पातो भ्रमणं शयनं[१] तथा । विकर्त्तनं कर्त्तनञ्च चक्रकर्मेदमेव च ॥८॥
आस्फोटः क्ष्वेडनं भेदस्त्रासान्दोलितकौ तथा । शूलकर्माणि जानीहि पञ्चमाघातसञ्ज्ञितं ॥९॥
दृष्टिघातं भुजाघातं पार्श्वघातं द्विजोत्तम । ऋजुपक्षेषुणा पातं तोमरस्य प्रकीर्त्तितं ॥१०॥
आहतं विप्र गोमूत्रप्रभूतङ्कमलासनं । ततोर्द्ध्वगात्रं नमितं वामदक्षिणमेव च ॥११॥
आवृत्तञ्च परावृत्तं पादोद्धूतमवप्लुतं । हंसमर्द्दं विमर्द्दञ्च[२] गदाकर्म प्रकीर्त्तितं ॥१२॥
करालमवघातञ्च दंशोपप्लुतमेव च । क्षिप्तहस्तं स्थितं शून्यं परशोस्तु विनिर्दिशेत ॥१३॥
ताडनं छेदनं विप्र तथा चूर्णनमेव च । मुद्गरस्य तु कर्माणि तथा प्लवनघातनं ॥१४॥
संभ्रान्तमथ विश्रान्तं गोविसर्गं सुदुर्द्धरं । भिन्दिपालस्य कर्माणि लगुडस्य च तान्यपि ॥१५॥
अन्त्यं मध्यं परावृत्तं निदेशान्तं द्विजोत्तम । वज्रस्यैतानि कर्माणि पट्टिशस्य च तान्यपि ॥
हरणं छेदनं घातो बलोद्धारणमायतं । कृपाणकर्म निर्दिष्टं पातनं स्फोटनं तथा ॥१७॥
त्रासनं रक्षणं घातो बलोद्धरणमायतम् । क्षेपणीकर्म निर्दिष्टं यन्त्रकर्मैतदेव तु ॥१८॥
सन्त्यागमवदंशश्च वराहोद्धूतकं तथा । हस्तावहस्तमालीनमेकहस्तावहस्तके ॥१९॥
द्विहस्तबाहुपाशे च कटिरेचितकोद्गते । उरोललाटघाते च भुजाविधमनन्तथा ॥२०॥
करोद्धूतं विमानञ्च पादाहति विपादिकं । गात्रसंश्लेषणं शान्तं तथा गात्रविपर्य्ययः ॥२१॥
ऊर्द्ध्वप्रहारं घातञ्च गोमूत्रं सव्यदक्षिणे । पारकन्तारकं दण्डं[३] कबरीबन्धमाकुलं ॥२२॥
तिर्य्यग्बन्धमपामार्गं[४] भीमवेगं सुदर्शनं । सिंहाक्रान्तं गजाक्रान्तं गर्दभाक्रान्तमेव च ॥२३॥
गदाकर्माणि जानीयान्नियुद्धस्याथ कर्म च । आकर्षणं विकर्षञ्च बाहूनां मूलमेव च ॥२४॥
ग्रीवाविपरिवर्त्तञ्च पृष्ठभङ्गं सुदारुणं । पर्य्यासनविपर्य्यासौ पशुमारमजाविकं ॥२५॥
पादप्रहारमास्फोटं कटिरेचितकन्तथा । गात्राश्लेषं स्कन्धगतं महीव्याजनमेव च ॥२६॥
उरोललाटघातञ्च विस्पष्टकरणन्तथा । उद्धूतमवधूतञ्च तिर्य्यङ्मार्गगतं तथा ॥२७॥
गजस्कन्धमवक्षेपमपराङ्मुखमेव च । देवमार्गमधोमार्गममार्गगमनाकुलं ॥२८॥
यष्टिघातमवक्षेपो वसुधादारणन्तथा । जानुबन्धं भुजाबन्धं गात्रबन्धं सुदारुणं ॥२९॥
विपृष्ठं सोदकं शुभ्रं भुजावेष्टितमेव च । सन्नद्धैः संयुगे भाव्यं सशस्त्रैस्तैर्गजादिभिः ॥३०॥
वराङ्कुशधरौ चोभौ एको ग्रीवागतोऽपरः । स्कन्धगौ द्वौ च धानुष्कौ द्वौ च खड्गधरौ गजे ॥
रथे रणे गजे चैव तुरङ्गाणां त्रयं भवेत् । धानुष्काणान्त्रयं प्रोक्तं रक्षार्थे तुरगस्य च ॥३२॥

---

१. शमनमिति घ. ज. ट. च ।

२. हंसमार्गं विमार्गञ्चेति घ. ञ. च । समार्गञ्च विमार्गञ्चेति ट. ।

३. पारकं तारकं गण्डमिति ख. घ. च ।

४. तिर्य्यगूर्द्ध्वमपामार्गमिति घ. ञ. च ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

धन्विनो रक्षणार्थाय चर्मिणन्तु[1] नियोजयेत् । स्वमन्त्रैः शस्त्रमभ्यर्च्य शास्त्रन्त्रैलोक्यमोहनं ॥
यो युद्धे याति स जयेदरीन सम्पालयेद्ध्रुवं ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये धनुर्वेदो नाम द्विपञ्चाशदधिक-
द्विशततमोऽध्यायः ।

त्रिपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

व्यवहारकथनम् ।

अग्निरुवाच

व्यवहारं प्रवक्ष्यामि नयानयविवेकदं । चतुष्पाच्च चतुःस्थानश्चतुःसाधन उच्यते ॥१॥
चतुर्हितश्चतुर्व्यापी चतुष्कारी च कीर्त्त्यते । अष्टाङ्गोऽष्टादशपदः शतशाखस्तथैव च ॥२॥
त्रियोनिर्द्व्यभियोगश्च द्विद्वारो द्विगतिस्तथा । धर्मश्च व्यवहारश्च चरित्रं राजशासनं ॥
चतुष्पाद्व्यवहाराणामुत्तरः पूर्वसाधकः । तत्र सत्ये स्थितो धर्मो व्यवहारस्तु साक्षिषु ॥४॥
चरित्रं सङ्ग्रहे पुंसां राजाज्ञायान्तु शासनं । सामाभ्युपायसाध्यत्वाच्चतुःसाधन उच्यते ॥
चतुर्णामाश्रमाणाञ्च रक्षणात्स चतुर्हितः । कर्त्तारं साक्षिणश्चैव सभ्यान्राजानमेव च । ६॥
व्याप्नोति पादगो यस्माच्चतुर्व्यापी ततः स्मृतः ।
धर्म्मस्यार्थस्य यशसो लोकपङ्क्तेस्तथैव च ॥ ७ ॥
चतुर्णाङ्करणादेष चतुष्कारी प्रकीर्त्तितः । राजा स पुरुषः सभ्याः शास्त्रं गणकलेखकौ ॥८॥
हिरण्यमग्निरुदकमष्टाङ्गः समुदाहृतः । कामात् क्रोधाच्च लोभाच्च त्रिभ्यो यस्मात् प्रवर्त्तते ॥
त्रियोनिः कीर्त्यते तेन त्रयमेतद्विवादकृत् । द्व्यभियोगस्तु विज्ञेयः शङ्कातत्त्वाभियोगतः ॥
शङ्काषड्भिस्तु संसर्गात्तत्त्वषोढादिदर्शणात । पक्षद्वयाभिसम्बन्धाद्द्विद्वारः समुदाहृतः ॥
पूर्ववादस्तयोः पक्षः प्रतिपक्षस्त्वनन्तरः । भूतच्छलानुसारित्वाद्द्विगतिः समुदाहृता ॥१२॥
ऋणन्देयमदेयञ्च येन यत्र यथा च यत् । दानग्रहणधर्म्मश्च ऋणादानमिति स्मृतम् ॥
स्वद्रव्यं यत्र विश्रम्भान्निक्षिपत्यविशङ्कितः । निक्षेपन्नाम तत् प्रोक्तं व्यवहारपदम्बुधैः ॥१४॥
वणिक्प्रभृतयो यत्र कर्म्म सम्भूय कुर्वते । तत्सम्भूयसमुत्थानं व्यवहारपदं विदुः ॥१५॥
दत्त्वा द्रव्यञ्च सम्यग्यः पुनरादातुमिच्छति । दत्त्वाप्रदानिकं नाम तद्विवादपदं स्मृतम् ॥
अभ्युपेत्य च शुश्रूषां यस्तां न प्रतिपद्यते । अशुश्रूषाभ्युपेत्यैतद्विवादपदमुच्यते ॥१७॥
भृत्यानां वेतनस्योक्तादानादानविधिक्रिया । वेतनस्यानपाकर्म तद्विवादपदं स्मृतम् ॥१८॥
निक्षिप्तं वा परद्रव्यं नष्टं लब्ध्वा प्रहृत्य वा । विक्रीयते परोक्षं यत् स ज्ञेयोऽस्वामिविक्रयः ॥

---

१. वर्म्मिणन्त्विति घ. ञ. च ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विक्रीय पण्यं मूल्येन क्रेत्रे यन्न न दीयते। विक्रीयासम्प्रदानन्तद्विवादपदमुच्यते ॥१०॥
क्रीत्वा मूल्येन यत्पण्यं क्रेता न बहु मन्यते। क्रीत्वा मूल्येन यत् पण्यं दुष्क्रीतं मन्यते क्रयी ॥
पाखण्डनैगमादीनां स्थितिः समय उच्यते। समयस्यानपाकर्म तद्विवादपदं स्मृतम् ॥२२॥
सेतुकेदारमर्य्यादाविकृष्टाकृष्टनिश्चयाः। क्षेत्राधिकारे यत्र स्युर्विवादः क्षेत्रजस्तु सः ॥२३॥
वैवाहिको विधिः स्त्रीणां यत्र पुंसाञ्च कीर्त्त्यते। स्त्रीपुंसंयोगसंज्ञन्तु तद्विवादपदं स्मृतम् ॥
विभागोर्थस्य पैत्रस्य पुत्रैर्यस्तु प्रकल्प्यते। दायभागमिति प्रोक्तं तद्विवादपदं बुधैः ॥२५॥
सहसा क्रियते कर्म्म यत् किञ्चित् बलदर्पितैः। तत् साहसमिति प्रोक्तं विवादपदमुच्यते ॥
देशजातिकुलादीनामाक्रोशत्यङ्गसंयुतम्। यद्वचः प्रतिकूलार्थं वाक्पारुष्यं तदुच्यते ॥२७॥
परगात्रेष्वभिद्रोहो हस्तपादायुधादिभिः। अग्न्यादिभिश्चोपघातैर्दण्डपारुष्यमुच्यते ॥२८॥
अक्षवर्ज्जशलाकाद्यैर्देवतं द्यूतमुच्यते। पञ्चक्रीड़ावयोभिश्च प्राणिद्यूतसमाह्वयः ॥२९॥
प्रकीर्णकः पुनर्ज्ञेयो व्यवहारो निराश्रयः। राज्ञामाज्ञाप्रतीघातस्तत्कर्माकरणन्तथा ॥३०॥
व्यवहारोऽष्टादशपदस्तेषां भेदोऽथ वै शतम्। क्रियाभेदान्मनुष्याणां शतशाखो निगद्यते ॥
व्यवहारान्नृपः पश्येज् ज्ञानिविप्रैरकोपनः। शत्रुमित्रसमाः सभ्या अलोभाः श्रुतिवेदिनः ॥

अपश्यता[1] कार्य्यवशात सभ्यैर्विप्रं नियोजयेत्।
रागाल्लोभाद्भयाद्वापि स्मृत्यपेतादिकारिणः॥ ३३॥
सभ्याः पृथक् पृथग् दण्ड्या विवादाद्द्विगुणो दमः।
स्मृत्याचारव्यपेतेन मार्गेण धर्षितः परैः॥ ३३॥

आवेदयति यद्राज्ञे व्यवहारपदं हि तत्। प्रत्यर्थिनोऽग्रतो लेख्यं यथा वेदितमर्थिना ॥
समामासतदर्द्धाहर्नामजात्यादिचिह्नितम्। श्रुतार्थस्योत्तरं लेख्यं पूर्वावेदकसन्निधौ ॥३६॥
ततोऽर्थी लेखयेत्सद्यः प्रतिज्ञातार्थसाधनम्। तत्सिद्धौ सिद्धिमाप्नोति विपरीतमतोऽन्यथा ॥
चतुष्पाद्व्यवहारोयं विवादेषूपदर्शितः। अभियोगमनिस्तीर्य्य नैनं प्रत्यभियोजयेत ॥३८॥
अभियुक्तश्च नान्येन त्यक्तं विप्रकृतिं नयेत्। कुर्य्यात् प्रत्यभियोगन्तु कलहे साहसेषु च ॥
उभयोः प्रतिभूर्ग्राह्यः समर्थः कार्य्यनिर्णये। निह्नवे भावितो दद्याद्धनं राज्ञे तु तत्समम् ॥
मिथ्याभियोगाद् द्विगुणमभियोगाद्धनं हरेत्। साहसस्तेयपारुष्येष्वभिशापात्यये स्त्रियाः ॥
विचारयेत्सद्य एव कालोऽन्यत्रेच्छया स्मृतः। देशदेशान्तरं याति सृक्कणी परिलेढि च ॥
ललाटं स्विद्यते चास्य मुखवैवर्ण्यमेव च। स्वभावाद्विकृतं गच्छेन्मनोवाक्कायकर्मभिः ॥

अभियोगेऽथ वा साक्ष्ये वाग्दुष्टः परिकीर्त्तितः।
सन्दिग्धार्थं स्वतन्त्रो यः साधयेद्यश्च निष्पतेत्॥ ४४॥
न चाहूतो वदेत् किञ्चिद्धनी दण्ड्यश्च स स्मृतः।
साक्षिषूभयतः सत्सु साक्षिणः पूर्ववादिनः॥ ४५॥

पूर्वपक्षेऽधरीभूते भवन्त्युत्तरवादिनः। सगणश्चेद्विवादः स्यात्तत्र हीनन्तु दापयेत् ॥४६॥

---

१. अपश्यता इत्ययं पाठो न साधुः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दत्तं पणं वसुञ्चैव धनिनो धनमेव च । छलन्निरस्य दूतेन व्यवहारान्नयेन्नृपः ॥४७॥
भूतमप्यर्थमप्यस्तं हीयते व्यवहारतः । निहुते निखिलानेकमेकदेशविभावितम् ॥४८॥
दाप्यः सर्वान्नृपेणार्थान्न ग्राह्यस्त्वनिवेदितः । स्मृत्योर्विरोधे न्यायस्तु बलवान् व्यवहारतः ॥

अर्थशास्त्राद्धि बलवद्धर्मशास्त्रमिति स्थितिः[१] ।
प्रमाणं लिखितं भुक्तिः साक्षिणश्चेति कीर्त्तितम् ॥ ५० ॥

एषामन्यतमाभावे दिव्यान्यतममुच्यते । सर्वेष्वेव विवादेषु बलवत्युत्तरा क्रिया ॥५१॥
आधौ प्रतिग्रहे क्रीते पूर्वा तु बलवत्तरा । पश्यतो ब्रुवतो भूमेर्हानिर्विंशतिवार्षिकी ॥५२॥
परेण भुज्यमाना या धनस्य दशवार्षिकी । आधिसीमोपनिःक्षेपजडबालधनैर्विना ॥५३॥
तथोपनिधिराजस्त्रीश्रोत्रियाणां धनैरपि । आध्यादीनां विहर्तारं धनिने दापयेद्धनं ॥५४॥
दण्ड्यं च तत्समं राज्ञे शक्त्यपेक्ष्यमथापि वा । आगमोप्यधिको भुक्तिं विना पूर्वक्रमागतां ॥
आगमोपि बलन्नैव भुक्तिः स्तोकापि यत्र न । आगमेन विशुद्धेन भोगो याति प्रमाणताम् ॥
अविशुद्धागमो भोगः प्रामाण्यं नाधिगच्छति । आगमस्तु कृतो येन सोभियुक्तस्तमुद्धरेत् ॥
न तत्सुतस्तत्सुतो वा भुक्तिस्तत्र गरीयसी । योभियुक्तः परेतः स्यात् तस्य ऋक्थात्तमुद्धरेत् ॥
न तत्र कारणं भुक्तिरागमेन विनाकृता । बलोपाधिविनिर्वृत्तान् व्यवहारान्निवर्त्तयेत् ॥५९॥
स्त्रीनक्तमन्तरागारबहिःशत्रुकृतस्तथा । मत्तोन्मत्तार्त्तव्यसनिबालभीतप्रयोजितः ॥६०॥
असम्बद्धकृतश्चैव व्यवहारो न सिद्ध्यति । प्रनष्टाधिशतं देयं नृपेण धनिने धनं ॥६१॥
विभावयेन्न चेल्लिङ्गैस्तत्समं दातुमर्हति । देयश्चौरहृतं द्रव्यं राज्ञा जनपदाय तु ॥६२॥
अशीतिभागो वृद्धिः स्यान्मासि मासि सबन्धके । वर्णक्रमाच्छतं द्वित्रिचतुष्पञ्चकमन्यथा ॥
सप्ततिस्तु पशुस्त्रीणां रसस्याष्टगुणा परा । वस्त्रधान्यहिरण्यानां चतुस्त्रिद्विगुणा तथा ॥६४॥
ग्रामान्तरात्तु दशकं सामुद्रादपि विंशतिं । दद्युर्वा स्वकृतां वृद्धिं सर्वे सर्वासु जातिषु । ६५॥
प्रपन्नं साधयन्नर्थं न वाच्यो नृपतिर्भवेत् । साध्यमानो नृपं गच्छेद्दण्ड्यो दाप्यश्च तद्धनं ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये व्यवहारो नाम त्रिपञ्चाशदधिक-
द्विशततमोऽध्यायः ।

चतुःपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

व्यवहारकथनम् ।

अग्निरुवाच

गृहीतार्थः क्रमाद्दाप्यो धनिनामधमर्णिकः । दत्वा तु ब्राह्मणायादौ नृपतेस्तदनन्तरम् ॥१॥
राज्ञाधमर्णिको दाप्यः साधितादशकं स्मृतम् । पञ्चकन्तु शतं दाप्यः प्राप्तार्थो ह्युत्तमर्णिकः ॥

१. स्मृतिरिति घ. ञ. च ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हीनजातिं परिक्षीणमृणार्थं कर्म्म कारयेत् । ब्राह्मणस्तु परिक्षीणः शनैर्दाप्यो यथोदयम् ॥३॥
दीयमानं न गृह्णाति प्रयुक्तं यः स्वकन्धनम् । मध्यस्थस्थापितं तत्स्याद्वर्द्धते न ततः परं ।४॥

ऋक्त्थग्राह ऋणं दाप्यो योपिद्ग्राहस्तथैव च ।
पुत्रोऽनन्याश्रितद्रव्यः पुत्रहीनस्य ऋक्थिनः ॥ ५ ॥

अविभक्तैः कुटुम्बार्थं यदृणन्तु कृतम्भवेत् । दद्युस्तदृक्थिनः प्रेते प्रोषिते वा कुटुम्बिनि ॥६॥
न योषित् पतिपुत्राभ्यां न पुत्रेण कृतं पिता । दद्यादृते कुटुम्बार्थान्न पतिः स्त्रीकृतं तथा ॥७॥
गोपशौण्डिकशैलूषरजकव्याधयोषितां । ऋणं दद्यात्पतिस्त्वासां यस्माद्वृत्तिस्तदाश्रया ॥८॥
प्रतिपन्नं स्त्रिया देयं पत्या वा सह यत् कृतं । स्वयं कृतं वा यदृणं नान्यस्त्री दातुमर्हति ॥
पितरि प्रोषिते प्रेते व्यसनाभिप्लुतेऽथ वा[१] । पुत्रपौत्रैरृणं देयं निह्नवे साक्षिभावितम् ॥
सुराकामद्यूतकृतन्दण्डशुल्कावशिष्टकम् । वृथा दानं तथैवेह पुत्रो दद्यान्न पैतृकम् ॥११॥
भ्रातॄणामथ दम्पत्योः पितुः पुत्रस्य चैव हि । प्रतिभाव्यमृणं ग्राह्यमविभक्तेन च स्मृतम्[२] ॥
दर्शने प्रत्यये दाने प्रतिभाव्यं विधीयते । आद्यौ तु वितथे दाप्या वितथस्य सुता अपि ॥
दर्शनप्रतिभूर्यत्र मृतः प्रात्ययिकोऽपि वा । न तत्पुत्रा धनं दद्युर्दद्युर्दानाय ये स्थिताः ॥१४॥
बहवः स्युर्यदि स्वांशैर्दद्युः प्रतिभुवो धनम् । एकच्छायाश्रितेष्वेषु धनिकस्य यथारुचि ॥
प्रतिभूर्दापितो यत्र प्रकाशं धनिने धनम् । द्विगुणं प्रतिदातव्यमृणिकैस्तस्य तद्भवेत् ॥१६॥
स्वसन्ततिस्त्रीपशव्यं धान्यं द्विगुणमेव च । वस्त्रं चतुर्गुणं प्रोक्तं रसश्चाष्टगुणस्तथा ॥१७॥

आधिः प्रणश्येत् द्विगुणे धने यदि न मोक्ष्यते ।
काले कालकृतं नश्येत फलभोग्यो न नश्यति ॥ १८ ॥

गोप्याधिभोग्यो नावृद्धिः सोपकारेऽथ भाविते । नष्टो देयो विनष्टश्च दैवराजकृतादृते ॥१९॥

आधेः स्वीकरणात्सिद्धीरक्षमाणोप्यसारताम् ।
यातश्चेदन्य आधेयो धनभाग् वा धनी भवेत् ॥ २० ॥

चरित्रं बन्धककृतं सवृद्धं दापयेद्धनं । सत्यङ्कारकृतं द्रव्यं द्विगुणं प्रतिदापयेत् ॥२१॥

उपस्थितस्य मोक्तव्य आधिर्दण्डोऽन्यथा भवेत् ।
प्रयोजके सति धनं कुलेन्यस्याधिमाप्नुयात् ॥ २२ ॥
तत्कालकृतमूल्यो वा तत्र तिष्ठेदवृद्धिकः ।
विना धारणकाद्वापि विक्रीणीते ससाक्षिकम् ॥ २३ ॥

यदा तु द्विगुणीभूतमृणमाधौ तदा खलु । मोच्यश्चाधिस्तदुत्पाद्य प्रविष्टे द्विगुणे धने ॥२४॥
व्यसनस्थमनाख्याय हस्तेऽन्यस्य यदर्पयेत् । द्रव्यं तदौपनिधिकं प्रतिदेयं तथैव तत् ॥२५॥
न दाप्योऽपहृतं तत्तु राजदैवकतस्करैः । भ्रेषश्चेन्मार्गिते दत्ते दाप्यो दण्डश्च तत्समम् ॥२६॥

---

१ व्यसनाभिप्लुतेऽपि वेति ख. घ. ञ. च ।
२ प्रातिभाव्यमृणं साक्ष्यमविभक्तेन तत् स्मृतमिति ख. ग. घ. छ. ज. ट. च ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आजीवन् स्वेच्छया दण्ड्यो दाप्यस्तच्चापि सोदयं ।
याचितान्वाहितन्यासे निक्षेपेष्वप्ययं विधिः ॥ २७ ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये व्यवहारो नाम चतुःपञ्चाशदधिक-
द्विशततमोऽध्यायः ।

पञ्चपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

दिव्यप्रमाणकथनम् ।

अग्निरुवाच

तपस्विनो दानशीलाः कुलीनाः सत्यवादिनः । धर्म्मप्रधाना ऋजवः पुत्रवन्तो धनान्विताः ॥
पञ्चयज्ञक्रियायुक्ताः साक्षिणः पञ्च वा त्रयः । यथाजाति यथावर्णं सर्व्वे सर्व्वेषु वा स्मृताः ॥
स्त्रीवृद्धबालकितवमत्तोन्मत्ताभिशस्तकाः । रङ्गावतारिपापण्डिकूटकृद्विकलेन्द्रियाः ॥३॥
पतिताप्तार्थसम्बन्धिसहायरिपुतस्कराः । असाक्षिणः सर्व्वसाक्षी चौर्य्यपारुष्यसाहसे ॥४॥
उभयानुमतः साक्षी भवत्येकोपि धर्म्मवित् । अब्रुवन् हि नरः साक्ष्यमृणं सदशबन्धकम् ॥

राज्ञा सर्वं प्रदाप्यः स्यात् षट्चत्वारिंशकेऽहनि ।
न ददाति हि यः साक्ष्यं जानन्नपि नराधमः ॥ ६ ॥

स कूटसाक्षिणां पापैस्तुल्यो दण्डेन चैव हि । साक्षिणः श्रावयेद्वादिप्रतिवादिसमीपगान् ॥
ये पातककृतां लोका महापातकिनां तथा । अग्निदानाश्च ये लोका ये च स्त्रीबालघातिनां ॥

तान् सर्व्वान् समवाप्नोति यः साक्ष्यमनृतं वदेत् ।
सुकृतं यत्त्वया किञ्चिज्जन्मान्तरशतैः कृतम् ॥ ९ ॥

तत्सर्वं तस्य जानीहि यं पराजयसे मृषा । द्वैधे बहूनां वचनं समेषु गुणिनान्तथा ॥१०॥
गुणिद्वैधे तु वचनं ग्राह्यं ये गुणवत्तराः । यस्योचुः साक्षिणः सत्यां प्रतिज्ञां स जयी भवेत् ॥
अन्यथा वादिनो यस्य ध्रुवस्तस्य पराजयः । उक्तेपि साक्षिभिः साक्ष्ये यद्यन्ये गुणवत्तराः ॥
द्विगुणा वान्यथा ब्रूयुः कूटाः स्युः पूर्वसाक्षिणः । पृथक् पृथग्दण्डनीयाः कूटकृत्साक्षिणस्तथा ॥

विवादाद् द्विगुणं दण्डं विवास्यो ब्राह्मणः स्मृतः ।
यः साक्ष्यं श्रावितोऽन्येभ्यो निह्नुते तत्तमोवृतः ॥ १४ ॥

स दाप्योऽष्टगुणं दण्डं ब्राह्मणन्तु विवासयेत् । वर्णिनां हि बधो यत्र तत्र साक्ष्यऽनृतं वदेत् ॥

यः कश्चिदर्थोऽभिमतः स्वरुच्या तु परस्परं ।
लेख्यं तु साक्षिमत् कार्य्यं तस्मिन् धनिकपूर्वकम् ॥ १६ ॥

समामासतदर्द्धाहर्न्नामजातिस्वगोत्रजैः । सब्रह्मचारिकात्मीयपितृनामादिचिह्नितम् ॥१७॥
समाप्तेऽर्थे ऋणी नाम स्वहस्तेन निवेशयेत् । मतं मेऽमुकपुत्रस्य यदत्रोपरिलेखितं ॥१८॥
साक्षिणश्च स्वहस्तेन पितृनामकपूर्वकम् । अत्राहममुकः साक्षी लिखेयुरिति ते समाः ॥१९॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अलिपिज्ञ ऋणी यः स्याल्लेखयेत् स्वमतन्तु सः ।
साक्षी वा साक्षिणान्येन सर्वसाक्षिसमीपतः ॥ २० ॥
उभयाभ्यर्थितेनैतन्मया ह्यमुकसूनुना । लिखितं ह्यमुकेनेति लेखकोऽथान्ततो लिखेत ॥२१॥
विनापि साक्षिभिर्ल्लेख्यं स्वहस्तलिखितञ्च यत् । तत् प्रमाणं स्मृतं सर्वं बलोपधिकृताद्दते ॥
ऋणं लेख्यकृतं देयं पुरुषैस्त्रिभिरेव तु । आधिस्तु भुज्यते तावद्यावत्तन्न प्रदीयते ॥२३॥
देशान्तरस्थे दुर्ल्लेख्ये नष्टोन्मृष्टे हृते तथा । भिन्ने च्छिन्ने तथा दग्धे लेख्यमन्यत्तु कारयेत ॥
सन्दिग्धार्थविशुद्धयर्थं स्वहस्तलिखितं तु यत् । युक्तिप्राप्तिक्रियाचिह्नसम्बन्धागमहेतुभिः ॥
लेख्यस्य पृष्ठेऽभिलिखेत प्रविष्टमधमर्णिनः । धनी चोपगतं दद्यात् स्वहस्तपरिचिह्नितम् ॥
दत्त्वर्णं पाटयेल्लेख्यं शुद्धयै चान्यत्तु कारयेत । साक्षिमच्च भवेद्यत्तु तद्दातव्यं ससाक्षिकं ॥
तुलाग्न्यापो विषं कोषो दिव्यानीह विशुद्धये । महाभियोगेष्वेतानि शीर्षकस्थेऽभियोक्तरि ॥
रुच्या वान्यतरः कुर्य्यादितरो वर्त्तयेच्छिरः । विनापि शीर्षकात् कुर्य्यान्नृपद्रोहेऽथ पातके ॥
नासहस्राद्धरेत फालं न तुलान्न विषन्तथा । नृपार्थेष्वभियोगेषु वहेयुः शुचयः सदा ॥३०॥
सहस्रार्थे तुलादीनि कोषमल्पेऽपि दापयेत् । शताद्धं दापयेच्छुद्धमशुद्धो दण्डभाग् भवेत् ॥
सचेलस्नातमाहूय सूर्य्योदय उपोषितम् । कारयेत्सर्वदिव्यानि नृपब्राह्मणसन्निधौ ॥३२॥
तुला स्त्रीबालवृद्धान्धपङ्गुब्राह्मणरोगिणां । अग्निर्ज्जलं वा शूद्रस्य यवाः सप्त विषस्य वा ॥३३॥
तुलाधारणविद्वद्भिरभियुक्तस्तुलाश्रितः । प्रतिमानसमीभूतो रेखां कृत्वावतारितः ॥३४॥
आदित्यचन्द्रावनिलोऽनलश्च द्यौर्भूमिरापो हृदयं यमश्च ।
अहश्च रात्रिश्च उभे च सन्ध्ये धर्म्मश्च जानाति नरस्य वृत्तम् ॥ ३५ ॥
त्वं तुले सत्यधामासि पुरा देवैर्विनिर्मिता । सत्यं वदस्व कल्याणि संशयान्मां विमोचय ॥
यद्यस्मि पापकृन्मातस्ततो मां त्वमधो नय । शुद्धश्चेद्गमयोर्द्ध्वम्मां तुलामित्यभिमन्त्रयेत् ॥
करौ विमृदितव्रीहेर्लक्षयित्वा ततो न्यसेत् । सप्ताश्वत्थस्य पत्राणि तावत् सूत्रेण वेष्टयेत् ॥
त्वमेव सर्वभूतानामन्तश्चरसि पावक । साक्षिवत् पुण्यपापेभ्यो ब्रूहि सत्यङ्करे मम ॥३९॥
तस्येत्युक्तवतो लौहं पञ्चाशतपलिकं समम् । अग्निवर्णं न्यसेत् पिण्डं हस्तयोरुभयोरपि ॥४०॥
स तमादाय सप्तैव मण्डलानि शनैर्व्रजेत् । षोड़शाङ्गुलकं ज्ञेयं मण्डलं तावदन्तरम् ॥४१॥
मुक्त्वाग्निं मृदितव्रीहिरदग्धः शुद्धिमाप्नुयात । अन्तरा पतिते पिण्डे सन्देहे वा पुनर्हरेत् ॥
पवित्राणां पवित्र त्वं शोध्यं शोधय पावन । सत्येन माभिरक्षस्व वरुणेत्यभिशस्तकम् ॥४३॥
नाभिदघ्नोदकस्थस्य गृहीत्वोरू जलं विशेत् । समकालमिषुं मुक्तमानीयान्यो जवी नरः ॥
यदि तस्मिन्निमग्नाङ्गं पश्येच्च शुद्धिमाप्नुयात् । त्वं विष ब्रह्मणः पुत्र सत्यधर्मे व्यवस्थितं ॥
त्रायस्वास्मादभीशापात् सत्येन भव मेऽमृतम् । एवमुक्त्वा विषं साङ्गं भक्षयेद्धिमशैलजं ॥
यस्य वेगैर्विना जीर्णं शुद्धिं तस्य विनिर्दिशेत् ।
देवानुग्रान् समभ्यर्च्च्य तत्स्नानोदकमाहरेत् ॥ ४७ ॥
संश्राव्य पाययेत्तस्माज्जलात्तु प्रसृतित्रयम् । आचतुर्दशमादह्नो यस्य नो राजदैविकम् । ४८॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

व्यसनं जायते घोरं स शुद्धः स्यादसंशयम् । सत्यवाहनशस्त्राणि गोबीजकनकानि च ॥४९॥
देवतागुरुपादाश्च इष्टापूर्त्तकृतानि च । इत्येते सुकराः प्रोक्ताः शपथाः स्वल्पसंशये ॥५०॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये दिव्यानि प्रमाणानि नाम पञ्चपञ्चाशदधिक-द्विशततमोऽध्यायः ।

षट्पञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

दायविभागकथनम् ।

अग्निरुवाच

विभागञ्चेत् पिता कुर्य्यादिच्छया विभजेत् सुतान् ।
ज्येष्ठं वा श्रेष्ठभागेन सर्वे वा स्युः समांशिनः ॥ १ ॥
यदि दद्यात् समानंशान् कार्य्याः पत्न्यः समांशिकाः ।
न दत्तं स्त्रीधनं यासां भर्त्रा वा श्वशुरेन वा ॥ २ ॥

शक्तस्यानीहमानस्य किञ्चिद्दत्त्वा पृथक् क्रिया। न्यूनाधिकविभक्तानां धर्म्यश्च पितृना कृतः ॥
विभजेयुः सुताः पित्रोरूद्र्ध्वमृक्थमृणं समम् । मातुर्दुहितरः शेषमृणात्ताभ्य ऋतेऽन्वयः ॥
पितृद्रव्याविनाशेन यदन्यत स्वयमर्जयेत् । मैत्रमौद्वाहिकञ्चैव दायादानान्न तद्भवेत् ॥५॥
सामान्यार्थसमुत्थाने विभागस्तु समः स्मृतः। अनेकपितृकाणान्तु पितृतो भागकल्पना ॥६॥
भूर्य्यापिता महोपात्ता निबन्धो द्रव्यमेव वा। तत्र स्यात सदृशं स्वाम्यं पितुः पुत्रस्य चोभयोः ॥
विभक्तेषु सुतो जातः सवर्णायां विभागभाक् । दृश्याद्वा तद्विभागः स्यादायव्ययविशोधितात् ॥
क्रमादभ्यागतं द्रव्यं हृतमभ्युद्धरेच्च यः । दायादेभ्यो न तद्दद्याद्विद्यया लब्धमेव च ॥९॥
पितृभ्यां यस्य यद्दत्तं तत्तस्यैव धनं भवेत । पितुरूद्र्ध्वं विभजतां माताप्यंशं समं हरेत् ॥१०॥
असंस्कृतास्तु संस्कार्या भ्रातृभिः पूर्वसंस्कृतैः। भगिन्यश्च निजादंशाद्दत्त्वांशन्तु तुरीयकं ॥११॥
चतुस्त्रिद्व्येकभागाः स्युर्वर्णशो ब्राह्मणात्मजाः। क्षत्रजास्त्रिद्व्येकभागा विड्जास्तु द्व्येकभागिनः॥
अन्योन्यापहृतं द्रव्यं विभक्ते यत्तु दृश्यते। तत् पुनस्ते समैरंशैर्विभजेरन्निति स्थितिः ॥१३॥
अपुत्रेण परक्षेत्रे नियोगोत्पादितः सुतः । उभयोरप्यसावृक्थी पिण्डदाता च धर्म्मतः ॥१४॥
औरसो धर्म्मपत्नीजस्तत्समः पुत्रिकासुतः । क्षेत्रजः क्षेत्रजातस्तु सगोत्रेणेतरेण वा ॥१५॥
गृहे प्रच्छन्न उत्पन्नो गूढजस्तु सुतः स्मृतः। कानीनः कन्यकाजातो मातामहसुतो मतः ॥१६॥
क्षतायामक्षतायां वा जातः पौनर्भवः सुतः । दद्यान्माता पिता वा यं स पुत्रो दत्तको भवेत ॥

क्रीतश्च ताभ्यां विक्रीतः कृत्रिमः स्यात् स्वयं कृतः ।
दत्तात्मा तु स्वयं दत्तो गर्भे वित्तः सहोढजः ॥ १८ ॥

उत्सृष्टो गृह्यते यस्तु सोपविद्धो भवेत् सुतः । पिण्डदोंऽशहरश्चैषां पूर्व्वाभावे परः परः ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सजातीयेष्वयं प्रोक्तस्तनयेषु मया विधिः। जातोऽपि दास्यां शूद्रस्य कामतोंऽशहरो भवेत् ॥
मृते पितरि कुर्य्युस्तं भ्रातरस्त्वर्द्धभागिकं। अभ्रातृको हरेत सर्वं दुहितॄणां सुतादृते ॥२१॥
पत्नी दुहितरश्चैव पितरौ भ्रातरस्तथा। तत्सुतो गोत्रजो बन्धुः शिष्यः सब्रह्मचारिणः ॥२२॥
एषामभावे पूर्वस्य धनभागुत्तरोत्तरः। स्वर्यातस्य ह्यपुत्रस्य सर्ववर्णेष्वयं विधिः ॥२३॥
वानप्रस्थयतिब्रह्मचारिणामृकथभागिनः। क्रमेणाचार्य्यसच्छिष्यधर्म्मभ्रात्रेकतीर्थिनः ॥२४॥
संसृष्टिनस्तु संसृष्टी सोदरस्य तु सोदरः। दद्याच्चापहरेच्चांशं जातस्य च मृतस्य च ॥२५॥

अन्योदर्य्यस्तु संसृष्टी नान्योदर्य्यधनं हरेत्।
असंसृष्ट्यपि चादद्यात्सोदर्य्यो नान्यमातृजः ॥ २६ ॥
पतितस्तत्सुतः क्लीवः पङ्गुरुन्मत्तको जडः।
अन्धोऽचिकित्स्यरोगाद्या भर्त्तव्यास्तु निरंशकाः ॥ २७ ॥

औरसाः क्षेत्रजास्त्वेषां निर्दोषा भागहारिणः। सुताश्चैषां प्रभर्त्तव्या यावद्वै भर्तृसात्कृताः॥
अपुत्रा योषितश्चैषां भर्त्तव्याः साधुवृत्तयः। निर्वास्या व्यभिचारिण्यः प्रतिकूलास्तथैव च॥
पितृमातृपतिभ्रातृदत्तमध्यग्न्युपागतं। आधिवेदनिकञ्चैव स्त्रीधनं परिकीर्त्तितं। ३०॥
बन्धुदत्तं तथा शुल्कमन्वाधेयकमेव च। अप्रजायामतीतायां बान्धवास्तदवाप्नुयुः ॥३१॥
अप्रजास्त्रीधनं भर्त्तुर्ब्राह्मयादिषु चतुर्ष्वपि। दुहितॄणां प्रसूता चेच्छेषे तु पितृगामि तत् ॥

दत्वा कन्यां हरन् दण्ड्यो व्ययं दद्याच्च सोदयम्।
मृतायां दत्तमादद्यात् परिशोध्योभयव्ययम् ॥ ३३ ॥

दुर्भिक्षे धर्मकार्ये च व्याधौ संप्रतिरोधके। गृहीतं स्त्रीधनं भर्त्ता न स्त्रियै दातुमर्हति ।।३४॥
अधिवित्तस्त्रियै दद्यादाधिवेदनिकं समम्। न दत्तं स्त्रीधनं यस्यै दत्ते त्वर्द्धं प्रकीर्त्तितम् ॥
विभागनिह्नवे ज्ञातिबन्धुसाक्ष्यभिलेखितैः। विभागभावना ज्ञेया गृहक्षेत्रैश्च यौतकैः ॥३६॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये दायविभागो नाम षट्पञ्चाशदधिक-
द्विशततमोऽध्यायः।

सप्तपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

सीमाविवादादिनिर्णयः।

अग्निरुवाच

सीम्नो विवादे क्षेत्रस्य सामन्ताः स्थविरा गणाः। गोपाः सीमाकृषाणा ये सर्वे च वनगोचराः ॥
नयेयुरेते सीमानं स्थलाङ्गारतुषद्रुमैः। सेतुवल्मीकनिम्नास्थिचैत्याद्यैरुपलक्षिताम् ॥२॥
सामन्ता वा समं ग्रामाश्चत्वारोऽष्टौ दशापि वा[1] रक्तस्रग्वसनाः सीमान्नयेयुः क्षितिधारिणः॥

१. चत्वारोऽथ दशापि वेति ख. ग. ज. च।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अनृते तु पृथग्दण्ड्या राज्ञा मध्यमसाहसम् । अभावे ज्ञातृचिह्नानां राजा सीम्नः प्रवर्त्तकः ॥
आरामायतनग्रामनिपानोद्यानवेश्मसु । एष एव विधिर्ज्ञेयो वर्षाम्बुप्रवहेषु च ॥५॥
मर्य्यादायाः प्रभेदेषु क्षेत्रस्य हरणे तथा । मर्य्यादायाश्च दण्ड्याः स्युरधमोत्तममध्यमाः ॥६॥
न निषेध्योऽल्पबाधस्तु सेतुः कल्याणकारकः । परभूमिं हरन् कूपः स्वल्पक्षेत्रो बहूदकः ॥७॥
स्वामिने योऽनिवेद्यैव क्षेत्रे सेतुं प्रकल्पयेत् । उत्पन्ने स्वामिनो भोगस्तदभावे महीपतेः ॥८॥
फालाहतमपि क्षेत्रं यो न कुर्यान्न कारयेत् । स प्रदाप्योऽकृष्टफलं क्षेत्रमन्येन कारयेत् ॥९॥
मासानष्टौ तु महिषी सस्यघातस्य कारिणी । दण्डनीया तदर्द्धन्तु गौस्तदर्द्धमजाविकं ॥१०॥
भक्षयित्वोपविष्टानां यथोक्ताद् द्विगुणो दमः । सममेषां विवीतेपि खरोष्ट्रं महिषीसमम् ॥

यावन् सस्यं विनश्यन्तु तावन् क्षेत्री फलं लभेत् ।
पालस्ताड्योऽथ गोस्वामी पूर्वोक्तं दण्डमर्हति ॥ १२ ॥

पथि ग्रामविवीतान्ते क्षेत्रे दोषो न विद्यते । अकामतः कामचारे चौरवद्दण्डमर्हति ॥१३॥
महोक्षोत्सृष्टपशवः सूतिकागन्तुका च गौः । पालो येषान्तु ते मोच्या दैवराजपरिप्लुताः ॥
यथार्पितान् पशून् गोपः सायं प्रत्यर्पयेत्तथा । प्रमादमृतनष्टांश्च प्रदाप्यः कृतवेतनः ॥१५॥
पालदोषविनाशे तु पाले दण्डो विधीयते । अर्द्धत्रयोदशपणः स्वामिनो द्रव्यमेव च ॥१६॥
ग्रामेच्छया गोप्रचारो भूमिराजवशेन वा । द्विजस्तृणैधःपुष्पाणि सर्वतः स्ववदाहरेत् ॥१७॥
धनुःशतं परीणाहो ग्रामक्षेत्रान्तरं भवेत् । द्वे शते खर्वटस्य स्यान्नगरस्य चतुःशतम् ॥१८॥
स्वं लभेतान्यविक्रीतं क्रेतुर्दोषोऽप्रकाशिते । हीनाद्रहो हीनमूल्ये वेलाहीने च तस्करः ॥१९॥
नष्टापहृतमासाद्य हर्त्तारं ग्राहयेन्नरम् । देशकालातिपत्तौ वा गृहीत्वा स्वयमर्पयेत् ॥२०॥

विक्रेतुर्दर्शनाच्छुद्धिः स्वामी द्रव्यं नृपो दमम् ।
क्रेता मूल्यं समाप्नोति तस्माद्यस्तत्र विक्रयी ॥ २१ ॥

आगमेनोपभोगेन नष्टं भाव्यमतोऽन्यथा । पञ्चबन्धो दमस्तस्य राज्ञे तेनाप्यभाविते ॥२२॥
हृतं प्रनष्टं यो द्रव्यं परहस्तादवाप्नुयात । अनिवेद्य नृपे दण्ड्यः स तु षण्णवतिं पणान् ॥
शौल्किकैः स्थानपालैर्वा नष्टापहृतमाहृतं । अर्व्वाक् संवत्सरात् स्वामी लभते परतो नृपः ॥
पणानेकशफे दद्याच्चतुरः पञ्च मानुषे । महिषोष्ट्रगवां द्वौ द्वौ पादं पादमजाविके ॥२५॥
स्वकुटुम्बाविरोधेन देयं दारसुतादृते । नान्वये सति सर्वस्वं देयं यच्चान्यसंश्रुतम् ॥२६॥
प्रतिग्रहः प्रकाशः स्यात् स्थावरस्य विशेषतः । देयं प्रतिश्रुतञ्चैव दत्वा नापहरेत् पुनः ॥२७॥
दशैकपञ्चसप्ताहमासत्र्यहार्द्धमासिकं । बीजायोवाह्यरत्नस्त्रीदोह्यपुंसां प्रतीक्षणम् ॥२८॥
अग्नौ सुवर्णमक्षीणं द्विपलं रजते शते । अष्टौ त्रपुणि सीसे च ताम्रे पञ्चदशायसि ॥२९॥
शते दशपलावृद्धिरौर्णे कार्पासिके तथा । मध्ये पञ्चपला ज्ञेया सूक्ष्मे तु त्रिपला मता ॥३०॥
कार्म्मिके रोमबद्धे च त्रिंशद्भागः क्षयो मतः । न क्षयो न च वृद्धिस्तु कौशेये वल्कलेषु च ॥
देशं कालञ्च भोगञ्च ज्ञात्वा नष्टे बलाबलम् । द्रव्याणां कुशला ब्रूयुर्यद्दाप्यमसंशयम् ॥३२॥
बलाद्दासीकृतश्चौरैर्विक्रीतश्चापि मुच्यते । स्वामिप्राणदो भक्तत्यागात्तन्निष्क्रयादपि ॥३३॥
प्रव्रज्यावसितो राज्ञा दास आमरणान्तिकः । वर्णानामानुलोम्येन दास्यं न प्रतिलोमतः ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कृतशिल्पोपि निवसेत् कृतकालं गुरोर्गृहे । अन्तेवासी गुरुप्राप्तभोजनस्तत्फलप्रदः ॥३५॥

राजा कृत्वा पुरे स्थानं ब्राह्मणान्न्यस्य तत्र तु ।
त्रैविद्यं वृत्तिमद्ब्रूयात् स्वधर्म्मः पाल्यतामिति ॥ ३६ ॥

निजधर्म्माविरोधेन यस्तु सामयिको भवेत् । सोपि यत्नेन संरक्ष्यो धर्मो राजकृतश्च यः ॥
गणद्रव्यं हरेद्यस्तु संविदं लङ्घयेच्च यः । सर्वस्वहरणं कृत्वा तं राष्ट्राद्विप्रवासयेत् ।।३८॥
कर्त्तव्यं वचनं सर्वैः समूहहितवादिभिः । यस्तत्र विपरीतः स्यात्स दाप्यः प्रथमं दमम् ॥३९॥
समूहकार्य्यप्रहितो यल्लभेत्तत्तदर्पयेत् । एकादशगुणं दाप्यो यद्यसौ नार्पयेत् स्वयम् ॥४०॥
वेदज्ञाः शुचयोऽलुब्धा भवेयुः कार्यचिन्तकाः । कर्त्तव्यं वचनं तेषां समूहहितवादिनां ॥४१॥
श्रेणिनैगमपाखण्डिगणानामप्ययं विधिः । भेदञ्चैषां नृपो रक्षेत् पूर्ववृत्तिञ्च पालयेत् ॥४२॥
गृहीतवेतनः कर्म्म त्यजन् द्विगुणमावहेत् । अगृहीते समं दाप्यो भृत्यै रक्ष्य उपस्करः ॥४३॥
दाप्यस्तु दशमं भागं वाणिज्यपशुसस्यतः । अनिश्चित्य भृतिं यस्तु कारयेत्स महीक्षिता ॥

देशं कालञ्च योऽतीयात् कर्म्म कुर्य्याच्च योऽन्यथा ।
तत्र तु स्वामिनश्छन्दोऽधिकं देयं कृतेऽधिके । ४५ ॥

यो यावत् कुरुते कर्म्म तावत्तस्य तु वेतनम् । उभयोरप्यसाध्यञ्चेत् साध्ये कुर्य्याद्यथाश्रुतम् ॥
अराजदैविकन्नष्टं भाण्डं दाप्यस्तु वाहकः । प्रस्थानविघ्नकृच्चैव प्रदाप्यो द्विगुणां भृतिम् ॥
प्रक्रान्ते सप्तमं भागं चतुर्थं पथि संत्यजन् । भृतिमर्द्धपथे सर्व्वां प्रदाप्यस्त्याजकोपि च ॥
ग्लहे शतिकवृद्धेस्तु सभिकः पञ्चकं शतं । गृह्णीयाद्धूर्त्तकितवादितराद्दशकं शतं ॥४९॥
स सम्यक्पालितो दद्याद्राज्ञे भागं यथाकृतं । जितमुद्ग्राहयेज्जेत्रे दद्यात्सत्यं वचः क्षमी ॥
प्राप्ते नृपतिना भागे प्रसिद्धे धूर्त्तमण्डले । जितं सशभिके स्थाने दापयेदन्यथा न तु ॥५१॥
द्रष्टारो व्यवहाराणां साक्षिणश्च त एव हि । राज्ञा सचिह्ना निर्वास्याः कूटाक्षोपधिदेविनः ॥
द्यूतमेकमुखं कार्य्यं तस्करज्ञानकारणात् । एष एव विधिर्ज्ञेयः प्राणिद्यूते समाह्वये । ५३॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये सीमाविवादादिनिर्णयो नाम सप्तपञ्चाशदधिक-
द्विशततमोऽध्यायः ।

अष्टपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः

वाक्पारुष्यादिप्रकरणम् ।

अग्निरुवाच

सत्यासत्यान्यथा स्तोत्रैर्न्यूनाङ्गेन्द्रियरोगिणां । क्षेपं करोति चेद्दण्ड्यः पणानर्द्धत्रयोदश ॥१॥
अभिगन्तास्मि भगिनीम्मातरं वा तवेति च । शपन्तं दापयेद्राजा पञ्चविंशतिकं दमं ॥२॥
अर्द्धोऽधमेषु द्विगुणः परस्त्रीपूत्तमेषु च । दण्डप्रणयनं कार्य्यं वर्णजात्युत्तराधरैः ॥३॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रातिलोम्यापवादेषु द्विगुणत्रिगुणा दमाः। वर्णानामानुलोम्येन तस्मादेवार्द्धहानितः ॥४॥
बाहुग्रीवानेत्रसक्थिविनाशे वाचिके दमः। शत्यस्ततोऽर्द्धिकः पादनासाकर्णकरादिषु ॥५॥
अशक्तस्तु वदन्नेवन्दण्डनीयः पणान् दश। तथा शक्तः प्रतिभुवं दद्यात् क्षेमाय तस्य तु[१]॥
पतनीयकृते क्षेपे दण्डो मध्यमसाहसः। उपपातकयुक्ते तु दाप्यः प्रथमसाहसं ॥७॥
त्रैविद्यनृपदेवानां क्षेप उत्तमसाहसः। मध्यमो ज्ञातिपूगानां प्रथमो ग्रामदेशयोः ॥८॥
असाक्षिकहते चिह्नैर्युक्तिभिश्चागमेन च। द्रष्टव्यो व्यवहारस्तु कूटचिह्नकृताद्भयात् ॥९॥
भस्मपङ्करजःस्पर्शे दण्डो दशपणः स्मृतः। अमेध्यपार्ष्णिनिष्ठ्यूतस्पर्शने द्विगुणः स्मृतः ॥१०॥
समेष्वेवं परस्त्रीषु द्विगुणस्तूत्तमेषु च। हीनेष्वर्द्धं दमो मोहमदादिभिरदण्डनम् ॥११॥
विप्रपीडाकरं च्छेद्यमङ्गमब्राह्मणस्य तु। उद्गूर्णे प्रथमो दण्डः संस्पर्शे तु तदर्द्धिकः ॥१२॥
उद्गूर्णे हस्तपादे तु दशविंशतिकौ दमौ। परस्परन्तु सर्व्वेषां शास्त्रे मध्यमसाहसः ॥१३॥
पादकेशांशुककरोल्लुञ्चनेषु पणान् दश। पीडाकर्षांशुकावेष्टपादाध्यासे शतन्दमः ॥१४॥
शोणितेन विना दुःखङ्कुर्वन् काष्ठादिभिर्नरः। द्वात्रिंशतं पणान्[२] दाप्यो द्विगुणं दर्शनेऽसृजः ॥
करपाददतो भङ्गे च्छेदने कर्णनासयोः। मध्यो दण्डो व्रणोद्भेदे मृतकल्पहते तथा ॥१६॥
चेष्टाभोजनवाग्रोधे नेत्रादिप्रतिभेदने। कन्धराबाहुसक्थ्नाञ्च भङ्गे मध्यमसाहसः ॥१७॥
एकं घ्नतां बहूनाञ्च यथोक्ताद् द्विगुणा दमाः। कलहापहृतं देयं दण्डस्तु द्विगुणः स्मृतः॥१८॥
दुःखमुत्पादयेद्यस्तु स समुत्थानजं व्ययम्। दाप्यो दण्डञ्च यो यस्मिन् कलहे समुदाहृतः ॥
तरिकः स्थलजं शुल्कं गृह्णन् दण्ड्यःपणान्दश। ब्राह्मणप्रातिवेश्यानामेतदेवानिमन्त्रणे ॥२०॥
अभिघाते तथा भेदे च्छेदे कुड्यावपातने। पणान्दाप्यः पञ्चदशविंशतिं तत्त्रयन्तथा ॥२१॥
दुःखोत्पादिगृहे द्रव्यं क्षिपन् प्राणहरं तथा। षोड़शाद्यः पणान् दाप्यो द्वितीयो मध्यमन्दमम् ॥
दुःखे च शोणितोत्पादे शाखाङ्गच्छेदने तथा। दण्डः क्षुद्रपशूनां स्याद्द्विपणप्रभृतिः क्रमात् ॥
लिङ्गस्य च्छेदने मृत्तौ मध्यमो मूल्यमेव च। महापशूनामेतेषु स्थानेषु द्विगुणा दमाः ॥२४॥
प्ररोहिशाखिनां शाखास्कन्धसर्वविदारणे। उपजीव्यद्रुमाणान्तु विंशतेर्द्विगुणा दमाः[३] ॥२५॥
यः साहसङ्कारयति स दाप्यो द्विगुणन्दमम्। यस्त्वेवमुक्त्वाहं दाता कारयेत् स चतुर्गुणम् ॥
आर्य्याक्रोशातिक्रमकृद्भ्रातृजायाप्रहारदः। सन्दिष्टस्याप्रदाता च समुद्रगृहभेदकः ॥२७॥
सामन्तकुलिकादीनामपकारस्य कारकः। पञ्चाशत्पणिको दण्ड एषामिति विनिश्चयः ॥२८॥
स्वच्छन्दविधवागामी विक्रुष्टे नाभिधावकः। अकारणे च विक्रोष्टा चण्डालश्चोत्तमान् स्पृशन् ॥
शूद्रः प्रव्रजितानाञ्च दैवे पैत्र्ये च भोजकः। अयुक्तं शपथं कुर्व्वन्नयोग्यो योग्यकर्मकृत्। ३०॥
वृषक्षुद्रपशूनाञ्च पुंस्त्वस्य प्रतिघातकृत्। साधारणस्यापलापो दासीगर्भविनाशकृत ॥३१॥
पितापुत्रस्वसृभ्रातृदम्पत्याचार्य्यशिष्यकाः। एषामपतितान्योन्यत्यागी च शतदण्डभाक् ॥
वसानस्त्रीन् पणान् दण्ड्यो नेजकस्तु परांशुकम्। विक्रयावक्रयाधानयाचितेषु पणान् दश ॥

---

१. दद्यादित्यत्र दाप्य इति पाठो भवितुं युक्तः। २. द्वाविंशतिपणानिति ख.।

३. प्ररोहिशाखिनामित्यादिविंशतेर्द्विगुणा दमा इत्यन्तः पाठः ख. पुस्तके नास्ति।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तुलाशासनमानानां कूटकृन्नाणकस्य च । एभिश्च व्यवहर्त्ता यः स दाप्यो दण्डमुत्तमम् ॥
अकूटं कूटकं ब्रूते कूटं यश्चाप्यकूटकम् । स नाणकपरीक्षी तु दाप्यः प्रथमसाहसम् ॥३५॥
भिषङ्मिथ्याचरन् दाप्यस्तिर्य्यक्षु प्रथमं दमम् । मानुषे मध्यमं राजमानुषेषूत्तमन्तथा ॥
अवध्यं यश्च बध्नाति वध्यं यश्च प्रमुञ्चति । अप्राप्तव्यवहारश्च स दाप्यो दममुत्तमम् ॥३७॥
मानेन तुलया वापि योंऽशमष्टमकं हरेत् । द्वाविंशतिपणान् दाप्यो वृद्धौ हानौ च कल्पितम् ॥
भेषजस्नेहलवणस्नेगन्धधान्यगुडादिषु । पण्येषु प्रक्षिपन् हीनं पणान्दाप्यस्तु षोडश ॥३९॥
सम्भूय कुर्व्वतामर्घं सबाधं कारुशिल्पिनां । अर्थस्य ह्रासं वृद्धिं वा सहस्रो दण्ड उच्यते ॥
राजनि स्थाप्यते योऽर्थः प्रत्यहं तेन विक्रयः । क्रयो वा निस्रवस्तस्माद्वणिजां लाभकृन् स्मृतः ॥
स्वदेशपण्ये तु शतं वणिग् गृह्णीत पञ्चकं । दशकं पारदेश्ये तु यः सद्यः क्रयविक्रयी । ४२॥
पण्यस्योपरि संस्थाप्य व्ययं पण्यसमुद्भवं । अर्थोऽनुग्रहकृन्न कार्य्यः क्रेतुर्विक्रेतुरेव च ॥
गृहीतमूल्यं यः पण्यं क्रेतुर्नैव प्रयच्छति । सोदयन्तस्य दाप्योऽसौ दिग्लाभं वा दिगागते ॥
विक्रीतमपि विक्रेयं पूर्वे क्रेतर्य्यगृह्णति । हानिश्चेन् क्रेतृदोषेण क्रेतुरेव हि सा भवेत् ॥४५॥
राजदैवोपघातेन पण्ये दोषमुपागते । हानिर्विक्रेतुरेवासौ याचितस्याप्रयच्छतः ॥४६॥
अन्यहस्ते च विक्रीतं दुष्टं वा दुष्टवद्यदि । विक्रीनीते दमस्तत्र तन्मूल्याद्द्विगुणो भवेत् ॥
क्षयं वृद्धिञ्च वणिजा पण्यानामविजानता । क्रीत्वा नानुशयः कार्य्यः कुर्वन् षड्भागदण्डभाक् ॥
समवायेन वणिजां लाभार्थं कर्म कुर्वतां । लाभालाभौ यथा द्रव्यं यथा वा संविदा कृतौ ॥४९॥
प्रतिषिद्धमनादिष्टं प्रमादाद्यच्च नाशितं । स तद्दद्याद् विप्लवाच्च रक्षिताद्दशमांशभाक् ॥५०॥
अर्थप्रक्षेपणाद्विंशं भागं शुल्कं नृपो हरेत् । व्यासिद्धं राजयोग्यञ्च विक्रीतं राजगामि तत् ॥
मिथ्या वदन् परीमाणं शुल्कस्थानादपक्रमन् । दाप्यस्त्वष्टगुणं यश्च सव्याजक्रयविक्रयी ॥
देशान्तरगते प्रेते द्रव्यं दायादबान्धवाः । ज्ञातयो वा हरेयुस्तदागतास्तैर्विना नृपः ॥५३॥
जिह्मं त्यजेयुर्निर्लोभमशक्तोऽन्येन कारयेत् । अनेन विधिराख्यात ऋत्विक्कर्षककर्मिणां ॥
ग्राहकैर्गृह्यते चौरो लोप्त्रेणाथ पदेन वा । पूर्वकर्मापराधी वा तथैवाशुद्धवासकः ॥५५॥
अन्येपि शङ्कया ग्राह्या जातिनामादिनिह्नवैः । द्यूतस्त्रीपानशक्ताश्च शुष्कभिन्नमुखस्वराः ॥
परद्रव्यगृहाणाञ्च पृच्छका गूढ़चारिणः । निराया व्ययवन्तश्च विनष्टद्रव्यविक्रयाः ॥५७॥
गृहीतः शङ्कया चौर्य्येनात्मानञ्चेद्विशोधयेत् । दापयित्वा हृतं द्रव्यं चोरदण्डेन दण्डयेत् ॥
चौरं प्रदाप्यापहृतं घातयेद्विविधैर्वधैः । सचिह्नं ब्राह्मणं कृत्वा स्वराष्ट्राद्विप्रवासयेत् ॥५९॥
घातितेऽपहृते दोषा ग्रामभर्त्तुरनिर्गते । स्वसीम्नि दद्याद्ग्रामस्तु पदं वा यत्र गच्छति ॥
पञ्चग्रामी वहिः क्रोशाद्दशग्राम्यऽथ वा पुनः । वन्दिग्राहांस्तथा वाजिकुञ्जराणाञ्च हारिणः ॥
प्रसह्य घातिनश्चैव शूलमारोपयेन्नरान् । उत्क्षेपकग्रन्थिभेदौ करसन्दंशहीनकौ ॥६२॥
कार्य्यौ द्वितीयापराधे करपादैकहीनकौ । भक्तावकाशाग्न्युदकमन्त्रोपकरणव्ययान् ॥६३॥
दत्त्वा चौरस्य हन्तुर्वा जानतो दम उत्तमः । शस्त्रावपाते गर्भस्य पातने चोत्तमो दमः ॥
उत्तमो वाऽधमो वापि पुरुषस्त्रीप्रमापणे । शिलां बद्ध्वा क्षिपेदप्सु नरघ्नीं विषदां स्त्रियं ॥
विषाग्निदां निजगुरुनिजापत्यप्रमापणीं । विकर्णकरनासौष्ठीं कृत्वा गोभिः प्रमापयेत् ॥६६॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

क्षेत्रवेश्मवनग्रामविवीतखलदाहकाः । राजपत्न्यभिऽगामी च दग्धव्यास्तु कटाग्निना ॥६७॥
पुमान् संग्रहणे ग्राह्यः केशाकेशिपरस्त्रियाः । स्वजातावुत्तमो दण्ड आनुलोम्ये तु मध्यमः ॥
प्रातिलोम्ये वधः पुंसां नार्य्याः कर्णावकर्त्तनम् । नीवीस्तनप्रावरणनाभिकेशावमर्द्दनम् ॥६९॥
अदेशकालसम्भाषं सहावस्थानमेव च । स्त्री निषेधे शतं दद्याद् द्विशतन्तु दमं पुमान् ॥७०॥
प्रतिषेधे तयोर्दण्डो यथा संग्रहणे तथा । पशून् गच्छञ्छतं दाप्यो हीनां स्त्रीं गाश्च मध्यमम् ॥
अवरुद्धासु दासीषु भुजिष्यासु तथैव च । गम्यास्वपि पुमान्दाप्यः पञ्चाशत पणिकन्दमम् ॥
प्रसह्य दास्यभिगमे दण्डो दशपणः स्मृतः । कुबन्धेनाङ्कय गमयेदन्त्याप्रव्रजितागमे ॥७३॥
न्यूनं वाप्यधिकं वापि लिखेद् यो राजशासनम् । पारदारिकचौरं वा मुञ्चतो दण्ड उत्तमः ॥
अभक्ष्यैर्दूषयन् विप्रं दण्ड उत्तमसाहसम् । कूटस्वर्णव्यवहारी विमांसस्य च विक्रयी ॥७५॥
अङ्गहीनश्च कर्त्तव्यो दाप्यश्चोत्तमसाहसं । शक्तो ह्यमोचयन् स्वामी दंष्ट्रिणः शृङ्गिणस्तथा ॥
प्रथमं साहसं दद्याद्विक्रुष्टे द्विगुणं तथा । अचौरश्चौरेऽभिवदन् दाप्यः पञ्चशतं दमं । ७७॥
राज्ञोऽनिष्टप्रवक्तारं तस्यैवाक्रोशकं तथा । मृताङ्गलग्नविक्रेतुर्गुरोस्ताड़यितुस्तथा । ७८॥
तन्मन्त्रस्य च भेत्तारं छित्त्वा जिह्वां प्रवासयेत् । राजयानासनारोढुर्दण्डो मध्यमसाहसः ॥
द्विनेत्रभेदिनो राजद्विष्टादेशकृतस्तथा । विप्रत्वेन च शूद्रस्य जीवतोऽष्टशतो दमः ॥८०॥
यो मन्येताजितोऽस्मीति न्यायेनाभिपराजितः । तमायान्तं पुनर्जित्वा दण्डयेद् द्विगुणं दमं ॥
राज्ञाऽन्यायेन यो दण्डो गृहीतो वरुणायतं । निवेद्य दद्याद्विप्रेभ्यः स्वयं त्रिंशद्गुणीकृतं ॥
धर्म्मश्चार्थश्च कीर्त्तिश्च लोकपङ्क्तिरुपग्रहः । प्रजाभ्यो बहुमानश्च स्वर्गस्थानञ्च शाश्वतम् ।
पश्यतो व्यवहारांश्च गुणाः स्युः सप्त भूपतेः ।

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये वाक्पारुष्यादिप्रकरणं नामाष्टपञ्चाशदधिक-
द्विशततमोऽध्यायः ।

ऊनषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

ऋग्विधानम् ।

अग्निरुवाच

ऋग्यजुःसामाथर्वविधानं पुष्करोदितम् । भुक्तिमुक्तिकरं जप्याद्धोमाद्रामाय तद्वदे ॥१॥
पुष्कर उवाच ।
प्रतिवेदन्तु कर्म्माणि कार्य्याणि प्रवदामि ते । प्रथमं ऋग्विधानं वै शृणु त्वं भुक्तिमुक्तिदम् ॥
अन्तर्ज्जले तथा होमे जपतो मनसेप्सितम् । कामं करोति गायत्री प्राणायामाद्विशेषतः ॥३॥
गायत्र्या दशसाहस्रो जपो नक्ताशिनो द्विज । बहुस्नातस्य तत्रैव सर्वकल्मषनाशनः ॥४॥
दशायुतानि जप्त्वाऽथ हविष्याशी स मुक्तिभाक् । प्रणवो हि परं ब्रह्म तज्जपः सर्वपापहा ॥५॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ओंकारशतजप्तन्तु नाभिमात्रोदके स्थितः। जलं पिबेन् स सर्वैस्तु पापैर्वै[१] विप्रमुच्यते ॥६॥
मात्रात्रयं त्रयो वेदास्त्रयो देवास्त्रयोऽग्नयः। महाव्याहृतयः सप्त लोका होमोऽखिलाघहा ॥७॥
गायत्री परमा जाप्या महाव्याहृतयस्तथा। अन्तर्ज्जले तथा रामप्रोक्तश्चैवाघमर्षणः ॥८॥
अग्निमीले पुरोहितं सूक्तोऽयं वह्निदैवतः। शिरसा धारयन् वह्निं यो जपेत्परिवत्सरम् ॥९॥
होमं त्रिषवणं भैक्ष्यमनग्निज्वलनश्चरेत्। अतः परमृचः सप्त वाय्वाद्या याः प्रकीर्त्तिताः ।१०॥
ता जपन् प्रयतो नित्यमिष्टान् कामान् समश्नुते। मेधाकामो जपेन्नित्यं सदसन्यमिति त्यृचम् ॥
अन्वयो यन्निमाः प्रोक्ताः नवर्चो मृत्युनाशनाः। शुनःशेफमृषिं बद्धः सन्निरुद्धोऽथ वा[२] जपेत् ॥
मुच्यते सर्वपापेभ्यो गदी वाप्यगदो भवेत्। य इच्छेच्छाश्वतं कामं मित्रं प्राज्ञं पुरन्दरं ॥१३॥
ऋग्भिः षोड़शभिः कुर्य्यादिन्द्रस्येति दिने दिने। हिरण्यस्तूपमित्येतज्जपन् शत्रून् प्रबाधते॥१४॥

क्षेमी भवति चाध्वानो ये ते पन्था जपन् नरः।
रौद्रीभिः षड्भिरीशानं स्तूयाद् यो वै दिने दिने ॥ १५ ॥

चरुं वा कल्पयेद्रौद्रं तस्य शान्तिः परा भवेत्। उदित्युदन्तमादित्यमुपतिष्ठन् दिने दिने ॥१६॥
क्षिपेज्जलाञ्जलीन् सप्त मनोदुःखविनाशनं। द्विषन्तमित्यथार्द्धर्चं यद्विप्रान्तं जपन् स्मरेत् ॥
आगस्कृन् सप्तरात्रेण विद्वेषमधिगच्छति। आरोग्यकामी रोगी वा प्रस्कन्नस्योत्तमं जपेत् ॥
उत्तमस्तस्य चार्द्धर्चो जपेद्वै विविधासने। उदयत्यायुरक्षय्यं तेजो मध्यन्दिने जपेत् ॥१९॥
अस्तं प्रतिगते सूर्य्ये द्विषन्तं प्रतिबाधते। न वयश्चेति सूक्तानि जपन् शत्रून्नियच्छति ॥२०॥
एकादश सुपर्णस्य सर्व्वकामान्विनिर्दिशेत्। आध्यात्मिकी कइत्येता जपन्मोक्षमवाप्नुयात् ॥
आ नो भद्रा इत्यनेन दीर्घमायुरवाप्नुयात। त्वं सोमेति च सूक्तेन नवं पश्येन्निशाकरं ॥२२॥
उपतिष्ठेत समित्पाणिर्व्वासांस्याप्नोत्यसंशयं। आयुरीप्सन्निममिति कौत्सं सूक्तं सदा जपे ॥
आपनः शोशुचदिति स्तुत्वा मध्ये दिवाकरं। यथा मुञ्चति चेषीकां तथा पापं प्रमुञ्चति ॥
जातवेदस इत्येतज्जपेत् स्वस्त्ययनं पथि। भयैर्व्विमुच्यते सर्व्वैः स्वस्तिमानाप्नुयात् गृहान् ॥
व्युष्टायाञ्च तथा रात्र्यामेतद्दुःस्वप्ननाशनं। प्रमन्दिनेति सूयन्त्या जपेद्गर्भविमोचनं ॥२६॥
जपन्निन्द्रमिति स्नातो वैश्वदेवन्तु सप्तकं। मुञ्चत्याज्यं तथा जुह्वन् सकलं किल्बिषं नरः। २७॥

इमामिति जपन् शश्वत् कामानाप्नोत्यभीप्सितान्।
मानस्तोक इति द्वाभ्यां त्रिरात्रोपोषितः शुचिः ॥ २८ ॥

औडुम्बरीश्च जुहुयात्समिधश्चाज्यसंस्कृताः। छित्त्वा सर्व्वान्मृत्युपाशान् जीवेद्रोगविवर्जितः ॥
ऊर्द्ध्वबाहुरनेनैव स्तुत्वा शम्भुं तथैव च। मानस्तोकेति च ऋचा शिखाबन्धे कृते नरः॥३०॥
अधृष्यः सर्वभूतानां जायते संशयं विना। चित्रमित्युपतिष्ठेत त्रिसन्ध्यं भास्करं तथा॥३१॥
समित्पाणिर्नरो नित्यमीप्सितं धनमाप्नुयात्। अथ स्वप्नेति च जपन् प्रातर्मध्यन्दिने दिने॥
दुःस्वप्नञ्चार्हते कृत्स्नं भोजनञ्चाप्नुयाच्छुभम्[३]। उभे पुमानिति तथा रक्षोघ्नः परिकीर्त्तितः ॥

---

१. पापैर्हि विप्रमुच्यत इति ग. घ. ञ. च. । २. सन्निबद्धोऽथेति क. ख. ञ. च ।
३. भोजनञ्चाप्नुयाच्छ्रुतमिति ख. ग. घ. ञ. च ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उभे वासा इति ऋचो जपन् कामानवाप्नुयात् ।
न सागन्निति च जपन् मुच्यते चाततायिनः ॥ ३४ ॥
कया शुभेति च जपन् जातिश्रैष्ठमवाप्नुयात ।
इमन्नृसोममित्येतत् सर्व्वान् कामानवाप्नुयात् ॥ ३५ ॥

पितरित्युपतिष्ठेत नित्यमर्थमुपस्थितं[१] । अग्ने नयेति सूक्तेन घृतहोमश्च मार्गगः ॥३६॥
वीरान्नयमवाप्नोति सुश्लोकं यो जपेत सदा । कङ्कतो नेति सूक्तेन विपान सर्व्वान् व्यपोहति ॥
यो जात इति सूक्तेन सर्व्वान् कामानवाप्नुयात् । गणानामिति सूक्तेन स्निग्धमाप्नोत्यनुत्तमं॥
यो मे राजन्नितीमांन्तु दुःस्वप्नशमनीमृचं । अध्वनि प्रस्थितो यस्तु पश्येच्छत्रुं समुत्थितं ॥
अप्रशस्तं प्रशस्तं वा कुविदङ्ग इमं जपेत् । द्वाविंशकं जपन् सूक्तमाध्यात्मिकमनुत्तमं । ४०॥
पर्वसु प्रयतो नित्यमिष्टान् कामान् समश्नुते । कृणुष्वेति जपन् सूक्तं जुह्वदाज्यं समाहितः ॥
अरातीनां हरेत् प्राणान् रक्षांस्यपि विनाशयेत् । उपतिष्ठेत् स्वयं वह्निं परित्यृचा दिने दिने ॥
तं रक्षति स्वयं वह्निर्विश्वतो विश्वतोमुखः । हंसः शुचिः सदित्येतच्छुचिरीक्षेद्दिवाकरं ॥
कृषिं प्रपद्यमानस्तु स्थालीपाकं यथाविधि । जुहुयात क्षेत्रमध्ये तु स्वनीस्वाहास्तु पञ्चभिः॥
इन्द्राय च मरुद्भ्यस्तु पर्ज्जन्याय भगाय च । यथालिङ्गन्तु विहरेल्लाङ्गलन्तु कृषीवलः॥४५॥
युक्तो धान्याय सीतायै सुनासीरमथोत्तरं । गन्धमाल्यैर्नमस्कारैर्यजेदेताश्च देवताः । ४६॥
प्रवापने प्रलवने खलसीतापहारयोः । अमोघकर्म्म भवति वर्द्धते सर्व्वदा कृषिः ॥४७॥
समुद्रादिति सूक्तेन कामानाप्नोति पावकात् । विश्वानर इति द्वाभ्यां य ऋग्भ्यां वह्निमर्हति ॥
स तरत्यापदः सर्व्वा यशः प्राप्नोति चाक्षयं । विपुलां श्रियमाप्नोति जयं प्राप्नोत्यनुत्तमं ।
अग्ने त्वमिति च स्तुत्वा धनमाप्नोति वाञ्छितं । प्रजाकामो जपेन्नित्यं वरुणदैवतत्रयं ॥

स्वस्त्या त्रयं जपेत प्रातः सदा स्वस्त्ययनं महत् ।
स्वस्ति पन्था इति प्रोच्य स्वस्तिमान् व्रजतेऽध्वनि ॥ ५१ ॥

विजीगीषुर्वनस्पते शत्रूणां व्याधितं;भवेत्[२] । स्त्रिया गर्भप्रमूढाया गर्भमोक्षणमुत्तमं ॥५२॥
अच्छावदेति सूक्तञ्च वृष्टिकामः प्रयोजयेत् । निराहारः क्लिन्नवासा न चिरेण प्रवर्षति ॥
मनसः काम इत्येतां पशुकामो नरो जपेत् । कर्द्दमेन इति स्नायात्प्रजाकामः शुचिव्रतः ॥५४॥

अश्वपूर्वा इति स्नायाद्राज्यकामस्तु मानवः ।
रोहिते चर्म्मणि स्नायात् ब्राह्मणस्तु यथाविधि ॥ ५५ ॥

राजा चर्म्मणि वैयाघ्रे छागे वैश्यस्तथैव च । दशसाहस्रिको होमः प्रत्येकं परिकीर्त्तितः ॥
आगार इति सूक्तेन गोष्ठे गां लोकमातरं । उपतिष्ठेद् व्रजेच्चैव यदिच्छेत्ताः सदाक्षयाः ॥
उपेतितिसृभी राज्ञो दुन्दुभिमभिमन्त्रयेत । तेजो बलञ्च प्राप्नोति शत्रुञ्चैव नियच्छति ॥५८॥
तृणपाणिर्ज्जपेत्सूक्तं रक्षोघ्नं दस्युभिर्वृतः । ये के च ज्मेत्यृचं जप्त्वा दीर्घमायुरवाप्नुयात्[३]॥५९॥

---

१. नित्यमन्नमुपस्थितमिति क. छ. च । २. व्याधिकम्भवदिति ट. ।
३. अवाप्तवानिति ट. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जीमूतसूक्तेन तथा सेनाङ्गान्यभिमन्त्रयेत् । यथा लिङ्गं ततो राजा विनिहन्ति रणे रिपून् ॥
आग्नेयेति त्रिभिः सूक्तैर्धनमाप्नोति चाक्षयं । अमीवहेति सूक्तेन भूतानि स्थापयेन्निशि ॥
संबाधे विषमे दुर्गे बन्धो वा निर्गतः क्वचित् । पलायन् वा गृहीतो वा सूक्तमेतत्तथा जपेत् ॥
त्रिरात्रं नियतोपोष्य श्रापयेत् पायसञ्चरुं । तेनाहुतिशतं पूर्णं जुहुयात त्र्यम्बकेत्यृचा ॥६३॥
समुद्दिश्य महादेवं जीवेदब्दशतं सुखं । तच्चक्षुरित्यृचा स्नात उपतिष्ठेद्दिवाकरं ॥६४॥
उद्यन्तं मध्यगञ्चैव दीर्घमायुर्जिजीविषुः । इन्द्रा सोमेति सूक्तन्तु कथितं शत्रुनाशनं ॥
यस्य लुप्तं व्रतं मोहाद्व्रात्यैर्वा संसृजेत्सह । उपोष्याज्यं स जुहुयात्त्वमग्ने व्रतपा इति ॥

आदित्येत्यृक् च सम्राजं[१] जप्त्वा वादे जयी भवेत् ।
महीति च चतुष्केण मुच्यते महतो भयात् ॥ ६७ ॥
ऋचं जप्त्वा यदि ह्येतत सर्व्वकामानवाप्नुयात् ।
द्वाचत्वारिंशतिं चैन्द्रं जप्त्वा नाशयते रिपून ॥ ६८ ॥
वाचं महीति जप्त्वा च प्राप्नोत्यारोग्यमेव च ।
शन्नो भवेति द्वाभ्यान्तु भुक्त्वान्नं प्रयतः शुचिः ॥ ६९ ॥

हृदयं पाणिना स्पृष्ट्वा व्याधिभिर्नाभिभूयते । उत्तमेदमिति स्नातो हुत्वा शत्रुं प्रमापयेत् ॥
शन्नोग्न इति सूक्तेन हुतेनान्नमवाप्नुयात् । कन्या वारर्पिसूक्तेन दिग्दोषाद्विप्रमुच्यते ॥
यदत्य कच्येत्युदिते जप्तेऽवश्यं जगद्भवेत । यद्वागिति च जप्तेन वाणी भवति संस्कृता[२] ॥
वाचो विदमिति त्वेतां जपन् वाचं समश्नुते । पवित्राणां पवित्रन्तु पावमान्येयृचो मता ॥
वैखानसा ऋचस्त्रिंशत्पवित्राः परमा मताः । ऋचो द्विषष्टिः प्रोक्ताश्च परस्वेत्यृषिसत्तम ॥७४॥
सर्व्वकल्मषनाशाय पावनाय शिवाय च । स्वादिष्टयेतिसूक्तानां सप्तषष्टिरुदाहृता ॥७५॥
दशोत्तराण्यृचाश्चैताः पावमान्यः शतानि षट् । एतज्जपंश्च जुह्वच्च घोरं मृत्युभयं जयेत् ॥७६॥
आपोहिष्ठेति वारिस्थो जपेत्पापभयार्द्दने । प्रदेवन्नेति नियतो जपेच्च मरुधन्वसु ॥७७॥
प्राणान्तिके भये प्राप्ते क्षिप्रमायुस्तु विन्दति । प्रावेयाभित्यृचमेकां जपेच्च मनसा निशि॥७८॥
व्युष्टायामुदिते सूर्य्ये द्यूते जयमवाप्नुयात् । मा प्रगामेति मूढश्च पन्थानं पथि विन्दति ॥
क्षीणायुरिति मन्येत यङ्कञ्चित् सुहृदं प्रियं । यत्तेयमिति तु स्नातस्तस्य मूर्द्धानमालभेत् ॥
सहस्रकृत्वः पञ्चाहं तेनायुर्विन्दते महत् । इदं मेध्येति जुहुयात् घृतं प्राज्ञः सहस्रशः ॥८१॥
पशुकामो गवां गोष्ठे अर्थकामश्चतुष्पथे । वयः सुपर्ण इत्येतां जपन् वै विन्दते श्रियं ॥८२॥
हविष्यन्तीयमभ्यस्य सर्व्वपापैः प्रमुच्यते । तस्य रोगा विनश्यन्ति कायाग्निर्वर्द्धते तथा ॥
या ओषधयः स्वस्त्ययनं सर्व्वव्याधिविनाशनं । वृहस्पते अतीत्येतद्वृष्टिकामः प्रयोजयेत् ॥
सर्व्वत्रेति परा शान्तिर्ज्ञेया प्रतिरथस्तथा । सूत संकाश्यपन्नित्यं प्रजाकामस्य कीर्त्तितं ॥८५॥
अहं रुद्रेति इत्येतद्वाग्मी भवति मानवः । न योनौ जायते विद्वान् जपन्नातीति रात्रिषु॥ ८६॥
रात्रिसूक्तं जपन्रात्रौ रात्रिं क्षेमी नयेन्नरः । कल्पयन्तीति च जपन्नित्यं कृत्त्वारिनाशनं ॥८७॥

---

१. आदित्येति प्रसंम्राजमिति ग. घ. ञ. च । २. संस्थितेति क. छ. च ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आयुष्यञ्चैव वर्च्चस्यं सूक्तं दाक्षायणं महत्। उत देवा इति जपेदामयघ्नं धृतव्रतः ।।८८।।
अयमग्ने जनित्येतज्जपेदग्निभये सति। अरण्यानीत्यरण्येषु जपेत्तद्भयनाशनं ।।८९।।
ब्राह्मीमासाद्य सूक्ते द्वे ऋचं ब्राह्मीं शतावरीं। पृथगद्भिर्घृतैर्वाथ मेधां लक्ष्मीञ्च विन्दति।।९०।।
मास इत्यसपत्नघ्नं संग्रामं विजिगीषतः। ब्रह्मणोग्निः संविदानं गर्भमृत्युनिवारणं ।।९१।।
अपैहीति जपेत्सूक्तं शुचिर्दुःस्वप्ननाशनं। येनेदमिति वै जप्त्वा समाधिं विन्दते परं।।९२।।
मयो भूर्व्वात इत्येतत् गवां स्वस्त्ययनं परं। शाम्बरीमिन्द्रजालं वा मायामेतेन वारयेत् ।।
मही त्रीणामवरोऽस्त्विति पथि स्वस्त्ययनं जपेत्। अग्नये विद्विषन्नेवं जपेच्च रिपुनाशनं ।।९४।।
वास्तोष्पतेन मन्त्रेण यजेत गृहदेवताः। जपस्यैष विधिः प्रोक्तो हुते ज्ञेयो विशेषतः ।।९५।।
होमान्ते दक्षिणा देया पापशान्तिर्हुतेन तु। हुतं शाम्यति चान्नेन अन्नहेमप्रदानतः ।।९६।।
विप्राशिषस्त्वमोघाः स्युर्बहिःस्नानन्तु सर्वतः। सिद्धार्थका यवा धान्यं पयो दधि घृतं तथा।।
क्षीरवृक्षास्तथेध्मन्तु होमा वै सर्वकामदाः। समिधः कण्टकिन्यश्च राजिका रुधिरं विषं ।।
अभिचारे तथा शैलं अशनं शक्तवः पयः। दधि भैक्ष्यं फलं मूलंमृग्विधानमुदाहृतं ।।९९।।

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये ऋग्विधानं नाम ऊनषष्ट्यधिक-
द्विशततमोऽध्यायः।

षष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

यजुर्विधानम्।

पुष्कर उवाच

यजुर्विधानं वक्ष्यामि भुक्तिमुक्तिप्रदं शृणु। ॐकारपूर्व्विका राम महाव्याहृतयो मताः ।।
सर्व्वकल्मषनाशिन्यः सर्व्वकामप्रदास्तथा। आज्याहुतिसहस्रेण देवानाराधयेद्बुधः ।।
मनसः काङ्क्षितं राम मनसेप्सितकामदं। शान्तिकामो यवैः कुर्य्यात्तिलैः पापापनुत्तये ।।
धान्यैः सिद्धार्थकैश्चैव सर्व्वकामकरैस्तथा। औदुम्बरीभिरिध्माभिः पशुकामस्य शस्यते ।।
दध्ना चैवान्नकामस्य पयसा शान्तिमिच्छतः। अपामार्गसमिद्भिस्तु कामयन कनकं बहु ।।
कन्याकामो घृताक्तानि युग्मशो ग्रथितानि तु।
जातीपुष्पाणि जुहुयाद्ग्रामार्थी तिलतण्डुलान्।। ६ ।।
वश्यकर्म्मणि शाखोटवासापामार्गमेव च। विषासृङ्मिश्रसमिधो व्याधिघातस्य भार्गव ।।
क्रुद्धस्तु जुहुयात्सम्यक् शत्रूणां वधकाम्यया। सर्व्वव्रीहिमयीं कृत्वा राज्ञः प्रतिकृतिं द्विज ।।
सहस्रशस्तु जुहुयाद्राजा वशगतो भवेत्। वस्त्रकामस्य पुष्पाणि दूर्व्वा व्याधिविनाशिनी ।।
ब्रह्मवर्च्चसकामस्य वासोग्रञ्च विधीयते। प्रत्यङ्गिरेषु जुहुयात्तुषकण्टकभस्मभिः ।।१०।।
विद्वेषणे च पक्ष्माणि काककौशिकयोस्तथा। कापिलञ्च घृतं हुत्वा तथा चन्द्रग्रहे द्विज ।।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वचाचूर्णेन सम्पातातसमानीय च तां वचां । सहस्रमन्त्रितां भुक्त्वा मेधावी जायते नरः ॥
एकादशाङ्गुलं शङ्कु लौहं खादिरमेव च[1] । द्विपती बधोसीति जपन्निखनेद्रिपुवेश्मनि ॥१३॥
उच्चाटनमिदं कर्म्म शत्रूणां कथितं तव । चक्षुष्या इति जप्त्वा च विनष्टश्चक्षुराप्नुयात् ॥
उपयुञ्जत इत्येतदनुवाकन्तथान्नदं । तनूनपाग्ने सदिति दूर्वां हुत्वार्त्तिवर्ज्जितः ॥१५॥
भेषजमसीति दध्याज्यैर्होमः पशूपसर्गनुत्[2] । त्रियम्बकं यजामहे होमः सौभाग्यवर्द्धनः ॥
कन्यानाम गृहीत्वा तु कन्यालाभकरः परः । भयेषु तु जपेन्नित्यं भयेभ्यो विप्रमुच्यते । १७ ।
धुस्तूरपुष्पं सघृतं हुत्वा स्यात् सर्वकामभाक् । हुत्वा तु गुग्गुलं राम स्वप्ने पश्यति शङ्करं ॥
युञ्जते मनोऽनुवाकं जप्त्वा दीर्घायुराप्नुयात् । विष्णोरवाटमित्येतत्[3] सर्वबाधाविनाशनं ॥
रक्षोघ्नञ्च यशस्यञ्च तथैव विजयप्रदं । अयन्नो अग्निरित्येतन संग्रामे विजयप्रदं ॥२०॥
इदमापः प्रवहत स्नाने पापापनोदनं । विश्वकर्म्मन्नु हविषा सूचीं लौहीन्दशाङ्गुलाम् । २१॥
कन्याया निखनेद् द्वारि साऽन्यस्मै न प्रदीयते । देव सवितरेतेन हुतेनैतेन चान्नवान ॥
अग्नौ स्वाहेति जुहुयाद्बलकामो द्विजोत्तम । तिलैर्यवैश्च धर्म्मज्ञ तथापामार्गतण्डुलैः ॥
सहस्रमन्त्रितां कृत्वा तथा गोरोचनां द्विज । तिलकञ्च तथा कृत्वा जनस्य प्रियतामियात् ॥
रुद्राणाञ्च तथा जप्यं सर्व्वाघविनिसूदनं । सर्व्वकर्म्मकरो होमस्तथा सर्व्वत्र शान्तिदः ॥

अजाविकानामश्वानां कुञ्जराणां तथा गवां ।
मनुष्याणान्नरेन्द्राणां बालानां योषितामपि ॥ २६ ॥

ग्रामाणां नगराणाञ्च देशानामपि भार्गव । उपद्रुतानां धर्म्मज्ञ व्याधितानां तथैव च ॥
मरके समनुप्राप्ते रिपुजे च तथा भये । रुद्रहोमः परा शान्तिः पायसेन घृतेन च ॥२८॥
कुष्माण्डघृतहोमेन सर्व्वान् पापान् व्यपोहति। शक्तुयावकभैक्षाशी नक्तं मनुजसत्तम ॥
बहिःस्नानरतो मासान्मुच्यते ब्रह्महत्यया । मधुवातेति मन्त्रेण होमादितोऽखिलं लभेत् ॥

दधि क्राव्णेति हुत्वा तु पुत्रान् प्राप्नोत्यसंशयं ।
तथा घृतवतीत्येतदायुष्यं स्यात् घृतेन तु ॥ ३१ ॥

स्वस्तिन इन्द्र इत्येतत्सर्व्वबाधाविनाशनं । इह गावः प्रजायध्वमिति पुष्टिविवर्धनम् ॥
घृताहुतिसहस्रेण तथालक्ष्मीविनाशनं । श्रुवेण देवस्य त्वेति हुत्वापामार्गतण्डुलं ॥३३॥
मुच्यते विकृताच्छीघ्रमभिचारान्न संशयः । रुद्र पातु पलाशस्य समिद्भिः कनकं लभेत् ॥
शिवो भवेत्यग्न्युत्पाते व्रीहिभिर्जुहुयान्नरः। याः सेना इति चैतच्च तस्करेभ्यो भयापहम् ॥

यो अस्मभ्यमवातीयाद्धुत्वा कृष्णतिलान्नरः ।
सहस्रशोऽभिचाराच्च मुच्यते विकृताद् द्विज ॥ ३६ ॥

अन्नेनान्नपतेत्येवं हुत्वा चान्नमवाप्नुयात् । हंसः शुचिः सदित्येतज्जपन्तोयेऽघनाशनं ॥
चत्वारि भृङ्गेत्येतत्तु सर्व्वपापहरं जले । देवा यज्ञेति जप्त्वा तु ब्रह्मलोके महीयते ॥३८॥

---

१. खादिरमेव वेति ग. घ. ञ. च । २. पशूपसर्गहेति क. छ. च ।
३. विष्णोर्वराटमित्येतदिति घ. ञ. च । विष्टोरराटमित्येतदिति क. ज. ट. च ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वसन्तेति च हुत्वाज्यं आदित्याद्वरमाप्नुयात् । सुवर्णोसीति चेत्यस्य कर्म्मण्याहृतिवद्भवेत् ॥
नमः स्वाहेति त्रिर्जप्त्वा बन्धनान्मोक्षमाप्नुयात । अन्तर्ज्जले त्रिरावर्त्य द्रुपदा सर्व्वपापमुक्॥
इह गावः प्रजायध्वं मन्त्रोयं बुद्धिवर्द्धनः । हुतन्तु सर्पिषा दध्ना पयसा पायसेन वा ॥४१॥
शतं य[1] इति चैतेन हुत्वा पर्णफलानि च । आरोग्यं श्रियमाप्नोति जीवितञ्च चिरन्तथा ॥
ओषधीः प्रतिमोदध्वं[2] वपने लवनेऽर्थकृत । अश्वावती पायसेन होमाच्छान्तिमवाप्नुयात् ॥

तस्मा इति च मन्त्रेण बन्धनस्थो विमुच्यते ।
युवा सुवासा इत्येव वासांस्याप्नोति चोत्तमम् ॥ ४४ ॥

मुञ्चन्तु मा शपथ्यानि सर्व्वान्तकविनाशनम्[3] । मा मा हिंसीस्तिलाज्येन हुतं रिपुविनाशनं ॥
नमोऽस्तु सर्व्वसर्पेभ्यो घृतेन पायसेन तु । कृणुध्वं राज इत्येतदभिचारविनाशनं ॥४६॥
दूर्व्वाकाण्डायुतं हुत्वा काण्डात् काण्डेति मानवः । ग्रामे जनपदे वापि मरकन्तु शमन्नयेत्॥
रोगार्त्तो मुच्यते रोगात तथा दुःखात्तु दुःखितः । औडुम्बरीश्च समिधो मधुमान्नो वनस्पतिः ॥
हुत्वा सहस्रशो राम धनमाप्नोति मानवः । सौभाग्यं महदाप्नोति व्यवहारे तथा जयम् ॥
अपां गर्भमिति हुत्वा देवं वर्षापयेद्ध्रुवम् । अपः पिबेति च तथा हुत्वा दधि घृतं मधु ॥
प्रवर्त्तयति धर्म्मज्ञ महावृष्टिमनन्तरं । नमस्ते रुद्र इत्येतत् सर्व्वोपद्रवनाशनं ॥५१॥
सर्व्वशान्तिकरं प्रोक्तं महापातकनाशनं । अध्यवोचदित्यनेन रक्षणं व्याधितस्य तु ॥५२॥
रक्षोघ्नञ्च यशस्यञ्च चिरायुः पुष्टिवर्द्धनम् । सिद्धार्थकानां क्षेपेण पथि चैतज्जपन् सुखी ॥
असौ यस्ताम्र इत्येतन् पठन्नित्यं दिवाकरं । उपतिष्ठेत धर्मज्ञ सायं प्रातरतन्द्रितः ॥५४॥
अन्नमक्षयमाप्नोति दीर्घमायुश्च विन्दति । प्रमुञ्च[5] धन्वन्नित्येतत् षड्भिरायुधमन्त्रणं ॥
रिपूणां भयदं युद्धे नात्र कार्य्या विचारणा । मानो महान्त इत्येवं बालानां शान्तिकारकं ॥५६॥
नमो हिरण्यबाहवे इत्यनुवाकसप्तकम् । राजिकां कटुतैलाक्तां जुहुयाच्छत्रुनाशनीं ॥५७॥
नमो वः किरिकेभ्यश्च पद्मलक्षाहुतैर्न्नरः । राज्यलक्ष्मीमवाप्नोति तथा विल्वैः सुवर्णकम् ॥
इमा रुद्रायेति तिलैर्होमाच्च धनमाप्यते । दूर्वाहोमेन चान्येन सर्वव्याधिविवर्ज्जितः ॥५९॥
आशुः शिशान इत्येतदायुधानाञ्च रक्षणे । संग्रामे कथितं राम सर्वशत्रुनिवर्हणं ॥६०॥
राजसामेति जुहुयात् सहस्रं पञ्चभिर्द्विज । आज्याहुतीनां धर्मज्ञ चक्षूरोगाद्विमुच्यते ॥६१॥
शन्नो वनस्पते गेहे होमः स्याद्वास्तुदोषनुत् । अग्न आयूंसि हुत्वाज्यं द्वेषं नाप्नोति केनचित् ॥
अपां फेनेति लाजाभिर्हुत्वा जयमवाप्नुयात् । भद्रा इतीन्द्रियैर्हीनो जपन् स्यात् सकलेन्द्रियः ॥
अग्निश्च पृथिवी चेति वशीकरणमुत्तमम् । अध्वनेति जपन् मन्त्रं व्यवहारे जयी भवेत ॥६४॥
ब्रह्म राजन्यमिति च कर्मारम्भे तु सिद्धिकृन् । संवत्सरोसीति घृतैर्लक्षहोमादरोगवान् ॥६५॥
केतुं कृण्वन्नितीत्येतत् संग्रामे जयवर्द्धनम् । इन्द्रोग्निर्धर्म इत्येतद्रणे धर्मनिबन्धनम्[6] ॥६६॥

---

१. शतञ्चेति ट. । शतं वेति क । २. औषधयः प्रतिमोदध्वमिति ज ।
३. सर्व्वकिल्विषनाशनमिति घ. ञ. च । ४. विघ्नविनाशनमिति क. छ. च ।
५. प्रयुञ्जेति ग. घ. ञ. च । ६. धर्म्मविवर्द्धनमिति ज. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

धन्वा नागेति मन्त्रश्च धनुर्ग्राहनिकः परः । यजीतेति तथा मन्त्रो विज्ञेयो ह्यभिमन्त्रणे ॥६७॥
मन्त्रश्चाहिरथेत्येतच्छराणां[1] मन्त्रणे भवेत् । वह्नीनां पितरित्येरत्तूणमन्त्रः प्रकीर्तितः ॥६८॥
युञ्जन्तीति तथाश्वानां योजने मन्त्र उच्यते । आशुः शिशान इत्येतद्यात्रारम्भणमुच्यते ॥६९॥
विष्णोः क्रमेति मन्त्रश्च रथारोहणिकः परः । आजङ्घेतीति चाश्वानां ताडनीयमुदाहृतं ॥७०॥
याः सेना अभित्वरीति परसैन्यमुखे जपेत् । दुन्दुभ्य इति चाप्येतद्दुन्दुभीताड़नं भवेत् ॥
एतैः पूर्वहुतैर्मन्त्रैः कृत्वैव विजयी भवेत् । यमेन दत्तमित्यस्य कोटिहोमाद्विचक्षणः ॥७२॥
रथमुत्पादयेच्छीघ्रं संग्रामे विजयप्रदम् । आ कृष्णेति तथैतस्य कर्मण्याहृतिवद्भवेत् ॥७३॥
शिवसंकल्पजापेन[2] समाधिं मनसो लभेत् । पञ्चनद्यः पञ्चलक्षं हुत्वा लक्ष्मीमवाप्नुयात् ॥७४॥
यदा बधून्दाक्षायणां मन्त्रेणानेन मन्त्रितम् । सहस्रकृत्वः कनकं धारयेद्रिपुवारणं ॥७५॥
इमं जीवेभ्य इति च शिलां लोष्ट्रञ्च तुर्दिशं । क्षिपेद्गृहे तदा तस्य न स्याचौरभयं निशि ॥७६॥
परिमेगामनेनेति[3] वशीकरणमुत्तमं । हन्तुमभ्यागतस्तत्र वशीभवति मानवः ॥७७॥
भक्ष्यताम्बूलपुष्पाद्यं मन्त्रितन्तु प्रयच्छति । यस्य धर्मज्ञ वशगः सोस्य शीघ्रं भविष्यति ॥७८॥
शन्नो मित्र इतीत्येतत् सदा सर्व्वत्र शान्तिदं । गणानां त्वा गणपतिं कृत्वा होमञ्चतुष्पथे ॥७९॥
वशीकुर्य्याज्जगत्सर्वं सर्वधान्यैरसंशयम् । हिरण्यवर्णाः शुचयो मन्त्रोयमभिषेचने ॥८०॥
शन्नो देवोरभिष्टये तथा शान्तिकरः परः । एकचक्रेति मन्त्रेण हुतेनाज्येन भागशः[4] ॥८१॥
ग्रहेभ्यः शान्तिमाप्नोति प्रसादं न च संशयः ।
गावो भग इति द्वाभ्यां हुत्वाऽयज्ञा अवाप्नुयात् ॥ ८२ ॥
प्रवादांशः सोपदिति[5] गृहयज्ञे विधीयते । देवेभ्यो वनस्पत इति द्रुमयज्ञे विधीयते ॥८३॥
गायत्री वैष्णवी ज्ञेया तद्विष्णोः परमम्पदं । सर्व्वपापप्रशमनं सर्व्वकामकरन्तथा[6] ॥८४॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये यजुर्विधानं नाम षष्ट्यधिक-
द्विशततमोऽध्यायः ।

एकषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

सामविधानम् ।

पुष्कर उवाच

यजुर्व्विधानङ्कथितं वक्ष्ये साम्नां विधानकं । संहितां वैष्णवीञ्जप्त्वा हुत्वा स्यात् सर्व्वकामभाक् ।
संहिताञ्छान्दसीं साधु जप्त्वा प्रीणाति शङ्करं ।
स्कान्दीं पैत्र्यां संहिताञ्च जप्त्वा स्यात्तु प्रसादवान् ॥ २ ॥

---

१. मन्त्रश्च हि रथ ह्येतच्छराणामिति क. छ. च । २. शिवसंकल्प इत्येतदिति घ. ज. च ।
३. पराङ्ने गायनेनेतीति क. । ४. भागत इ कि. ग. घ. छ. ञ. च ।
५. प्रवादींशं सोपदितीति ख. छ. च । ६. सर्व्वशान्तिकरन्तथेति घ. ञ. च ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यत इन्द्र भजामहे हिंसादोषविनाशनं। अवकीर्णी मुच्यते च अग्निस्तिग्मेति वै जपन् ॥३॥
सर्व्वपापहरं ज्ञेयं परितोयञ्च तासु च[1]। अविक्रेयञ्च विक्रीय जपेद्घृतवतीति च ॥४॥
अयानो देव सवितर्ज्ञेयन्दुःस्वप्ननाशनं। अबोध्यग्निरितिमन्त्रेण घृतं राम यथाविधि ॥५॥
अभ्युक्ष्य घृतशेषेण मेखलाबन्ध इष्यते। स्त्रीणां यासान्तु गर्भाणि पतन्ति भृगुसत्तम ॥६॥
मणिं जातस्य बालस्य बध्नीयात्तदनन्तरं। सोमं राजानमेतेन व्याधिभिर्विप्रमुच्यते ॥७॥
सर्पसाम प्रयुञ्जानो नाप्नुयात् सर्पजम्भयं। माद्य त्वा वाद्यतेत्येतद्धुत्वा विप्रः सहस्रशः ॥
शतावरिमणिम्बद्ध्वा नाप्नुयाच्छस्त्रतो भयं। दीर्घतमसोऽर्क इति हुत्वान्नं प्राप्नुयाद्बहु ॥९॥

स्वमध्यायन्तीति जपन्न म्रियेत पिपासया[2]।
त्वमिमा ओषधो ह्येतज्जप्त्वा व्याधिं न वाप्नुयात् ॥ १० ॥

पथि देवव्रतञ्जप्त्वा भयेभ्यो विप्रमुच्यते। यदिन्द्रो मुनये त्वेति हुतं सौभाग्यवर्द्धनं ॥११॥
भगो न चित्र इत्येवं नेत्रयो रञ्जनं हितं। सौभाग्यवर्द्धनं राम नात्र कार्य्या विचारणा ॥१२॥
जपेदिन्द्रेति वर्गञ्च तथा सौभाग्यवर्द्धनं। परि प्रिया हि वः कारिः[3] काम्यां संश्रावयेत् स्त्रियं ॥
सा तङ्कामयते राम नात्र कार्य्या विचारणा। रथन्तरं वामदेव्यं ब्रह्मवर्च्चसवर्द्धनं ॥१४॥
प्राशयेद्बालकं नित्यं वचाचूर्णं घृतप्लुतं। इन्द्रमिद्गाथिनं जप्त्वा भवेच्छ्रुतिधरस्त्वसौ ॥
हुत्वा रथन्तरञ्जप्त्वा पुत्रमाप्नोत्यसंशयं। मयि श्रीरिति मन्त्रोयं जप्तव्यः श्रीविवर्द्धनः ॥
वैरूप्यस्याष्टकं नित्यं प्रयुञ्जानः श्रियं लभेत्। सप्ताष्टकं प्रयुञ्जानः सर्व्वान् कामानवाप्नुयात् ॥
गव्येषुणेति यो नित्यं सायं प्रातरतन्द्रितः। उपस्थानं गवां कुर्य्यात्तस्य स्युस्ताः सदा गृहे ॥
घृताक्तन्तु यवद्रोणं वात आवातु भेषजं। अनेन हुत्वा विधिवत् सर्व्वां मायां व्यपोहति ॥
प्रदेवो दासेन तिलान् हुत्वा कार्म्मणकृन्तनं। अभि त्वा पूर्व्वपीतये वषट्कारसमन्वितं ॥२०॥
वासकेध्मसहस्रन्तु हुतं युद्धे जयप्रदं। हस्त्यश्वपुरुषान् कुर्य्याद् बुधः पिष्टमयान् शुभान् ॥
परकीयानथोद्देश्य प्रधानपुरुषांस्तथा। सुस्विन्नान् पिष्टकवरान् क्षुरेणोत्कृत्य भागशः ॥२२॥
अभि त्वा शूर णोनुमो मन्त्रेणानेन मन्त्रवित्। कृत्वा सर्षपतैलाक्तान् क्रोधेन[4] जुहुयात्ततः ॥
एतत् कृत्वा बुधः कर्म्म संग्रामे जयमाप्नुयात्। गारुडं वामदेव्यञ्च रथन्तरबृहद्रथौ ॥२४॥

सर्व्वपापप्रशमनाः कथिताः संशयं विना।

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये सामविधानं नाम एकषष्ट्यधिक-
द्विशततमोऽध्यायः।

---

१. पारितोयं युतायुतमिति ञ. ट. च। २. पिपासित इति घ. ञ. च।
३. परिप्रियादेव करारिरिति ख. छ. च। परिप्रियादेव कविरिति घ. ञ. च।
४. मन्त्रेणेति ख. छ. ञ. च।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

द्विषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

अथर्व्वविधानम् ।

पुष्कर उवाच

साम्नां विधानं कथितं वक्ष्ये चाथर्व्वणामथ ।
शान्तातीयं गणं हुत्वा शान्तिमाप्नोति मानवः ॥ १ ॥
भैषज्यञ्च गणं हुत्वा सर्व्वान्रोगान् व्यपोहति । त्रिसप्तीयं गणं हुत्वा सर्व्वपापैः प्रमुच्यते ॥
कचिन्नाप्नोति च भयं हुत्वा चैवाभयङ्गणं । न क्वचिज्जायते राम गणं हुत्वा पराजितं ॥३॥
आयुष्यञ्च गणं हुत्वा अपमृत्युं व्यपोहति । स्वस्तिमाप्नोति सर्व्वत्र हुत्वा स्वस्त्ययनङ्गणं ॥
श्रेयसा योगमाप्नोति शर्म्मवर्म्मगणन्तथा । वास्तोष्पत्यगणं हुत्वा वास्तुदोषान् व्यपोहति ॥
तथा रौद्रगणं हुत्वा सर्व्वान् दोषान् व्यपोहति । एतैर्दशगुणैर्होमो ह्यष्टादशसु शान्तिषु ॥६॥
वैष्णवी शान्तिरैन्द्री च ब्राह्मी रौद्री तथैव च । वायव्या वारुणी चैव कौवेरी भार्गवी तथा ॥

प्राजापत्या तथा त्वाष्ट्री कौमारी वह्निदेवता ।
मारुद्गणा च गान्धारी शान्तिर्नैर्ऋतकी तथा ॥ ८ ॥

शान्तिराङ्गिरसी याम्या पार्थिवी सर्व्वकामदा । यस्त्वां मृत्युरिति ह्येतज्जप्तं मृत्युविनाशनं ॥
सुपर्णस्त्वेति हुत्वा च भुजगैर्नैव बाध्यते । इन्द्रेण दत्तमित्येतत् सर्वकामकरम्भवेत् ॥१०॥
इन्द्रेण दत्तमित्येतत् सर्वबाधाविनाशनं । इमा देवीति मन्त्रश्च सर्वशान्तिकरः परः ॥११॥
देवा मरुत इत्येतत् सर्वकामकरम्भवेत् । यमस्य लोकादित्येतत् दुःस्वप्नप्रशमनम्परं ॥१२॥
इन्द्रश्च पञ्चवणिजेति[1] पण्यलाभकरं परं । कामो मे वाजीति हुतं स्त्रीणां सौभाग्यवर्द्धनं ॥
तुभ्यमेव जवीमन्नित्ययुतन्तु हुतम्भवेत् । अग्नेगोभिन्न इत्येतत्[2] मेधावृद्धिकरम्परं ॥१४॥
ध्रुवं ध्रुवेणेति हुतं स्थानलाभकरं भवेत् । अलक्तजीवेति शुना कृषिलाभकरं भवेत् ॥१५॥
अहन्ते भग्न इत्येतत् भवेत्सौभाग्यवर्द्धनं । ये मे पाशास्तथाप्येतत् बन्धनान्मोक्षकारणं ॥१६॥
शपत्वहन्निति रिपून् नाशयेद्धोमजाप्यतः । त्वमुत्तममितीत्येतद्यशोबुद्धिविवर्द्धनं ॥१७॥
यथा मृगमतीत्येतत् स्त्रीणां सौभाग्यवर्द्धनं । येन चेहदिदञ्चैव गर्भलाभकरं भवेत् ॥१८॥
अत्यन्ते योनिरित्येतत् पुत्रलाभकरं भवेत् । शिवः शिवाभिरित्येतत् भवेत्सौभाग्यवर्द्धनं[3]॥१६॥
वृहस्पतिर्न्नः परिपातु पथि स्वस्त्ययनं भवेत् । मुञ्चामि त्वेति कथितमपमृत्युनिवारणं ॥
अथर्वशिरसोऽध्येता सर्वपापैः प्रमुच्यते । प्राधान्येन तु मन्त्राणां किञ्चित् कर्म तवेरितं ॥
वृक्षाणां यज्ञियानान्तु समिधः प्रथमं हविः । आज्यञ्च व्रीहयश्चैव तथा वै गौरसर्षपाः ॥२२॥
अक्षतानि तिलाश्चैव दधिक्षीरे च भार्गव । दर्भास्तथैव दूर्वाश्च विल्वानि कमलानि च ॥२३॥

---

१. इन्द्र वनं वनिक् चेतीति घ. ज. च । २. अग्ने सौभाग्य इत्येतदिति ज. ।
३. क्रुद्धं भूपं प्रसादयेदिति घ. ज. झ. च ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शान्तिपुष्टिकराण्याहुर्द्रव्याण्येतानि सर्वशः । तैलङ्कणानि धर्मज्ञ राजिका रुधिरं विषं ॥२४॥
समिधः कण्टकोपेता अभिचारेषु योजयेत । आर्षं वै दैवतं छन्दो विनियोगज्ञ आचरेत् ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये अथर्व्वविधानं नाम द्विषष्ट्यधिक-
द्विशततमोऽध्यायः ।

त्रिषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

उत्पातशान्तिः ।

पुष्कर उवाच

श्रीसूक्तं प्रतिवेदञ्च ज्ञेयं लक्ष्मीविवर्द्धनं । हिरण्यवर्णां हरिणीमृचः पञ्चदश श्रियः ॥१॥
रथेष्वक्षेपु वाजेति चतस्रो यजुषि श्रियः । स्रावन्तीयं तथा साम श्रीसूक्तं सामवेदके ॥२॥
श्रियं धातर्मयि धेहि प्रोक्तमाथर्वणे तथा । श्रीसूक्तं यो जपेद्भक्त्या हुत्वा श्रीस्तस्य वै भवेत ॥
पद्मानि चाथ विल्वानि हुत्वाऽज्यं वा तिलान् श्रियः । एकन्तु पौरुषं सूक्तं प्रतिवेदन्तु सर्वदं ॥४॥
सूक्तेन दद्यान्निष्पापो ह्येकैकया[१] जलाञ्जलिं । स्नात एकैकया पुष्पं विष्णोर्दत्त्वाघहा भवेत ॥५॥
स्नात एकैकया दत्वा फलं स्यात् सर्वकामभाक् । महापापोपपापान्तो भवेज्जप्त्वा तु पौरुषं ॥६॥
कृच्छ्रै र्विशुद्धो जप्त्वा च हुत्वा स्नात्वाऽथ सर्वभाक् ।
अष्टादशभ्यः शान्तिभ्यस्तिस्रोऽन्याः शान्तयो वराः ॥ ७ ॥
अमृता चाभया सौम्या सर्व्वोत्पातविमर्द्दनाः । अमृता सर्वदैवत्या अभया ब्रह्मदैवता ॥८॥
सौम्या च सर्वदैवत्या एका स्यात्सर्व्वकामदा । अभयाया मणिः कार्य्यो वरुणस्य भृगूत्तम ॥
शतकाण्डोऽमृतायाश्च सौम्यायाः शङ्खजो मणिः ।
तद्दैवत्यास्तथा मन्त्राः सिद्धौ[२] स्यान्मणिबन्धनं ॥ १० ॥
दिव्यान्तरीक्षभौमादिसमुत्पातार्दना इमाः । दिव्यान्तरीक्षभौमन्तु अद्भुतं त्रिविधं शृणु ॥११॥
ग्रहर्क्षवैकृतं दिव्यमान्तरीक्षन्निबोध मे । उल्कापातश्च दिग्दाहः परिवेशस्तथैव च ॥१२॥
गन्धर्वनगरञ्चैव वृष्टिश्च विकृता च या । चरस्थिरभवं भूमौ भूकम्पमपि भूमिजं ॥१३॥
सप्ताहाभ्यन्तरे वृष्टावद्भुतं निष्फलं भवेत् । शान्तिं विना त्रिभिर्वर्षैरद्भुतं भयकृद्भवेत् ॥१४॥
देवतार्चाः[३] प्रनृत्यन्ति वेपन्ते प्रज्वलन्ति च । आरठन्ति[४] च रोदन्ति प्रस्विद्यन्तेहसन्ति च ॥
अर्चाविकारोपशमोऽभ्यर्च्य हुत्वा प्रजापतेः । अनग्निर्दीप्यते यत्र राष्ट्रे च भृशनिस्वनं ॥
न दीप्यते चेन्धनवांस्तद्राष्ट्रं पीड्यते नृपैः । अग्निवैकृत्यशमनमग्निमन्त्रैश्च भार्गव ॥१७॥
अकाले फलिता वृक्षाः क्षीरं रक्तं स्रवन्ति च । वृक्षोत्पातप्रशमनं शिवं पूज्य च कारयेत ॥१८॥

---

१. ह्येकैकश इति क. घ. छ. ञ. च ।
२. सिद्ध्या इति घ. ञ. च ।
३. देवताश्चेति ख. छ. च ।
४. आवटन्तीति ख. घ. छ. ञ. च ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अतिवृष्टिरनावृष्टिर्दुर्भिक्षायोभयं मतं । अनृतौ त्रिदिनारब्धवृष्टिर्ज्ञेया भयाय हि ॥१९॥
वृष्टिवैकृत्यनाशः स्यात्पर्जन्येन्द्वर्कपूजनात् । नगरादपसर्पन्ते समीपमुपयान्ति च ॥२०॥
नद्यो ह्रदप्रश्रवणा विरसाश्च भवन्ति च । सलिलाशयवैकृत्ये जप्तव्यो वारुणो मनुः ॥२१॥
अकालप्रसवा नार्य्यः कालतो वाप्रजास्तथा । विकृतप्रसवाश्चैव युग्मप्रसवनादिकं ॥२२॥
स्त्रीणां प्रसववैकृत्ये स्त्रीविप्रादिं प्रपूजयेत् । वड़वा हस्तिनी गौर्वा यदि युग्मं प्रसूयते ॥२३॥
विजात्यं विकृतं वापि षड्भिर्मासैर्म्रियेत वै । विकृतं वा प्रसूयन्ते परचक्रभयं भवेत् ॥२४॥
होमः प्रसूतिवैकृत्ये जपो विप्रादिपूजनं । यानि यानान्ययुक्तानि युक्तानि न वहन्ति च ॥
आकाशे तूर्यनादाश्च महद्भयमुपस्थितं । प्रविशन्ति यदा ग्राममारण्या मृगपक्षिणः ॥२६॥

अरण्यं यान्ति वा ग्राम्याः जलं यान्ति स्थलोद्भवाः ।
स्थलं वा जलजा यान्ति राजाद्वारादिके शिवाः ॥ २७ ॥

प्रदोषे कुक्कुटो वासे शिवा चार्कोदये भवेत् । गृहङ्कपोतः प्रविशेत् क्रव्याद्वा मूर्द्ध्नि लीयते ॥
मधुरां मक्षिकां कुर्य्यात् काको मैथुनगो दृशि । प्रासादतोरणोद्यानद्वारप्राकारवेश्मनां ॥२९॥
अनिमित्तन्तु पतनं दृढानां राजमृत्यवे । रजसा वाथ धूमेन दिशो यत्र समाकुलाः ॥३०॥
केतूदयोपरागौ च छिद्रता शशिसूर्य्ययोः । ग्रहर्क्षविकृतिर्यत्र तत्रापि भयमादिशेत् ॥३१॥
अग्निर्यत्र न दीप्येत स्रवन्ते चोदकुम्भकाः । मृतिर्भयं शून्यतादिरुत्पातानां फलम्भवेत् ॥

द्विजदेवादिपूजाभ्यः शान्तिर्जप्यैस्तु होमतः ।

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये उत्पातशान्तिर्नाम त्रिषष्ट्यधिक-
द्विशततमोऽध्यायः ।

चतुःषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

देवपूजावैश्वदेवबलिः ।

पुष्कर उवाच

देवपूजादिकं कर्म वक्ष्ये चोत्पातमर्दनम् । आपोहिष्ठेति तिसृभिः स्नातोऽर्घ्यं विष्णवेर्पयेत् ॥
हिरण्यवर्णा इति च पाद्यञ्च तिसृभिर्द्विज । शन्न आपो ह्याचमनमिदमापोऽभिषेचनं ॥२॥
रथे अक्षे च तिसृभिर्गन्धं युवेति[१] वस्त्रकं । पुष्पं पुष्पवतीत्येवं धूपन्धूपोसि चाप्यथ ॥३॥
तेजोसि शुक्रं दीपं स्यान्मधुपर्कं दधीति च । हिरण्यगर्भ इत्यष्टावृचः प्रोक्ता निवेदने ॥४॥
अन्नस्य मनुजश्रेष्ठ पानस्य च सुगन्धिनः । चामरव्यजनोपानच्छत्रं यानासने तथा ॥५॥
यत् किञ्चिदेवमादि स्यात्सावित्रेण निवेदयेत् । पौरुषन्तु जपेत् सूक्तं तदेव जुहुयात्तथा ॥
अर्चाभावे तथा वेद्याञ्जले पूर्णघटे तथा । नदीतीरेऽथ कमले शान्तिः स्याद्विष्णुपूजनात ॥

---

१. गन्धं स्वधेतीति क. ग. घ. ज. च ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ततो होमः प्रकर्त्तव्यो दीप्यमाने विभावसौ। परिसम्मृज्य पर्य्युक्ष्य परिस्तीर्य्य परिस्तरैः ॥
सर्व्वान्नाग्रं समुद्धृत्य जुहुयात् प्रयतस्ततः। वासुदेवाय देवाय प्रभवे चाव्ययाय च ॥९॥
अग्नये चैव सोमाय मित्राय वरुणाय च। इन्द्राय च महाभाग इन्द्राग्निभ्यां तथैव च ॥
विश्वेभ्यश्चैव देवेभ्यः प्रजानां पतये नमः। अनुमत्यै तथा राम धन्वन्तरय एव च ॥११॥

वास्तोष्पत्यै ततो देव्यै ततः स्विष्टिकृतेऽग्नये।
सचतुर्थ्यन्तनाम्ना[1] तु हुत्वैतेभ्यो बलिं हरेत् ॥ १२ ॥

तक्षोपतक्षमभितः पूर्वेणाग्निमतः परम्! अश्वानामपि धर्मज्ञ ऊर्णानामानि चाप्यथ ॥१३॥
निरुन्धी धूम्रिणीका च अस्वपन्ती[2] तथैव च। मेघपत्नी[3] च नामानि सर्व्वेषामेव भार्गव ॥
आग्नेयाद्याः क्रमेणाथ ततः शक्तिषु निक्षिपेत्। नन्दिन्यै च सुभाग्यै च सुमङ्गल्यै च भार्गव ॥
भद्रकाल्यै ततो दत्वा स्थूणायाञ्च तथा श्रिये। हिरण्यकेश्यै च तथा वनस्पतय एव च ॥
धर्म्माधर्ममयौ द्वारे गृहमध्ये ध्रुवाय च। मृत्यवे च वहिर्दद्याद्वरुणायोदकाशये ॥१७॥
भूतेभ्यश्च बहिर्दद्याच्छरणे धनदाय च। इन्द्रायेन्द्रपुरुषेभ्यो दद्यात पूर्वेण मानवः ॥१८॥
यमाय तत् पुरुषेभ्यो दद्याद्दक्षिणतस्तथा। वरुणाय तत्पुरुषेभ्यो दद्यात्पश्चिमतस्तथा ॥१९॥
सोमाय सोमपुरुषेभ्य उदग्दद्यादनन्तरं। ब्रह्मणे ब्रह्मपुरुषेभ्यो मध्ये दद्यात्तथैव च ॥२०॥
आकाशे च तथा चोर्द्ध्वे स्थण्डिलाय क्षितौ तथा। दिवा दिवाचरेभ्यश्च रात्रौ रात्रिचरेषु च॥
बलिं वहिस्तथा दद्यात्सायं प्रातस्तु प्रत्यहं। पिण्डनिर्वपणं कुर्य्यात् प्रातः सायन्न कारयेत् ॥
पित्रे तु प्रथमं दद्यात्तत्पित्रे तदनन्तरम्। प्रपितामहाय तन्मात्रे पितृमात्रे ततोऽर्पयेत ॥२३॥
तन्मात्रे दक्षिणाग्रेषु कुशेष्वेवं यजेत् पितॄन्। इन्द्रवारुणवायव्या याम्या वा नैर्ऋताश्च ये ॥
ते काकाः प्रतिगृह्णन्तु इमं पिण्डं मयोद्धृतम्। काकपिण्डन्तु मन्त्रेण शुनः पिण्डं प्रदापयेत् ॥

विवस्वतः कुले जातौ द्वौ श्यावशबलौ[4] शुनौ।
तेषां पिण्डं प्रदास्यामि पथि रक्षन्तु मे सदा ॥ २६ ॥
सौरभेय्यः[5] सर्वहिताः पवित्राः पापनाशनाः[6]।
प्रतिगृह्णन्तु मे ग्रासं गावस्त्रैलोक्यमातरः ॥ २७ ॥
गोग्रासञ्च स्वस्त्ययनं कृत्वा भिक्षां प्रदापयेत्।
अतिथीन्दीनान् पूजयित्वा गृही भुञ्जीत च स्वयं ॥ २८ ॥

ओं भूः स्वाहा ओं भुवः स्वाहा ओं स्वः स्वाहा ओं भूर्भुवः स्वः स्वाहा।

ओं देवकृतस्यैनसोऽवयजनमसि स्वाहा। ओं पितृकृतस्यैनसोऽवयजनमसि स्वाहा ओं आत्मकृतस्यैनसोऽवयजनमसि स्वाहा। ओं मनुष्यकृतस्यैनसोऽवयजनमसि स्वाहा

१. सचतुर्थीकनाम्नेति पाठः साधुः। २. अश्वपर्णीति ज.।
३. मेघपर्णीति ज.। ४. श्यामशबलाविति ज. ञ. ट. च।
५. सौरभेया इति क. घ. छ. ञ. च। ६. पुष्पराशय इति ज. ट. च।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ओं एनस एनसोऽवयजनमसि स्वाहा । यच्चाहमेनो विद्वांश्चकार यच्चाविद्वांस्तस्य सर्वस्यैनसोऽवयजनमसि स्वाहा । अग्नये स्विष्टिकृते स्वाहा । ओं प्रजापतये स्वाहा ॥

विष्णुपूजावैश्वदेवबलिस्ते कीर्त्तितो मया ।

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये देवपूजावैश्वदेवबलिर्नाम चतुःषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ।

पञ्चषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

दिक्पालादिस्नानम् ।

अग्निरुवाच

सर्वार्थसाधनं स्नानं वक्ष्ये शान्तिकरं शृणु । स्नापयेच्च सरित्तीरे ग्रहान् विष्णुं विचक्षणः ॥
देवालये ज्वरार्त्तादौ विनायकग्रहार्दिते । विद्यार्थिनो ह्रदे गेहे जयकामस्य तीर्थके ।२॥

पद्मिन्यां स्नापयेन्नारीं गर्भो यस्याः स्रवेत्तथा ।
अशोकसन्निधौ स्नायाज्जातो यस्या विनश्यति ॥ ३ ॥

पुष्पार्थिनाञ्च पुष्पाढ्ये पुत्रार्थिनाञ्च सागरे । गृहसौभाग्यकामानां सर्वेषां विष्णुसन्निधौ ॥४॥
वैष्णवे रेवतीपुष्ये सर्वेषां स्नानमुत्तमं । स्नानकामस्य सप्ताहम्पूर्वमुत्सादनं स्मृतं ॥५॥
पुनर्न्नवां रोचनाञ्च शताङ्गं गुरुणी त्वचं । मधूकं रजनी द्वे च तगरन्नागकेशरम् ॥६॥
अम्बरीञ्चैव मञ्जिष्ठां मांसीयासकमर्द्दनैः । प्रियङ्गुसर्षपं कुष्ठम्बलाम्ब्राह्मीञ्च कुङ्कुमं ॥७॥
पञ्चगव्यं शक्तुमिश्रं स्वर्त्तयं स्नानमाचरेत् । मण्डले कर्णिकायाञ्च विष्णुं ब्राह्मणमर्च्चयेत् ॥
दक्षे वामे हरं पूर्वं पत्रे पूर्वादिके क्रमात् । लिखेदिन्द्रादिकान्देवान् सायुधान सहबान्धवान्[1] ॥
स्नानमण्डलकान् दिक्षु कुर्य्याच्चैव विदिक्षु च । विष्णुब्रह्मेशशक्रादींस्तदस्त्राण्यर्घ्यं होमयेत् ॥
एकैकस्य त्वष्टशतं समिधस्तु तिलान घृतं । भद्रः सुभद्रः सिद्धार्थः कलसाः पुष्टिवर्द्धनाः ॥११॥
अमोघश्चित्रभानुश्च पर्ज्जन्योऽथ सुदर्शनः । स्थापयेत्तु घटानेतान् साश्विरुद्रमरुद्गणान् ॥
विश्वे देवास्तथा दैत्या वसवो मुनयस्तथा । आवेशयन्तु सुप्रीतास्तथान्या अपि देवताः ॥
ओषधीन्निक्षिपेत् कुम्भे जयन्तीं विजयां जयां । शतावरीं शतपुष्पां विष्णुक्रान्तापराजिताम् ॥
ज्योतिष्मतीमतिबलाञ्चन्दनोशीरकेशरं । कस्तूरिकाञ्च कर्पूरं बालकं पत्रकं त्वचं ॥१५॥
जातीफलं लवङ्गञ्च मृत्तिकां पञ्चगव्यकं । भद्रपीठे स्थितं साध्यं स्नापयेयुर्द्विजा बलात् ॥
राजाभिषेकमन्त्रोक्तदेवानां होमकाः पृथक् । पूर्णाहुतिन्ततो दत्वा गुरवे दक्षिणां ददेत् ॥१७॥

---

१. सहवाहनानिति घ. ञ. च ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इन्द्रोऽभिषिक्तो गुरुणा पुरा दैत्यान् जघान ह । दिक्पालस्नानङ्कथितं संग्रामादौ जयादिकं ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये दिक्पालादिस्नानं नाम पञ्चषष्ट्यधिक-
द्विशततमोऽध्यायः ।

षट्षष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

विनायकस्नानम् ।

पुष्कर उवाच

विनायकोपसृष्टानां स्नानं सर्वकरं वदे । विनायकः कर्म्मविघ्नसिद्ध्यर्थं विनियोजितः ॥१॥
गणानामाधिपत्ये च केशवेशपितामहैः । स्वप्नेवगाहतेऽत्यर्थं जलं मुण्डांश्च पश्यति ॥२॥
विनायकोपसृष्टस्तु क्रव्यादानधिरोहति । व्रजमानस्तथात्मानं मन्यतेऽनुगतम्परैः ॥३॥
विमना विफलारम्भः संसीदत्यनिमित्ततः । कन्या वरं न चाप्नोति न चापत्यं वराङ्गना ॥४॥
आचार्य्यत्वं श्रोत्रियश्च न शिष्योऽध्ययनं लभेत् । धनी न लाभमाप्नोति न कृषिञ्च कृषीवलः॥
राजा राज्यं न चाप्नोति स्नपनन्तस्य कारयेत् । हस्तपुष्याश्वयुक्सौम्ये वैष्णवे भद्रपीठके[१] ॥६॥
गौरसर्षपकल्केन साज्येनोत्सादितस्य च[२] । सर्वौषधैः सर्वगन्धैः प्रलिप्तशिरसस्तथा ॥७॥
चतुर्भिः कलसैः स्नानन्तेषु सर्वौषधीः क्षिपेत् ।
अश्वस्थानाद्गजस्थानाद्वल्मीकात् सङ्गमाद्ध्रदात् ॥ ८ ॥
मृत्तिकां रोचनाङ्गन्धङ्गुग्गुलुन्तेषु निक्षिपेत् । सहस्राक्षं शतधारमृषिभिः पावनं कृतम् ॥९॥
तेन त्वामभिषिञ्चामि पावमान्यः[३] पुनन्तु ते । भगन्ते वरुणो राजा भगं सूर्य्यो बृहस्पतिः ॥
भगमिन्द्रश्च वायुश्च भगं सप्तर्षयो ददुः । यत्ते केशेषु दौर्भाग्यं सीमन्ते यच्च मूर्द्धनि ॥११॥
ललाटे कर्णयोरक्ष्णोरापस्तद्घ्नन्तु सर्वदा । दर्भपिञ्जलिमादाय वामहस्ते ततो गुरुः ॥१२॥
स्नातस्य सार्षपन्तैलं स्रुवेणौडुम्बरेण च । जुहुयान्मूर्द्धनि कुशान् सव्येन परिगृह्य च ॥१३॥
मितश्च सम्मितश्चैव तथा शालककण्टकौ । कुष्माण्डो राजपुत्रश्च एतैः स्वाहासमन्वितैः ॥
नामभिर्वलिमन्त्रैश्च नमस्कारसमन्वितैः[२] । दद्याच्चतुष्पथे शूर्पे कुशानास्तीर्य्य सर्व्वतः ॥१५॥
कृताकृतांस्तण्डुलांश्च पललौदनमेव च । मत्स्यान्पक्कांस्तथैवामान् पुष्पं चित्रं सुरां त्रिधा ॥
मूलकं पूरिकां पूपांस्तथैवैण्डविकास्रजः । दध्यन्नं पायसं पिष्टं मोदकं गुडमर्पयेत् ॥१७॥
विनायकस्य जननीमुपतिष्ठेत्ततोऽम्बिकां । दूर्व्वासर्षपपुष्पाणां दत्त्वार्घ्यं पूर्णमञ्जलिं ॥१८॥

---

१. हस्तपुष्याश्वयुक्सौम्यवैष्णवेषु शुभेषु चेति घ. ञ. च ।
२. साज्येनासादितस्य चेति क. छ. च ।
३. इमा आप इति छ. ञ. च ।
२. वषट्कारसमन्वितैरिति घ. ज. ञ. ट. च ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रूपं देहि यशो देहि सौभाग्यं सुभगे मम । पुत्रं देहि धनं देहि सर्व्वान् कामांश्च देहि मे ॥
भोजयेद्ब्राह्मणान्दद्याद्वस्त्रयुग्मं गुरोरपि । विनायकं ग्रहान्प्राच्य श्रियं कर्म्मफलं लभेत ॥२०॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये विनायकस्नानं नाम षट्षष्ट्यधिक-
द्विशततमोऽध्यायः ।

सप्तषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

माहेश्वरस्नानलक्षकोटिहोमादयः ।

पुष्कर उवाच

स्नानं माहेश्वरं वक्ष्ये राजादेर्जयवर्द्धनम् । दानवेन्द्राय बलये यज्जगादोशनाः पुरा ॥१॥
भास्करेऽनुदिते पीठे प्रातः संस्नापयेद् घटैः ।

ॐ नमो भगवते रुद्राय च बलाय च पाण्डरोचितभस्मानुलिप्तगायाय । तद्यथा जय जय सर्वान् शत्रून् मूकय कलहविग्रहविवादेषु भञ्जय ।

ॐ मथ मथ सर्व्वपथिकान् योसौ युगान्तकाले दिधक्षति इमां पूजां रौद्रमूर्त्तिः सहस्रांशुः शुक्लः स ते रक्षतु जीवितं ।

सम्वर्त्तकाग्नितुल्यश्च त्रिपुरान्तकरः शिवः ।
सर्वदेवमयः सोपि तव रक्षतु जीवितं लिखि लिखि खिलि स्वाहा ॥
एवं स्नातस्तु मन्त्रेण जुहुयात्तिलतण्डुलम् ॥ २ ॥

पञ्चामृतैस्तु संस्नाप्य पूजयेच्छूलपाणिनं । स्नानान्यन्यानि वक्ष्यामि सर्वदा विजयाय ते ॥
स्नानं घृतेन कथितमायुष्यवर्द्धनं परम् । गोमयेन च लक्ष्मीः स्याद् गोमूत्रेणाघमर्द्दनम् ॥४॥
क्षीरेण बलबुद्धिः स्याद्दध्ना लक्ष्मीविवर्द्धनं । कुशोदकेन पापान्तः पञ्चगव्येन सर्वभाक् ॥
शतमूलेन सर्वाप्तिर्गोश्रृङ्गोदकतोऽघजित् । पलाशविल्वकमलकुशस्नानन्तु सर्व्वदं ॥६॥
वचा हरिद्रे द्वे मुस्तं स्नानं रक्षोहणं परं । आयुष्यञ्च यशस्यञ्च धर्म्ममेधाविवर्द्धनम् ॥७॥
हैमाद्भिश्चैव माङ्गल्यं रूप्यताम्रोदकैस्तथा । रत्नोदकैस्तु विजयः सौभाग्यं सर्वगन्धकैः ॥८॥
फलाद्भिश्च तथारोग्यं धात्र्यद्भिः परमां श्रियम् । तिलसिद्धार्थकैर्ल्लक्ष्मीः सौभाग्यञ्च प्रियङ्गुणा ॥
पद्मोत्पलकदम्बैश्च श्रीर्बलं बलाद्रुमोदकैः । विष्णुपादोदकस्नानं सर्वस्नानेभ्य उत्तमम् ॥१०॥
एकाकी एककामायेत्येकोकं[1] विधिवच्चरेत् । अक्रन्दयति सूक्तेन प्रवध्नीयान्मणिं करे ॥११॥
कुष्ठपाठा वचा शुण्ठी शङ्खलोहादिको मणिः । सर्व्वेषामेव कामानामीश्वरो भगवान् हरिः ॥१२॥
तस्य संपूजनादेव सर्व्वान्कामान्समश्नुते । स्नापयित्वा घृतक्षीरैः पूजयित्वा च पित्तहा ॥
पञ्चमुद्गबलिन्दत्वा अतिसारान् प्रमुच्यते । पञ्चगव्येन संस्नाप्य वातव्याधिं विनाशयेत् ॥

---

१. यवकामायेत्येकोर्क्कमिति क. छ. च ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

द्विस्नेहस्नपनात् श्लेष्मरोगहा चातिपूजया । घृतं तैलं तथा क्षौद्रं स्नानन्तु त्रिरसं परं ॥१५॥
स्नानं घृताम्बु द्विस्नेहं समलं घृततैलकम् । क्षौद्रमिक्षुरसं क्षीरं स्नानं त्रिमधुरं स्मृतम् ॥१६॥
घृतमिक्षुरसं तैलं क्षौद्रञ्च त्रिरसं श्रिये । अनुलेपस्त्रिशुक्लस्तु कर्पूरोशीरचन्दनैः ॥१७॥
चन्दनागुरुकर्पूरमृगदर्पैः सकुङ्कुमैः । पञ्चानुलेपनं विष्णोः सर्वकामफलप्रदं ॥१८॥
त्रिसुगन्धञ्च कर्पूरं तथा चन्दनकुङ्कुमैः । मृगदर्पं सकर्पूरं मलयं सर्व्वकामदम् ॥१९॥
जातीफलं सकर्पूरं चन्दनञ्च त्रिशीतकम् । पीतानि शुक्लवर्णानि तथा शुक्लानि भार्गव ॥२०॥
कृष्णानि चैव रक्तानि पञ्चवर्णानि निर्द्दिशेत् । उत्पलं पद्मजाती च त्रिशीतं हरिपूजने ॥२१॥
कुङ्कुमं रक्तपद्मानि त्रिरक्तं रक्तमुत्पलं । धूपदीपादिभिः प्राच्र्य विष्णुं शान्तिर्भवेन्नृणां ॥२२॥
चतुरस्रकरे कुण्डे ब्राह्मणाश्चाष्ट षोडश । लक्षहोमङ्कोटिहोमन्तिलाज्ययवधान्यकैः ॥२३॥
ग्रहानभ्यर्च्य गायत्र्या सर्व्वशान्तिः क्रमाद्भवेत् ।

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये माहेश्वरस्नानलक्षकोटिहोमादयो नाम सप्तषष्ट्यधिक-

द्विशततमोऽध्यायः ।

अष्टषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

नीराजनाविधिः ।

पुष्कर उवाच

कर्म्म सांवत्सरं राज्ञां जन्मर्क्षे पूजयेच्च तं । मासि मासि च संक्रान्तौ सूर्य्यसोमादिदेवताः ॥
अगस्त्यस्योदयेऽगस्त्यञ्चातुर्म्मास्यं हरिं यजेत् । शयनोत्थापने पञ्चदिनं कुर्य्यात्समुत्सवम् ॥
प्रोष्ठपादे सिते पक्षे प्रतिपत्प्रभृतिक्रमात् । शिविरात पूर्वदिग्भागे शक्रार्थं भवनञ्चरेत ॥३॥
तत्र शक्रध्वजं स्थाप्य शचीं शक्रञ्च पूजयेत । अष्टम्यां वाद्यघोषेण तान्तु यष्टिं प्रवेशयेत् ॥
एकादश्यां सोपवासो द्वादश्यां केतुमुत्थितम् । यजेद्वस्त्रादिसंवीतं घटस्थं[1] सुरपं शचीं ॥
वर्द्धस्वेन्द्र जितामित्र वृत्रहन् पाकशासन । देव देव महाभाग त्वं हि भूमिष्ठतां गतः ॥६॥
त्वं प्रभुः शाश्वतश्चैव सर्व्वभूतहिते रतः । अनन्ततेजा वै राजो यशोजयविवर्द्धनः ॥७॥
तेजस्ते वर्द्धयन्त्वेते देवाः शक्रः सुवृष्टिकृत् । ब्रह्मविष्णुमहेशाश्च कार्त्तिकेयो विनायकः ॥८॥
आदित्या वसवो रुद्राः साध्याश्च भृगवो दिशः ।
मरुद्गणा लोकपाला ग्रहा यक्षाद्रिनिम्नगाः ॥ ९ ॥
समुद्रा श्रीर्मही गौरी चण्डिका च सरस्वती । प्रवर्त्तयन्तु ते तेजो जय शक्र शचीपते ॥१०॥
तव चापि जयान्नित्यं मम सम्पद्यतां शुभं । प्रसीद राज्ञां विप्राणां प्रजानामपि सर्वशः ॥
भवत्प्रसादात पृथिवी नित्यं शस्यवती भवेत् ॥ शिवं भवतु निर्व्विघ्नं शाम्यन्तामीतयो भृशं ॥

---

१. पटस्थमिति क. ग. छ. न. ट. च ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मन्त्रेणैन्द्रं समभ्यर्च्य जितभूः स्वर्गमाप्नुयात । भद्रकालीं पटे लिख्य पूजयेदाश्विने जये ॥
शुक्लपक्षे तथाष्टम्यामायुधं कार्म्मुकं ध्वजम् । छत्रञ्च राजलिङ्गानि शस्त्राद्यं कुसुमादिभिः ॥
जाग्रन्निशि बलिन्दद्याद् द्वितीयेऽह्नि पुनर्यजेत् । भद्रकालि महाकालि दुर्गे दुर्गार्त्तिहारिणि ॥
त्रैलोक्यविजये चण्डि मम शान्तौ जये भव । नीराजनविधिं वक्ष्ये ऐशान्याम्मन्दिरं चरेत् ॥
तोरणत्रितयं तत्र गृहे देवान् यजेत् सदा । चित्रान्त्यक्त्वा यदा स्वातिं सविता प्रतिपद्यते ॥

ततः प्रभृति कर्त्तव्यं यावत् स्वातौ रविः स्थितः ।
ब्रह्मा विष्णुश्च शम्भुश्च शक्रश्चैवानलानिलौ ॥ १८ ॥

विनायकः कुमारश्च वरुणो धनदो यमः । विश्वे देवा वैश्रवसो गजाश्चाष्टौ च तान् यजेत ॥
कुमुदैरावणौ पद्मः पुष्पदन्तश्च वामनः । सुप्रतीकोऽञ्जनो नीलः पूजा कार्य्या गृहादिके ॥
पुरोधा जुहुयादाज्यं समित्सिद्धार्थकं तिलाः । कुम्भा अष्टौ पूजिताश्च तैः स्नाप्याश्वगजोत्तमाः ॥

अश्वाः स्नाप्या ददेत् पिण्डान ततो हि प्रथमं गजान् ।
निष्क्रामयेत्तोरणैस्तु गोपुरादि[१] न लङ्घयेत ॥ २२ ॥

विक्रमेयुस्ततः सर्वे राजलिङ्गं गृहे यजेत् । वारुणे वरुणं प्रार्च्य रात्रौ भूतबलिं ददेत ॥२३॥
विशाखायां[२] गते सूर्य्ये आश्रमे निवसेन्नृपः । अलङ्कुर्य्यादिने तस्मिन् वाहनन्तु विशेषतः॥
पूजिता राजलिङ्गाश्च कर्त्तव्या नरहस्तगाः । हस्तिनन्तुरगं छत्रं खड्गं चापञ्च दुन्दुभिम् ॥

ध्वजं पताकां धर्म्मज्ञ कालज्ञस्त्वभिमन्त्रयेत् ।
अभिमन्त्र्य ततः सर्व्वान् कुर्य्यात् कुञ्जरधूर्गतान् ॥ २६ ॥

कुञ्जरोपरिगौ स्यातां सांवत्सरपुरोहितौ । मन्त्रितांश्च समारुह्य तोरणेन विनिर्गमेत ॥२७॥
निष्क्रम्य नागमारुह्य तोरणेनाथ निर्गमेत् । बलिं विभज्य विधिवद्राजा कुञ्जरधूर्गतः ॥२८॥
उन्मूकानान्तु निचयमादीपितदिगन्तरं । राजा प्रदक्षिणं कुर्य्यात्त्रीन् वारान् सुसमाहितः ॥
चतुरङ्गबलोपेतः सर्वसैन्येन नादयन् । एवं कृत्वा गृहं गच्छेद्विसर्जितजलाञ्जलिः ॥३०॥

शान्तिर्नीराजनाख्येयं वृद्धये रिपुमर्दनी ।

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये नीराजनाविधिर्नामाष्टषष्ट्यधिक-
द्विशततमोऽध्यायः ।

ऊनसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

छत्रादिमन्त्रादयः ।

पुष्कर उवाच

छत्रादिमन्त्रान वक्ष्यामि यैस्तन पूज्य जयादिकम ।
ब्रह्मणः सत्यवाक्येन सोमस्य वरुणस्य च ॥ १ ॥

---

१. शेखरादीति क. । २. विशाखान्त्विति क. छ. च ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सूर्य्यस्य च प्रभावेन वर्द्धस्व त्वं महामते। पाण्डराभप्रतीकाश हिमकुन्देन्दुसुप्रभ ।।२।।
यथाम्बुदश्छादयते शिवायैनां वसुन्धरां। तथाच्छादय राजानं विजयारोग्यवृद्धये ।।३।।
गन्धर्वकुलजातस्त्वं माभूयाः कुलदूषकः। ब्रह्मणः सत्यवाक्येन सोमस्य वरुणस्य च ।।४।।
प्रभावाच्च हुताशस्य वर्द्धस्व त्वं तुरङ्गम। तेजसा चैव सूर्य्यस्य मुनीनां तपसा तथा ।।५।।
रुद्रस्य ब्रह्मचर्य्येण पवनस्य बलेन च। स्मर त्वं राजपुत्रोऽसि कौस्तुभन्तु मणिं स्मर ।।६।।
यां गतिं ब्रह्महा गच्छेत् पितृहा मातृहा तथा। भूम्यर्थेऽनृतवादी च क्षत्रियश्च पराङ्मुखः।।७।।
व्रजेस्त्वन्तां गतिं क्षिप्रं मा तत् पापं भवेत्तव। विकृतिं मापगच्छेस्त्वं युद्धेऽध्वनि तुरङ्गम ।।
रिपून् विनिघ्नन् समरे सह भर्त्रा सुखी भव। शक्रकेतो महावीर्य्यः सुवर्णस्त्वामुपाश्रितः ९।।
पतत्रिराड्वैनतेयस्तथा नारायणध्वजः। काश्यपेयोऽमृताहर्त्ता नागादिर्विष्णुवाहनः ।।१०।।
अप्रमेयो दुराधर्षो रणे देवारिसूदनः। महाबलो महावेगो महाकायोऽमृताशनः। ११।।
गरुत्मान्मारुतगतिस्त्वयि सन्निहितः स्थितः। विष्णुना देवदेवेन शक्रार्थं स्थापितो ह्यसि ।।
जयाय भव मे नित्यं वृद्धयेऽथ बलस्य च। साश्ववर्मायुधान्योधान् रक्षास्माकं रिपून् दह।।
कुमुदैरावणौ पद्मः पुष्पदन्तोऽथ वामनः। सुप्रतीकोऽञ्जनो नील एतेऽष्टौ देवयोनयः ।।१४।।
तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च बलान्यष्टौ समाश्रिताः। भद्रो मन्दो मृगश्चैव गजः संकीर्ण एव च ।।
वने वने प्रसूतास्ते स्मरयोनिं महागजाः। पान्तु त्वां वसवो रुद्रा आदित्याः समरुद्गणाः।।
भर्त्तारं रक्ष नागेन्द्र समयः परिपाल्यतां। ऐरावताधिरूढस्तु वज्रहस्तः शतक्रतुः ।।१७।।
पृष्ठतोऽनुगतस्त्वेष रक्षतु त्वां स देवराट्। अवाप्नुहि जयं युद्धे सुस्थश्चैव सदा व्रज ।।१८।।
अवाप्नुहि बलञ्चैव ऐरावतसमं युधि। श्रीस्ते सोमाद्बलं विष्णोस्तेजः सूर्य्याज्जवोऽनिलात् ।।
स्थैर्य्यं गिरेर्जयं रुद्राद् यशो देवात् पुरन्दरात्। युद्धे रक्षन्तु नागास्त्वां दिशश्च सह दैवतैः ।।
अश्विनौ सह गन्धर्वैः पान्तु त्वां सर्वतो दिशः। मनवो वसवो रुद्रा वायुः सोमो महर्षयः ।।
नागकिन्नरगन्धर्वयक्षभूतगणा ग्रहाः। प्रमथास्तु सहादित्यैर्भूतेशो मातृभिः सह ।।२२।।
शक्रः सेनापतिः स्कन्दो वरुणश्चाश्रितस्त्वयि। प्रदहन्तु रिपून् सर्वान् राजा विजयमृच्छतु ।।
यानि प्रयुक्तान्यरिभिर्भूषणानि समन्ततः। पतन्तु तव शत्रूणां हतानि तव तेजसा ।।२४।।
कालनेमिबधे यद्वत् युद्धे त्रिपुरघातने। हिरण्यकशिपोर्युद्धे बधे सर्वासुरेषु च ।।२५।।
शोभितासि तथैवाद्य शोभस्व समयं स्मर। नीलश्वेतामिमान्दृष्ट्वा नश्यन्त्वाशु नृपारयः ।।
व्याधिभिर्विविधैर्घोरैः शस्त्रैश्च युधि निर्जिताः। पूतना रेवती लेखा कालरात्रीति पठ्यते ।।
दहन्त्वाशु रिपून् सर्वान् पताके त्वामुपाश्रिताः। सर्वमेधे महायज्ञे देवदेवेन शूलिना ।।२८।।
शर्वेण जगतश्चैव सारेण त्वं विनिर्म्मितः। नन्दकस्यापरां मूर्त्तिं स्मर शत्रुनिबर्हण ।।२९।।
नीलोत्पलदलश्याम कृष्ण दुःस्वप्ननाशन। असिर्विशसनः खड्गस्तीक्ष्णधारो दुरासदः ।।
श्रीगर्भो विजयश्चैव धर्म्मपालस्तथैव च। इत्यष्टौ तव नामानि पुरोक्तानि स्वयम्भुवा ।।
नक्षत्रं कृत्तिका तुभ्यं गुरुर्देवो महेश्वरः। हिरण्यञ्च शरीरन्ते दैवतन्ते जनार्दनः ।।३२।।
राजानं रक्ष निस्त्रिंशं सबलं सपुरन्तथा। पिता पितामहो देवः स त्वं पालय सर्वदा ।।३३।।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मन्त्रेणेन्द्रं समभ्यच्चर्य जितभूः स्वर्गमाप्नुयात । भद्रकालीं पटे लिख्य पूजयेदाश्विने जये ॥
शुक्लपक्षे तथाष्टम्यामायुधं कार्म्मुकं ध्वजम् । छत्रञ्च राजलिङ्गानि शस्त्राद्यं कुसुमादिभिः ॥
जाग्रन्निशि बलिन्दद्याद् द्वितीयेऽह्नि पुनर्यजेत् । भद्रकालि महाकालि दुर्गे दुर्गार्त्तिहारिणि ॥
त्रैलोक्यविजये चण्डि मम शान्तौ जये भव । नीराजनविधिं वक्ष्ये ऐशान्याम्मन्दिरं चरेत् ॥
तोरणत्रितयं तत्र गृहे देवान् यजेत् सदा । चित्रान्त्यक्त्वा यदा स्वातिं सविता प्रतिपद्यते ॥

ततः प्रभृति कर्त्तव्यं यावत् स्वातौ रविः स्थितः ।
ब्रह्मा विष्णुश्च शम्भुश्च शक्रश्चैवानलानिलौ ॥ १८ ॥

विनायकः कुमारश्च वरुणो धनदो यमः । विश्वे देवा वैश्रवसो गजाश्चाष्टौ च तान् यजेत ॥
कुमुदैरावणौ पद्मः पुष्पदन्तश्च वामनः । सुप्रतीकोऽञ्जनो नीलः पूजा कार्य्या गृहादिके ॥
पुरोधा जुहुयादाज्यं समित्सिद्धार्थकं तिलाः । कुम्भा अष्टौ पूजिताश्च तैः स्नाप्याश्वगजोत्तमाः ॥

अश्वाः स्नाप्या ददेत् पिण्डान ततो हि प्रथमं गजान् ।
निष्क्रामयेत्तोरणैस्तु गोपुरादि[1] न लङ्घयेत ॥ २२ ॥

विक्रमेयुस्ततः सर्वे राजलिङ्गं गृहे यजेत् । वारुणे वरुणं प्राच्यं रात्रौ भूतबलिं ददेत ॥२३॥
विशाखायां[2] गते सूर्य्ये आश्रमे निवसेन्नृपः । अलङ्कुर्य्यादिने तस्मिन् वाहनन्तु विशेषतः॥
पूजिता राजलिङ्गाश्च कर्त्तव्या नरहस्तगाः । हस्तिनन्तुरगं छत्रं खड्गं चापञ्च दुन्दुभिम् ॥

ध्वजं पताकां धर्म्मज्ञ कालज्ञस्त्वभिमन्त्रयेत् ।
अभिमन्त्र्य ततः सर्व्वान् कुर्य्यात् कुञ्जरधूर्गतान ॥ २६ ॥

कुञ्जरोपरिगौ स्यातां सांवत्सरपुरोहितौ । मन्त्रितांश्च समारुह्य तोरणेन विनिर्गमेत ॥२७॥
निष्क्रम्य नागमारुह्य तोरणेनाथ निर्गमेत् । बलिं विभज्य विधिवद्राजा कुञ्जरधूर्गतः ॥२८॥
उन्मूकानान्तु निचयमादीपितदिगन्तरं । राजा प्रदक्षिणं कुर्य्यात्त्रीन् वारान् सुसमाहितः ॥
चतुरङ्गबलोपेतः सर्वसैन्येन नादयन् । एवं कृत्वा गृहं गच्छेद्विसर्जितजलाञ्जलिः ॥३०॥

शान्तिर्नीराजनाख्येयं वृद्धये रिपुमर्दनी ।

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये नीराजनाविधिर्नामाष्टपष्ट्यधिक-
द्विशततमोऽध्यायः ।

ऊनसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

छत्रादिमन्त्रादयः ।

पुष्कर उवाच

छत्रादिमन्त्रान वक्ष्यामि यैस्तन पूज्य जयादिकम ।
ब्रह्मणः सत्यवाक्येन सोमस्य वरुणस्य च ॥ १ ॥

---

१. शेखरादीति क. । २. विशाखान्त्विति क. छ. च ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सूर्य्यस्य च प्रभावेन वर्द्धस्व त्वं महामते। पाण्डराभप्रतीकाश हिमकुन्देन्दुसुप्रभ ॥२॥
यथाम्बुदश्छादयते शिवायैनां वसुन्धरां। तथाच्छादय राजानं विजयारोग्यवृद्धये ॥३॥
गन्धर्वकुलजातस्त्वं माभूयाः कुलदूषकः। ब्रह्मणः सत्यवाक्येन सोमस्य वरुणस्य च ॥४॥
प्रभावाच्च हुताशस्य वर्द्धस्व त्वं तुरङ्गम। तेजसा चैव सूर्य्यस्य मुनीनां तपसा तथा ॥५॥
रुद्रस्य ब्रह्मचर्य्येण पवनस्य बलेन च। स्मर त्वं राजपुत्रोऽसि कौस्तुभन्तु मणिं स्मर ॥६॥
यां गतिं ब्रह्महा गच्छेत् पितृहा मातृहा तथा। भूम्यर्थेऽनृतवादी च क्षत्रियश्च पराङ्मुखः॥७॥
ब्रजेस्त्वन्तां गतिं क्षिप्रं मा तत् पापं भवेत्तव। विकृतिं मापगच्छेस्त्वं युद्धेऽध्वनि तुरङ्गम ॥
रिपून् विनिघ्नन् समरे सह भर्त्रा सुखी भव। शक्रकेतो महावीर्य्यः सुवर्णस्त्वामुपाश्रितः ॥९॥
पतत्रिराड्वैनतेयस्तथा नारायणध्वजः। काश्यपेयोऽमृताहर्त्ता नागादिर्विष्णुवाहनः ॥१०॥
अप्रमेयो दुराधर्षो रणे देवारिसूदनः। महाबलो महावेगो महाकायोऽमृताशनः ॥११॥
गरुत्माम्मारुतगतिस्त्वयि सन्निहितः स्थितः। विष्णुना देवदेवेन शक्रार्थं स्थापितो ह्यसि ॥
जयाय भव मे नित्यं वृद्धयेऽथ बलस्य च। साश्ववर्मायुधान्योधान् रक्षास्माकं रिपून् दह॥
कुमुदैरावणौ पद्मः पुष्पदन्तोऽथ वामनः। सुप्रतीकोऽञ्जनो नील एतेऽष्टौ देवयोनयः ॥१४॥
तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च बलान्यष्टौ समाश्रिताः। भद्रो मन्दो मृगश्चैव गजः संकीर्ण एव च ॥
वने वने प्रसूतास्ते स्मरयोनिं महागजाः। पान्तु त्वां वसवो रुद्रा आदित्याः समरुद्गणाः॥
भर्त्तारं रक्ष नागेन्द्र समयः परिपाल्यतां। ऐरावताधिरूढ़स्तु वज्रहस्तः शतक्रतुः ॥१७॥
पृष्ठतोऽनुगतस्त्वेष रक्षतु त्वां स देवराट्। अवाप्नुहि जयं युद्धे सुस्थश्चैव सदा ब्रज ॥१८॥
अवाप्नुहि बलञ्चैव ऐरावतसमं युधि। श्रीस्ते सोमाद्बलं विष्णोस्तेजः सूर्य्याज्जवोऽनिलात् ॥
स्थैर्य्यं गिरेर्जयं रुद्राद् यशो देवात् पुरन्दरात्। युद्धे रक्षन्तु नागास्त्वां दिशश्च सह दैवतैः ॥
अश्विनौ सह गन्धर्वैः पान्तु त्वां सर्वतो दिशः। मनवो वसवो रुद्रा वायुः सोमो महर्षयः ॥
नागकिन्नरगन्धर्वयक्षभूतगणा ग्रहाः। प्रमथास्तु सहादित्यैर्भूतेशो मातृभिः सह ॥२२॥
शक्रः सेनापतिः स्कन्दो वरुणश्चाश्रितस्त्वयि। प्रदहन्तु रिपून् सर्वान् राजा विजयमृच्छतु ॥
यानि प्रयुक्तान्यरिभिर्भूषणानि समन्ततः। पतन्तु तव शत्रूणां हतानि तव तेजसा ॥२४॥
कालनेमिवधे यद्वत् युद्धे त्रिपुरघातने। हिरण्यकशिपोर्युद्धे बधे सर्वासुरेषु च ॥२५॥
शोभितासि तथैवाद्य शोभस्व समयं स्मर। नीलश्वेतामिमान्दृष्ट्वा नश्यन्त्वाशु नृपारयः ॥
व्याधिभिर्विविधैर्घोरैः शस्त्रैश्च युधि निर्जिताः। पूतना रेवती लेखा कालरात्रीति पठ्यते ॥
दहन्त्वाशु रिपून् सर्वान् पताके त्वामुपाश्रिताः। सर्वमेधे महायज्ञे देवदेवेन शूलिना ॥२८॥
शर्वेण जगतश्चैव सारेण त्वं विनिर्म्मितः। नन्दकस्यापरां मूर्त्तिं स्मर शत्रुनिवर्हण ॥२९॥
नीलोत्पलदलश्याम कृष्ण दुःस्वप्ननाशन। असिर्विशसनः खड्गस्तीक्ष्णधारो दुरासदः ॥
श्रीगर्भो विजयश्चैव धर्म्मपालस्तथैव च। इत्यष्टौ तव नामानि पुरोक्तानि स्वयम्भुवा ॥
नक्षत्रं कृत्तिका तुभ्यं गुरुर्देवो महेश्वरः। हिरण्यञ्च शरीरन्ते दैवतन्ते जनार्दनः ॥३२॥
राजानं रक्ष निस्त्रिंश सबलं सपुरन्तथा। पिता पितामहो देवः स त्वं पालय सर्वदा ॥३३॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शर्मप्रदस्त्वं समरे वर्मन् सैन्ये यशोऽद्य मे। रक्ष मां रक्षणीयोऽहन्तवानघ नमोऽस्तुते ।।३४।।
दुन्दुभे त्वं सपत्नानां घोषाद्धृदयकम्पनः। भव भूमिपसैन्यानां यथा विजयवर्द्धनः ।।३५।।
यथा जीमूतघोषेण हृष्यन्ति वरवारणाः। तथास्तु तव शब्देन हर्षोऽस्माकं मुदावह ।।३६।।
यथा जीमूतशब्देन स्त्रीणां त्रासोऽभिजायते। तथा तु तव शब्देन त्रस्यन्त्वस्मद्द्विपो रणे ।।
मन्त्रैः सदार्च्चनीयास्ते योजनीया जयादिषु। घृतकम्बलविष्णादेस्त्वभिषेकञ्च वत्सरे ।।३८।।

राज्ञोऽभिषेकः कर्त्तव्यो दैवज्ञेन पुरोधसा।

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये छत्रादिमन्त्रादयो नाम ऊनषष्ट्यधिक-
द्विशततमोऽध्यायः।

सप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

विष्णुपञ्जरम्।

पुष्कर उवाच

त्रिपुरञ्जघ्नुषः पूर्वं ब्रह्मणा विष्णुपञ्जरं। शङ्करस्य द्विजश्रेष्ठ रक्षणाय निरूपितं ।।१।।
वागीशेन च शक्रस्य बलं हन्तुं प्रयास्यतः। तस्य स्वरूपं वक्ष्यामि तत्त्वं शृणु जयादिमत् ।।

विष्णुः प्राच्यां स्थितश्चक्री हरिर्दक्षिणतो गदी।
प्रतीच्यां शार्ङ्गधृग्विष्णुर्जिष्णुः खड्गी ममोत्तरे ।। ३ ।।

हृषीकेशो विकोर्णेषु तच्छिद्रेषु जनार्दनः। क्रोडरूपी हरिर्भूमौ नरसिंहोऽम्बरे मम ।।४।।
क्षुरान्तममलञ्चक्रं भ्रमत्येतत् सुदर्शनं। अस्यांशुमाला दुष्प्रेक्ष्या हन्तुं प्रेतनिशाचरान् ।।५।।
गदा चेयं सहस्रार्च्चिः प्रदीप्तपावकोज्ज्वला। रक्षोभूतपिशाचानां डाकिनीनाञ्च नाशनी ।।६।।
शार्ङ्गविस्फूर्ज्जितञ्चैव वासुदेवस्य मद्रिपून्। तिर्य्यङ्मनुष्यकुष्माण्डप्रेतादीन् हन्त्वशेषतः ।।
खड्गधारोज्ज्वलज्योत्स्नानिर्द्धूता ये समाहिताः। ते यान्तु शाम्यतां सद्यो गरुडेनेव पन्नगाः ।।

ये कुष्माण्डास्तथा यक्षा ये दैत्या ये निशाचराः।
प्रेता विनायकाः क्रूरा मनुष्या जम्भगाः खगाः ।। ९ ।।

सिंहादयश्च पशवो दन्दशूकाश्च पन्नगाः। सर्व्वे भवन्तु ते सौम्याः कृष्णशङ्खरवाहताः ।।१०।।
चित्तवृत्तिहरा ये मे ये जनाः स्मृतिहारकाः। बलौजसाञ्च हर्त्तारश्छायाविभ्रंशकाश्च ये ।।११।।
ये चोपभोगहर्त्तारो ये च लक्षणनाशकाः। कुष्माण्डास्ते प्रणश्यन्तु विष्णुचक्ररवाहताः ।।१२।।

बुद्धिस्वास्थ्यं मनःस्वास्थ्यं स्वास्थ्यमैन्द्रियकं तथा।
ममास्तु देवदेवस्य वासुदेवस्य कीर्त्तनात् ।। १३ ।।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पृष्ठे पुरस्तान्मम दक्षिणोत्तरे विकोणतश्चास्तु जनार्दनो हरिः।
तमीड्यमीशानमनन्तमच्युतं जनार्दनं प्रणिपतितो न सीदति ॥ १४ ॥
यथा परं ब्रह्म हरिस्तथा परः जगत्स्वरूपश्च स एव केशवः।
सत्येन तेनाच्युतनामकीर्त्तनात् प्रणाशयेत्तु त्रिविधं ममाशुभं ॥ १५ ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये विष्णुपञ्जरं नाम सप्तत्यधिक-
द्विशततमोऽध्यायः।

एकसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

वेदशाखादिकीर्त्तनम्।

पुष्कर उवाच

सर्वानुग्राहका मन्त्राश्चतुर्वर्गप्रसाधकाः। ऋगथर्वं तथा साम यजुः संख्या तु लक्षकं ॥१॥
भेदः साङ्ख्यायनश्चैक आश्वलायनो द्वितीयकः।
शतानि दश मन्त्राणां ब्राह्मणा द्विसहस्रकं ॥ २ ॥
ऋग्वेदो हि प्रमाणेन स्मृतो द्वैपायनादिभिः। एकोनद्विसहस्रन्तु मन्त्राणां यजुषस्तथा ॥३॥
शतानि दश विप्राणां षड़शीतिश्च शाखिकाः।
काण्वमाध्यन्दिनी संज्ञा कठी माध्यकटीतथा ॥ ४ ॥
मैत्रायणी च संज्ञा च तैत्तिरीयाभिधानिका। वैशम्पायनिकेत्याद्याः शाखा यजुषि संस्थिताः॥
साम्नः कौथुमसंज्ञैका द्वितीयाथर्वणायनी। गानान्यपि च चत्वारि वेद आरण्यकन्तथा ॥६॥
उक्था ऊहचतुर्थश्च मन्त्रा नवसहस्रकाः। सचतुःशतकाश्चैव ब्रह्मसङ्घटकाः स्मृताः ॥७॥
पञ्चविंशतिरेवात्र साममानं प्रकीर्त्तितं। सुमन्तुर्जाजलिश्चैव श्लोकायनिरथर्व्वके ॥८॥
शौनकः पिप्पलादश्च मुञ्जकेशादयोऽपरे। मन्त्राणामयुतं षष्टिशतञ्चोपनिषच्छतं ॥९॥
व्यासरूपी स भगवान् शाखाभेदाद्यकारयत्। शाखाभेदादयो विष्णुरितिहासः पुराणकं ॥
प्राप्य व्यासात पुराणादि सूतो वै लोमहर्षणः। सुमतिश्चाग्निवर्चाश्च मित्रयुः शिंशपायनः ॥
कृतव्रतोथ सावर्णिः षट्शिष्यास्तस्य चाभवन्। शांशपायनादयश्चक्रुः[१] पुराणानान्तु संहिताः॥
ब्राह्मादीनि पुराणानि हरिविद्या दशाष्ट च। महापुराणे ह्याग्नेये विद्यारूपो हरिः स्थितः ॥
सप्रपञ्चो निष्प्रपञ्चो मूर्त्तामूर्त्तस्वरूपधृक्।
तं ज्ञात्वाभ्यर्च्चय संस्तूय भुक्तिमुक्तिमवाप्नुयात् ॥ १४ ॥
विष्णुर्जिष्णुर्भविष्णुश्च अग्निसूर्य्यादिरूपवान्। अग्निरूपेण देवादेर्मुखं विष्णुः परा गतिः॥
वेदेषु सपुराणेषु यज्ञमूर्त्तिश्च गीयते। आग्नेयाख्यं पुराणन्तु रूपं विष्णोर्महत्तरं ॥१६॥

---

१. शिंशपायनादयश्चक्रुरिति ख.।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आग्नेयाख्यपुराणस्य कर्त्ता श्रोता जनार्दनः। तस्मात्पुराणमाग्नेयं सर्ववेदमयं महत् ॥१७॥
सर्वविद्यामयं पुण्यं सर्वज्ञानमयं वरम्[१]। सर्वात्म हरिरूपं हि पठतां श्रृण्वतां नृणां ॥१८॥
विद्यार्थिनाञ्च विद्यादमर्थिनां श्रीधनप्रदम्[२]। राज्यार्थिनां राज्यदञ्च धर्म्मदं धर्मकामिनाम् ॥
स्वर्गार्थिनां स्वर्गदञ्च पुत्रदं पुत्रकामिनां। गवादिकामिनाञ्चोदं ग्रामदं ग्रामकामिनां ॥२०॥
कामार्थिनां कामदञ्च सर्वसौभाग्यसम्पदम्। गुणकीर्त्तिप्रदं नृणां जयदञ्जयकामिनाम॥२१॥
सर्वेप्सूनां सर्वदन्तु मुक्तिदं मुक्तिकामिनां। पापघ्नं पापकर्तॄणामाग्नेयं हि पुराणकम् ॥२२॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये वेदशाखादिकीर्त्तनं नाम एकसप्तत्यधिक-
द्विशततमोऽध्ययः।

द्विसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

दानादिमाहात्म्यम्।

पुष्कर उवाच

ब्रह्मणाभिहितं पूर्व्वं यावन्मात्रं मरीचये। लक्षार्द्धार्द्धन्तु तद्ब्राह्मं लिखित्वा सम्प्रदापयेत् ॥१॥
वैशाख्याम्पौर्णमास्याञ्च स्वर्गार्थी जलधेनुमत्। पाद्मं द्वादशसाहस्रं ज्यैष्ठे दद्याच्च धेनुमत् ॥
वराहकल्पवृत्तान्तमधिकृत्य पराशरः। त्रयोविंशतिसाहस्रं वैष्णवं प्राह चार्पयेत् ॥३॥
जलधेनुमदाषाढ्यां विष्णोः पदमवाप्नुयात। चतुर्दशसहस्राणि वायवीयं हरिप्रियं ॥४॥
श्वेतकल्पप्रसङ्गेन धर्म्मान् वायुरिहाब्रवीत्। दद्याल्लिखित्वा तद्विप्रे श्रावण्यां गुड़धेनुमत ॥
यत्राधिकृत्य गायत्रीं कीर्त्त्यते धर्म्मविस्तरः। वृत्रासुरवधोपेतं तद्भागवतमुच्यते ॥६॥
सारस्वतस्य कल्पस्य प्रोष्ठपद्यान्तु तद्ददेत्। अष्टादशसहस्राणि हेमसिंहसमन्वितं ॥७॥
यत्राह नारदो धर्म्मान् वृहत्कल्पाश्रितानिह। पञ्चविंशसहस्राणि नारदीयं तदुच्यते। ८॥
सधेनुञ्चाश्विने दद्यात्सिद्धिमात्यन्तिकीं लभेत्। यत्राधिकृत्य शत्रूनान्धर्माधर्मविचारणा॥९॥
कार्त्तिक्यां नवसाहस्रं मार्कण्डेयमथार्पयेत्। अग्निना यद्वशिष्ठाय प्रोक्तञ्चाग्नेयमेव तत् ॥
लिखित्वा पुस्तकं दद्यान्मार्गशीर्ष्यां स सर्वदः। द्वादशैव सहस्राणि सर्वविद्यावबोधनं[३] ॥११॥
चतुर्दशसहस्राणि भविष्यं सूर्य्यसम्भवं। भवस्तु मनवे प्राह दद्यात् पौष्यां गुड़ादिमत ॥
सावर्णिना नारदाय ब्रह्मवैवर्त्तमीरितं। रथान्तरस्य वृत्तान्तमष्टादशसहस्रकं ॥१३॥
माघ्यान्दद्याद्वराहस्य चरितं ब्रह्मलोकभाक्। यत्राग्निलिङ्गमध्यस्थो धर्म्मानप्राह महेश्वरः ॥
आग्नेयकल्पे तल्लिङ्गमेकादशसहस्रकम्। तद्दत्वा शिवमाप्नोति फाल्गुन्यां तिलधेनुमत ॥१५॥
चतुर्दशसहस्राणि वाराहं विष्णुनेरितम्। भूयौ वराहचरितं मानवस्य प्रवृत्तितः ॥१६॥
सहेमगरुड़ञ्चैत्र्यां पदमाप्नोति वैष्णवम्। चतुरशीतिसाहस्रं स्कान्दं स्कन्देरितं महत्॥१७॥

---

१. परमिति ग. । २. श्रीबलप्रदमिति ञ. ।
३. सर्व्वविद्यावधारणमिति ञ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अधिकृत्य सधर्म्मांश्च कल्पे तत्पुरुषेऽर्पयेत । वामनं दशसाहस्रं धौमकल्पे हरेः कथां ॥
दद्यात् शरदि विषुवे धर्मार्थादिनिबोधनम् । कूर्मञ्चाष्टसहस्रञ्च कूर्मोक्तञ्च रसातले ॥१६॥
इन्द्रद्युम्नप्रसङ्गेन दद्यात्तद्धेमकूर्मवत् । त्रयोदशसहस्राणि मात्स्यं कल्पादितोऽब्रवीत् ॥२०॥
मत्स्यो हि मनवे दद्याद्विषुवे हेममत्स्यवत् । गारुडञ्चाष्टसाहस्रं विष्णूक्तन्तार्क्षकल्पके॥२१॥
विश्वाण्डाद्गरुड़ोत्पत्ति तद्दद्याद्धेमहंसवत् । ब्रह्मा ब्रह्माण्डमाहात्म्यमधिकृत्याब्रवीत्तु यत् ॥
तच्च द्वादशसाहस्रं ब्रह्माण्डं तद्द्विजेऽर्पयेत् । भारते पर्वसमाप्तौ वस्त्रगन्धस्त्रगादिभिः ॥२३॥
वाचकं पूजयेदादौ भोजयेत् पायसैर्द्विजान् । गोभूग्रामसुवर्णादि दद्यात्पर्वणि पर्वणि ॥२४॥
समाप्ते भारते विप्रं संहितापुस्तकान्यजेत् । शुभे देशे निवेश्याथ क्षौमवस्त्रादिनावृतान् ॥
नरनारायणौ पूज्यौ पुस्तकाः कुसुमादिभिः । गोऽन्नभूहेम दत्वाथ भोजयित्वा क्षमापयेत् ॥
महादानानि देयानि रत्नानि विविधानि च । मासकौ द्वौ त्रयश्चैव मासे मासे प्रदापयेत् ॥
अयनादौ श्रावकस्य दानमादौ विधीयते । श्रोतृभिः सकलैः कार्य्यं श्रावके पूजनं द्विज ॥
इतिहासपुराणानां पुस्तकानि प्रयच्छति । पूजयित्वायुरारोग्यं स्वर्गमोक्षमवाप्नुयात् ॥२९॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये दानादिमाहात्म्यं नाम द्विसप्तत्यधिक-
द्विशततमोऽध्यायः ।

त्रिसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

सूर्य्यवंशकीर्त्तनम् ।

अग्निरुवाच

सूर्य्यवंशं सोमवंशं राज्ञां वंशं वदामि ते । हरेर्ब्रह्मा पद्मगोऽभून्मरीचिर्ब्रह्मणः सुतः ॥१॥
मरीचेः कश्यपस्तस्माद्विवस्वांस्तस्य पत्न्यपि । संज्ञा राज्ञी[1] प्रभा तिस्रो राज्ञी रैवतपुत्रिका ॥
रेवन्तं सुषुवे पुत्रं प्रभातञ्च प्रभा रवेः । त्वाष्ट्री संज्ञा मनुं पुत्रं यमलौ यमुनां यमम् ॥३॥
छाया संज्ञा च सावर्णिं मनुं वैवस्वतं सुतम । शनिञ्च तपतीं विष्टिं संज्ञायाञ्चाश्विनौ पुनः ॥
मनोर्वैवस्वतस्यासन् पुत्रा वै न च तत्समाः । इक्ष्वाकुश्चैव नाभागो धृष्टः शर्य्यातिरेव च ॥
नरिष्यन्तस्तथा प्रांशुर्नाभागादिष्टसत्तमाः । करूषश्च पृषध्रश्च अयोध्यायां महाबलाः ॥६॥
कन्येला च मनोरासीद्बुधात्तस्यां पुरूरवाः । पुरूरवसमुत्पाद्य सेला सुद्युम्नताङ्गता ॥७॥
सुद्युम्नादुत्कलगयौ विनताश्वस्त्रयो नृपाः । उत्कलस्योत्कलं राष्ट्रं विनताश्वस्य पश्चिमा ॥
दिक् सर्व्वा राजवर्य्यस्य गयस्य तु गयापुरी । वशिष्ठवाक्यात् सुद्युम्नः प्रतिष्ठानमवाप ह ॥
तत् पुरूरवसे प्रादात्सुद्युम्नो राज्यमाप्य तु । नरिष्यतः शकाः पुत्रा नाभागस्य च वैष्णवः ॥

---

१. अत्र छायेति पाठो युक्तः ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अम्वरीषः प्रजापालो धार्ष्टकं धृष्टतः कुलम् । सुकन्यानर्त्तौ शर्य्यातेर्वैरोह्यानर्त्ततो नृपः ।।११।।
अनार्त्तविषयश्चासीत् पुरी चासीत् कुशस्थली । रेवस्य रैवतः पुत्रः ककुद्मी नाम धार्मिकः ।।

ज्येष्ठः पुत्रशतस्यासीद्राज्यं प्राप्य कुशस्थलीम् ।
स कन्यासहितः श्रुत्वा गान्धर्व्वं ब्रह्मणोऽन्तिके ।। १३ ।।

मुहूर्त्तभूतं देवस्य मर्त्ये बहुयुगं गतम् । आजगाम जवेनाथ स्वां पुरीं यादवैर्वृताम् ।।१४।।
कृतां द्वारवतीं नाम बहुद्वारां मनोरमाम् । भोजवृष्ण्यन्धकैर्गुप्तां वासुदेवपुरोगमैः ।।१५।।
रेवतीं बलदेवाय ददौ ज्ञात्वा ह्यनिन्दिताम् । तपः सुमेरुशिखरे तप्त्वा विष्ण्वालयं गतः ।।
नाभागस्य च पुत्रौ द्वौ वैश्यौ ब्राह्मणतां गतौ । करूषस्य तु कारूषाः क्षत्रिया युद्धदुर्म्मदाः ।।
शूद्रत्वञ्च पृषध्रोऽगाद्धिंसयित्वा गुरोश्च गाम् । मनुपुत्रादथेक्ष्वाकोर्विकुक्षिर्देवराडभूत् ।।१८।।
विकुक्षेस्तु ककुत्स्थोऽभूत्तस्य पुत्रः सुयोधनः । तस्य पुत्रः पृथुर्न्नाम विश्वगश्वः पृथोः सुतः ।।
आयुस्तस्य च पुत्रोऽभूद्युवनाश्वस्तथा सुतः । युवनाश्वाच्च श्रावन्तः पूर्वे श्रावन्तिका पुरी ।।
श्रावन्ताद् वृहदश्वोऽभूत् कुवलाश्वस्ततो नृपः । धुन्धुमारत्वमगमद्धुन्धोर्न्नाम्ना च वै पुरा ।।
धुन्धुमारात्त्रयो भूपा दृढाश्वो दण्ड एव च । कपिलोऽथ दृढाश्वात्तु हर्य्यश्वश्च प्रमोदकः ।।
हर्यश्वाच्च निकुम्भोऽभूत् संहताश्वो निकुम्भतः । अकृशाश्वो रणाश्वश्च संहताश्वसुतावुभौ ।।

युवनाश्वो रणाश्वस्य मान्धाता युवनाश्वतः ।
मान्धातुः पुरुकुत्सोऽभून्मुचुकुन्दो द्वितीयकः ।। २४ ।।

पुरुकुत्सादसस्युश्च सम्भूतो नर्मदाभवः । सम्भूतस्य सुधन्वाऽभूत्त्रिधन्वाथ सुधन्वनः ।।२५।।
त्रिधन्वनस्तु तरुणस्तस्य सत्यव्रतः सुतः । सत्यव्रतात्सत्यरथो हरिश्चन्द्रश्च तत् सुतः ।।२६।।
हरिश्चन्द्राद्रोहिताश्वो रोहिताश्वाद्वृकोऽभवत् । वृकाद्बाहुश्च बाहोश्च सगरस्तस्य च प्रिया ।।
प्रभा षष्टिसहस्राणां सुतानां जननी ह्यऽभूत् । तुष्टादौर्वान्नृपादेकं भानुमत्यसमञ्जसम् ।।
खनन्तः पृथिवीं दग्धा विष्णुना[1] बहुसागराः । असमञ्जसोंऽशुमांश्च दिलीपोंऽशुमतोऽभवत् ।।
भगीरथो दिलीपात्तु येन गङ्गावतारिता । भगीरथात्तु नाभागो नाभागादम्बरीषकः ।।३०।।
सिन्धुद्वीपोऽम्बरीषात्तु श्रुतायुस्तत्सुतः स्मृतः । श्रुतायोरृतपर्णोऽभूत्तस्य कल्माषपादकः ।।

कल्माषाङ्घ्रेः सर्व्वकर्म्मा[2] ह्यनरण्यस्ततोऽभवत् ।
अनरण्यात्तु निघ्नोऽथ अनमित्रस्ततो रघुः ।। ३२ ।।

रघोरभूद्दिलीपस्तु दिलीपाच्चाप्यजो नृपः । दीर्घबाहुरजात् कालस्त्वजापालस्ततोऽभवत् ।।
तथा दशरथो जातस्तस्य पुत्रचतुष्टयम् । नारायणात्मकाः सर्वे रामस्तस्याग्रजोऽभवत् ।।३४।।
रावणान्तकरो राजा ह्ययोध्यायां रघूत्तमः । वाल्मीकिर्यस्य चरितं चक्रे तन्नारदश्रवात् ।।
रामपुत्रौ कुशलवौ सीतायां कुलवर्द्धनौ । अतिथिश्च कुशाज्जज्ञे निषधस्तस्य चात्मजः ।।३६।।
निषधात्तु नलो जज्ञे नभोऽजायत वै नलात । नभसः पुण्डरीकोऽभूत् सुधन्वा च ततोऽभवत् ।।
सुधन्वनो देवानीको ह्यहीनाश्वश्च तत्सुतः । अहीनाश्वात् सहस्राश्वश्चन्द्रालोकस्ततोऽभवत् ।।

---

१. मुनिनेति ज. ।

२. सकर्म्माभूदिति ख. छ. च ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

चन्द्रावलोकतस्तारापीड़ोऽस्माच्चन्द्रपर्व्वतः । चन्द्रगिरेर्भानुरथः श्रुतायुस्तस्य चात्मजः ॥
इक्ष्वाकुवंशप्रभवाः सूर्य्यवंशधराः स्मृताः ॥ ३९ ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये सूर्य्यवंशकीर्त्तनं नाम त्रिसप्तत्यधिक-द्विशततमोऽध्यायः ।

चतुःसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

सोमवंशवर्णनम् ।

अग्निरुवाच

सोमवंशं प्रवक्ष्यामि पठितं पापनाशनम् । विष्णुनाभ्यब्जजो ब्रह्मा ब्रह्मपुत्रोऽत्रिरत्रितः ॥१॥
सोमश्चक्रे राजसूयं त्रैलोक्यं दक्षिणान्ददौ । समाप्तेऽवभृथे सोमं तद्रूपालोकनेच्छवः ॥२॥
कामबाणाभितप्ताङ्ग्यो नरदेव्यः सिषेविरे । लक्ष्मीर्न्नारायणं त्यक्त्वा सिनीवाली च कर्द्दमम् ॥
द्युतिं विभावसुन्त्यक्त्वा पुष्टिर्धातारमव्ययम् । प्रभा प्रभाकरन्त्यक्त्वा हविष्मन्तं कुहूः स्वयम् ॥
कीर्त्तिर्जयन्तम्भर्त्तारं वसुर्म्मारीचकश्यपम् । धृतिस्त्यक्त्वा पतिं नन्दीं सोममेवाभजत्तदा ॥
स्वकीया इव सोमोऽपि कामयामास तास्तदा । एवं कृतापचारस्य तासां भर्तृगणस्तदा ॥
न शशाकापचाराय[1] शापैः शस्त्रादिभिः पुनः । सप्तलोकैकनाथत्वमवाप्तस्तपसा ह्युत ॥७॥
विबभ्राम मतिस्तस्य विनयादनया हता । बृहस्पतेः स वै भार्य्यां तारां नाम यशस्विनीम् ॥
जहार तरसा सोमो ह्यवमन्याङ्गिरःसुतम् । ततस्तद्युद्धमभवत् प्रख्यातं तारकामयम् ॥९॥
देवानां दानवानाञ्च लोकक्षयकरं महत् । ब्रह्मा निवार्य्योशनसन्तारामङ्गिरसे ददौ ॥१०॥
तामन्तःप्रसवां दृष्ट्वा गर्भं त्यजाब्रवीद्गुरुः । गर्भस्त्यक्तः प्रदीप्तोऽथ प्राहाहं सोमसम्भवः ॥
एवं सोमाद् बुधः पुत्रः पुत्रस्तस्य पुरूरवाः ।
स्वर्गन्त्यक्त्वोर्वशी सा तं वरयामास चाप्सराः ॥ १२ ॥
तया सहाचरद्राजा दशवर्षाणि पञ्च च । पञ्च षट् सप्त चाष्टौ च दश चाष्टौ महामुने ॥१३॥
एकोऽग्निरभवत् पूर्व्वं तेन त्रेता प्रवर्त्तिता। पुरूरवा योगशीलो गान्धर्व्वलोकमीयिवान् ॥१४॥
आयुर्दृढायुरश्वायुर्धनायुर्धृतिमान् वसुः । दिविजातः शतायुश्च सुषुवे चोर्व्वशी नृपान् ॥१५॥
आयुषो नहुषः पुत्रो वृद्धशर्म्मा रजिस्तथा । दर्भो विपाप्मा पञ्चाग्न्यं[2] रजेः पुत्रशतं ह्यभूत् ॥
राजेया इति विख्याता विष्णुदत्तवरो रजिः । देवासुरे रणे दैत्यानबधीत् सुरयाचितः ॥१७॥
गतायेन्द्राय पुत्रत्वं दत्वा राज्यं दिवङ्गतः । रजेः पुत्रैर्हृतं राज्यं शक्रस्याथ सुदुर्म्मनाः ॥१८॥
ग्रहशान्त्यादिविधिना गुरुरिन्द्राय तद्ददौ । मोहयित्वा रजिसुतानासंस्ते निजधर्म्मगाः ॥१९॥
नहुषस्य सुताः सप्त यतिर्य्ययातिरुत्तमः । उद्भवः पञ्चकश्चैव शर्य्यातिमेघपालकौ ॥२०॥

---

१. न शशाकापकारायेति ज । २. पञ्चाग्न्या इति ज. । पञ्चाग्न्यमिति ञ. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यतिः कुमारभावेऽपि विष्णुं ध्यात्वा हरिं गतः। देवयानी शुक्रकन्या ययातेः पत्न्यऽभूत्तदा॥
वृषपर्व्वजा शर्म्मिष्ठा ययातेः पञ्च तत्सुताः। यदुश्च तुर्व्वसुश्चैव देवयानी व्यजायत ॥२२॥
द्रुह्युश्चानूश्च पूरुश्च शर्म्मिष्ठा वार्षपर्व्वणी। यदुः पूरुश्चाभवतान्तेषां वंशविवर्द्धनौ ॥२३॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये सोमवंशवर्णनं नाम चतुःसप्तत्यधिक-
द्विशततमोऽध्यायः।

पञ्चसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

यदुवंशवर्णनम्।

अग्निरुवाच

यदोरासन्पञ्च पुत्रा ज्येष्ठस्तेषु सहस्रजित्। नीलाञ्जिको रघुः क्रोष्टुः शतजिच्च सहस्रजित्॥
शतजिद्धैहयो रेणुहयो हय इति त्रयः। धर्म्मनेत्रो हैहयस्य धर्म्मनेत्रस्य संहनः ॥२॥
महिमा संहनस्यासीन्महिम्नो भद्रसेनकः। भद्रसेनाद् दुर्गमोऽभूद्दुर्गभात्कनकोऽभवत्॥
कनकात् कृतवीर्य्यस्तु कृताग्निः करवीरकः। कृतौजाश्च चतुर्थोऽभूत् कृतवीर्य्यात्तु सोऽर्जुनः॥
दत्तोऽर्ज्जुनाय तपते सप्तद्वीपमहीशताम्। ददौ वाहुसहस्रञ्च अजेयत्वं रणेऽरिणा ॥५॥
अधर्म्मे वर्त्तमानस्य विष्णुहस्तान्मृतिर्ध्रुवा। दश यज्ञसहस्राणि सोऽर्ज्जुनः कृतवान्नृपः ॥६॥
अनष्टद्रव्यता राष्ट्रे तस्य संस्मरणादभूत्। न नूनं कार्त्तवीर्य्यस्य गतिं यास्यन्ति वै नृपाः॥
यज्ञैर्दानैस्तपोभिश्च विक्रमेण श्रुतेन च। कार्त्तवीर्यस्य च शतं पुत्त्राणां पञ्च वै पराः ॥८॥
सूरसेनश्च सूरश्च धृष्टोक्तः कृष्ण एव च। जयध्वजश्च नामासीदावन्त्यो नृपतिर्महान् ॥९॥
जयध्वजात्तालजङ्घस्तालजङ्घात्ततः सुताः। हैहयानां कुलाः पञ्च भोजाश्चावन्तयस्तथा ॥१०॥
वीतिहोत्राः स्वयं जाताः शौण्डिकेयास्तथैव च। वीतिहोत्रादनन्तोऽभूदनन्ताद्दुर्ज्जयो नृपः॥
क्रोष्टोर्व्वंशं प्रवक्ष्यामि यत्र जातो हरिः स्वयम्। क्रोष्टोस्तु वृजिनीवांश्च स्वाहाऽभूद्वृजिनीवतः॥
स्वाहापुत्रो रुषद्गुश्च[1] तस्य चित्ररथः सुतः। शशविन्दुश्चित्ररथाच्चक्रवर्त्ती हरौ रतः ॥१३॥
शशविन्दोश्च पुत्त्राणां शतानामभवच्छतम्। धीमतां चारुरूपाणां भूरिद्रविणतेजसाम् ॥१४॥
पृथुश्रवाः प्रधानोऽभूत्तस्य पुत्रः सुयज्ञकः। सुयज्ञस्योशनाः पुत्रस्तितिक्षुरुशनः सुतः ॥१५॥
तितिक्षोस्तु मरुत्तोऽभूत्तस्मात्कम्बलवर्हिषः। पञ्चाशद्रुक्मकवचाद्रुक्मेषुः पृथुरुक्मकः ॥१६॥

हविर्ज्यामघः पापघ्नो ज्यामघः स्त्रीजितोऽभवत्।
सैव्यायां ज्यामघादासीद्विदर्भस्तस्य कौशिकः ॥ १७ ॥
लोमपादः क्रथः श्रेष्ठात् कृतिः[2] स्याल्लोमपादतः।
कौशिकस्य चिदिः पुत्रस्तस्माच्चैद्या नृपाः स्मृताः ॥ १८ ॥

---

१. विषांशुश्चेति ज.। २. धृतिरिति ज.।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

क्रथाद्विदर्भपुत्राश्च कुन्तिः कुन्तेस्तु धृष्टकः। धृष्टस्य निधृतिस्तस्य उदर्काख्यो विदूरथः ॥१९॥
दशार्हपुत्रो व्योमस्तु व्योमाज्जीमूत उच्यते। जीमूतपुत्रो विकलस्तस्य भीमरथः सुतः ॥२०॥
भीमरथान्नवरथस्ततो दृढ़रथोऽभवत। शकुन्तिश्च दृढ़रथात शकुन्तेश्च करम्भकः ॥२१॥
करम्भादेवलातोऽभूत[1] देवक्षेत्रश्च तत्सुतः। देवक्षेत्रान्मधुर्नाम मधोर्द्रवरसोऽभवत् ॥२२॥
द्रवरसात पुरुहूतोऽभूज्जन्तुरासीत्तु तत्सुतः। गुणी तु यादवो राजा जन्तुपुत्रस्तु सात्त्वतः॥२३॥
सात्त्वताद्भजमानस्तु वृष्णिरन्धक एव च। देवावृधश्च चत्वारस्तेषां वंशास्तु विश्रुताः[2]॥२४॥
भजमानस्य वाह्योऽभूद्वृष्टिः कृमिर्निमिस्तथा। देवावृधाद्बभ्रुरासीत्तस्य श्लोकोऽत्र गीयते ॥
यथैव शृणुमो दूरात गुणांस्तद्वत्समन्तिकात्। बभ्रुः श्रेष्ठो मनुष्याणां देवैर्देवावृधः समः॥२६॥
चत्वारश्च सुता बभ्रोर्वासुदेवपरा नृपाः। कुहुरो भजमानस्तु[3] शिनिः कम्बलबर्हिषः ॥२७॥
कुहुरस्य[4] सुतो धृष्णुर्धृष्णोस्तु तनयो धृतिः। धृतेः कपोतरोमाभूत्तस्य पुत्रस्तु तित्तिरिः ॥
तित्तिरेस्तु नरः पुत्रस्तस्य चन्दनदुन्दुभिः। पुनर्वसुस्तस्य पुत्र आहुतश्चाहुकीसुतः ॥२९॥
आहुकादेवको जज्ञे उग्रसेनस्ततोऽभवत्। देववानुपदेवश्च देवकस्य सुताः स्मृताः ॥३०॥
तेषां स्वसारः सप्तासन् वसुदेवाय ता ददौ। देवकी श्रुतदेवी च मित्रदेवी यशोधरा ॥३१॥
श्रीदेवी सत्यदेवी च सुरापी चेति सप्तमी। नवोग्रसेनस्य सुताः कंसस्तेषाञ्च पूर्वजः ॥३२॥
न्यग्रोधश्च सुनामा च कङ्कः शङ्कुश्च भूमिपः। सुतनूराष्ट्रपालश्च युद्धमुष्टिः सुमुष्टिकः ॥३३॥
भजमानस्य पुत्रोऽथ रथमुख्यो विदूरथः। राजाधिदेवः शूरश्च विदूरथसुतोऽभवत् ॥३४॥
राजाधिदेवपुत्रौ द्वौ शोणाश्वः श्वेतवाहनः। शोणाश्वस्य सुताः पञ्च शमी शत्रुजिदादयः[5] ॥
शमीपुत्रः प्रतिक्षेत्रः प्रतिक्षेत्रस्य भोजकः। भोजस्य हृदिकः पुत्रो हृदिकस्य दशात्मजाः
कृतवर्म्मा शतधन्वा देवार्हो भीषणादयः। देवार्हात् कम्बलबर्हिरसमौजास्ततोऽभवत् ॥३७॥
सुदंष्ट्रश्च सुवासश्च धृष्टोऽभूदसमौजसः। गान्धारी चैव माद्री च धृष्टभार्य्ये बभूवतुः ॥३८॥
सुमित्रोऽभूच्च गान्धार्य्यां माद्री जज्ञे युधाजितम्[6]। अनमित्रः शिनिर्धृष्टात्ततो वै देवमीढुषः ॥
अनमित्रसुतो निघ्नो निघ्नस्यापि प्रसेनकः। सत्राजितः प्रसेनोऽथ मणिं सूर्य्यात् स्यमन्तकम् ॥

प्राप्यारण्ये चरन्तन्तु सिंहो हत्वाऽग्रहीन्मणिं।
हतो जाम्बवता सिंहो जाम्बवान् हरिणा जितः ॥ ४१ ॥

तस्मान्मणिं जाम्बवतीं प्राप्यागाद्द्वारकां पुरीम्। सत्राजिताय प्रददौ शतधन्वा जघान तम् ॥
हत्वा शतधनुं कृष्णो मणिमादाय कीर्त्तिभाक्। बलयादवमुख्याग्रे अक्रूरान्मणिमर्पयेत् ॥४३॥

मिथ्याभिशस्तिं कृष्णस्य त्यक्त्वा स्वर्गं च सम्पठन्।
सत्राजितो भङ्गकारः सत्यभामा हरेः प्रिया ॥ ४४ ॥

---

१. देवरातोऽभूदिति ख. ग. घ. ज. ञ. ट. च। २. विस्तृता इति क. छ. च।
३. कुकुरो भजमानस्त्विति क.। सुन्दरो भजमानस्त्विति ज.।
४. कुकुरस्येति क.। ५. शक्रजिदादय इति ख.।
६. सुधाजितमिति ख. छ. च।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अनमित्राच्छिनिर्जज्ञे सत्यकस्तु शिनेः सुतः। सत्यकात्सात्यकिर्जज्ञे युयुधानाद्धुनिर्ह्यभूत् ॥
धुनेर्युगन्धरः पुत्रः स्वाह्योऽभूत्[१] स युधाजितः। ऋषभक्षेत्रकौ तस्य ह्यृषभाच्च स्वफल्ककः ॥
स्वफल्कपुत्रो ह्यक्रूरो अक्रूराच्च सुधन्वकः। शूरात्तु वसुदेवाद्याः पृथा पाण्डोः प्रियाऽभवत् ॥
धर्म्माद्युधिष्ठिरः पाण्डोर्वायोः कुन्त्यां वृकोदरः। इन्द्राद्धनञ्जयो माद्र्यां नकुलः सहदेवकः ॥
वसुदेवाच्च रोहिण्यां रामः सारणदुर्गमौ। वसुदेवाच्च देवक्यामादौ जातः सुसेनकः ॥४६॥
कीर्तिमान् भद्रसेनश्च जारुख्यो विष्णुदासकः। भद्रदेहः कंश एतान् षड्गर्भान्निजघान ह ॥
ततो बलस्ततः कृष्णः सुभद्रा भद्रभाषिणी। चारुदेष्णश्च शाम्बाद्याः कृष्णाज्जाम्ववतीसुताः ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये यदुवंशवर्णनं नाम पञ्चसप्तत्यधिक-
द्विशततमोऽध्यायः।

षट्सप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

द्वादशसङ्ग्रामाः।

अग्निरुवाच

कश्यपो वसुदेवोऽभूद्देवकी चादितिर्व्वरा। देवक्यां वसुदेवात्तु कृष्णोऽभूत्तपसान्वितः ॥१॥
धर्म्मसंरक्षणार्थाय ह्यधर्म्महरणाय च। सुरादेः पालनार्थञ्च दैत्यादेर्म्मथनाय च ॥२॥

रुक्मिणी सत्यभामा च सत्या नग्नजिती प्रिया।
सत्यभामा हरेः सेव्या गान्धारी लक्ष्मणा तथा ॥ ३ ॥
मित्रविन्दा[२] च कालिन्दी देवी जाम्ववती तथा।
सुशीला च तथा माद्री कौशल्या विजया जया ॥ ४ ॥

एवमादीनि देवीनां सहस्राणि तु षोड़श। प्रद्युम्नाद्याश्च रुक्मिण्यां भीमाद्याः सत्यभामया ॥
जाम्ववत्याश्च शाम्बाद्याः कृष्णस्यासंस्तथापरे। शतं शतसहस्राणां पुत्राणां तस्य धीमतः ॥
अशीतिश्च सहस्राणि यादवाः कृष्णरक्षिताः। प्रद्युम्नस्य तु वैदर्भ्यामनिरुद्धो रणप्रियः ॥
अनिरुद्धस्य वज्राद्या यादवाः सुमहाबलाः। तिस्रः कोट्यो यादवानां षष्टिर्लक्षाणि दानवाः ॥
मनुष्ये बाधका ये तु तन्नाशाय बभूव सः। कर्त्तुं कर्मव्यवस्थानं मनुष्यो जायते हरिः ॥
देवासुराणां सङ्ग्रामा दायार्थं द्वादशाभवन्। प्रथमो नारसिंहस्तु द्वितीयो वामनो रणः ॥
सङ्ग्रामस्त्वथ वाराहश्चतुर्थोऽमृतमन्थनः। तारकामयसङ्ग्रामः षष्ठो ह्याजीवको रणः ॥११॥
त्रैपुरश्चान्धकबधो नवमो वृत्रघातकः। जितो हालाहलश्चाथ घोरः कोलाहलो रणः ॥१२॥
हिरण्यकशिपोश्चोरो विदार्य्य च नखैः पुरा। नारसिंहो देवपालः प्रह्लादं कृतवान् नृपम् ॥१३॥

---

१. स्वान्घोभूदिति ख. छ. च। साक्षोऽभूदिति ञ.। २. चित्रविन्देति ख. छ. च।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

देवासुरे वामनश्च छलित्वा बलिमूर्ज्जितम् । महेन्द्राय ददौ राज्यं काश्यपोऽदितिसम्भवः ॥
वराहस्तु हिरण्याक्षं हत्वा देवानपालयत् । उज्जहार भुवं मग्नां देवदेवैरभिष्टुतः ॥१५॥
मन्थानं मन्दरं कृत्वा नेत्रं कृत्वा तु वासुकिम् । सुरासुरैश्च मथितं[1] देवेभ्यश्चामृतं ददौ ॥
तारकामयसङ्ग्रामे तदा देवाश्च पालिताः । निवार्य्येन्द्रं गुरून् देवान् दानवान्सोमवंशकृत् ॥
विश्वामित्रवशिष्ठात्रिकवयश्च रणे सुरान् । अपालयन्ते निर्व्वार्य्य रागद्वेषादिदानवान् ॥१८॥
पृथ्वीरथे ब्रह्मयन्तुरीशस्य शरणो हरिः । ददाह त्रिपुरं देवपालको दैत्यमर्दनः ॥१९॥
गौरीं जिहीर्षुणा रुद्रमन्धकेनार्दितं हरिः । अनुरक्तश्च रेवत्यां चक्रेचान्धासुरार्दनम् ॥२०॥
अपां फेनमयो भूत्वा देवासुररणे हरन्[2] । वृत्रं देवहरं विष्णुर्देवधर्म्मानपालयत् ॥२१॥
शाल्वादीन् दानवान् जित्वा हरिः परशुरामकः । अपालयत् सुरादींश्च दुष्टक्षत्रं निहत्य च ॥
हालाहलं विषं दैत्यं निराकृत्य महेश्वरात् । भयं निर्णाशयामास देवानां मधुसूदनः ॥२३॥
देवासुरे रणे यश्च दैत्यः कोलाहलो जितः । पालिताश्च सुराः सर्व्वे विष्णुना धर्म्मपालनात् ॥
राजानो राजपुत्राश्च मुनयो देवता हरिः । यदुक्तं यच्च नैवोक्तमवतारा हरेरिमे ॥२५॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये द्वादशसङ्ग्रामा नाम षट्सप्तत्यधिक-
द्विशततमोऽध्यायः ।

सप्तसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

राजवंशवर्णनम् ।

अग्निरुवाच

तुर्व्वसोश्च सुतो वर्गो गोभानुस्तस्य चात्मजः[3] । गोभानोरासीत्[4] त्रैशानिस्त्रैशानेस्तु करन्धमः ॥
करन्धमान्मरुत्तोभूऽद्दुष्मन्तस्तस्य चात्मजः । दुष्मन्तस्य वरूथोऽभूद्गाण्डीरस्तु वरूथतः ॥

गाण्डीराच्चैव गान्धारः पञ्च जानपदास्ततः ।
गान्धाराः केरलाश्चोलाः पाण्ड्याः कोला[5] महाबलाः ॥ ३ ॥

द्रुह्युस्तु वभ्रुसेतुश्च वभ्रुसेतोः पुरोवसुः । ततो गान्धारा गान्धारैर्धर्म्मो धर्म्माद् घृतोऽभवत् ॥
घृतात्तु विदुषस्तस्मात् प्रचेतास्तस्य वै शतम् । आनद्रश्च सभानरश्चाक्षुपः परमेषुकः ॥५॥
सभानरात् कालानलः कालानलजसृञ्जयः । पुरञ्जयः सृञ्जयस्य तत्पुत्रो जनमेजयः ॥६॥
तत्पुत्रस्तु महाशालस्तत्पुत्रोऽभून्महामनाः । तस्मादुशीनरो ब्रह्मन्नृगायान्तु नृगस्ततः ॥७॥

---

१. सुरासुरैरमन्थाब्धिमिति क. छ. च । २. देवासुरहरोऽभवदिति क. घ. ञ. ट. च ।
३. शोभानुस्तस्य चात्मज इति ज । ४. शोभानोरासीदिति ख ।
५. कर्णो इति ज. ट. च ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अनमित्राच्छिनिर्जज्ञे सत्यकस्तु शिनेः सुतः। सत्यकात्सात्यकिर्जज्ञे युयुधानाद्धुनिर्ह्यभूत् ॥
धुनेर्युगन्धरः पुत्रः स्वाह्योऽभूत[1] स युधाजितः। ऋषभक्षेत्रकौ तस्य ह्यृषभाच्च स्वफल्ककः॥
स्वफल्कपुत्रो ह्यक्रूरो अक्रूराच्च सुधन्वकः। शूरात्तु वसुदेवाद्याः पृथा पाण्डोः प्रियाऽभवत् ॥
धर्म्माद्युधिष्ठिरः पाण्डोर्वायोः कुन्त्यां वृकोदरः। इन्द्राद्धनञ्जयो माद्र्यां नकुलः सहदेवकः॥
वसुदेवाच्च रोहिण्यां रामः सारणदुर्गमौ। वसुदेवाच्च देवक्यामादौ जातः सुसेनकः ॥४६॥
कीर्तिमान् भद्रसेनश्च जारुख्यो विष्णुदासकः। भद्रदेहः कंश एतान् षड्गर्भान्निजघान ह ॥
ततो बलस्ततः कृष्णः सुभद्रा भद्रभाषिणी। चारुदेष्णश्च शाम्बाद्याः कृष्णाज्जाम्बवतीसुताः॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये यदुवंशवर्णनं नाम पञ्चसप्तत्यधिक-
द्विशततमोऽध्यायः।

षट्सप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

द्वादशसङ्ग्रामाः।

अग्निरुवाच

कश्यपो वसुदेवोऽभूद्देवकी चादितिर्व्वरा। देवक्यां वसुदेवात्तु कृष्णोऽभूत्तपसान्वितः ॥१॥
धर्म्मसंरक्षणार्थाय ह्यधर्म्महरणाय च। सुरादेः पालनार्थश्च दैत्यादेर्म्मथनाय च ॥२॥

रुक्मिणी सत्यभामा च सत्या नग्नजिती प्रिया।
सत्यभामा हरेः सेव्या गान्धारी लक्ष्मणा तथा ॥ ३ ॥
मित्रविन्दा[2] च कालिन्दी देवी जाम्बवती तथा।
सुशीला च तथा माद्री कौशल्या विजया जया ॥ ४ ॥

एवमादीनि देवीनां सहस्राणि तु षोड़श। प्रद्युम्नाद्याश्च रुक्मिण्यां भीमाद्याः सत्यभामया॥
जाम्बवत्याश्च शाम्बाद्याः कृष्णस्यासंस्तथापरे। शतं शतसहस्राणां पुत्राणां तस्य धीमतः॥
अशीतिश्च सहस्राणि यादवाः कृष्णरक्षिताः। प्रद्युम्नस्य तु वैदर्भ्यामनिरुद्धो रणप्रियः॥
अनिरुद्धस्य वज्राद्या यादवाः सुमहाबलाः। तिस्रः कोट्यो यादवानां षष्टिर्लक्षाणि दानवाः॥
मनुष्ये बाधका ये तु तन्नाशाय बभूव सः। कर्त्तुं कर्मव्यवस्थानं मनुष्यो जायते हरिः॥
देवासुराणां सङ्ग्रामा दायार्थं द्वादशाभवन्। प्रथमो नारसिंहस्तु द्वितीयो वामनो रणः॥
सङ्ग्रामस्त्वथ वाराहश्चतुर्थोऽमृतमन्थनः। तारकामयसङ्ग्रामः षष्ठो ह्याजीवको रणः ॥११॥
त्रैपुरश्चान्धकवधो नवमो वृत्रघातकः। जितो हालाहलश्चाथ घोरः कोलाहलो रणः ॥१२॥
हिरण्यकशिपोश्चोरो विदार्य्य च नखैः पुरा। नारसिंहो देवपालः प्रह्लादं कृतवान् नृपम् ॥१३॥

---

१. स्वान्धोभूदिति ख. छ. च। साक्षोऽभूदिति ज.। २. चित्रविन्देति ख. छ. च।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

देवासुरे वामनश्च छलित्वा बलिमूर्ज्जितम् । महेन्द्राय ददौ राज्यं काश्यपोऽदितिसम्भवः ॥
वराहस्तु हिरण्याक्षं हत्वा देवानपालयत् । उज्जहार भुवं मग्नां देवदेवैरभिष्टुतः ॥१५॥
मन्थानं मन्दरं कृत्वा नेत्रं कृत्वा तु वासुकिम् । सुरासुरैश्च मथितं[1] देवेभ्यश्चामृतं ददौ ॥
तारकामयसङ्ग्रामे तदा देवाश्च पालिताः । निवार्य्येन्द्रं गुरून् देवान् दानवान्सोमवंशकृत् ॥
विश्वामित्रवशिष्ठात्रिकवयश्च रणे सुरान् । अपालयन्ते निर्व्वार्य्य रागद्वेषादिदानवान् ॥१८॥
पृथ्वीरथे ब्रह्मयन्तुरीशस्य शरणो हरिः । ददाह त्रिपुरं देवपालको दैत्यमर्दनः ॥१९॥
गौरीं जिहीर्षुणा रुद्रमन्धकेनार्दितं हरिः । अनुरक्तश्च रेवत्यां चक्रेचान्धासुरार्दनम् ॥२०॥
अपां फेनमयो भूत्वा देवासुररणे हरन्[2] । वृत्रं देवहरं विष्णुर्देवधर्म्मानपालयत् ॥२१॥
शाल्वादीन् दानवान् जित्वा हरिः परशुरामकः । अपालयत् सुरादींश्च दुष्टक्षत्रं निहत्य च ॥
हालाहलं विषं दैत्यं निराकृत्य महेश्वरात् । भयं निर्णाशयामास देवानां मधुसूदनः ॥२३॥
देवासुरे रणे यश्च दैत्यः कोलाहलो जितः । पालिताश्च सुराः सर्व्वे विष्णुना धर्म्मपालनात् ॥
राजानो राजपुत्राश्च मुनयो देवता हरिः । यदुक्तं यच्च नैवोक्तमवतारा हरेरिमे ॥२५॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये द्वादशसङ्ग्रामा नाम षट्सप्तत्यधिक-
द्विशततमोऽध्यायः ।

सप्तसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

राजवंशवर्णनम् ।

अग्निरुवाच

तुर्व्वसोश्च सुतो वर्गो गोभानुस्तस्य चात्मजः[3] । गोभानोरासीत्[4] त्रैशानिस्त्रैशानेस्तु करन्धमः ॥
करन्धमान्मरुत्तोभूऽद्दुष्मन्तस्तस्य चात्मजः । दुष्मन्तस्य वरूथोऽभूद्गाण्डीरस्तु वरूथतः ॥
गाण्डीराच्चैव गान्धारः पञ्च जानपदास्ततः ।
गान्धाराः केरलाश्चोलाः पाण्ड्याः कोला[5] महाबलाः ॥ ३ ॥
द्रुह्यस्तु वभ्रुसेतुश्च वभ्रुसेतोः पुरोवसुः । ततो गान्धारा गान्धारैर्घर्म्मो घर्म्माद् घृतोऽभवत् ॥
घृतात्तु विदुषस्तस्मात् प्रचेतास्तस्य वै शतम् । आनद्रश्च सभानरश्चाक्षुपः परमेषुकः ॥५॥
सभानरात् कालानलः कालानलजसृञ्जयः । पुरञ्जयः सृञ्जयस्य तत्पुत्रो जनमेजयः ॥६॥
तत्पुत्रस्तु महाशालस्तुतपुत्रोऽभून्महामनाः । तस्मादुशीनरो ब्रह्मन्नृगायान्तु नृगस्ततः ॥७॥

---

१. सुरासुरैरमन्थाब्धिमिति क. छ. च । २. देवासुरहरोऽभवदिति क. घ. ञ. ट. च ।
३. शोभानुस्तस्य चात्मज इति ज । ४. शोभानोरासीदिति ख ।
५. कर्णो इति ज. ट. च ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नरायान्तु नरश्चासीत् कृमिस्तु कृमितः सुतः । दशायां सुव्रतो जज्ञे दशद्वत्यां शिविस्तथा ॥
शिवेः पुत्रास्तु चत्वारः पृथुदर्भश्च वीरकः । कैकेयो भद्रकस्तेषां नाम्ना जनपदाः शुभाः ॥ ६ ॥
शिवेः पुत्रास्तु चत्वारः पृथुदर्भश्च वीरकः । कैकेयो भद्रकस्तेषां नाम्ना जनपदाः शुभाः ॥ ९ ॥
तितिक्षुरुशीनरजस्तितिक्षोश्च रुपद्रथः । रुपद्रथादभूत्पैलः पैलाच्च सुतपाः सुतः ॥ १० ॥
महायोगी बलिस्तस्मादङ्गो वङ्गश्च सुख्यकः । पुण्ड्रः कलिङ्गो बालेयो बलिर्योगी बलान्वितः ॥
अङ्गादधिवाहनोऽभूत्[1] तस्माद्दिविरथो नृपः । दिविरथाद्धर्म्मरथस्तस्य चित्ररथः सुतः ॥ १२ ॥
चित्ररथात्सत्यरथो लोमपादश्च तत्सुतः । लोमपादाच्चतुरङ्गः पृथुलाक्षश्च तत्सुतः ॥ १३ ॥
पृथुलाक्षाच्च चम्पोऽभूच्चम्पाद्धर्य्यङ्गकोऽभवत् । हर्य्यङ्गाच्च भद्ररथो बृहत्कर्म्मा च तत्सुतः ॥ १४ ॥
तस्मादभूद्बृहद्भानुर्बृहद्भानोर्बृहदात्मवान् । तस्माज्जयद्रथो ह्यासीज्जयद्रथाद्बृहद्रथः ॥ १५ ॥
बृहद्रथाद्विश्वजिच्च कर्णो विश्वजितोऽभवत् ।
कर्णस्य वृषसेनस्तु पृथुसेनस्तदात्मजः । एतेऽङ्गवंशजा भूपाः पूरोर्वंशं निबोध मे ॥ १६ ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये राजवंशवर्णनं नाम सप्तसप्तत्यधिक-
द्विशततमोऽध्यायः ।

अष्टसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

पुरुवंशवर्णनम् ।

अग्निरुवाच

पुरोर्जनमेजयोऽभूत्प्राचीन्वन्तस्तु तत्सुतः । प्राचीन्वन्तान्मनस्युस्तु तस्माद्वीतमयो नृपः ॥ १ ॥
शुन्धुर्वीतमयाच्चाऽभूच्छुन्धोर्बहुविधः[2] सुतः । बहुविधाच्च संयातिरहोवादी च तत्सुतः ॥ २ ॥
तस्य पुत्रोऽथ भद्राश्वो भद्राश्वस्य दशात्मजाः । ऋचेयुश्च कृपेयुश्च सन्नतेयुस्तथात्मजः ॥ ३ ॥
घृतेयुश्च चितेयुश्च स्थण्डिलेयुश्च सत्तमः । धर्म्मेयुः सन्नतेयुश्च कृचेयुर्म्मतिनारकः ॥ ४ ॥
तंसुरोघः प्रतिरथः पुरस्तो मतिनारजाः । आसीत्पतिरथात्कण्वः कण्वान्मेधातिथिस्त्वभूत् ॥
तंसुरोघाच्च चत्वारो दुष्मन्तोऽथ प्रवीरकः । सुमन्तश्चानयो वीरो दुष्मन्ताद्भरतोऽभवत ॥ ६ ॥
शकुन्तलायान्तु वली यस्य नाम्ना तु भारताः । सुतेषु मातृकोपेन नष्टेषु भरतस्य च ॥ ७ ॥
ततो मरुद्भिरानीय पुत्रः स तु बृहस्पतेः । संक्रामितो भरद्वाजः क्रतुभिर्वितथोऽभवत् ॥ ८ ॥
स चापि वितथः पुत्रान् जनयामास पञ्च वै । सुहोत्रश्च सुहोतारङ्गयज्ञर्भन्तथैव च ॥ ९ ॥
कपिलश्च महात्मानं सुकेतुश्च सुतद्वयम् । कौशिकश्च गृत्सपतिं तथा गृत्सपतेः सुताः ॥ १० ॥

---

१. दधिवामनोभूदिति ख. छ. ञ. च ।
२. शम्भुर्वीतमयाच्चाभूच्छम्भोर्बहुविध इति ख. ञ. च ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः काशे दीर्घतमाः[1] सुताः ।
ततो धन्वन्तरिश्चासीत्तत्सुतोऽभूच्च केतुमान् ॥ ११ ॥

केतुमतो हेमरथो दिवोदास इतिश्रुतः । प्रतर्दनो दिवोदासाद्भर्गवत्सौ प्रतर्दनात् ॥१२॥
वत्सादनर्क्क आसीच्च अनर्कात् क्षेमकोऽभवत् । क्षेमकाद्वर्षकेतुश्च वर्षकेतोर्विभुः स्मृतः[2] ॥
विभोरानर्त्तः पुत्रोऽभूद्विभोश्च सुकुमारकः । सुकुमारात्सत्यकेतुर्वत्सभूमिस्तु वत्सकात् ॥

सुहोत्रस्य वृहत्पुत्रो वृहतस्तनयास्त्रयः ।
अजमीढो द्विमीढश्च पुरुमीढश्च वीर्य्यवान् ॥ १५ ॥

अजमीढस्य केशिन्यां जज्ञे जह्नुः प्रतापवान्[3] । जह्नोरभूदजकाश्वौ बलाकाश्वस्तदात्मजः ॥

वलाकाश्वस्य कुशिकः कुशिकात् गाधिरिन्द्रकः ।
गाधेः सत्यवती कन्या विश्वामित्रः सुतोत्तमः ॥ १७ ॥

देवरातः कतिमुखा विश्वामित्रस्य ते सुताः । शुनःशेफोऽष्टकश्चान्यो ह्यजमीढात् सुतोऽभवत् ॥

नीलिन्यां शान्तिरपरः पुरुजातिः सुशान्तितः ।
पुरुजातेस्तु वाह्याश्वो वाह्याश्वात् पञ्च पार्थिवाः ॥ १९ ॥

मुकुलः सृञ्जयश्चैव राजा वृहदिषुस्तथा । यवीनरश्च[4] क्रमिलः पाञ्चाला इति विश्रुताः॥२०॥
मुकुलस्य तु मौकुल्याः क्षेत्रोपेता द्विजातयः । चञ्चाश्वो मुकुलाज्जज्ञे चञ्चाश्वान्मिथुनं ह्यभूत् ॥
दिवोदासो ह्यहल्या च अहल्यायां शरद्वतात् । शतानन्दः शतानन्दात् सत्यधृन्मिथुनन्ततः ॥
कृपः कृपी दिवोदासान्मैत्रेयः सोमपस्ततः । सृञ्जयात् पञ्चधनुषः सोमदत्तश्च तत्सुतः ॥
सहदेवः सोमदत्तात् सहदेवात्तु सोमकः । आसीच्च सोमकाज्जन्तुर्ज्जन्तोश्च पृषतः सुतः ॥
पृषताद्द्रुपदस्तस्माद्धृष्टद्युम्नोऽथ तत्सुतः । धृष्टकेतुश्च धूमिन्यामृक्षोऽभूदजमीढतः ॥२५॥
ऋक्षात्सम्वरणो जज्ञे कुरुः सम्वरणात्ततः । यः प्रयागादपाक्रम्य कुरुक्षेत्रञ्चकार ह ॥२६॥
कुरोः सुधन्वा सुधनुः परिक्षिच्चारिमेजयः । सुधन्वनः सुहोत्रोऽभूत् सुहोत्राच्चयवनो ह्यभूत् ॥
वशिष्ठररिचाराभ्यां सप्तासन् गिरिकासुताः । वृहद्रथः कुशो वीरो यदुः प्रत्यग्रहो बलः ॥२८॥
मत्स्यकाली कुशाग्रोऽतो ह्यासीद्राज्ञो वृहद्रथात् । कुशाग्राद्वृषभो जज्ञे तस्य सत्यहितः सुतः ॥
सुधन्वा तत्सुतश्चोर्ज्ज ऊर्ज्जादासीच्च सम्भवः । सम्भवाच्च जरासन्धः सहदेवश्च तत्सुतः ॥
सहदेवादुदापिश्च उदापेः श्रुतकर्मकः । परिक्षितस्य दायादो धार्मिको जनमेजयः ॥३१॥
जनमेजयात्त्रसदस्युर्जह्नोस्तु सुरथः सुतः । श्रुतसेनोग्रसेनौ च भीमसेनश्च नामतः ॥३२॥
जनमेजयस्य पुत्रौ तु सुरथो महिमांस्तथा । सुरथाद्विदूरथोऽभूद्दच आसीद्विदूरथात् ॥३३॥
ऋक्षस्य तु द्वितीयस्य भीमसेनोऽभवत्सुतः । प्रतीपो भीमसेनात्तु प्रतीपस्य तु शान्तनुः ॥३४॥
देवापिर्व्वाह्लिकश्चैव सोमदत्तस्तु शान्तनोः । वाह्लिकात्सोमदत्तोऽभूद्भूरिर्भूरिश्रवाः शलः ॥

---

१. काश्यदीर्घतमा इति ज ।
२. सुत इति ख. छ. ज. च ।
३. प्रभाववानिति ख ।
४. यवीनचश्चेति ख. छ. ज. च ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

गङ्गायां शान्तनोर्भीष्मः काल्यायां विचित्रवीर्य्यकः । कृष्णद्वैपायनश्चैव क्षेत्रे वैचित्रवीर्य्यके ॥
धृतराष्ट्रञ्च पाण्डुञ्च विदुरञ्चाप्यजीजनत् । पाण्डोर्युधिष्ठिरः कुन्त्यां भीमश्चैवार्जुनस्त्रयः ॥
नकुलः सहदेवश्च पाण्डोर्म्माद्र्याञ्च दैवतः । अर्जुनस्य च सौभद्रः परिक्षिदभिमन्युतः ॥३८॥

द्रौपदी पाण्डवानाञ्च प्रिया तस्यां युधिष्ठिरात् ।

प्रतिविन्ध्यो भीमसेनाच्छ्रुतकीर्त्तिर्द्धनञ्जयात्[1] ॥ ३९ ॥

सहदेवाच्छ्रुतकर्म्मा शतानीकस्तु नाकुलिः ।

भीमसेनाद्धिडिम्बायामन्य आसीद् घटोत्कचः ॥ ४० ॥

एते भूता भविष्याश्च नृपाः संख्या न विद्यते । गताः कालेन कालो हि हरिस्तं पूजयेद्द्विज ॥
होममग्नौसमुद्दिश्य कुरु सर्व्वप्रदं यतः ॥ ४१ ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये पुरुवंशवर्णनं नाम अष्टसप्तत्यधिक-
द्विशततमोऽध्यायः ।

ऊनाशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

सिद्धौषधानि ।

अग्निरुवाच

आयुर्वेदं प्रवक्ष्यामि सुश्रुताय यमब्रवीत् । देवो धन्वन्तरिः सारं मृतसञ्जीवनीकरं ॥१॥

सुश्रुत उवाच

आयुर्वेदं मम ब्रूहि नराश्वेभरुगर्दनम् । सिद्धयोगान्सिद्धमन्त्रान्मृतसञ्जीवनीकरान् ॥२॥

धन्वन्तरिरुवाच

रक्षन् बलं हि ज्वरितं लङ्घितं भोजयेद्भिषक् । सविश्वं लाजमण्डन्तु तृड्ज्वरान्तं श्रृतं जलम् ॥
मुस्तपर्पटकोशीरचन्दनोदीच्यनागरैः । षड़हे च व्यतिक्रान्ते तिक्तकं पाययेद्ध्रुवम् ॥४॥
स्नेहयेत्त्यक्तदोषन्तु[2] ततस्तञ्च विरेचयेत् । जीर्णाः षष्टिकनीवाररक्तशालिप्रमोदकाः ॥५॥
तद्विधास्ते ज्वरेष्विष्टा यवानां विकृतिस्तथा । मुद्गा मसूराश्चणकाः कुलत्थाश्च सकुष्ठकाः ॥
आटक्यो नारकाद्याश्च कर्कोटककटोल्वकम् । पटोलं सफलं निम्वं पर्पटं दाडिमं ज्वरे ॥७॥
अधोगे वमनं शस्तमूद्ध्वंगे च विरेचनम् । रक्तपित्ते तथा पानं षडङ्गं शुण्ठिवर्ज्जितम् ॥८॥
शक्तुगोधूमलाजाश्च यवशालिमसूरकाः । सकुष्ठचणका मुद्गा भक्ष्या गोधूमका हिताः ॥९॥
साधिता घृतदुग्धाभ्यां क्षौद्रं वृषरसो मधु । अतीसारे पुराणानां शालीनां भक्षणं हितं ॥१०॥

---

१. अत्र पाठः पतितः धनञ्जयात् क उत्पन्न इति विशेषाप्राप्तेः । २. पक्वदोषन्त्विति ञ. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अनभिष्यन्दि यच्चान्नं लोध्रवल्कलसंयुतम् । मारुतं वर्ज्जयेद् यत्नः कार्य्यो गुल्मेषु सर्वथा ॥
वास्त्यं क्षीरेण चाश्नीयाद्वास्तूकं घृतसाधितं । गोधूमशालयस्तिक्ता हिता जठरिणामथ ॥१२॥
गोधूमशालयो मुद्गा ब्रह्मक्षखदिरोऽभया। पञ्चकोलञ्जाङ्गलाश्च निम्बधान्याः पटोलकाः ॥१३॥
मातुलङ्गरसाजातिशुष्कमूलकसैन्धवाः । कुष्ठिनाञ्च तथा शस्तं पानार्थे खदिरोदकं ॥१४॥
मसूरमुद्गौ पेयार्थे भोज्या जीर्णाश्च शालयः। निम्बपर्पटकैः शाकैर्ज्जाङ्गलानां तथा रसः ॥१५॥
विडङ्गं मरिचं मुस्तं कुष्ठं लोध्रं सुवर्च्चिका । मनःशिला च वालेयः कुष्ठघ्ना मूत्रपेषितः ॥१६॥
अपूपकुष्ठकुल्माषयवाद्या मेहिनां हिताः । यवान्नविकृतिर्मुद्गा कुलत्था जीर्णशालयः ॥१७॥
तिक्तरूक्षाणि शाकानि तिक्तानि हरितानि च । तैलानि तिलशिग्रुकविभीतकेङ्गुदानि च ॥१८॥
मुद्गाः सयवगोधूमा धान्यं वर्षस्थितञ्च यत् । जाङ्गलस्य रसः शस्तो भोजने राजयक्ष्मिणां ॥
कौलत्थमौद्गको रास्नाशुष्कमूलकजाङ्गलैः । पूपैर्वा विस्किरैः सिद्धैर्दधिदाड़िमसाधितैः ॥
मातुलङ्गरसक्षौद्रद्राक्षाव्योषादिसंस्कृतैः । यवगोधूमशाल्यन्नैर्भोजयेच्छ्वासकासिनं ॥२१॥
दशमूलवलारास्नाकुलत्थैरुपसाधिताः । पेयाः पूपरसाः काथाः श्वासहिक्कानिवारणाः ॥२२॥
शुष्कमूलककौलत्थमूलजाङ्गलजै रसैः । यवगोधूमशाल्यन्नं जीर्णं सोशीरमाचरेत् ॥२३॥
शोथवान् सगुड़ां पथ्यां खादेद्वा गुड़नागरम् । तक्रञ्च चित्रकञ्चोभौ ग्रहणीरोगनाशनौ ॥२४॥
पुराणयवगोधूमशालयो जाङ्गलो रसः । मुद्गामलकखर्जूरमृद्वीकाबदराणि च ॥२५॥
मधु सर्पिः पयः शक्रं निम्बपर्पटकौ वृषम् । तक्रारिष्टाश्च[1] शस्यन्ते सततं वातरोगिणाम् ॥२६॥

हृद्रोगिणो विरेच्यास्तु पिप्पल्यो हिक्किनां हिताः ।
तक्रावलालसिन्धूनि मुक्तानि शिशिराम्भसा ॥ २७ ॥

मुक्ताः सौवर्चलाजादि मद्यं शस्तं मदात्यये[2] । सक्षौद्रपयसा लाक्षां पिबेच्च क्षतवान्नरः॥२८॥
क्षयं मांसरसाहारो वह्निसंरक्षणाज्जयेत् । शालयो भोजने रक्ता नीवारकलमादयः ॥२९॥
यवान्नविकृतिर्म्मांसं शाकं सौवर्च्चलं शटी । पथ्या तथैवार्शसां यन्मण्डं तक्रञ्च वारिणा[3] ॥
मुस्ताभ्यासस्तथा लेपश्चित्रकेण हरिद्रया । यवान्नविकृतिः शालिर्व्वास्तूकं ससुवर्च्चलम् ॥
त्रपुपैर्वारुगोधूमाः क्षीरेक्षुघृतसंयुताः । मूत्रकृच्छ्रे च शस्ताः स्युः पाने मण्डसुरादयः ॥३२॥

लाजाः शक्तुस्तथा क्षौद्रं शूल्यं मांसं परूषकम् ।
वार्त्ताकुलावशिखिनश्छर्दिघ्नाः पानकानि च ॥ ३३ ॥

शाल्यन्नन्तोयपयसी केवलोष्णे शृतेऽपि वा । तृष्णाघ्ने मुस्तगुड़योर्गुटिका वा मुखे धृता ॥
यवान्नविकृतिः पूपं[4] शुष्कमूलकजन्तथा । शाकं पटोलवेत्राग्रमुरुस्तम्भविनाशनम् ॥३५॥
मुद्गाढ़कमसूराणां सतिलैर्जाङ्गलै रसैः । ससैन्धवघृतद्राक्षाशुण्ठ्यामलककोलजैः ॥३६॥
यूपैः पुराणगोधूमयवशाल्यन्नमभ्यसेत् । विसर्पी ससिताक्षौद्रमृद्वीकादाड़िमोदकम ॥३७॥

---

१. भद्राविष्टाश्चेति ख. ।
२. सदामये इति ञ. । दमात्यये इति ट. ।
३. पथ्या तथैव काञ्चस्य मण्डं तक्रञ्च वारुणमिति ख. ञ. च ।
४. यूषमिति ख. ञ. च ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सुवर्च्चला ॥३८॥
रक्तयष्टिकगोधूमयवमुद्गादिकं लघु । काकमारी च वेत्राग्रं वास्तुकञ्च सुवर्च्चला ॥३८॥
नाशारोगेषु च हितं घृतं दुर्व्वाप्रसाधितम् ॥३९॥
वातशोणितनाशाय तोयं शस्तं सितं मधु । नाशारोगेषु च हितं घृतं दुर्व्वाप्रसाधितम् ॥३९॥
भृङ्गराजरसे सिद्धं तैलं धात्रीरसेऽपि वा । नश्यं सर्व्वामयेष्विष्टं मूर्द्धजन्तूद्भवेषु च ॥४०॥
शीततोयान्नपानञ्च तिलानां विप्र भक्षणम् । द्विजदार्ढ्यकरं प्रोक्तं तथा तुष्टिकरम्परम् ॥
गण्डूषं तिलतैलेन द्विजदार्ढ्यकरं परं । विडङ्गचूर्णं गोमूत्रं सर्व्वत्र कृमिनाशने ॥४२॥
धात्रीफलान्यथाज्यञ्च शिरोलेपनमुत्तमम् । शिरोरोगविनाशाय स्निग्धमुष्णञ्च भोजनम् ॥
तैलं वा वस्तमूत्रञ्च कर्णपूरणमुत्तमम् । कर्णशूलविनाशाय सर्वशुक्तानि[1] वा द्विज ॥४४॥
गिरिसृच्चन्दनं लाक्षा मालती कलिका तथा । संयोज्या या कृता वर्त्तिः क्षतशुक्रहरी तु सा ॥
व्योपं त्रिफलया युक्तं तुच्छकञ्च तथा जलम् । सर्वाक्षिरोगशमनं तथा चैव रसाञ्जनम् ॥४६॥
आज्यभृष्टं शिलापिष्टं लोध्रकाञ्जिकसैन्धवैः । आश्च्योतनाविनाशाय सर्वनेत्रामये हितम् ॥
गिरिमृच्चन्दनैर्लेपो वहिर्नेत्रस्य शस्यते । नेत्रामयविघातार्थं त्रिफलां शीलयेत् सदा ॥४८॥
रात्रौ तु मधुसर्पिर्भ्यां दीर्घमायुर्जिजीविषुः । शतावरीरसे सिद्धौ वृष्यौ क्षीरघृतौ स्मृतौ ॥
कलम्बिकानि माषाश्च वृष्यौ क्षीरघृतौ तथा । आयुष्या त्रिफला ज्ञेया पूर्ववन्मधुकान्विता ॥
मधुकादिरसोपेता बलीपलितनाशिनी । वचासिद्धघृतं विप्रं भूतदोषविनाशनम् ॥५१॥
कण्ठ्यं बुद्धिप्रदञ्चैव[2] तथा सर्वार्थसाधनम् । वलाकल्ककषायेण सिद्धमभ्यञ्जने हितम् ॥५२॥
रास्नासहचरैर्वापि तैलं वातविकारिणाम् । अनभिष्यन्दि यच्चान्नं तद्व्रणेषु प्रशस्यते ॥५३॥
शक्तुपिण्डी तथैवाम्ला पाचनाय प्रशस्यते । पक्वस्य च तथा भेदे निम्बचूर्णञ्च रोपणे ॥५४॥
तथा शूच्युपचारश्च[3] बलिकर्म विशेषतः । सूतिका च तथा रक्षा प्राणिनान्तु सदा हिता ॥
भक्षणं निम्बपत्राणां सर्पदष्टस्य भेषजम् । तालनिम्बदलङ्केश्यं जीर्णन्तैलं यवा घृतम् ॥५६॥
धूपो वृश्चिकदष्टस्य शिखिपत्रघृतेन वा । अर्कक्षीरेण संपिष्टं लोपा वीजं पलाशजं ॥५७॥
वृश्चिकार्त्तस्य कृष्णा वा शिवा च फलसंयुता[4] । अर्कक्षीरं तिलं तैलं पललञ्च गुडं समम् ॥
पानाज्जयति दुर्वारं श्वविषं शीघ्रमेव तु । पीत्वा मूलं त्रिवृत्तुल्यं तण्डुलीयस्य सर्पिषा ॥५९॥
सर्पकीटविषाण्याशु जयत्यतिबलान्यपि । चन्दनं पद्मकङ्कुष्ठं लताम्बूशीरपाटलाः ॥६०॥
निर्गुण्डी शारिवा सेलुर्लूताविषहरो गदः । शिरोविरेचनं शस्तं गुडनागरकं द्विज ॥६१॥
स्नेहपाने तथा वस्तौ तैलं घृतमनुत्तमम् । स्वेदनीयः परो वह्निः शीताम्भःस्तम्भनं परम् ॥
त्रिवृद्धि रेचने श्रेष्ठा वमने मदनं तथा । वस्तिर्विरेको वमनं तैलं सर्पिस्तथा मधु ॥
वातपित्तबलाशानां क्रमेण परमौषधं ॥ ६३ ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये सिद्धौषधानि नामोनाशीत्यधिक-
द्विशततमोऽध्यायः ।

---

१. सर्व्वशुक्लानोति ख. । २. कण्ठ्यं वृद्धिप्रदञ्चैवेति ख ।
३. प्रत्युपचारैश्चेति ख । ४. कलसंयुतेति च ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

सर्वरोगहराण्यौषधानि ।

धन्वन्तरिरुवाच

शारीरमानसागन्तुसहजा व्याधयो मताः। शारीरा ज्वरकुष्ठाद्याः क्रोधाद्या मानसा मताः॥१॥
आगन्तवो विघातोत्थाः सहजाः क्षुज्जरादयः। शारीरागन्तुनाशाय सूर्य्यवारे घृतं गुडम्॥२॥
लवणं सहिरण्यञ्च विप्रायापूपमर्पयेत्। चन्द्रे चाभ्यङ्गदो विप्रे सर्वरोगैः प्रमुच्यते ॥३॥
तैलं शनैश्चरे दद्यादाश्विने गोरसान्नदः। घृतेन पयसा लिङ्गं संस्नाप्य स्यादुगुज्झितः ॥४॥

गायत्र्या हावयेद्वह्नौ दूर्वान्त्रिमधुराप्लुताम्।
यस्मिन् भे व्याधिमाप्नोति तस्मिन् स्नानं बलिः शुभे ॥ ५ ॥

मानसानां रुजादीनां विष्णोः स्तोत्रं हरं भवेत्। वातपित्तकफा दोषा धातवश्च तथा शृणु ॥
भुक्तं पक्वाशयादन्नं द्विधा याति च सुश्रुत। अंशेनैकेन किट्टत्वं रसताञ्चापरेण च ॥७॥
किट्टभागो मलस्तत्र विण्मूत्रस्वेददूषिकाः। नासामलङ्कर्णमलं तथा देहमलञ्च यत् ॥८॥
रसभागाद्रसस्तत्र समाच्छोणिततां व्रजेत्। मांसं रक्तात्ततो मेदो मेदसोऽस्थ्नश्च सम्भवः ॥
अस्थ्नो मज्जा ततः शुक्रं शुक्राद्रागस्तथौजसः। देशमार्त्तिं बलंशक्तिं कालं प्रकृतिमेव च ॥१०॥

ज्ञात्वा चिकित्सितं कुर्य्याद्भेषजस्य तथा बलम्।
तिथिं रिक्तान्त्यजेद् भौमं मन्दभन्दारुणोग्रकम् ॥ ११ ॥

हरिगोद्विजचन्द्रार्क्कसुरादीन् प्रतिपूज्य च। शृणु मन्त्रमिमं विद्वन् भेषजारम्भमाचरेत् ॥१२॥
ब्रह्मदक्षाश्विरुद्रेन्द्रभूचन्द्रार्क्कोऽनिलानलाः। ऋषयश्चौषधिग्रामा भूतसङ्घाश्च पान्तु ते ॥१३॥
रसायनमिवर्षीणां देवानाममृतं यथा। सुधेवोत्तमनागानां भैषज्यमिदमस्तु ते ॥१४॥
वातश्लेष्मातको देशो बहुवृक्षो बहूदकः। अनूपइतिविख्यातो जाङ्गलस्तद्विवर्जितः ॥१५॥
किञ्चिद्वृक्षोदको देशस्तथा साधारणः स्मृतः। जाङ्गलः पित्तबहुलो मध्यः साधारणः स्मृतः ॥
सूक्ष्मः शीतश्चलो वायुः पित्तमुष्णं कटुत्रयम्। स्थिराम्लस्निग्धमधुरं बलाशञ्च प्रचक्षते ॥१७॥
वृद्धिः समानैरेतेषां विपरीतैर्व्विपर्य्ययः। रसाः स्वाद्वम्ललवणाः श्लेष्मला वायुनाशनाः ॥१८॥
कटुतिक्तकषायाश्च वातलाः श्लेष्मनाशनाः। कट्वम्ललवणा ज्ञेयास्तथा पित्तविवर्द्धनाः॥१९॥
तिक्तस्वादुकषायाश्च तथा पित्तविनाशनाः। रसस्यैतद्गुणं नास्ति विपाकस्यैतदिष्यते ॥२०॥
वीर्य्योष्णाः कफवातघ्नाःशीताः पित्तविनाशनाः। प्रभावतस्तथा कर्म्म ते कुर्वन्ति च सुश्रुत ॥
शिशिरे च वसन्ते च निदाघे च तथा क्रमात्। चयप्रकोपप्रशमाः कफस्य तु प्रकीर्त्तिताः ॥२२॥
निदाघवर्षारात्रौ च तथा शरदि सुश्रुत। चयप्रकोपप्रशमाः पवनस्य प्रकीर्त्तिताः ॥२३॥
मेघकाले च शरदि हेमन्ते च यथाक्रमात्। चयप्रकोपप्रशमास्तथा पित्तस्य कीर्त्तिताः ॥२४॥
वर्षादयो विसर्गास्तु हेमन्ताद्यास्तथा त्रयः। शिशिराद्यास्तथादानं ग्रीष्मान्ता ऋतवस्त्रयः॥२५॥
सौम्यो विसर्गस्त्वादानमाग्नेयं परिकीर्त्तितम्। वर्षादींस्त्रीनृतून् सोमश्चरन् पर्य्यायशो रसान्॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जनयत्यम्ललवणमधुरांस्त्रीन् यथाक्रमम् । शिशिरादीनृतूनर्कश्चरन् पर्य्यायशो रसान् ॥२७॥
विवर्द्धयेत्तथा तिक्तकषायकटुकान् क्रमात् । यथा रजन्यो वर्द्धन्ते बलमेकं हि वर्द्धते ॥२८॥
क्रमशोऽथ मनुष्याणां हीयमानासु हीयते । रात्रिभुक्तदिनानाञ्च वयसश्च तथैव च ॥२९॥
आदिमध्यावसानेषु कफपित्तसमीरणाः । प्रकोपं यान्ति कोपादौ काले तेषाञ्चयः स्मृतः ॥
प्रकोपोत्तरके काले शमस्तेषां प्रकीर्त्तितः । अतिभोजनतो विप्र तथा चाभोजनेन च ॥३१॥
रोगा हि सर्वे जायन्ते वेगोदीरणधारणैः । अन्नेन कुक्षेर्द्वावंशावेकं पानेन पूरयेत् ॥३२॥
आश्रयं पवनादीनां तथैकमवशेषयेत् । व्याधेर्निदानस्य तथा विपरीतमथौषधम् ॥३३॥
कर्त्तव्यमेतदेवात्र मया सारं प्रकीर्त्तितम् । नाभेरुदूर्ध्वमधश्चैव गुदश्रोण्योस्तथैव च ॥३४॥
बलाशपित्तवातानां देहे स्थानं प्रकीर्त्तितं । तथापि सर्वगाश्चैते देहे वायुर्विशेषतः ॥३५॥
देहस्य मध्ये हृदयं स्थानं तन्मनसः स्मृतम् । कृशोऽल्पकेशश्चपलो बहुवाग्विषमानलः ॥
व्योमगश्च तथा स्वप्ने वातप्रकृतिरुच्यते । अकालपलितः क्रोधी प्रस्वेदी मधुरप्रियः ॥३७॥
स्वप्ने च दीप्तिमत्प्रेक्षी पित्तप्रकृतिरुच्यते । दृढाङ्गः स्थिरचित्तश्च सुप्रभः स्निग्धमूर्द्धजः ॥
शुद्धाम्बुदर्शी स्वप्ने च कफप्रकृतिको नरः । तामसा राजसाश्चैव सात्त्विकाश्च तथा स्मृताः॥
मनुष्या मुनिशार्दूल वातपित्तकफात्मकाः । रक्तपित्तं व्यवायाच्च गुरुकर्म्मप्रवर्त्तनैः ॥४०॥
कदन्नभोजनाद्वायुर्देहे शोकाच्च कुप्यति । विदाहिना तथोल्कानामुष्णान्नाध्वनिसेविनां[1] ॥
पित्तं प्रकोपमायाति भयेन च तथा द्विज । अत्यम्बुपानगुर्व्वन्नभोजिनां भुक्तशायिनाम् ॥
श्लेष्मा प्रकोपमायाति तथा ये चालसा जनाः। वाताद्युत्थानि रोगाणि ज्ञात्वा शाम्यानि लक्षणैः॥
अस्थिभङ्गः कषायत्वमास्ये शुष्कास्यता तथा । जृम्भणं लोमहर्षश्च वातिकव्याधिलक्षणम् ॥
नखनेत्रशिराणान्तु पीतत्वं कटुता मुखे । तृष्णा दाहोष्णता चैव पित्तव्याधिनिदर्शनम् ॥४५॥
आलस्यञ्च प्रसेकश्च गुरुता मधुरास्यता । उष्णाभिलाषिता चेति श्लैष्मिकव्याधिलक्षणम् ॥
स्निग्धोष्णमन्नमभ्यङ्गस्तैलपानादि वातनुत्। आज्यं क्षीरं सिताद्यं च चन्द्ररश्मयादि पित्तनुत् ॥
सक्षौद्रं त्रिफलातैलं व्यायामादि कफापहम् । सर्वरोगप्रशान्त्यै स्याद्विष्णोर्ध्यानञ्च पूजनम् ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये सर्वरोगहराण्यौषधानि नामाशीत्यधिक-
द्विशततमोऽध्यायः ।

एकाशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

✓ रसादिलक्षणम् ।

धन्वन्तरिरुवाच

रसादिलक्षणं वक्ष्ये भेषजानां गुणं शृणु । रसवीर्य्यविपाकज्ञो नृपादीन्रक्षयेन्नरः ॥१॥
रसाः स्वाद्वम्ललवणाः सोमजाः परिकीर्तिताः। कटुतिक्तकषायानि तथाग्नेया महाभुज ॥२॥

---

१. तथोल्कानामुष्मणामध्वसेविनामिति ख. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

त्रिधा विपाको द्रव्यस्य कट्वम्ललवणात्मकः । द्विधा वीर्य्य समुद्दिष्टमुष्णं शीतं तथैव च ॥
अनिर्देश्यप्रभावश्च ओषधीनां द्विजोत्तम । मधुरश्च कषायश्च तिक्तश्चैव तथा रसः ॥४॥
शीतवीर्य्याः समुद्दिष्टाः शेषास्तूष्णाः प्रकीर्त्तिताः। गुडूची तत्र तिक्तापि भवत्युष्णातिवीर्यतः॥
उष्णा कषायापि तथा पथ्या भवति मानद । मधुरोपि तथा मांस उष्ण एव प्रकीर्त्तितः ॥६॥
लवणो मधुरश्चैव विपाकमधुरौ स्मृतौ । अम्लोष्णश्च तथा प्रोक्तः शेषाः कटुविपाकिनः ॥
वीर्य्यपाके विपर्य्यस्ते प्रभावात्तत्र निश्चयः । मधुरोऽपि कटुः पाके यच्च 'क्षौद्रं'[1] प्रकीर्त्तितं ॥
क्वाथयेत् षोडशगुणं पिबेद्द्रव्याच्चतुर्गुणम् । कल्पनैषा कषायस्य यत्र नोक्तो विधिर्भवेत् ॥
कषायन्तु भवेत्तोयं स्नेहपाके चतुर्गुणं[2] । द्रव्यतुल्यं समुद्धृत्य द्रव्यं स्नेहं क्षिपेद्बुधः ॥
तावत्प्रमाणं द्रव्यस्य स्नेहपादं ततः क्षिपेत् । तोयवर्ज्जन्तु यद्द्रव्यं स्नेहद्रव्यं तथा भवेत् ॥
संवर्त्तितौषधः पाकः स्नेहानां परिकीर्त्तितः । तत्तुल्यता तु लेह्यस्य तथा भवति सुश्रुत[3]॥१२॥
स्वच्छमल्पौषधं क्वाथं कषायश्चोक्तवद्भवेत् । अक्षं चूर्णस्य निर्द्दिष्टं कषायस्य चतुष्पलं॥१३॥
मध्यमैषा स्मृता मात्रा नास्ति मात्राविकल्पना । वयः कालं बलं वह्निं देशं द्रव्यं रुजं तथा ॥
समवेक्ष्य महाभाग मात्रायाः कल्पना भवेत् । सौम्यास्तत्र रसाः प्रायो विज्ञेया धातुवर्द्धनाः॥
मधुरास्तु विशेषेण विज्ञेया धातुवर्द्धनाः । दोषाणाञ्चैव धातूनां द्रव्यं समगुणन्तु यत् ॥१६॥
तदेव वृद्धये ज्ञेयं विपरीतं क्षमावहम् । उपस्तम्भत्रयं प्रोक्तं देहेऽस्मिन्मनुजोत्तम ॥१७॥
आहारो मैथुनं निद्रा तेषु यत्नः सदा भवेत् । असेवनात् सेवनाच्च अत्यन्तं नाशमाप्नुयात् ॥
क्षयस्य बृंहणं कार्यं स्थूलदेहस्य कर्षणम् । रक्षणं मध्यकायस्य देहभेदास्त्रयो मताः ॥१९॥
उपक्रमद्वयं प्रोक्तं तर्पणं वाप्यतर्पणं । हिताशी च मिताशी च जीर्णाशी च तथा भवेत् ॥२०॥
ओषधीनां पञ्चविधा तथा भवति कल्पना । रसः कल्कः शृतः शीतः फाण्टश्च मनुजोत्तम ॥

रसश्च पीडको ज्ञेयः कल्क आलोड़िताद् भवेत् ।
क्वथितश्च शृतो ज्ञेयः शीतः पर्युषितो निशां ॥ २२॥

सद्योभिशृतपूतं यत् तत् फाण्टमभिधीयते । करणानां शतञ्चैव षष्टिश्चैवाधिका स्मृता ॥
यो वेत्ति स ह्यजेयः स्यात्सम्बन्धे बाहुशौण्डिकः। आहारशुद्धिरग्न्यर्थमग्निमूलं बलं नृणां ॥
ससिन्धुत्रिफलाब्धाद्यात्सुराज्ञि अभिवर्णदां । जाङ्गलञ्च रसं सिन्धुयुक्तं दधि पयः कणां ॥
रसाधिकं समं कुर्य्यान्नरो वाताधिकोऽपि वा । निदाघे मर्द्दनं प्रोक्तं शिशिरे च समं बहु ॥
वसन्ते मध्यमं ज्ञेयन्निदाघे मर्दनोल्वणं। त्वचन्तु प्रथमं मर्द्दयमङ्गञ्च तदनन्तरं ॥२७॥
स्नायुरुधिरदेहेषु अस्थि भातीव मांसलं। स्कन्धौ बाहू तथैवेह तथा जङ्घे सजानुनी ॥२८॥
अरविन्मर्द्दयेत् प्राज्ञो जत्रु वक्षश्च पूर्ववत् । अङ्गसन्धिषु सर्व्वेषु निष्पीड्य बहुलं तथा ॥२९॥
प्रसारयेदङ्गसन्धीन्न च क्षेपेण चाक्रमात् । नाजीर्णे तु श्रमं कुर्य्यान्न भुक्त्वा पीतवान्नरः ॥
दिनस्य तु चतुर्भाग ऊर्द्ध्वन्तु प्रहरार्द्धके। व्यायामं नैव कर्त्तव्यं स्नायाच्छीताम्बुना सकृत् ॥

---

१. यवक्षौद्रमिति ख. । २. स्नेहपाके च तद्गुणमिति ख. ।
३. तत्तुल्यताप्यस्य तथा यथा भवति सुश्रुत इति ख. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वार्य्युष्णञ्च श्रमं जह्याद्धृदा श्वासन्न धारयेत्।
व्यायामश्च कफं हन्याद्वातं हन्याच्च मर्द्दनम् ॥ ३२ ॥
स्नानं पित्ताधिकं हन्यात्तस्यान्ते चातपाः प्रियाः।
आतपक्लेशकर्मादौ चेमव्यायामिनो नराः ॥ ३३ ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये रसादिलक्षणं नामैकाशीत्यधिक-
द्विशततमोऽध्यायः।

द्व्यशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

वृक्षायुर्वेदः।

धन्वन्तरिरुवाच

वृक्षायुर्वेदमाख्यास्ये प्लक्षश्चोत्तरतः शुभः। प्राग्वटो याम्यतस्त्वाम्र आप्येऽश्वत्थः क्रमेण तु ॥
दक्षिणां दिशमुत्पन्नाः समीपे कण्टकद्रुमाः।
उद्यानं गृहवासे[१] स्यात् तिलान् वाप्यथ पुष्पितान् ॥ २ ॥
गृह्णीयाद्रोपयेद्वृक्षान् द्विजञ्चन्द्रं प्रपूज्य च। ध्रुवाणि पञ्च वायव्यं हस्तं प्राजेशवैष्णवं ॥
नक्षत्राणि तथा मूलं शस्यन्ते द्रुमरोपणे। प्रवेशयेन्नदीवाहान् पुष्करिण्यान्तु[२] कारयेत ॥४॥
हस्ता मघा तथा मैत्रमाद्यं पुष्यं सवासवं। जलाशयसमारम्भे वारुणञ्चोत्तरात्रयम् ॥५॥
संपूज्य वरुणं विष्णुं पर्ज्जन्यं तत् समाचरेत। अरिष्टाशोकपुन्नागशिरीषाः सप्रियङ्गवः ॥६॥
अशोकः कदली जम्बुस्तथा वकुलदाडिमाः। सायं प्रातस्तु घर्म्मर्त्तौ शीतकाले दिनान्तरे ॥७॥
वर्षारात्रौ भुवः शोषे सेक्तव्या रोपिता द्रुमाः। उत्तमं विंशतिर्हस्ता मध्यमं षोडशान्तरम् ॥८॥
स्थानात् स्थानान्तरं कार्य्यं वृक्षाणां द्वादशावरं।
विफलाः स्युर्घना वृक्षाः शस्त्रेणादौ हि शोधनम् ॥ ९ ॥
विडङ्गघृतपङ्काक्तान् सेचयेच्छीतवारिणा। फलनाशे कुलत्थैश्च माषैर्मुद्गैर्यवैस्तिलैः ॥१०॥
घृतशीतपयःसेकः फलपुष्पाय सर्वदा। आविकाजशकृच्चूर्णं यवचूर्णं तिलानि च ॥११॥
गोमांसमुदकञ्चैव सप्तरात्रं निधापयेत्। उत्सेकः सर्व्ववृक्षाणां फलपुष्पादिवृद्धिदः ॥१२॥
मत्स्याम्भसा तु सेकेन वृद्धिर्भवति शाखिनः। विडङ्गतण्डुलोपेतं मत्स्यं मांसं हि दोहदं।
सर्वेषामविशेषेण वृक्षाणां रोगमर्द्दनम् ॥ १३ ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये वृक्षायुर्वेदो नाम द्व्यशीत्यधिक-
द्विशततमोऽध्यायः।

---

१. गृहवासे इति ञ.।
२. पुष्करिण्यान्त्विति पाठो न सम्यक् प्रतिभाति।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अथशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

नानारोगहराण्यौषधानि ।

धन्वन्तरिरुवाच

सिंही शटी[1] निशायुग्मं वत्सकं क्वाथसेवनं । शिशोः सर्व्वातिसारेषु स्तन्यदोषेषु शस्यते ॥
शृङ्गीं सकृष्णातिविषां चूर्णितां मधुना लिहेत् । एका चातिविशा कासच्छर्द्दिज्वरहरी शिशोः॥

बालैः सेव्या वचा साज्या सदुग्धा ऽथ तैलयुक् ।
यष्टिकां शङ्खपुष्पीं वा बालः क्षीरान्वितां पिबेत् ॥ ३ ॥

वाग्रूपसम्पद्युक्तायुर्मेधाश्रीर्वर्द्धते शिशोः । वचाह्यग्निशिखावासाशुण्ठीकृष्णानिशागदं ॥४॥
सयष्टिसैन्धवं बालः प्रातर्मेधाकरं पिबेत् । देवदारुमहाशिग्रुफलत्रयपयोमुचां ॥५॥
क्वाथः सकृष्णा मृद्वीका कल्कः सर्वान् कृमीन्हरेत् । त्रिफलाभृङ्गविश्वानां रसेषु मधुसर्पिषोः॥
मेषीक्षीरे च गोमूत्रे सिक्तं रोगे हितं शिशोः। नासारक्तहरो नस्याद्दुर्व्वारस इहोत्तमः ॥७॥
लशुनार्द्रकशिग्रूणां रसः कर्णस्य पूरणम् । तैलमार्द्रकजातं वा शूलहा[2] चौष्ठरोगनुत्[3] ॥८॥
जातीपत्रं फलं व्योषं कवलं मूत्रकं निशा । दुग्धक्वाथेऽभयाकल्के सिद्धं तैलं द्विजार्त्तिनुत् ॥
धान्याम्बु नारिकेलं गोमूत्रं क्रमूकविश्वयुक् । क्वाथितं कवलं कार्य्यमधिजिह्वाधिशान्तये ॥
साधितं लाङ्गलीकल्के तैलं निर्गुण्डिकारसैः । गण्डमालागलगण्डौ नाशयेन्नस्यकर्मणा ॥११॥
पल्लवैरर्क्कपूतीकस्नुहीरुग्घातजातिकैः । उद्वर्त्तयेत् सगोमूत्रैः सर्वत्वग्दोषनाशनैः ॥१२॥
वाकुची सतिला भुक्ता वत्सरात कुष्ठनाशनी । पथ्या भल्लातकी तैलगुडपिण्डी तु कुष्ठजित ॥
पूतीकवह्निरजनी त्रिफलाव्योषचूर्णयुक् । तक्रं गुदाङ्कुरे पेयं भक्ष्या वा सगुडाऽभया ॥१४॥
फलदार्व्वीविषाणान्तु क्वाथो धात्रीरसोऽथवा । पातव्यो रजनीकल्कः क्षौद्राक्षौद्रप्रमेहिणा ॥

वासागर्भो व्याधिवातक्वाथ एरण्डतैलयुक् ।
वातशोणितहृत् पानात् पिप्पली स्यात् प्लीहाहरी ॥ १६ ॥

सेव्या जठरिणा कृष्णा स्नुक्क्षीरबहुभाविता । पयो वा रच्यदन्त्याग्निविडङ्गव्योषकल्कयुक् ॥
ग्रन्थिकोग्राभया कृष्णा विडङ्गाक्ता घृते स्थिता । मांसन्तक्रं ग्रहण्यर्शःपाण्डुगुल्मकृमीन हरेत् ॥
फलत्रयामृता वासा तिक्तभूनिम्बजस्तथा । क्वाथः समाक्षिको हन्यात् पाण्डुरोगं सकामलं ॥
रक्तपित्ती पिबेद्वासासुरसं ससितं मधु । वरीद्राक्षाबलाशुण्ठीसाधितं वा पयः पृथक् ॥२०॥
बरी विदारी पथ्या च बलात्रयं सवासकं । श्वदंष्ट्रामधुसर्पिर्भ्यामालिहेत् क्षयरोगवान् ॥२१॥
पथ्याशिग्रुकरञ्जार्कत्वक्सारं मधुसिन्धुमत् । समूत्रं विद्रधिं हन्ति परिपाकाय तन्त्रजित ॥
त्रिवृता जीवती दन्ती मञ्जिष्ठा शर्वरीद्वयं । तार्क्षजं निम्बपत्रञ्च लेपः शस्तो भगन्दरे ॥२३॥

---

१. सिंही यष्टीति ख. ।
२. शूलहा इत्यत्र पुंस्त्वनिर्देश आर्षः ।
३. मूत्रहा शोषरोगनुदिति ञ. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रुग्घातरजनीलाक्षाचूर्णाजक्षौद्रसंयुता । वासोवर्त्तिर्व्रणे योज्या शोधनी गतिनाशनी ॥२४॥
श्यामायष्टिनिशालोध्रपद्मकोत्पलचन्दनैः । समरीचैः शृतं तैलं क्षीरे स्याद् व्रणरोहणं ॥२५॥
श्रीकार्पासदलैर्भस्मफलोपलवणा निशा । तत्पिण्डीस्वेदनं ताम्रे सतैलं स्यात् क्षतौषधं ॥२६॥
कुम्भीसारं पयोयुक्तं वह्निदग्धं व्रणे लिपेत् । तदेव नाशयेत्सेकान्नारिकेलरजोघृतम् ॥२७॥
विश्वाजमोदसिन्धूत्थचिञ्चात्वग्भिः समाभया । तक्रेणोष्णाम्बुना वाथ पीतातीसारनाशनी ॥
वत्सकातिविषाविश्वबिल्वमुस्तशृतं जलं । सामे पुराणेऽतीसारे सासृक्शूले च पाययेत् ॥२९॥
अङ्गारदग्धं सुगतं सिन्धुमुष्णाम्बुना पिबेत् । शूलवानथ वा तद्धि सिन्धुहिंगुकणाभया ॥३०॥
कटुरोहोत्कणातङ्कलाजचूर्णं[1] मधुप्लुतं । वस्त्रच्छिद्रगतं वक्त्रे न्यस्तं तृष्णां विनाशयेत् ॥३१॥
पाठादार्व्वीजातिदलं द्राक्षामूलफलत्रयैः[2] । साधितं समधु क्वाथं कवलं मुखपापहृत् ॥३२॥
कृष्णातिविषतिक्तेन्द्रदारुपाठापयोमुचां । क्वाथो मूत्रे शृतः क्षौद्री सर्वकण्ठगदापहः ॥३३॥
पथ्यागोक्षुरदुस्पर्शराजवृक्षशिलाभिदां । कषायः समधुः पीतो मूत्रकृच्छ्रं व्यपोहति ॥३४॥
वंशत्वग्वरुणक्वाथः शर्क्कराश्मविघातनः । शाखोटक्वाथसक्षौद्रक्षीराशी श्लीपदी भवेत् ॥३५॥
मासार्कत्वक्पयस्तैलं मधुसिक्तञ्च सैन्धवं । पादरोगं हरेत्सर्पिर्जालकुक्कुटजं तथा ॥३६॥
शुण्ठीसौवर्चलाहिङ्गुचूर्णं शूण्ठीरसैर्घृतम । रुजं हरेदथ क्वाथो विह्वि वह्वाग्निसाधने ॥३७॥
सौवर्चलाग्निहिङ्गूनां सदीप्यानां रसैर्युतं । विड़दीप्यकयुक्तं वा तक्रं गुल्मातुरः पिबेत् ॥३८॥
धात्रीपटोलमुद्गानां क्वाथः साज्यो विसर्पहा । शुण्ठीदारुनवाक्षीरक्वाथो मूत्रान्वितोऽपरः ॥
सव्योपायोरजः क्षारः फलक्वाथश्च शोथहृत् । गुड़शिग्रुत्रिवृद्भिश्च सैन्धवानां रजोयुतः ॥
त्रिवृताफलकक्वाथः सगुड़ः स्याद्विरेचनः । वचाफलकषायोत्थं पयो वमनकृद्भवेत् ॥४१॥
त्रिफलायाः पलशतं पृथग्भृङ्गजभावितम । विड़ङ्गं लोहचूर्णञ्च दशभागसमन्वितम् ॥४२॥
शतावरीगुडुच्यग्निपलानां शतविंशतिः[3] । मध्वाज्यतिलजैर्लिह्याद् बलीपलितवर्जितः ॥४३॥
शतमब्दं हि जीवेत सर्वरोगविवर्जितः । त्रिफला सर्वरोगघ्नीस मधुः शर्क्करान्विता ॥४४॥
सितामधुघृतैर्युक्ता सकृष्णा त्रिफला तथा । पथ्याचित्रकशुण्ठ्यश्च गुडुचीमुषलीरजः ॥४५॥
सगुडं भक्षितं रोगहरं त्रिशतवर्षकृत् । किञ्चिच्चूर्णं जवापुष्पं पिण्डितं विमृजेज्जले ॥४६॥
तैलं भवेद् घृताकारं किञ्चिच्चूर्णं जलान्वितं । धूपार्थं दृश्यते चित्रं वृषदंशजरायुना ॥४७॥
पुनर्म्माक्षिकधूपेन दृश्यते तद्यथा पुरा । कर्पूरजलकाभेकतैलं[4] पाटलिमूलयुक् ॥४८॥
पिष्ट्वा लिप्य पदे द्वे च चरेदङ्गारके नरः । तृणोत्थानादिकं व्यूह्य दर्शयन्वै कुतूहलं ॥४९॥
विषग्रहरुजध्वंसक्षुद्रनर्म्म च कामिकं । तत्ते षट्कर्म्मकं प्रोक्तं सिद्धिद्वयसमाश्रयं ॥५०॥
मन्त्रध्यानौषधिकथामुद्रेज्या यत्र मुष्टयः । चतुर्व्वर्गफलं प्रोक्तं यः पठेत्स दिवं व्रजेत् ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये नानारोगहराण्यौषधानि नाम त्र्यशीत्यधिक-
द्विशततमोऽध्यायः ।

---

१. कटुरोहोत्पलातङ्कलाजचूर्णमिति ट. । २. द्राक्षामृतफलत्रयैरिति ञ. ट. च ।
३. पञ्चविंशतिरिति ञ. ट. च । ४. कर्पूरजडुकातैलमिति ख. । कर्पूरजानुकातैलमिति ज. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

चतुरशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

मन्त्ररूपौषधकथनम् ।

धन्वन्तरिरुवाच

आयुरारोग्यकर्त्तार ओंकाराद्याश्च नाकदाः । ओंकारः परमो मन्त्रस्तं जप्त्वा चामरो भवेत् ॥
गायत्री परमो मन्त्रस्तं जप्त्वा भुक्तिमुक्तिभाक् । ओं नमो नारायणाय मन्त्रः सर्वार्थसाधकः ॥
ओं नमो भगवते वासुदेवाय सर्वदः । ओं हूँ नमो विष्णवे मन्त्रोयञ्चौषधं परं ॥३॥
अनेन देवा ह्यसुराः सश्रियो निरुजोऽभवन् । भूतानामुपकारश्च तथा धर्मो महौषधम् ॥४॥
धर्म्मः सद्धर्म्मकृद्धर्मी एतैर्धर्म्मैश्च निर्म्मलः । श्रीदः श्रीशः श्रीनिवासः श्रीधरः श्रीनिकेतनः ॥
श्रियः पतिः श्रीपरम एतैः श्रियमवाप्नुयात् । कामी कामप्रदः कामः कामपालस्तथा हरिः ॥
आनन्दो माधवश्चैव नाम कामाय वै हरेः । रामः परशुरामश्च नृसिंहो विष्णुरेव च ॥७॥
त्रिविक्रमश्च नामानि जप्तव्यानि जिगीषुभिः । विद्यामभ्यस्यतां नित्यं जप्तव्यः पुरुषोत्तमः॥
दामोदरो बन्धहरः पुष्कराक्षोऽक्षिरोगनुत् । हृषीकेशो भयहरो जपेदौषधकर्म्मणि ॥६॥
अच्युतञ्चामृतं मन्त्रं सङ्ग्रामे चापराजितः । जलतारे नारसिंहं पूर्व्वादौ क्षेमकामवान् ॥१०॥
चक्रिणङ्गदिनञ्चैव शार्ङ्गिणं खड्गिनं स्मरेत् । नारायणं सर्वकाले नृसिंहोऽखिलभीतिनुत् ॥
गरुडध्वजश्च विषहृन् वासुदेवं सदा जपेत् । धान्यादिस्थापने स्वप्ने अनन्ताच्युतमीरयेत् ॥
नारायणश्च दुःस्वप्ने दाहादौ जलशायिनं । हयग्रीवश्च विद्यार्थी जगत्सूतिं सुताप्तये ॥
बलभद्रं शौरकार्य्ये[१] एकं नामार्थसाधकम्[२] ॥ १३ ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये मन्त्ररूपौषधकथनं नाम चतुरशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ।

पञ्चाशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

मृतसञ्जीवनीकरसिद्धयोगः ।

धन्वन्तरिरुवाच

सिद्धयोगान् पुनर्वक्ष्ये मृतसञ्जीवनीकरान् ।
आत्रेयभाषितान् दिव्यान् सर्वव्याधिविमर्दनान्[३] ॥ १ ॥

---

१. वीरकार्य्ये इति ख. ।
२. एकनामाय सार्थकमिति ख. ङ. च ।
३. सर्व्वव्याधिविनाशकानिति ख. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आत्रेय उवाच ।

बिल्वादिपञ्चमूलस्य काथः स्याद्वातिके ज्वरे । पावनं पिप्पलीमूलं गुडूची विश्वजोऽथ वा ॥
आमलक्यभया कृष्णा वह्निः सर्वज्वरान्तकः। बिल्वाग्निमन्थश्योनाककाशमर्य्यः पारला स्थिरा ।
त्रिकण्टकं पृश्निपर्णी बृहती कण्टकारिकाः । ज्वराग्निपाकपार्श्वार्त्तिकाशनुत कुशमूलकम् ॥४॥
गुडूची पर्पटी मुस्तं किरातं विश्वभेषजम् । वातपित्तज्वरे देयं पञ्चभद्रमिदं स्मृतम् ॥५॥
त्रिवृद्विशालकटुकात्रिफलारग्वधैः कृतः । संस्कारो भेदनक्वाथः पेयः सर्वज्वरापहः ॥६॥
देवदारुबलावासात्रिफलाव्योपपद्मकैः[१] । सविडङ्गैः सितातुल्यं तच्चूर्णं पञ्चकाशजित् ॥७॥
दशमूलीशटीरास्नापिप्पलीबिल्वपौष्करैः । शृङ्गीतामलकीभार्गीगुडूचीनागवल्लिभिः ॥८॥
यवाग्रं विधिना सिद्धं कषायं वा पिवेन्नरः । काशहृद्ग्रहणीपार्श्वहिकाश्वासप्रशान्तये ॥९॥
मधुकं मधुना युक्तं पिप्पलीं शर्करान्वितां । नागरं गुडसंयुक्तं हिकाघ्नं लावणत्रयम् ॥१०॥
कारव्यजाजीमरिचं द्राक्षा वृक्षाम्लदाडिमम् । सौवर्च्चलं गुडं क्षौद्रं सर्वारोचननाशनम् ॥११॥
शृङ्गवेररसञ्चैव मधुना सह पाययेत् । अरुचिश्वासकाशघ्नं प्रतिश्यायकफान्तकम् ॥१२॥
वटं शृङ्गी शिलालोध्रदाड़िमं मधुकं मधु । पिवेत् तण्डुलतोयेन च्छर्दितृष्णानिवारणम् ॥१३॥
गुडुची वासकं लोध्रं पिप्पलीक्षौद्रसंयुतम् । कफान्वितज्जयेद्रक्तं तृष्णाकासज्वरापहम् ॥१४॥
वासकस्य रसस्तद्वत् समधुस्ताम्रजो रसः । शिरीषपुष्पसुरसभावितं मरिचं हितं ॥१५॥
सर्व्वार्त्तिनुन्मसूरोऽथ पित्तसुक् तण्डुलीयकं। निर्गुण्डी शारिवा शेलुरङ्कोलश्च[२] विषापहः ॥
महौषधं मृतां क्षुद्रां पुष्करं[३] ग्रन्थिकोद्भवं[४] । पिवेत् कणायुतं क्वाथं मूर्च्छायाञ्च मदेषु च ॥
हिङ्गुसौवर्च्चलव्योपैर्द्विपलांशैर्घृताढकं । चतुर्गुणे गवां मूत्रे सिद्धमुन्मादनाशनं ॥१८॥
शङ्खपुष्पीवचाकुष्ठैः सिद्धं ब्राह्मीरसैर्युतं । पुराणं हन्त्यपस्मारं सोन्मादं मेध्यमुत्तमं ॥१९॥
पञ्चगव्यं घृतं तद्वत् कुष्ठनुच्चाभयायुतं । पटोलत्रिफलानिम्बगुडुचीधावणीवृषैः ॥२०॥
सकरञ्जैर्घृतं सिद्धं कुष्ठनुद्वज्रकं स्मृतं । निम्बं पटोलं व्याघ्री च गुडूची वासकं तथा ॥२१॥
कुर्य्याद्दशपलान् भागान् एकैकस्य सकुट्टितान् । जलद्रोणे विपक्तव्यं यावत्पादावशेषितं ॥
घृतप्रस्थम्पचेत्तेन त्रिफलागर्भसंयुतं[५] । पञ्चतिक्तमिति ख्यातं सर्पिः कुष्ठविनाशनं ॥२३॥

अशीतिं वातजान् रोगान् चत्वारिंशच्च पैत्तिकान् ।
विंशतिं श्लैष्मिकान् कासपीनसार्शोव्रणादिकान् ॥ २४ ॥

हन्त्यन्यान् योगराजोऽयं यथार्कस्तिमिरं खलु । त्रिफलायाः कषायेन भृङ्गराजरसेन च ॥
व्रणप्रक्षालनङ्कुर्यादुपदंशप्रशान्तये । पटोलदलचूर्णेन दाडिमत्वग्रजोऽथ वा ॥२६॥
गुण्डयेच्च गजेनापि[६] त्रिफलाचूर्णकेन च । त्रिफलायोरजोयष्टिमार्कवोत्पलमारिचैः ॥२७॥
ससैन्धवैः पचेत्तैलमभ्यङ्गाच्छर्दिकापहं । सक्षीरान् मार्कवरसान् द्विप्रस्थमधुकोत्पलैः ॥

---

१. देवदारुबलारास्नात्रिफलाव्योषपद्मकैरिति ख. । २. वङ्कोलश्चेति ख. ञ. च ।
३. पुष्पकमिति ञ. । ४. ग्रन्थिलोद्भवमिति ख. ।
५. त्रिफलाशर्करायुतमिति ख. ञ. न । ६. गुण्डयेन्नगजेनापीति ख. ञ. च ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पचेत्तु तैलकुडवं तन्नस्यं पलितापहं। निम्बम्पटोलं त्रिफला गुडूची खदिरं वृषं ॥२९॥
भूनिम्बपाठात्रिफलागुडूचीरक्तचन्दनं। योगद्वयं ज्वरं हन्ति कुष्ठविस्फोटकादिकं ॥३०॥
पटोलामृतभूनिम्बवासारिष्टकपर्पटैः। खदिरान्तयुतैः क्वाथो विस्फोटज्वरशान्तिकृत् ॥३१॥
दशमूली च्छिन्नरुहा पथ्या दारु पुनर्नवा। ज्वरविद्रधिशोथेषु शिग्रुविश्वजिता हिताः ॥३२॥
मधूकं निम्बपत्राणि लेपः स्याद् व्रणशोधनः। त्रिफला खदिरो दार्वी न्यग्रोधातिबलाकुशाः ॥
निम्बमूलकपत्राणां कषायाः शोधने हिताः। करञ्जारिष्टनिर्गुण्डीरसो हन्याद् व्रणक्रिमीन् ॥३४॥
धातकीचन्दनबलासमङ्गामधुकोत्पलैः। दार्वीमेदोन्वितैर्लेपः ससर्पिर्व्रणरोपणः ॥३५॥
गुग्गुलुत्रिफलाव्योपसमांशैर्घृतयोगतः। नाडी दुष्टव्रणं शूलम्भगन्दरमुखं हरेत् ॥३६॥
हरितकीं मूत्रसिद्धां सतैललवणान्वितां। प्रातः प्रातश्च सेवेत कफवातामयापहां[1] ॥३७॥
त्रिकटुत्रिफलाक्वाथं[2] सक्षारलवणं पिवेत। कफवातात्मकेष्वेव विरेकः कफवृद्धिनुत् ॥३८॥
पिप्पलीपिप्पलीमूलवचाचित्रकनागरैः। क्वथितं वा पिवेत्पेयमामवातविनाशनं ॥३९॥
रास्नां गुडुचीमेरण्डदेवदारुमहौषधं। पिवेत सर्वाङ्गिके वाते सामे सन्ध्यस्थिमज्जगे ॥४०॥
दशमूलकषायं वा पिवेद्वा नागराम्भसा। शुण्ठीगोक्षुरकक्वाथः प्रातः प्रातर्निषेवितः ॥४१॥
सामवातकटीशूलपाचनो रुक्प्रणाशनः। समूलपत्रशाखायाः प्रसारण्याश्च तैलकं ॥४२॥
गुडुच्याः सुरसः कल्कः चूर्णं वा क्वाथमेव च। प्रभूतकालमासेव्य मुच्यते वातशोणितात् ॥
पिप्पली वर्द्धमानं वा सेव्यं पथ्या गुडेन वा। पटोलत्रिफलातीव्रकटुकामृतसाधितं[3] ॥४४॥
पक्वं पीत्वा जयत्याशु सदाहं वातशोणितं। गुग्गुलं कोष्णशीते[4] तु गुडुची त्रिफलाम्भसा ॥
बलापुनर्नवैरण्डवृहतीद्वयगोक्षुरैः। सहिङ्गु लवणैः पीतं सद्यो वातरुजापहं ॥४६॥
कार्षिकं पिप्पलीमूलं पञ्चैव लवणानि च। पिप्पली चित्रकं शुण्ठी त्रिफला त्रिवृता वचा ॥
द्वौ क्षारौ शाद्वला दन्ती स्वर्णक्षीरी विषाणिका। कोलप्रमाणां गुटिकां पिवेत् सौवीरकायुतां ॥
शोथावपाके त्रिवृता प्रवृद्धे चोदरादिके। क्षीरं शोथहरं दारु वर्षाभूर्नागरैः शुभम् ॥४९॥
सेकस्तथार्कवर्षाभूनिम्बक्वाथेन शोथजित्। व्योषगर्भं पलाशस्य त्रिगुणे भस्मवारिणि ॥५०॥
साधितं पिवतः सर्पिः पतत्यर्शो न संशयः। विश्वक्सेनावनिर्गुण्डीसाधितं चापि लावणं ॥५१॥
विडङ्गानलसिन्धूत्थरास्नाप्रक्षारदारुभिः। तैलञ्चतुर्गुणं सिद्धं कटुद्रव्यं जलेन वा ॥५२॥
गण्डमालापहं तैलमभ्यङ्गात गलगण्डनुत्। शटीकुनागबलयक्वाथः क्षीररसे युतम् ॥५३॥
पयस्यापिप्पलीवासाकल्कं सिद्धं क्षये हितम्। वचाविड़भयाशुण्ठीहिङ्गुकुष्ठाग्निदीप्यकान् ॥५४॥
द्वित्रिषट्चतुरेकांशसप्तपञ्चाशिकाः क्रमात्। चूर्णं पीतं हन्ति गुल्मं उदरं शूलकासनुत ॥५५॥
पाठानिकुम्भत्रिकटुत्रिफलाग्निषु साधितम्। मूत्रेण चूर्णगुटिका गुल्मप्लीहादिमर्द्दनी ॥५६॥
वासानिम्बपटोलानि त्रिफला वातपित्तनुत्[5]। लिह्यात् क्षौद्रेण विड़ङ्गं चूर्णं कृमिविनाशनम् ॥

---

१. कफवातविनाशिनीमिति ञ.। २. त्रिकटुत्रिफलाकुष्ठमिति ञ.।
३. पटोलत्रिफलाभीरुकटुकामृतसाधितमिति ख. छ. ञ. च।
४. क्रोष्टुशीतेऽप्येति ख.। ५. त्रिफला चाम्लपित्तनुदिति ख. ञ. च।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विड़ङ्गसैन्धवक्षारमूत्रेनापि हरीतकी । शल्लकीवदरीजम्बुपियालाम्राजुंनत्वचः ॥५८॥
पीताः क्षीरेण मध्वक्ताः पृथक्शोणितवारणाः । विल्वाम्रधातकीपाठाशुण्ठीमोचरसाः समाः ॥
पीता रुन्धन्त्यतीसारं गुड़तक्रेण दुर्जयम् । चाङ्गेरीकोलदध्यम्बुनागरक्षारसंयुतम् ॥६०॥
घृतयुक्क्वाथितं पेयं गुदभ्रंसे रुजापहम् । विड़ङ्गातिविषामुस्तं दारुपाठाकलिङ्गकम् ॥६१॥
मरीचेन समायुक्तं शोथातीसारनाशनम् । शर्करासिन्धुशुण्ठीभिः कृष्णामधुगुड़ेन वा ॥६२॥
द्वे द्वे खादेद्धरीतक्यौ जीवेद्वर्षशतं सुखी । त्रिफला पिप्पलीयुक्ता समध्वाज्या तथैव सा ॥६३॥
चूर्णमामलकं तेन सुरसेन तु भावितम् । मध्वाज्यशर्करायुक्तं लिढ्वा स्त्रीशः पयः पिवेत् ॥६४॥
मासपिप्पलिशालीनां यवगोधूमयोस्तथा । चूर्णभागैः समांशैश्च पचेत पिप्पलिकां शुभां ॥६५॥
तां भक्षयित्वा च पिवेत् शर्करामधुरं पयः । नवश्चटकवज्जम्भेद् दशवारान् स्त्रियं ध्रुवम् ॥६६॥
समङ्गाधातकीपुष्पलोध्रनीलोत्पलानि च । एतत क्षीरेण दातव्यं स्त्रीणां प्रदरनाशनं ॥६७॥
वीजञ्चौरण्टकञ्चापि मधुकं श्वेतचन्दनं । पद्मोत्पलस्य मूलानि मधुकं शर्करातिलान् ॥६८॥
द्रवमाणेषु गर्भेषु गर्भस्थापनमुत्तमं । देवदारु नभः कुष्ठं[१] नलदं विश्वभेषजं ॥६९॥
लेपः काञ्जिकसम्पिष्टस्तैलयुक्तः शिरोर्त्तिनुत । वस्त्रपूतं क्षिपेत् कोष्णं सिन्धूत्थं कर्णशूलनुत् ॥
लशुनार्द्रकशिग्रूणां कदल्या वा रसः पृथक् । बलाशतावरीरास्नामृताः मैरीयकैः पिवेत् ॥७१॥
त्रिफलासहितं सर्पिस्तिमिरघ्नमनुत्तमं । त्रिफलाव्योषसिन्धूत्थैर्घृतं सिद्धं पिवेन्नरः ॥७२॥
चाक्षुष्यम्भेदनं हृद्यं[२] दीपनं कफरोगनुत् । नीलोत्पलस्य किञ्जल्कं गोशकृद्रससंयुतं ॥७३॥
गुटिकाञ्जनमेतत स्यात दिनरात्र्यन्धयोर्हितं । यष्टीमधुवचाकृष्णावीजानां कुटजस्य च ॥
कल्केनालोड्य निम्बस्य कषायो वमनाय सः । स्निग्धस्विन्नयवन्तोयं प्रदातव्यं विरेचनम् ॥
अन्यथा योजितं कुर्य्यात् मन्दाग्निं गौरवारुचिं । पथ्यासैन्धवकृष्णानां[३] चूर्णमुष्णाम्बुना पिवेत् ॥
विरेकः सर्व्वरोगघ्नः श्रेष्ठो नाराचसंज्ञकः । सिद्धयोगा मुनिभ्यो ये आत्रेयेण प्रदर्शिताः ॥
सर्वरोगहराः सर्वयोगाग्रयाः सुश्रुतेन हि ॥ ७७ ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये मृतसञ्जीवनीकरसिद्धयोगो नाम पञ्चाशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ।

षडशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

कल्पसागरः ।

धन्वन्तरिरुवाच

कल्पान्मृत्युञ्जयान्वक्ष्ये ह्यायुर्दात्रोगमर्दनान् । त्रिशती रोगहा सेव्या मध्वाज्यत्रिफलामृता ॥
पलं पलार्द्धं कर्षं वा त्रिफलां सकलां तथा । विल्वतैलस्य नस्यञ्च मासं पञ्चशती कवि ॥२॥

---

१. कृष्णमिति ख. ।
२. कुष्ठमिति ञ. ।
३. पथ्यासैन्धवकुष्ठानामिति ख. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रोगापमृत्युबलिजित् तिलं[1] भल्लातकं तथा । पञ्चाङ्गं वाकुचीचूर्णं षण्मासं खदिरोदकैः ॥३॥
क्वाथैः कुष्ठञ्जयेत् सेव्यं चूर्णं नीलकुरुण्टजम् । क्षीरेण मधुना वापि शतायुः खण्डदुग्धभुक् ॥
मध्वाज्यशुण्ठीं संसेव्य पलं प्रातः स मृत्युजित् । बलीपलितजिज्जीवेन्माण्डूकीचूर्णदुग्धपाः ॥५॥
उच्चटामधुना कर्षं पयःपा मृत्युजिन्नरः । मध्वाज्यैः पयसा वापि निर्गुण्डी रोगमृत्युजित् ॥
पलाशतैलं कर्षैकं षण्मासं मधुना पिबेत् । दुग्धभोजी पञ्चशती सहस्रायुर्भवेन्नरः ॥७॥
ज्योतिष्मतीपत्ररसं पयसा त्रिफलां पिबेत् । मधुनाज्यन्ततस्तद्वत् शतावर्य्या रजः पलं ॥८॥
क्षौद्राज्यैः पयसा वापि निर्गुण्डी रोगमृत्युजित् । पञ्चाङ्गं निम्बचूर्णस्य खदिरक्वाथभावितं ॥
कर्षं भृङ्गरसेनापि रोगजिच्चामरो[2] भवेत् । रुदन्तिकाज्यमधुभुक् दुग्धभोजी च मृत्युजित् ॥
कर्षचूर्णं हरीतक्या भावितं भृङ्गराड्रसैः । घृतेन मधुना सेव्य त्रिशतायुश्च रोगजित् ॥११॥
वाराहिका भृङ्गरसं लोहचूर्णं शतावरी । साज्यं कर्षं[3] पञ्चशती कार्त्तचूर्णं शतावरी ॥१२॥
भावितं भृङ्गराजेन मध्वाज्यन्त्रिशती भवेत् । ताम्रं मृतं[4] मृततुल्यं[5] गन्धकञ्च कुमारिका ॥

रसैर्विमृज्य द्वे गुञ्जे साज्यं पञ्चशताब्दवान् ।
अश्वगन्धा पलं तैलं साज्यं खण्डं शताब्दवान् ॥ १४ ॥

पलम्पुनर्न्नवाचूर्णं मध्वाज्यपयसा पिबन् । अशोकचूर्णस्य पलं मध्वाज्यं पयसार्त्तिनुत् ॥
तिलस्य तैलं समधु नस्यात् कृष्णकचः शती । कर्षमक्षं समध्वाज्यं शतायुः पयसा पिबन् ॥
अभयं सगुडञ्जग्ध्वा घृतेन मधुरादिभिः । दुग्धान्नभुक् कृष्णकेशोऽरोगी पञ्चशताब्दवान् ॥
पलङ्कुष्माण्डिकाचूर्णं मध्वाज्यपयसा पिबन् । मासं दुग्धान्नभोजी च सहस्रायुर्विरोगवान् ॥
शाल्मकचूर्णं भृङ्गाज्यं समध्वाज्यं शताब्दकृत् । कटुतुम्बीतैलनस्यं कर्षं शतद्वयाब्दवान् ॥१९॥
त्रिफला पिप्पली शुण्ठी सेविता त्रिशताब्दकृत् । शतावर्य्याः पूर्वयोगः सहस्रायुर्बलातिकृत् ॥
चित्रकेन तथा पूर्वस्तथा शुण्ठीविडङ्गतः । लोहेन भृङ्गराजेन बलया निम्बपञ्चकैः ॥२१॥
खदिरेण च निर्गुण्ड्या कण्टकार्य्याथ वासकात् । वर्षाभुवा तद्रसैर्वा भावितो वटिकाकृतः ॥
चूर्णङ्घृतैर्वा मधुना गुडाद्यैर्व्वारिणा तथा । ॐ ह्रूं स इति मन्त्रेण मन्त्रितो योगराजकः ॥
मृतसञ्जीवनीकल्पो रोगमृत्युञ्जयो भवेत् । सुरासुरैश्च मुनिभिः सेविताः कल्पसागराः ॥

गजायुर्वेदं प्रोवाच पालकाप्योऽङ्गराजकं ॥ २४ ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये कल्पसागरो नाम षडशीत्यधिक-
द्विशततमोऽध्यायः ।

---

१. तैलमिति ञ. ।
२. रोगनुच्चामरो भवेदिति ञ. ।
३. साज्यं सर्व्वमिति ख. ।
४. ताम्रामृतमिति ख. ।
५. सुरतुल्यमिति ज. ट. च ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सप्ताशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

गजचिकित्सा ।

पालकाप्य उवाच[1]

गजलक्ष्म चिकित्साञ्च लोमपाद वदामि ते। दीर्घहस्ता महोच्छ्वासाः प्रशस्तास्ते सहिष्णवः ॥
विंशत्यष्टादशनखाः शीतकालमदाश्च ये। दक्षिणञ्चोन्नतन्दन्तं बृंहितं जलदोपमं ॥२॥
कर्णौ च विपुलौ येषां सूक्ष्मविन्द्वन्वितत्वचौ ।
ते धार्य्या न तथा धार्य्या वामना ये च सङ्कुशाः[2] ॥ ३ ॥
हस्तिन्यः पार्श्वगर्भिण्यो ये च मूढा मतङ्गजाः । वर्णं सत्वं बलं रूपं कान्तिः संहननञ्जवः ॥
सप्तस्थितो गजश्चेदृक् सङ्ग्रामेरीञ्जयेतस च । कुञ्जराः परमा शोभा शिविरस्य बलस्य च ॥५॥
आयत्तं कुञ्जरैश्चैव विजयं पृथिवीक्षितां । पाकलेषु च सर्वेषु कर्त्तव्यमनुवासनं ॥६॥
घृततैलपरीपाकं स्थानं वातविवर्जितं । स्कन्धेषु च क्रिया कार्य्या तथा पालकवन्नृपाः ॥७॥
गोमूत्रं पाण्डुरोगेषु रजनीभ्यां घृतन्द्विज । आनाहे तैलसिक्तस्य निषेकस्तस्य शस्यते ॥८॥
लवणैः पञ्चभिर्म्मिश्रा प्रतिपानाय वारुणी। विडङ्गत्रिफलाव्योषसैन्धवैः कवलान् कृतान् ॥९॥
मूर्च्छासु भोजयेन्नागं क्षौद्रन्तोयञ्च पाययेत् । अभ्यङ्गः शिरसः शूले नस्यञ्चैव प्रशस्यते ॥
नागानां स्नेहपुटकः पादरोगानुपक्रमेत् । पश्चात् कल्ककषायेण शोधनञ्च विधीयते ॥११॥
शिखितित्तिरिलावानां पिप्पलीमरिचान्वितैः । रसैः सम्भोजयेन्नागं वेपथुर्यस्य जायते ॥१२॥
बालबिल्वं तथा लोध्रं धातकी सितया सह। अतीसारविनाशाय पिण्डीं भुञ्जीत कुञ्जरः ॥१३॥
नस्यं करग्रहे देयं घृतं लवणसंयुतम् । मागधीनागराजाजीयवागूर्मुस्तसाधिता ॥१४॥
उत्कर्णके तु दातव्या वाराहञ्च तथा रसम् । दशमूलकुलत्थाम्लकाकमाचीविपाचितम् ॥१५॥
तैलमूषणसंयुक्तं गलग्रहगदापहम् । अष्टभिर्लवणैः पिष्टैः प्रसन्नाः पाययेद्घृतम ॥१६॥
मूत्रभङ्गेऽथ वा वीजं कथितं त्रपुषस्य च । त्वग्दोषेषु पिबेन्निम्बं वृषं वा कथितं द्विपः ॥१७॥
गवां मूत्रं विडङ्गानि कृमिकोष्ठेषु शस्यते । शृङ्गवेरकणाद्राक्षाशार्कराभिः शृतं पयः ॥१८॥
क्षतक्षयकरं पानं तथा मांसरसः शुभः । मुद्गोदनं व्योषयुतमरुचौ तु प्रशस्यते ॥१९॥
त्रिवृद्व्योषाग्निदन्त्यर्कश्यामाक्षीरेभपिप्पली । एतैर्गुल्महरः स्नेहः कृतश्चैव तथापरः ॥२०॥
भेदनद्रावणाभ्यङ्गस्नेहपानानुवासनैः । सर्वानेव समुत्पन्नान् विद्वान समुपाहरेत् ॥२१॥
यष्टिकं मुद्गसूपेन[3] शारदेन तथा पिबेत् । बालबिल्वैस्तथा लेपः कद्रुरोगेषु शस्यते ॥२२॥
विडङ्गेन्द्रयवौ हिङ्गु सरलं रजनीद्वयम् । पूर्वाह्णे पाययेत् पिण्डान् सर्वशूलोपशान्तये ॥२३॥
प्रधानभोजने तेषां यष्टिकव्रीहिशालयः । मध्यमौ यवगोधूमौ शेषा दन्तिनि चाधमाः ॥२४॥
यवश्चैव तथैवेक्षुर्नागानां बलवर्द्धनः । नागानां यवसं शुष्कं तथा धातुप्रकोपणं ॥२५॥

---

१. धन्वन्तरिरुवाचेति ञ. । २. मर्द्दना इति ञ. ।
३. मुद्गयूषेणेति ज. ञ. च ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मदक्षीणस्य नागस्य पयःपानं प्रशस्यते। दीपनीयैस्तथा द्रव्यैः शृतो मांसरसः शुभः ॥२६॥
वायसः कुक्कुरश्चोभौ काकोलूककुलो हरिः। भवेत् क्षौद्रेण संयुक्तः पिण्डो युद्धे महापदि[1] ॥
कटुमत्स्यविडङ्गानि क्षारः कोषातकी पयः। हरिद्रा चेति धूपोयं कुञ्जरस्य जयावहः ॥२८॥
पिप्पलीतण्डुलास्तैलं माध्वीकं माक्षिकम् तथा। नेत्रयोः परिषेकोयं दीपनीयः प्रशस्यते ॥
पुरीषञ्चटकायाश्च तथा पारावतस्य च। क्षीरवृक्षकरीषाश्च[2] प्रसन्नायेष्टमञ्जनं ॥३०॥
अनेनाञ्जितनेत्रस्तु करोति कदनं रणे। उत्पलानि च नीलानि मुस्तन्तगरमेव च ॥३१॥
तण्डुलोदकपिष्टानि नेत्रनिर्वापनं परम्। नखवृद्धौ नखच्छेदस्तैलसेकश्च मास्यपि ॥३२॥
शय्यास्थानं भवेच्चास्य करीषैः पांशुभिस्तथा। शरन्निदाघयोः सेकः सर्पिषा च तथेष्यते ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये गजचिकित्सा नाम सप्ताशीत्यधिक-
द्विशततमोऽध्यायः।

अष्टाशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

अश्ववाहनसारः।

धन्वन्तरिरुवाच

अश्ववाहनसारञ्च वक्ष्ये चाश्वचिकित्सनम्। वाजिनां संग्रहः कार्यो धर्म्मकर्मार्थसिद्धये ॥
अश्विनी श्रवणं हस्तं उत्तरात्रितयन्तथा। नक्षत्राणि प्रशस्तानि हयानामादिवाहने ॥२॥
हेमन्तः शिशिरश्चैव वसन्तश्चाश्ववाहने। ग्रीष्मे शरदि वर्षासु निषिद्धं वाहनं हये ॥३॥
तीव्रैर्न्न च परैर्दण्डैरदेशे न च ताडयेत्। कीलास्थिसंकुले चैव विषमे कण्टकान्विते ॥४॥
वालुकापङ्कसंच्छन्ने गर्त्तागर्त्तप्रदूषिते। अचित्तज्ञो विनोपायैर्वाहनं कुरुते तु यः ॥५॥
स वाह्यते हयेनैव पृष्ठस्थः कटिकां विना[3]। छन्दं विज्ञापयेत् कोपि सुकृती धीमतां वरः ॥
अभ्यासादभियोगाच्च विनाशास्त्रं स्ववाहकः।
स्नातस्य प्राङ्मुखस्याथ देवान् वपुषि योजयेत् ॥ ७ ॥
प्रणवादिनमोन्तेन स्वबीजेन यथाक्रमम्। ब्रह्मा चित्ते वले विष्णुर्वैनतेयः पराक्रमे ॥८॥
पार्श्वे रुद्रा गुरुर्बुद्धौ विश्वेदेवाश्च मर्मसु। दृगावर्त्ते दृशीन्द्वर्कौ कर्णयोरश्विनौ तथा ॥९॥
जठरेऽग्निः स्वधा स्वेदे वाग्जिह्वायां जवेऽनिलः। पृष्ठतो नाकपृष्ठस्तु खुराग्रे सर्वपर्वताः ॥
ताराश्च रोमकूपेषु हृदि चान्द्रमसी कला। तेजस्यग्नीरतिः श्रोण्यां ललाटे च जगत्पतिः ॥
ग्रहाश्च हेषिते चैव तथैवोरसि वासुकिः। उपोषितोऽर्च्चयेत् सादी हयं दक्षश्रुतौ जपेत् ॥
हय गन्धर्वराजस्त्वं शृणुष्व वचनं मम। गन्धर्वकुलजातस्त्वं माभूस्त्वं कुलदूषकः ॥१३॥

---

१. मदाय हीति ग.। २. क्षीरवृक्षकरीराश्चेति ञ.।
३. कणिकां विनेति ज. ञ. च।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

द्विजानां सत्यवाक्येन सोमस्य गरुडस्य च । रुद्रस्य वरुणस्यैव पवनस्य बलेन च ॥१४॥
हुताशनस्य दीप्त्या च स्मर जातिं तुरङ्गम । स्मर राजेन्द्रपुत्रस्त्वं सत्यवाक्यमनुस्मर ॥१५॥
स्मर त्वं वारुणीं कन्यां स्मर त्वं कौस्तुभं मणिं । क्षीरोदसागरे चैव मथ्यमाने सुरासुरैः ॥
तत्र देवकुले जातः स्ववाक्यं परिपालय । कुले जातस्त्वमश्वानां मित्रं मे भव शाश्वतम् ॥१७॥
शृणु मित्र त्वमेतच्च सिद्धो मे भव वाहन । विजयं रक्ष माञ्चैव समरे सिद्धिमावह ॥१८॥
तव पृष्ठं समारुह्य हता दैत्याः सुरैः पुरा । अधुना त्वां समारुह्य जेष्यामि रिपुवाहिनीं ॥
कर्णजापन्ततः कृत्वा विमुह्य च तथाप्यरीन्[१] । पर्य्यानयेद्धयं सादी वाहयेद् युद्धतो जयः ॥
सञ्जाताः स्वशरीरेण[२] दोषाः प्रायेण वाजिनां । हन्यन्तेऽतिप्रयत्नेन गुणाः सादिवरैः पुनः ॥
सहजा इव दृश्यन्ते गुणाः सादिवतोद्भवाः । नाशयन्ति गुणानन्ये सादिनः सहजानपि ॥
गुणानेको विजानाति वेत्ति दोषांस्तथाऽपरः । धन्यो धीमान् हयं वेत्ति नोभयं वेत्ति मन्दधीः ॥
अकर्म्मज्ञोऽनुपायज्ञो वेगासक्तोऽतिकोपनः । घनदण्डरतिच्छिद्रे यः समोपि न शस्यते ॥
उपायज्ञोऽथ चित्तज्ञो विशुद्धो दोषनाशनः । गुणार्ज्जनपरो नित्यं सर्व्वकर्म्मविशारदः ॥
प्रग्रहेण गृहीत्वाऽथ प्रविष्टो वाहभूतलम् । सव्यापसव्यभेदेन वाहनीयः स्वसादिना ॥२६॥
आरुह्य सहसा नैव ताड़नीयो हयोत्तमः । ताड़नाद् भयमाप्नोति भयान्मोहश्च जायते ॥२७॥
प्रातः सादी प्लुतेनैव वल्गामुद्धृत्य चालयेत् । मन्दं मन्दं विना नालं धृतवल्गो दिनान्तरे ॥
प्रोक्तमाश्वसनं सामभेदोऽश्वेन नियोज्यते । कषादिताड़नं दण्डो दानं कालसहिष्णुता॥२९॥
पूर्व्वपूर्व्वविशुद्धौ तु विदध्यादुत्तरोत्तरम् । जिह्वातले विनायोगं विदध्याद्वाहने हये ॥३०॥
गुणेतरशतां वल्गां सृक्कण्या सह गाहयेत् । विस्मार्य्य वाहनं कुर्य्याच्छिथिलानां शनैः शनैः ॥
हयं जिह्वाङ्गमाहीने जिह्वाग्रन्थिं विमोचयेत् । गाटतां मोचयेत्तावद्यावत् स्तोभं न मुञ्चति ॥
कुर्य्याच्छ्रुतमुरस्त्राणमविलालञ्च मुञ्चति। ऊर्द्ध्वाननः स्वभावाद्यस्तस्योरस्त्राणमश्लथम् ॥३३॥
विधाय वाहयेद्दुष्ट्या लीलया सादिसत्तमः । तस्य सव्येन पूर्वेण संयुक्तं सव्यवल्गया ॥
यः कुर्य्यात्पश्चिमं पादं गृहीतस्तेन दक्षिणः । क्रमेणानेन यो सेवां कुरुते वामवल्गया ॥३५॥
पादौ तेनापि पादः स्याद्गृहीतो वाम एव हि। अग्रे चेच्चरणे त्यक्ते जायते सुदृढासनं॥३६॥
यौ हतौ दुष्करे चैव मोटके नाटकायनं । सव्यहीनं खलीकारो हनने गुणने तथा ॥३७॥
स्वभावं हि तुरङ्गस्य मुखव्यावर्त्तनं पुनः । न चैवेत्थं तुरङ्गाणां पादग्रहणहेतवः ॥३८॥
विश्वस्तं हयमालोक्य गाढ़मापीड्य चासनं। रोकयित्वा मुखे पादं ग्राह्यतो लोकनं हितं॥३९॥
गाढ़मापीड्य रागाभ्यां वल्गामाकृष्य गृह्यते। तद्बन्धनाद् युग्मपादं[३] तद्वद्वक्रनमुच्यते ॥४०॥

संयोज्य वल्गया पादान् वल्गामामोच्य वाञ्छितम् ।
वाह्यपार्ष्णिप्रयोगात्तु[४] यत्र तत्ताड़नं मतम ॥ ४१ ॥

प्रलयाविप्लवे ज्ञात्वा क्रमेणानेन बुद्धिमान् । मोटनेन चतुर्थेन विधिरेष विधीयते ॥४२॥

---

१. तथासुरानिति ज. ञ. ट. च ।
२. सह जाताः शरीरेणेति ञ. ।
३. भठकाबाद्यनुत्पादमिति ज. ।
४. बाह्यपार्श्वे प्रयोगात्त्विति ख. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नाधत्तेऽधश्च यः पादं योऽश्वो लघुनि मण्डले। मोटनोद्वक्रनाभ्यान्तु ग्राहयेत् पादमीशितं ॥
वटयित्वासने[1] गाटं मन्दमादाय यो व्रजेत् । ग्राह्यते संग्रहाद्यत्र तत्संग्रहणमुच्यते ॥४४॥
हत्वा पार्श्वे प्रहारेण स्थानस्थो व्यग्रमानसम् । वल्गामाकृष्य पादेन ग्राह्यकण्टकपायनम्[2] ॥
उत्थितो योऽङ्घ्रिणानेन पार्ष्णिपादात्तुरङ्गमः। गृह्यते यत् खलीकृत्य खलीकारः स चेष्यते ॥
गतित्रयेपि यः पादमादत्ते नैव वाञ्छितः । हत्वा तु यत्र दण्डेन ग्राह्यते गहनं हि तत् ॥४७॥
खलीकृत्य चतुष्केण तुरङ्गो वल्गयान्यया। उच्छ्वास्य ग्राह्यतेऽन्यत्र तत्स्यादुच्छ्वासनं पुनः॥
स्वभावं वहिरस्यन्तं तस्यां दिशि पदायनं । नियोज्य ग्राहयेत्तत्तु मुखव्यावर्त्तनं मतम् ॥
ग्राहयित्वा ततः पादं त्रिविधासु यथाक्रमम् । साधयेत् पञ्चधारासु क्रमशो मण्डलादिषु ॥
आजनोर्द्धाननं वाहं शिथिलं वाहयेत् सुधीः । अङ्गेषु लाघवं यावत्तावत्तं वाहयेद्धयं ॥५१॥
मृदुः स्कन्धे लघुर्वक्त्रे शिथिलः सर्वसन्धिषु । यदा स सादिनो वश्यः सङ्गृह्णीयात्तदा हयं ॥
न त्यजेत पश्चिमं पादं यदा साधुर्भवेत्तदा । तदाकृष्टिर्विधातव्या पाणिभ्यामिह वल्गया ॥
तत्र त्रिको यथा तिष्ठेदुद्ग्रीवोश्वः समाननः । धरायां पश्चिमौ पादौ अन्तरीक्षे यदाश्रयौ ॥
तदा सन्धारणं कुर्य्याद्गाठवाहञ्च मुष्टिना । सहसैवं समाकृष्टो यस्तुरङ्गो न तिष्ठति ॥

शरीरं विक्षिपन्तञ्च साधयेन्मण्डलभ्रमैः ।
क्षिपेत् स्कन्धञ्च यो वाहं स च स्थाप्यो हि वल्गया ॥ ५६ ॥

गोमयं लवणं मूत्रं कथितं मृत्समन्वितम् । अङ्गलेपो मक्षिकादिदंशश्रमविनाशनः ॥५७॥
मध्ये भद्रादिजातीनां मण्डो देयो हि सादिना । दर्शनं भोततीक्ष्णस्य निरुत्साहः क्षुधा हयः ॥

यथा वश्यस्तथा शिक्षा विनश्यन्त्यतिवाहिताः ।
अवाहिता न सिध्यन्ति तुङ्गवक्त्रांश्च वाहयेत् ॥ ५९ ॥

सम्पीड्य जानुयुग्मेन स्थिरमुष्टिस्तुरङ्गमं । गोमूत्राकुटिला वेणी पद्ममण्डलमालिका ॥६०॥

पञ्चोलूखलिका कार्य्या गर्वितास्तेऽतिकीर्त्तिताः[3] ।
संक्षिप्तञ्चैव विक्षिप्तं कुञ्चितञ्च यथाचितम्[4] ॥ ६१ ॥

वलिगतावलिगतौ चैव षोढा चेत्थमुदाहृतम् । वीथीधनुःशतं यावदशीतिर्न्नवतिस्तथा ॥६२॥

भद्रः सुसाध्यो वाजी स्यान्मन्दो दण्डैकमानसः ।
मृगजङ्घो[5] मृगो वाजी सङ्कीर्णस्तत्समन्वयात् ॥ ६३ ॥
शर्क्करामधुलाजादः सुगन्धोऽश्वः शुचिर्द्विजः ।
तेजस्वी क्षत्रियश्चाश्वो विनीतो बुद्धिमांश्च यः ॥ ६४ ॥
शूद्रोऽशुचिश्चलो मन्दो विरूपो विमतिः खलः ।
वल्गया धार्य्यमाणोऽश्वो लालकं यश्च दर्शयेत् ॥ ६५ ॥

---

१. वण्टयित्वासने इति ख. ।
२. ग्राहकण्टकपायनमिति ख. ।
३. गर्जितास्तेऽतिकीर्त्तिता इति ख. ।
४. यथाञ्चितमिति ञ. ।
५. मृगजङ्घ इति ख. ञ. च ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

धारासु योजनीयोऽसौ प्रग्रहग्रहमोक्षणैः । अश्वादिलक्षणं वक्ष्ये शालिहोत्रो यथावदत् ॥६६॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये अश्ववाहनसारो नामाष्टाशीत्यधिक-
द्विशततमोऽध्यायः ।

ऊननवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

अश्वचिकित्सा ।

शालिहोत्र उवाच

अश्वानां लक्षणं वक्ष्ये चिकित्साञ्चैव[१] सुश्रुत ।
हीनदन्तो विदन्तश्च कराली कृष्णतालुकः ॥ १ ॥

कृष्णजिह्वश्च यमजो जातमुष्कश्च यस्तथा । द्विशफश्च तथा शृङ्गी त्रिवर्णो व्याघ्रवर्णकः ॥२॥
खरवर्णो भस्मवर्णो जातवर्णश्च काकुदी । श्वित्री च काकसादी च खरसारस्तथैव च ॥३॥
वानराक्षः कृष्णशटः कृष्णगुह्यस्तथैव च । कृष्णप्रोथश्च शूकश्च यश्च तित्तिरिसन्निभः ॥४॥
विषमः श्वेतपादश्च ध्रुवावर्त्तविवर्जितः । अशुभावर्त्तसंयुक्तो वर्जनीयस्तुरङ्गमः ॥५॥
रन्ध्रोपरन्ध्रयोर्द्वौ द्वौ द्वौ मस्तकवक्षसोः । प्रयाणे च ललाटे च कण्ठावर्त्ताः शुभा दश ॥
सृक्कण्याश्च ललाटे च कर्णमूले निगालके । बाहुमूले गले श्रेष्ठा आवर्त्तास्त्वशुभाः परे ॥७॥
शुकेन्द्रगोपचन्द्राभा ये च वायससन्निभाः । सुवर्णवर्णाः स्निग्धाश्च प्रशस्यास्तु सदैव हि ॥
दीर्घग्रीवाक्षिकूटाश्च ह्रस्वकर्णाश्च शोभनाः । राज्ञान्तुरङ्गमा यत्र[२] विजयं वर्जयेत्ततः ॥९॥

पालितस्तु हयो दन्तो शुभदो दुःखदोऽन्यथा ।
श्रियः पुत्रास्तु गन्धर्व्वा वाजिनो रत्नमुत्तमम् ॥ १० ॥

अश्वमेधे तु तुरगः पवित्रत्वात्तु हूयते । वृषो निम्बबृहत्यौ च गुडूची च समाक्षिका ॥११॥
सिंहा गन्धकरी पिण्डी स्वेदश्च शिरसस्तथा । हिङ्गु पुष्करमूलञ्च नागरं साम्लवेतसं ॥१२॥
पिप्पलीसैन्धवयुतं शूलघ्नं चोष्णवारिणा । नागरातिविषा मुस्ता सानन्ता विल्वमालिका ॥
क्वाथमेषां पिबेद्वाजी सर्व्वातीसारनाशनम् । प्रियङ्गुसारिवाभ्याञ्च युक्तमाजं शृतं[३] पयः ॥
पर्य्याप्तशर्करं पीत्वा श्रमाद्वाजी विमुच्यते । द्रोणिकायान्तु दातव्या तैलवस्तिस्तुरङ्गमे ॥१४॥

कोष्ठजा च शिरा वेध्या तेन तस्य सुखं भवेत् ।
दाड़िमं त्रिफला व्योषं गुड़ञ्च समभागिकम् ॥ १६ ॥

पिण्डमेतत् प्रदातव्यमश्वानां काशनाशनम् । प्रियङ्गुलोध्रमधुभिः पिबेद्वृषरसं हयः ॥१७॥
क्षीरं वा पञ्चकोलाद्यं काशनाद्धि प्रमुच्यते । प्रस्कन्धेषु च सर्व्वेषु श्रेय आदौ विशोधनम् ॥

---

१. चिकित्सान्तवेति ञ. । २. राज्ञीतुरङ्गमा यत्रेति ख. ।
३. धृतमिति ख. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अभ्यङ्गोद्वर्त्तनैः स्नेहं नस्यवर्त्तिक्रमः स्मृतः । ज्वरितानां तुरङ्गाणां पयसैव क्रियाक्रमः ॥
लोध्रकन्धरयोर्मूलं मातुलाङ्गाग्निनागराः । कुष्ठहिङ्गुवचारास्नालेपोयं शोथनाशनः ॥२०॥
मञ्जिष्ठा मधुकं द्राक्षावृहत्यौ रक्तचन्दनम् । त्रपुषीबीजमूलानि शृङ्गाटककशेरुकम् ॥२१॥
अजापयः शृतमिदं सुशीतं शर्करान्वितं । पीत्वा नीरशनो वाजी रक्तमेहात् प्रमुच्यते ॥२२॥
मन्याहनुनिगालस्थशिराशोथो गलग्रहः । अभ्यङ्गः कटुतैलेन[१] तत्र तेष्वेव शस्यते ॥२३॥
गलग्रहगदी शोथः प्रायशो गलदेशके । प्रत्यक्पुष्पी तथा वह्निः सैन्धवं सौरसो रसः ॥२४॥

कृष्णाहिङ्गुयुतैरेभिः कृत्वा नस्यं न सीदति ।
निशे ज्योतिष्मती पाठा कृष्णा कुष्ठं वचा मधु ॥ २५ ॥

जिह्वास्तम्भे च लेपोऽयं गुड़मूत्रयुतो हितः । तिलैर्यष्ट्या रजन्या च निम्बपत्रैश्च योजिता ॥
क्षौद्रेण शोधनी पिण्डी सर्पिषा व्रणरोपणी । अभिघातेन खञ्जन्ति ये ह्यश्वास्तीव्रवेदनाः ॥
परिषेकक्रिया तेषां तैलेनाशु रुजापहा । दोषकोपाभिघाताभ्यां पक्वभिन्ने व्रणक्रमः ॥२८॥

अश्वत्थोडुम्बरप्लक्षमधूकवटकल्कनैः ॥ २९ ॥

प्रभूतसलिलः क्वाथः सुखोष्णो व्रणशोधनः । शताह्वा नागरं रास्ना मञ्जिष्ठाकुष्ठसैन्धवैः ॥
देवदारुवचायुग्मरजनीरक्तचन्दनैः । तैलसिद्धं कषायेण गुडूच्याः पयसा सह ॥३१॥
म्रक्षणे वस्तिनश्ये च योज्यं सर्वत्र लिङ्गिने । रक्तस्रावो जलौकाभिर्नेत्रान्ते नेत्ररोगिणः ॥
खादिरोडुम्बराश्वत्थकषायेण च साधनम् । धात्रीदुरालभातिक्ताप्रियङ्गुकुङ्कुमैः समैः ॥३३॥
गुडूच्या च कृतः कल्को हितो युक्तावलम्बिने । उत्पाते च शिले श्राव्ये शुष्कशेफे तथैव च ॥
क्षिप्रकारिणि दोषे च सद्यो विदलमिष्यते[२] । गोशकृन्मञ्जिकाकुष्ठरजनीतिलसर्षपैः ॥३५॥
गवां मूत्रेण पिष्टैश्च मर्दनं कण्डुनाशनम् । शीतो मधुयुतः क्वाथो नाशिकायां सशर्करः ॥
रक्तपित्तहरः पानादश्वकर्णैस्तथैव च । सप्तमे सप्तमे देयमश्वानां लवणं दिने ॥३७॥
तथा भुक्तवतान्देया अतिपाने तु वारुणी । जीवनीयैः समधुरैर्मृद्वीकाशर्करायुतैः ॥३८॥
सपिप्पलीकैः शरदि प्रतिपानं सपद्मकैः । विडङ्गापिप्पलीधान्यशताह्वालोध्रसैन्धवैः ॥३९॥
सचित्रकैस्तुरङ्गाणां प्रतिपानं हिमागमे । लोध्रप्रियङ्गुकामुस्तापिप्पलीविश्वभेषजैः ॥४०॥
सक्षौद्रैः प्रतिपानं स्याद्वसन्ते कफनाशनम् । प्रियङ्गुपिप्पलीलोध्रयष्ट्याक्षैः समह्नौषधैः ॥
निदाघे सगुड़ा देया मदिरा प्रतिपानके । लोध्रकाष्ठं सलवणं पिप्पल्यो विश्वभेषजम् ॥४२॥
भवेत्तैलयुतैरेभिः प्रतिपानं घनागमे । निदाघोद्धृतपित्तार्त्ताः शरत्सु पुष्टशोणिताः ॥४३॥
प्रावृड्भिन्नपुरीषाश्च पिवेयुर्वाजिनो घृतम् । पिवेयुर्वाजिनस्तैलं कफवाय्वधिकास्तु ये ॥४४॥
स्नेहव्यापद्भवो येषां कार्य्यं तेषां विरूक्षणम् । त्र्यहं यवागू रूक्षा स्याद् भोजनं तक्रसंयुतम् ॥
शरन्निदाघयोः सर्पिस्तैलं शीतवसन्तयोः । वर्षासु शिशिरे चैव वस्तौ यमकमिष्यते ॥४६॥
गुर्वभिष्यन्दिभक्तानि व्यायामं स्नानमातपम् । वायुवर्जञ्च वाहस्य स्नेहपीतस्य वर्जितम् ॥
स्नानं पानं शकृत्कूष्ठमश्वानां सलिलागमे । अत्यर्थं दुर्दिने काले पानमेकं प्रशस्यते ॥४८॥

१. तिलतैलेनेति ख. ।
२. वेधनमिष्यत इति ज. ञ. च ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

युक्तशीतातपे काले द्विःपानं स्नपनं सकृत्। ग्रीष्मे त्रिस्नानपानं स्याच्चिरं तस्यावगाहनम् ॥
निस्तुषाणां प्रदातव्या यवानां चतुराढकी। चणकव्रीहिमौद्गानि कलायं वापि दापयेत् ॥५०॥
अहोरात्रेण चार्द्धस्य यवसस्य तुला दश। अष्टौ शुष्कस्य दातव्याश्चतस्त्रोऽथ वुषस्य वा ॥
दूर्वा पित्तं यवः कासं वुषश्च श्लेष्मसञ्चयम्। नाशयत्यर्जुनः श्वासं तथा मानो बलक्षयम् ॥
वातिकाः पैत्तिकाश्चैव श्लेष्मजाः सान्निपातिकाः। न रोगाः पीडयिष्यन्ति दूर्वाहारन्तुरङ्गमम् ॥
द्वौ रज्जुबन्धौ दुष्टानां पक्षयोरुभयोरपि। पश्चाद्बन्धश्च कर्त्तव्यो दूरकीलव्यपाश्रयः ॥५४॥
वासेयुस्त्वास्तृते स्थाने कृतधूपनभूमयः। यत्नोपन्यस्तयवसाः सप्रदीपाः सुरक्षिता ॥
कृकवाकजकपयो धार्य्याश्चाश्वगृहे मृगाः ॥ ५५ ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये अश्वायुर्वेदो नामोननवत्यधिक-
द्विशततमोऽध्यायः ।

नवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

अश्वशान्तिः ।

शालिहोत्र उवाच

अश्वशान्तिं प्रवक्ष्यामि वाजिरोगविमर्द्दनीं। नित्यां नैमित्तिकीं काम्यां त्रिविधां शृणु सुश्रुत ॥
शुभे दिने श्रीधरञ्च श्रियमुच्चैःश्रवाश्च तं। हयराजं समभ्यर्च्य सावित्रैर्जुहुयाद्घृतं ॥२॥
द्विजेभ्यो दक्षिणान्दद्यादश्ववृद्धिस्तथा भवेत्। अश्वयुक् शुक्लपक्षस्य पञ्चदश्याञ्च शान्तिकं ॥
पद्मैः कुर्य्याद्विशेषेण नासत्यौ वरुणं यजेत्। समुल्लिख्य ततो देवीं शाखाभिः परिवारयेत् ॥
घटान्सर्व्वरसैः पूर्णान् दिक्षु दद्यात्सवस्त्रकान्।
यवाज्यं जुहुयात् प्राच्यं यजेदश्वांश्च साश्विनान् ॥ ५ ॥
विप्रेभ्यो दक्षिणान्दद्यान्नैमित्तिकमतः शृणु। मकरादौ हयानाञ्च पद्मै र्विष्णुं श्रियं यजेत् ॥
ब्रह्माणं शङ्करं सोममादित्यञ्च तथाश्विनौ। रेवन्तमुच्चैःश्रवसन्दिक्पालांश्च दलेष्वपि ॥७॥
प्रत्येकं पूर्णकुम्भैश्च वेद्यान्तत्सौम्यतः स्थले। तिलाक्षताज्यसिद्धार्थान् देवतानां शतं शतं ॥
उपोषितेन कर्त्तव्यं कर्म्म चाश्वरुजापहं ॥ ८ ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये अश्वशान्तिर्नाम नवत्यधिक-
द्विशततमोऽध्यायः ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

एकनवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

गजशान्तिः ।

शालिहोत्र उवाच

गजशान्तिं प्रवक्ष्यामि गजरोगविमर्द्दनीम् । विष्णुं श्रियञ्च पञ्चम्यां नागमैरावतं यजेत् ॥१॥
ब्रह्माणं शङ्करं विष्णुं शक्रं वैश्रवणं यमं । चन्द्रार्कौ वरुणं वायुमग्निं पृथ्वीं तथा च खं ॥२॥
शेषं शैलान् कुञ्जरांश्च ये तेऽष्टौ देवयोनयः । विरूपाक्षं महापद्मं भद्रं सुमनसन्तथा ॥३॥
कुमुदैरावणः पद्मः पुष्पदन्तोऽथ वामनः । सुप्रतीकोऽञ्जनो नागा अष्टौ होमोऽथ दक्षिणां ॥
गजाः शान्त्युदकासिक्ता वृद्धौ नैमित्तिकं शृणु । गजानाम्मकरादौ च ऐशान्यां नगराद्बहिः ॥

स्थण्डिले कमले मध्ये विष्णुं लक्ष्मीञ्च केशरे ।
ब्रह्माणं भास्करं पृथ्वीं यजेत् स्कन्दं ह्यनन्तकं ॥ ६ ॥

खं शिवं सोममिन्द्रादींस्तदस्त्राणि दले क्रमात् । वज्रं शक्तिञ्च दण्डञ्च तोमरं पाशकं गदां ॥

शूलं पद्मम्बहिर्वृन्ते चक्रे सूर्य्यन्तथाश्विनौ ।
वसूनष्टौ तथा साध्यान् याम्येऽथ नैर्ऋते दले ॥ ८ ॥

देवानाङ्गिरसश्चाश्विभृगवो मरुतोऽनिले[1]। विश्वेदेवांस्तथा दक्षे रुद्रा रौद्रेऽथ मण्डले ॥९॥

ततो वृत्तया रेखया तु देवान् वै वाह्यतो यजेत् ।
सूत्रकारानृषीन् वाणीं पूर्व्वादौ सरितो गिरीन् ॥ १० ॥

महाभूतानि कोणेषु ऐशान्यादिषु संयजेत् । पद्मं चक्रं गदां शङ्खं चतुरश्रन्तु मण्डलं ॥११॥

चतुर्द्वारं ततः कुम्भाः[2] अग्न्यादौ च पताकिकाः[3] ।
चत्वारस्तोरणा द्वारि नागानैरावतादिकान् ॥ १२ ॥

पूर्व्वादौ चौषधीभिश्च देवानां भाजनं पृथक् । पृथक्शताहुतीश्चाज्यैर्गजानर्च्य प्रदक्षिणं ॥

नागं वह्निं देवतादीन् वाह्यैर्जग्मुः स्वकं गृहम् ।
द्विजेभ्यो दक्षिणां दद्यात् हयवैद्यादिकस्तथा ॥ १४ ॥
करिणीन्तु समारुह्य वदेत् कर्णन्तु कालवित् ।
नागराजेऽमृते शान्तिं कृत्वाऽमुस्मिन्[4] जपेन्मनुम् ॥ १५ ॥

श्रीगजस्त्वं कृतो राज्ञा भवानस्य गजाग्रणीः । प्रभुर्माल्याग्रभक्तैस्त्वां पूजयिष्यति पार्थिवः ॥
लोकस्तदाज्ञया पूजां करिष्यति तदा तव । पालनीयस्त्वया राजा युद्धेऽध्वनि तथा गृहे ॥१७॥
तिर्य्यग्भावं समुत्सृज्य दिव्यं भावमनुस्मर । देवासुरे पुरा युद्धे श्रीगजस्त्रिदशैः कृतः ॥१८॥
ऐरावणसुतः श्रीमानरिष्टो नाम वारणः । श्रीगजानान्तु तत् तेजः सर्व्वमेवोपतिष्ठते ॥१९॥
तत्तेजस्तव नागेन्द्र दिव्यभावसमन्वितं । उपतिष्ठतु भद्रन्ते रक्ष राजानमाहवे ॥२०॥

---

१. मरुतोऽनल इति ज. ।
२. चतुःकुम्भा इति ञ ।
३. पताकिन इति ज. ।
४. कृत्वान्यस्मिन्निति ख. ज. ञ. च ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इत्येवमभिषिक्तैनमारोहेत शुभे नृपः। तस्यानुगमनं कुर्युः सशस्त्रनवसद्गजाः ॥२१॥

शालास्वसौ स्थण्डिलेऽब्जे दिक्पालादीन् यजेद्बहिः।
केशरेषु बलं नागं भुवञ्चैव सरस्वतीं ॥ २२ ॥

मध्येषु डिण्डिमं प्राच्र्य्य गन्धमाल्यानुलेपनैः। हुत्वा देयस्तु कलसो रसपूर्णो द्विजाय च ॥
गजाध्यक्षं हस्तिपञ्च गणितज्ञञ्च पूजयेत्। गजाध्यक्षाय तन्दद्यात डिण्डिमं सोपि वादयेत्।
शुभगम्भीरशब्दैः स्याज्जघनस्थोऽभिवादयेत् ॥ २४ ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये गजशान्तिर्नामैकनवत्यधिक-
द्विशततमोऽध्यायः।

द्विनवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

शान्त्यायुर्वेदः।

धन्वन्तरिरुवाच

गोविप्रपालनं कार्य्यं राज्ञा गोशान्तिमावदे।
गावः पवित्रा माङ्गल्या गोषु लोकाः प्रतिष्ठिताः ॥ १ ॥

शकृन्मूत्रं परं तासामलक्ष्मीनाशनं परं। गवां कण्डूयनं वारि श्रृङ्गस्याघौघमर्दनम् ॥२॥
गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिश्च रोचना। षडङ्गं परमं पाने दुःस्वप्नाद्यादिवारणं ॥३॥
रोचना विषरक्षोघ्नी ग्रासदः स्वर्गगो गवां। यद्गृहे दुःखिता गावः स याति नरकन्नरः ॥
परगोग्रासदः स्वर्गी गोहितो ब्रह्मलोकभाक्। गोदानातकीर्त्तनाद्रक्षां कृत्वा चोद्धरते कुलम् ॥

गवां श्वासात् पवित्रा भूः स्पर्शनात्किल्विषक्षयः।
गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम् ॥ ६ ॥

एकरात्रोपवासश्च श्वपाकमपि शोधयेत्। सर्व्वाशुभविनाशाय पुराचरितमीश्वरैः ॥७॥
प्रत्येकञ्च त्र्यहाभ्यस्तं महासान्तपनं स्मृतं। सर्वकामप्रदञ्चैतत सर्व्वाशुभविमर्दनम् ॥८॥

कृच्छ्रातिकृच्छ्रं पयसा दिवसानेकविंशतिं।
निर्म्मलाः सर्व्वकामाप्त्या स्युर्गगाः स्युर्न्नरोत्तमाः ॥ ९ ॥

त्र्यहमुष्णं पिवेन्मूत्रं त्र्यहमुष्णं घृतं पिवेत्। त्र्यहमुष्णं पयः पीत्वाः वायुभक्षः परं त्र्यहम् ॥
तप्तकृच्छ्रव्रतं सर्व्वपापघ्नं ब्रह्मलोकदं। शीतैस्तु शीतकृच्छ्रं स्याद्ब्रह्मोक्तं ब्रह्मलोकदं ॥
गोमूत्रेणाचरेत्स्नानं वृत्तिं कुर्य्याच्च गोरसैः। गोभिर्व्रजेच्च भुक्तासु भुञ्जीताथ च गोव्रती ॥

मासेनैकेन निष्पापो गोलोकी स्वर्गगो भवेत्।
विद्याञ्च गोमतीं जप्त्वा गोलोकं परमं व्रजेत् ॥ १३ ॥

गीतैर्न्नृत्यैरप्सरोभिर्विमाने तत्र मोदते। गावः सुरभयो नित्यं गावो गुग्गुलगन्धिकाः ॥१४॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

गावः प्रतिष्ठा भूतानां गावः स्वस्त्ययनं परं। अन्नमेव परं गावो देवानां हविरुत्तमम् ॥१५॥
पावनं सर्व्वभूतानां क्षरन्ति च वदन्ति च। हविषा मन्त्रपूतेन तर्पयन्त्यमरान्दिवि ॥१६॥
ऋषीणामग्निहोत्रेषु गावो होमेषु योजिताः। सर्व्वेषामेव भूतानां गावः शरणमुत्तमं ॥१७॥
गावः पवित्रं परमं गावो माङ्गल्यमुत्तमं। गावः स्वर्गस्य सोपानं गावो धन्याः सनातनाः॥
नमो गोभ्यः श्रीमतीभ्यः सौरभेयीभ्य एव च। नमो ब्रह्मसुताभ्यश्च पवित्राभ्यो नमो नमः॥
ब्राह्मणाश्चैव गावश्च कुलमेकं द्विधा कृतम्। एकत्र मन्त्रास्तिष्ठन्ति हविरेकत्र तिष्ठति ॥२०॥
देवब्राह्मणगोसाधुसाध्वीभिः सकलं जगत्। धार्य्यते वै सदा तस्मात् सर्व्वे पूज्यतमा मताः॥

पिबन्ति यत्र तत्तीर्थं गङ्गाद्या गाव एव हि।
गवां माहात्म्यमुक्तं हि चिकित्साञ्च तथा शृणु ॥ २२ ॥

शृङ्गामयेषु धेनूनां तैलं दद्यात् ससैन्धवं। शृङ्गवेरबलामांसकल्कसिद्धं समाक्षिकं ॥२३॥
कर्णशूलेषु सर्वेषु मञ्जिष्ठाहिङ्गुसैन्धवैः। सिद्धं तैलं प्रदातव्यं रसोनेनाथ वा पुनः ॥२४॥
विल्वमूलमपामार्गन्धातकी च सपाटला। कुटजन्दन्तमूलेषु लेपात्तच्छूलनाशनं ॥२५॥
दन्तशूलहरैर्द्रव्यैर्घृतं राम विपाचितं। मुखरोगहरं ज्ञेयं जिह्वारोगेषु सैन्धवं ॥२६॥
शृङ्गवेरं हरिद्रे द्वे त्रिफला च गलग्रहे। हृच्छूले वस्तिशूले च वातरोगे क्षये तथा ॥२७॥
त्रिफला घृतमिश्रा च गवां पाने प्रशस्यते। अतीसारे हरिद्रे द्वे पाठाञ्चैव प्रदापयेत् ॥२८॥
सर्वेषु कोष्ठरोगेषु तथा शाखागदेषु च। शृङ्गवेरञ्च भार्गीञ्च कासे श्वासे प्रदापयेत् ॥२९॥
दातव्या भग्नसन्धाने प्रियङ्गुर्लवणान्विता। तैलं वातहरं पित्ते मधुयष्टीविपाचितं ॥३०॥
कफे व्योषञ्च समधु सपुष्टकरजोऽस्रजे। तैलाज्यं हरितालञ्च भग्नक्षतिशृतन्ददेत् ॥३१॥
माषास्तिलाः सगोधूमाः पशुक्षीरं घृतं तथा। एषां पिण्डी सलवणा वत्सानां पुष्टिदा त्वियं॥
बलप्रदा विषाणां स्याद् ग्रहनाशाय धूपकः। देवदारु वचा मांसी गुग्गुलुहिङ्गुसर्षपाः ॥३३॥
ग्रहादिगदनाशाय एष धूपो गवां हितः। घण्टा चैव गवां कार्या धूपेनानेन धूपिता ॥३४॥

अश्वगन्धातिलैः शुक्लं तेन गौः क्षीरिणी भवेत्।
रसायनञ्च पिन्याकं मत्तो यो धार्य्यते गृहे॥ ३५ ॥

गवां पुरीषे पञ्चम्यां नित्यं शान्त्यै श्रियं यजेत्। वासुदेवञ्च गन्धाद्यैरपरा शान्तिरुच्यते॥
अश्वयुक्शुक्लपक्षस्य पञ्चदश्यां यजेद्धरिं। हरिरुद्रमजं सूर्य्यं श्रियमग्निं घृतेन च ॥३७॥
दधि सम्प्राश्य गाः पूज्य कार्य्यं वह्निप्रदक्षिणं। वृषाणां योजयेद् युद्धं गीतवाद्यरवैर्बहिः॥
गवान्तु लवणन्देयं ब्राह्मणानाञ्च दक्षिणा। नैमित्तिके माकरादौ यजेद्विष्णुं सह श्रिया॥
स्थण्डिलेऽब्जे मध्यगते दिक्षु केशरगान् सुरान्। सुभद्राजो रविः पूज्यो बहुरूपो बलिर्बहिः॥

खं विश्वरूपा सिद्धिश्च ऋद्धिः शान्तिश्च रोहिणी।
दिग्धेनवो हि पूर्वाद्याः कृशरैश्चन्द्र ईश्वरः॥ ४१ ॥

दिक्पालाः पद्मपत्रेषु कुम्भेष्वग्नौ च होमयेत्। क्षीरवृक्षस्य समिधः सर्षपाक्षततण्डुलान्॥
शतं शतं सुवर्णञ्च कांस्यादिकं द्विजे ददेत्। गावः पूज्या विमोक्तव्याः शान्त्यै क्षीरादिसंयुताः॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अग्निरुवाच

शालिहोत्रः सुश्रुताय हयायुर्वेदमुक्तवान् । पालकाप्योऽङ्गराजाय गजायुर्वेदमब्रवीत् ॥४४॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये शान्त्यायुर्वेदो नाम द्विनवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ।

त्रिनवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

मन्त्रपरिभाषा ।

अग्निरुवाच

मन्त्रविद्याहरिं वक्ष्ये भुक्तिमुक्तिप्रदं शृणु ।
विंशत्यर्णाधिका मन्त्रा मालामन्त्राः स्मृता द्विज ॥ १ ॥

दशाक्षराधिका मन्त्रास्तदर्वाग्बीजसंज्ञिताः । वार्द्धक्ये सिद्धिदा ह्येते मालामन्त्रास्तु यौवने ॥
पञ्चाक्षराधिका मन्त्राः सिद्धिदाः सर्वदापरे । स्त्रीपुंनपुंसकत्वेन त्रिधाः स्युर्मन्त्रजातयः॥३॥
स्त्रीमन्त्रा वह्निजायान्ता नमोन्ताश्च नपुंसकाः। शेषाः पुमांसस्ते शस्ता वश्योच्चाटविषेषु च[1] ॥
क्षुद्रक्रियामयध्वंसे स्त्रियोऽन्यत्र[2] नपुंसकाः । मन्त्राताग्नेयसौम्याख्यौ तारांद्यन्तार्द्वयोर्जपेत् ॥

तारान्त्याग्निवियत्प्रायो मन्त्र आग्नेय इष्यते ।
शिष्टः सौम्यः प्रशस्तौ तौ कर्म्मणोः क्रूरसौम्ययोः ॥ ६ ॥

आग्नेयमन्त्रः सौम्यः स्यात्प्रायशोऽन्ते नमोऽन्वितः ।
सौम्यमन्त्रस्तथाग्नेयः फट्कारेणान्ततो युतः ॥ ७ ॥

सुप्तः प्रबुद्धमात्रो वा मन्त्रः सिद्धिं न यच्छति । स्वापकालो महाबाहो जागरो दक्षिणावहः ॥
आग्नेयस्य मनोः सौम्यमन्त्रस्यैतद्विपर्य्ययात् । प्रबोधकालं जानीयादुभयोरुभयोरहः ॥९॥
दुष्टर्क्षराशिविद्वेषिवर्णादीन् वर्ज्जयेन्मनून् । राज्यलाभोपकाराय प्रारभ्यारिः स्वरः कुरून् ॥
गोपालककुटीं प्रायात् पूर्णामित्युदिता लिपिः । नक्षत्रेक्षक्रमाद्योज्या स्वरान्त्यौ रेवतीयुजौ ॥
वेला गुरुः स्वराः शोणः कर्म्मणेवेतिभेदिताः । लिप्यर्णा वशिषु ज्ञेया षष्ठेशार्दीश्च योजयेत् ॥

लिपौ चतुष्पथस्थायामाख्यवर्णपदान्तराः ।
सिद्धाः साध्या द्वितीयस्थाः सुसिद्धा वैरिणः परे ॥ १३ ॥

सिद्धादीन् कल्पयेदेवं सिद्धात्यन्तगुणैरपि[3] । सिद्धे सिद्धो जपात् साध्यो जपपूजाहुतादिना[4] ॥
सुसिद्धो ध्यानमात्रेण साधकं नाशयेदरिः । दुष्टार्णप्रचुरो यः स्यान्मन्त्रः सर्व्वविनिन्दितः ॥
प्रविश्य विधिवद्दीक्षामभिषेकावसानिकाम् । श्रुत्वा तन्त्रं गुरोर्ल्लब्धं साधयेदीप्सितं मनुम् ॥

---

१. वन्धोच्चाटवशेषु चेति ज. ।
२. स्त्रियो नात्रेति ख. ।
३. सिद्धाद्यन्तदलैरपीति ज. ।
४. जपपूर्णाहुतादिनेति ख. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

धीरो दक्षः शुचिर्भक्तो जपध्यानादितत्परः। सिद्धस्तपस्वी कुशलस्तन्त्रज्ञः सत्यभाषणः॥
निग्रहानुग्रहे शक्तो गुरुरित्यभिधीयते। शान्तो दान्तः पटुश्चीर्णब्रह्मचर्य्यो हविष्यभुक्॥१८॥
कुर्वन्नाचार्य्यशुश्रूषां सिद्धोत्साही स शिष्यकः। स तूपदेश्यः पुत्रश्च विनयी वसुदस्तथा॥
मन्त्रन्दद्यात् सुसिद्धो तु सहस्रं देशिकं जपेत्। यदृच्छया श्रुतं मन्त्रं छलेनाथ बलेन वा॥
पत्रे स्थितञ्च गाथाञ्च जनयेद्यद्यनर्थकम्। मन्त्रं यः साधयेदेकं जपहोमार्च्चनादिभिः॥२१॥

क्रियाभिर्भूरिभिस्तस्य सिध्यन्ते स्वल्पसाधनात्।
सम्यक्सिद्धैकमन्त्रस्य नासाध्यमिह किञ्चन॥ २२॥

बहुमन्त्रवतः पुंसः का कथा शिव एव सः। दशलक्षजपादेकवर्णो मन्त्रः प्रसिध्यति॥२३॥
वर्णवृद्ध्या जपह्रासस्तेनान्येषां समूहयेत्। वीजाद् द्वित्रिगुणान्मन्त्रान्मालामन्त्रे जपक्रिया॥
सङ्ख्यानुक्तौ शतं साष्टं सहस्रं वा जपादिषु। जपाद्दशांशं सर्व्वत्र साभिषेकं हुतं विदुः॥
द्रव्यानुक्तौ घृतं होमे जपोऽशक्तस्य सर्व्वतः। मूलमन्त्राद्दशांशः स्यादङ्गादीनां जपादिकम्॥
जपात्सशक्तिमन्त्रस्य कामदा मन्त्रदेवताः। साधकस्य भवेत् तृप्ता ध्यानहोमार्च्चनादिना॥
उच्चैर्जपाद्विशिष्टः स्यादुपांशुर्दशभिर्गुणैः। जिह्वाजपे शतगुणः सहस्रो मानसः स्मृतः॥

प्राङ्मुखोऽवाङ्मुखो वापि मन्त्रकर्म्म समारभेत्।
प्रणवाद्याः सर्व्वमन्त्रा वाग्यतो विहिताशनः॥ २९॥

आसीनस्तु जपेन्मन्त्रान्देवताचार्य्यतुल्यदृक्। कुटीविविक्ता देशाः स्युर्देवालयनदीह्रदाः॥
सिद्धौ यवागूपूपैर्वा पयो भक्ष्यं हविष्यकम्। मन्त्रस्य देवता तावत्[१] तिथिवारेषु वै जपेत्॥
कृष्णाष्टमीचतुर्दश्योर्ग्रहणादौ च साधकः। दस्रो यमोऽनलो धाता शशी रुद्रो गुरुर्दितिः॥
सर्पाः पितरोऽथ भगोऽर्यमा शीतेतरद्युतिः। त्वष्टा मरुत इन्द्राग्नी मित्रेन्द्रौ निरृतिर्ज्जलम्॥
विश्वेदेवा हृषीकेशो वायवः सलिलाधिपः। अजैकपादहिर्ब्रध्नः पूषाश्विन्यादिदेवताः॥३४॥
अग्निरुमावुमा निघ्नो नागश्चन्द्रो दिवाकरः। मातृदुर्गा दिशामीशः कृष्णो वैवस्वतः शिवः॥
पञ्चदश्याः शशाङ्कस्तु पितरस्तिथिदेवताः। हरो दुर्गा गुरुर्विष्णुर्ब्रह्मा लक्ष्मीर्धनेश्वरः॥३६॥
एते सूर्य्यादिवारेशा लिपिन्यासोऽथ कथ्यते। केशान्तेषु च वृत्तेषु चक्षुषोः श्रवणद्वये॥३७॥
नासागण्डौष्ठदन्तानां द्वे द्वे मूर्द्धास्ययोः क्रमात्। वर्णान् पञ्चसुवर्णानां[२] वाहुचरणसन्धिषु॥
पार्श्वयोः पृष्ठतो नाभौ हृदये च क्रमान्न्यसेत्। यादींश्च हृदये न्यस्येदेषां स्युः सप्तधातवः॥

त्वगसृङ्मांसकस्नायुमेदोमज्जाशुक्राणि धातवः।
वसाः पयो वासको लिख्यन्ते चैव लिपीश्वराः॥ ४०॥

श्रीकण्ठोऽनन्तसूक्ष्मौ च त्रिमूर्त्तिरमरेश्वरः। अग्नीशो भावभूतिश्च तिथीशः स्थानुको हरः॥
दण्डीशो भौतिकः सद्योजातश्चानुग्रहेश्वरः। अक्रूरश्च महासेनः शरण्या देवता अमूः॥४२॥
ततः क्रोधीशचण्डौ च पञ्चान्तकशिवोत्तमौ। तथैव रुद्रकूर्म्मौ च त्रिनेत्रौ चतुराननः॥४३॥
अजेशः शर्म्मसोमेशौ तथा लाङ्गलिदारुकौ। अर्द्धनारीश्वरश्चोमा कान्तश्चाषाढिदण्डिनौ॥

१. तारेति ख.।
२. पञ्चस्वरवर्गाणामिति ख.।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अत्रिर्म्मीनश्च मेषश्च लोहितश्च शिखी तथा । छगलण्डद्विरण्डौ द्वौ समहाकालवालिनौ ॥
भुजङ्गश्च पिनाकी च खड्गीशश्च वकः पुनः । श्वेतो भृगुर्लगुडीशाक्षश्च सम्वर्त्तकः स्मृतः ॥
रुद्रात्मशक्तान् लिख्यादीन् नमोन्तान् विन्यसेत् क्रमात् ।
अङ्गानि विन्यसेत्सर्व्वे मन्त्राः साङ्गास्तु सिद्धिदाः ॥ ४७ ॥
हृल्लेखाव्योमसपूर्व्वाण्येतान्यङ्गानि विन्यसेत । हृदादीन्यङ्गमन्त्रान्तैर्यो जपेद्धृदये नमः ॥
स्वाहा शिरस्यथ वषट्शिखायां कवचे च हूं ।
वौषट् नेत्रेऽस्त्राय फट्स्यात् पञ्चाङ्गं नेत्रवर्जितम् ॥ ४९ ॥
निरङ्गस्यात्मना चाङ्गं न्यस्येमाग्नियुतं जपेत् ।
क्रमाभ्यां देवीं वागीशीं यथोक्तांस्तु तिलान् हुनेत ॥ ५० ॥
लिपिदेवी साक्षसूत्रकुम्भपुस्तकपद्मधृक् । कवित्वादि प्रयच्छेत कर्म्मादौ सिद्धये न्यसेत् ॥
निष्कविर्निर्म्मलः सर्व्वे मन्त्राः सिध्यन्ति मातृभिः ॥ ५१ ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये मन्त्रपरिभाषा नाम त्रिनवत्यधिक-
द्विशततमोऽध्यायः ।

चतुर्नवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

नागलक्षणानि ।

अग्निरुवाच

नागादयोऽथ भावादिदशस्थानानि कर्म्म च । सूतकं दष्टचेष्टेति सप्तलक्षणमुच्यते ॥१॥
शेषवासुकितक्षाख्याः कर्कटोऽब्जो महाम्बुजः । शङ्खपालश्च कुलिक इत्यष्टौ नागवर्य्यकाः॥२॥
दशाष्टपञ्चत्रिगुणशतमूर्द्धान्वितौ क्रमात । विप्रौ नृपो विशौ शूद्रौ द्वौ द्वौ नागेषु कीर्त्तितौ॥३॥
तदन्वयाः पञ्चशतं तेभ्यो जाता असंख्यकाः । फणिमण्डलिराजीलवातपित्तकफात्मकाः ॥४॥
व्यन्तरा दोषमिश्रास्ते सर्पा दर्व्वीकराः स्मृताः । रथाङ्गलाङ्गलच्छत्रस्वस्तिकाङ्कुशधारिणः[१]॥
गोनसा मन्दगा दीर्घा मण्डलैर्विविधैश्चिताः[२] ।
राजिलाश्चित्रिताः स्निग्धास्तिर्य्यगूर्द्ध्वश्च वाजिभिः ॥ ६ ॥
व्यन्तरा मिश्रचिह्नाश्च भूवर्षाग्नेयवायवः । चतुर्विधास्ते षड्विंशभेदाः षोड़श गोनसाः ॥७॥
त्रयोदश च राजीला व्यन्तरा एकविंशतिः । येऽनुक्तकाले जायन्ते सर्पास्ते व्यन्तराः स्मृताः ॥
आषाढादित्रिमासैः स्याद् गर्भो मासचतुष्टये । अण्डकानां शते द्वे च चत्वारिंशत् प्रसूयते ॥
सर्पा ग्रसन्ति सूतौवान् विना स्त्रीपुन्नपुंसकान् ।
उन्मीलतेऽक्षि सप्ताहात् कृष्णो मासाद्भवेद्बहिः ॥ १० ॥

---

१. रथाङ्गलाङ्गलच्छत्रमुष्टिकाङ्कुशधारिण इति ख. २. स्थिता इति ख. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

द्वादशाहात् सुबोधः स्यात् दन्ताः स्युः सूर्य्यदर्शनात् ।
द्वात्रिंशद्दिनविंशत्या ष्वतस्रस्तेषु दंष्ट्रिकाः ॥ ११ ॥
कराली मकरी कालरात्री च यमदूतिका। एतास्ताः सविषा दंष्ट्रा वामदक्षिणपार्श्वगाः॥१२॥
षण्मासान्मुच्यते कृत्तिं जीवेत्षष्टिसमाद्वयं ।
नागाः सूर्य्यादिवारेशाः सप्त उक्ता दिवा निशि ॥ १३ ॥
स्वेषां षट् प्रतिवारेषु कुलिकः सर्व्वसन्धिषु । शङ्खेन वा महाब्जेन सह तस्योदयोऽथवा ॥
द्वयोर्व्वा नाड़िकामन्त्रमन्त्रकं[1] कुलिकोदयः । दुष्टः स कालः सर्व्वत्र सर्पदंशे विशेषतः[2] ॥
कृत्तिका भरणी स्वाती मूलं पूर्व्वत्रयाश्विनी। विशाखार्द्रा मघाश्लेषा चित्रा श्रवणरोहिणी ॥
हस्ता मन्दकुजौ वारौ पञ्चमी चाष्टमी तिथिः ।
षष्ठी रिक्ता शिवा निन्द्या पञ्चमी च चतुर्द्दशी ॥ १७ ॥
सन्ध्याचतुष्टयं दुष्टं दग्धयोगाश्च राशयः । एकद्विबहवो दंशा दष्टविद्धञ्च खण्डितम् ॥१८॥
अदंशमवगुप्तं[3] स्याद्दंशमेवं चतुर्विधम् । त्रयो द्व्येकक्षता दंशा वेदना रुधिरोल्वणा ॥१९॥
नक्तन्त्वेकाङ्घ्रिकूर्म्माभा दंशाश्च यमचोदिताः। दाहीपिपीलिकास्पर्शी कण्ठशोथरुजान्वितः[4] ॥
सतोदो ग्रन्थितो दंशः सविषो न्यस्तनिर्व्विषः । देवालये शून्यगृहे वल्मीकोद्यानकोटरे ॥
रथ्यासन्धौ श्मशाने च नद्याञ्च सिन्धुसङ्गमे । द्वीपे चतुष्पथे सौधे गृहेऽब्जे पर्व्वताग्रतः ॥
बिलद्वारे जीर्णकूपे जीर्णवेश्मनि कुड्यके । शिग्रुश्लेष्मातकाक्षेषु जम्बूडुम्बरणेषु च ॥२३॥
वटे च जीर्णप्राकारे खास्यहृत्कक्षजत्रुणि । तालौ शङ्खे गले मूर्द्धिन चिबुके नाभिपादयोः॥
दंशोऽशुभः शुभो दूतः पुष्पहस्तः सुवाक् सुधीः। लिङ्गवर्णसमानश्च शुक्लवस्त्रोऽमलः शुचिः॥
अपद्वारगतः शस्त्री प्रमादी भूगतेक्षणः । विवर्णवासाः पाशादिहस्तो गद्गदवर्णभाक् ॥२६॥
शुष्ककाष्ठाश्रितः खिन्नस्तिलाक्तककरांशुकः ॥ २७ ॥
आर्द्रवासाः कृष्णरक्तपुष्पयुक्तशिरोरुहः ।
कुचमर्द्दी नखच्छेदी गुदस्पृक् पादलेखकः। केशमुञ्ची तृणच्छेदी दुष्टा दूतास्तथैकशः॥२८॥
इड़ान्या वा वहेद्द्वेधा यदि दूतस्य चात्मनः ।
आभ्यां द्वाभ्यां पुष्टयास्मान् विद्यात्स्त्रीपुन्नपुंसकान् ॥ २९ ॥
दूतः स्पृशति यद्गात्रं तस्मिन् दंशमुदाहरेत् । दूताङ्घ्रिचलनं दुष्टमुत्थितिर्निश्चला शुभा ॥
जीवपार्श्वे शुभो दूतो दुष्टोऽन्यत्र समागतः । जीवो गतागतैर्दुष्टः शुभो दूतनिवेदने ॥३१॥
दूतस्य वाक् प्रदुष्टा सा पूर्व्वामर्द्धार्द्धनिन्दिता । विभक्तैस्तस्य वाक्यान्तैर्विषैर्निर्व्विषकालता ॥
आद्यैः स्वरैश्च काद्यैश्च वर्गैर्भिन्नलिपिर्द्विधा । स्वरजो वसुमान्वर्गी इतिक्षेपा च मातृका॥३३॥
वाताग्नीन्द्रजलात्मानो वर्गेषु च चतुष्टयम् । नपुंसकाः पञ्चमाः स्युः स्वराः शक्राम्बुयोनयः ॥
दुष्टौ दूतस्य वाक्पादौ वाताग्नी मध्यमो हरिः । प्रशस्ता वारुणा वर्णा अतिदुष्टा नपुंसकाः ॥

---

१. नाडिकामात्रमन्त्रकमिति ञ. ।
२. विनिर्दिशेदिति क. ख. ञ. ट. च ।
३. सदंशमवलुप्तमिति ञ. ।
४. कण्ठशोषरुजान्वित इति ञ. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रस्थाने मङ्गलं वाक्यं गर्जितं मेघहस्तिनोः। प्रदक्षिणं फले वृत्ते वामस्य च रुतं जितं ॥३६॥
शुभा गीतादिशब्दाः स्युरीदृशं स्यादसिद्धये। अनर्थगीरथाक्रन्दो दक्षिणे विरुतं क्षुतम् ॥
वेश्या क्षुतो नृपः कन्या गौर्दन्ती मुरजध्वजौ। क्षीराज्यदधिशङ्खाम्बु छत्रं भेरी फलं सुराः ॥
तण्डुला हेम रूप्यञ्च सिद्धयेऽभिमुखा अमी। सकाष्ठः सानलः कारुर्म्मलिनाम्बरभावभृत् ॥
गलस्थटङ्को गोमायुगृध्रोलूककपर्दिकाः। तैलं कपालकार्पासा निषेधे भस्म नष्टये ॥४०॥

विषरोगाश्च सप्त स्युर्धातोर्धात्वन्तराप्तितः।
विषदंशो ललाटं यात्यतो नेत्रं ततो मुखम्।
आस्याच्च वचनीनाड्यौ धातून् प्राप्नोति हि क्रमात् ॥ ४१ ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये नागलक्षणादिर्नाम चतुर्नवत्यधिक-द्विशततमोऽध्यायः।

पञ्चनवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

दष्टचिकित्सा।

अग्निरुवाच

मन्त्रध्यानौषधैर्दष्टचिकित्सां प्रवदामि ते।
ॐ नमो भगवते नीलकण्ठायेति। जपनाद्विषहानिः स्यादौषधं जीवरक्षणं ॥१॥
साज्यं सक्षुद्रसं पेयं द्विविधं विषमुच्यते। जङ्गमं सर्पमूषादि शृङ्ग्यादि स्थावरं विषं ॥२॥
शान्तस्वरान्वितो ब्रह्मा लोहितं तारकं[1] शिवः। वियतेर्नाममन्त्रोऽयं तार्क्ष्यः शब्दमयः स्मृतः ॥

ॐ ज्वल महामते हृदयाय गरुडविरालशिरसे[2] गरुडशिखायै गरुड विषभञ्जन प्रभेदन प्रभेदन वित्रासय वित्रासय विमर्दय विमर्दय कवचाय अप्रतिहतशासनं वं हूं फट् अस्त्राय उग्ररूपधारक सर्वभयङ्कर भीषय सर्वं दह दह भस्मीकुरु कुरु स्वाहा नेत्राय।

सप्तवर्गान्तयुग्माष्टदिग्दलस्वर केशरादिवर्णरुद्धं वहिराभूतकर्णिकं मातृकाम्बुजं।
कृत्वा हृदिस्थं तन्मन्त्री वामहस्ततले स्मरेत्। अङ्गुष्ठादौ न्यसेद्वर्णान्वियतेर्भेदिताः कलाः[3] ॥
पीतं वज्रचतुष्कोणं पार्थिवं शक्रदैवतं। वृत्तार्द्धमाप्यपद्माढ्यं शुक्लं वरुणदैवतं ॥५॥
त्र्यस्रं स्वस्तिकयुक्तञ्च तैजसं वह्निदैवतं। वृत्तं विन्दुवृतं वायुदैवतं कृष्णमालिनम् ॥६॥
अङ्गुष्ठाद्यङ्गुलीमध्ये पर्य्यस्तेषु स्ववेश्मसु। सुवर्णनागवाहेन वेष्टितेषु न्यसेत् क्रमात् ॥७॥
वियतेश्चतुरो वर्णान् सुमण्डलसमत्विषः। अरूपे रवतन्मात्रे[4] आकाशेशिवदैवते ॥८॥

---

१. तारकः इति ख.।
२. गरुडविलासशिरसे इति ख.।
३. भेदिकास्तथेति ख.।
४. वरतन्मात्रे इति ख.।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कनिष्ठामध्यपर्वस्थे न्यसेत्तस्याद्यमक्षरम् । नागानामादिवर्णांश्च स्वमण्डलगतान्न्यसेत् ॥९॥
भूतादिवर्णान् विन्यसेदङ्गुष्ठाद्यन्तपर्वसु । तन्मात्रादिगुणाभ्यर्णानङ्गुलीषु न्यसेद्बुधः ॥१०॥
स्पर्शनादेव तार्क्ष्येण हस्ते हन्याद्विषद्वयं । मण्डलादिषु तान् वर्णान् वियतः कवयो जितान् ॥
श्रेष्ठद्वयङ्गुलिभिर्देहनाभिस्थानेषु पर्वसु । आजानुतः सुवर्णाभमानाभेस्तुहिनप्रभम् ॥१२॥
कुङ्कुमारुणमाकण्ठादाकेशान्तात् सितेतरं । ब्रह्माण्डव्यापिनं तार्क्ष्यञ्चन्द्राख्यं नागभूषणम् ॥
नीलोग्रनाशमात्मानं महापक्षं स्मरेद्बुधः । एवन्तार्क्ष्यात्मनो वाक्यान्मन्त्रः स्यान्मन्त्रिणो विषे ॥
मुष्टिस्तार्क्ष्यकरस्यान्तःस्थिताङ्गुष्ठविषापहा । तार्क्ष्यं हस्तं समुद्यम्य तत्पञ्चाङ्गुलिचालनात् ॥
कुर्य्याद्विषस्य स्तम्भादींस्तदुक्तमदवीषया । आकाशादेप भूवीजः पञ्चार्णाधिपतिर्म्मनुः ॥
संस्तम्भयेतिविपतो भाषया स्तम्भयेद्विषम् । व्यत्यस्तभूषया वीजो मन्त्रोऽयं साधुसाधितः ॥
संप्लवः प्लावय यमः[1] शब्दाद्यः संहरेद्विषं । दण्डमुत्थापयेदेप सुजप्ताम्भोऽभिषेकतः ॥१८॥
सुजप्तशङ्खभेर्य्यादिनिस्वनश्रवणेन वा । संदहत्येव संयुक्तो भूतेजोव्यत्ययात् स्थितः ॥१९॥
भूवायुव्यत्ययान्मन्त्रो विषं संक्रामयत्यसौ । अन्तस्थो निजवेश्मस्थो वीजाग्नीन्दुजलात्मभिः ॥
एतत् कर्म्म नयेन्मन्त्री गरुडाकृतिविग्रहः । तार्क्ष्यवरुणगेहस्थस्तज्जराज्नाशयेद्विषम् ॥२१॥
जानुदण्डीदमुदितं स्वधाश्रीवीजलाञ्छितं । स्नानपानात्सर्व्वविषं ज्वरारोगापमृत्युजित्॥२२॥
पक्षि पक्षि महापक्षि महापक्षि विधि स्वाहा । पक्षि पक्षि महापक्षि महापक्षि क्षि क्षि स्वाहा॥

द्वावेतौ पक्षिराड्मन्त्रौ विषघ्नावभिमन्त्रणात् ॥
पक्षिराजाय विद्महे पक्षिऽदेवाय धीमहि तन्नो गरुडः प्रचोदयात् ।
वह्निस्थौ पार्श्वतत्पूर्वौ दन्तश्रीकौ च दण्डिनौ ॥ २३ ॥

सकाळो लाङ्गली चेति नीळकण्ठाद्यमीरितं । वक्षःकण्ठशिखाश्वेतं न्यसेत्स्तम्भे सुसंस्कृतौ ॥

हर हर हृदयाय नमः कपर्दिने च शिरसे नीलकण्ठाय वै शिखां कालकूटविषभक्षणाय स्वाहा ।

अथ वर्म्म च कण्ठे नेत्रं कृत्तिवासास्त्रिनेत्रं पूर्वाद्यैराननैर्युक्तं श्वेतपीतारुणासितैः ॥
अभयं वरदं चापं वासुकिञ्च दधद्भुजैः । यस्योपरीतपार्श्वस्थगौरीरुद्रोऽस्य देवता ॥२५॥
पादजानुगुहानाभिहृत्कण्ठाननमूर्द्धसु । मन्त्रार्णान्न्यस्य करयोरङ्गुष्ठाद्यङ्गुलीषु च ॥२६॥
तर्ज्जन्यादितदन्तासु सर्वमङ्गुष्ठयोर्न्न्यसेत । ध्यात्वैवं संहरेत क्षिप्रं वद्धया शूलमुद्रया ॥२७॥

कनिष्ठा ज्येष्ठया वद्धा तिस्रोऽन्याः प्रसृतेर्ज्जवाः ।
विषनाशे वामहस्तमन्यस्मिन् दक्षिणं करं ॥ २८ ॥

ओं नमो भगवते नीलकण्ठाय चिः अमलकण्ठाय चिः ।

सर्वज्ञकण्ठाय चिः क्षिप ओं स्वाहा ।
अमलनीलकण्ठाय नैकसर्वविषापहाय ।

---

१. यश इति ज. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नमस्ते रुद्रमन्यव इति सम्मार्ज्जनाद्विषं विनश्यति न सन्देहः कर्णजाप्या उपानहावा ।

यजेद्रुद्रविधानेन नीलग्रीवं महेश्वरम् । विषव्याधिविनाशः स्यात् कृत्वा रुद्रविधानकं ॥२६॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये दष्टचिकित्सा नाम पञ्चनवत्यधिक-
द्विशततमोऽध्यायः ।

षण्णवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

पञ्चाङ्गरुद्रविधानम् ।

अग्निरुवाच

वक्ष्ये रुद्रविधानन्तु पञ्चाङ्गं सर्व्वदं परं । हृदयं शिवसङ्कल्पः शिवः सूक्तन्तु पौरुषम् ॥१॥
शिखाभ्यः सम्भृतं सूक्तमाशुः कवचमेव च । शतरुद्रियमस्त्रञ्च रुद्रस्याङ्गानि पञ्च हि ॥२॥
पञ्चाङ्गान्न्यस्य तं ध्यात्वा जपेद्रुद्रांस्ततः क्रमात् । यज्जाग्रत इति सूक्तं यद्दचं मानसं विदुः ॥
ऋषिः स्याच्छिवसङ्कल्पश्छन्दस्त्रिष्टुवुदाहृतं। शिवः सहस्रशीर्षेति तस्य नारायणोऽप्यृषिः ॥
देवता पुरुषोऽनुष्टुप्छन्दो ज्ञेयञ्च त्रैष्टुभम् । अभ्यश्च सम्भृतं सूक्तमृषिरुत्तरगोनरः[१] ॥५॥

आद्यानान्तिसृणां त्रिष्टुप्छन्दोऽनुष्टुवद्वयोरपि ।
छन्दस्त्रैष्टुभमन्त्यायाः पुरुषोऽस्यापि देवता ॥ ६ ॥

आशुरिन्द्रो द्वादशानां छन्दस्त्रिष्टुवुदाहृतं। ऋषिः प्रोक्तः प्रतिरथः सूक्ते सप्तदशार्च्चके॥७॥
पृथक् पृथक् देवताः स्युः पुरुविदङ्गदेवता । अवशिष्टदैवतेषु छन्दोऽनुष्टुवुदाहृतं ॥८॥

असौ यमो भवित्रीन्द्रः पुरुलिङ्गोक्तदेवताः[२] ।
पङ्क्तिच्छन्दोऽथ मर्म्माणि त्वपलिङ्गोक्तदेवताः ॥ ९ ॥
रौद्राध्याये च सर्व्वस्मिन्नार्षं स्यात् परमेष्ठ्यपि ।
प्रजापतिर्व्वा देवानां कुत्सस्य तिसृणां पुनः ॥ १० ॥

मनोद्वयोरुमैका स्याद्रुद्रो रुद्राश्च देवताः । आद्योनुवाकोऽथ पूर्व्व एकरुद्राख्यदैवतः ॥११॥

छन्दो गायत्र्यमाद्याया अनुष्टुप् तिसृणामृचाम् ।
तिसृणाञ्च तथा पङ्क्तिरनुष्टुवथ संस्मृतम् ॥ १२ ॥

द्वयोश्च जगतीछन्दो रुद्राणामप्यशीतयः । हिरण्यवाहवस्तिस्रो नमो वः किरिकाय च ॥१३॥
पञ्चर्चो रुद्रदेवाः स्युर्मन्त्रो रुद्रानुवाककः[३]। विंशके रुद्रदेवास्ताः प्रथमा बृहती स्मृता ॥१४॥

---

१. उत्तरगोनस इति ज. ट. च । २. भवित्रीति त्रिष्टुब् लिङ्गोक्तदेवतेति ख. ।
३. रुद्रात्मवाचक इति ज. ट. च ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ऋग्द्वितीया त्रिजगती तृतीया त्रिष्टुबेव च।
अनुष्टुभो यजुस्तिस्र आर्यादिज्ञः सुसिद्धिभाक् ॥ १५ ॥
त्रैलोक्यमोहनेनापि विषव्याध्यरिमर्दनं[1]।
इँ श्रीँ ह्रीँ ह्रौँ हूँ[2] त्रैलोक्यमोहनाय विष्णवे नमः।
अनुष्टुभं नृसिंहेन विषव्याधिविनाशनं॥ १६ ॥
ओं इँ इँ[3] उग्रवीरं महाविष्णुं ज्वलन्तं सर्वतोमुखं। नृसिंहं भीषणं भद्रं मृत्युमृत्युन्नमाम्यहं॥
अयमेव तु पञ्चाङ्गो मन्त्रः सर्वार्थसाधकः। द्वादशाष्टाक्षरौ मन्त्रौ विषव्याधिविमर्द्दनौ॥
कुब्जिका त्रिपुरा गौरी चन्द्रिका[4] विषहारिणी। प्रसादमन्त्रो विषहृदायुरारोग्यवर्द्धनं॥
सौरो विनायकस्तद्वद्रुद्रमन्त्राः सदाखिलाः॥ १९॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये पञ्चाङ्गरुद्रविधानं नाम षण्नवत्यधिक-
द्विशततमोऽध्यायः।

सप्तनवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

विषहृन्मन्त्रौषधम्।

अग्निरुवाच

ओं नमो भगवते रुद्राय छिन्द २ विषं ज्वलितपरशुपाणये च। नमो भगवते पक्षिरुद्राय दष्टकं उत्थापय २ दष्टकं कम्पय २ जल्पय २ सर्पदष्टमुत्थापय लल २ बन्ध २ मोचय २ वररुद्र गच्छ २ वध २ त्रुट २ बुक २ भीषय २ मुष्टिना संहर विषं ठ ठ।
पक्षिररुद्रेण ह विषं नाशमायाति मन्त्रणात॥
ओं नमो भगवते रुद्र नाशय विषं स्थावरजङ्गमं कृत्रिमाकृत्रिमविषमुपविषं नाशय नानाविषं दष्टकविषं नाशय धम २ दम २ वम २ मेघान्धकारधाराकर्षनिर्विषयीभव संहर २ गच्छ २ आवेशय २ विषोत्थापनरूपं मन्त्रान्ताद्विषवारणं ओं क्षिप ओं क्षिप स्वाहा।
ओं ह्राँ ह्रीँ खीँ सः ठन्द्रौँ ह्रीँ ठः। जपादिना साधितस्तु सर्पान् बध्नाति नित्यशः॥१॥
एकद्वित्रिचतुर्बीजः -कृष्णचक्राङ्गपञ्चकः। गोपीजनवल्लभाय स्वाहा सर्वार्थसाधकः॥२॥
ओं नमो भगवते रुद्राय प्रेताधिपतये गुल्व २[5] गर्ज्ज २ भ्रामय २ मुञ्च २ मुह्य २ कट २ आविश २ सुवर्णपतङ्ग रुद्रो ज्ञापयति ठ २।
पातालक्षोभमन्त्रोयं मन्त्रणाद्विषनाशनः। दंशकाहिदंशे सद्यो दष्टः काष्ठशिलादिना॥३॥

---

१. विषव्याधिविमर्द्दनमिति ज.।
२. ओं ह्राँ ह्रीँ हूमिति ञ.।
३. ओ ह्रौँ हँ इति ज.।
४. चण्डिका इति ञ.।
५. गुलु २ इति ञ.।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विषशान्त्यै दहेद्दंशं ज्वालकोकनदादिना[१]। शिरीषवीजपुष्पार्कक्षीरवीजकटुत्रयं ॥४॥
विषं विनाशयेत पानलेपनेनाञ्जनादिना । शिरीषपुष्पस्य रसभावितं मरिचं सितं ॥५॥
पाननस्याञ्जनाद्यैश्च विषं हन्यान्न संशयः। कोषातकीवचाहिङ्गुशिरीषार्कपयोयुतं ॥६॥
कटुत्रयं समेषाम्भो हरेन्नस्यादिना विषं । रामठेक्ष्वाकुसर्वाङ्गचूर्णं नस्याद्विषापहं ॥७॥
इन्द्रवलाग्निकन्द्रोणं तुलसी देविका सहा । तद्रसाक्तं त्रिकटुकं चूर्णम्भक्ष्यविषापहं ॥
पञ्चाङ्गं कृष्णपञ्चम्यां शिरीषस्य विषापहं ॥ ८ ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये विषहृन्मन्त्रौषधं नाम सप्तनवत्यधिक-
द्विशततमोऽध्यायः ।

अष्टनवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

गोनसादिचिकित्सा ।

अग्निरुवाच

गोनसादिचिकित्साञ्च वशिष्ठ शृणु वच्मि ते । ह्रीँ ह्रीँ अमलपक्षि स्वाहा ॥
ताम्वूलखादनान्मन्त्री हरेन्मण्डलिनो विषं ॥ १ ॥
लशुनं रामठफलं कुष्ठाग्निव्योषकं विषे । स्नुहीक्षीरं गव्यघृतं पक्षं पीत्वाऽहिजे विषे ॥२॥
अथ राजिलदष्टे च पेया कृष्णा ससैन्धवा । आज्यक्षौद्रशकृत्तोयं पुरीतत्या विषापहं ॥३॥
सकृष्णाखण्डदुग्धाज्यं पातव्यन्तेन माक्षिकं ।
व्योषं पिच्छं विडालास्थि नकुलाङ्गरुहैः समैः ॥ ४ ॥
चूर्णितैर्म्मेषदुग्धाक्तैर्धूपः सर्वविषापहः । रोमनिर्गुण्डिकाकोलवर्णैर्वा लशुनं समं ॥५॥
मुनिपत्रैः कृतस्वेदं दष्टं काञ्जिकपाचितैः । मूषिकाः षोडश प्रोक्ता रसङ्कार्पासजम्पिवेत् ॥६॥
सतैलं मूषिकार्त्तिघ्नं फलिनीकुसुमन्तथा । सनागरगुडम्भक्ष्यं तद्विषारोचकापहं ॥७॥
चिकित्सा विंशतिर्भूता लूताविषहरो गणः । पद्मकं पाटली कुष्ठं नतमूशीरचन्दनं ॥८॥
निर्गुण्डी शारिवा शेलु लूतार्त्तं सेचयेज्जलैः । गुञ्जानिर्गुण्डिकङ्कोलपर्णं शुण्ठी निशाद्वयं ॥९॥
करञ्जास्थि च तत्पङ्कैः[२] वृश्चिकार्त्तिहरं शृणु । मञ्जिष्ठा चन्दनं व्योषपुष्पं शिरीषकौमुदं ॥
संयोज्याश्चतुरो योगा लेपादौ वृश्चिकापहाः ॥
ओं नमो भगवते रुद्राय चिवि २[३] छिन्द २ किरि २ भिन्द २ खड्गेन छेदय २ शूलेन भेदय२ चक्रेण दारय २ ओं हूँ फट् ।
मन्त्रेण मन्त्रितो देयो गर्द्दभादीन्निकृन्तति ॥ ११ ॥

---

१. ज्वालको कलदालिनेति ख. ।
२. तत्पक्षैरिति ज. ञ. ट. च ।
३. चिरि २ इति ज. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

त्रिफलोशीरमुस्ताम्बुमांसीपद्मकचन्दनं । अजाक्षीरेण पानादेर्गर्द्दभादेर्विषं हरेत् ॥१२॥
हरेत् शिरीषपञ्चाङ्गं व्योषं शतपदीविषं । सकन्धरं शिरीषास्थि हरेदुन्दूरजं विषं ॥१३॥
व्योषं ससर्पिः पिण्डीतमूलमस्य विषं हरेत् । क्षारव्योषवचाहिङ्गुविडङ्गं सैन्धवन्नतं ॥१४॥
अम्बष्ठातिवलाकुष्ठं सर्वकीटविषं हरेत् । यष्टिव्योषगुडक्षीरयोगः[१] शुनो विषापहः ॥१५॥
ओं सुभद्रायै नमः ओं सुप्रभायै नमः । यान्यौषधानि गृह्यन्ते विधानेन विना जनैः ॥१६॥

तेषां वीजन्त्वया ग्राह्यमिति ब्रह्माऽब्रवीच्च ताम् ।
ताम्प्रणम्यौषधीम्पश्चात् यवान् प्रक्षिप्य मुष्टिना ॥ १७ ॥

दश जप्त्वा मन्त्रमिदं नमस्कुर्य्यात्तदौषधं । त्वामुद्धराम्यूद्र्ध्वनेत्रामनेनैव च भक्षयेत् ॥१८॥
नमः पुरुषसिंहाय नमो गोपालकाय च । आत्मनैवाभिजानाति रणे कृष्णपराजयं ॥१९॥

एतेन सत्यवाक्येन अगदो मेऽस्तु सिध्यतु ॥

नमो वैदूर्य्यमाते तन्न २ रक्ष मां सर्वविषेभ्यो गौरि गान्धारि चाण्डालि मातङ्गिनि स्वाहा हरिमाये ।

औषधादौ प्रयोक्तव्यो मन्त्रोऽयं स्थावरे विषे ॥ २० ॥

भुक्तमात्रे स्थिते ज्वाले पद्मं शीताम्बुसेवितं । पाययेत्सघृतं क्षौद्रं विषञ्चेत्तदनन्तरं ॥२१॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये गोनसादिचिकित्सा नाम अष्टनवत्यधिक-
द्विशततमोऽध्यायः ।

नवनवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

वालग्रहहरबालतन्त्रम् ।

अग्निरुवाच

बालतन्त्रं प्रवक्ष्यामि बालादिग्रहमर्द्दनं । अथ जातदिने वत्सं ग्रही गृह्णाति पापिनी ॥१॥
गात्रोद्वेगो निराहारो नानाग्रीवाविवर्त्तनं । तच्चेष्टितमिदं तत्स्यान्मातृणाञ्च बलं हरेत् ॥२॥
मत्स्यमांससुराभक्ष्यगन्धस्रग्धूपदीपकैः । लिम्पेच्च धातकीलोध्रमञ्जिष्ठातालचन्दनैः ॥३॥
महिषाक्षेण धूपश्च द्विरात्रे भीषणी ग्रही । तच्चेष्टा कासनिश्वासौ गात्रसङ्कोचनं मुहुः ॥४॥
अजमूत्रैर्लिपेन् कृष्णासेव्यापामार्गचन्दनैः । गोशृङ्गदन्तकेशैश्च धूपयेत् पूर्ववद्बलिः ॥५॥
ग्रही त्रिरात्रे घण्टाली तच्चेष्टा क्रन्दनं मुहुः । जृम्भणं स्वनितन्त्रासो गात्रोद्वेगमरोचनं ॥
केशराञ्जनगोहस्तिदन्तं साजपयो लिपेत् । नखराजीविल्वदलैर्धूपयेच्च बलिं हरेत् ॥७॥
ग्रही चतुर्थी काकोली गात्रोद्वेगप्ररोचनं । फेनोद्गारो दिशो दृष्टिः कुल्माषैः सासवैर्बलिः ॥
गजदन्ताहिनिर्म्मोकवाजिमूत्रप्रलेपनं । सराजीनिम्बपत्रेण धूतकेशेन धूपयेत् ॥९॥

---

१. षष्टिव्योषगुडक्षीरयोग इति क. ज. ञ. ट. च ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हंसाधिका पञ्चमी स्याज्जृम्भाश्वासोर्द्ध्वधारिणी ।
मुष्टिबन्धश्च तच्चेष्टा बलिं मत्स्यादिना हरेत् ॥ १० ॥

मेषशृङ्गबलालोध्रशिलातालैः शिशुं लिपेत् । फट्कारी तु ग्रही षष्ठी भयमोहप्ररोदनं ॥११॥
निराहारोऽङ्गविक्षेपो हरेन्मत्स्यादिना बलिं । राजीगुग्गुलुकुष्ठेभदन्ताद्यैर्धूपलेपनैः ॥१२॥
सप्तमे मुक्तकेश्यार्त्तः पूतिगन्धो विजृम्भणं । सादः प्ररोदनङ्कासो धूपो व्याघ्रनखैर्लिपेत् ॥१३॥
वचागोमयगोमूत्रैः श्रीदण्डी चाष्टमे ग्रही । दिशो निरीक्षणं जिह्वाचालनङ्कासरोदनं ॥१४॥
बलिः पूर्ववं मत्स्याद्यैर्धूपलेपे च[1] हिङ्गुला । वचासिद्धार्थलशुनैश्चोर्द्ध्वग्राही महाग्रही ॥१५॥
उद्वेजनोर्द्ध्वनिःश्वासः स्वमुष्टिद्वयखादनं । रक्तचन्दनकुष्ठाद्यैर्धूपयेल्लेपयेच्छिशुं ॥१६॥
कपिरोमनखैर्धूपो दशमी रोदनी ग्रही । तच्चेष्टा रोदनं शश्वत् सुगन्धो नीलवर्णता ॥१७॥
धूपो निम्बेन भूतोग्रराजीसर्ज्जरसैर्लिपेत् । बलिं बहिर्हरेल्लाजकुल्माषकरकोदनम्[2] ॥१८॥
यावत्त्रयोदशाहं स्यादेवं धूपादिका क्रिया । गृह्णाति मासिकं वत्सं पूतनासकुली ग्रही ॥१९॥
काकवद्रोदनं श्वासो मूत्रगन्धोऽक्षिमीलनं । गोमूत्रस्नपनं तस्य गोदन्तेन च धूपनम् ॥२०॥
पीतवस्त्रं ददेद्रक्तस्रग्गन्धौ तैलदीपकः । त्रिविधं पायसम्मद्यं तिलमासञ्चतुर्विधम् ॥२१॥
करञ्जाधो यमदिशि सप्ताहं तैर्बलिं हरेत् । द्विमासिकञ्च मुकुटा वपुः शीतञ्च शीतलं ॥२२॥
छर्दिः स्यान्मुखशोषादि पुष्पगन्धांशुकानि च । अपूपमोदनं दीपः कृष्णं नीरादि धूपकम् ॥
तृतीये गोमुखी निद्रा सविण्मूत्रप्ररोदनम् । यवाः प्रियङ्गुः पललं कुल्माषं शाकमोदनम् ॥२४॥
क्षीरं पूर्व्वे ददेन्मध्येऽहनि धूपश्च सर्पिषा । पञ्चभङ्गेन तत् स्नानं चतुर्थे पिङ्गलार्त्तिहृत् ॥
तनुः शीता पूतिगन्धः शोषः स म्रियते ध्रुवम् । पञ्चमी ललना गात्रसादः स्यान्मुखशोषणं ॥
अपानः पीतवर्णश्च मत्स्याद्यैर्दक्षिणे बलिः । षण्मासे पङ्कजा चेष्टा रोदनं विकृतः स्वरः ॥२७॥
मत्स्यमांससुराभक्तपुष्पगन्धादिभिर्बलिः । सप्तमे तु निराहारा पूतिगन्धादिदन्तरुक् ॥२८॥
पिष्टमांससुरामांसैर्बलिः स्याद्यमुनाष्टमे । विस्फोटशोषणाद्यं स्यात् तच्चिकित्साञ्च कारयेत् ॥
नवमे कुम्भकर्ण्यार्त्तो ज्वरी च्छर्दति पालकम् । रोदनं मांसकुल्माषमद्याद्यैर्वैश्वके बलिः ॥३०॥
दशमे तापसी चेष्टा निराहारोक्षिमीलनम् । घण्टा पताका पिष्टोक्ता सुरामांसबलिः समे ॥३१॥
राक्षस्येकादशी पीड़ा नेत्राद्यं न चिकित्सनम् । चञ्चला द्वादशे श्वासः त्रासादिकविचेष्टितम् ॥
बलिः पूर्व्वेऽथ मध्याह्ने कुल्माषाद्यैस्तिलादिभिः । यातना तु द्वितीयेऽब्दे यातनं रोदनादिकम् ॥
तिलमांसमद्यमांसैर्बलिः स्नानादि पूर्ववत । तृतीये रोदनी कम्पो रोदनं रक्तमूत्रकं ॥३४॥
गुड़ौदनं तिलापूपः प्रतिमा तिलपिष्टजा । तिलस्नानं पञ्चपत्रैर्धूपो राजफलत्वचा ॥३५॥
चतुर्थे चटकाशोफो ज्वरः सर्व्वाङ्गसादनम् । मत्स्यमांसतिलाद्यैश्च बलिः स्नानञ्च धूपनम् ॥
चञ्चला पञ्चमेऽब्दे तु ज्वरत्रासोऽङ्गसादनम् । मांसौदनाद्यैश्च बलिर्मेषशृङ्गेण धूपनम् ॥३७॥
पलाशोदुम्बराश्वत्थवटबिल्वदलाम्बुधृक् । षष्ठेऽब्दे धावनीशोषो वैरस्यं[3] गात्रसादनम् ॥३८॥

---

१. धूपदीपे चेति ट० । २. करकोदनमिति ख. ।
३. वैवर्ण्यमिति ठ. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सप्ताहोभिर्बलिः पूर्वैर्धूपस्नानञ्च भङ्गकैः[1] । सप्तमे यमुनाच्छर्दिरवचोहासरोदनम् ॥३९॥
मांसपायसमद्याद्यैर्बलिः स्नानञ्च धूपनम् । अष्टमे वा जातवेदा निराहारं प्ररोदनम् ॥४०॥
कृशरापूपदध्याद्यैर्बलिः स्नानञ्च धूपनम् । कालाब्दे नवमे वाहोरास्फोटो गर्जनं भयम् ॥४१॥
बलिः स्यात् कृशरापूपशक्तुकुल्मासपायसैः। दशमेऽब्दे कलहंसी दाहोऽङ्गकृशता ज्वरः ॥४२॥
पौलिकापूपदध्यन्नैः पञ्चरात्रं बलिं हरेत । निम्बधूपकुष्ठलेप एकादशमके ग्रही ॥४३॥
देवदूती निष्ठुरवाक् बलिर्लेपादि पूर्ववत् । बलिका द्वादशे श्वासो बलिर्लेपादि पूर्ववत् ॥४४॥
त्रयोदशे वायवी च मुखशाह्याङ्गसादनम् । रक्तान्नगन्धमाल्याद्यैर्बलिः पञ्चदलैः स्नपेत् ॥
राजीनिस्वदलैर्धूपो यक्षिणी च चतुर्दशे। चेष्टा शूलं ज्वरो दाहो मांसभक्षादिकैर्बलिः ॥४६॥

स्नानादि पूर्ववच्छान्त्यै मुण्डिकार्त्तिस्त्रिपञ्चके ।
तच्चेष्टासृक्श्रवः शश्वत्कुर्यान्मातृचिकित्सनम् ॥ ४७ ॥

वानरी षोडशी भूमौ पतेन्निद्रा सदा ज्वरः । पायसाद्यैस्त्रिरात्रञ्च बलिः स्नानादि पूर्ववत् ॥
गन्धवती सप्तदशे गात्रोद्वेगः प्ररोदनम् । कुल्माषाद्यैर्बलिः स्नानधूपलेपादि पूर्ववत् ॥४९॥

दिनेशाः पूतना नाम वर्षेशाः सुकुमारिकाः ।

ओं नमः सर्वमातृभ्यो बालपीड़ासंयोगं भुञ्ज भुञ्ज चुट चुट स्फोटय स्फोटय स्फुर स्फुर गृह्ण गृह्ण आकट्टय आकट्टय एवं सिद्धरूपो ज्ञापयति । हर हर निर्दोषं कुरु कुरु बालिकां बालं स्त्रियम् पुरुषं वा सर्वग्रहाणामुपक्रमात् ।

चामुण्डे नमो देव्यै ह्रूँ ह्रूँ ह्रीँ अपसर अपसर दुष्टग्रहान् ह्रूँ तद्यथा गच्छन्तु गृह्यकाः अन्यत्र पन्थानं रुद्रो ज्ञापयति ।

सर्वबालग्रहेषु स्यान्मन्त्रोऽयं सर्वकामिकः ॥ ५० ॥

ओं नमो भगवति चामुण्डे मुञ्च मुञ्च बलिं बालिकां वा ।
बलिं गृह्ण गृह्ण जय जय वस वस । सर्वत्र बलिदानेऽयं रक्षाकृत पठ्यते मनुः ॥
ब्रह्मा विष्णुः शिवः स्कन्दो गौरी लक्ष्मीर्गणादयः । रक्षन्तु च ज्वराभ्यान्तं मुञ्चन्तु च कुमारकम् ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये बालग्रहहरं बालतन्त्रं नाम नवनवत्यधिक-
द्विशततमोऽध्यायः ।

त्रिशततमोऽध्यायः

ग्रहहृन्मन्त्रादिकम् ।

अग्निरुवाच

ग्रहापहारमन्त्रादीन् वक्ष्ये ग्रहविमर्दनान् । हर्षेच्छाभयशोकादिविरुद्धाशुचिभोजनात् ॥१॥
गुरुदेवादिकोपाच्च पञ्चोन्मादा भवन्त्यऽथ । त्रिदोषजाः सन्निपाता आगन्तुरिति ते स्मृताः ॥

---

१. भागकैरिति ख. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

देवादयो ग्रहा जाता रुद्रक्रोधादनेकधा। सरित्सरस्तड़ागादौ शैलोपवनसेतुषु ॥३॥
नदीसङ्गे शून्यगृहे विलद्वार्य्येकवृक्षके। ग्रहा गृह्णन्ति पुंसश्च स्त्रियः[1] सुप्ताञ्च गर्भिणीम् ॥४॥
आसन्नपुष्पान्नग्नाञ्च ऋतुस्नानं करोति या। अवमानं नृणां वैरं विघ्नं भाग्यविपर्य्ययः॥५॥
देवतागुरुधर्म्मादिसदाचारादिलङ्घनम् । पतनं शैलवृक्षादेर्विधुन्वन्मूर्द्धजं मुहुः ॥६॥
रुदन्नृत्यति रक्ताक्षो हूंरूपोऽसुग्रही नरः। उद्विग्नः शूलदाहार्त्तः क्षुत्तृष्णार्त्तः शिरोर्त्तिमान् ॥
देहि दहीति याचेत बलिकामग्रही नरः। स्त्रीमालाभोगस्नानेच्छुरतिकामग्रही नरः ॥८॥
महासुदर्शनो व्योमव्यापी विटपनासिकः[2]। पातालनारसिंहाद्या चण्डीमन्त्रा ग्रहार्द्दनाः ॥९॥
पृश्नीहिङ्गुवचाचक्रशिरीषदयितम्परम् । पाशाङ्कुशधरं देवमक्षमालाकपालिनम् ॥१०॥
खट्वाङ्गाब्जादिशक्तिञ्च दधानं चतुराननम्। अन्तर्बाह्यादिखट्वाङ्गरन्ध्रस्थं रविमण्डले ॥११॥
आदित्यादियुतं प्राच्यें उदितेर्केऽर्घ्यकं ददेत्। श्वासविपाग्निविप्रकुण्डीहृल्लेखासकलो भृगुः ॥
अर्काय भूर्भुवः स्वश्च ज्वालिनीं कुलमुद्गरम्। पद्मासनोऽरुणो रक्तवस्त्रसद्युतिविश्वकः॥१३॥
उदारः पद्मधृग्दोर्भ्यां सौम्यः सर्व्वाङ्गभूषितः। रक्ता हृदादयः सौम्या वरदाः पद्मधारिणः॥
विद्युत्पुञ्जनिभं वस्त्रं श्वेतः सौम्योऽरुणः कुजः। बुधस्तद्वद्गुरुः पीतः शुक्लः शुक्रः शनैश्वरः ॥
कृष्णाङ्गारनिभो राहुर्धूम्रः केतुरुदाहृतः। वामोरुवामहस्तान्ते दक्षहस्ताभयप्रदा ॥१६॥
स्वनामाद्यन्तु वीजास्ते हस्तौ संशोध्य चास्त्रतः। अङ्गुष्ठादौ तले नेत्रे हृदाद्यं व्यापकं न्यसेत् ॥
मूलवीजैस्त्रिभिः प्राणव्यायकं न्यस्य साङ्गकम्। प्रक्षाल्य पात्रमस्त्रेण मूलेनापूर्य्य वारिणा ॥
गन्धपुष्पाक्षतं न्यस्य दूर्व्वामर्घ्यञ्च मन्त्रयेत्। आत्मानं तेन सम्प्रोक्ष्य पूजाद्रव्यञ्च वै ध्रुवम् ॥
प्रभूतं विमलं सारमाराध्यं परमं सुखम्। पीठाद्यान् कल्पयेदेतान् हृदा मध्ये विदिक्षु च ॥
पीठोपरि हृदा मध्ये दिक्षु चैव विदिक्षु च। पीठोपरि हृदाब्जञ्च केशवेष्वष्टशक्तयः ॥२१॥
धां दीप्तां वीं तथा सूक्ष्मां वुञ्जयां वूञ्च भद्रिकां। वें विभूतीं वैं विमलां वोमसिघातविद्युताम्॥
वौं सर्वतोमुखीं वं पीठं वः प्राच्यं रविं यजेत्। आवाह्य दद्यात् पाद्यादि हृत्पङ्क्तेन सुव्रत ॥
खकारौ दण्डिनौ चण्डौ मज्जा दशनसंयुता। मांसदीर्घा जरद्वायुहृद्दैतत सर्वदं रवेः ॥२४॥
वह्नीशरक्षो मरुतां दिक्षु पूज्या हृदादयः। स्वमन्त्रैः कर्णिकान्तस्था दिक्षवस्त्रं पुरतः सदृक् ॥
पूर्व्वादिदिक्षु सम्पूज्याश्चन्द्रज्ञगुरुभार्गवाः। नस्याञ्जनादि कुर्वीत साजमूत्रैर्ग्रहापहैः ॥२६॥
पाठापथ्यावचाशिग्रुसिन्धुव्योषैः पृथक् फलैः। अजाक्षीराढके पक्वसर्पिः सर्वग्रहान् हरेत् ॥
वृश्चिकालीफलीकुष्ठं लवणानि च शार्ङ्गकम्। अपस्मारविनाशाय तज्जलं त्वभिभोजयेत् ॥२८॥
विदारीकुशकाशेक्षुकाथजं पाययेत् पयः। द्रोणे सयष्टिकुष्माण्डरसे सर्पिश्च संस्कृतौ ॥२९॥

पञ्चगव्यं घृतं तद्वद्योगं ज्वरहरं शृणु।
ओं भस्मास्त्राय विद्महे एकदंष्ट्राय धीमहि तन्नो ज्वरः प्रचोदयात्।
कृष्णोषणनिशारास्नाद्राक्षातैलं गुडं लिहेत् ॥ ३० ॥

श्वासवानथ वा भार्गीं सयष्टिमधुसर्पिषा। पाठा तिक्ता कणा भार्गी अथवा मधुना लिहेत् ॥

---

१. स्त्रिय इति ञ. ट. च।

२. चिपिटनासिक इति ञ.।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

धात्री विश्वसिता कृष्णा मुस्ता खर्जूरमागधी। पिवरश्चेति हिक्काघ्नं तत् त्रयं मधुना लिहेत्॥
कामली जीरमाण्डूकीनिशाधात्रीरसं पिवेत्।
व्योषपद्मकत्रिफलाकिड़ङ्गदेवदारवः। रास्नाचूर्णं समं खण्डैर्जग्ध्वा कासहरं ध्रुवम्॥३३॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये ग्रहघ्नमन्त्रादिकं नाम
त्रिशततमोऽध्यायः।

६पत्र

एकाधिकत्रिशततमोऽध्यायः

सूर्य्यार्च्चनम्।

धन्वन्तरिरुवाच

शय्या तु दण्डिसाजेशपावकश्चतुराननः। सर्व्वार्थसाधकमिदं वीजं पिण्डार्थमुच्यते॥१॥
स्वयं दीर्घस्वराद्यञ्च वीजेष्वङ्गानि सर्वशः। खातं साधु विषञ्चैव सविन्दुं सकलं तथा॥
गणस्य पञ्च वीजानि पृथग्दृष्टफलं महत्।
गणं जयाय नमः एकदंष्ट्राय अचलकर्णिने गजवक्त्राय महोदरहस्ताय॥
पञ्चाङ्गं सर्व्वसामान्यं सिद्धिः स्याल्लक्षजाप्यतः॥ ३॥
गणाधिपतये गणेश्वराय गणनायकाय गणक्रीडाय।
दिग्दले पूजयेन्मूर्त्तीः पुरावच्चाङ्गपञ्चकम्॥
वक्रतुण्डाय एकदंष्ट्राय महोदराय गजवक्त्राय।
विकटाय विघ्नराजाय धूम्रवर्णाय। दिग्विदिक्षु यजेदेतांल्लोकांशांश्चैव मुद्रया॥४॥
मध्यमातर्ज्जनीमध्यगताङ्गुष्ठौ ससुष्टिकौ। चतुर्भुजो मोदकाढ्यो दण्डपाशाङ्कुशान्वितः॥५॥
दन्तभक्षधरं रक्तं साब्जं पाशाङ्कुशैर्वृतम्। पूजयेत्तं चतुर्थ्याञ्च विशेषेणाथ नित्यशः॥६॥
श्वेतार्कमूलेन कृतं सर्व्वाप्तिः स्यात्तिलैर्घृतैः। तण्डुलैर्दधिमध्वाज्यैः सौभाग्यं वश्यता भवेत्॥
घोषासृक्प्राणधात्वर्दी दण्डी मार्त्तण्डभैरवः। धर्म्मार्थकाममोक्षाणां कर्त्ता विम्बपुटावृतः॥
ह्रस्वाः स्युर्मूर्त्तयः पञ्च दीर्घा अङ्गानि तस्य च। सिन्दूरारुणमीशाने वामार्द्धदयितं रविं॥
आग्नेयादिषु कोणेषु कुजमन्दाहिकेतवः। स्नात्वा विधिवदादित्यमाराध्यार्घ्यपुरःसरं॥१०॥
कृतान्तमैशे निर्म्माल्यं तेजश्चण्डाय दीपितं। रोचना कुङ्कुमं वारि रक्तगन्धाक्षताङ्कुराः॥११॥
वेणुवीजयवाः शालिश्यामाकतिलराजिकाः।
जवापुष्पान्वितां दत्वा पात्रैः शिरसि धार्य्यं तत्[1]॥ १२॥
जानुभ्यामवनीङ्गत्वा सूर्य्यायार्घ्यं निवेदयेत्। स्वविद्यामन्त्रितैः कुम्भैर्नवभिः प्राच्यं वै महान्॥
ग्रहादिशान्तये स्नानं जप्त्वार्क्कं सर्वमाप्नुयात्। संग्रामविजयं साग्निं वीजदोषं सविन्दुकं॥

---

१. धार्य्यं चेति.ख.।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

न्यस्य मूर्द्धादिपादान्तं मूलं पूज्य तु मुद्रया । स्वाङ्गानि च यथान्यासमात्मानं भावयेद्रविं ॥
ध्यानञ्च मारणस्तम्भे पीतमाप्यायने सितम् । रिपुघातविधौ[1] कृष्णं मोहयेच्छक्रचापवत् ॥
योऽभिषेकजपध्यानपूजाहोमपरः सदा । तेजस्वी ह्यजयः श्रीमान् समुद्रादौ जयं लभेत् ॥
ताम्बूलादाविदं न्यस्य जप्त्वा दद्यादुशीरकं । न्यस्तबीजेन हस्तेन स्पर्शनं तद्वशे स्मृतं ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये सूर्यार्च्चनं नामैकाधिक-

त्रिशततमोऽध्यायः ।

द्व्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः

नानामन्त्राः ।

अग्निरुवाच

वाकर्म्मपार्श्वयुक्शुक्रतोकक्रते मतो प्लवः । हुतान्ता देशवर्णेयं विद्या मुख्या सरस्वती ॥१॥
अक्षाराशी वर्णलक्षं जपेत् स मतिमान् भवेत् । अत्रिः सवह्निर्मांमाक्षिविन्दुरिन्द्राय हृत्परः ॥
वज्रपद्मधरं शक्रं पीतमावाह्य पूजयेत् । नियुतं होमयेदाज्यतिलांस्तेनाभिषेचयेत् ॥३॥
नृपादिर्भ्रष्टराज्यादीन्राज्यपुत्रादिमाप्नुयात ।
हृल्लेखा शक्तिदेवाख्या दोषाग्निर्दण्डिदण्डवान् ॥ ४ ॥
शिवमिष्ट्वा जपेच्छक्तिमष्टम्यादिचतुर्दशीं । चक्रपाशाङ्कुशधरां साभयां वरदायिकां ॥५॥
होमादिना च सौभाग्यं कवित्वं पुत्रवान् भवेत ।
ओं ह्रीं ओं नमः कामाय सर्व्वजनहिताय सर्व्वजनमोहनाय प्रज्वलिताय सर्व्वजनहृदयं ममात्मगतं कुरु२ ओं ।
एतज्जपादिना मन्त्रो वशयेत् सकलं जगत् ॥ ६ ॥
ओं ह्रीं चामुण्डेअमुकन्दह२ पच२ मम वशमानय२ ठ२ ।
वशीकरणकृन्मन्त्रश्चामुण्डायाः प्रकीर्त्तितः । फलत्रयकषायेण वराङ्गं क्षालयेद्वशे ॥७॥
अश्वगन्धायवैः स्त्री तु निशाकर्पूरकादिना । पिप्पलीतण्डुलान्यष्टौ मरिचानि च विंशतिः ॥
बृहतीरसलेपश्च वशे स्यान्मरणान्तिकं । कटीरमूलत्रिकटुक्षौद्रलेपस्तथा भवेत् ॥९॥
हिमं कपित्थकरभं मागधी मधुकं मधु । तेषां लेपः प्रयुक्तस्तु दम्पत्योः स्वस्तिमावहेत् ॥१०॥
सशर्क्करयोनिलेपात् कदम्बरसको मधु । सहदेवी महालक्ष्मीः पुत्रजीवी कृताञ्जलिः ॥११॥
एतच्चूर्णं शिरःक्षिप्तं लोकस्य वशमुत्तमम् । त्रिफला चन्दनक्काथप्रस्था द्विकुडवम् पृथक् ॥
भृङ्गहेमरसन्दोषातावती चुञ्चुकं मधु । घृतैः पक्वा निशा छाया शुष्का लोप्या तु रञ्जनी ॥
विदारीं सोच्चटामाषचूर्णीभूतां सशर्करां । मथितां यः पिवेत् क्षीरैर्नित्यं स्त्रीशतकं व्रजेत् ॥१४॥

---

१. विद्युत्पातविधाविति घ. ज. ञ. ट. च ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

गुलममाषतिलव्रीहिचूर्णक्षीरसितान्वितं । अश्वत्थवंशदर्भाणां मूलं त्रै वैष्णवीश्रियोः ॥१५॥
मूलं दूर्व्वाश्वगन्धोत्थं पिवेत् क्षीरैः सुतार्थिनी ।
कौन्तीलक्ष्म्याः शिफा धात्री वज्रं लोध्रं वटाङ्कुरम् ॥ १६ ॥
आज्यक्षीरमृतौ पेयं पुत्रार्थं त्रिदिवं स्त्रिया । पुत्रार्थिनी पिवेत क्षीरं श्रीमूलं सवटाङ्कुरम् ॥
श्रीवटाङ्कुरदेवीनां रसं नस्ये पिवेच्च सा । श्रीपद्ममूलमुत्क्षीरमश्वत्थोत्तरमूलयुक् ॥१८॥
तरलं पयसा युक्तं कार्पासफलपल्लवं । अपामार्गस्य पुष्पाग्रं नवं समहिषीपयः ॥१९॥
पुत्रार्थश्चार्द्धपट्शाकैर्योगाश्चत्वार ईरिताः । शर्करोत्पलपुष्पाक्षलोध्रचन्दनसारिवाः ॥२०॥
स्रवमाणे स्त्रिया गर्भे दातव्यास्तण्डुलाम्भसा ।
लाजा यष्टिसिताद्राक्षाक्षौद्रसर्पींषि वा लिहेत् ॥ २१ ॥
अटरुषकलाङ्गुल्यः काकमाच्याः शिफा पृथक् । नाभेरधः समालिप्य प्रसूते प्रमदा सुखम् ॥
रक्तं शुक्लं जवापुष्पं रक्तशुक्लस्तुतौ पिवेत् । केशरं वृहतीमूलं गोपीर्यष्टितृणोत्पलम् ॥२३॥
साजक्षीरं सतैलं तद्भक्षणं रोमजन्मकृत् । शीर्य्यमाणेषु केशेषु स्थापनञ्च भवेदिदम् ॥२४॥
धात्रीभृङ्गरसप्रस्थतैलञ्च क्षीरमाढकम् ।
ओं नमो भगवते त्र्यम्बकाय उपशमय २ चुलु २ मिलि २ भिद २ गोमानिनि चक्रिणि ह्रूं फट् ॥
अस्मिन् ग्रामे गोकुलस्य रक्षां कुरु २ शान्तिं कुरु२ ।
घण्टाकर्णो महासेनो वीरः प्रोक्तो महाबलः ॥ २५ ॥
मारीनिर्नाशनकरः स मां पातु जगत्पतिः । श्लोकौ चैत्र न्यसेदेतौ मन्त्रौ गोरक्षकौ पृथक् ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये नानामन्त्रा नाम द्व्यधिक-
त्रिशततमोऽध्यायः ।

त्र्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः

अङ्गाक्षरार्च्चनम् ।

अग्निरुवाच

यदा जन्मर्क्षगश्चन्द्रो भानुः सप्तमराशिगः । पौष्णः कालः स विज्ञेयस्तदा ग्रासं परीक्षयेत् ॥
कण्ठोष्ठौ चलतः स्थानाद्यस्य वक्रा च नासिका ।
कृष्णा च जिह्वा सप्ताहं जीवितं तस्य वै भवेत् ॥ २ ॥
तारो मेषो विपं दन्ती नरो दीर्घो घणा रसः। क्रुद्धोल्काय महोल्काय वीरोल्काय शिखा भवेत्॥
द्युल्काय सहसोल्काय वैष्णवोष्टाक्षरो मनुः । कनिष्ठादितदष्टानामङ्गुलीनाञ्च पर्वसु ॥४॥
ज्येष्ठाग्रेण क्रमात्तावन् मूर्द्धन्यष्टाक्षरं न्यसेत् । तर्ज्जन्यान्तारमङ्गुष्ठे लग्ने मध्यमया च तत् ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तलेङ्गुष्ठे तदुत्तारं बीजोत्तारं ततो न्यसेत् । रक्तगौरधूम्रहरिज्जातरूपाः सिताश्वथः ।।६।।
एवं रूपानिमान् वर्णान् भाववुद्धान्न्यसेत् क्रमात् । हृदास्यनेत्रमूर्द्धाङ्घ्रितालुगुह्यकरादिषु[१] ।।
अङ्गानि च न्यसेद्बीजान्न्यस्याथ करदेहयोः । यथात्मनि तथा देवे न्यासः कार्य्यः करं विना ।।
हृदादिस्थानगान् वर्णान् गन्धपुष्पैः समर्च्चयेत् ।
धर्म्माद्यग्न्याद्यधर्मादि गात्रे पीठेऽम्बुजे न्यसेत् ।। ९ ।।
यत्र केशरकिञ्जल्कव्यापिसूर्य्येन्दुदाहिनां । मण्डलन्त्रितयन्तात्रद् भेदैस्तत्र न्यसेत् क्रमात् ।।
गुणाश्च तन्त्रसत्वाद्याः केशरस्थाश्च शक्तयः । विमलोत्कर्षणीज्ञानक्रियायोगाश्च वै क्रमात् ।।
प्रह्वी सत्या तथेशानानुग्रहा मध्यतस्ततः । योगपीठं समभ्यर्च्य समावाह्य हरिं यजेत् ।।१२।।
पाद्यार्घ्याचमनीयञ्च पीतवस्त्रविभूषणं । एतत् पञ्चोपचारञ्च सर्व्वं मूलेन दीयते ।।१३।।
वासुदेवादयः पूज्याश्चत्वारो दिक्षु मूर्त्तयः । विदिक्षु श्रीसरस्वत्यै रतिशान्त्यै च पूजयेत् ।।
शङ्खं चक्रं गदां पद्मं मुषलं खड्गशार्ङ्गिके । वनमालान्वितं दिक्षु विदिक्षु च यजेत् क्रमात् ।।
अभ्यर्च्यं च वहिस्तार्क्ष्यं देवस्य पुरतोऽर्च्चयेत् । विश्वक्सेनञ्च सोमेशं मध्ये आवरणाद्बहिः[२] ।।
इन्द्रादिपरिचारेण पूज्य सर्व्वमवाप्नुयात् ।। १६ ।।

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये अङ्गाक्षरार्च्चनं नाम त्र्यधिक-
त्रिशततमोऽध्यायः ।

चतुरधिकत्रिशततमोऽध्यायः

पञ्चाक्षरादिपूजामन्त्राः ।

अग्निरुवाच

मेषः संज्ञा विषं साज्यमस्ति दीर्घोदकं रसः । एतत् पञ्चाक्षरं मन्त्रं शिवदञ्च शिवात्मकं ।।१।।
तारकादि समभ्यर्च्चर्य देवत्वादि ससाप्नुयात् । ज्ञानात्मकं परं ब्रह्म परं वुद्धिः शिवो हृदि ।।
तच्छक्तिभूतः सर्व्वेशो भिन्नो ब्रह्मादिमूर्त्तिभिः ।
मन्त्रार्णाः पञ्च भूतानि तन्मन्त्रा विषयास्तथा ।। ३ ।।
प्राणादिवायवः पञ्च ज्ञानकर्म्मेन्द्रियाणि च । सर्वं पञ्चाक्षरं ब्रह्म तद्वदष्टाक्षरान्तकः ।।४।।
गव्येन प्रोक्षयेदीक्षास्थानं मन्त्रेण चोदितं । तन्त्रसम्भूतसम्भावः शिवमिश्रा विधानतः ।।५।।
मूलमूर्त्त्यङ्गविद्याभिस्तण्डुलक्षेपणादिकम् । कृत्वा चरुञ्च यत् क्षीरं पुनस्तद्विभजेत् त्रिधा ।।
निवेद्यैकं परं हुत्वा सशिष्योऽन्यद् भजेद्गुरुः । आचम्य सकलीकृत्य दद्याच्छिष्याय देशिकः ।।
दन्तकाष्ठं हृदा जप्तंक्षीरवृक्षादिसम्भवम् । संशोध्य दन्तान् संक्षिप्त्वा प्रक्षाल्यैतत् क्षिपेद्भुवि ।।

---

१. हृदास्यनेत्रमूर्द्धाङ्घ्रिजानुगुह्यकरादिष्विति ख. ।
२. मध्येषु तोरणद्बहिरिति ख. ज. ञ. च ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पूर्व्वेण सौम्यवारीशग शुभमतौ शुभम् । पुनस्तं शिष्यमायान्तं[१] शिखाबन्धादिरक्षितं ॥९॥
कृत्वा वेद्यां सहानेन स्वपेद्दर्भास्तरे बुधः । सुषुप्तं वीक्ष्य तं शिष्यः प्रभाते श्रावयेद्गुरुं ॥१०॥
शुभैः सिद्धिपदैर्भक्तिस्तैः पुनर्म्मण्डलार्च्चनम् । मण्डलं भद्रकाद्युक्तं पूजयेत्सर्व्वसिद्धिदं ॥
स्नात्वाचम्य मृदा देहं मन्त्रैरालिप्य कल्पयते । शिवतीर्थे नरः स्नायादघमर्षणपूर्वकम् ॥१२॥
हस्ताभिषेकं कृत्वाथ प्रायात् पूजादिकं बुधः । मूलेनाब्जासनं कुर्य्यात्तेन पूरककुम्भकान् ॥१३॥
आत्मानं योजयित्वोद्ध्वं शिखान्ते द्वादशाङ्गुले । संशोष्य दग्ध्वा स्वतनुं प्लावयेदमृतेन च ॥१४॥

ध्यात्वा दिव्यं वपुस्तस्मिन्नात्मानञ्च पुनर्नयेत् ।
कृत्वैवं चात्मशुद्धिः स्याद्विन्यस्याच्चर्चनमारभेत् ॥ १५ ॥

क्रमान् कृष्णसितश्यामरक्तपीता नगादयः । मन्त्राणां दण्डिनाङ्गानि तेषु सर्व्वासु मूर्त्तयः ॥
अङ्गुष्ठादिकनिष्ठान्तं विन्यस्याङ्गानि सर्व्वतः । न्यसेन्मन्त्राक्षरं पादगुह्यहृद्वक्त्रमूर्द्धसु ॥१७॥

व्यापकं न्यस्य मूर्द्धादि मूलमङ्गानि विन्यसेत् ।
रक्तपीतश्यामसितान् पीठपादान् स्वकालजान् ॥ १८ ॥
स्वाङ्गान्मन्त्रैर्न्यसेद्गात्राण्यधर्म्मादीनि दिक्षु च ।
तत्र पद्मञ्च सूर्य्यादिमण्डले त्रितयं गुणान् ॥ १९ ॥

पूर्व्वादिपत्रे कामाद्या नवकं कर्णिकोपरि । वामा ज्येष्ठा क्रमाद्रौद्री काली कलविकारिणी ॥
बलविकारिणी चाथ बलप्रमथनी तथा । सर्व्वभूतदमनी च नवमी च मनोन्मनी ॥२१॥

श्वेता रक्ता सिता पीता श्यामा वह्निनिभाषिता ।
कृष्णारुणाश्च ताः शक्तीर्ज्वालारूपाः स्मरेत् क्रमात् ॥ २२ ॥

अनन्तयोगपीठाय आवाह्याथ हृदब्जतः । स्फटिकाभं चतुर्व्वाहुं फलशूलधरं शिवम् ॥२३॥
साभयं वरदं पञ्चवदनञ्च त्रिलोचनम् । पत्रेषु मूर्त्तयः पञ्च स्थाप्यास्तत्पुरुषादयः ॥२४॥
पूर्व्वे तत्पुरुषः श्वेतो अघोरोऽष्टभुजोऽसितः । चतुर्व्वाहुमुखः पीतः सद्योजातश्च पश्चिमे ॥
वामदेवः स्त्रीविलासी चतुर्वक्त्रभुजोऽरुणः । सौम्ये पञ्चास्य ईशाने ईशानः सर्व्वदः सितः ॥
इष्टाङ्गानि यथान्यायमनन्तं सूक्ष्ममर्च्चयेत् । सिद्धेश्वरं त्वेकनेत्रं पूर्व्वादौ दिशि पूजयेत् ॥
एकरुद्रं त्रिनेत्रञ्च श्रीकण्ठञ्च शिखण्डिनम् । ऐशान्यादिविदिक्ष्वेते विद्येशाः कमलासनाः[२] ॥
श्वेतः पीतः सितो रक्तो धूम्रो रक्तोऽरुणः शितः । शूलाशनिशरेष्वासवाहवश्चतुराननाः ॥
उमा चण्डेशनन्दीशौ महाकालो गणेश्वरः । वृषो भृङ्गरिटिस्कन्दानुत्तरादौ प्रपूजयेत् ॥३०॥
कुलिशं शक्तिदण्डौ च खड्गपाशध्वजौ गदां । शूलं चक्रं यजेत् पद्मं पूर्व्वादौ देवमर्च्य च ॥
ततोऽधिवासितं शिष्यं पाययेद् गव्यपञ्चकम् । आचान्तं प्रोक्ष्य नेत्रान्तैर्नेत्रे नेत्रेण बन्धयेत् ॥
द्वारं प्रवेशयेच्छिष्यं मण्डपस्याथ दक्षिणे । सासनादिकुशासीनं तत्र संशोधयेद्गुरुः ॥३३॥
आदितत्त्वानि संहृत्य परमार्थे लयः क्रमात् । पुनरुत्पादयेच्छिष्यं सृष्टिमार्गेण देशिकः ॥
न्यासं शिष्ये ततः कृत्वा तं प्रदक्षिणमानयेत् । पश्चिमद्वारमानीय क्षेपयेत् कुसुमाञ्जलिम् ॥

---

१. शिष्यमाचान्तमिति ञ. ।　　२. कमलानना इति ञ. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यस्मिन् पतन्ति पुष्पाणि तन्नामाद्यं विनिर्दिशेत् । पार्श्वे यागभुवः खाते कुण्डे सन्नाभिमेखले[१]॥

शिवाग्निं जनयित्वेष्ट्वा पुनः शिष्येण चार्च्चयेत् ।
ध्यानेनात्मनिभं शिष्यं संहृत्य प्रलयः क्रमात् ॥ ३७ ॥

पुनरुत्पाद्य तत्पाणौ दद्याद्दर्भांश्च मन्त्रितान् । पृथिव्यादीनि तत्त्वानि जुहुयाद्धृदयादिभिः॥
एकैकस्य शतं हुत्वा व्योममूलेन होमयेत् । हुत्वा पूर्णाहुतिं कुर्य्यादस्त्रेणाष्टाहुतीर्हुनेत् ॥३९॥
प्रायश्चित्तं विशुद्ध्यर्थं ततः शेषं समापयेत् । कुम्भं समन्त्रितं प्राच्यं शिशुं पीठेऽभिषेचयेत् ॥
शिष्ये तु समयं दत्वा स्वर्णाद्यैः स्वगुरुं यजेत् । दीक्षा पञ्चाक्षरस्योक्ता विष्ण्वादेरेवमेव हि ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये पञ्चाक्षरादिपूजामन्त्रा नाम चतुरधिक-
त्रिशततमोऽध्यायः ।

पञ्चाधिकत्रिशततमोऽध्यायः

पञ्चपञ्चाशद्विष्णुनामानि ।

अग्निरुवाच

जपन् वै पञ्चपञ्चाशद्विष्णुनामानि यो नरः । मन्त्रजप्यादिफलभाक् तीर्थेष्वर्चादि चाक्षयम् ॥
पुष्करे पुण्डरीकाक्षं गयायाञ्च गदाधरम् । राघवञ्चित्रकूटे तु प्रभासे दैत्यसूदनम् ॥२॥
जयं जयन्त्यां तद्वच्च जयन्तं हस्तिनापुरे । वाराहं वर्द्धमाने च काश्मीरे चक्रपाणिनम् ॥३॥
जनार्दनञ्च कुब्जाम्रे मथुरायाञ्च केशवम् । कुब्जाम्रके हृषीकेशं गङ्गाद्वारे जटाधरम् ॥४॥
शालग्रामे महायोगं हरिं गोवर्द्धनाचले । पिण्डारके चतुर्व्वाहुं शङ्खोद्धारे च शङ्खिनम् ॥५॥
वामनञ्च कुरुक्षेत्रे यमुनायां त्रिविक्रमम् । विश्वेश्वरं तथा शोणे कपिलं पूर्व्वसागरे ॥६॥
विष्णुं महोदधौ विद्याद्गङ्गासागरसङ्गमे । वनमालञ्च किष्किन्ध्यां देवं रैवतकं विदुः ॥७॥
काशीतटे महायोगं विरजायां रिपुञ्जयम् । विशाखयूपे ह्यजितन्नेपाले लोकभावनम् ॥८॥
द्वारकायां विद्धि कृष्णं मन्दरे मधुसूदनम् । लोकाकुले रिपुहरं शालग्रामे हरिं स्मरेत् । ९॥
पुरुषं पूरुषवटे विमले च जगत्प्रभुं । अनन्तं सैन्धवारण्ये दण्डके शार्ङ्गधारिणम् ॥१०॥
उत्पलावर्त्तके शौरिं नर्म्मदायां श्रियः पतिं । दामोदरं रैवतके नन्दायां जलशायिनं ॥११॥
गोपीश्वरञ्च सिन्ध्वब्धौ माहेन्द्रे चाच्युतं विदुः । सह्याद्रौ देवदेवेशं वैकुण्ठं मागधे वने ॥१२॥
सर्व्वपापहरं विन्ध्ये औड्रे तु पुरुषोत्तमम् । आत्मानं हृदये विद्धि जपतां भुक्तिमुक्तिदम् ॥
वटे वटे वैश्रवणं चत्वरे चत्वरे शिवम् । पर्व्वते पर्व्वते रामं सर्व्वत्र मधुसूदनं ॥१४॥
नरं भूमौ तथा व्योम्नि वशिष्ठे गरुड़ध्वजम् । वासुदेवञ्च सर्व्वत्र संस्मरन् भुक्तिमुक्तिभाक्॥

---

१ सन्धादिमेखले इति ख. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नामान्येतानि विष्णोश्च जप्त्वा सर्वमवाप्नुयात् । क्षेत्रेष्वेतेषु यत श्राद्धं दानं जप्यञ्च तर्पणम् ॥
तत्सर्व्वं कोटिगुणितं मृतो ब्रह्ममयो भवेत् । यः पठेत् शृणुयाद्वापि निर्म्मलः स्वर्गमाप्नुयात् ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये पञ्चपञ्चाशद्विष्णुनामानि नाम पञ्चाधिक-
त्रिशततमोऽध्यायः ।

षष्ठाधिकत्रिशततमोऽध्यायः

नारसिंहादिमन्त्राः ।

अग्निरुवाच

स्तम्भो विद्वेषणोच्चाट उत्सादो भ्रममारणे । व्याधिश्चेति स्मृतं क्षुद्रं तन्मोक्षो वक्ष्यते शृणु ॥

ओं नमो भगवते उन्मत्तरुद्राय भ्रम २ भ्रामय २ अमुकं वित्रासय उद्भ्रामय २
रौद्रेण रूपेण हूँ फट् ठ २ ।

श्मशाने निशि जप्तेन त्रिलक्षं मधुना हुनेत् । चिताग्नौ धूर्त्तसमिद्भिर्भ्राम्यते सततं रिपुः ॥२॥
हेमगैरिकया कृष्णा प्रतिमा हैमसूचिभिः । जप्त्वा विध्येच्च तत्कण्ठे हृदि वा म्रियते रिपुः ॥
खरबालचिताभस्म ब्रह्मदण्डी च मर्कटी । गृहे वा मूर्ध्नि तच्चूर्णं जप्तमुत्सादकृत क्षिपेत् ॥४॥
भृग्वाकाशौ सदीप्ताग्निर्भृगुर्वह्निश्च वर्म्म फट् ।
एवं सहस्रारे हूं फट् आचक्राय स्वाहा हृदयं विचक्राय शिवः ।
शिखाचक्रायाथ कवचं विचक्रायाथ नेत्रकम् ॥ ५ ॥
सञ्चक्रायास्त्रमुदिष्टं ज्वालाचक्राय पूर्ववत् । शार्ङ्गं सुदर्शनं क्षुद्रग्रहहृत् सर्व्वसाधनम् ॥६॥
मूर्द्धाक्षिमुखहृद्गुह्यपादे ह्यस्याक्षरान्न्यसेत् । चक्राब्जासनमग्न्याभं दंष्ट्रिणञ्च चतुर्भुजम् ॥
शङ्खचक्रगदापद्मशलाकाङ्कुशपाणिनम् । चापिनं पिङ्गकेशाक्षमरव्याप्तत्रिपिष्टपं ॥८॥
नाभिस्तेनाग्निना विद्धा नश्यन्ते व्याधयो ग्रहाः ।
पीतञ्चक्रं गदा रक्ताः स्वराः श्याममवान्तरं ॥ ९ ॥
नेमिः श्वेता वहिः कृष्णवर्णरेखा च पार्थिवी । मध्येतरेमरे वर्णानेवं चक्रद्वयं[1] लिखेत् ॥१०॥
आदावानीय कुम्भोदं गोचरे सन्निधाय च । दत्त्वा सुदर्शनं तत्र याम्ये चक्रे हुनेत क्रमात् ॥
आज्यापामार्गसमिधो ह्यक्षतं तिलसर्षपौ । पायसं गव्यमाज्यञ्च सहस्राष्टकसंख्यया ॥१२॥
हुतशेषं क्षिपेत् कुम्भे प्रतिद्रव्यं विधानवित् । प्रस्थानेन कृतं पिण्डं कुम्भे तस्मिन्निवेशयेत् ॥
विष्णवादि सर्वं तत्रैव न्यसेत् तत्रैव दक्षिणे ।
नमो विष्णुजनेभ्यः सर्वशान्तिकरेभ्यः प्रतिगृह्णन्तु शान्तये नमः ।

---

१. वर्णद्वयमिति ख. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दद्यादनेन मन्त्रेण हुतशेषाम्भसा बलिं ॥ १४ ॥
फलके कल्पिते पात्रे पलाशं क्षीरशाखिनः । गव्यपूर्णे निवेश्यैव दिद्वेव होमयेद् द्विजः ॥
सदक्षिणमिदं होमद्वयं भूतादिनाशनम् । गव्याक्तपत्रलिखितैर्निष्पर्णैः क्षुद्रमुद्धृतम् ॥१६॥
दूर्वाभिरायुषे पद्मैः श्रिये पुत्रा रुडुम्बरैः । गोसिद्ध्यै सर्पिषा गोष्ठे मेधायै सर्वशाखिना ॥

ओं क्षौं नमो भगवते नारसिंहाय ज्वालामालिने दीप्तदंष्ट्रायाग्निनेत्राय सर्वरक्षोघ्नाय सर्वभूतविनाशाय सर्व्वज्वरविनाशाय दह२ पच२ रक्ष२ हूं फट् ।

मन्त्रोयं नारसिंहस्य सकलाघनिवारणः । जप्यादिना हरेत् क्षुद्रग्रहमारीविषामयान् ॥
चूर्णमण्डूकवयसा जलाग्निस्तम्भकृद्भवेत् ॥ १८ ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये नारसिंहादिमन्त्रा नाम षष्ठाधिक-
त्रिशततमोऽध्यायः ।

सप्ताधिकत्रिशततमोऽध्यायः

त्रैलोक्यमोहनमन्त्राः ।

अग्निरुवाच

वक्ष्ये मन्त्रं चतुर्वर्गसिद्ध्यै त्रैलोक्यमोहनम् ।

ओं श्रीँ ह्रीँ ह्रूँ ओं नमः पुरुषोत्तमः पुरुषोत्तमप्रतिरूप लक्ष्मीनिवास सकलजगत्-क्षोभण सर्वस्त्रीहृदयदारण त्रिभुवनमदोन्मादकर सुरमनुजसुन्दरीजनमनांसि तापय२ दीपय२ शोषय२ मारय२ स्तम्भय२ द्रावय२ आकर्षय२ परमसुभग सर्वसौभाग्यकर कामप्रद अमुकं हन२ चक्रेण गदया खड्गेन सर्व्वबाणैर्भिंद२ पाशेन हट्ट२ अङ्कुशेन ताड़य२ तुरु२ किन्तिष्ठसि यावत्तावत् समीहितं मे सिद्धं भवति हूं फट् नमः ।

ॐ पुरुषोत्तम त्रिभुवनमदोन्मादकर हूँ फट् हृदयाय नमः कर्षय महाबल हूँ फट् अस्त्राय त्रिभुवनेश्वर सर्व्वजनमनांसि हन२ दारय२ मम वशमानय२ हूँ फट् नेत्राय त्रैलोक्यमोहन हृषीकेशाप्रतिरूप सर्वस्त्रीहृदयाकर्षण आगच्छ२ नमः ॥

सङ्गाक्षिण्यायकेन न्यासं मूलवदीरितं ॥ १ ॥
इष्ट्वा सञ्जप्य पञ्चाशतसहस्रमभिषिच्य च । कुण्डेग्नौ देविके वह्नौ चरुं कृत्वा शतं हुनेत् ॥
पृथग्दधि घृतं क्षीरं चरुं साज्यं पयः शृतं । द्वादशाहुतिमूलेन सहस्रञ्चाक्षतांस्तिलान् ॥३॥
यवं मधुत्रयं पुष्पं फलं दधि समिच्छतं । हुत्वा पूर्णाहुतिं शिष्टं प्राशयेत्सघृतं चरुं ॥४॥
सम्भोज्य विप्रानाचार्य्यं तोषयेत्सिध्यते मनुः । स्नात्वा यथावदाचम्य वाग्यतो यागमन्दिरं ॥
गत्वा पद्मासनं बद्ध्वा शोषयेद्विधिना वपुः । रक्षोघ्नविघ्नकृद्दिक्षु न्यसेदादौ सुदर्शनम् ॥६॥
पञ्चबीजं नाभिमध्यस्थं धूम्रं चण्डानिलात्मकम् ।
अशेषं कल्मषं देहात विश्लेषयदनुस्मरेत् ॥ ७ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रंवीजं हृदयाब्जस्थं स्मृत्वा ज्वालाभिरादहेत्। ऊर्द्ध्वाधस्तिर्य्यगाभिस्तु मूर्द्ध्नि संप्लावयेद्वपुः॥
ध्यात्वामृतैर्वहिश्चान्तःसुषुम्नामार्गगामिभिः। एवं शुद्धवपुः प्राणानायम्य मनुना त्रिधा ॥१०॥
विन्यसेन्न्यस्तहस्तान्तः शक्तिं मस्तकवक्त्रयोः। गुह्ये गले दिक्षु हृदि कुक्षौ देहे च सर्व्वतः॥
आवाह्य ब्रह्मरन्ध्रेण हृत्पद्मे सूर्य्यमण्डलात्। तारेण सम्परात्मानं स्मरेत्तं सर्व्वलक्षणं ॥११॥

त्रैलोक्यमोहनाय विद्महे स्मराय धीमहि तन्नो विष्णुः प्रचोदयात।

आत्मार्चनात् क्रतुद्रव्यं प्रोक्षयेच्छुद्धपात्रकं।
कृत्वात्मपूजां विधिना स्थण्डिले तं समर्च्चयेत् ॥ १२ ॥

कूर्म्मादिकल्पिते पीठे पद्मस्थं गरुडोपरि। सर्व्वाङ्गसुन्दरं प्राप्तवयोलावण्ययौवनं ॥१३॥
मदाघूर्णिततात्राक्षमुदारं स्मरविह्वलं। दिव्यमाल्याम्बरलेपभूषितं सस्मिताननं ॥१४॥
विष्णुं नानाविधानेकपरिवारपरिच्छदम्। लोकानुग्रहणं सौम्यं सहस्रादित्यतेजसं ॥१५॥
पञ्चवाणधरं प्राप्तकामैक्षं द्विचतुर्भुजम्। देवस्त्रीभिर्वृतं देवीमुखासक्तेक्षणं जपेत् ॥१६॥
चक्रं शङ्खं धनुः खड्गं गदां मुषलमङ्कुशं। पाशञ्च विभ्रतं चार्च्चेदावाहादिविसर्गतः ॥१७॥

श्रियं वामोरुजङ्घास्थां श्लिष्यन्तीं पाणिना पतिं।
साब्जचामरकरां पीनां श्रीवत्सकौस्तुभान्वितां ॥ १८ ॥
मालिनं पीतवस्त्रञ्च चक्राद्याढ्यं हरिं यजेत।

ओं सुदर्शन महाचक्रराज दुष्टभयङ्कर छिद२ छिन्द२ विदारय२ परममन्त्रान् ग्रस२ भक्षय२ भूतानि चाशय२ हूँ फट् ओं जलचराय स्वाहा। खड्गतीक्ष्ण छिन्द २ खड्गाय नमः। शारङ्गाय सशराय हूं फट्। भूतग्रामाय विद्महे चतुर्व्विधाय धीमहि तन्नो ब्रह्म प्रचोदयात्। सम्वर्त्तक श्वसन पोथय २ हूं फट् स्वाहा। पाश बन्ध २ आकर्षय २ हूँ फट्। अङ्कुशेन कट्ट हूँ फट्।

क्रमाद्भुजेषु मन्त्रैः स्वैरेभिरस्त्राणि पूजयेत् ॥ १९ ॥

ओं पक्षिराजाय हूँ फट्।

तार्क्ष्यं यजेत् कर्णिकायामङ्गदेवान् यथाविधि। शक्तिरिन्द्रादियन्त्रेषु तार्क्ष्याद्या धृतचामराः॥
शक्तयोऽन्ते प्रयोज्यादौ सुरेशाद्याश्च दण्डिना। पीते लक्ष्मीसरस्वत्यौ रतिप्रीतिजयाः सिताः॥
कीर्त्तिकान्त्यौ सिते श्यामे तुष्टिपुष्ट्यौ स्मरोदिते। लोकेशान्तं यजेद्देवं विष्णुमिष्टार्थसिद्धये॥

ध्यायेन्मन्त्रं जपित्वैनं जुहुयात्त्वभिषेचयेत।

ओं श्रीँ क्रीँ ह्रीँ हूँ त्रैलोक्यमोहनाय विष्णवे नमः।

एतत्पूजादिना सर्व्वान् कामानाप्नोति पूर्व्ववत् ॥ २३ ॥

तोयैः सम्मोहनी पुष्पैर्नित्यन्तेन च तर्पयेत्। ब्रह्मा सशक्रश्रीदण्डी वीजं त्रैलोक्यमोहनम् ॥

जप्त्वा त्रिलक्षं हुत्वा च लक्षं विल्वैश्च साज्यकैः।
तण्डुलैः फलगन्धाद्यैः[1] दूर्वाभिस्त्वायुराप्नुयात् ॥ २५ ॥

---

१. फलपुष्पाद्यैरिति ट.।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तयाभिषेकहोमादिक्रियातुष्टो ह्यभीष्टदः ।
ओं नमो भगवते वराहाय भूर्भुवः स्वःपतये भूपतित्वं मे देहि हृदयाय स्वाहा ।
पञ्चाङ्गं नित्यमयुतं जप्त्वायूराज्यमाप्नुयात् ॥ २६ ॥
इत्यादिमहापुराणे आग्नेये त्रैलोक्यमोहनमन्त्रो नाम सप्ताधिक-
त्रिशततमोऽध्यायः ।

अष्टाधिकत्रिशततमोऽध्यायः

त्रैलोक्यमोहनीलक्ष्म्यादिपूजा ।

अग्निरुवाच

वक्षः सवह्निर्वामाक्षौ दण्डी श्रीः सर्व्वसिद्धिदा । महाश्रिये महासिद्धे महाविद्युत्प्रभे नमः ॥
श्रिये देवि विजये नमः । गौरि महाबले बन्ध २ नमः । हूँ महाकाये पद्महस्ते हूँ फट् श्रियै नमः । श्रियै फट् श्रियै नमः । श्रियै फट् श्रीं नमः । श्रिये श्रीद नमः स्वाहा श्रीफट् ॥

अस्याङ्गानि नवोक्तानि तेष्वेकञ्च समाश्रयेत् । त्रिलक्षमेकलक्षं वा जप्त्वाक्षाब्जैश्च भूतिदः॥
श्रीगेहे विष्णुगेहे वा श्रियं पूज्य धनं लभेत। आज्याक्तैस्तण्डुलैर्ल्लक्षं जुहुयात् खादिरानले॥
राजा वश्यो भवेद्वृद्धिः श्रीश्च स्यादुत्तरोत्तरं । सर्षपाम्भोभिषेकेण नश्यन्ते सकला ग्रहाः ॥
विल्वलक्षहुता लक्ष्मीर्वित्तवृद्धिश्च जायते । शक्रवेश्म चतुर्द्वारं हृदये चिन्तयेदथ ॥५॥
वलाकां वामनां श्यामां श्वेतपङ्कजधारिणीम् । ऊद्‌र्ध्ववाहुद्वयं ध्यायेत्क्रीडन्तीं द्वारि पूर्ववत्॥
ऊद्‌र्ध्वीकृतेन हस्तेन रक्तपङ्कजधारिणीं । श्वेताङ्गीं दक्षिणे द्वारि चिन्तयेद्वनमालिनीम् ॥७॥
हरितां दोर्द्वयेनोद्‌र्ध्वमुद्वहन्तीं सिताम्बुजम । ध्यायेद्विभीषिकां नाम श्रीदूतीं द्वारि पश्चिमे॥
शाङ्करीमुत्तरे द्वारि तन्मध्येऽष्टदलपङ्कजम् । वासुदेवः सङ्कर्षणः प्रद्युम्नश्चानिरुद्धकः ॥९॥
ध्येयास्ते पद्मपत्रेषु शङ्खचक्रगदाधराः । अञ्जनक्षीरकाश्मीरहेमाभास्ते सुवाससः ॥१०॥
आग्नेयादिषु पत्रेषु गुग्गुलुश्च कुरुण्टकः । दमकः सलिलश्चेति हस्तिनी रजतप्रभाः ॥११॥
हेमकुम्भधराश्चैते कर्णिकायां श्रियं स्मरेत् । चतुर्भुजां सुवर्णाभां सपद्मोद्‌र्ध्वभुजद्वयां ॥१२॥
दक्षिणाभयहस्ताभां वामहस्तवरप्रदां । श्वेतगन्धांशुकामेकरौम्यमालास्रधारिणीं ॥१३॥
ध्यात्वा सपरिवारान्तामभ्यर्च्य सकलं लभेत् । द्रोणाब्जपुष्पश्रीवृक्षपर्णं मूर्द्ध्नि न धारयेत्॥
लवणामलकं वर्ज्यं नागादित्यतिथौ क्रमात । पायसाशी जपेत् सूक्तं श्रियस्तेनाभिषेचयेत् ॥

आवाहादिविसर्गान्तां मूर्द्ध्नि ध्यात्वार्च्चयेत् श्रियम ।
विल्वाज्याब्जपायसेन पृथग् योगः श्रिये भवेत् ॥ १६ ॥
विषं महिपकालाग्निरुद्रिज्योतिर्वकद्वयम् ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ओं ह्रीँ महामहिषमर्द्दिनि ठ ठ मूलमन्त्रं महिषहिंसके नमः । महिषशत्रुं भ्रामय२ हूँ फट् ठ ठ महिषं हेषय२ हूं महिषं हन२ देवि हूँ महिषनिसूदनि फट् ।

दुर्गाहृदयमित्युक्तं साङ्गं सर्वार्थसाधकम ॥ १७ ॥
यजेद्यथोक्तं तां देवीं पीठञ्चैवाङ्गमध्यगम् ।

ओं ह्रीँ दुर्गे दुर्गे रक्षणि स्वाहा चेति दुर्गायै नमः । वरवर्ण्यै नमः । आर्य्यायै कनकप्रभायै कृत्तिकायै अभयप्रदायै कन्यकायै सुरूपायै ॥

पत्रस्थाः पूजयेदेता मूर्त्तीराद्यैः स्वरैः क्रमात् ॥ १८ ॥
चक्राय शङ्खाय गदायै खड्गाय धनुषे वाणाय ॥

अष्टम्याद्यैरिमां दुर्गां लोकेशान्तां यजेदिति । दुर्गायोगः समायुःश्रीस्वामिरक्ताजयादिकृत् ॥
ससाध्येशानमन्त्रेण तिलहोमो वशीकरः । जयः पद्मैस्तु दुर्व्वाभिः शान्तिः कामः पलाशजैः ॥
पुष्टिः स्यात् काकपक्षेण मृतिद्वेषादिकं भवेत् । ग्रहक्षुद्रभयापत्ति सर्वमेव मनुर्हरेत् ॥२१॥

ओं दुर्गे दुर्गे रक्षणि स्वाहा ।

रक्षाकरीयमुदिता जयदुर्गाङ्गसंयुता । श्यामां त्रिलोचनां देवीं ध्यात्वात्मानं चतुर्भुजम् ॥२२॥
शङ्खचक्राब्जशूलादित्रिशूलां रौद्ररूपिणीं । युद्धादौ सञ्जयेदेतां यजेत् खड्गादिके जये ॥२३॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये त्रैलोक्यमोहनीलक्ष्म्यादिपूजा नामाष्टाधिक-
त्रिशततमोऽध्यायः ।

नवाधिकत्रिशततमोऽध्यायः

त्वरितापूजा ।

अग्निरुवाच

त्वरिताङ्गान्समाख्यास्ये भुक्तिमुक्तिप्रदायकान् ।

ओं आधारशक्त्यै नमः । ओं ह्रीँ पुरु २ महासिंहाय नमः । ओं पद्माय नमः । ओं ह्रीँ हूँ खेचछेक्षः । स्त्रीँ ओं हूँ क्षेँ हूँ फट् त्वरितायै नमः । खे च हृदयाय नमः । चछे शिरसे नमः । छेक्षः शिखायै नमः । क्षस्त्री कवचाय नमः । स्त्रीँ हूँ नेत्राय नमः । हूँ खे अस्त्राय फट् नमः । ओं त्वरिताविद्यां विद्महे तूर्णविद्याञ्च धीमहि तन्नो देवी प्रचोदयात् । श्रीप्रणितायै नमः । हूँ कारायै नमः । ओं खेच हृदयाय नमः । खेचर्य्यै नमः । ओं चण्डायै नमः । छेदन्यै नमः क्षेपण्यै नमः । स्त्रियै हूँकार्य्यै नमः । क्षेमङ्कर्य्यै जयायै किङ्कराय रक्ष । ओं त्वरिताज्ञया स्थिरो भव वषट् ।

तोतला त्वरिता तूर्णेत्येवं विद्येयमीरिता ॥ १ ॥
शिरोभ्रूमस्तके कण्ठे हृदि नाभौ च गुह्यके । उर्व्वोश्च जानुजङ्घोरुद्वये चरणयोः क्रमात् ॥२॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

न्यस्ताङ्गो न्यस्तमन्त्रस्तु समस्तं व्यापकं न्यसेत् । पार्वती शवरी चेशा वरदाभयहस्तिका ॥
मयूरवलया पिच्छमौलिः किसलयांशुका । सिंहासनस्था मायूरवर्हच्छत्रसमन्विता ॥४॥
त्रिनेत्रा श्यामला देवी वनमालाविभूषणा । विप्राहिकर्णाभरणा क्षत्रकेयूरभूषणा ॥५॥
वैश्यनागकटीबन्धा वृषलाहिकृतनूपुरा । एवं रूपात्मिका भूत्वा तन्मन्त्रं नियुतं जपेत् ॥६॥
ईशः किरातरूपोऽभूत् पुरा गौरी च तादृशी । जपेद्ध्यायेत् पूजयेत्तां सर्वसिद्ध्यै त्रिपादिद्दत् ॥७॥
अष्टसिंहासने पूज्या दले पूर्वादिके क्रमात् । अङ्गगायत्री प्रणीता हूङ्काराद्या दलाग्रके । ८॥
फट्कारी चाग्रतो देव्याः श्रीवीजेनार्च्चयेदिमाः लोकेशायुधवर्णास्ताः फट्कारी तु धनुर्द्धरा ॥
जया च विजया द्वास्थे पूज्ये सौवर्णयष्टिके । किङ्करा ववरी मुण्डी लगुडी च तयोर्वहिः ॥१०॥
इष्ट्वैवं सिद्धयेद्द्रव्यैः कुण्डे योन्याकृतौ हुनेत् । हेमलाभोऽर्जुनैर्द्धान्यैर्गोधूमैः पुष्टिसम्पदः ॥
यवैर्द्धान्यैस्तिलैः सर्वसिद्धिरीतिविनाशनम् । अक्षैरुन्मत्तता शत्रोः शाल्मलीभिश्च मारणम् ॥
जम्बुभिर्धनधान्याप्तिस्तुष्टिर्नीलोत्पलैरपि । रक्तोत्पलैर्म्महापुष्टिः कुन्दपुष्पैर्म्महोदयः ॥१३॥
मल्लिकाभिः पुरक्षोभः कुमुदैर्जनवल्लभः । अशोकैः पुत्रलाभः स्यात् पाटलाभिः शुभाङ्गना ॥
आम्रैरायुस्तिलैर्ल्लक्ष्मीर्विल्वैः श्रीश्चम्पकैर्द्धनम् । इष्टं मधुकपुष्पैश्च विल्वैः सर्वज्ञतां लभेत् ॥

त्रिलक्षजप्यात्सर्व्वाप्तिर्होमाद्ध्यानात्तथेज्यया ।
मण्डलेऽभ्यर्च्चर्य गायत्र्या आहुतीः पञ्चविंशतिम् ॥ १६ ॥

दद्याच्छतत्रयं मूलात् पल्लवैर्दीक्षितो भवेत् । पञ्चगव्यं पुरा पीत्वा चरुकं प्राशयेत्सदा ॥१७॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये त्वरितापूजा नाम नवाधिक-
त्रिशततमोऽध्यायः ।

दशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः

त्वरितामन्त्रादिः ।

अग्निरुवाच

अपरां त्वरिताविद्यां वक्ष्येऽहं भुक्तिमुक्तिदां । पुरे वज्राकुले[१] देवीं रजोभिर्लिखिते यजेत् ॥
पद्मगर्भे दिग्विदिक्षु चाष्टौ वज्राणि वीथिकां । द्वारशोभोपशोभाश्च लिखेच्छीघ्रं स्मरेन्नरः ॥२॥
अष्टादशभुजां सिंहे वामजङ्घा प्रतिष्ठिता । दक्षिणा द्विगुणा तस्याः पादपीठे समर्पिता ॥३॥
नागभूषां वज्रकुण्डे खड्गं चक्रं गदां क्रमात् । शूलं शरं तथा शक्तिं वरदं दक्षिणैः करैः ॥४॥
धनुः पाशं शरं घण्टां तर्ज्जनीं शङ्खमङ्कुशम् । अभयञ्च तथा वज्रं वामपार्श्वे धृतायुधम् ॥५॥

पूजनाच्छत्रुनाशः स्याद्राष्ट्रं जयति लीलया ।
दीर्घायूराष्ट्रभूतिः स्याद्दिव्यादिव्यादिसिद्धिभाक् । ६ ॥

१. वज्रार्गले इति ज. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तलेतिसप्तपातालाः कालाग्निभुवनान्तकाः । ओं कारादिस्वरारभ्य यावद्ब्रह्माण्डवाचकम् ॥
ओं काराद्भ्रामयेत्तोयन्तोतला त्वरिता ततः । प्रस्तावं सम्प्रवक्ष्यामि स्वरवर्गं लिखेद्भुवि ॥
तालुवर्गः कवर्गः स्यात्तृतीयो जिह्वतालुकः । चतुर्थस्तालुजिह्वाग्रो जिह्वादन्तस्तु पञ्चमः ॥९॥
षष्ठोऽष्टपुटसम्पन्नो मिश्रवर्गस्तु सप्तमः । ऊष्माणः स्याच्छवर्गस्तु उद्धरेच्च मनुं ततः ॥१०॥
षष्ठस्वरसमारूढं ऊष्मणान्तं सबिन्दुकम् । तालुवर्गद्वितीयन्तु स्वरैकादशयोजितम् ॥११॥
जिह्वातालुसमायोगः प्रथमं केवलं भवेत् । तदेव च द्वितीयन्तु अधस्ताद्विनियोजयेत् ॥१२॥
एकादशस्वरैर्युक्तं प्रथमं तालुवर्गतः । ऊष्माणस्य[१] द्वितीयन्तु अधस्ताद् हृदय योजयेत् ।१३॥
षोड़शस्वरसंयुक्तमूष्माणस्य द्वितीयकम् । जिह्वादन्तसमायोगे प्रथमं योजयेदधः ॥१४॥
मिश्रवर्गाद् द्वितीयन्तु अधस्तात् पुनरेव तु । चतुर्थस्वरसम्भिन्नं तालुवर्गादिसंयुतम् ॥१५॥
ऊष्मणश्च द्वितीयन्तु अधस्ताद्विनियोजयेत् । स्वरैकादशभिन्नन्तु ऊष्मणान्तं सबिन्दुकम् ॥
पञ्चस्वरसमारूढं ओष्ठसम्पुटयोगतः । द्वितीयमक्षरञ्चान्यजिह्वाग्रे तालुयोगतः ॥१७॥

प्रथमं पञ्चमे योऽयं स्वरार्द्धेनोद्धृता इमे ।
ओँकाराद्या नमोन्ताश्च जपेत् स्वाहाग्निकार्य्यके ॥ १८ ॥

ओं ह्रीँ हूँ ह्रः हृदयं हां हश्चेति शिरः । ह्रीँ ज्वल ज्वल शिखा स्यात् कवचं हनुद्वयम् । ह्रीँ श्रीँ च्रूंन्नेत्रत्रयाय विद्यानेत्रं प्रकीर्त्तितम् क्षौँ द्रः खौँ हूँ फडस्त्राय गुह्याङ्गानि पुरा न्यसेत् ।

त्वरिताङ्गानि वक्ष्यामि विद्याङ्गानि श्रृणुष्व मे । आदिद्विहृदयं प्रोक्तं त्रिचतुःशिर इष्यते ॥
पञ्चषष्ठः शिखा प्रोक्ता कवचं सप्तमाष्टमम् । तारकन्तु भवेन्नेत्रं नवार्द्धाक्षरलक्षणं ॥२०॥
तोतलेति समाख्याता वज्रतुण्डे ततो भवेत् । ख ख हूँ दशवीजा स्याद्वज्रतुण्डेन्द्रदूतिका ॥
खेचरि ज्वालिनीज्वाले खखेति ज्वालिनीदश । वच्चेँ शरविभीषणि खखेति च शवर्य्यपि ॥
छे छेदनि करालिनि खखेति च करालयपि । वक्षःश्रवद्रवप्लवनी ख ख[२] दूतीप्लवंख्यपि ॥
स्त्रीवालकारे धुननि शाङ्गी वसनवेगिका । च्चे पच्चे कपिले हस हस कपिला नाम दूतिका ॥
हूँ तेजोवति रौद्री च मातङ्गरौद्रिदूतिका । पुटे पुटे ख ख खड्गे फट् ब्रह्मकदूतिका ॥२५॥

वैतालिनि दशार्णाः स्युस्त्यजान्यद्दिपलालवत् ।
हृदादिकन्यासादौ स्यान् मध्ये नेत्रे न्यसेत्सुधीः ॥ २६ ॥

पादादारभ्य मूर्द्धान्तं शिर आरभ्य पादयोः । अङ्घ्रिजानूरुगुह्ये च नाभिहृत्कण्ठदेशतः ॥
वज्रमण्डलमूर्द्धे च अधोद्र्ध्वे चादिवीजतः । सोमरूपं ततो गावं धारामृतसुवर्षिणम् ॥२८॥
विशन्तं ब्रह्मरन्ध्रेण साधकस्तु विचिन्तयेत् । मूर्द्धास्यकण्ठहृन्नाभौ गुह्योरुजानुपादयोः ॥२९॥
आदिवीजं न्यसेन्मन्त्री तर्ज्जन्यादि पुनः पुनः । ऊद्र्ध्वं सोममधः पद्मं शरीरं वीजविग्रहं ॥

१. ऊष्माणस्येत्ययं पाठो न साधुः ।
२. वक्षःश्रवद्रवप्लवनीयथेति ख. छ. च ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यो जानाति न मृत्युः स्यात्तस्य न व्याधयो ज्वराः ।
यजेज्जपेत्तां विन्यस्य ध्यायेद्देवीं शताष्टकम् ॥ ३१ ॥
मुद्रा वक्ष्ये प्रणीताद्याः प्रणीताः पञ्चधा स्मृताः ।
ग्रथितौ तु करौ कृत्वा मध्येऽङ्गुष्ठौ निपातयेत् ॥ ३२ ॥

तर्ज्जनीं मूर्द्धि संलग्नां विन्यसेत्तां शिरोपरि । प्रणीतेयं समाख्याता हृद्देशे तां समानयेत् ॥
ऊर्द्ध्वन्तु कन्यसामध्ये सबीजान्तां विदुर्द्विजाः। नियोज्य तर्ज्जनीमध्येऽनेकलग्नां परस्पराम् ॥
ज्येष्ठाग्रं निक्षिपेन्मध्ये भेदनी सा प्रकीर्त्तिता । नाभिदेशे तु तां बद्ध्वा अङ्गुष्ठावुनक्षिपेत्ततः ॥
कराली तु महामुद्रा हृदये योज्य मन्त्रिणः । पुनस्तु पूर्व्ववद् बद्धलग्नां ज्येष्ठां समुतक्षिपेत ॥
वज्रतुण्डा समाख्याता वज्रदेशे तु बन्धयेत । उभाभ्याञ्चैव हस्ताभ्यां मणिबन्धन्तु बन्धयेत् ॥
त्रीणि त्रीणि प्रसार्य्येति[1] वज्रमुद्रा प्रकीर्त्तिता । दण्डः खड्गश्चक्रगदा मुद्रा चाकारतः स्मृता ॥
अङ्गुष्ठेनाक्रमेत् त्रीणि त्रिशूलञ्चोद्र्ध्वतो भवेत् । एका तु मध्यमोद्र्ध्वा तु शक्तिरेव विधीयते ॥
शरञ्च वरदञ्चापं पाशं भारञ्च घण्टया । शङ्खमङ्कुशमभयं पद्ममष्ट च विंशतिः ॥४०॥
मोहणी मोक्षणी चैव ज्वालिनी चाऽमृताभया । प्रणीताः पञ्चमुद्रास्तु पूजाहोमे च योजयेत् ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये त्वरितामन्त्रादिर्नाम दशाधिक-
त्रिशततमोऽध्यायः ।

एकादशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः

त्वरितामूलमन्त्रादिः ।

अग्निरुवाच

दीक्षादि वक्ष्ये विन्यस्य सिंहवज्राकुलेऽब्जके ।
हे२ हुंति वज्रदन्त पुरु२ लुलु२ गर्ज्ज२ इह सिंहासनाय नमः ।
तिर्य्यगूर्द्ध्वगता रेखाश्चत्वारश्चतुरो भवेत् ॥ १ ॥

नवभागविभागेन कोष्ठकान् कारयेद्बुधः । प्राह्या दिशागताः कोष्ठा विदिशासु विनाशयेत् ॥
वाह्ये वै कोष्ठकोणेषु वाह्यरेखाष्टकं स्मृतम् । वाह्यकोष्ठस्य वाह्ये तु मध्ये यावत् समानयेत् ॥
वज्रस्य मध्यमं शृङ्गं वाह्यरेखा द्विधार्द्धतः । वाह्यरेखा भवेद्वक्रा द्विभङ्गा कारयेद्बुधः ॥४॥
मध्यकोष्ठं भवेत्पद्मं पीतकर्णिकमुज्ज्वलम् । कृष्णेन रजसा लिख्य कुलिशासिशिरोद्र्ध्वता ॥
वाह्यतश्चतुरस्रन्तु वज्रसम्पुटलाञ्छितम् । द्वारे प्रदापयेन्मन्त्री चतुरो वज्रसम्पुटान् ॥६॥
पद्मनाम भवेद्वामवीथी चैव समा भवेत् । गर्भं रक्तं केशराणि मण्डले दीक्षिताः स्त्रियः ॥७॥

---

१. प्रसार्य्या चेति ट. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जयेच्च परराष्ट्राणि क्षिप्रं राज्यमवाप्नुयात् । मूर्तिं प्रणवसन्दीप्तां हूँकारेण नियोजयेत् ॥८॥
मूलविद्यां समुच्चार्य्यं मरुद्व्योमगतां द्विज । प्रथमेन पुनश्चैव कर्णिकायां प्रपूजयेत् ॥९॥
एवं प्रदक्षिणं पूज्य एकैकं वीजमादितः । दलमध्ये तु विद्याङ्गा आग्नेय्यां पञ्च नैर्ऋतम्[१] ॥
मध्येनेत्रं दिशारूञ्च गुह्यकाङ्गे तु रक्षणम् । हुतयः केशरस्थास्तु वामदक्षिणपार्श्वतः ॥११॥
पञ्च पञ्च प्रपूज्यास्तु स्वैः स्वैर्म्मन्त्रैः प्रपूजयेत् । लोकपालान्न्यसेदष्टौ वाह्यतो गर्भमण्डले ॥
वर्णान्तमग्निमारूढं पष्ठस्वरविभेदितं[२] । पञ्चदशेन चाक्रान्तं स्वैः स्वैर्नामभि योजयेत्[३] ॥

शीघ्रं[४] सिंहे कर्णिकायां यजेद् गन्धादिभिः श्रिये[५] ।
अष्टाभिर्वेष्टयेत् कुम्भैर्म्मन्त्राष्टशतमन्त्रितैः ॥ १४ ॥

मन्त्रमष्टसहस्रन्तु जप्त्वाङ्गानां दशांशकम् । होमं कुर्य्यादग्निकुण्डे वह्निमन्त्रेण चालयेत् ॥१५॥
निक्षिपेद् हृदयेनाग्निं शक्तिं मध्येऽग्निगां स्मरेत् । गर्भाधानं पुंसवनं जातकर्म्म च होमयेत् ॥
हृदयेन शतं ह्येकं गुह्याङ्गे जनयेच्छिखिम् । पूर्णाहुत्या तु विद्यायाः शिवाग्निर्ज्वलितो भवेत् ॥
होमयेन्मूलमन्त्रेण शतञ्चाङ्गं दशांशतः । निवेदयेत्ततो देव्यास्ततः शिष्यं प्रवेशयेत् ॥१८॥
अस्त्रेण ताडनं कृत्वा गुह्याङ्गानि ततो न्यसेत् । विद्याङ्गैश्चैव सन्नद्धं विद्याङ्गेषु नियोजयेत् ॥
पुष्पं क्षिपाययेच्छिष्यमानयेदग्निकुण्डकम् । यवैर्द्धान्यैस्तिलैराज्यैर्मूलविद्याशतं हुनेत् ॥२०॥
स्थावरत्वं पुरा होमं सरीसृपमतः परं । पक्षिमृगपशुत्वञ्च मानुषं ब्राह्ममेव च ॥२१॥
विष्णुत्वञ्चैव रुद्रत्वमन्ते पूर्णाहुतिर्भवेत् । एकया चैव ह्याहुत्या शिष्यः स्याद्दीक्षितो भवेत् ॥
अधिकारो भवेदेवं शृणु मोक्षमतः परम् । सुमेरुस्थो यदा मन्त्री सदाशिवपदे स्थितः ॥
परे च होमयेत् स्वस्थोऽकर्म्मकर्म्मशतान् दश । पूर्णाहुत्या तु तद्योगी धर्म्माधर्मैर्न लिप्यते ॥
मोक्षं याति परंस्थानं यद्गत्वा न निवर्त्तते । यथा जले जलं क्षिप्तं जलं देही शिरस्तथा ॥
कुम्भैः कुर्य्याच्चाभिषेकं जयराज्यादिसर्वभाक् । कुमारी ब्राह्मणी पूज्या गुर्व्वादेर्दक्षिणां ददेत् ॥
यजेत सहस्रमेकन्तु पूजां कृत्वा दिने दिने । तिलाज्यपुरहोमेन[६] देवी श्रीः कामदा भवेत् ॥
ददाति विपुलान् भोगान् यदन्यच्च समीहते । जप्त्वा ह्यक्षरलक्षन्तु निधानाधिपतिर्भवेत् ॥२८॥
द्विगुणेन भवेद्राज्यं त्रिगुणेन च यक्षिणी । चतुर्गुणेन ब्रह्मत्वं ततो विष्णुपदं भवेत् ॥२९॥
षड्गुणेन महासिद्धिर्ल्लक्षेणैकेन पापहा । दश जप्त्वा देहशुद्ध्यै तीर्थस्नानफलं शतात् ॥३०॥
पटे वा प्रतिमायां वा शीघ्रां वै स्थण्डिले यजेत् । शतं सहस्रमयुतं जपे होमे प्रकीर्त्तितम् ॥
एवं विधानतो जप्त्वा लक्षमेकन्तु होमयेत् । महिषाजमेषमांसेन नरजेन पुरेण[७] वा ॥३२॥
तिलैर्यवैस्तथा लाजैर्व्रीहिगोधूमकाम्रकैः । श्रीफलैराज्यसंयुक्तैर्होमयित्वा व्रतञ्चरेत् ॥३३॥
अर्द्धरात्रेषु सन्नद्धः खड्गचापशरादिमान् । एकवासा विचित्रेण रक्तपीतासितेन वा ॥३४॥

१. आग्नेयावन्नैर्ऋतमिति ञ. ।
२. ज्येष्ठस्वरविभूषितमिति ख. छ. च ।
३. नामभिर्योजयेदित्ययं पाठः समीचीनो भवितुमर्हति ।
४. नीलेति ञ. ।
५. श्रियमिति ञ. ।
६. तिलाज्यप्लवहोमेनेति ख. छ. च ।
७. प्लवेनेति ख. छ. च ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नीलेन वाथ वस्त्रेण देवीं तैरेव चार्च्चयेत् । व्रजेद्दक्षिणदिग्भागं द्वारे दद्याद्बलिं बुधः ॥
दूतीमन्त्रेण द्वारादौ एकवृक्षे श्मशानके । एवञ्च सर्व्वकामाप्तिर्भुङ्क्ते सर्व्वां महीं नृपः ॥३६॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये त्वरितामूलमन्त्रो नामैकादशाधिक-
त्रिशततमोऽध्यायः ।

द्वादशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः

त्वरिताविद्या ।

अग्निरुवाच

विद्याप्रस्तावमाख्यास्ये धर्म्मकामादिसिद्धिदम् । नवकोष्ठविभागेन विद्याभेदञ्च विन्दति ॥
अनुलोमविलोमेन समस्तव्यस्तयोगतः । कर्णाविकर्णयोगेन अत ऊर्द्ध्वं विभागशः ॥२॥

त्रित्रिकेण च योगेन देव्या सन्नद्धविग्रहः ।
जानाति सिद्धिदान्मन्त्रान् प्रस्तावान्निर्गतान् बहून् ॥ ३ ॥
शास्त्रे शास्त्रे स्मृता मन्त्राः प्रयोगास्तत्र दुर्ल्लभाः ।
गुरुः स्यात् प्रथमो वर्णः पूर्व्वैर्युर्न च वर्ण्यते ॥ ४ ॥

प्रस्तावे तत्र चैकार्णा द्व्यर्णास्त्र्यर्णादयोऽभवन् । तिर्य्यगूर्द्ध्वगता रेखाश्चतुरश्चतुरो भजेत् ॥
नव कोष्ठा भवन्त्येवं मध्यदेशे तथा इमान् । प्रदक्षिणेन संस्थाप्य प्रस्तावं भेदयेत्ततः ॥६॥
प्रस्तावक्रमयोगेन प्रस्तावं यस्तु विन्दति । करमुष्टिस्थितास्तस्य साधकस्य हि सिद्धयः ॥
त्रैलोक्यं पादमूले स्यान्नवखण्डां भुवं लभेत् । कपाले तु समालिख्य शिवतत्त्वं समन्ततः ॥
श्मशानकर्पटे वाथ वाह्यं निष्क्रम्य मन्त्रवित् । तस्य मध्ये लिखेन्नाम कर्णिकोपरि संस्थितम् ॥
तापयेत्खादिराङ्गारैर्भूर्जमाक्रम्य पादयोः । सप्ताहादानयेत सर्व्वं त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥१०॥
वज्रसम्पुटगर्भे तु द्वादशारे तु लेखयेत् । मध्ये गर्भगतं नाम सदाशिवविदर्भितम् ॥११॥
कुड्ये[1] फलकके वाथ शिलापट्टे हरिद्रया । मुखस्तम्भं गतिस्तम्भं सैन्यस्तम्भन्तु जायते ॥१२॥
त्रिपरक्तेन संलिख्य श्मशाने कर्पटे बुधः । षट्कोणं दण्डमाक्रान्तं समन्ताच्छक्तियोजितम् ॥
मारयेदचिरादेप श्मशाने निहतं रिपुं । छेदं करोति राष्ट्रस्य चक्रमध्ये न्यसेद्रिपुं ॥१४॥
चक्रधाराङ्गतां शक्तिं रिपुनाम्ना रिपुं हरेत् । तार्क्ष्येणैव तु वीजेन खड्गमध्ये तु लेखयेत् ॥१५॥
विदर्भरिपुनामाथ श्मशानाङ्गारलेखितम् । सप्ताहात्साधयेद्देशं ताडयेत् प्रेतभस्मना ॥१६॥
भेदने छेदने चैव मारणेषु शिवो भवेत् । तारकं नेत्रमुद्दिष्टं शान्तिपुष्टी नियोजयेत् ॥१७॥
दहनादिप्रयोगोयं शाकिनीञ्चैव कर्पयेत् । मध्यादिवारुणीं यावद्वक्रतुण्डसमन्वितः[2] ॥१८॥
कुष्ठाद्या व्याधयो ये तु नाशयेत्तान्न संशयः । मध्यादिउत्तरान्तन्तु करालीबन्धनाज्जपेत् ॥

---

१. कुण्ड इति क. । २. वज्रतुण्डसमन्वित इति ट. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रक्षयेदात्मनो विद्यां प्रतिवादी यदा शिवः । वारुण्यादि ततो न्यस्य ज्वरकाशविनाशनम् ॥
सौम्यादि मध्यमान्तन्तु गुरुत्वं जायते वटे । पूर्व्वादि मध्यमान्तन्तु लघुत्वं कुरुते क्षणात् ॥
भूर्जे रोचनया लिख्य एतद्वज्राकुलं पुरम् । क्रमस्थैर्म्मन्त्रवीजैस्तु रक्षां देहेषु कारयेत् ॥२२॥
वेष्टिता भावहेम्ना च[१] रक्षेयं मृत्युनाशिनी । विघ्नपापारिदमनी सौभाग्यायुःप्रदा धृता ॥२३॥
द्यूते रणे च जयदा शक्रसैन्ये न संशयः । वन्ध्यानां पुत्रदा ह्येषा चिन्तामणिरिवापरा ॥२४॥
साधयेत् परराष्ट्राणि राज्यञ्च पृथिवीं जयेत् । फट् स्त्रीं क्षें हूँ लक्षजप्याद्यक्षादिर्वशगो भवेत् ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये त्वरिताविद्या नाम द्वादशाधिक-
त्रिशततमोऽध्यायः ।

त्रयोदशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः

नानामन्त्राः ।

अग्निरुवाच

ओं विनायकार्चनं वक्ष्ये यजेदाधारशक्तिकम् । धर्म्माद्यष्टककन्दञ्च नालं पद्मञ्च कर्णिकाम् ॥
केशरं त्रिगुणं पद्मं तीव्रञ्च ज्वलिनीं यजेत् । नन्दाञ्च सुयशाञ्चोग्रां तेजोवतीं विन्ध्यवासिनीं[२] ॥
गणमूर्त्तिं गणपतिं हृदयं स्याद्गणं जयः । एकदन्तोत्कटशिरःशिखायाचलकर्णिने ॥३॥
गजवक्त्राय कवचं हूँ फडन्तं तथाष्टकं । महोदरो दण्डहस्तः पूर्व्वादौ मध्यतो यजेत् ॥४॥
जयो गणाधिपो गणनायकोऽथ गणेश्वरः । वक्रतुण्ड एकदन्तोत्कटलम्बोदरो गज ॥५॥
वक्त्रो विकटाननोऽथ हूँ पूर्व्वो विघ्ननाशनः । धूम्रवर्णो महेन्द्राद्यो वाह्ये विघ्नेशपूजनम् ॥६॥
त्रिपुरापूजनं[३] वक्ष्ये असिताङ्गो रुरुस्तथा । चण्डः क्रोधस्तथोन्मत्तः कपाली भीषणः क्रमात् ॥
संहारो भैरवो ब्राह्मीमुख्या ह्रस्वास्तु भैरवाः ।
ब्रह्माणीषण्मुखा दीर्घा अग्न्यादौ वटुकाः क्रमात् ॥ ८ ॥
समयपुत्रो वटुको योगिनीपुत्रकस्तथा । सिद्धपुत्रश्च वटुकः कुलपुत्रश्चतुर्थकः ॥९॥
हेतुकः क्षेत्रपालश्च त्रिपुरान्तो द्वितीयकः । अग्निवेतालोऽग्निजिह्वः कराली काललोचनः ॥१०॥
एकपादश्च भीमाक्ष ऐं क्षें प्रेतस्तथासनं । ऐँ ह्रीं श्रौंश्च त्रिपुरा पद्मासनसमास्थिता ॥११॥
बिभ्रत्यभयपुस्तञ्च वामे वरदमालिकाम् । मूलेन हृदयादि स्याज्ज्वालपूर्णञ्च कामकम् ॥१२॥
गोमध्ये नाम संलिख्य चाष्टपत्रे च मध्यतः । श्मशानादिपटे श्मशानाङ्गारेण विलेखयेत ॥
चिताङ्गारपिष्टकेन मूर्त्तिं ध्यात्वा तु तस्य च । क्षिप्त्वोदरे नीलसूत्रैर्वेष्ट्य चोच्चाटनं भवेत् ॥
ओं नमो भगवति ज्वालामालिनि गृध्रगणपरिवृते स्वाहा ।

---

१. तारहेम्ना चेति ख. ।　　२. विवासिनीमिति ख. ।
३. त्रिपुरायजनमिति ख. छ. ञ. ञ. ट. च ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

युद्ध गच्छन् जपन्मन्त्रं पुमान् साक्षाज्जयी भवेत् ।
ओं श्रीँ ह्रीँ क्लीँ श्रियै नमः ।
उत्तरादौ च घृणिनी सूर्य्या पूज्या चतुर्द्दले ॥ १५ ॥
आदित्या प्रभावती च हेमाद्रिमधुराश्रियः ।
ओं ह्रीं गौर्य्यैं नमः ।
गौरीमन्त्रः सर्व्वकरः होमाद्ध्यानाज्जपार्च्चनात् ॥ १६ ॥
रक्ता चतुर्भुजा पाशवरदा दक्षिणे करे । अङ्कुशाभययुक्तान्तां प्रार्थ्य सिद्धात्मना पुमान् ॥
जीवेद्वर्षशतं धीमान्न चौरारिभयं भवेत । क्रुद्धः प्रसादी भवति युधि मन्त्राम्बुपानतः ॥१८॥
अञ्जनं तिलकं वश्ये जिह्वाग्रे कविता भवेत् । तज्जपान्मैथुनं वश्ये तज्जगाद्योनिवीक्षणम् ॥१९॥
स्पर्शाद्वशी तिलहोमात्सर्व्वञ्चैव तु सिध्यति ।
सप्ताभिमन्त्रितश्चान्नं भुञ्जंस्तस्य श्रियः सदा ॥ २० ॥
अर्द्धनारीशरूपोऽयं लक्ष्म्यादिर्वैष्णवादिकः । अनङ्गरूपा शक्तिश्च द्वितीया मदनातुरा॥२१॥
पवनवेगा भुवनपाला वै सर्व्वसिद्धिदा । अनङ्गमदनानङ्गमेखलान्ताञ्जपेच्छ्रिये ॥२२॥
पद्ममध्यदलेषु ह्रीँ स्वरान् कादींस्ततः स्त्रियाः ।
षट्कोणे वा घटे वाऽथ लिखित्वा स्याद्वशीकरं ॥ २३ ॥
ओं ह्रीँ छँ नित्यक्लिन्ने मदद्रवे ओं ओं ।
मूलमन्त्रः षडङ्गोयं रक्तवर्णे त्रिकोणके । द्रावणी ह्लादकारिणी क्षोभिणी गुरुशक्तिका ॥२४॥
ईशानादौ च मध्ये तां नित्यां पाशाङ्कुशौ तथा । कपालकल्पकतरुं वीणा रक्ता च तद्वती ॥२५॥
नित्याभया मङ्गला च नववीरा च मङ्गला । दुर्भगा मनोन्मनी पूज्या द्रावा पूर्व्वादितः स्थिता ॥
ओं ह्रीँ अनङ्गाय नमः ओं ह्रीँ ह्रीँ स्मराय नमः ।
मन्मथाय च माराय कामायैवञ्च पञ्चधा । कामाः पाशाङ्कुशौ चापबाणाः ध्येयाश्च बिभ्रतः ॥
रतिश्च विरतिः प्रीतिर्विप्रीतिश्च मतिर्धृतिः । विधृतिः पुष्टिरेभिश्च क्रमात् कामादिकैर्युताः ॥
ओं छँ नित्यक्लिन्ने मदद्रवे ओं ओं । अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ
ओ औ अं अः । क ख ग घ ङ च छ ज झ ञ ट ठ ड ढ ण त थ द ध न प फ ब भ म
य र ल व श ष स ह क्ष । ओं छँ नित्यक्लिन्ने मदद्रवे स्वाहा ।
आधारशक्तिं पद्मञ्च सिंहे देवीं हृदादिषु ॥ २८ ॥
ओं ह्रीँ गौरि रुद्रदयिते योगेश्वरि हूं फट् स्वाहा ।
इत्यादिमहापुराणे आग्नेये नानामन्त्रा नाम त्रयोदशाधिक-
त्रिशततमोऽध्यायः ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

चतुर्दशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः

त्वरिताज्ञानम् ।

अग्निरुवाच

ओं ह्रीं हूँ खे छे क्षः स्त्रीँ हूँ त्ते ह्रीं फट् !

त्वरितां पूजयेन्न्यस्य द्विभुजाञ्चाष्टवाहुकां । आधारशक्तिं पद्मञ्च सिंहे देवीं हृदादिकम् ।।
पूर्व्वादौ गायत्रीं यजेन्मण्डले वै प्रणीतया । हुंकारां खेचरीं चण्डां छेदनीं क्षेपणीं स्त्रियाः।।२।।
हुंकारां क्षेमकारीञ्च फट्कारीं मध्यतो यजेत् । जयाञ्च विजयां द्वारि किङ्करञ्च तदग्रतः ।।३।।
तिलैर्होमैश्च सर्व्वाप्त्यै नामव्याहृतिभिस्तथा । अनन्ताय नमः स्वाहा कुलिकाय नमः स्वधा ।।
स्वाहा वासुकिराजाय शङ्खपालाय वौषट् । तक्षकाय वषन्नित्यं महापद्माय वै नमः ।।५।।
स्वाहा कर्कोटनागाय फट् पद्माय च वै नमः । लिखेन्निग्रहचक्रन्तु एकाशीतिपदैर्न्नरः ।।६।।
वस्त्रे पटे तरौ भूर्ज्जे शिलायां यष्टिकासु च । मध्ये कोष्ठे साध्यनाम पूर्व्वादौ पट्टिकासु च ।।७।।

ओं ह्रीँ च्छूं छन्द छन्द चतुरः कण्ठकान् कालरात्रिकां ।
ऐशादावम्बुपादौ च यमराज्यञ्च वाह्यतः । कालीनारवमाली कालीनामाक्षमालिनी ।।८।।
मामोदेतत्तदोमोमा रक्षत स्वस्व भक्षरा । यमपाटटयामय मटमो टट मोटमा ।।९।।
वामो भूरिविभूमेया टट रीश्व श्वरी टट । यमराजाद्वाह्यतो वं तं तोयं मारणात्मकम् ।।१०।।
कज्जलं निम्बनिर्य्यासमज्जासृग्विषसंयुतम् । काकपक्षस्य लेखन्या श्मशाने वा चतुष्पथे ।।
निधापयेत् कुम्भाधस्ताद्वल्मीके वाथ निक्षिपेत् । विभीतद्रुमशाखाधो यन्त्रं सर्व्वारिमर्द्दनम् ।।
लिखेच्चानुग्रहञ्चक्रं शुक्लपत्रेऽथ भूर्ज्जके । लाक्षया कुङ्कुमेनाथ स्फटिकाचन्दनेन वा ।।१३।।
भुवि भित्तौ पूर्व्वदले[1] नाम मध्यमकोष्ठके । खण्डे तु वारिमध्यस्थं ओं,हंसो वापि पट्टिशम् ।।

लक्ष्मीश्लोकं शिबादौ च राक्षसादिक्रमाल्लिखेत् ।
श्रीःसाममोमा सा श्रीः सानौ याज्ञे ज्ञेया नौसा ।। १५ ।।
माया लीला लाली यामा याज्ञे ज्ञेया नौसा माया ।
यत्र ज्ञेया वह्निः शीघ्रा दिज्जुरं कलसं वह्निः ।। १६ ।।
पद्मस्थं पद्मचक्रञ्च मृत्युजित् स्वर्गगन्धृतिं ।
शान्तीनां परमा शान्तिः सौभाग्यादिप्रदायकम् ।। १७ ।।
रुद्रैरुद्रसमाः कार्य्याः कोष्ठकास्तत्र ता लिखेत् ।
ओमाद्याहूँ फडन्ता च आदिवर्णमथानुतः ।। १८ ।।

विद्यावर्णक्रमेनैव संज्ञाञ्च वषडन्तिकां । अधस्थात् प्रत्यङ्गिरैषा सर्व्वकामार्थसाधिका ।।१९।।
एकाशीतिपदे सर्व्वामादिवर्णक्रमेण तु । आदिमं यावदन्तं स्याद्वषडन्तञ्च नाम वै ।।२०।।
एषा प्रत्यङ्गिरा चान्या सर्व्वकार्य्यादिसाधनी । निग्रहानुग्रहञ्चक्रञ्चतुःषष्टिपदैर्लिखेत् ।।२१।।

---

१. पूर्वपदे इति ञ. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अमृती सा च विद्या च क्रीं सः हूँ नामाथ मध्यतः ।
फट्काराद्यां पत्रगतां त्रिह्लीँकारेण वेष्टयेत् ॥ २२ ॥
कुम्भवद्धारिता सर्व्वशत्रुहृत् सर्व्वदायिका । विपन्नश्येत् कर्णजपादक्षराद्यैश्च दण्डकैः ॥२३॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये त्वरिताज्ञानं नाम चतुर्दशाधिक-
त्रिशततमोऽध्यायः ।

पञ्चदशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः

स्तम्भनादिमन्त्राः ।

अग्निरुवाच

स्तम्भनं मोहनं वश्यं विद्वेषोच्चाटनं वदे । विपव्याधिमरोगञ्च मारणं शमनं पुनः ॥१॥
भूर्ज्जे कूर्म्मं समालिख्य ताड़नेन षडङ्गुलम् । मुखपादचतुष्केषु ततो मन्त्रं न्यसेद्द्विजः ॥२॥
चतुष्पादेषु क्रीँकारं ह्लीँकारं मुखमध्यतः । गर्भे विद्यां ततो लिख्य साधकं पृष्ठतो लिखेत् ॥३॥
मालामन्त्रैस्तु संवेष्ट्य इष्टकोपरि सन्न्यसेत् । पिधाय कूर्म्मपृष्ठेन करालेनाभिसम्पठेत् ॥४॥
महाकूर्म्मं पूजयित्वा पादप्रोक्षन्तु निक्षिपेत् । ताडयेद्वामपादेन स्मृत्वा शत्रुञ्च सप्तधा ॥५॥
ततः सञ्जायते शत्रोस्तम्भनं मुखरागतः । कृत्वा तु भैरवं रूपं मालामन्त्रं समालिखेत् ॥६॥

ओं शत्रुमुखस्तम्भनी कामरूपा आलीढकरी ॥

ह्रीं फें फेत्कारिणी मम शत्रूणां देवदत्तानां मुखं स्तम्भय२ मम सर्व्वविद्वेषिणां मुखस्तम्भनं कुरु२ ओं हूँ फँ फेत्कारिणि स्वाहा ।

फट् हेतुञ्च समालिख्य तज्जपान्तं महाबलं । वामेनैव नगं शूलं संलिखेद्दक्षिणे करे ॥७॥

लिखेन्मन्त्रमघोरस्य संग्रामे स्तम्भयेदरीन् ।

ओं नमो भगवत्यै भगमालिनि विस्फुर२ स्पन्द२ नित्यक्लिन्ने द्रव२ हूँ सः क्रीँकाराक्षरे स्वाहा ॥

एतेन रोचनाद्यैस्तु तिलकान्मोहयेज्जगत् ॥ ८ ॥

ओं फँ हूँ फट् फेत्कारिणि ह्रीँ ज्वल२ त्रैलोक्यं मोहय२ गुह्यकालिके स्वाहा ॥
अनेन तिलकं कृत्वा राजादीनां वशीकरं । गर्द्दभस्य रजो गृह्य कुसुमं सूतकस्य च ॥९॥
नारीरजः क्षिपेद्रात्रौ शय्यादौ द्वेषकृद्भवेत् । गोखुरञ्च तथा शृङ्गमश्वस्य च खुरं तथा ॥१०॥
शिरः सर्पस्य संक्षिप्तं गृहेपूच्चाटनं भवेत् । करवीरशिफा पीता ससिद्धार्था च मारणे ॥११॥
व्यालछुच्छुन्दरीरक्तं करवीरं तदर्थकृत् । सरटं पट्पदञ्चापि तथा कर्क्कटवृश्चिकम् ॥१२॥
चूर्णीकृत्य क्षिपेत्तैले तदभ्यङ्गश्च कुष्ठकृत् ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ओं नवग्रहाय सर्व्वशत्रून् मम साधय२ मारय२ आं सों मं वुं चुं ओं शं वां कें ओं स्वाहा ।

अनेनार्क्कशतैरर्च्य श्मशाने तु निधापयेत् ॥ १३ ॥

भूर्ज्जे वा प्रतिमायां वा मारणाय रिपोर्ग्रहाः । ओं कुञ्जरी ब्रह्माणी । ओं मञ्जरी माहेश्वरी ॥

ओं वेताली कौमारी ओं काली वैष्णवी ।

ओं अघोरा वाराही । ओं वेताली इन्द्राणी उर्व्वशी । ओं जयानी यक्षिणी । नवमातरो हे मम शत्रुं गृह्णत२ ।

भूर्ज्जे नाम रिपोर्लिख्य श्मशाने पूजिते म्रियेत् ॥ १४ ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये स्तम्भनादिमन्त्रा नाम पञ्चदशाधिक-
त्रिशततमोऽध्यायः ।

षोड़शाधिकत्रिशततमोऽध्यायः

नानामन्त्राः ।

अग्निरुवाच

आदौ हूँकारसंयुक्ता ;खेचछे पदभूषिता । वर्गातीतविसर्गेण स्त्रीँ हूँक्षेपफड़न्तिका ॥१॥
सर्व्वकर्म्मकरी विद्या विषसन्धादिमर्द्दनी । ओं क्षेचछेतिप्रयोगश्च कालदष्टस्य जीवने ॥२॥
ओं हूँ केक्षः प्रयोगोयं विषशत्रुप्रमर्द्दनः । स्त्रीं हूँ फडितियोगोयं पापरोगादिकं जयेत् ॥३॥

खेछेति च प्रयोगोऽयं विघ्नदुष्टादि वारयेत्[1] ।
ह्रूँ स्त्रीँ ओमितियोगोऽयं योषिदादिवशीकरः ॥ ४ ॥
खे स्त्रीँ खे च प्रयोगोऽयं वशाय विजयाय च ।

ऐँ ह्रीँ श्रीँ स्फँ कँ क्षौँ भगवति अम्बिके कुब्जिके स्फँ ओं भं तं वशनमो अघोराय मुखे व्रां व्रीँ किलि किलि विच्चा स्फ्रीँ हे स्फ्रँ श्रीँ ह्रीँ ऐँ श्रीमिति कुब्जिकाविद्या सर्व्वकरा स्मृता ॥

भूयः स्कन्दाय यानाह मन्त्रानीशश्च तान् वदे ॥ ५ ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये नानामन्त्रा नाम षोडशाधिक-
त्रिशततमोऽध्यायः ।

---

१. रिपुदुष्टादि वारयेदिति क. ट. च ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सप्तदशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः

सकलादिमन्त्रोद्धारः ।

ईश्वर उवाच

सकलं निष्कलं शून्यं कलाढ्यं स्वमलङ्कृतम् । क्षपणं क्षयमन्तस्थं कण्ठोष्ठं चाष्टमं शिवम् ॥
प्रासादस्य[1] पराख्यस्य स्मृतं रूपं[2] गुहाष्टधा । सदाशिवस्य शब्दस्य रूपस्याखिलसिद्धये ॥
अमृतश्चांशुमांश्चेन्दुश्चेश्वरश्चोग्र ऊहकः । एकपादेन ओजाख्य औषधश्चांशुमान् वशी ॥३॥
अकारादेः क्षकारश्च ककारादेः क्रमादिमे । कामदेवः शिखण्डी च गणेशः कालशङ्करौ ॥४॥
एकनेत्रो द्विनेत्रश्च त्रिशिखो दीर्घबाहुकः[3] । एकपादर्द्धचन्द्रश्च वल्पो योगिनीप्रियः ॥५॥
शक्तीश्वरो महाग्रन्थिस्तर्पकः स्थाणुदन्तुरौ । निधीशो नन्दी पद्मश्च तथान्यः शाकिनीप्रियः ॥
मुखविम्बो भीषणश्च कृतान्तः प्राणसंज्ञकः । तेजस्वी शक्र उदधिः श्रीकण्ठः सिंह एव च ॥
शशाङ्को विश्वरूपश्च क्षश्च स्यान्नरसिहकः । सूर्य्यमात्रासमाक्रान्तं विश्वरूपन्तु कारयेत् ॥८॥
अंशुमत्संयुतं कृत्वा शशिवीजं विनायुतम् । ईशानमोजसाक्रान्तं प्रथमन्तु समुद्धरेत् ॥९॥
तृतीयं पुरुषं विद्धि दक्षिणं पञ्चमं तथा । सप्तमं वामदेवन्तु सद्योजातन्ततः परं ॥१०॥
रसयुक्तन्तु नवमं ब्रह्मपञ्चकमीरितम् । ओंकाराद्याश्चतुर्थ्यन्ता नमोन्ताः सर्व्वमन्त्रकाः ॥
सद्योदेवा द्वितीयन्तु हृदयञ्चाङ्गसंयुतम् । चतुर्थन्तु शिरो विद्धि ईश्वरन्नामनामतः ॥१२॥
ऊहकन्तु शिखा ज्ञेया विश्वरूपसमन्विता । तन्मन्त्रमष्टमं ख्यातं नेत्रन्तु दशमं मतम् ॥१३॥
अस्त्रं शशी समाख्यातं शिवसंज्ञं शिखिध्वजः । नमः स्वाहा तथा वौषट् हुँ च फट्क्रमेण तु ॥
जातिफट्कं हृदादीनां प्रासादं मन्त्रमावदे[4] । ईशानाद्रुद्रसंख्यातं प्रोद्धरेचांशुरञ्जितम् ॥१५॥
औषधाक्रान्तशिरसमूहकस्योपरिस्थितं । अर्द्धचन्द्रोर्द्धनादश्च विन्दुद्वितयमध्यगं ॥१६॥
तदन्ते विश्वरूपन्तु कुटिलन्तु त्रिधा ततः । एवं प्रासादमन्त्रश्च सर्व्वकर्म्मकरो मनुः ॥१७॥
शिखाबीजं समुद्धृत्य फट्कारान्तन्तु चैव फट् । अर्द्धचन्द्रासनं ज्ञेयं कामदेवं ससर्पकम् ॥
महापाशुपतास्त्रन्तु सर्व्वदुष्टप्रमर्दनम् । प्रासादः सकलः प्रोक्तो निष्कलः प्रोच्यते ऽधुना ॥१९॥
औषधं विश्वरूपन्तु रुद्राख्यं सूर्य्यमण्डलम् । चन्द्रार्द्ध नादसंयोगं[5] विसंज्ञं कुटिलन्ततः ॥२०॥
निष्कलो भुक्तिमुक्तौ स्यात्पञ्चाङ्गोऽयं सदाशिवः । अंशुमान् विश्वरूपञ्च आवृतं शून्यरञ्जितम् ॥
ब्रह्माङ्गरहितः शून्यस्तस्य मूर्त्तिरसस्तरुः । विघ्ननाशाय भवति पूजितो बालबालिशैः ॥२२॥
अंशुमान् विश्वरूपाख्यमूहकस्योपरि स्थितम् । कलाढ्यं सकलस्यैव पूजाङ्गादि च सर्व्वतः ॥
नरसिंहं कृतान्तस्थं तेजस्विप्राणमूर्द्धगम् । अंशुमानूहकाक्रान्तमधोर्द्धं स्वसलङ्घृतम् ॥२४॥
चन्द्रार्द्धनादनादान्तं ब्रह्मविष्णुविभूषितम् । उदधिं नरसिंहञ्च सूर्य्यमात्राविभेदितम् ॥२५॥

---

१. प्रसादस्येति ख. । २. स्मृतिरूपमिति ख. ।
३. त्रिशिखी चोद्र्ध्ववाहुक इति ख. छ. च । ४. मन्त्रमादरेदिति ञ. ।
५. चन्द्रार्द्धनादसंयुक्तमिति ख. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यदा कृतं तदा तस्य ब्रह्माण्यङ्गानि पूर्व्ववत्। ओजाख्यमंशुमद्युक्तं प्रथमं वर्णमुद्धरेत् ॥२६॥
अंशुमच्चांशुनाक्रान्तं द्वितीयं वर्णनायकम्। अंशुमानीश्वरन्तद्वत् तृतीयं मुक्तिदायकम् ॥२७॥
ऊहकञ्चांशुनाक्रान्तं वरुणप्राणतैजसम्। पञ्चमन्तु समाख्यातं कृतान्तन्तु ततः परम् ॥२८॥
अंशुमानुदकप्राणः सप्तमं वर्णमुद्धृतम्। पद्ममिन्दुसमाक्रान्तं नन्दीशमेकपादधृक् ॥२९॥
प्रथमञ्चान्ततो योज्यं क्षपणं दशबीजकम्। अस्यार्द्धं तृतीयञ्चैव पञ्चमं सप्तमं तथा ॥३०॥
सद्योजातन्तु नवमं द्वितीयाद्धृदयादिकम्। दशार्णप्रणवं यत्तु फडन्तञ्चास्त्रमुद्धरेत् ॥३१॥
नमस्कारयुतान्यत्र ब्रह्माङ्गानि तु नान्यथा। द्वितीयादष्टमं यावदष्टौ विद्येश्वरा मताः ॥३२॥
अनन्तेशश्च सूक्ष्मश्च तृतीयश्च शिवोत्तमः। एकमूर्त्त्येकरूरस्तु त्रिमूर्त्तिरपरस्तथा ॥३३॥
श्रीकण्ठश्च शिखण्डी च अष्टौ विद्येश्वराः स्मृताः।
शिखण्डिनोऽप्यनन्तान्तं मन्त्रान्तं मूर्त्तिरीरिता ॥ ३४ ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये सकलादिमन्त्रोद्धारो नाम सप्तदशाधिक-
त्रिशततमोऽध्यायः।

अष्टादशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः

गणपूजा।

ईश्वर उवाच

विश्वरूपं समुद्धृत्य तेजस्युपरि संस्थितम्। नरसिंहं ततोऽधस्तात् कृतान्तं तदधो न्यसेत् ॥
प्रणवं तदधःकृत्वा ऊहकं तदधः पुनः। अंशुमान् विश्वमूर्त्तिस्थं कण्ठोष्ठप्रणवादिकम् ॥२॥
नमोऽन्तः स्याच्चतुर्वर्णो विश्वरूपश्च कारणम्। सूर्य्यमात्राहतं ब्रह्मण्यङ्गानीह तु पूर्ववत्[1] ॥
उद्धरेत् प्रणवं पूर्व्वं प्रस्फुरद्वयमुच्चरेत्। घारबोरतरं पश्चात् तत्र रूपमतः स्मरेत् ॥४॥
चटशब्दं द्विधा कृत्वा ततः प्रवरमुच्चरेत्। दहेति च द्विधा कार्य्यं वमेति च द्विधा मतम्[2] ॥
घातयेति द्विधाकृत्य हूँफड़न्तं समुच्चरेत्। अघोरास्त्रन्तु नेत्रं स्याद् गायत्री चोच्यतेऽधुना ॥
तन्महेशाय विद्महे महादेवाय धीमहि तन्नः शिवः प्रचोदयात् गायत्री सर्वसाधनी ॥
यात्रायां विजयादौ च यजेत पूर्वङ्गणं श्रिये। तुर्य्यांशे तु पुरा क्षेत्रे समन्तादर्क्कभाजिते ॥७॥
चतुष्पदं त्रिकोणे तु त्रिदलं कमलं लिखेत्। तत्पृष्ठे पदिकावीथीभागि त्रिदलमरत्रयुक् ॥
वसुदेवसुतैः साञ्जैस्त्रिदलैः पादपट्टिका। तदूर्द्धे वेदिका देया भागमात्रप्रमाणतः ॥९॥
द्वारं पद्मभितं कोष्ठादुपद्वारं विवर्णितम्। द्वारोपद्वाररचितं मण्डलं विघ्नसूदनम् ॥१०॥
आरक्तं कमलं मध्ये वाह्यपद्मानि तद्वहिः। सिता तु वीथिका कार्या द्वाराणि तु यथेच्छया ॥

---

१. सर्व्वंत इति ख.।　　२. द्विधाकृतमिति ख.।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कर्णिका पीतवर्णा स्यात् केशराणि तथा पुनः। मण्डलं विघ्नमर्दाख्यं मध्ये गणपतिं यजेत्॥
नामाद्यं सवराकं स्यादेवाच्छक्रसमन्वितम्। शिरो हतं तत्पुरुषेण ओमाद्यञ्च नमोऽन्तकम्॥
गजाख्यं गजशीर्षञ्च गाङ्गेयं गणनायकम्। त्रिरावर्त्तङ्गगनगङ्गोपतिं पूर्वपङ्क्तिगम्॥१४॥
विचित्रांशं महाकायं लम्बोष्ठं लम्बकर्णकम्। लम्बोदरं महाभागं विकृतं पार्वतीप्रियम्॥१५॥
भयावहञ्च भद्रञ्च भगणं भयसूदनम्। द्वादशैते दशपङ्क्तौ देवत्रासञ्च पश्चिमे॥१६॥
महानादम्भास्वरञ्च विघ्नराजं गणाधिपम्। उद्भटस्वानभश्चण्डौ महाशुण्डञ्च भीमकम्॥१७॥
मन्मथं मधुसूदञ्च सुन्दरं भावपुष्टकम्। सौम्ये ब्रह्मेश्वरं ब्राह्मं मनोवृत्तिञ्च संलयम्॥१८॥
लयं दूत्यप्रियं लौल्यं विकर्णं वत्सलं तथा। कृतान्तं कालदण्डञ्च यजेत् कुम्भञ्च पूर्व्ववत्॥
अयुतञ्च जपेन्मन्त्रं होमयेत्तु दशांशतः। शेषाणान्तु दशाहुत्या जपाद्धोमन्तु कारयेत्॥२०॥
पूर्णां दत्वाऽभिषेकन्तु कुर्य्यात्सर्वन्तु सिध्यति। भूगोऽश्वगजवस्त्राद्यैर्गुरुपूजाञ्चरेन्नरः॥२१॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये गणपूजा नामाष्टादशाधिक-
त्रिशततमोऽध्यायः।

ऊनविंशत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः

वागीश्वरीपूजा।

ईश्वर उवाच

वागीश्वरीपूजनञ्च प्रवदामि समण्डलम्। ऊहकं कालसंयुक्तं मनुं वर्णसमायुतम्[1]॥१॥
निषाद ईश्वरं कार्य्यं मनुना चन्द्रसूर्यवत्। अक्षरन्न हि देयं स्यात् ध्यायेत् कुन्देन्दुसन्निभां॥
पञ्चाशद्वर्णमालान्तु मुक्तास्रग्दामभूषिताम्। वरदाभयाक्षसूत्रपुस्तकाढ्यां त्रिलोचनां॥३॥
लक्षं जपेन्मस्तकान्तं स्कन्धान्तं वर्णमालिकां। अकारादिक्षकारान्तां विशन्तीं मानवत् स्मरेत्॥

कुर्य्याद् गुरुश्च दीक्षार्थं मन्त्रग्राहे तु मण्डलम्।
सूर्य्याग्रमिन्दुभक्तन्तु भागाभ्यां कमलं हितं[2]॥ ५॥
वीथिका पदिका कार्य्या पद्मान्यष्टौ चतुष्पदे।
वीथिका पदिका बाह्ये द्वाराणि द्विपदानि तु॥ ६॥

उपद्वाराणि तद्वच्च कोणबान्धं द्विपट्टिकम्[3]। सितानि नव पद्मानि कर्णिका कनकप्रभा॥७॥
केशराणि विचित्राणि कोणात्रक्तेन पूरयेत्। व्योमरेखान्तरं कृष्णं द्वाराणीन्द्रेभमानतः॥८॥
मध्ये सरस्वतीं पद्मे वागीशीं पूर्व्वपद्मके। हृल्लेखा चित्रवागीशी गायत्री विश्वरूपया॥९॥

---

१. चन्द्रमसायुतमिति ञ.।
२. कृतमिति ख.।
३. द्विपर्णकमिति ख.।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शाङ्करी मतिर्धूतिश्च पूर्व्वाद्या ह्रीँ स्ववीजकाः।
ध्येया सरस्वतीवच्च कपिलाज्येन होमकः। संस्कृतप्राकृतकविः काव्यशास्त्रादिविद्भवेत्॥१०॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये वागीश्वरीपूजा नामोनविंशत्यधिक-
त्रिशततमोऽध्यायः।

विंशत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः

मण्डलानि।

सर्व्वतो भद्रकान्यष्टमण्डलानि वदे गुह। शक्तिमासाधयेत प्राचीमिष्टायां विषुवे सुधीः॥१॥
चित्रास्वात्यन्तरेणाथ दृष्टसूत्रेण वा पुनः। पूर्व्वापरायतं सूत्रमास्फाल्य मध्यतोऽङ्कयेत्॥२॥
कोटिद्वयन्तु तन्मध्यादङ्कयेद्दक्षिणोत्तरम्। मध्ये द्वयं प्रकर्त्तव्यं स्फालयेद्दक्षिणोत्तरम्॥३॥
शतक्षेत्रार्द्धमानेन कोणसम्पातमादिशेत्। एवं सूत्रचतुष्कस्य स्फालनाच्चतुरस्त्रकम्॥४तै
जायते तत्र कर्त्तव्यं भद्रस्वेदकरं शुभम्। वसुभक्तेन्दुद्विपदे क्षेत्रे वीथी च भागिका॥५॥
द्वारं द्विपदिकं पद्ममानाद्वै सकपोलकम्। कोणबन्धत्रिचित्रन्तु द्विपदं तत्र वर्त्तयेत्॥६॥
शुक्लं पद्मं कर्णिका तु पीता चित्रन्तु केशरम्। रक्ता वीथी तत्र कल्प्या द्वारं लोकेशरूपकं॥
रक्तकोणं विधौ नित्ये नैमित्तिकेऽब्जकं शृणु। असंसक्तन्तु संसक्तं द्विधाब्जं भुक्तिमुक्तिकृत्॥
असंसक्तं सुमुक्षूणां संसक्तं तत्त्रिधा पृथक्। बालो युवा च वृद्धश्च नामतः फलसिद्धिदाः॥
पद्मक्षेत्रे तु सूत्राणि दिग्विदिक्षु विनिक्षिपेत्। वृत्तानि पञ्चकल्पानि पद्मक्षेत्रसमानि तु॥
प्रथमे कर्णिका तत्र पुष्करैर्न्नवभिर्युता। केशराणि चतुर्विंशद्वितीयेऽथ तृतीयके॥११॥
दलसन्धिर्गजकुम्भनिभान्तर्यद्दलाग्रकम्। पञ्चमे व्योमरूपन्तु संसक्तं कमलं स्मृतं॥१२॥
असंसक्ते दलाग्रे तु दिग्भागैर्विस्तराद्व्रजेत्। भागद्वयपरित्यागाद्वस्वंशैर्व्वर्त्तयेद्दलम्॥१३॥
सन्धिविस्तरसूत्रेण तन्मूलादङ्कयेद्दलम्। सव्यासव्यक्रमेणैव वृद्धमेतद्भवेत्तथा॥१४॥
अथ वा सन्धिमध्यात्तु भ्रामयेदर्द्धचन्द्रवत्। सन्धिद्वयाग्रसूत्रं वा बालपद्मन्तथा भवेत्॥१५॥
सन्धिसूत्रार्द्धमानेन पृष्ठतः परिवर्त्तयेत्। तीक्ष्णाग्रन्तु युवातेन कमलं भुक्तिमुक्तिदम्॥१६॥
मुक्तवृद्धौ च वश्यादौ बालं पद्मं समानकं। नवनाभं नवहस्तं भागैर्म्मन्त्रात्मकैश्च तत्॥१७॥
मध्येऽब्जं पट्टिकावीजं द्वारेणाब्जस्य मानतः। कण्ठोपकण्ठमुक्तानि तद्बाह्ये वीथिका मता॥
पञ्चभागान्विता[1] सा तु समन्तादशभागिका। दिग्विदिक्ष्वष्ट पद्मानि द्वारपद्मं सवीथिकम्॥
तद्बाह्ये पञ्च पदिका वीथिका यत्र भूषिता। पद्मवद्द्वारकण्ठन्तु पदिकश्चौष्ठकण्ठकं॥२०॥
कपोलं पदिकं कार्य्यं दिक्षु द्वारत्रयं स्फुटम्। कोणबन्धं त्रिपट्टन्तु द्विपट्टं वज्रवद्भवेत्॥२१॥
मध्यन्तु कमलं शुक्लं पीतं रक्तञ्च नीलकम्। पीतशुक्लञ्च धूम्रञ्च रक्तं पीतञ्च मुक्तिदम्॥

---

१. पञ्चभागमितेति ख. छ. च।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पूर्व्वादौ कमलान्यष्ट शिवविष्णवादिकं जपेत् । प्रासादमध्यतोऽभ्यर्च्य शक्रादीनब्जकादिषु ॥
अस्त्राणि वाह्यवीथ्यान्तु विष्णवादीनश्वमेधभाक् । पवित्रारोहणादौ च महामण्डलमालिखेत् ॥
अष्टहस्तं पुरा क्षेत्रं रसपक्षैर्विवर्त्तयेत् । द्विपदं कमलं मध्ये वीथिका पदिका ततः ॥२५॥
दिग्विदिक्षु ततोऽष्टौ च नीलाब्जानि विवर्त्तयेत् । मध्यपद्मप्रमाणेन त्रिंशत्पद्मानि तानि तु ॥
दलसन्धिविहीनानि नीलेन्दीवरकानि च । तत्पृष्ठे पदिका वीथी स्वस्तिकानि तदूर्द्ध्वतः ॥
द्विपदानि तथा चाष्टौ कृतिभागकृतानि तु । वर्त्तयेत् स्वस्तिकांस्तत्र वीथिका पूर्व्ववद्वहिः ॥
द्वाराणि कमलं यद्वदुपकण्ठयुतानि[१] तु । रक्तं कोणं पीतवीथी नीलं पद्मञ्च मण्डले ॥२९॥
स्वस्तिकादि विचित्रञ्च सर्व्वकामप्रदं गुह । पञ्चाब्जं पञ्चहस्तं स्यात् समन्ताद्दशभाजितम् ॥
द्विपदं कमलं वीथी पट्टिका दिक्षु पङ्कजम् । चतुष्कं पृष्ठतो वीथी पदिका द्विपदान्यथा ॥

कण्ठोपकण्ठयुक्तानि द्वाराण्यब्जन्तु मध्यतः ।
पञ्चाब्जमण्डले ह्यस्मिन् सितं पीतञ्च पूर्व्वकम् ॥ ३२ ॥

वैदूर्य्याभं दक्षिणाब्जं कुन्दाभं वारुणं कजम् । उत्तराब्जन्तु शङ्खाभमन्यत सर्व्वं विचित्रकम् ॥
सर्व्वकामप्रदं वक्ष्ये दशहस्तन्तु मण्डलम् । विकारभक्तन्तुर्य्याश्रं द्वारन्तु द्विपदं भवेत् ॥३४॥
मध्ये पद्मं पूर्व्ववच्च विघ्नध्वंसं वदाम्यथ । चतुर्हस्तं पुरं कृत्वा वृत्तञ्चैव करद्वयम् ॥३५॥
वीथिका हस्तमात्रन्तु स्वस्तिकैर्वहुभिर्वृता । हस्तमात्राणि द्वाराणि दिक्षु वृत्तं सपद्मकम् ॥

पद्मानि पञ्च शुक्लानि मध्ये पूज्यश्च निष्कलः ।
हृदयादीनि पूर्व्वादौ विदिक्ष्वस्त्राणि वै यजेत् ॥ ३७ ॥

प्राग्वच्च पञ्च ब्रह्माणि बुद्धयाधारमतो वदे । शतभागे तिथिभागे पद्मं लिङ्गाष्टकं दिशि ॥
मेखलाभागसंयुक्तं कण्ठं द्विपदिकं भवेत् । आचार्य्यो बुद्धिमाश्रित्य कल्पयेच्च लतादिकम् ॥
चतुःषट्पञ्चमाष्टादि खाछिखाद्यादि मण्डलम् । खाक्षीन्दुसूर्य्यगं सर्वं खाक्षि चैवेन्दुवर्णनात् ॥
चत्वारिंशदधिकानि चतुर्द्दशशतानि हि । मण्डलानि हरेःशम्भोर्देव्याः सूर्य्यस्य सन्ति च ॥
दशसप्तविभक्ते तु लतालिङ्गोद्भवं शृणु । दिक्षु पञ्चत्रयञ्चैकं त्रयं पञ्च च लोमयेत्[२] ॥४२॥
ऊर्द्ध्वगे द्विपदे लिङ्गमन्दिरं पार्श्वकोष्ठयोः । मध्येन द्विपदं पद्ममथ चैकञ्च पङ्कजं ॥४३॥
लिङ्गस्य पार्श्वयोर्भद्रेपदद्वारमलोपनात् । तत्पार्श्वशोभाः षड्लोप्य लताः शेषास्तथा हरेः ॥
ऊर्द्ध्वं द्विपदिकं लोप्य हरेर्भद्राष्टकं स्मृतम् । रश्मिमानसमायुक्तवेदलोपाच्च शोभिकम् ॥४५॥
पञ्चविंशतिकं पद्मं ततः पीठमपीठकम् । द्वयं द्वयं रक्षयित्वा उपशोभास्तथाष्ट च ॥४६॥
देव्यादिख्यापकं भद्रं वृहन्मध्ये परं लघु । मध्ये नवपदं पद्मं कोणे भद्रचतुष्टयम् ॥४७॥
त्रयोदशपदं शेषं बुद्धयाधारन्तु मण्डलं । शतपत्रं षष्ट्यधिकं बुद्धयाधारं हरादिषु ॥४८॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये मण्डलानि नाम विंशत्यधिक-
त्रिशततमोऽध्यायः ।

---

१. तद्वदुपकण्ठयुतानीति ख. ञ. च । २. लोपयेदिति ञ. । लेपयेदिति ट. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

एकविंशत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः

अघोरास्त्रादिशान्तिकल्पः ।

ईश्वर उवाच

अस्त्रयागः पुरा कार्य्यः सर्वकर्म्मसु सिद्धिदः। मध्ये पूज्य शिवाद्यस्त्रं वज्रादीन् पूर्वतः क्रमात ॥
पञ्चचक्रं दशकरं रणादौ पूजितं जये। ग्रहपूजा रविर्मध्ये पूर्व्वाद्याः सोमकादयः ॥२॥
सर्व्वे एकादशस्थास्तु ग्रहाः स्युः ग्रहपूजनात्। अस्त्रशान्तिं प्रवक्ष्यामि सर्वोत्पातविनाशिनीं॥
ग्रहरोगादिशमनीं मारीशत्रुविमर्द्दनीं। विनायकोपतप्तिघ्नमघोरास्त्रं जपेन्नरः ॥४॥
लक्षं ग्रहादिनाशः स्यादुत्पाते तिलहोमनम्। दिव्ये लक्षं तदर्द्धेन व्योमजोत्पातनाशनं ॥५॥
घृतेन लक्षपातेन उत्पाते भूमिजे हितम्। घृतगुग्गुलुहोमे च सर्व्वोत्पातादिमर्द्दनम् ॥६॥
दूर्वाक्षताज्यहोमेन व्याधयोऽथ घृतेन च। सहस्रेण तु दुःस्वप्ना विनशन्ति न संशयः ॥७॥
अयुताद् ग्रहदोषघ्नो जवाघृतविमिश्रितात्। विनायकार्त्तिशमनमयुतेन घृतस्य च ॥८॥
भूतवेतालशान्तिस्तु गुग्गुलोरयुतेन च। महावृक्षस्य भङ्गे तु व्यालकङ्के[1] गृहे स्थिते ॥९॥
आरण्यानां प्रवेशे च दूर्वाज्याक्षतहावनात्। उल्कापाते भूमिकम्पे तिलाज्येनाहुताच्छिवम्॥
रक्तस्रावे तु वृक्षाणामयुताद् गुग्गुलोः शिवं। अकाले फलपुष्पाणां राष्ट्रभङ्गे च मारणे॥११॥
द्विपदादेर्यदा मारी लक्षार्द्धाच्च तिलाज्यतः। हस्तिमारीप्रशान्त्यर्थं करिणीदन्तवर्द्धने ॥१२॥
हस्तिन्यां मदहष्टौ च अयुताच्छान्तिरिष्यते। अकाले गर्भपाते तु जातं यत्र विनश्यति॥१३॥
विकृता यत्र जायन्ते यात्राकालेऽयुतं हुनेत्। तिलाजयलक्षहोमन्तु उत्तमासिद्धिसाधने॥१४॥

मध्यमायां तदर्द्धेन तत्पादादधमासु च।
यथा जपस्तथा होमः संग्रामे विजयो भवेत्।
अघोरास्त्रं जपेन्न्यस्य ध्यात्वा पञ्चास्यमूर्ज्जितम् ॥ १५ ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये अघोरास्त्रादिशान्तिकल्पो नामैकविंशत्यधिक-
त्रिशततमोऽध्यायः ।

द्वाविंशत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः

पाशुपतशान्तिः ।

ईश्वर उवाच

वक्ष्ये पाशुपतास्त्रेण शान्तिजापादि पूर्व्वतः। पादतः पूर्व्वनाशो हि फडन्तं चापदादिनुत ॥

---

१. व्यालकाके इति ख. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ओं नमो भगवते महापाशुपताय अतुलबलवीर्य्यपराक्रमाय त्रिपञ्चनयनाय नानारूपाय नानाप्रहरणोद्यताय सर्व्वाङ्गरक्ताय भिन्नाञ्जनचयप्रख्याय श्मशानवेतालप्रियाय सर्वविघ्ननिकृन्तरताय सर्व्वसिद्धिप्रदाय भक्तानुकम्पिने असंख्यवक्त्रभुजपादाय तस्मिन्सिद्धाय वेतालवित्रासिने शाकिनीक्षोभजनकाय व्याधिनिग्रहकारिणे पापभञ्जनाय सूर्य्यसोमाग्निनेत्राय विष्णुकवचाय खड्गवज्रहस्ताय यमदण्डवरुणपाशाय रुद्रशूलाय ज्वलज्जिह्वाय सर्व्वरोगविद्रावणाय ग्रहनिग्रहकारिणे दुष्टनागक्षयकारिणे ओं कृष्णपिङ्गलाय फट् । हूंकारास्त्राय फट् । वज्रहस्ताय फट् । शक्तये फट् । दण्डाय फट् । यमाय फट् । खड्गाय फट् । वारुणाय फट् । पाशाय फट् । ध्वजाय फट् । अङ्कुशाय फट् । गदायै फट् । कुवेराय फट् । त्रिशूलाय फट् । मुद्गराय फट् । चक्राय फट् । पद्माय फट् । नागास्त्राय फट् ।ईशानाय फट् । खेटकास्त्राय फट् । मुण्डास्त्राय फट् । कङ्कालास्त्राय फट् । पिच्छिकास्त्राय फट् । छुरिकास्त्राय फट् । ब्रह्मास्त्राय फट् । शक्त्यस्त्राय फट् । गणास्त्राय फट् । पिलिपिच्छास्त्राय फट् । गन्धर्वास्त्राय फट् । मूर्व्वास्त्राय फट् । दक्षिणास्त्राय फट् । वामास्त्राय फट् । पश्चिमास्त्राय फट् । मन्त्रास्त्राय फट् । शाकिन्यस्त्राय फट् । योगिन्यस्त्राय फट् । दण्डास्त्राय फट् । महादण्डास्त्राय फट् । नानास्त्राय फट् । शिवास्त्राय फट् । ईशानास्त्राय फट् । पुरुषास्त्राय फट् । अघोरास्त्राय फट् । सद्योजातास्त्राय फट् । हृदयास्त्राय फट् । महास्त्राय फट् । गरुडास्त्राय फट् । राक्षसास्त्राय फट् । दानवास्त्राय फट् । क्षौं नरसिंहास्त्राय फट् । त्वष्ट्रस्त्राय फट् । सर्व्वास्त्राय फट् । नः फट् । वः फट् । पः फट् । फः फट् । मः फट् । श्री फट् । फेः फट् । भूः फट् । भुवः फट् । स्वः फट् । महः फट् । जनः फट् । तपः फट् । सर्व्वलोक फट् । सर्व्वपाताल फट् । सर्वतत्त्व फट् । सर्वप्राण फट् । सर्वनाड़ी फट् । सर्वकारण फट् । सर्वदेव फट् । ह्रीँ फट् । श्रीँ फट् । हूँ फट् । स्रुँ फट् । स्वां फट् । लां फट् । वैराग्याय फट् । मायास्त्राय फट् । कामास्त्राय फट् । क्षेत्रपालास्त्राय फट् । हूँकारास्त्राय फट् । भास्करास्त्राय फट् । चन्द्रास्त्राय फट् । विघ्नेश्वरास्त्राय फट् । खौँ खौँ फट् । ह्रौँ ह्रौँ फट् । भ्रामय २ फट् । छादय २ फट् । उन्मूलय २ फट् । त्रासय २ फट् । सञ्जीवय २ फट् । विद्रावय २ फट् । सर्व्वदुरितं नाशय २ फट् ।

सकृदावर्त्तनादेव सर्वविघ्नान् विनाशयेत् । शतावर्त्तेन चोत्पातानृणादौ विजयो भवेत् ।।२।।
घृतगुग्गुलहोमाच्च असाध्यानपि[1] साधयेत् ।पठनात्सर्वशान्तिः स्याच्छस्त्रपाशुपतस्य च ।।३।।

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये पाशुपतशान्तिर्नाम द्वात्रिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ।

---

१. असाध्यमपीति ख. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

त्रयोविंशत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः

षडङ्गान्यघोरास्त्राणि ।

ईश्वर उवाच

ओं ह्रूँ हंसइति मन्त्रेण मृत्युरोगादि शाम्यति ।
लक्षाहुतिभिर्दूर्व्वाभिः शान्ति पुष्टि प्रसाधयेत् ॥ १ ॥

अथ वा प्रणवेनैव मायया वा षड़ानन । दिव्यान्तरीक्षभौमानां शान्तिरुत्पातवृक्षके ॥२॥

ओं नमो भगवति गङ्गे कालि २ महाकालि २ मांसशोणितभोजने रक्तकृष्णमुखि वशमानय मानुषान् स्वाहा ॥

ओं लक्षं जप्त्वा दशांशेन हुत्वा स्यात् सर्वकर्म्मकृत् ।
वशं नयति शक्रादीन्मानुषेष्वेषु का कथा ॥ ३ ॥

अन्तर्द्धानकरी विद्या मोहनी जृम्भनी तथा । वशन्नयति शत्रूणां शत्रुबुद्धिप्रमोहिनी ॥४॥

कामधेनुरियं विद्या सप्तधा परिकीर्त्तिता । मन्त्रराजं प्रवक्ष्यामि शत्रुचौरादिमोहनम् ॥५॥

महाभयेषु सर्व्वेषु स्मर्त्तव्यं हरपूजितं । लक्षं जप्त्वा तिलैर्होमः सिद्ध्येदुद्धारकं शृणु ॥६॥

ओं हले शूले एहि ब्रह्मसत्येन विष्णुसत्येन रुद्रसत्येन रक्ष मां वाचेश्वराय स्वाहा ॥

दुर्गात्तारयते यस्मात्तेन दुर्गा शिवा मता ।

ओं चण्डकपालिनि दन्तान् किटि २ क्षिटि २ गुह्ये फट् ह्रीँ ।

अनेन मन्त्रराजेन क्षालयित्वा तु तण्डुलान् ॥ ७ ॥

त्रिंशद्वारानि जप्तानि तच्चौरेषु प्रदापयेत् । दन्तैश्चूर्णानि शुक्लानि पतितानि हि शुद्धये ॥८॥

ओं ज्वलल्लोचन कपिलजटाभारभास्वर विद्रावण त्रैलोक्यडामर २ दर २ भ्रम २ आकृट्ट २ तोटय २ मोटय २ दह २ पच २ एवं सिद्धिरुद्रो ज्ञापयति यदि ग्रहोपगतः स्वर्गल्लोकं देवलोकं वा आरामविहाराचलं तथापि तमावर्त्तयिष्यामि बलिं गृह २ ददामि ते स्वाहेति ।

क्षेत्रपालबलिं दत्वा ग्रहो न्यासाद्द्रढं व्रजेत् । शत्रवो नाशमायान्ति रणे वैरगणक्षयः ॥९॥

हंसबीजन्तु विन्यस्य विषन्तु[१] त्रिविधं हरेत । अगुरुश्चन्दनं कुष्ठं कुङ्कुमं नागकेशरम् ॥१०॥

नखं वै देवदारुञ्च समं कृत्वाथ धूपकः । साक्षिकेन समायुक्तो देहवस्त्रादिधूपनात् ॥११॥

विवादे मोहने स्त्रीणां भण्डने कलहे शुभः । कन्याया वरणे भाग्ये मायामन्त्रेण मन्त्रितः ॥

ह्रीँ रोचनानागपुष्पाणि कुङ्कुमञ्च मनःशिला । ललाटे तिलकं कृत्वा यं पश्येत्स वशी भवेत् ॥

शतावर्य्यास्तु चूर्णन्तु दुग्धपीतञ्च पुत्रकृत् । नागकेशरचूर्णन्तु घृतपक्वन्तु पुत्रकृत् ॥१४॥

पालाशबीजपानेन लभेत पुत्रकन्तथा ।

ओं उत्तिष्ठ चामुण्डे जम्भय २ मोहय २ अमुकं वशमानय २ स्वाहा ।

---

१. विघ्नन्त्विति ख. छ. च ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

षड्विंशा सिद्धविद्या'सा नदीतीरमृदा श्रियम् ॥१५॥

कृत्वोन्मत्तरसेनैव नामालिख्यार्करत्रके। मूत्रोत्सर्गन्ततः कृत्वा जपेत्तामानयेत्स्त्रियम् ॥१६॥

ओं त्रुंसः वषट्।

मह्रामृत्युञ्जयो मन्त्रो जप्याद्धोमाच्च पुष्टिकृत्।

ओं हंसः ह्रूँ हूं स ह्रः सौं:।

मृतसञ्जीवनी विद्या अष्टार्णा जयकृद्रणे ॥१७॥

मन्त्रा ईशानमुख्याश्च धर्म्मकामादिदायकाः। ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरः सर्वभूतानां ॥१८॥

ब्रह्मणश्चाधिपतिर्ब्रह्म शिवो मेऽस्तु सदाशिवः।

ओं तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्।

ओं अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोरघोरेभ्यस्तु सर्वतः॥ १९॥

सर्व्वेभ्यो नमस्ते रुद्ररूपेभ्यः। ओं वामदेवाय नमो ज्येष्ठाय नमः रुद्राय नमः। कालाय नमः कलविकरणाय नमो बलविकरणाय नमो बलप्रमथनाय नमः। सर्व्वभूतदमनाय नमो मनोन्मानाय नमः।

ओं सद्योजातं प्रवक्ष्यामि सद्योजाताय वै नमः।

भवे भवेऽनादिभवे भजस्व मां भवोद्भव ॥ २०॥

पञ्चब्रह्माङ्गषट्कञ्च[1] वक्ष्येऽहं भुक्तिमुक्तिदं।

ओं नमः परमात्मने पराय कामदाय परमेश्वराय योगाय योगसम्भवाय सर्व्वकराय कुरु२ सत्य२ भव२ भवोद्भव वामदेव सर्व्वकार्य्यकर पापप्रशमन सदाशिव प्रसन्न नमोऽस्तु ते स्वाहा॥

हृदयं सर्व्वार्थदन्तु सप्तत्यक्षरसंयुतं।

ओं शिवः शिवाय नमः शिवः। ओं हृदये ज्वालिनि स्वाहा शिखा। ओं शिवात्मक महातेजः सर्व्वज्ञ प्रभुरावर्त्तय महाघोर कवच पिङ्गल नमः। महाकवच शिवाज्ञया हृदयं बन्ध २ घूर्णय २ चूर्णय २ सूक्ष्मवज्रधर वज्रपाश धनुर्वज्राशनिवज्रशरीर मम शरीरमनुप्रविश्य सर्व्वदुष्टान् स्तम्भय२ हूँ।

अक्षराणान्तु कवचं शतं पञ्चाक्षराधिकम्॥ २१॥

ओं ओजसे नेत्रं ओं प्रस्फुर२ तनुरूप२ चट२ प्रचट२ कट२ वमर२ घातय२ हुँ फट् अघोरास्त्रम्॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये षडङ्गान्यघोरास्त्राणि नाम त्रयोविंशत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः।

---

१. पञ्चब्रह्माङ्गफट्कारमिति ञ.।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

चतुर्विंशत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः

रुद्रशान्तिः ।

ईश्वर उवाच

शिवशान्तिं प्रवक्ष्यामि कल्पाघोरप्रपूर्वकम् । सप्तकोट्यधिपो घोरो ब्रह्महत्याद्यघार्दनः[१] ।।
उत्तमाधमसिद्धीनामालयोऽखिलरोगनुत् । दिव्यान्तरीक्षभौमानामुत्पातानां विमर्द्दनः ।।
विषग्रहपिशाचानां ग्रसनः सर्व्वकामकृत् । प्रायश्चित्तमघौघार्त्तौ दौर्भाग्यार्त्तिविनाशनम् ।।३।।
एकवीरन्तु विन्यस्य ध्येयः पञ्चमुखः सदा । शान्तिके पौष्टिके शुक्लो रक्तो वश्येऽथ पीतकः ।।
स्तम्भने धूम्र उच्चाटमारणे कृष्णवर्णकः । कर्षणः कपिलो मोहे द्वात्रिंशद्वर्णमच्चर्चयेत् ।।५।।
त्रिंशल्लक्षं जपेन्मन्त्रं होमं कुर्य्याद्दशांशतः । गुग्गुलामृतयुक्तेन सिद्धोऽसिद्धोऽथ सर्व्वकृत् ।।
अघोरान्नापरो मन्त्रो विद्यते भुक्तिमुक्तिकृत् । अब्रह्मचारी ब्रह्मचारी अस्नातः स्नातको भवेत् ।।
अघोरास्त्रमघोरन्तु द्वात्रिधौ मन्त्रराजकौ । जपहोमार्च्चनाद्युद्धे शत्रुसैन्यं विमर्द्दयेत् ।।८।।
रुद्रशान्तिं प्रवक्ष्यामि शिवां सर्व्वार्थसाधनीं । पुत्रार्थं ग्रहनाशार्थं विषव्याधिविनष्टये ।।९।।
दुर्भिक्षमारीशान्त्यर्थे दुःस्वप्नहरणाय च । बलादिराज्यप्राप्त्यर्थं रिपूणां नाशनाय च ।।१०।।
अकालफलिते वृक्षे सर्व्वग्रहविमर्द्दने । पूजने तु नमस्कारः स्वाहान्तो हवने तथा ।।११।।
आप्यायने वषट्कारं पुष्टौ वौषन्नियोजयेत् । चकारद्वितयस्थाने[२] जातियोगन्तु कारयेत् ।।

ओं रुद्राय च ते ओं वृषभाय नमः अविमुक्ताय असम्भवाय पुरुषाय च पूज्याय ईशानाय पौरुषाय पञ्च चोत्तरे विश्वरूपाय करालाय विकृतरूपाय अविकृतरूपाय ।

निकृतौ[३] चापरे काले अप्सु माया च नैर्ऋते ।

एकपिङ्गलाय श्वेतपिङ्गलाय कृष्णपिङ्गलाय नमः । मधुपिङ्गलाय नमः मधुपिङ्गलाय नियतौ अनन्ताय आर्द्राय शुष्काय पयोगणाय । कालतत्त्वे । करालाय विकरालाय । द्वौ मायातत्त्वे । सहस्रशीर्षाय सहस्रवक्त्राय सहस्रकरचरणाय सहस्रलिङ्गाय । विद्यातत्त्वे । सहस्राक्षाद्विन्यसेद् दक्षिणे दले । एकजटाय द्विजटाय त्रिजटाय स्वाहाकाराय स्वधाकाराय वषट्काराय षड्रुद्राय । ईशतत्त्वे तु वह्निपत्रे स्थिता गुह । भूतपतये पशुपतये उमापतये कालाधिपतये । सदाशिवाध्यक्ष्यतत्त्वे षट् पूज्याः पूर्वदले स्थिताः । उमायै कुरूपधारिणि ओं कुरु २ रुहिणि २ रुद्रोसि देवानां देवदेवविशाख हन २ दह २ पच २ मथ २ तुरु २ अरु २ सुरु २[४] रुद्रशान्तिमनुस्मर कृष्णपिङ्गल अकालपिशाचाधिपतिविश्वेश्वराय नमः । शिवतत्त्वे कर्णिकायां पूज्यौ ह्युमामहेश्वरौ । ओं व्योमव्यापिने

---

१. ब्रह्महत्यादिमर्द्दन इति ख. ।
२. दकारद्वितयस्थान इति ञ. । उकारद्वितयस्थान इति ट. ।
३. नियताविति ञ. ट. च । ४. सूरु २ इति ञ. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

व्योमरूपाय सर्वव्यापिने शिवाय अनन्ताय अनाथाय अनाश्रिताय शिवाय। शिवतत्त्वे नव पदानि व्योमव्याप्यभिधास्यहि। शाश्वताय योगपीठसंस्थिताय नित्यं योगिने ध्यानाहाराय नमः। ओं नमः शिवाय सर्वप्रभवे शिवाय ईशानमूर्द्धाय तत्पुरुषादि-पञ्चवक्त्राय नवपदं पूर्वदले सदाख्ये पूजयेद्गुह। अघोरहृदयाय वामदेवगुह्याय सद्यो-जातमूर्त्तये। ओं नमो नमः। गुह्यातिगुह्याय गोप्त्रे अनिधनाय सर्व्वयोगाधिकृताय ज्योतीरूपाय अग्निपत्रेहीशतत्त्वे विद्यातत्त्वे द्वे याम्यगे परमेश्वराय चेतनाचेतन व्योमन व्यापिन प्रथम तेजस्तेजः मायातत्त्वे नैर्ऋते कालतत्त्वेऽथ वारुणे। ओं धृ धृ नाना वां वां अनिधान निधनोद्भव शिव सर्वपरमात्मन् महादेव सद्भावेश्वर महातेज योगाधिपते मुञ्च २ प्रमथ २ ओं सर्व २ ओं भव २ ओं भवोद्भव। सर्वभूतसुखप्रद वायुपत्रेऽथ नियतौ पुरुषे चोत्तरेन च। सर्वसान्निध्यकर ब्रह्मविष्णुरुद्रपर अनर्चित अस्तुतस्तु च साक्षिन २ तुरु २ पतङ्ग पिङ्ग २ ज्ञान २ शब्द २ सूक्ष्म २ शिव २ सर्वप्रद २ ओं नमः शिवाय ओं नमो नमः शिवाय ओं नमो नमः।

ईशाने प्राकृते तत्त्वे पूजयेज्जुहुयाज्जपेत्। ग्रहरोगादिमायार्त्तिशमनी सर्वसिद्धिकृत् ॥१३॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये रुद्रशान्तिर्नाम चतुर्विंशत्यधिक-त्रिशततमोऽध्यायः।

पञ्चविंशत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः

अंशकादिः।

ईश्वर उवाच

रुद्राक्षकटकं धार्य्यं विषमं सुसमं दृढम्। एकत्रिपञ्चवदनं यथालाभन्तु धारयेत् ॥१॥
द्विचतुःषण्मुखं शस्तमव्रणं तीव्रकण्ठकं। दक्षबाहौ शिखादौ च धारयेच्चतुराननं ॥२॥
अब्रह्मचारी ब्रह्मचारी अस्नातः स्नातको भवेत्।
हैमी वा मुद्रिका धार्य्या[1] शिवमन्त्रेण चार्च्चयं तु ॥ ३ ॥
शिवः शिखा तथा ज्योतिः सवित्रश्चेतिगोचराः। गोचरन्तु कुलं ज्ञेयं तेन लक्ष्यस्तु दीक्षितः ॥
प्राजापत्यो महीपालः कपोतो ग्रन्थिकः शिवे। कुटिलाश्चैव वेतालाः पद्महंसाः शिखाकुले ॥
धृतराष्ट्रा वकाः काका गोपाला ज्योतिसंज्ञके। कुटिका साठराश्चैव गुटिका दण्डिनोऽपरे ॥
सावित्री गोचरे चैवमेकैकस्तु चतुर्विधः। सिद्धाद्यंशकमाख्यास्ये येन मन्त्रः सुसिद्धिदः ॥
भूमौ तु मातृका लेख्याः कूटषण्डविवर्ज्जिताः।
मन्त्राक्षराणि विश्लिष्य अनुस्वारं नयेत् पृथक् ॥ ८ ॥

---

१. कार्य्येति ख.।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

साधकस्य तु या संज्ञा तस्या विश्लेषणं चरेत् ।
मन्त्रस्यादौ तथा चान्ते साधकार्णानि योजयेत् ॥ ९ ॥
सिद्धः साध्यः सुसिद्धोऽरिः संज्ञातो गणयेत् क्रमात् ।
मन्त्रस्यादौ तथा चान्ते सिद्धिदः स्याच्छतांशतः ॥ १० ॥
सिद्धादिश्चान्तसिद्धिश्च तत्क्षणादेव सिध्यति ।
सुसिद्धादिः सुसिद्धान्तः सिद्धवत् परिकल्पयेत् ॥ ११ ॥

अरिमादौ तथान्ते च दूरतः परिवर्ज्जयेत् । सिद्धः सुसिद्धश्चैकार्थे अलिः साध्यस्तथैव च ॥
आदौ सिद्धः स्थितो मन्त्रे तदन्ते तद्वदेव हि । मध्ये रिपुसहस्राणि न दोषाय भवन्ति हि ॥
मायाप्रसादप्रणवेनांशकः ख्यातमन्त्रके । ब्रह्मांशको ब्रह्मविद्या विष्णवङ्गो[1] वैष्णवः स्मृतः ॥
रुद्रांशको भवेद्वीर इन्द्रांशश्चेश्वरप्रियः । नागांशो नागस्तब्धाक्षो यक्षांशो भूषणप्रियः ॥१५॥

गन्धर्व्वांशोऽतिगीतादि भीमांशो राक्षसांशकः ।
दैत्यांशः स्याद् युद्धकार्य्यो मानी विद्याधरांशकः ॥ १६ ॥

पिशाचांशो मलाक्रान्तो मन्त्रं दद्यान्निरीक्ष्य च । मन्त्र एकात फडन्तः स्यात् विद्यापञ्चाशतावधि ॥
बाला विंशाक्षरान्ता च रुद्रा द्वाविंशगायुधा । तत ऊर्द्ध्वन्तु ये मन्त्रा वृद्धा यावच्छतत्रयं ॥
अकारादिहकारान्ताः क्रमात् पक्षौ सितासितौ । अनुस्वारविसर्गेण विना चैव स्वरा दश ॥

ह्रस्वाः शुक्ला दीर्घाः श्यामास्तिथयः प्रतिपन्मुखाः ।
उदिते शान्तिकादीनि भ्रमिते वश्यकादिकम् ॥ २० ॥

भ्रामिते सन्धयो द्वेषोच्चाटने स्तम्भनेऽस्तकम् । इडावाहे शान्तिकाद्यं पिङ्गले कर्षणादिकम्[2] ॥
मारणोच्चाटनादीनि विषुवे पञ्चधा पृथक् । अधरस्य गृहे पृथ्वी ऊर्द्ध्वे ,तेजोऽन्तरा द्रवः ॥
रन्ध्रपार्श्वे वहिर्वायुः सर्वं व्याप्य महेश्वरः । स्तम्भनं पार्थिवे शान्तिर्ज्जले वश्यादि तेजसे ॥

वायौ स्याद् भ्रमणं शून्ये पुण्यं कालं समभ्यसेत् ॥ २३ ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये अंशकादिर्नाम पञ्चविंशत्यधिक-
त्रिशततमोऽध्यायः ।

षड्विंशत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः

गौर्य्यादिपूजा ।

ईश्वर उवाच

सौभाग्यादेरुमापूजां वक्ष्येऽहं भुक्तिमुक्तिदां । मन्त्रध्यानं मण्डलञ्च मुद्रां होमादिसाधनम् ॥
चित्रभानुं शिवं कालं महाशक्तिसमन्वितम् । इडाद्यं परतोहृत्य सदेवः सन्निकारणम् ॥२॥

---

१. विष्णवंश इति ञ. ।
२. कर्षकादिकमिति ख. छ. च ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

द्वितीयं द्वारकाक्रान्तं गौरीप्रीतिपदान्वितं । चतुर्थ्यन्तं प्रकर्त्तव्यं गौर्य्या वै मूलवाचकं ॥३॥

ओं ह्रीँ सः शौँ गौर्य्यै नमः ।

तत्रार्णत्रितयेनैव जांतियुक्तं षड़ङ्गुलम् । आसनं प्रणवेनैव मूर्त्ति वै हृदयेन तु ॥४॥
उदकञ्च तथा कालं शिववीजं समुद्धरेत । प्राणं दीर्घस्वराक्रान्तं षडङ्गं जातिसंयुतम् ॥५॥
आसनं प्रणवेनात्र मूर्त्तिन्यासं हृदाचरेत् । यामलं कथितं वत्स एकवीरं वदाम्यऽथ ॥६॥
व्यापकं सृष्टिसंयुक्तं वह्निमायाकृशानुभिः । शिवशक्तिमयं वीजं हृदयादिविवर्ज्जितं ॥७॥
गौरीं यजेद्धेमरूप्यां काष्ठजां शैलजादिकां । पञ्चपिण्डां तथाऽव्यक्तां कोणे मध्ये तु पञ्चमं[1] ॥

ललिता सुभगा गौरी क्षोभणी चाग्नितः क्रमात् ।
वामा ज्येष्ठा क्रिया ज्ञाना वृत्ते पूर्व्वादितो यजेत् ॥ ९ ॥

सपीठे वामभागे तु शिवस्याव्यक्तरूपकम् । व्यक्ता द्विनेत्रा त्र्यक्षरा शुद्धा वा शङ्करान्विता ॥
पीठपद्मद्वयं तारा द्विभुजा वा चतुर्भुजा । सिंहस्था वा वृकस्था[2] वा अष्टाष्टादशसत्करा ॥
स्रगक्षसूत्रकलिका गलकोत्पलपिण्डिका । शरं धनुर्व्वा सव्येन पाणिनान्यतमं वहत् ॥१२॥
वामेन पुस्तताम्बूलदण्डाभयकमण्डलुम् । गणेशदर्पणेष्वासान्दद्यादेकैकशः क्रमात् ॥१३॥
व्यक्ताव्यक्ताऽथवा कार्य्या पद्ममुद्रा स्मृतासने । लिङ्गमुद्रा शिवस्योक्ता मुद्रा चावाहनी द्वयोः ॥
शक्तिमुद्रा तु योन्याख्या चतुरस्रन्तु मण्डलं । चतुरस्रं त्रिपत्राब्जं मध्यकोष्ठचतुष्टये ॥१५॥
त्र्यश्रोर्द्धे चार्द्धचन्द्रस्तु द्विपदं द्विगुणं क्रमात् । द्विगुणं द्वारकण्ठन्तु द्विगुणादुपकण्ठतः ॥
द्वारत्रयं त्रयं दिक्षु अथ वा भद्रके यजेत् । स्थण्डिले वाथ संस्थाप्य पञ्चगव्यामृतादिना ॥
रक्तपुष्पाणि देयानि पूजयित्वा ह्युदङ्मुखः । शतं हुत्वामृताज्यञ्च पूर्णादः सर्व्वसिद्धिभाक् ॥
बलिन्दत्वा कुमारीश्च तिस्रो वा चाष्ट भोजयेत्[3] । नैवेद्यं शिवभक्तेषु दद्यान्न स्वयमाचरेत् ॥
कन्यार्थी लभते कन्यां अपुत्रः पुत्रमाप्नुयात् । दुर्भगा चैव सौभाग्यं राजा राज्यं जयं रणे ॥
अष्टलक्षैश्च वाक्सिद्धिर्देवाद्या वशमाप्नुयुः । न निवेद्य न चाश्नीयाद्वामहस्तेन चार्च्चयेत् ॥
अष्टम्याञ्च चतुर्दश्यां तृतीयायां विशेषतः । मृत्युञ्जयार्च्चनं वक्ष्ये पूजयेत् कलसोदरे ॥
हूयमानञ्च प्रणवो मूर्त्तिरोजस ईदृशं । मूलञ्च वौषडन्तेन कुम्भमुद्रां प्रदर्शयेत् ॥२३॥
होमयेत् क्षीरदूर्वाज्यममृताञ्च पुनर्नवाम् । पायसञ्च पुरोडाशमयुतन्तु जपेन्मनुं ॥२४॥
चतुर्मुखं चतुर्वाहुं द्वाभ्याञ्च कलसन्दधत् । वरदाभयकं द्वाभ्यां स्नायाद्वै कुम्भमुद्रया ॥२५॥
आरोग्यैश्वर्य्यदीर्घायुरौषधं मन्त्रितं शुभम् । अपमृत्युहरो ध्यातः पूजितोऽद्भुत एव सः ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये गौर्यादिपूजा नाम षड्विंशत्यधिक-
त्रिशततमोऽध्यायः ।

---

१. पञ्चमी इति ञ. । २. सिंहस्थावाह्यसिंहस्थेति ख. छ. ञ. ट. च ।
३. स्त्रियो वाष्ट च भोजयेदिति ख. छ. च ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सप्तविंशत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः

देवालयमाहात्म्यम् ।

ईश्वर उवाच

प्रतेश्वरांश्च सत्यादीनिष्ट्वा व्रतसमर्पणम् । अरिष्टशमने शस्तमरिष्टं सूत्रनायकम् ॥१॥
हेमरत्नमयं भूत्यै महाशङ्खञ्च मारणे । आप्यायने शङ्खसूत्रं मौक्तिकं पुत्रवर्द्धनम् ॥२॥
स्फाटिकं भूतिदं कौशं मुक्तिदं[१] रुद्रनेत्रजं । धात्रीफलप्रमाणेन रुद्राक्षं चोत्तमन्ततः ॥३॥
समेरुं मेरुहीनं वा सूत्रं जप्यन्तु मानसम् । अनामाङ्गुष्ठमाक्रम्य जपं भाष्यन्तु कारयेत् ॥४॥
तर्ज्जन्यङ्गुष्ठमाक्रम्य न मेरुं लङ्घयेज्जपे । प्रमादात् पतिते सूत्रे जप्तव्यन्तु शतद्वयम् ॥५॥
सर्ववाद्यमयी घण्टा तस्या वादनमर्थकृत् । गोशकृन्मूत्रवल्मीकमृत्तिकाभस्मवारिभिः ॥६॥
वेस्मायतनलिङ्गादेः कार्य्यमेवं विशोधनम् । स्कन्दो नमः शिवायेति मन्त्रः सर्व्वार्थसाधकः ॥
गीतः पञ्चाक्षरो वेदे लोके गीतः षड़क्षरः । ओमित्यन्ते स्थितः शम्भुर्म्मुद्रार्थं वटवीजवत् ॥
क्रमान्नमः शिवायेति ईशानाद्यानि वै विदुः । षड़क्षरस्य सूत्रस्य भाष्यद्विद्याकदम्बकं ॥९॥
यदोँनमः शिवायेति एतावत् परमं पदम् । अनेन पूजयेल्लिङ्गं लिङ्गे यस्मात् स्थितः शिवः ॥
अनुग्रहाय लोकानां धर्म्मकामार्थमुक्तिदः । यो न पूजयते लिङ्गन्न स धर्म्मादिभाजनं ॥११॥
लिङ्गार्च्चनाद्भुक्तिमुक्तिर्यावज्जीवमतो यजेत् । वरं प्राणपरित्यागो भुञ्जीतापूज्य नैव तं ॥१२॥

रुद्रस्य पूजनाद्रुद्रो विष्णुः स्याद्विष्णुपूजनात् ।
सूर्य्यः स्यात् सूर्य्यपूजातः शक्त्यादिः शक्तिपूजनात् ॥ १३ ॥

सर्वयज्ञतपोदाने तीर्थे वेदेषु यत् फलं । तत् फलं कोटिगुणितं स्थाप्य लिङ्गं लभेन्नरः ॥१४॥
त्रिसन्ध्यं योऽर्च्चयेल्लिङ्गं कृत्वा विल्वेन पार्थिवम् । शतैकादशिकं यावत् कुलमुद्धृत्य नाकभाक् ॥
भक्त्या वित्तानुसारेण कुर्य्यात् प्रासादसञ्चयम् । अल्पे महति वा तुल्यफलमाढ्यदरिद्रयोः ॥
भागद्वयञ्च धर्मार्थं कल्पयेज्जीवनाय च । धनस्य भागमेकन्तु[२] अनित्यं जीवितं यतः ॥१७॥
त्रिसप्तकुलमुद्धृत्य देवागारकृदर्थभाक् । मृत्काष्ठेष्टकशैलाद्यैः क्रमात् कोटिगुणं फलम् ॥
अष्टेष्टकसुरागारकारी स्वर्गमवाप्नुयात् । पांशुना क्रीडमानोपि देवागारकृदर्थभाक् ॥१९॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये देवालयमाहात्म्यादिर्नाम सप्तविंशत्यधिक-
त्रिशततमोऽध्यायः ।

---

१. भक्तिदमिति ख. ।
२. धनस्यान्नार्थमेकन्त्विति ख. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अष्टाविंशत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः

छन्दःसारः ।

अग्निरुवाच

छन्दो वक्ष्ये मूलजैस्तैः पिङ्गलोक्तं यथाक्रमम् ।
सर्व्वादिमध्यान्तगणौ म्लौ द्वौ जौ स्तौ त्रिकौ गणाः ॥ १ ॥
ह्रस्वो गुरुर्व्वा पादान्ते पूर्व्वो योगाद् विसर्गतः ।
अनुस्वाराद्व्यञ्जनात् स्यात् जिह्वामूलीयतस्तथा ॥ २ ॥
उपध्मानीयतो दीर्घो गुरुर्ल्गौ नौ गणाविह । वसवोष्टौ च चत्वारो वेदादित्यादिलोपतः ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये छन्दःसारो नामाष्टाविंशत्यधिक-
त्रिशततमोऽध्यायः ।

ऊनत्रिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः

छन्दःसारः ।

अग्निरुवाच

छन्दोधिकारे गायत्री देवी चैकाक्षरी भवेत् । पञ्चदशाक्षरी सा स्यात् प्राजापत्याष्टवर्णिका ॥
यजुषां षड्वर्णा गायत्री साम्नां स्याद् द्वादशाक्षरा ।
ऋचामष्टादशार्णा स्यात्साम्ना वर्द्धेत च द्वयं ॥ २ ॥
ऋचां तुर्य्यंश्च वर्द्धेत प्राजापत्या चतुष्टयं । वर्द्धेदेकैककं शेषे आतुर्य्यादेकमुत्सृजेत् ॥३॥
उष्णिगनुष्टुब् बृहती पङ्क्तिस्त्रिष्टुब्जगत्यपि । तानि ज्ञेयानि क्रमशो गायत्र्यो ब्रह्म एव ताः ॥
तिस्रस्तिस्रः समान्यः स्युरेकैका आर्य्य एव च । ऋग्यजुषां संज्ञाः स्युश्चतुःषष्टिपदे लिखेत् ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये छन्दःसारो नामोनत्रिंशदधिक-
त्रिशततमोऽध्यायः ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

त्रिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः

छन्दःसारः ।

अग्निरुवाच

पाद आपादपूरणे गायत्र्यो वसवः स्मृताः। जगत्या आदित्याः पादो विराजो दिश ईरिताः॥
विष्णुतो रुद्राः पादः स्याच्छन्द एकादिपादकं ।
आद्यं चतुष्पाच्चतुर्भिस्त्रिपात् सप्ताक्षरैः क्वचित् ॥ २ ॥
सा गायत्री पदे नीवृत् तत्प्रतिष्ठादि षट् त्रिरात। वर्धमाना षड्ष्टाष्टा त्रिपात् षड् वसुभूधरैः॥
गायत्री त्रिपदा नीवृत् नागी नवनवर्त्तुभिः । वाराही रसद्विरसा छन्दश्चाथ तृतीयकम् ॥४॥
द्विपाद् द्वादशवस्वन्तैः त्रिपात्तु त्रैष्टुभैः स्मृतम् ।
उष्णिक् छन्दोऽष्टवसुकैः पादैर्वेदे प्रकीर्त्तितः ॥ ५ ॥
ककुबुष्णिगष्टसूर्य्यवस्त्वर्णा त्रिभिरेव सः । पुनरुष्णिक् सूर्य्यवसुत्रस्वर्णैश्च त्रिपाद्भवेत् ॥६॥
परोष्णिक् परतस्तस्माच्चतुष्पादान त्रिभिर्भवेत् ।
स्वाष्टाक्षरैरनुष्टुप् स्यात् चतुष्पाच्च त्रिपात क्वचित् ॥ ७ ॥
अष्टार्कसूर्य्यवर्णैः स्यात् मध्येऽन्ते च कचिद्भवेत्। वृहतीजगत्यस्त्रयो गायत्र्याः पूर्व्वको यदि॥
तृतीयः पथ्या भवति द्वितीयान्यं कुसारिणी ।
स्कन्धो ग्रीवा क्रोष्टुके स्याद् यत्ते स्याद्वो वृहत्यपि ॥ ९ ॥
उपरिष्टाद् वृहत्यन्ते पुरस्ताद् वृहती पुनः। क्वचिन्नवकाश्चत्वारो दिग्विदिक्ष्वष्टवर्णिकाः ॥१०॥
महावृहती जागतैः स्यात त्रिभिः सतो वृहत्यपि ।
भण्डिलः पङ्क्तिच्छन्दः स्यात् सूर्य्यार्काष्टाष्टवर्णकैः ॥ ११ ॥
पूर्व्वौ वेदयुजौ सतः पङ्क्तिश्च विपरीतकौ । प्रस्तारपङ्क्तिः पुरतः पश्चादास्तारपङ्क्तिका ॥
अक्षरपङ्क्तिः पञ्चकाश्चत्वारश्चाल्पशो द्वयं। पदपङ्क्तिः पञ्च भवेच्चतुष्कं षट्ककत्रयम् ॥१३॥
षट्कपञ्चभिर्गायत्रैः षड्भिश्च जगती भवेत् । एकेन त्रिष्टुब्ज्योतिष्मती तथैव जगतोरिता ॥
पुरस्ताज्ज्योतिः प्रथमे मध्ये ज्योतिश्च मध्यतः ।
उपरिष्टाज्जोतिरन्त्यादेकस्मिन् पञ्चके तथा ॥ १५ ॥
भवेच्छन्दः शङ्कुमती षट्के छन्दः ककुद्मती। त्रिपादशिशुमध्या स्यात् सा पिपीलिकमध्यमा[१]॥
विपरीता यवमध्या त्रिवृदेकेन वर्जिता । भूमिजैकेनाधिकेन द्विहीना च विराड्भवेत् ॥१७॥
स्वराट्स्याद्द्वाभ्यामधिकं सन्दिग्धो दैवतादितः ।
आदिपादान्निश्चयः स्याच्छन्दसां देवता क्रमात् ॥ १८ ॥
अग्निः सूर्य्यः शशी जीवो वरुणश्चन्द्र एव च ।
विश्वेदेवाश्च षड्जाद्याः स्वराः षड्जो वृषः क्रमात् ॥ १९ ॥

---

१. सपिपीलिकमध्यगेति ख. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

गान्धारो मध्यमश्चैव पञ्चमो धैवतस्तथा । निषादं वर्णाः श्वेतश्च सारङ्गश्च पिसङ्गकः ॥२०॥
कृष्णो नीलो लोहितश्च गौरी गायत्रिमुख्यके। गोरोचनाभाः कृतयो ज्योतिश्छन्दो हि श्यामलं॥
अग्निर्वैश्यः काश्यपश्च गौतमाङ्गिरसौ क्रमात् । भार्गवः कौशिकश्चैव वाशिष्ठो गोत्रमीरितं॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये छन्दःसारो नाम त्रिंशदधिक-
त्रिशततमोऽध्यायः ।

एकत्रिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः

छन्दोजातिनिरूपणम् ।

अग्निरुवाच

चतुःशतमुत्कृतिः स्यादुत्कृतेश्चतुरस्त्यजेत् । अभिसंख्या प्रत्यकृतिस्तानि छन्दांसि वै पृथक् ॥
कृतिश्चातिधृतिवृत्ती[1] अत्यष्टिश्चाष्टिरित्यतः । अतिशक्करी शक्करीति अतिजगती जगत्यपि ॥
छन्दोऽत्र लौकिकं स्याच्च आर्षमात्रैष्टुभात् स्मृतम्। त्रिष्टुप्पङ्क्तिर्बृहती अनुष्टुबुष्णिगीरितम्॥
गायत्री स्यात् सुप्रतिष्ठा प्रतिष्ठा मध्यया सह । अत्युक्तात्युक्त आदिश्च एकैकाक्षरवर्जितम् ॥
चतुर्भागो भवेत पादो गणच्छन्दः प्रदर्श्यते । तावन्तः समुद्रा गणा ह्यादिमध्यान्तसर्वगाः ॥
चतुर्णः पञ्च च गणा आर्य्यालक्षणमुच्यते । स्वरार्द्धञ्चार्य्यार्द्धं स्यादार्य्यायां विषमेन जः ॥६॥
षष्ठो जो नलपूर्वा स्याद्द्वितीयादिपदं नले । सप्तमेऽन्ते प्रथमा च द्वितीये पञ्चमे नले ॥७॥
अर्द्धे पदं प्रथमादि षष्ठ एको लघुर्भवेत । त्रिषु गणेषु पादः स्यादार्य्या पञ्चार्द्धके स्मृता ॥
विपुलान्याथ चपला गुरुमध्यगतौ च जौ । द्वितीयचतुर्थौ पूर्वे च चपला मुखपूर्विका ॥९॥
द्वितीये जघनपूर्व्वा चपलार्य्या प्रकीर्त्तिता । उभयोर्महाचपला गीतवाद्यार्द्धतुल्यका ॥१०॥

अन्त्येनार्द्धेनोपगीतिरुद्गीतिश्चोत्क्रमात् स्मृता ।
अर्द्धे रक्षगणा आर्य्या गीतच्छन्दोऽथ मात्रया ॥ ११ ॥

वैतालीयं द्विस्वरा स्यादयुक्पादे समे नलः । वसवोऽन्ते वनगाश्च गोपुच्छन्दशकं भवेत् ॥
भगणान्ता पाटलिका शेषे परे च पूर्ववत्[2] । साकं षड्वा मिश्रायुक् प्राच्यवृत्तिः प्रदर्श्यते ॥
पञ्चमेन पूर्वसाकं तृतीयेन सहस्त्रयुक्। उदीच्यवृत्तिर्वाच्यां स्याद् युगपच्च प्रवर्त्तकं ॥१४॥

अयुक्चारुहासिनी स्याद्युगपच्चान्तिका भवेत् ॥ १५ ॥

सप्तार्च्चिर्वसवश्चैव मात्रासमकमीरितम् । भवेन्नलवमौ लश्च द्वादशो वा नवासिका ॥१६॥
विश्वोकः पञ्चमाष्टौ मो चित्रा लवमकश्चलः । परयुक्तेनोपचित्रा पादाकुलकमित्यतः ॥१७॥

---

१. कृतिश्चातिधृतिर्वृत्तीति ञ. ट. च ।   २. पुच्छलमिति ख. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

गीतार्य्या लोपश्चेत् सौम्या लः पूर्वः[१] ज्योतिरीरिता ।
स्याच्छिखा विपर्य्यास्तार्द्धा तूलिका समुदाहृता ॥ १८ ॥
एकोनत्रिंशदन्ते गः स्याज्झेजनसमावला । गु इत्येकगुरुः[२] संख्यावर्णादशविपर्य्ययात् ॥१९॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये छन्दोजातिनिरूपणं नामैकत्रिंशदधिक-
त्रिशततमोऽध्यायः ।

द्वात्रिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः

विषमकथनम् ।

अग्निरुवाच

वृत्तं समञ्चार्द्धसमं विषमञ्च त्रिधा वदे । समन्तात्तत् कृत्स्नकृतमर्द्धसमञ्च कारयेत् ॥
विषमञ्चैव वास्यूनमतिवृत्तं समान्यपि । ग्लौचतुःप्रमाणी स्यादाभ्यामन्यद्वितानकं ॥२॥
पादस्याद्यन्तु वक्रं स्यात् शनौ न प्रथमात्स्मृतौ । वाल्यमुश्चतुर्थाद्वर्णात् पथ्या वर्णं युजोयतः ॥
विपरीतपथ्यान्यासाच्चपला वा युजस्त्वनः । विपुलायुग्मसप्तमः सर्व्वं तस्यैव तस्य च ॥४॥
तौन्तौ वा विपुलानेका चक्रजातिः समीरिता । भवेत् पदचतुरूर्द्ध्वं चतुर्वृद्ध्या पदेषु च ॥
गुरुद्वयान्त आपीडः प्रत्यापीडो गणादिकः । प्रथमस्य विपर्य्यासे मञ्जरी लवणो क्रमात् ॥
भवेदमृतधाराख्या उद्धताद्युच्यतेऽधुना । एकतः ससजसानः स्युर्न सौ जो गोऽथ भौनजौ ॥
नोगोऽथ सजसा गोगस्तृतीयचरणस्य च । सौरभे केचनभगा ललितञ्च नमौ जसौ ॥८॥
उपस्थितं प्रचुपितं प्रथमाद्यं समौ जसौ । गोगथो मलजा रोग। समो नगरजयाः पदे ॥९॥
वर्द्धमानं मलौ स्वौ नसौ अथो भोजोत्र इरिता । शुद्धविराडार्षभाख्यं वक्ष्ये चार्द्धसमन्ततः ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये विषमकथनं नाम द्वात्रिंशदधिक-
त्रिशततमोऽध्यायः ।

त्रयस्त्रिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः

अर्द्धसमनिरूपणम् ।

अग्निरुवाच

उपचित्रकं ससमनामथभोजभगामथ[३] । द्रुतमध्या ततभगागथोननजयाः स्मृताः ॥१॥
वेगवती ससमगा भभभगोगथो स्मृता । रुद्रविस्तारस्तोसभगासमजागोगथा स्मृता ॥२॥

---

१. नः पूर्व्व इति ख. ।
२. ह्य इत्येकनुरुमिति ञ. ।
३. ससमनागथतोभयागथ इति ख. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रजसागोगथोद्रोणौ गोगौ वै केतुमत्यपि। आख्यानिकी ततजगागथोततजगागथ ॥३॥
विपरीताख्यानिकी त्तौ जयागातौ जगोगथ। सौमलौ गथलभभावौ भवेद्धरिणवल्लभा ॥४॥
ल्लौवनौगाथनजजा यः स्यादपराक्रमं। पुष्पिता ननवयानजजावोगथो रजौ ॥५॥
वोजथो नवजवागो मूले पनमती शिखा।
अष्टाविंशतिनागाभा त्रिंशन्नागन्ततो युजि। खञ्जा तद्विपरीता स्यात् समवृत्तं प्रदर्श्यते ॥६॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये अर्द्धसमनिरूपणं नाम त्रयस्त्रिंशदधिक-
त्रिशततमोऽध्यायः।

चतुस्त्रिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः

समवृत्तनिरूपणम्।

अग्निरुवाच

यतिविच्छेद इत्युक्तस्तत्तन्मध्यान्तयौ गणौ। यौसः कुमारलालिता तौ गौ चित्रपदा स्मृता॥
विद्युन्माला मममागणैर्भूतगणैर्भवेत। माणवकाक्रीड़ितकं वनौ हलमुखी वसः ॥२॥
स्याद्भुजङ्गशिशुसूतानौ मेहनं मरुतं ननौ। भवेच्छुद्धविराड्वृत्तं प्रतिपादं समौ जगौ ॥३॥
पणवोमलयोमः[1] स्याज्जौ गौ मयूरसारिणी। सत्तामभसगा वृत्तं भजताद्युपरिस्थिता ॥४॥
रुक्मवती भससगाविन्द्रावज्रा तजौ जगौ। जतौ जगौ गूपपूर्व्वावाद्यन्ताद्युपजातयः ॥५॥
दोधकं भगभागौ स्यात् शालिनी मतभागगौ। यतिः समुद्रा ऋषयः वातोर्म्मी मभतागगौ॥
चतुःस्वरा स्याद्भ्रमरी विलासिता मभौनलौ। समुद्रा अथ ऋषयो वनौ लौगौ रथोद्धता॥
सामताधनभागोगोवृत्ताननसमाश्च सः। श्येनी वजवनागः स्याद्रम्या नपरगागगः ॥८॥
जगती वंशस्था वृत्तं जतौ जावथ तौ जवौ। इन्द्रवंशा तोटकं सैश्चतुर्भिः प्रतिपादतः ॥९॥
भवेद्द्रुतविलम्बिता नभौ भवावथौ नलौ। स्यौ श्रीपुठो वसुवेदा जलोगतिजलौ जमौ ॥१०॥
जसौ वसर्व्ववश्चाथ ततं ननमराः स्मृतं। कुसुमविचित्रा न्यौ य्यौ नौ नौ रौ स्याच्चलाम्बिका[2]॥
भुजङ्गप्रयातं यैः स्याच्चतुर्भिः स्त्रग्विनीभवैः। प्रमिताक्षरा गजौ सौ कान्तोत्पीड़ा मतौ समौ[3]॥
वैश्वदेवी[4] ममयायाः पञ्चाङ्गा नवमालिनी। नजौ भयौ प्रतिपादं गणा यदि जगत्यपि॥१३॥
प्रहर्षणी मवजवा गोर्पातर्वह्निदिक्षु च। रुचिरा जभसजगा च्छिन्ना वेदैर्ग्रहैः स्मृता ॥१४॥
मत्तमयूरं मतया सगौ वेदग्रहे यतिः। गौरीनलनसागः स्यादसम्बाधा नतौ नगौ ॥१५॥
गोग इन्द्रियनवकौ ननौ वसनगाः स्वराः। स्वराश्चापराजिता स्यान्ननभाननगाः स्वराः॥

---

१. मलघाग इति ख.। २. चरणात्मिका इति ख.। चञ्चलाम्बिका इति ट.।
३. ममाविति ख.। ४. विश्वदेवीति ख.।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

द्विःप्रहरणकलिता[१] वसन्ततिलका नभौ । जौ गौ सिंहोन्नता सा स्यान्मुनेरुद्धर्षणी च सा ॥
चन्द्रावर्त्ता ननौ सोमावर्त्तर्तुनवकः स्मृतः । मणिगुणनिकरा सौ मालिनी नौ मयौ ययः ॥
यतिर्वसुस्वरा भौ वौ नतलमित्रसग्रहाः[२] । ऋषभगजविलासितं ज्ञेया शिखरिणी जगौ ॥१९॥
रसभालभृगुरुद्राः पृथ्वीजसजसा जनौ । गोवसुग्रहविच्छिन्ना पिङ्गलेनेरिता पुरा ॥२०॥
वंशपत्रपतितं स्याद् भवना भौ नगौ सदिक् । हरिणी नसमारः सो नगौ रसचतुःस्वराः ॥
मन्दाक्रान्ता नभनतं तगौगच्छिरसस्वराः । कुसुमितलता वेल्लिता मतना यययाः शराः ॥२२॥
रथाः स्वराः प्रतिरथससजाः सतताश्च गः । शार्दूलविक्रीड़ितं स्यादादित्यमुनयो यतिः ॥२३॥
कृतिः सुवदना मोरो भनया भनगाः सुराः । यतिर्मुनिरसाश्चाथ इति वृत्तं क्रमात् स्मृतम् ॥
स्रग्धरा मरतानोमोयपौ त्रिःसप्तका यतिः । समुद्रकं भरजानोवनगा दशभास्कराः ॥२५॥
अश्वललितं नजभा जभजा भनमीशतः । मत्ताक्रीड़ा ममनना नौनग्नौ गोष्टमातिथिः ॥२६॥
तन्वी भनतसाभोभो लयो वाणसुराक्र्ककाः । क्रौञ्चपदा भमतता नौ नौ वाणशराष्टतः ॥
भुजङ्गविजृम्भितं ममतना ननवासनौ । गष्टेशमुनिभिश्छेदो ह्युपहाराख्यमीदृशम् ॥२८॥
मननानतानः सो गगौ प्रहरसो रसात्[३] । नौ सप्तरोदण्डदः स्याच्चण्डवृष्टिप्रघातकं[४] ॥
रेफवृद्ध्या णणवा स्युर्व्यालजीमूतमुख्यकाः । शेषे वै प्रचिता ज्ञेया गाथाप्रस्तार उच्यते ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये समवृत्तनिरूपणं नाम चतुस्त्रिंशदधिक-
त्रिशततमोऽध्यायः ।

पञ्चत्रिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः

प्रस्तारनिरूपणम् ।

अग्निरुवाच

छन्दोऽत्र सिद्धं गाथा स्यात् पादे सर्व्वगुरौ तथा ।
प्रस्तार आद्यगाथोनः परतुल्योऽथ पूर्व्वगः ॥ १ ॥
नष्टमध्ये समेऽङ्कोनः समेऽर्द्धं विषमे गुरुः । प्रतिलोमगुणं नाद्यं द्विरुद्दिष्टग एकनुत् ॥२॥
सङ्ख्याद्विरर्द्धे रूपे तु शून्यं शून्ये द्विरीरितं । तावदर्द्धे तद्गुणितं द्वि द्व्यूनञ्च तदन्ततः ॥
परे पूर्णं परे पूर्णं मेरुप्रस्तारतो भवेत् । नगसंख्या वृत्तसंख्या चाध्वाङ्गुलमधोर्द्धतः ॥
सङ्ख्यैव द्विगुणैकोना छन्दःसारोऽयमीरितः ॥ ४ ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये प्रस्तारनिरूपणं नाम पञ्चत्रिंशदधिक-
त्रिशततमोऽध्यायः ।

---

१. द्विःप्रह्वरणह्वलितेति ख. ।
२. लननागात्रसग्रहा इति ञ. ।
३. ग्रहवसो वसादिति ग. ।
४. चण्डवृष्टिप्रयानक इति ट. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रजसागोगथोद्रोणौ गोगौ वै केतुमत्यपि । आख्यानिकी ततजगागथोततजगागथ ॥३॥
विपरीताख्यानिकी त्तौ जयागातौ जगोगथ । सौमलौ गथलभभावौ भवेद्धरिणवल्लभा ॥४॥
लौवनौगाथनजजा यः स्यादपराक्रमं । पुष्पिता ननवयानजजावोगथो रजौ ॥५॥
वोजथो नवजवागो मूले पनमती शिखा ।
अष्टाविंशतिनागाभा त्रिंशन्नागन्ततो युजि । खञ्जा तद्विपरीता स्यात् समवृत्तं प्रदर्श्यते ॥६॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये अर्द्धसमनिरूपणं नाम त्रयस्त्रिंशदधिक-त्रिशततमोऽध्यायः ।

चतुस्त्रिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः

समवृत्तनिरूपणम् ।

अग्निरुवाच

यतिविच्छेद इत्युक्तस्तत्तन्मध्यान्तयौ गणौ । यौसः कुमारलालिता तौ गौ चित्रपदा स्मृता ॥
विद्युन्माला मममागणैर्भूतगणैर्भवेत । माणवकाक्रीडितकं वनौ हलमुखी वसः ॥२॥
स्याद्भुजङ्गशिशुसूतानौ मेहनं मरुतं ननौ । भवेच्छुद्धविराड्वृत्तं प्रतिपादं समौ जगौ ॥३॥
पणवोमलयोमः[1] स्याज्जौ गौ मयूरसारिणी । सत्तामभसगा वृत्तं भजताद्युपरिस्थिता ॥४॥
रुक्मवती भससगाविन्द्रावज्रा तजौ जगौ । जतौ जगौ गूपपूर्वावाद्यन्ताद्युपजातयः ॥५॥
दोधकं भगभागौ स्यात् शालिनी मतभागगौ । यतिः समुद्रा ऋषयः वातोर्म्मी मभतागगौ ॥
चतुःस्वरा स्याद्भ्रमरी विलासिता मभौनलौ । समुद्रा अथ ऋषयो वनौ लौगौ रथोद्धता ॥
सामताधनभागोगोवृत्ताननसमाश्च सः । श्येनी वजवनागः स्याद्रम्या नपरगागगः ॥८॥
जगती वंशस्था वृत्तं जतौ जावथ तौ जवौ । इन्द्रवंशा तोटकं सैश्चतुर्भिः प्रतिपादतः ॥९॥
भवेद्द्रुतविलम्बिता नभौ भवावथौ नलौ । स्यौ श्रीपुठो वसुवेदा जलौगतिजलौ जमौ ॥१०॥
जसौ वसर्व्वश्चाथ ततं ननमराः स्मृतं । कुसुमविचित्रान्यौ यौ नौ नौ रौ स्याच्चलाम्बिका[2] ॥
भुजङ्गप्रयातं यैः स्याच्चतुर्भिः स्रग्विनीभवैः । प्रमिताक्षरा गजौ सौ कान्तोत्पीड़ा मतौ समौ[3] ॥
वैश्वदेवी[4] ममयायाः पञ्चाङ्गा नवमालिनी । नजौ भयौ प्रतिपादं गणा यदि जगत्यपि ॥१३॥
प्रहर्षणी मवजवा गोर्पातर्वह्निदिक्षु च । रुचिरा जभसजगा च्छिन्ना वेदैर्ग्रहैः स्मृता ॥१४॥
मत्तमयूरं मतया सगौ वेदग्रहे यतिः । गौरीनलनसागः स्यादसम्बाधा नतौ नगौ ॥१५॥
गोग इन्द्रियनवकौ ननौ वसनगाः स्वराः । स्वराश्चापराजिता स्यान्ननभाननगाः स्वराः ॥

---

१. मलघाग इति ख. ।
२. चरणात्मिका इति ख. । चञ्चलाम्बिका इति ट. ।
३. ममाविति ख. ।
४. विश्वदेवीति ख. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

द्विःप्रहरणकलिता[१] वसन्ततिलका नभौ । जौ गौ सिंहोन्नता सा स्यान्मुनेरुद्धर्षणी च सा ॥
चन्द्रावर्त्ता ननौ सोमावर्त्तर्तुनवकः स्मृतः । मणिगुणनिकरा सौ मालिनौ नौ मयौ ययः ॥
यतिर्वसुस्वरा भौ वौ नतलमित्रसग्रहाः[२] । ऋषभगजविलासितं ज्ञेया शिखरिणी जगौ ॥१९॥
रसभालभृगुरुद्राः पृथ्वीजसजसा जनौ । गोवसुग्रहविच्छिन्ना पिङ्गलेनेरिता पुरा ॥२०॥
वंशपत्रपतितं स्याद् भवना भौ नगौ सदिक् । हरिणी नसमारः सो नगौ रसचतुःस्वराः ॥
मन्दाक्रान्ता नभनतं तगौगछिरसस्वराः । कुसुमितलता वेल्लिता मतना ययया: शराः ॥२२॥
रथाः स्वराः प्रतिरथससजाः सततास्च गः । शार्दूलविक्रीडितं स्यादादित्यमुनयो यतिः ॥२३॥
कृतिः सुवदना मोरो भनया भनगाः सुराः । यतिर्मुनिरसाश्चाथ इति वृत्तं क्रमात् स्मृतम् ॥
स्रग्धरा मरतानोमोयपौ त्रिःसप्तका यतिः । समुद्रकं भरजानोवनगा दशभास्कराः ॥२५॥
अश्वललितं नजभा जभजा भनमीशतः । मत्ताक्रीड़ा ममनना नौनग्नौ गोष्टमातिथिः ॥२६॥
तन्वी भनतसाभोभो लयो वाणसुरार्क्ककाः । क्रौञ्चपदा भमतता नौ नौ वाणशराष्टतः ॥
भुजङ्गविजृम्भितं ममतना ननवासनौ । गण्टेशमुनिभिश्छेदो ह्युपहारारूयमीदृशम् ॥२८॥
मननानतानः सो गगौ प्रहरसो रसात्[३] । नौ सप्तरोदण्डदः स्याच्चण्डवृष्टिप्रघातकं[४] ॥
रेफवृद्ध्या णणवा स्युर्व्यालजीमूतमुख्यकाः । शेषे वै प्रचिता ज्ञेया गाथाप्रस्तार उच्यते ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये समवृत्तनिरूपणं नाम चतुस्त्रिंशदधिक-
त्रिशततमोऽध्यायः ।

पञ्चत्रिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः

प्रस्तारनिरूपणम् ।

अग्निरुवाच

छन्दोऽत्र सिद्धं गाथा स्यात् पादे सर्व्वगुरौ तथा ।
प्रस्तार आद्यगाथोनः परतुल्योऽथ पूर्व्वगः ॥ १ ॥
नष्टमध्ये समेऽङ्कोनः समेऽर्द्धे विषमे गुरुः । प्रतिलोमगुणं नाद्यं द्विरुद्दिष्टग एकनुत् ॥२॥
सङ्ख्याद्विरर्द्धे रूपे तु शून्यं शून्ये द्विरीरितं । तावदर्द्धे तद्गुणितं द्वि द्व्यूनञ्च तदन्ततः ॥
परे पूर्णं परे पूर्णं मेरुप्रस्तारतो भवेत् । नगसंख्या वृत्तसंख्या चाध्वाङ्गुलमधोर्द्ध्वतः ॥
सङ्ख्यैव द्विगुणैकोना छन्दःसारोऽयमीरितः ॥ ४ ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये प्रस्तारनिरूपणं नाम पञ्चत्रिंशदधिक-
त्रिशततमोऽध्यायः ।

---

१. द्विःप्रह्वरणह्वलितेति ख. ।
२. ननागात्रसग्रहा इति ञ. ।
३. ग्रहवसो वसादिति ग. ।
४. चण्डवृष्टिप्रयानक इति ट. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

षट्‌त्रिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः

शिक्षानिरूपणम् ।

अग्निरुवाच

वक्ष्ये शिक्षान्त्रिषष्टिः स्युर्वर्णा वा चतुराधिकाः । स्वरा विंशतिरेकश्च स्पर्शानां पञ्चविंशतिः ॥
यादयश्च स्मृता ह्यष्टौ चत्वारश्च समाः स्मृताः ।
अनुस्वारो विसर्गश्च पौंख्यौ चापि पराश्रितौ ॥ २ ॥
दुष्पृष्टश्चेति विज्ञेया लृकारः प्लुत एव च । रङ्गश्च खे अरं प्रोक्तं[1] हकारः पञ्चमैर्युतः ॥
अन्तस्थाभिः समायुक्त औरस्यः कण्ठ्य एव सः ।
आत्मबुद्धया समस्यार्थं मनोयुङ्क्ते विवक्षया ॥ ४ ॥
मनः कायाग्निमाहन्ति स प्रेरयति मारुतम् । मारुतस्तूरसि चरन् मन्त्रं[2] जनयति स्वरं ॥५॥
प्रातःसवनयोगस्तु छन्दो गायत्रमाश्रितम् । कण्ठे माध्यन्दिनयुतं मध्यमन्त्रेषु भानुगम् ॥६॥
तारन्तार्त्तीयसवनं[3] शीर्षण्यं जागतानुगम् । सोदीर्णो मूर्ध्न्यभिहितो वक्रमापद्य मारुतः ॥७॥
वर्णान् जनयते तेषां विभागः पञ्चधा स्मृतः । स्वरतः कालतः स्थानात् प्रयत्नार्थप्रदानतः ॥
अष्टौ स्थानानि वर्णानामुरः कण्ठः शिरस्तथा । जिह्वामूलञ्च दन्ताश्च नासिकौष्ठौ च तालु च ॥
स्वभावश्च विवृत्तिश्च शषसा रेफ एव च । जिह्वामूलमुपध्मा च गतिरष्टविधोष्मणः ॥१०॥
यद्यो भावप्रसन्धानमुकारादि परम्पदं । स्वरान्तं तादृशं विद्याद्यदन्यद्व्यक्तमूष्मणः ॥११॥
ऊतीर्थादागतं[4] दग्धमपवर्णञ्च भक्षितं । एवमुच्चारणं पापमेवमुच्चारणं शुभम् ॥१२॥
अतीर्थादागतं द्रव्यं साम्नायं सुव्यवस्थितं । सुस्वरेण सुवक्त्रेण प्रयुक्तं ब्रह्मराजति ॥१३॥
न करालो न लम्बोष्ठो नाव्यक्तो नानुनासिकः । गद्गदो बहुजिह्वश्च न वर्णान् वक्तुमर्हति ॥
एवं वर्णाः प्रयोक्तव्या नाव्यक्ता न च पीड़िताः । सम्यग्वर्णप्रयोगेण ब्रह्मलोके महीयते ॥
उदात्तश्चानुदात्तश्च स्वरितश्च स्वरास्त्रयः । ह्रस्वो दीर्घः प्लुत इति कालतो नियमाच्चषि ॥
कण्ठ्या वहाविचुयशास्तालव्या ओष्ठजा वुपु ।
स्युर्मूर्द्धन्या ऋटुरसाः[5] दन्त्याः लृतोलसाः स्मृताः ॥ १७ ॥
जिह्वामूले तु क्वः प्रोक्तो दन्त्योष्ठो वः स्मृतो बुधैः ।
एदैतौ कण्ठतालव्यौ ओ औ कण्ठ्यौष्ठजौ स्मृतौ ॥ १८ ॥
अर्द्धमात्रा तु कण्ठस्य एकारैकारयोर्भवेत् । अयोगवाहा विज्ञेया आश्रयस्थानभागिनः ॥
अचोऽस्पृष्टायणस्त्वीषन्नेमाः स्पृष्टा हलः स्मृताः ।
शेषाः स्पृष्टा हलः प्रोक्ता निबोधात्र प्रधानतः ॥ २० ॥

---

१. वर्गमुखे अरं प्रोक्तमिति ख. ।
२. मात्रमिति ख. ।
३. भावन्तार्त्तीयसवनमिति ख. ।
४. कुतीर्थादागतमिति ट. । क्षतीर्थादागतमिति ख. ।
५. खटवसा इति ख. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

अमोऽनुनासिकानञौ नादिमौ हसषः स्मृताः । ईषन्नादोपणयशः श्वासिनश्च थकादयः ॥
ईषच्छासं स्वरं त्रिद्यादीर्घमेतत् प्रचक्षते ॥ २१ ॥
इत्यादिमहापुराणे आग्नेये शिक्षानिरूपणं नाम षट्त्रिंशदधिक-
त्रिशततमोऽध्यायः ।

सप्तत्रिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः

काव्यादिलक्षणम् ।

अग्निरुवाच

काव्यस्य नाटकादेश्च अलङ्कारान् वदाम्यऽथ । ध्वनिर्व्वर्णाः पदं वाक्यमित्येतद्वाङ्मयं मतं ॥
शास्त्रेतिहासवाक्यानां त्रयं यत्र समाप्यते । शास्त्रे शब्दप्रधानत्वमितिहासेषु निष्ठता ॥२॥
अभिधायाः प्रधानत्वात् काव्यं ताभ्यां विभिद्यते ।
नरत्वं दुर्ल्लभं लोके विद्या तत्र च दुर्ल्लभा ॥ ३ ॥
कवित्वं दुर्ल्लभं तत्र शक्तिस्तत्र च दुर्ल्लभा । व्युत्पत्तिर्दुर्ल्लभा तत्र विवेकस्तत्र दुर्लभः ॥
सर्व्वं शास्त्रमविद्वद्भिर्मृग्यमाणन्न सिध्यति । आदिवर्णा द्वितीयाश्च महाप्राणास्तुरीयकः ॥५॥
वर्गेषु वर्णवृन्दं स्यात्पदं सुप्तिङ्प्रभेदतः । सङ्क्षेपाद्वाक्यमिष्टार्थव्यवच्छिन्ना पदावली ॥६॥
काव्यं स्फुटदलङ्कारं गुणवद्दोषवर्जितम् । योनिर्व्वेदश्च लोकश्च सिद्धमन्नादयोनिजं ॥७॥
देवादीनां संस्कृतं स्यात् प्राकृतं त्रिविधं नृणां । गद्यं पद्यञ्च मिश्रञ्च काव्यादि त्रिविधं स्मृतम् ॥
अपदः पदसन्तानो गद्यन्तदपि गद्यते । चूर्णकोत्कलिकागन्धिवृत्तभेदात् त्रिरूपकम् ॥९॥
अल्पाल्पविग्रहं नातिमृदुसन्दर्भनिर्भरं । चूर्णकं नामतो दीर्घसमासात् कलिका भवेत् ॥१०॥
भवेन्मध्यमसन्दर्भन्नातिकुत्सितविग्रहम् । वृत्तच्छायाहरं वृत्तं गन्धिनैतत् क्लिोतकटम् ॥११॥
आख्यायिका कथा खण्डकथा परिकथा तथा । कथानिकेति मन्यन्ते गद्यकाव्यञ्च पञ्चधा ॥१२
कर्तृवंशप्रशंसा स्याद्यत्र गद्येन विस्तरात् । कन्याहरणसंग्रामविप्रलम्भविपत्तयः ॥१३॥
भवन्ति यत्र दीप्ताश्च रीतिवृत्तिप्रवृत्तयः । उच्छासैश्च परिच्छेदो यत्र या चूर्णकोत्तरा ॥१४॥
वक्त्रं वापरवक्त्रं वा यत्र साख्यायिका स्मृता । श्लोकैः स्ववंशं संक्षेपात् कविर्यत्र प्रशंसति ॥
मुख्यस्यार्थावताराय भवेद्यत्र कथान्तरम् । परिच्छेदो न यत्र स्याद्भवेद्वालम्भकैः क्वचित् ॥
सा कथा नाम तद्गर्भे निबध्नीयाच्चतुष्पदीं । भवेत् खण्डकथा यासौ कासौ परिकथा तयोः ॥
अमात्यं सार्थकं वापि द्विजं वा नायकं विदुः । स्यात्तयोः करुणं विद्धि विप्रलम्भश्चतुर्व्विधः ॥
समाप्यते तयोर्न्नाद्या सा कथामनुधावति । कथाख्यायिकयोर्म्मिश्रभावात् परिकथा स्मृता ॥
भयानकं सुखपरं गर्भे च करुणो रसः । अद्भुतोऽन्ते सुक्लृप्तार्थो नोदात्ता सा कथानिका ॥
पद्यं चतुष्पदी तच्च वृत्तं जातिरितित्रिधा । वृत्तमक्षरसंख्येयमुक्थं तत् कृतिशेषजम् ॥२१॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मात्राभिर्गणना यत्र सा जातिरिति काश्यपः[१] । सममर्द्धसमं वृत्तं विषमं पैङ्गलं त्रिधा ॥२३॥
सा विद्या नौस्तितीर्पूणां गभीरं काव्यसागरं। महाकाव्यं कलापश्च पर्य्याबन्धो विशेषकम् ॥
कुलकं मुक्तकं कोष इति पद्यकुटुम्बकम् । सर्गबन्धो महाकाव्यमारब्धं संस्कृतेन यत् ॥२४॥
तादात्म्यमजहत्तत्र[२] तत्समं नाति दुष्यति । इतिहासकथोद्भूतमितरद्वा सदाश्रयं ॥२५॥
मन्त्रदूतप्रयाणाजिनियतं नातिविस्तरम् । शक्वर्य्यातिजगत्यातिशक्वर्य्या त्रिष्टुभा[३] तथा ॥२६॥
पुष्पिताग्रादिभिर्व्वक्राभिजनैश्चारुभिः समैः । मुक्ता[४] तु भिन्नवृत्तान्ता नातिसंक्षिप्तसर्गकम् ॥
अतिशक्वरिकाष्टिभ्यामेकसङ्कीर्णकैः परः । मात्रयाप्यपरः सर्गः प्राशस्त्येषु च पश्चिमः ॥२८॥
कल्पोऽतिनिन्दितस्तस्मिन्विशेषानादरः सतां । नगरार्णवशैलर्त्तु चन्द्रार्काश्रमपादपैः ॥२९॥
उद्यानसलिलक्रीड़ामधुपानरतोत्सवैः । दूतीवचनविन्यासैरसतीचरिताद्भुतैः ॥३०॥
तमसा मरुताप्यन्यैर्विभावैरतिनिर्भरैः । सर्व्ववृत्तिप्रवृत्तञ्च सर्व्वभावप्रभावितम् ॥३१॥
सर्व्वरीतिरसैः पुष्टं[५] पुष्टङ्गुणविभूषणैः । अत एव महाकाव्यं तत्कर्त्ता च महाकविः ॥३२॥
वाग्वैदग्ध्यप्रधानेपि रस एवात्र जीवितम् । पृथक्प्रयत्ननिर्व्वर्त्त्यं वाग्वक्रिम्नि रसाद्वपुः ॥३३॥
चतुर्व्वर्गफलं विश्वग्व्याख्यातं नायकाख्यया । समानवृत्तिनिर्व्यूढः कौशिकीवृत्तिकोमलः ॥
कलापोऽत्र प्रवासः प्रागनुरागाह्वयो रसः । सविशेषकञ्च प्राप्त्यादि संस्कृतेनेतरेण च ॥३५॥
श्लोकैरनेकैः कुलकं स्यात् सन्दानितकानि तत् । मुक्तकं श्लोक एकैकश्चमत्कारक्षमः सतां ॥

सूक्तिभिः , कविसिंहानां सुन्दरीभिः समन्वितः ।
कोषो ब्रह्मपरिच्छिन्नः स विदग्धाय रोचते ॥ ३७ ॥

आभासोपमशक्तिश्च सर्गे यद्भिन्नवृत्तता । मिश्रं वपुरिति ख्यातं प्रकीर्णमिति च द्विधा ॥

श्रव्यञ्चैवाभिनेयञ्च प्रकीर्णं सकलोक्तिभिः ॥ ३८ ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये काव्यादिलक्षणं नाम सप्तत्रिंशदधिक-
त्रिशततमोऽध्यायः ।

अष्टत्रिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः

नाटकनिरूपणम् ।

अग्निरुवाच

नाटकं सप्रकरणं डिम ईहामृगोऽपि वा । ज्ञेयः समवकारश्च भवेत प्रहसनन्तथा ॥१॥
व्यायोगभाणवीथ्यङ्कत्रोटकान्यथ नाटिका । सट्टकं शिल्पकः कर्णा एको दुर्म्मल्लिका तथा ॥

---

१. कश्यप इति ज. ञ. ट. च ।
२. तादर्थमजहत्तत्रेति ज. ।
३ अनुष्टुभेति ञ. ।
४. व्यक्तेति ञ. ।
५. जुष्टमिति ज. ट. च ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रस्थानं भाणिका भाणी गोष्ठी हल्लीशकानि च। काव्यं श्रीगदितं नाट्यरासकं रासकं तथा ॥
उल्लाप्यकं प्रेङ्क्षणञ्च सप्तविंशतिरेव तत्। सामान्यञ्च विशेषश्च लक्षणस्य द्वयी गतिः ॥४॥
सामान्यं सर्व्वविषयं शेषः क्वापि प्रवर्त्तते। पूर्व्वरङ्गे निवृत्ते द्वौ देशकालावुभावपि ॥५॥
रसभावविभावानुभावा अभिनयास्तथा। अङ्कः स्थितिश्च सामान्यं सर्व्वत्रैवोपसर्पणात ॥६॥
विशेषोऽवसरे वाच्यः सामान्यं पूर्व्वमुच्यते। त्रिवर्गसाधनन्नाट्यमित्याहुः करणञ्च यत् ॥
इतिकर्त्तव्यता तस्य पूर्व्वरङ्गो यथाविधि। नान्दीमुखानि द्वात्रिंशदङ्गानि पूर्व्वरङ्गके ॥८॥
देवतानां नमस्कारो गुरूणामपि च स्तुतिः। गोब्राह्मणनृपादीनामाशीर्वादादि गीयते ॥९॥
नान्द्यन्ते सूत्रधारोऽसौ रूपकेषु निबध्यते। गुरुपूर्वक्रमं वंशप्रशंसा पौरुषं कवेः ॥१०॥
सम्बन्धार्थौ च काव्यस्य पञ्चैतानेष निर्दिशेत्। नटी विदूषको वापि पारिपार्श्विक एव वा ॥
सहिताः सूत्रधारेण संलापं यत्र कुर्व्वते। चित्रैर्व्वाक्यैः स्वकार्य्योत्थैः प्रस्तुताक्षेपिभिर्मिथः ॥
आमुखं तत्तु विज्ञेयं बुधैः प्रस्तावनापि सा। प्रवृत्तकं कथोद्घातः प्रयोगातिशयस्तथा ॥१३॥
आमुखस्य त्रयो भेदा वीजांशेपूपजायते। कालं प्रवृत्तमाश्रित्य सूत्रधृग्यत्र वर्णयेत् ॥१४॥
तदाश्रयश्च पात्रस्य प्रवेशस्तत् प्रवृत्तकं। सूत्रधारस्य वाक्यं वा यत्र वाक्यार्थमेव वा ॥१५॥
गृहीत्वा प्रविशेत् पात्रं कथोद्घातः स उच्यते। प्रयोगेषु प्रयोगन्तु सूत्रधृग्यत्र वर्णयेत् ॥१६॥
ततश्च प्रविशेत् पात्रं प्रयोगातिशयो हि सः। शरीरं नाटकादीनामितिवृत्तं प्रचक्षते ॥१७॥
सिद्धमुत्प्रेक्षितञ्चेति तस्य भेदावुभौ स्मृतौ। सिद्धमागमदृष्टञ्च सृष्टमुत्प्रेक्षितं कवेः ॥१८॥
वीजं विन्दुः पताका च प्रकरी कार्य्यमेव च। अर्थप्रकृतयः पञ्च पञ्च चेष्टा अपि क्रमात् ॥
प्रारम्भश्च प्रयत्नश्च प्राप्तिः सद्भाव एव च। नियता च फलप्राप्तिः फलयोगश्च पञ्चमः ॥२०॥
मुखं प्रतिमुखं गर्भो विमर्षश्च तथैव च। तथा निर्व्वहणञ्चेति क्रमात् पञ्चैव सन्धयः ॥
अल्पमात्रं समुद्दिष्टं वहुधा यत् प्रसर्पति। फलावसानं यच्चैव वीजं तदभिधीयते ॥२२॥
यत्र वीजसमुत्पत्तिर्नानार्थरससम्भवा। काव्ये शरीरानुगतं तन्मुखं परिकीर्त्तितं ॥२३॥
इष्टस्यार्थस्य रचना वृत्तान्तस्यानुपक्षयः। रागप्राप्तिः प्रयोगस्य गुह्यानाञ्चैव गूहनम् ॥२४॥
आश्चर्य्यवदभिख्यातं प्रकाशानां प्रकाशनम्। अङ्गहीनं नरो यद्वन्न श्रेष्ठं काव्यमेच च ॥२५॥
देशकालौ विना किञ्चिन्नेतिवृत्तं प्रवर्त्तते। अतस्तयोरुपादाननियमात् पदमुच्यते ॥२६॥
देशेषु भारतं वर्षं काले कृतयुगत्रयं। नर्त्ते ताभ्यां प्राणभृतां सुखदुःखोदयः क्वचित् ॥
सर्गे सर्गादिवार्त्ता च प्रसज्जन्ती न दुष्यति ॥ २७ ॥

इत्याग्नेये महापुराणे आग्नेये अलङ्कारे नाटकादिनिरूपणं नामाष्टत्रिंशदधिक-
त्रिशततमोऽध्यायः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ऊनचत्वारिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः

शृङ्गारादिरसनिरूपणम् ।

अग्निरुवाच

अक्षरं परमं ब्रह्म सनातनमजं विभुं । वेदान्तेषु वदन्त्येकं चैतन्यं ज्योतिरीश्वरम् ॥१॥
आनन्दः सहजस्तस्य व्यज्यते स कदाचन । व्यक्तिः सा तस्य चैतन्यचमत्काररसाह्वया ॥
आद्यस्तस्य विकारो यः सोऽहङ्कार इति स्मृतः । ततोऽभिमानस्तत्रेदं समाप्तं भुवनत्रयं ॥३॥
अभिमानाद्रतिः सा च परिपोषमुपेयुषी । व्यभिचार्य्यादिसामान्यात् शृङ्गार इति गीयते ॥
तद्भेदाः काममितरे हास्याद्या अप्यनेकशः । स्वस्वस्थादिविशेषोत्थपरिवोषस्वलक्षणाः ॥५॥
सत्त्वादिगुणसन्तानाज्जायन्ते परमात्मनः । रागाद्भवति शृङ्गारो रौद्रस्तैक्ष्णात् प्रजायते ॥६॥
वीरोऽवष्टम्भजः सङ्कोचभूर्व्वीभत्स इष्यते । शृङ्गाराज्जायते हासो रौद्रात्तु करुणो रसः ॥७॥
वीराच्चाद्भुतनिष्पत्तिः स्याद्वीभत्साद्भयानकः । शृङ्गारहास्यकरुणा रौद्रवीरभयानकाः ।८।

वीभत्साद्भुतशान्ताख्याः स्वभावाच्चतुरो रसाः ।
लक्ष्मीरिव विना त्यागान्न वाणी भाति नीरसा ॥ ९ ॥

अपारे काव्यसंसारे कविरेव प्रजापतिः । यथा वै रोचते विश्वं तथेदं परिवर्त्तते ॥१०॥
शृङ्गारी चेत् कविः काव्ये जातं रसमयं जगत् । स चेत् कविर्वीतरागो नीरसं व्यक्तमेव तत् ॥
न भावहीनोऽस्ति रसो न भावो रसवर्ज्जितः । भावयन्ति रसानेभिर्भाव्यन्ते च रसा इति ॥
स्थायिनोऽष्टौ रतिमुखाः स्तम्भाद्या व्यभिचारिणः । मनोऽनुकूलेऽनुभवः सुखस्य रतिरिष्यते ॥
इर्षादिभिश्च मनसो विकाशो हास उच्यते । चित्रादिदर्शनाच्चेतोवैक्लव्यं ब्रुवते भयम् ॥
जुगुप्सा च पदार्थानां निन्दा दौर्भाग्यवाहिनां । विस्मयोऽतिशयेनार्थदर्शनाच्चित्तविस्तृतिः ॥
अष्टौ स्तम्भादयः सत्त्वाद्रजसस्तमसः परम् । स्तम्भश्चेष्टाप्रतीघातो भयरागाद्युपाहितः[१] ॥
श्रमरागाद्युपेतान्तःक्षोभजन्म वपुर्ज्जलं । स्वेदो हर्षादिभिर्देहोच्छासाऽन्तःपुलकोद्गमः ॥१७॥
हर्षादिजन्मवाक्सङ्गः स्वरभेदो भयादिभिः । मनोवैक्लव्यमिच्छन्ति शोकमिष्टक्षयादिभिः ॥
क्रोधस्तैक्ष्णप्रबोधश्च प्रतिकूलानुकारिणि । पुरुषार्थसमाप्त्यार्थो यः स उत्साह उच्यते ॥
चित्तक्षोभभवोत्तम्भो वेपथुः परिकीर्त्तितः । वैवर्ण्यञ्च विषादादिजन्मा कान्तिविपर्य्ययः ॥
दुःखानन्दादिजन्नेत्रजलमश्रु च विश्रुतम् । इन्द्रियाणामस्तमयः प्रलयो लङ्घनादिभिः ॥२१॥
वैराग्यादिर्म्मनः खेदो निर्वेद इति कथ्यते । मनः पीड़ादिजन्मा च सादो ग्लानिः शरीरगा ॥
शङ्कानिष्टागमोत्प्रेक्षा स्यादसूया च मत्सरः । मदिराद्युपयोगोत्थं मनः संमोहनं मदः ॥२३॥
क्रियातिशयजन्मान्तःशरीरोत्थक्लमः श्रमः । शृङ्गारादिक्रियाद्वेषश्चित्तस्यालस्यमुच्यते ॥२४॥
दैन्यं सत्त्वादपभ्रंशश्चिन्तार्थपरिभावनं । इतिकर्त्तव्यतोपायादर्शनं मोह उच्यते ॥२५॥

---

१. भयरागाद्युपस्थित इति ख. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

स्मृतिः स्यादनुभूतस्य वस्तुनः प्रतिबिम्बनं । मतिरर्थपरिच्छेदस्तत्त्वज्ञानोपनायितः ॥२६॥
व्रीडानुरागादिभवः सङ्कोचः कोपि चेतसः । भवेच्चपलताऽस्थैर्यं हर्षश्चित्तप्रसन्नता ॥२७॥
आवेशश्च प्रतीकारः शयो वैधुर्य्यमात्मनः । कर्त्तव्ये प्रतिभाभ्रंशो जड़तेत्यभिधीयते ॥२८॥
इष्टप्राप्तेरुपचितः सम्पदाभ्युदयो धृतिः । गर्व्वः परेष्ववज्ञानमात्मन्युत्कर्षभावना ॥२९॥
भवेद्विषादो दैवादेर्विघातोऽभीष्टवस्तुनि । औत्सुक्यमीप्सिताप्राप्तेर्वाञ्छया तरला स्थितिः ॥

चित्तेन्द्रियाणां स्तैमित्यमपस्मारोऽचला स्थितिः ।
युद्धे वाधादिभीस्त्रासो वीप्सा चित्तचमत्कृतिः ॥ ३१ ॥

क्रोधस्याप्रशमोऽमर्षः प्रबोधश्चेतनोदयः । अवहित्थं भवेद्गुप्तिरिङ्गिताकारगोचरा ॥३२॥
रोषतो गुरुवाग्दण्डपारुष्यं विदुरुग्रतां । ऊहो वितर्कः स्याद्व्याधिर्मनोवपुरवग्रहः ॥३३॥
अनिबद्धप्रलापादिरुन्मादो मदनादिभिः । तत्त्वज्ञानादिना चेतःकषायोपरमः शमः ॥३४॥
कविभिर्योजनीया वै भावाः काव्यादिके रसाः । विभाव्यते हि रत्यादिर्यत्र येन विभाव्यते ॥
विभावो नाम स द्वेधालम्बनोद्दीपनात्मकः । रत्यादिभाववर्गोऽयं यमाजीव्योपजायते ॥३६॥

आलम्बनविभावोऽसौ नायकादिभवस्तथा । धीरोदात्तो धीरोद्धतः स्याद्धीरललितस्तथा ॥
धीरप्रशान्त इत्येवं चतुर्द्धा नायकः स्मृतः । अनुकूलो दक्षिणश्च शठो धृष्टः प्रवर्त्तितः ॥३८॥
पीठमर्द्दो विटश्चैव विदूषक इति त्रयः । शृङ्गारे नर्म्मसचिवा नायकस्यानुनायकाः ॥३९॥
पीठमर्द्दः सम्बलकः श्रीमांस्तद्देशजो विटः । विदूषको वैहसिकस्त्वष्टनायकनायिकाः ॥४०॥
स्वकीया परकीया च पुनर्भूरिति कौशिकाः । सामान्या न पुनर्भूरिरित्याद्या बहुभेदतः ॥४१॥
उद्दीपनविभावास्ते संस्कारैर्विविधैः स्थितैः । आलम्बनविभावेषु भावानुद्दीपयन्ति ये ॥४२॥
चतुःषष्टिकला द्वेधा कर्म्माद्यैर्गीतिकादिभिः । कुहकं स्मृतिरप्येषां प्रायो हासोपहारकः ॥४३॥
आलम्बनविभावस्य भावैरुद्बुद्धसंस्कृतैः । मनोवाग्बुद्धिवपुषां स्मृतीच्छाद्वेषयत्नतः ॥४४॥
आरम्भ एव विदुषामनुभाव इति स्मृतः । स चानुभूयते चात्र भवत्युत निरुच्यते ॥४५॥
मनोव्यापारभूयिष्ठो मन आरम्भ उच्यते । द्विविधः पौरुषस्त्रैण ईदृशोऽपि प्रसिध्यति ॥४६॥

शोभा विलासो माधुर्य्यं स्थैर्य्यं गाम्भीर्य्यमेव च ।
ललितञ्च तथौदार्य्यन्तेजोऽष्टाविति पौरुषाः ॥ ४७ ॥

नीचनिन्दोत्तमस्पर्द्धा शौर्य्यं दाक्षादिकारणं । मनोधर्म्मे भवेच्छोभा शोभते भवनं यथा ॥

भावो हावश्च हेला च शोभा कान्तिस्तथैव च ।
दीप्तिर्म्माधुर्य्यशौर्य्ये च प्रागल्भ्यं स्यादुदारता ॥ ४९ ॥
स्थैर्य्यं गम्भीरता स्त्रीणां विभावा द्वादशेरिताः ।
भावो विलासो हावः स्याद्भावः किञ्चिच हर्षजः ॥ ५० ॥

वाचो युक्तिर्भवेद्वागारम्भो द्वादश एव सः । तत्राभाषणमालापः प्रलापो वचनं वहु[१] ॥५१॥

---

१. मुहुरिति ख. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विलापो दुःखवचनमनुलापोऽसकृद्वचः । संलाप उक्तप्रत्युक्तमपलापोऽन्यथावचः ॥५२॥
वार्त्ताप्रयाणं सन्देशो निर्देशः प्रतिपादनम् । तत्त्वदेशोऽतिदेशोऽयमपदेशोऽन्यवर्णनम् ॥५३॥
उपदेशश्च शिक्षावाक् व्याजोक्तिर्व्यपदेशकः । बोधाय एष व्यापारः सुबुद्ध्यारम्भ इष्यते ॥
तस्य भेदास्त्रयस्ते च रीतिवृत्तिप्रवृत्तयः ॥ ५४ ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये शृङ्गारादिरसनिरूपणं नामोनचत्वारिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ।

चत्वारिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः

रीतिनिरूपणम् ।

अग्निरुवाच

वाग्विद्यासम्प्रतिज्ञाने रीतिः सापि चतुर्विधा । पाञ्चाली गौड़देशीया वैदर्भी लाटजा तथा ॥
उपचारयुता मृद्वी पाञ्चाली ह्रस्वविग्रहा । अनवस्थितसन्दर्भा गौडीया दीर्घविग्रहा ॥२॥
उपचारैर्न्न बहुभिरुपचारैर्विवर्जिता । नातिकोमलसन्दर्भा वैदर्भी मुक्तविग्रहा ॥३॥
लाटीया स्फुटसन्दर्भा नातिविस्फुरविग्रहा । परित्यक्तापि भूयोभिरुपचारैरुदाहृता ॥४॥
क्रियास्वविषमा वृत्तिर्भारत्यारभटी तथा । कौशिकी सात्वती चेति सा चतुर्द्धा प्रतिष्ठिता ॥
वाक्प्रधाना नरप्राया स्त्रीयुक्ता प्राकृतोक्तिता । भरतेन प्रणीतत्वात् भारती रीतिरुच्यते ॥६॥
चत्वार्य्यङ्गानि भारत्या वीथी प्रहसनन्तथा । प्रस्तावना नाटकादेर्व्वीथ्यङ्गाश्च त्रयोदश ॥७॥
उद्घातकं तथैव स्यात्लपितं स्याद्द्वितीयकम् ।
असत्प्रलापो वाक्श्रेणी[१] नांनिका विपणन्तथा ॥ ८ ॥
व्याहारस्त्रिमतश्चैव[२] छलावस्कन्दिते तथा । गण्डोऽथ मृदवश्चैव त्रयोदशमथाचितम् ॥९॥
तापसादेः प्रहसनं परिहासपरं वचः । मायेन्द्रजालयुद्धादिबहुलारभटी स्मृता ॥
सङ्क्षिप्तकारपातौ च[३] वस्तूत्थापनमेव च ॥ १० ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये रीतिनिरूपणं नाम चत्वारिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ।

---

१. वाग्वेणीति क. ञ. ट. च ।
२. व्याहारस्त्रिगतश्चैवेति ख. ।
३. सङ्क्षिप्तकरपातौ चेति ज. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

एकचत्वारिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः

नृत्यादावङ्गकर्म्मनिरूपणम् ।

अग्निरुवाच

चेष्टाविशेषमप्यङ्गप्रत्यङ्गे कर्म्म चानयोः । शरीरारम्भमिच्छन्ति प्रायः पूर्व्वोऽवलाश्रयः ॥१॥
लीला विलासो विच्छित्तिर्विभ्रमं किलकिञ्चितं । मोट्टायितं कुट्टमितं विव्वोको ललितन्तथा ॥
विकृतं क्रीड़ितं केलिरिति द्वादशधैव सः । लीलेष्टजनचेष्टानुकरणं संवृतक्षये ॥३॥
विशेषान् दर्शयन् किञ्चिद्विलासः सद्भिरिष्यते । हसितक्रन्दितादीनां सङ्करः किलकिञ्चितं ॥
विकारः कोपि विव्वोको ललितं सौकुमार्य्यतः। शिरः पाणिरुरः पार्श्वङ्कटिरङ्घ्रिरिति क्रमात् ॥
अङ्गानि भ्रूलतादीनि प्रत्यङ्गान्यभिजानते । अङ्गप्रत्यङ्गयोः कर्म्म प्रयत्नजनितं विना ॥६॥
न प्रयोगः क्वचिन्मुख्यन्तिरश्चीनञ्च तत् क्वचित् । आकम्पितं कम्पितञ्च[1] धूतं विधूतमेव च ॥
परिवाहितमाधूतमवधूतमथाचितं । निकुञ्चितं परावृत्तमुत्क्षिप्तञ्चाप्यधोगतम् ॥८॥
ललितञ्चेति विज्ञेयं त्रयोदशविधं शिरः । भ्रूकर्म्म सप्तधा ज्ञेयं पातनं भ्रूकुटीमुखं ॥९॥
दृष्टिस्त्रिधा रसस्थायिसञ्चारिप्रतिबन्धना । षट्त्रिंशद्भेदविधुरा रसजा तत्र चाष्टधा ॥१०॥
नवधा तारकाकर्म्म भ्रमणञ्चलनादिकं । षोढ़ा च नासिका ज्ञेया निश्वासो नवधा मतः ॥
षोढौष्ठकर्म्मकं पापं सप्तधा चिवुकक्रिया । कलुषादिमुखं षोढा ग्रीवा नवविधा स्मृता ॥१२॥
असंयुतः संयुतश्च भूम्ना हस्तः प्रमुच्यते । पताकस्त्रिपताकश्च तथा वै कर्त्तरीमुखः ॥
अर्द्धचन्द्रोत्करालश्च शुकतुण्डस्तथैव च । मुष्टिश्च शिखरश्चैव कपित्थः खेटकामुखः ॥१४॥
सूच्यास्यः पद्मकोषो हि शिराः समृगशीर्षकाः । कांमूलकालपद्मौ[2]* च चतुरभ्रमरौ तथा ॥
हंसास्यहंसपक्षौ च सन्दंशमुकुलौ तथा । उर्णनाभस्ताम्रचूडश्चतुर्विंशतिरित्यमी ॥१६॥
असंयुतकराः प्रोक्ताः संयुतास्तु त्रयोदश । अञ्जलिश्च कपोतश्च कर्कटः स्वस्तिकस्तथा ॥
कटको वर्द्धमानश्चाप्यसङ्गो निषधस्तथा । दोलः पुष्पपुटश्चैव तथा मकर एव च ॥१८॥
गजदन्तो वहिस्तम्भो वर्द्धमानोऽपरे कराः । उरः पञ्चविधं स्यात्तु आभुग्ननर्त्तनादिकम् ॥
उदरन्दुरतिक्षामं खण्डं पूर्णमिति त्रिधा । पार्श्वयोः पञ्चकर्म्माणि जङ्घाकर्म च पञ्चधा ॥
अनेकधा पादकर्म्म नृत्यादौ नाटके स्मृतम् ॥ २० ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये नृत्यादावङ्गकर्म्मनिरूपणं नाम एकचत्वारिंशदधिक-
त्रिशततमोऽध्यायः ।

---

१. आकलितं कल्पितञ्चेति ख. । २. काङ्गूलकालपद्माविति ञ. ।

* कांमूलकालपद्मौ काङ्गूलकालपद्मौ एतत्पाठद्वयं न समीचीनं ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

द्विचत्वारिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः

अभिनयादिनिरूपणम् ।

अग्निरुवाच

आभिमुख्यन्नयन्नर्थान्विज्ञेयोऽभिनयो बुधैः । चतुर्द्धा सम्भवः सत्त्ववागङ्गाहरणाश्रयः ॥१॥
स्तम्भादिः सात्त्विको वागारम्भो वाचिक आङ्गिकः ।
शरीरारम्भ आहार्य्यो बुद्ध्यारम्भप्रवृत्तयः ॥ २ ॥
रसादिविनियोगोऽथ कथ्यते ह्यभिमानतः । तमन्तरेण सर्व्वेषामपार्थैव स्वतन्त्रता ॥३॥
सम्भोगो विप्रलम्भश्च शृङ्गारो द्विविधः स्मृतः । प्रच्छन्नश्च प्रकाशश्च तावपि द्विविधौ पुनः ॥
विप्रलम्भाभिधानो यः शृङ्गारः स चतुर्विधः । पूर्व्वानुरागमानाख्यः प्रवासकरुणात्मकः ॥५॥
एतेभ्योऽन्यतरं जायमानसम्भोगलक्षणम् । विवर्त्तते चतुर्द्धैव न च प्रागतिवर्त्तते ॥६॥
स्त्रीपुंसयोस्तदुदयस्तस्य निर्व्विर्त्तिकारतिः । निखिलाः सात्त्विकास्तत्र वैवर्ण्यप्रलयौ विना ॥
धर्म्मार्थकाममोक्षैश्च शृङ्गार उपचीयते । आलम्बनविशेषैश्च तद्विशेषैर्न्निरन्तरः ॥८॥
शृङ्गारं द्विविधं विद्याद्वाङ्नेपथ्यक्रियात्मकम् । हासश्च'तुर्व्विधोऽलक्ष्यदन्तः स्मित इतीरितः ॥
किञ्चिल्लक्षितदन्ताग्रं हसितं फुल्ललोचनम् । विहसितं सस्वनं स्याज्जिह्मोपहसितन्तु तत् ॥१०॥
सशब्दं पापहसितमशब्दमतिहासितं । यश्चासौ करुणो नाम स रसस्त्रिविधो भवेत् ॥११॥
धर्म्मोपघातजश्चित्तविलासजनितस्तथा । शोकः शोकाद्भवेत् स्थायी कः स्थायी पूर्व्वजो मतः ॥
अङ्गनेपथ्यवाक्यैश्च रौद्रोऽपि त्रिविधो रसः । तस्य निर्व्वर्त्तकः क्रोधः स्वेदो रोमाञ्चवेपथुः ॥
दानवीरो धर्मवीरो युद्धवीर इति त्रयम् । वीरस्तस्य च निष्पत्तिहेतुरुत्साह इष्यते ॥१४॥
आरम्भेषु भवेद्यत्र वीरमेवानुवर्त्तते । भयानको नाम रसस्तस्य निर्वर्तकं भयं ॥१५॥
उद्वेजनः क्षोभणश्च वीभत्सो द्विविधः स्मृतः ।
उद्वेजनः स्यात् प्लुत्याद्यैः क्षोभणो रुधिरादिभिः ॥ १६ ॥
जुगुप्सारम्भिका तस्य सात्त्विकांशो निवर्त्तते । काव्यशोभाकरान् धर्म्मानलङ्कारान् प्रचक्ष्यते ॥
अलङ्करिष्णवस्ते च शब्दमर्थमुभौ त्रिधा । ये व्युत्पत्त्यादिना शब्दमलङ्कर्त्तुमिह क्षमाः ॥
शब्दालङ्कारमाहुस्तान् काव्यमीमांसका विदः । छाया मुद्रा तथोक्तिश्च युक्तिर्गुम्फनया सह ॥
वाकोवाक्यमनुप्रासश्चित्रं दुष्करमेव च । ज्ञेया नवालङ्कृतयः शब्दानामित्यसङ्करात् ॥२०॥
तत्रान्योक्तेरनुकृतिश्छाया सापि चतुर्व्विधा । लोकच्छेकार्भकोक्तीनामेकोक्तेरनुकारतः ॥२१॥
आभाणकोक्तिर्लोकोक्तिः सर्व्वसामान्य एव ताः ।
यानुधावति लोकोक्तिश्छायामिच्छन्ति तां बुधाः ॥ २२ ॥
छेका विदग्धा वैदग्ध्यं कलासु कुशला मतिः । तामुल्लिखन्ती छेकोक्तिश्छाया कविभिरिष्यते ॥
अव्युत्पन्नोक्तिरखिलैरर्भकोक्त्योपलक्ष्यते । तेनार्भकोक्तिश्छाया तन्मात्रोक्तिमनुकुर्व्यती ॥२३॥
विप्लुताक्षरमश्लीलं वचो मत्तस्य तादृशी । या सा भवति मत्तोक्तिश्छायोक्ताप्यतिशोभते ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अभिप्रायविशेषेण कविशक्तिं विवृण्वती । मुत्प्रदायिनीति सा मुद्रा सैव शय्यापि नो मते ॥
उक्तिः सा कथ्यते यस्यामर्थकोऽप्युपपत्तिमान् । लोकयात्रार्थविधिना धिनोति हृदयं सतां ॥
उभौ विधिनिषेधौ च नियमानियमावपि । विकल्पपरिसङ्ख्ये च तदीयाः षडथोक्तयः ॥
अयुक्तयोरिव मिथो वाच्यवाचकयोर्द्वयोः । योजनायै कल्प्यमाना युक्तिरुक्ता मनीषिभिः ॥
पदञ्चैव पदार्थश्च वाक्यं वाक्यार्थमेव च । विषयोऽस्याः प्रकरणं प्रपञ्चश्चेति षड्विधः ॥
गुम्फना रचनाचर्य्या शब्दार्थक्रमगोचरा । शब्दानुकारादर्थानुपूर्व्यार्थेयं क्रमात्त्रिधा ॥३१॥
उक्तिप्रत्युक्तिमद्वाक्यं वाकोवाक्यं द्विधैव तत् । ऋजुवक्रोक्तिभेदेन तत्राद्यं सहजं वचः ॥३२॥
सा पूर्व्वप्रश्निका प्रश्नपूर्व्विकेति द्विधा भवेत् । वक्रोक्तिस्तु भवेद्भङ्गया काकुस्तेन कृता द्विधा॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये अलङ्कारे अभिनयादिनिरूपणं नाम द्विचत्वारिंशदधिक-त्रिशततमोऽध्यायः ।

त्रिचत्वारिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः

शब्दालङ्काराः ।

अग्निरुवाच

स्यादावृत्तिरनुप्रासो वर्णानां पदवाक्ययोः । एकवर्णाऽनेकवर्णावृत्तेर्व्वर्णगुणो द्विधा ॥१॥
एकवर्णगतावृत्तेर्ज्जायन्ते पञ्च वृत्तयः । मधुरा ललिता प्रौढा भद्रा परुषया सह ॥२॥
मधुरायाश्च वर्गान्तादधो वर्ग्या रणौ स्वनौ[1] । ह्रस्वस्वरेणान्तरितौ संयुक्तत्वं नकारयोः ॥
न कार्य्या वर्ण्यवर्णानामावृत्तिः पञ्चमाधिका । महाप्राणोष्मसंयोगप्रविमुक्तलघूत्तरौ[2] ॥४॥
ललिता बलभूयिष्ठा[3] प्रौढा या पणवर्गजा । ऊद्र्ध्वं रेफेण युज्यन्ते नटवर्गोनपञ्चमाः ॥५॥
भद्रायां परिशिष्टाः स्युः परुषा साऽभिधीयते । भवन्ति यस्यामूष्माणः संयुक्तास्तत्तदक्षरैः ॥
अकारवर्ज्जमावृत्तिः स्वराणामतिभूयसी । अनुस्वारविसर्गौ च पारुष्याय निरन्तरौ ॥७॥
शषसा रेफसंयुक्ताश्चाकारश्चापि भूयसा । अन्तस्थाभिन्नमाभ्याञ्च हः पारुष्याय संयुतः ॥
अन्यथापि गुरुर्वर्णः संयुक्ते परिपन्थिनि । पारुष्यायादिमांस्तत्र पूजिता न तु पञ्चमी ॥९॥
क्षेपे शब्दानुकारे च परुषापि प्रयुज्यते । कर्णाटी कौन्तली कौन्ती कौङ्कणी वामनासिका[4] ॥
द्रावणी माधवी पञ्चवर्णान्तस्थोष्मभिः क्रमात् । अनेकवर्णावृत्तिर्या भिन्नार्थप्रतिपादिका ॥
यमकं साव्यपेतञ्च व्यपेतञ्चेति तद्द्विधा । आनन्तर्यादव्यपेतं व्यपेतं व्यवधानतः ॥१२॥
द्वैविध्येनानयोः स्थानपादभेदाच्चतुर्विधम् । आदिपादादिमध्यान्तेष्वेकद्वित्रिनियोगतः ॥

---

१. रणौ घनाविति ञ. ।　　२. महाप्राणोष्मसंयोगादवियुक्तलघूत्तराविति ट. ।
३. ललिता वनभूयिष्ठेति ख. ललिता वस्तभूयिष्ठेति ट. ।
४. बालवासिकेति ख. ट. च । वनवासिकेति ञ. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सप्तधा सप्तपूर्वेण[1] चेत् पादेनोत्तरोत्तरः । एकद्वित्रिपदारम्भस्तुल्यः षोढा तदापरं ॥१४॥
तृतीयं त्रिविधं पादस्यादिमध्यान्तगोचरम् । पादान्तयमकञ्चैव काञ्चीयमकमेव च ॥१५॥
संसर्गयमकञ्चैव[2] विक्रान्तयमकन्तथा । पादादियमकञ्चैव तथाम्रेडितमेव च ॥१६॥
चतुर्व्यवसितञ्चैव मालायमकमेव च । दशधा यमकं श्रेष्ठं तद्भेदा बहवोऽपरे ॥१७॥
स्वतन्त्रस्यान्यतन्त्रस्य पदस्यावर्त्तना द्विधा । भिन्नप्रयोजनपदस्यावृत्तिं मनुज्ञा विदुः ॥१८॥
द्वयोरावृत्तपदयोः समस्ता स्यात्समासतः । असमासात्तयोर्व्यस्ता पादे त्वेकत्र विग्रहात् ॥
वाक्यस्यावृत्तिरप्येवं यथासम्भवमिष्यते । अलङ्काराद्यनुप्रासो लघुमध्येवमर्हणात्[3] * ॥२०॥
यया कयाचिद्वृत्या यत समानमनुभूयते । तद्रूपादिपदासत्तिः सानुप्रासा रसावहा ॥२१॥
गोष्ठ्यां कुतूहलाध्यायी वाग्बन्धश्चित्रमुच्यते । प्रश्नः प्रहेलिका गुप्तं च्युतदत्ते तथोभयम् ॥
समस्या सप्त तद्भेदा नानार्थस्यानुयोगतः । यत्र प्रदीयते तुल्यवर्णविन्यासमुत्तरं ॥२३॥
स प्रश्नः स्यादेकपृष्टद्विपृष्टोत्तरभेदतः । द्विधैकपृष्टो द्विविधः समस्तो व्यस्त एव च ॥
द्वयोरप्यर्थयोर्गुह्यमानशब्दा प्रहेलिका । सा द्विधार्थी च शाब्दी च तत्रार्थी चार्थबोधतः ॥

शब्दावबोधतः शाब्दी प्राहुः षोढा प्रहेलिकां ।
यस्मिन् गुप्तेऽपि वाक्याङ्गे भाव्यर्थोऽपारमार्थिकः ॥ २६ ॥

तदङ्गविहिताकाङ्क्षस्तद्गुप्तं गूढमप्यदः । यत्रार्थान्तरनिर्भासो वाक्याङ्गच्यवनादिभिः ॥
तदङ्गविहिताकाङ्क्षस्तच्चुतं स्याच्चतुर्विधम् । स्वरव्यञ्जनविन्दूनां विसर्गस्य च विच्युतेः ॥
दत्तेपि यत्र वाक्याङ्गे द्वितीयोर्थः प्रतीयते । दत्तन्तदाहुस्तद्भेदाः स्वराद्यैः पूर्व्ववन्मताः ॥२९॥
अपनीताक्षरस्थाने न्यस्ते वर्णान्तरेऽपि च । भासतेऽर्थान्तरं यत्र च्युतदत्तं तदुच्यते ॥३०॥
सुश्लिष्टपद्यमेकं यन्नानाश्लोकांशनिर्म्मितम् । सा समस्या परस्यात्मपरयोः कृतिसङ्करात् ॥३१॥
दुःखेन कृतमत्यर्थं कविसामर्थ्यसूचकम् । दुष्करं नीरसत्वेपि विदग्धानां महोत्सवः ॥३२॥
नियमाच्च विदर्भाच्च बन्धाच्च भवति त्रिधा । कवेः प्रतिज्ञा निर्म्माणरम्यस्य नियमः स्मृतः ॥
स्थानेनापि स्वरेणापि व्यञ्जनेनापि स त्रिधा । विकल्पः प्रातिलोम्यानुलोम्यादेवाभिधीयते ॥
प्रातिलोम्यानुलोम्यश्च शब्देनार्थेन जायते । अनेकधावृत्तवर्णविन्यासैः शिल्पकल्पना ॥३५॥
तत्तत्प्रसिद्धवस्तूनां बन्ध इत्यभिधीयते । गोमूत्रिकार्द्धभ्रमणे सर्व्वतोभद्रमम्बुजम् ॥३६॥
चक्रञ्चक्राब्जकं दण्डो मुरजाश्चेति चाष्टधा । प्रत्यर्धं प्रतिपादं स्यादेकान्तरसमाक्षरा ॥३७॥
द्विधा गोमूत्रिकां पूर्व्वामाहुरश्वपदां परे । अन्त्याङ्गोमूत्रिकां धेनुं जालबन्धं[4] वदन्ति हि ॥
अर्द्धाभ्यामर्धपादैश्च कुर्य्याद्विन्यासमेतयोः । न्यस्तानामिह वर्णानामधोधः क्रमभागिनां ॥
अधोधःस्थितवर्णानां यावत्तूर्य्यपदन्नयेत् । तुर्य्यपादान्नयेदूर्ध्वं पादार्द्धं प्रातिलोम्यतः ॥४०॥

---

१. पूर्वपूर्व्वेणेति ज. ञ. ट. च । २. सम्बन्धयमकञ्चैवेति ख. ।
३. लघुमप्येवमर्हणादिति ट. । लघुमध्येव वर्हणादिति ज. ।
* लघुमध्येवमर्हणात् , लघुमप्येवमर्हणात् , लघुमध्येव वर्हणात् एतत् पाठत्रयं न सम्यक् प्रतिभाति ।
४. जानुबन्धमिति क. ख. च ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तदेव सर्व्वतोभद्रं त्रिविधं सरसीरुहं। चतुष्पत्रं ततो विघ्नं चतुष्पत्रे उभे अपि ॥४१॥
अथ प्रथमपादस्य मूर्द्धन्यस्त्रिपदाक्षरं। सर्व्वेषामेव पादानामन्ते तदुपजायते ॥४२॥
प्राक्पदस्यान्तिमं प्रत्यक् पादादौ प्रातिलोम्यतः। अन्त्यपादान्तिमञ्चाद्यपादादावक्षरद्वयं ॥
चतुश्छदे भवेदष्टच्छदे वर्णत्रयं पुनः। स्यात् षोड़शच्छदे त्वेकान्तरञ्चेदेकमक्षरं ॥४४॥
कर्णिकां तोलयेदूर्ध्वं पत्राकाराक्षरावलिं। प्रवेशयेत् कर्णिकायाञ्चतुष्पत्रसरोरुहे ॥४५॥
कर्णिकायां लिखेदेकं द्वे द्वे दिक्षु विदिक्षु च। प्रवेशनिर्गमौ दिक्षु कुर्य्यादष्टच्छदेऽम्बुजे ॥
विश्वग्विषमवर्णानां तावत् पत्रावलीजुषां। मध्ये समाक्षरन्यासः सरोजे षोड़शच्छदे ॥४७॥
द्विधा चक्रं चतुररं षड़रन्तत्र चादिमं। पूर्व्वार्द्धे सदृशा वर्णाः पादप्रथमपञ्चमाः ॥४८॥
अयुजोऽथयुजश्चैव तुर्य्यावष्टमावपि। तस्योपपादप्राक्प्रत्यगरेषु च यथाक्रमं ॥४९॥
स्यात्पादार्द्धचतुष्कन्तु नाभौ तस्याद्यमक्षरं। पश्चिमारावधि नयेन्नेमौ शेषे पदद्वयी ॥५०॥
तृतीयं तुर्य्यपादान्ते प्रथमौ सदृशावुभौ। वर्णौ पादत्रयस्यापि दशमः सदृशो यदि ॥५१॥
प्रथमे चरमे तस्य षड्वर्णाः पश्चिमे यदि। भवन्ति द्व्यन्तरं तर्हि वृहच्चक्रमुदाहृतं ॥५२॥
सम्मुखारद्वये पादमेकैकं क्रमशो लिखेत्। नाभौ तु वर्णं दशमं नेमौ तुर्य्यपदन्नयेत् ॥५३॥

श्लोकस्याद्यन्तदशमाः समा आद्यन्तिमौ युजोः।
आदौ वर्णः समौ तुर्य्यपञ्चमावाद्यतुर्य्ययोः॥ ५४ ॥

द्वितीयप्रातिलोम्येन तृतीयं जायते यदि। पदं विदध्यात् पत्रस्य दण्डश्चक्राब्जकं कृतेः ॥५५॥
द्वितीयौ प्राग्दले तुल्यौ सप्तमौ च तथापरौ। सदृशावुत्तरदलौ द्वितीयाभ्यामथार्द्धयोः ॥५६॥
द्वितीयषष्ठाः सदृशाश्चतुर्थपञ्चमावपि। आद्यन्तपादयोस्तुल्यौ परार्द्धसप्तमावपि ॥५७॥
समौ तुर्य्यं पञ्चमन्तु क्रमेण विनियोजयेत्। तुर्य्यौ योज्यौ तु तद्वच्च दलान्ताः क्रमशादयोः ॥
अर्द्धयोरन्तिमाद्यौ तु मुरजे सदृशावुभौ। पादार्द्धपतितो वर्णः प्रातिलोम्यानुलोमतः ॥५९॥
अन्तिमं परिबध्नीयाद्यावत्तुर्य्यमिहादिमत्। पादात्तुर्य्याद्यदेवाद्यं नवमात् षोड़शादपि ॥६०॥
अक्षरात् पुटके मध्ये मध्येऽक्षरचतुष्टयम्। कृत्वा कुर्य्याद्यथैतस्य मुरजाकारता भवेत् ॥६१॥
द्वितीयं चक्रशार्दूलविक्रीडितकसम्पदम्। गोमूत्रिका सर्व्ववृत्तैरन्ये बन्धास्त्वनुष्टुभा ॥६२॥
नामधेयं यदि न चेदमीषु कविकाव्ययोः। मित्रधेयाभितुष्यन्ति नामित्रः खिद्यते तथा ॥६३॥
वाणवाणासनव्योमखड्गमुद्गरशक्तयः । द्विचतुर्थत्रिशृङ्गाटा दम्भोलिमुषलाङ्कुशाः ॥६४॥
पदं रथस्य नागस्य पुष्करिण्यसिपुत्रिका। एते बन्धास्तथा चान्ये एवं ज्ञेयाः स्वयं बुधैः ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये अलङ्कारे शब्दालङ्कारनिरूपणं नाम त्रिचत्वारिंशदधिक-
त्रिशततमोऽध्यायः।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

चतुश्चत्वारिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः

अर्थालङ्काराः ।

अग्निरुवाच

अलङ्करणमर्थानामर्थालङ्कार इष्यते । तं विना शब्दसौन्दर्य्यमपि नास्ति मनोहरम् ॥१॥
अर्थालङ्काररहिता विधवेव[1] सरस्वती । स्वरूपमथ सादृश्यमुत्प्रेक्षातिशयावपि ॥२॥
विभावना विरोधश्च हेतुश्च सममष्टधा । स्वभाव एव भावानां स्वरूपमभिधीयते ॥३॥
निजमागन्तुकञ्चेति द्विविधं तदुदाहृतम् । सांसिद्धिकं निजं नैमित्तिकमागन्तुकं तथा ॥४॥
सादृश्यं धर्म्मसामान्यमुपमा रूपकं तथा । सहोक्त्यर्थान्तरन्यासाविति स्यात्तु चतुर्विधम् ॥
उपमा नाम सा यस्यामुपमानोपमेययोः । सत्ता चान्तरसामान्ययोगित्वेपि विवक्षितं ॥६॥
किञ्चिदादाय सारूप्यं लोकयात्रा प्रवर्त्तते । समासेनासमासेन सा द्विधा प्रतियोगिनः ॥
विग्रहादभिधानस्य ससमासाऽन्यथोत्तरा । उपमाद्योतकपदेनोपमेयपदेन च ॥८॥
ताभ्याञ्च विग्रहात् त्रेधा ससमासान्तिमात् त्रिधा। विशिष्यमाणा उपमा भवन्त्यष्टादश स्फुटाः॥
यत्र साधारणो धर्म्मः कथ्यते गम्यतेऽपि वा । ते धर्म्मवस्तुप्राधान्याद्धर्म्मवस्तूपमे उभे ॥
तुल्यमेवोपमीयेते यत्रान्योन्येन धर्म्मिणौ । परस्परोपमा सा स्यात् प्रसिद्धेरन्यथा तयोः ॥
विपरीतोपमा सा स्याद्व्यावृत्तेर्न्नियमोपमा । अन्यत्राप्यनुवृत्तेस्तु भवेदनियमोपमा ॥१२॥
समुच्चयोपमातोऽन्यधर्म्मबाहुल्यकीर्त्तनात् । बहोर्धर्म्मस्य साम्येपि वैलक्षण्यं विवक्षितं ॥
यदुच्यतेऽतिरिक्तत्वं व्यतिरेकोपमा तु सा । यत्रोपमा स्याद्बहुभिः सदृशैः सा बहूपमा ॥१४॥
धर्म्माः प्रत्युपमानञ्चेदन्ये मालोपमैव सा । उपमानविकारेण तुलना विक्रियोपमा ॥१५॥
त्रैलोक्यासम्भवि किमप्यारोप्य प्रतियोगिनि । कविनोपमीयते या प्रथते साद्भुतोपमा ॥
प्रतियोगिनमारोप्य तदभेदेन कीर्त्तनम् । उपमेयस्य सा मोहोपमाऽसौ भ्रान्तिमद्वचः ॥
उभयोर्धर्म्मिणोस्तथ्यानिश्चयात् संशयोपमा । उपमेयस्य संशय्य निश्चयान्निश्चयोपमा ॥
वाक्यार्थेनैव वाक्यार्थोपमा स्यादुपमानतः । आत्मनोपमानादुपमा साधारण्यतिशायिनी ॥
उपमेयं यदन्यस्य तदन्यस्योपमा मता । यद्युत्तरोत्तरं याति तदाऽसौ गगनोपमा[2] ॥२०॥
प्रशंसा चैव निन्दा च कल्पिता सदृशो तथा । किञ्चिच्च सदृशी ज्ञेया उपमा पञ्चधा पुनः ॥
उपमानेन यत्तत्त्वमुपमेयस्य रूप्यते । गुणानां समतां दृष्ट्वा रूपकं नाम तद्विदुः ॥२२॥
उपमैव तिरोभूतभेदा रूपकमेव वा । सहोक्तिः सहभावेन कथनं तुल्यधर्म्मिणां ॥२३॥
भवेदर्थान्तरन्यासः सादृश्येनोत्तरेण सः । अन्यथोपस्थिता वृत्तिश्चेतनस्येतरस्य च ॥२४॥
अन्यथा मन्यते यत्र तामुत्प्रेक्षां प्रचक्षते । लोकसीमानिवृत्तस्य वस्तुधर्म्मस्य कीर्त्तनम् ॥
भवेदतिशयो नाम सम्भवासम्भवाद् द्विधा । गुणजातिक्रियादीनां यत्र वैकल्यदर्शनं ॥२६॥
विशेषदर्शनायैव सा विशेषोक्तिरुच्यते । प्रसिद्धहेतुव्यावृत्त्या यत् किञ्चित् कारणान्तरम् ॥

१. विधुरेवेति ख. ट. च । २. पवनोपमेति ख. । गमनोपमेति क. ट. च ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यत्र स्वाभाविकत्वं वा विभाव्यं सा विभावना । सङ्गतीकरणं युक्त्या यदसंगच्छमानयोः ॥
विरोधपूर्वकत्वेन तद्विरोध इति स्मृतं । सिसाधयिषितार्थस्य हेतुर्भवति साधकः ॥२९॥
कारको ज्ञापक इति द्विधा सोऽप्युपजायते । प्रवर्त्तते कारकाख्यः प्राक् पश्चात् कार्य्यजन्मनः ॥
पूर्व्वशेष इति ख्यातस्तयोरेव विशेषयोः । कार्य्यकारणभावाद्वा स्वभावाद्वा नियामकात् ॥३१॥
ज्ञापकाख्यस्य भेदोऽस्ति नदीपूरादिदर्शनात् । अविनाभावनियमो ह्यविनाभावदर्शनात् ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये अलङ्कारे अर्थालङ्कारनिरूपणं नाम चतुश्चत्वारिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ।

पञ्चचत्वारिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः

शब्दार्थालङ्काराः ।

अग्निरुवाच

शब्दार्थयोरलङ्कारो द्वावलङ्कुरुते समं । एकत्र निहितो हारः स्तनं ग्रीवामिव स्त्रियाः ॥१॥

प्रशस्तिः कान्तिरौचित्यं संक्षेपो यावदर्थता ।
अभिव्यक्तिरिति व्यक्तं षड्भेदास्तस्य जाग्रति ॥ २ ॥

प्रशस्तिः परवन्मर्म्मद्रवीकरणकर्म्मणः । वाचो युक्तिर्द्विधा सा च प्रेमोक्तिस्तुतिभेदतः ॥३॥
प्रेमोक्तिस्तुतिपर्य्यायौ प्रियोक्तिगुणकीर्त्तने । कान्तिः सर्व्वमनोरुच्यवाच्यवाचकसङ्गतिः ॥४॥
यथा वस्तु तथा रीतिर्यथा वृत्तिस्तथा रसः । ऊर्ज्जस्विमृदुसन्दर्भादौचित्यमुपजायते ॥५॥
संक्षेपो वाचकैरल्पैर्बहोरर्थस्य संग्रहः । अन्यूनाधिकता शब्दवस्तुनोर्यावदर्थता ॥६॥
प्रकटत्वमभिव्यक्तिः श्रुतिराक्षेप इत्यपि । तस्या भेदौ श्रुतिस्तत्र शब्दं स्वार्थसमर्पणम् ॥७॥
भवेन्नैमित्तिकी पारिभाषिकी द्विविधैव सा । सङ्केतः परिभाषेति ततः स्यात् पारिभाषिकी ॥

मुख्यौपचारिकी चेति सा च सा च द्विधा द्विधा ।
स्वाभिधेयस्खलद्वृत्तिरमुख्यार्थस्य वाचकः ॥ ६ ॥

यया शब्दो निमित्तेन केनचित्सौपचारिकी । सा च लाक्षणिकी गौणी लक्षणागुणयोगतः ॥
अभिधेयाविनाभूता प्रतीतिर्लक्षणोच्यते । अभिधेयेन सम्बन्धात्सामीप्यात्समवायतः ॥११॥
वैपरीत्यात्क्रियायोगाल्लक्षणा पञ्चधा मता । गौणीगुणानामानन्त्यादनन्ता तद्विवक्षया ॥१२॥
अन्यधर्म्मस्ततोऽन्यत्र लोकसीमानुरोधिना । सम्यगाधीयते यत्र स समाधिरिह स्मृतः ॥१३॥
श्रुतेरलभ्यमानोऽर्थो यस्माद्भाति सचेतनः । स आक्षेपो ध्वनिः स्याच्च ध्वनिना व्यज्यते यतः ॥
शब्देनार्थेन यत्रार्थः कृत्वा स्वयमुपार्जनम् । प्रतिषेध इवेष्टस्य यो विशेषोऽभिधित्सया ॥१५॥
तमाक्षेपं ब्रुवन्त्यत्र स्तुतं स्तोत्रमिदं पुनः । अधिकारादपेतस्य वस्तुनोऽन्यस्य या स्तुतिः ॥
यत्रोक्तं गम्यते नार्थस्तत्समानविशेषणं । सा समासोक्तिरुदिता सङ्क्षेपार्थतया बुधैः ॥१७॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अपह्नुतिरपह्नुत्य किञ्चिदन्यार्थसूचनम्। पर्य्यायोक्तं यदन्येन प्रकारेणाभिधीयते ॥
एषामेकंतमस्येव समाख्या ध्वनिरित्यतः ॥ १८ ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये अलङ्कारे शब्दार्थालङ्कारनिरूपणं नाम पञ्चचत्वारिंशदधिक-त्रिशततमोऽध्यायः ।

षट्चत्वारिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः

काव्यगुणविवेकः ।

अग्निरुवाच ।

अलंकृतमपि प्रीत्यै न काव्यं निर्गुणं भवेत् । वपुष्य ललिते स्त्रीणां हारो भारायते परं ॥१॥
न च वाच्यं गुणो दोषो भाव एव भविष्यति ।
गुणाः श्लेषादयो दोषा गूढ़ार्थाद्याः पृथक् कृताः ॥ २ ॥
यः काव्ये महतीं छायामनुगृह्णात्यसौ गुणः । सम्भवत्येष सामान्यो वैशेषिक इति द्विधा ॥
सर्व्वसाधारणीभूतः सामान्य इति मन्यते । शब्दमर्थमुभौ प्राप्तः सामान्यो भवति त्रिधा ॥
शब्दमाश्रयते काव्यं शरीरं यः स तद्गुणः । श्लेषो लालित्यगाम्भीर्य्यसौकुमार्य्यमुदारता ॥
सत्येव यौगिकी चेति गुणाः शब्दस्य सप्तधा । सुश्लिष्टसन्निवेशत्वं शब्दानां श्लेष उच्यते ॥
गुणादेशादिना पूर्व्वं पदसम्बद्धमक्षरं । यत्र सन्धीयते नैव तल्लालित्यमुदाहृतं ॥७॥
विशिष्टलक्षणोल्लेखलेख्यमुत्तानशब्दकम् । गाम्भीर्य्यं कथयन्त्यार्य्यास्तदेवान्येषु शब्दतां ॥
अनिष्ठुराक्षरप्रायशब्दता सुकुमारता । उत्तानपदतौदार्य्ययुतश्लाघ्यैर्विशेषणैः ॥९॥
ओजः समासभूयस्त्वमेतत्पद्यादिजीवितं । आब्रह्म स्तम्भपर्य्यन्तमोजसैकेन पौरुषं ॥१०॥
उच्यमानस्य शब्देन येन केनापि वस्तुनः । उत्कर्षमावहन्नर्थो गुण इत्यभिधीयते ॥११॥
माधुर्य्यं सम्विधानञ्च कोमलत्वमुदारता । प्रौढ़िः सामयिकत्वञ्च तद्भेदाः षट्चकाशति ॥
क्रोधेर्ष्याकारगाम्भीर्य्यान्माधुर्य्यं धैर्य्यगाहिता । सम्विधानं परिकरः स्यादपेक्षितसिद्धये ॥
यत्काठिन्यादिनिर्मुक्तसन्निवेशविशिष्टता । तिरस्कृत्यैव मृदुता भाति कोमलतेति सा ॥१४॥
लक्ष्यते स्थूललक्षत्वप्रवृत्तेर्यत्र लक्षणम् । गुणस्य तदुदारत्वमाशयस्यातिसौष्ठवं ॥१५॥
अभिप्रेतं प्रति यतो निर्व्वाहस्योपपादिकाः । युक्तयो हेतुगर्भिण्यः प्रौढाप्रौढिरुदाहृता ॥१६॥
स्वतन्त्रस्यान्यतन्त्रस्य बाह्यान्तःसमयोगतः । तत्र व्युत्पत्तिरर्थस्य या सामयिकतेति सा ॥
शब्दार्थावुपकुर्व्वाणो नाम्नोभयगुणः स्मृतः । तस्य प्रसादः सौभाग्यं यथासङ्ख्यं प्रशस्तता ॥
पाको राग इति प्राज्ञैः षट् प्रपञ्चविपञ्चिताः । सुप्रसिद्धार्थपदता प्रसाद इति गीयते ॥१९॥
उत्कर्षवान् गुणः कश्चिद्यस्मिन्नुक्ते प्रतीयते । तत्सौभाग्यमुदारत्वं प्रवदन्ति मनीषिणः ॥२०॥
यथासङ्ख्यमनुद्देशः सामान्यमतिदिश्यते । समये वर्णनीयस्य दारुणस्यापि वस्तुनः ॥
अदारुणेन शब्देन प्राशस्त्यमुपवर्णनं । उच्चैः परिणतिः कापि पाक इत्यभिधीयते ॥२२॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मृद्वीकानारिकेलाम्बुपाकभेदाच्चतुर्व्विधः । आदावन्ते च सौरस्यं मृद्वीकापाक एव सः ॥
काव्येच्छया विशेषो यः स राग इति गीयते । अभ्यासोपहितः कान्तिं सहजामपि वर्त्तते ॥
हारिद्रश्चैव कौसुम्भो नीली रागश्च स त्रिधा । वैशेषिकः परिज्ञेयो यः स्वलक्षणगोचरः ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये काव्यगुणविवेको नाम षट्चत्वारिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ।

सप्तचत्वारिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः

काव्यदोषविवेकः ।

अग्निरुवाच

उद्वेगजनको दोषः सभ्यानां स च सप्तधा । वक्तृवाचकवाच्यानामेकद्वित्रिनियोगतः ॥१॥
तत्र वक्ता कविर्नाम प्रथते स च भेदतः । सन्दिहानोऽविनीतः सन्नज्ञो ज्ञाता चतुर्व्विधः ॥२॥
निमित्तपरिभाषाभ्यामर्थसंस्पर्शिवाचकम् । तद्भेदो पदवाक्ये द्वे कथितं लक्षणं द्वयोः ॥३॥
असाधुत्वाप्रयुक्तत्वे द्वावेव पदनिग्रहौ । शब्दशास्त्रविरुद्धत्वमसाधुत्वं विदुर्बुधाः ॥४॥
व्युत्पन्नैरनिबद्धत्वमप्रयुक्तत्वमुच्यते । छान्दसत्वमविस्पष्टत्वञ्च कष्टत्वमेव च ॥५॥
तदसामयिकत्वञ्च ग्राम्यत्वञ्चेति पञ्चधा । छान्दसत्वं न भाषायामविस्पष्टमबोधतः ॥६॥
गूढार्थता विपर्य्यस्तार्थता संशयितार्थता । अविस्पष्टार्थता भेदास्तत्र गूढार्थतेति सा ॥७॥
यत्रार्थो दुःखसंवेद्यो विपर्य्यस्तार्थता पुनः । विवक्षितान्यशब्दार्थप्रतिपत्तिर्मलीमसा[1] ॥८॥
अन्यार्थत्वासमर्थत्वे एतामेवोपसर्पतः । सन्दिह्यमानवाच्यत्वमाहुः संशयितार्थतां ॥९॥
दोषत्वमनुबध्नाति सज्जनोद्वेजनादृते । असुखोच्चार्य्यमाणत्वं कष्टत्वं समयाच्युतिः ॥१०॥
असामयिकता नेयामेताञ्च मुनयो जगुः । ग्राम्यता तु जघन्यार्थप्रतिपत्तिः खलीकृता ॥११॥
वक्तव्यग्राम्यवाच्यस्य वचनात्स्मरणादपि । तद्वाचकपदेनाभिसाम्याद्भवति सा त्रिधा ॥१२॥

दोषः साधारणः प्रातिस्विकोऽर्थस्य स तु द्विधा ।
अनेकभागुपालम्भः साधारण इति स्मृतः ॥ १३ ॥

क्रियाकारकयोर्भ्रंशो विसन्धिः पुनरुक्तता । व्यस्तसम्बन्धता चेति पञ्च साधारणा मताः[2] ॥
अक्रियत्वं क्रियाभ्रंशो भ्रष्टकारकता पुनः । कर्त्त्र्यादिकारकाभावो विसन्धिः सन्धिदूषणम् ॥
विगतो वा विरुद्धो वा सन्धिः स भवति द्विधा । सन्धेर्व्विरुद्धता कष्टपादादर्थान्तरागमात्[3] ॥
पुनरुक्तत्वमाभीक्ष्ण्यादभिधानं द्विधैव तत् । अर्थावृत्तिः पदावृत्तिरर्थावृत्तिरपि द्विधा ॥१७॥
प्रयुक्तवरशब्देन[4] तथा शब्दान्तरेण च । नावर्त्तते पदावृत्तौ वाच्यमावर्त्तते पदम् ॥१८॥

---

१. मनीषयेति ज. ।
२. मला इति क. ज. च ।
३. कष्टपादादर्थान्तरक्रमादिति ट. ।
४. प्रयुक्तचरशब्देनेति ज. ञ. च ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

व्यस्तसम्बन्धता सुष्ठु सम्बन्धो व्यवधानतः । सम्बन्धान्तरनिर्भाषात् सम्बन्धान्तरजन्मनः ॥
अभावेपि तयोरन्तर्व्यवधानात्त्रिधैव सा । अन्तरा पदवाक्याभ्यां प्रतिभेदं पुनर्द्विधा ॥
वाच्यमर्थाध्यमानत्वात्तद्द्विधा पदवाक्ययोः । व्युत्पादितपूर्व्ववाच्यं व्युत्पाद्यञ्चेति भिद्यते ॥
इष्टव्याघातकारित्वं हेतोः स्यादसमर्थता । असिद्धत्वं विरुद्धत्वमनैकान्तिकता तथा ॥२२॥
एवं सत्प्रतिपक्षत्वं कालातीतत्वसङ्करः । पक्षे सपक्षे नास्तित्वं विपक्षेऽस्तित्वमेव तत् ॥२३॥
काव्येषु परिषद्यानां न भवेदप्यरुन्तुदम् । एकादशनिरर्थत्वं[१] दुष्करादौ न दुष्यति ॥२४॥
दुःखीकरोति दोषज्ञान् गूढार्थत्वं न दुष्करे । न ग्राम्यतोद्वेगकारी प्रसिद्धेर्लोकशास्त्रयोः ॥
क्रियाभ्रंशेन लक्ष्मास्ति क्रियाध्याहारयोगतः । भ्रष्टकारकताक्षेपबलाध्याहृतकारके ॥२६॥
प्रगृह्ये गृह्यते नैव क्षतं विगतसन्धिना । कष्टपाठाद्विसन्धित्वं दुर्व्वचादौ न दुर्भगम् ॥२७॥
अनुप्रासे पदावृत्तिर्व्यस्तसम्बन्धता शुभा । नार्थसंग्रहणे दोषो व्युत्क्रमाद्यैर्न्न लिप्यते ॥२८॥
विभक्तिसंज्ञालिङ्गानां यत्रोद्वेगो न धीमतां । संख्यायास्तत्र भिन्नत्वमुपमानोपमेययोः ॥
अनेकस्य तथैकेन बहूनां बहुभिः शुभा । कवीनां समुदाचारः समयो नाम गीयते ॥३०॥
सामान्यश्च विशिष्टश्च धर्म्मवद्भवति द्विधा । सिद्धसैद्धान्तिकानाञ्च कवीनाञ्चाविवादतः ॥
यः प्रसिध्यति सामान्य इत्यसौ समयो मतः । सर्व्वे सिद्धान्तिका येन सञ्चरन्ति निरत्ययं ॥

क्रियन्त एव वा येन सामान्यस्तेन स द्विधा ।
छेदसिद्धान्ततोऽन्यः स्यात् केषाञ्चिद्भ्रान्तितो यथा ॥ ३३ ॥

तर्कज्ञानं मुनेः कस्य कस्यचित् क्षणभङ्गिका । भूतचैतन्यता कस्य ज्ञानस्य सुप्रकाशता ॥
प्रज्ञातस्थूलताशब्दानेकान्तत्वं तथार्हतः । शैववैष्णवशाक्तेयसौरसिद्धान्तिनां मतिः ॥३५॥
जगतः कारणं ब्रह्म साङ्ख्यानां सप्रधानकं । अस्मिन् सरस्वतीलोके सञ्चरन्तः परस्परम् ॥
बध्नन्ति व्यतिपश्यन्तो यद्विशिष्टः स उच्यते । परिग्रहादप्यसतां सतामेवापरिग्रहात् ॥३७॥
भिद्यमानस्य तस्यायं द्वैविध्यमुपगीयते । प्रत्यक्षादिप्रमाणैर्यद्बाधितं तदसद्विदुः ॥३८॥
कविभिस्तत् प्रतिग्राह्यं ज्ञानस्य द्योतमानता । यदेवार्थक्रियाकारि तदेव परमार्थसत् ॥३९॥
अज्ञानाज्ज्ञानतस्त्वेकं ब्रह्मैव परमार्थसत् । विष्णुः स्वर्गादिहेतुः स शब्दालङ्काररूपवान् ॥

अपरा च परा विद्या तां ज्ञात्वा मुच्यते भवात् ॥ ४० ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये अलङ्कारे काव्यदोषविवेको नाम सप्तचत्वारिंशदधिक-
त्रिशततमोऽध्यायः ।

---

१. एकादशनिरस्तत्वमिति ञ. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अष्टचत्वारिंशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः

एकाक्षराभिधानम् ।

अग्निरुवाच

एकाक्षराभिधानञ्च मातृकान्तं वदामि ते । अ विष्णुः प्रतिषेधः स्यादा पितामहवाक्ययोः ॥
सीमायामथाऽव्ययं आ भवेत्संक्रोधपीडयो । इः कामे रतिलक्ष्म्योरी उः शिवे रक्षकाद्य ऊः[१] ॥

ऋ शब्दे चादितौ ॠस्यात् लृ लॄ ते वै दितौ गुहे ।
ए देवी ऐ योगिनी स्यादो ब्रह्मा औ महेश्वरः ॥ ३ ॥
अङ्कामः अः प्रशस्तः स्यात्[२] को ब्रह्मादौ कु कुत्सिते ।
खं शून्येन्द्रियं खङ्गो गन्धर्व्वे च विनायके ॥ ४ ॥

गङ्गीते गो गायने स्याद् घो घण्टा किङ्किणीमुखे । ताड़ने ङश्च विषये स्पृहायाञ्चैव भैरवे ॥
चो दुर्जने निर्म्मले छश्छेदे जिर्ज्जयने तथा । जं गीते झः प्रशस्ते स्याद् बले[३] ञो गायने च टः॥
ठश्चन्द्रमण्डले शून्ये शिवे चोद्बन्धने मतः । डश्च रुद्रे ध्वनौ त्रासे ढकायां ढो ध्वनौ मतः ॥
णो निष्कर्षे निश्चये च तश्चौरे क्रोडपुच्छके । भक्षणे थश्छेदने दो धारणे शोभने मतः ॥८॥
धो धातरि च धूस्तूरे नो वृन्दे सुगते तथा । प उपवने विख्यातः फश्च झञ्झानिले मतः ॥

फुः फुत्कारे निष्फले च विः पक्षी भश्च तारके ।
मा श्रीर्म्मानञ्च माता स्याद्यागे यो यातृवीरणे ॥ १० ॥

रो वह्नौ च लः शक्रे च लो विधातरि ईरितः । विश्लेषणे वो वरुणे शयने शश्च शं सुखे ॥

षः श्रेष्ठे सः परोक्षे च सा लक्ष्मीः सं कचे मतः ।
धारणे हस्तथा रुद्रे क्षः क्षत्त्रे चा रे मतः ॥ १२ ॥

क्षो नृसिंहे हरौ तद्वत् क्षेत्रपालकयोरपि । मन्त्र एकाक्षरो देवो भुक्तिमुक्तिप्रदायकः ॥१३॥
हैहयशिरसे नमः सर्व्वविद्याप्रदो मनुः । अकाराद्यास्तथा मन्त्रा मातृकामन्त्र उत्तमः ॥१४॥
एकपद्मे ऽर्च्चयेदेतान्नत्र दुर्गाञ्च पूजयेत् । भगवती कात्यायनी कौशिकी चाथ चण्डिका ॥१५॥

प्रचण्डा सुरनायिका उग्रा पार्व्वती दुर्गया ।
ओं चण्डिकायै विद्महे भगवत्यै धीमहि तन्नो दुर्गा प्रचोदयात् ।
क्रमादि तु षड़ङ्गं स्याद् गणो गुरुर्गुरुः क्रमात् ॥ १६ ॥

अजितापराजिता चाथ जया च विजया ततः । कात्यायनी भद्रकाली मङ्गला सिद्धिरेवती ॥
सिद्धादिवटुकाः पूज्या हेतुकश्च कपालिकः । एकपादो भीमरूपो दिक्पालान्मध्यतो नव ॥१८॥

---

१. ब्रह्मकाद्य ऊरिति ख. ।
२. प्रशान्तः स्यादिति ख. ।
३. धने इति ञ. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ह्रीं दुर्गे दुर्गे रक्षणि स्वाहा मन्त्रार्थसिद्धये।
गौरी पूज्या च धर्म्माद्याः स्कन्दाद्याः शक्तयो यजेत्॥ १९॥
प्रज्ञा ज्ञाना क्रिया वाचा वागीशी ज्वालिनी तथा।
कामिनी काममाला च इन्द्राद्याः शक्तिपूजनं॥ २०॥

ओं गं स्वाहा मूलमन्त्रोऽयं गं वा गणपतये नमः। षड्ङ्गो रक्तशुक्लश्च दन्ताक्षपरशूत्कटः॥
समोदकोऽथ[१] गन्धादिगन्धोल्कायेति च क्रमात्। गजो महागणपतिर्म्महोल्कः पूज्य एव च॥

कुष्माण्डाय एकदन्तत्रिपुरान्तकाय श्यामदन्तविकटहरहासाय।
लम्बनाशाननाय पद्मदंष्ट्राय मेघोल्काय धूमोल्काय।
वक्रतुण्डाय विघ्नेश्वराय विकटोत्कटाय गजेन्द्रगमनाय॥
भुजगेन्द्रहाराय शशाङ्कधराय गणाधिपतये स्वाहा॥

एतैर्म्मनुभिः स्वाहान्तैः पूज्य तिलहोमादिनार्थभाक्। कार्य्यैर्वा वीजसंयुक्तैस्तैराद्यैश्च नमोऽन्तकैः॥
मन्त्राः पृथक् पृथग्वा स्युर्द्विरेफद्विर्मुखाक्षिणः[२]*।
कात्यायनं स्कन्द आह यत्तद्व्याकरणं वदे॥ २४॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये एकाक्षराभिधानं नामाष्टचत्वारिंशदधिक-
त्रिशततमोऽध्यायः।

ऊनपञ्चाशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः

व्याकरणम्।

स्कन्द उवाच

वक्ष्ये व्याकरणं सारं सिद्धशब्दस्वरूपकम्। कात्यायनविबोधाय बालानां बोधनाय च॥१॥
प्रत्याहारादिकाः संज्ञाः शास्त्रसंव्यवहारगाः।

अ इ उ ण ऋ लृ क ए ङ ऐ औ च ह य व र ट ण न ञ म ङ ण नम झ भ ञ घ ध ष ज ब ग ड द श ख फ छ ठ थ च ट त क प य श ष स र ह ल इति प्रत्याहारः।

उपदेश इद्धलन्तं भवेदजनुनासिकः॥ २॥
आदिवर्णो गृह्यमाणोऽप्यन्त्येनेता सहैव तु। तयोर्मध्यगतानां स्याद् ग्राहकः स्वस्य तद्यथा॥

---

१. सगे देशेऽयेति ज.। २. द्वे द्वे रेखाय दक्षिणा इति ज.।
* द्विरेफद्विर्मुखाक्षिण इत्ययं पाठ आदर्शदोषेण समीचीनो भवितुं नार्हति।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अण् एङ् अट् यङ् छव् झम् भप् अक् इक् अण् इण् यण् परेण णकारेण । अम् यम् ङम् अच् इच् ऐच् अय् मय् झय् खय् जव् झव् खव् चव् शव् अस् हस् वस् भस् अल् हल् बल् रल् झल् सल् इति प्रत्याहारः ।

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये व्याकरणे प्रत्याहारो नामोनचत्वारिंशदधिक-त्रिशततमोऽध्यायः ।

पञ्चाशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः

सन्धिसिद्धरूपम् ।

स्कन्द उवाच

वक्ष्ये सन्धिसिद्धरूपं स्वरसन्धिमथादितः । दण्डाग्रं सागता दधीदं नदीहते मधूदकं ॥१॥
पितृषभः लृकारश्च तवेदं सकलोदकं । अर्द्धर्चोऽयं तवल्कारः सैषा सैन्द्री तवौदनम् ॥२॥
खट्वौघोऽभवदित्येवं व्यसुधीर्वस्वलङ्कृतं । पित्रर्थोपवनं दात्री नायको लावको नयः ॥३॥
तइह तयिहेत्यादि तेऽत्र योत्र जलेऽकजं । प्रकृतिर्नो अहो एहि अ अवेहि इ इन्द्रकं ॥४॥
उ उत्तिष्ठ कवी एतौ वायू एतौ वने इमे । अमी एते यज्ञभूते एहि देव इमन्नय ॥५॥

वक्ष्ये सन्धिं व्यञ्जनानां वाग्यतोऽजेकमातृकः ।
षडेते तदिमे वादिवाङ्नीतिः षण्मुखादिकम् ॥ ६ ॥

वाङ्मनसं वाग्भावादिर्वाक् श्लक्ष्णं तच्छरीरकं । तज्जुनाति तच्चरेच्च क्रुङ्ङास्ते सुगण्णिह ॥
भवांश्चरन भवांश्छात्रो भवांष्टीका भवांष्ठकः । भवांस्तीर्थं भवांस्थेयात् भवांल्लेखा भवाञ्जयः॥

भवाञ्छेते भवाञ्श्शेते भवाञ्शेते भवाण्डीनः ।
त्वम्भर्त्ता त्वङ्करोष्यादिः सन्धिर्ज्ञेयो विसर्गजः ॥ ९ ॥
कश्छिन्द्यात् कश्चरेत् कष्टः कष्ठः कस्थश्च कश्चलेत् ।
क ✕ खनेत् क ✕ करोति स्म क ᳲ पठेत् ᳲ फलेत वा ॥ १० ॥
कश्श्वशुरः कः श्वशुरः कस्सावरः कः सावरः ।
कः फलेत कः शयिता कोऽत्र योधः क उत्तमः ॥ ११ ॥

देवा एते भो इह सोदरा यान्ति भगो व्रज । सुपूः सुदूरात्रिरत्र वायुर्याति पुनर्न हि ॥१२॥
पुनरेति स यातीह एष याति क ईश्वरः । ज्योतीरूपं तवच्छत्रं म्लेच्छधीश्छिद्रमच्छिदत् ।

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये व्याकरणे सन्धिसिद्धरूपं नाम पञ्चाशदधिक-त्रिशततमोऽध्यायः ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

एकपञ्चाशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः

सुब्विभक्तिसिद्धरूपम् ।

स्कन्द उवाच

विभक्तिसिद्धरूपञ्च कात्यायन वदामि ते । द्वे विभक्ती सुप्तिङश्च सुपः सप्त विभक्तयः ॥१॥
सुऔजसिति प्रथमा अमौट्शसो द्वितीया । टाभ्यां भिसिति तृतीया ङेभ्यांभ्यसश्चतुर्थ्यपि ॥

ङसिभ्यांभ्यसः पञ्चमी स्यात्ङसोसामिति षष्ठ्यपि ।
ङिओस्सुबिति सप्तमी स्यात् स्युः प्रातिपदिकात्पराः ॥ ३ ॥

द्विविधं प्रातिपदिकं ह्यजन्तञ्च हलन्तकं । प्रत्येकं त्रिविधं तन् स्यात् पुस्त्री च नपुंसकं ॥
दर्श्यन्ते नायकास्तेषामनुक्तानाञ्च वीर्य्यतः । वृक्षः सर्व्वोऽथ पूर्व्वश्च प्रथमश्च द्वितीयकः ॥
तृतीयः खण्डपा वह्निः सखापतिरहर्पतिः । पटुर्नीर्ग्रामणीन्द्रश्च खलपूर्म्मित्रभूः स्वभूः ॥६॥

सुश्रीः सुधीः पिता भ्राता ना कर्त्ता क्रोष्टुनप्तृकौ ।
सुरा रा गौस्तथा द्यौर्ग्लौः स्वरान्ताः पुंसि नायकाः ॥ ७ ॥
सुवाक् त्वक् पृषत् सम्राट् जन्मभाक् च अवेदपि ।
आपो मरुद्भवन् ,दीव्यन् भवांश्च मघवान् पिबन् ॥ ८ ॥

भगवानघवानर्व्वान्वह्निमत् सर्व्ववित्सुपृत् । सुसीमा कुण्डी राजा च श्वा युवा मघवा तथा ॥
पूषा सुकर्म्मा यज्वा च सुवर्म्मा च सुधर्म्मणा । अर्य्यमा वृत्रहा पन्थाः सुककुदादिपञ्च च ॥
अशान् सुतांश्च पञ्चाद्याः सुगीः सुराः सुपूरपि । चन्द्रमाः सुवचाः श्रेयान् विद्वांश्चोशनसा सह ॥

पेचिवान् गौरवानड्वान् गोधुङ्मित्रद्रुहौ श्वलिट् ।
स्त्रियां जाया जरा बाला एड़का सहौ वृद्धया ॥ १२ ॥

क्षत्रिया बहुराजा च बहुदा माऽथ बालिका । माया कौमुदगन्धा च सर्व्वा पूर्व्वा सहान्यया ॥

द्वितीया च तृतीया च बुद्धिः स्त्री श्रीर्न्नदी सुधीः ।
भवन्ती चैव दीव्यन्ती भाती भान्ती च यान्त्यपि ॥ १४ ॥

शृण्वती तुदती कर्त्री तुदन्ती कुर्वती मही । रुन्धती क्रीड़ती दान्ती पालयन्ती सुराण्यपि ॥
गौरी पुत्रवती नीश्च वधूर्देवतया भुवा । तिस्रो द्वे कति वर्षाभूः स्वसा माता वरा च गौः ॥

नौर्वाक्त्वक्प्राच्यप्राचीति तिरश्ची समुदीच्यपि ।
शरद्विद्युत सरिद्योपित् अग्निवित् ससपदा दृशत् ॥ १७ ॥
यैषा सा वेदवित्संविन् बह्वी राज्ञी त्वया मया ।
सीमा पञ्चादयो राजी धूः पूश्चैव दिशा [1]गिरा ॥ १८ ॥

चतस्रो विदुषी चैव केयं दिक् दृक् च तादृशी । असौ स्त्रियां नायकाश्च नायकाश्च नपुंसके ॥

---

१. दिवेति ज. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कुण्डं सर्वं सोमपञ्च दधि वारि खलप्वथ । मधु त्रपु कर्त्तृ भक्तृ अतिवक्तृ पयः पुरः ॥

प्राक्प्रत्यक् च तिर्य्यगुदक् जगद् जाग्रत्तथा सकृन् ।
सुसम्पच्च सुदण्डीद्द अदः किञ्चेदमित्यपि ॥ २१ ॥

षट्सर्पिः श्रेयश्चत्वारि अदोऽन्ये हीदृशाः परे । एतेभ्यः प्रथमादयश्च स्युः प्रातिपदिकात्पराः॥
धातुप्रत्ययहीनं यत्स्यात् प्रातिपदिकन्तु तत् । प्रातिपदिकात् स्वलिङ्गार्थवचने प्रथमा भवेत् ॥
सम्बोधने च प्रथमा उक्ते कर्म्मणि कर्त्तरि । कर्म्म यत् क्रियते तत्स्यात् द्वितीया कर्मणि स्मृता ॥
क्रियते येन करणं कर्त्ता यश्च करोति सः । अनुक्ते तिङ्कृत्तद्धितैस्तृतीया करणे भवेत् ॥
कारके कर्त्तरि च सा सम्प्रदाने चतुर्थ्यपि । यस्मै दित्सा धारयते सम्प्रदानं तदीरितं ॥२६॥

अपादानं यतोऽपैति आदत्ते च भयं यतः ।
अपादाने पञ्चमी स्यात् स्वस्वाम्यादौ च षष्ठ्यपि ॥ २७ ॥

आधारो योऽधिकरणं विभक्तिस्तत्र सप्तमी । एकार्थे चैकवचनं द्व्यर्थे द्विवचनं भवेत् ॥२८॥
बहुषु बहुवचनं सिद्धरूपाण्यथो वदे । वृक्षः सूर्य्योऽम्बुवाहोऽर्के हेरवे हेद्विजातयः ॥२६॥
विप्रौ गजान्महेन्द्रेण यमाभ्यामनलैः कृतं । रामाय मुनिवर्य्याभ्यां केभ्यो धर्म्मात् हरौ रतिः ॥
शराभ्यां पुस्तकेभ्यश्च अर्थस्येश्वरयोर्गतिः । बालानां सज्जने प्रीतिर्हंसयोः कमलेषु च ॥३१॥
एवं काममहेशाद्याः शब्दा ज्ञेयाश्च वृक्षवत् । सर्वे विश्वे च सर्वस्मै सर्वस्मात्कतरो मतः ॥३२॥
सर्वेषां स्वञ्च विश्वस्मिन् शेषं रूपञ्च वृक्षवत् । एवञ्चोभयकतरकतमान्यतरादयः ॥३३॥
पूर्व्वे पूर्व्वाश्च पूर्वस्मै पूर्वस्मात् सुसमागतः । पूर्व्वे बुद्धिश्च पूर्वस्मिन् शेषरूपन्तु सर्ववत् ॥
एवं परावराद्याश्च दक्षिणोत्तरकान्तराः । अपरश्चाधरो नेमाः प्रथमाः प्रथमेऽर्कवत् ॥३५॥
एवं चरमायतया अल्पार्द्धा नेमआदयः । द्वितीयस्मै द्वितीयाय द्वितीयस्मात् द्वितीयकात् ॥
द्वितीयस्मिन् द्वितीये च तृतीयश्च तथाऽर्क्कवत् । सोमपाः सोमपौ ज्ञेयौ सोमपाः सोमपां व्रज॥
कीलालपौ सोमपश्च सोमपा सोमपे दद । सोमपाभ्यां सोमपाभ्यः सोमपः सोमपोः कुलं ॥

एवं कीलालपाद्याः स्युः कविरग्निस्तथाऽरयः ।
हेकवे कविमग्नी तान् हरीन् सात्यकिना हृतं ॥ ३६ ॥

रविभ्यां रविभिर्देहि वह्नये यः समागतः । अग्नेरग्न्योस्तथाग्नीनां कवौ कव्योः कविष्वऽथ ॥
एवं सुसृतिरभ्रान्तिः सुकीर्त्तिः सुधृतिस्तथा । सखा सखायौ सखायः हेसखे व्रज सत्पतिं ॥
सखायश्च सखायौ च सखीन् सख्या गतो दद । सख्ये सख्युश्च सख्यश्च सख्योः शेषः कवेरिव॥
पत्या पत्ये च पत्युश्च पत्युः पत्योस्तथाऽग्निवत् । द्वौ द्वौ द्वाभ्यां द्वाभ्यां द्वित्वाद्यर्थे द्वयोर्द्वयोः॥
त्रयस्त्रींश्च त्रिभिस्त्रिभ्यस्त्रयाणाञ्च त्रिषु क्रमात् । कविवत् कतिकतीति शेषं बहुवचनं स्मृतम् ॥

नीर्नियौ च नियो हेनीः नियं नियौ नियो निया ।
नीभ्यां नीभिर्नियै नीभ्यः नियान्नियि नियोस्तथा ॥ ४५ ॥

सुश्रीः सुधीः प्रभृतयो ग्रामणीः पूजयेद्धरिं । ग्रामण्यौ ग्रामण्यो ग्रामण्यं ग्रामण्या ग्रामणीभिः॥
ग्रामण्यो ग्रामण्यामेवं सेनानीप्रमुखाः सुभूः । सुभुवौ च स्वयम्भुवः स्वयम्भुवश्च स्वयम्भुवः॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

स्वयम्भुवा स्वयम्भुवि एवं प्रतिभुवादयः ।
खलपूः खलप्वौ श्रेष्ठौ खलप्वश्च खलप्वि च ॥ ४८ ॥

एवं शरपूमुखाः स्युः क्रोष्टा क्रोष्टार ईरिताः । क्रोष्टूंश्च कोष्टुना क्रोष्ट्रा क्रोष्टूनां कोष्टरीदृशं ॥
पिता पितरौ पितरः हेपितः पितरौ शुभौ । पितॄन् पितुः पितुः पित्रोः पितॄणां पितरीदृशं ॥
एवं भ्राता च जामातृमुखा नॄणां नृणां तथा । कर्त्ता कर्त्तारौ कर्त्तॄंश्च कर्त्तॄणां कर्त्तरीदृशं ॥
पितृवच्चैवमुद्गाता स्वसा नप्त्रादयः स्मृताः । सुराः सुरायौ सुरायः सुरायाञ्च सुराय्यपि ॥

गौः गावौ गाञ्ज्ञा गवा च गोर्गवोश्च गवां गवि ।
एव द्यौर्ग्लौश्चापि तथा स्वरान्ताः पुंसि नायकाः ॥ ५३ ॥
सुवाक् सुवाचौ सुवाचा सुवाग्भ्याञ्च सुवाक्ष्वपि ।
एवं दिक्प्रमुखाः प्राङ्च प्राञ्चौ प्राञ्चश्च भो व्रज ॥ ५४ ॥
प्राग्भ्यां प्राग्भिः प्राचाञ्च प्राचि च प्राङ्सु प्राङ्सु प्राङ्क्ष्वपि ।
एवं ह्युदङुदीची वा सम्यङ् प्रत्यक्समीच्यपि ॥ ५५ ॥
तिर्य्यङ्तिरश्च सध्र्यङ् च विश्वद्र्यङ् पूर्ववत् स्मृताः ।
अदद्र्यङदमुयङ् स्यात् तथामुमुयङीरितः ॥ ५६ ॥
अदद्र्यञ्चो ह्यमुद्रीचः अदद्र्यग्भ्याञ्च पूर्व्ववत् ।
तत्त्वतृट् तत्त्वतृषौ च तत्त्वतृड्भ्यां समागतः ॥ ५७ ॥

तत्त्वतृपि तत्त्वतृट्सु एवं काष्ठतडादयः । भिषक् भिषग्भ्यां भिषजि जन्मभागादयस्तथा ॥
मरुत् मरुद्भ्यां मरुति एवं शत्रुजिदादयः । भवान् भवन्तौ भवतां भवंश्चैव भवत्यपि ॥५९॥
महान्महान्तौ महतामेवं भगवदादयः । एवं मघवान्मघवन्तौ अग्निचिच्चाग्निचित्यपि ॥६०॥
अग्निचित्स्वेवमेवान्यत् वेदवित्तत्त्ववित्त्वपि । वेदविदामेवमन्यत् यः समस्तेन सर्व्ववित् ॥
राजा राजानौ राज्ञः राज्ञि राजनि राजन् । यज्वा यज्वानस्तद्वन् करी दण्डी च दण्डिनी ॥

पन्थाः पन्थानौ च पथः पथिभ्यां पथि चेदृशम् ।
मन्था ऋभुक्षाः पथ्याद्याः पञ्च पञ्च च पञ्चभिः ॥ ६३ ॥

प्रतान् प्रतानौ प्रतान्भ्यां हेप्रतांश्च सुशर्म्मणः । आपः अपः अद्भिरप्येवं प्रशांश्चैव प्रशाम्यपि ॥
कः केन सर्व्ववत् केषु अयं चेमे इमास्त्रयः । अनेन चाभ्यामेभिश्च अस्मै चेभ्यः स्वमस्य च ॥
अनयोरेषामेषु स्याच्चत्वारश्चतुरस्तथा । चतुर्णाञ्च चतुर्ष्वेऽस्ति सुगीः श्रेष्ठः सुगिर्य्यपि ॥

सुद्यौः सुदिवौ सुद्युभ्यां विड्विषौ विट्सु यादृशः ।
यादृग्भ्याञ्चैव विड्भ्याञ्च षट् षट् षण्णाञ्च षट्स्वपि ॥ ६७ ॥

सुवचाः सुवचसा च सुवचोभ्यामथेदृशम् । हे सुवचो हे उशनन् उशना वोशनस्यपि ॥६८॥
पुरुदंशा अनेहा हेविद्वन् विद्वांस उत्तमाः । विदुषे नमो विद्वद्भ्यां विद्वत्सु च वभूविवान् ॥

एवञ्च पेचिवान् श्रेयान् श्रेयांसौ श्रेयसस्तथा ।
असौ अमू अमी श्रेष्ठा अमुं अमूनिहामुना ॥ ७० ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अमीभिरमुस्मै वामुस्मादमुष्य वामुयोस्तथा ।
अमीषाममुस्मिन्नित्येवं गोधुक् गोधुग्भिरागतः ॥ ७१ ॥

गोधुद्विवत्येवमन्येपि मित्रद्रुहो मित्रद्रुहा । मित्रध्रुग्भ्यां मित्रध्रुग्भिरेवं चित्तद्रुहादयः ।.७२॥

स्वलिट् स्वलिड्भ्यां स्वलिहि अनड्वाननडुत्सु च ।
अजन्ताश्च हलन्ताश्च पुंस्यथोऽथ स्त्रियां वदे ॥ ७३ ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये व्याकरणे पुंलिङ्गशब्दसिद्धरूपं नामैकपञ्चाशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ।

द्विपञ्चाशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः

स्त्रीलिङ्गशब्दसिद्धरूपम् ।

स्कन्द उवाच

रमा रमे रमाः शुभा रमां रमे रमास्तथा । रमया च रमाभ्याञ्च रमाभिः कृतमव्ययं ॥१॥
रमायै च रमाभ्याञ्च रमाया रमयोः शुभं । रमाणाञ्च रमायाञ्च रमास्वेवं कलादयः ॥२॥
जरा जरसौ जर इति जरसश्च जरा जरां । जरसश्च जरास्वेवं सर्व्वा सर्व्वे च सर्व्वया ॥३॥

सर्व्वस्यै देहि सर्व्वस्याः सर्व्वस्याः सर्व्वयोस्तथा ।
शेषं रमावद्रूपं स्याद् द्वे द्वे तिस्रश्च तिसृणां ॥ ४ ॥
बुद्धीर्बुद्ध्या बुद्धये च बुद्ध्यै बुद्धेश्च हेमते ।
कविवत्स्यान्मुनीनाञ्च नदी नद्यौ नद्यौ नदीः ॥ ५ ॥

नद्या नदीभिर्नद्यै च नद्याञ्चैव नदीषु च । कुमारी जृम्भणीत्येवं श्रीः श्रियौ च श्रियः श्रिया ॥

श्रियै श्रिये स्त्री स्त्रियञ्च स्त्रीश्च स्त्रियः स्त्रिया स्त्रियै ।
स्त्रियाः स्त्रीणां स्त्रियाञ्च ग्रामण्यां धेन्वै च धेनवे ॥ ७ ॥
जम्बूर्जम्ब्वौ च जम्बूश्च जम्बूनाञ्च फल्गम्पिव ।
वर्षाभ्वौ च पुनर्भ्वौ च मातॄर्व्वापि च गौश्च नौः ॥ ८ ॥
वाग्वाचा वाग्भिश्च वाक्षु स्रग्भ्यां स्रजि स्रजोस्तथा ।
विद्वद्भ्याञ्चैव विद्वत्सु भवती स्याद् भवन्त्यपि ॥ ९ ॥

दीव्यन्ती भाती भान्ती च तुदन्ती च तुदत्यपि । रुदती रुन्धती देवी गृह्णती चोरयन्त्यपि ॥

दृषत् दृषद्भ्यां दृषदि विशेषविदुषी कृतिः ।
समित् समिद्भ्यां समिधि सीमा सीम्नि च सीमनि ॥ ११ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दामनीभ्यां ककुद्भ्याञ्च केयमाभ्यां तथासु च ।
गीर्भ्याञ्चैव गिरा गीर्षु सुभ्रूः सुपूः पुरा पुरि ॥ १२ ॥
द्यौर्द्युभ्यां दिवि द्युषु तादृश्या तादृशी दिशः ।
यादृश्यां यादृशी तद्वत् सुवचोभ्यां सुवचः स्वपि ॥
असौ चामूममू चामूरमूभिरमुयाऽमुयोः ॥ १३ ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये व्याकरणे स्त्रीलिङ्गशब्दसिद्धरूपं नाम द्विपञ्चाशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ।

त्रिपञ्चाशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः

नपुंसकशब्दसिद्धरूपम् ।

स्कन्द उवाच

नपुंसके किं के कानि किं के कानि ततो जलं ।
सर्वं सर्वे च पूर्वाद्याः सोमपं सोमपानि च ॥ १ ॥

ग्रामणि ग्रामणिनी च ग्रामणि ग्रामणीन्यपि । वारि वारिणी वारीणि वारिणां वारिणीदृशं ॥
शुचये शुचिने देहि मृदुने मृदवे तथा । त्रपु त्रपुणि त्रपुणाञ्च खलपूनि खलप्वि च ॥३॥
कर्त्त्रा च कर्तृणे कर्त्त्रे अतिर्य्यतिरिणान्तथा । अभिन्यभिनिनी चैव सुवचांसि सुवाच्च च ॥

यद्यतत्विमे तत् कर्म्माणि इदञ्चेमे त्विमानि च ।
ईदृक्त्वदोऽमुनी अमूनि अमुना स्यादमीषु च ॥ ५ ॥

अहमावां वयं मां वै आवामस्मान्मया कृतं । आवाभ्याञ्च तथास्माभिर्म्मह्यमस्मभ्यमेव च ॥
मदावाभ्यां मदस्मच्च पुत्रोऽयं मम चावयोः । अस्माकमपि चास्मासु त्वं युवां यूयमीजिरे ॥

त्वां युवाञ्च युष्मांश्च त्वया युष्माभिरीरितं ।
तुभ्यं युवाभ्यां युष्मभ्यं त्वत् युवाभ्याञ्च युष्मत् ॥ ८ ॥

तव युवयोर्युष्माकं त्वयि युष्मासु भारती । उपलक्षणमत्रैव अज्झलन्ताश्च ते स्मृताः ॥९॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये व्याकरणे नपुंसकशब्दसिद्धरूपं नाम त्रिपञ्चाशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

चतुःपञ्चाशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः

कारकम् ।

स्कन्द उवाच

कारकं सम्प्रवक्ष्यामि विभक्त्यर्थसमन्वितं । ग्रामोऽस्ति हेमहार्केह नौमि विष्णुं श्रिया सह ॥
स्वतन्त्रः कर्त्ता विद्यान्तं कृतिनः समुपासते । हेतुकर्त्तालम्भयते हितं वै कर्म्मकर्त्तरि ॥२॥
स्वयं भिद्येत् प्राकृतधीः स्वयञ्च छिद्यते तरुः । कर्त्ताऽभिहित उत्तमः कर्त्ताऽनभिहितोऽधमः ॥
कर्त्ताऽनभिहितो धर्म्मः शिष्ये व्याख्यायते यथा । कर्त्ता पञ्चविधः प्रोक्तः कर्म्म सप्तविधं शृणु ॥
ईप्सितं कर्म्म च यथा श्रद्धाति हरिं यतिः । अनीप्सितं कर्म्म यथा अहिं लङ्घयते भृशं ॥५॥
नैवेप्सितं नानीप्सितं दुग्धं सम्भक्षयन्त्रजः । भक्षयेदप्यकथितं गोपालो दोग्धि गां पयः ॥६॥
कर्त्तृकर्माऽथ गमयेच्छिष्यं ग्रामं गुरुर्यथा । कर्म्म चाभिहितं पूजा क्रियते वै श्रिये हरेः ॥७॥
कर्म्मानभिहितं स्तोत्रं हरेः कुर्य्यात्तु सर्व्वदं । करणं द्विविधं प्रोक्तं वाह्यमाभ्यन्तरं तथा ॥८॥
चक्षुषा रूपं गृह्णाति वाह्यं दात्रेण तल्लुनेत । सम्प्रदानं त्रिधा प्रोक्तं प्रेरकं ब्राह्मणाय गां ॥९॥
नरो ददाति नृपतये दासन्तदनुमन्तृकं । अनिराकर्त्तृकं भर्त्रे दद्यात् पुष्पाणि सज्जनः ॥१०॥
अपादानं द्विधा प्रोक्तं चलमश्वात्तु धावतः । पतितश्चाचलं ग्रामादागच्छति स वैष्णवः ॥११॥
चतुर्द्धा चाधिकरणं व्यापकन्दध्नि वै घृतम् । तिलेषु तैलं देवार्थमौपश्लेषिकमुच्यते ॥१२॥
गृहे तिष्ठेत् कपिर्वृक्षे स्मृतं वैषयिकं यथा । जले मत्स्यो वने सिंहः स्मृतं सामीप्यकं यथा ॥
गङ्गायां घोषो वसति औपचारिकमीदृशं । तृतीया वाथ वा षष्ठी स्मृताऽनभिहिते तथा ॥१४॥
विष्णुः सम्पूज्यते लोकैर्गन्तव्यन्तेन तस्य वा । प्रथमाऽभिहितकर्त्तृकर्म्मणोः प्रणमेद्धरिम् ॥१५॥

हेतौ तृतीया चान्नेन वसेद् वृक्षाय वै जलं ।
चतुर्थी तादर्थ्येऽभिहिता पञ्चमी पर्य्युपाङ्मुखैः ॥ १६ ॥

योगे वृष्टः परि ग्रामाद्देवोऽयं बलवन् पुरा । पूर्व्वो ग्रामादृते विष्णोर्न मुक्तिरितरो हरेः ॥१७॥
पृथग्विनाद्यैस्तृतीया पञ्चमी च तथा भवेत । पृथग्ग्रामाद्विहारेण बिना श्रीश्च श्रिया श्रियः ॥
कर्म्मप्रवचनीयाख्यैर्द्वितीया योगतो भवेत् । अन्वर्ज्जुनञ्च योद्धारो ह्यभितो ग्राममीरितं ॥१९॥
नमः स्वाहास्वधास्वस्तिवषडाद्यैश्चतुर्थ्यपि । नमो देवाय ते स्वस्ति तुमर्थाद्भाववाचिनः ॥
पाकाय पक्तये याति तृतीया सहयोगके । हेत्वर्थे कुत्सितेऽङ्गे सा तृतीया च विशेषणे ॥२१॥
पिताऽगात्सह पुत्रेण काणोऽक्ष्णा गदया हरिः । अर्थेन निवसेद्भृत्यः काले भावे च सप्तमी ॥

विष्णौ नते भवेन्मुक्तिर्वसन्ते स गतो हरिम् ।
नृणां स्वामी नृषु स्वामी नृणामीशः सताम्पतिः ॥ २३ ॥
नृणां साक्षी नृषु साक्षी गोषु नाथो गवाम्पतिः ।
गोषु सूतो गवां सूतो राज्ञां दायादकोऽस्विह ॥ २४ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अन्नस्य[1] हेतोर्वसति षष्ठी स्मृत्यर्थकर्मणि ।
मातुः स्मरति गोप्तारं नित्यं स्यान् कर्तृकर्मणोः ॥
अपां भेत्ता तत्र कृतिर्न निष्ठादिषु षष्ठ्यपि ॥ ४५ ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये व्याकरणे कारकं नाम चतुःपञ्चाशदधिक-
त्रिशततमोऽध्यायः ।

पञ्चपञ्चाशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः

समासः ।

स्कन्ध उवाच

षोढा समासं वक्ष्यामि अष्टाविंशतिधा पुनः । नित्यानित्यविभागेन लुगलोपेन च द्विधा ॥
कुम्भकारश्च नित्यः स्याद्धेमकारादिकस्तथा । राज्ञः पुमान् राजपुमान् नित्योऽयञ्च समासकः॥
कष्टश्रितो लुक्समासः कण्ठेकालादिकस्त्वलुक् । स्याद्दष्ट्या तत्पुरुषः प्रथमाद्यसुपा सह ॥
प्रथमातत्पुरुषोऽयं पूर्वं कायस्य विग्रहे । पूर्वकायोऽपरकायो ह्यधरोत्तरकायकः ॥४॥
अर्द्धं कणाया अर्द्धकणा भिक्षातूर्य्यमथेदृशम् । आपन्नजीविकस्तद्वत् द्वितीया चाधराश्रितः ॥
वर्षम्भोग्यो वर्षभोग्यो धान्यार्थश्च तृतीयया । चतुर्थी स्याद्विष्णुबलिर्वृकभीतिश्च पञ्चमी ॥६॥
राज्ञः पुमान् राजपुमान् षष्ठी वृक्षफलं तथा । सप्तमी चाक्षशौण्डोऽयमहितो नञ्समासकः ॥
कर्मधारयः सप्तधा नीलोत्पलमुखाः स्मृताः । विशेषणपूर्वपदो विशेष्योत्तरतस्तथा ॥८॥
वैयाकरणखसूचिः शीतोष्णं द्विपदं शुभम् । उपमानपूर्वपदः शङ्खपाण्डर इत्यपि ॥९॥
उपमानोत्तरपदः पुरुषव्याघ्र इत्यपि । सम्भावनापूर्वपदो गुणवृद्धिरितीदृशम् ॥१०॥
गुण इति वृद्धिर्वाच्या सुहृदेव सुबन्धुकः । अवधारणपूर्वपदो बहुव्रीहिश्च सप्तधा ॥११॥
द्विपदश्च बहुव्रीहिरारूढभवनो नरः । अर्चिताशेषपूर्व्वोऽयं वद्धङ्त्रिः परिकीर्त्तितः ॥१२॥
एते विप्राश्चोपदशाः सङ्ख्योत्तरपदस्त्वयम् । सङ्ख्योभयपदो यद्वद्द्वित्रा द्व्येकत्रयो नरः ॥
सहपूर्वपदोऽयं स्यात् समूलोद्धृतकस्तरुः । व्यतिहारलक्षणार्थः केशाकेशि नखानखि ॥

दिग्लक्ष्या स्याद्दक्षिणपूर्व्वा द्विगुराभाषितो द्विधा ।
एकवद्भावि द्विश्रृङ्गं पञ्चमूली त्वनेकधा ॥ १५ ॥

द्वन्द्वः समासो द्विविधो हीतरेतरयोगकः । रुद्रविष्णू समाहारो भेरीपटहमीदृशम् ॥१६॥
द्विधाख्यातोऽव्ययीभावो नामपूर्वपदो यथा । शाकस्य मात्रा शाकप्रति यथाऽव्ययपूर्व्यकः ॥

---

१. अर्थस्येति ज. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उपकुम्भञ्चोपरथ्यं प्राधान्येन चतुर्विधः। उत्तरपदार्थमुख्यो द्वन्द्वश्चोभयमुख्यकः॥
पूर्वार्थेंशोऽव्ययीभावो बहुव्रीहिश्च वाह्यगः॥ १८॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये व्याकरणे समासो नाम पञ्चपञ्चाशदधिक-
त्रिशततमोऽध्यायः।

षट्पञ्चाशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः

तद्धितम्।

स्कन्द उवाच

तद्धितं त्रिविधं वक्ष्ये सामान्यवृत्तिरीदृशी। ले व्यंसलो वत्सलः स्यादिलचि स्यात्तु फेनिलं॥
लोमशः शे पामनो ने इलचि स्यात्तु पिच्छिलं।
अणि प्राज्ञ आर्च्चकः स्यात् दन्तादुरचि दन्तुरः॥ २॥

रे स्यान्मधुरं सुशिरं रे स्यात् केशर ईदृशः। हिरण्यं ये मालत्रो वे वलचि स्याद्रजस्वलः॥
इनो धनो करी हस्ती धनिकं टिकनोरितं। पयस्त्री त्रिनि मायात्री ऊर्णायुर्युचि ईरितं॥४॥
वाग्मी मिनि आलचि स्याद्वाचालश्चाटचीरितं। फलिनो वर्हिणः केकी वृन्दारकस्तथा कनि॥
आलुचि शीतन्न सहते शोतालुः श्वालुरीदृशः। हिमालुरालुचि स्याच्च हिमं न सहते तथा॥
रूपं वातादुलचि स्याद् वातुलश्चानपत्यके।
वाशिष्ठः कौरवो वासः पाञ्चालः सोस्य वासकः॥ ७॥

तत्र वासो माथुरः स्याद्वेत्त्यधीते च चान्द्रकः। व्युत्क्रमं वेत्ति क्रमकः नरश्चक्राम कौशकः॥
प्रियङ्गूनां भवं क्षेत्रं प्रैयङ्गवीनकं खञि। मौद्गीनं कौद्रवीणञ्च वैदेहश्चानपत्यके॥६॥

इञि दाक्षिर्दाशरथिः कचि नारायणादिकं।
आश्वायनः स्याच्च फञि यचि गार्ग्यश्च वात्सकः॥ १०॥

ढकि स्याद्वैनतेयादिश्चाटकेरस्तथैरकि। ढ्रकि गौधेरको रूपं गौधारश्चारकीरितं॥११॥
क्षत्रियो घे कुलीनः खे ण्ये कौरव्यादयः स्मृताः। यति मूर्द्धन्यमुख्यादिः सुगन्धिरिति रूपकं॥
तारकादिभ्य इतचि नभस्तारकितादयः। अनङि स्याच्च कुण्डाघ्नी पुष्पधन्वसुधन्वनी॥१३॥

चञ्चुपि वित्तचञ्चुः स्याद्वित्तमस्य च शब्दके।
चणपि स्यात् केशचणः रूपे स्यात् पटरूपकम्॥ १४॥

ईयसौ च पटीयान् स्यात् तरप्यन्यतरादिकम्। पचतितराञ्च तरपि तमप्यटतितमामपि॥
मृद्वीतमा कल्पपि स्यादिन्द्रकल्पोऽर्ककल्पकः। राजदेशीयो देशीये देश्ये देश्यादिरूपकम्॥
पटुजातीयो जातीये जानुमात्रञ्च मात्रचि। ऊरुद्वयसो द्वयसचि ऊरुदघ्नञ्च दघ्नचि॥१७॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तयटि स्यात् पञ्चतयः दौवारिकष्ठकीरितं। सामान्यवृत्तिरुक्ताऽश्रव्याख्यश्च तद्धितः॥१८॥
यस्माद्यतस्तसिलि च यत्र तत्र त्रलीरितं। अस्मिन् काले ह्यधुना स्यादिदानीञ्चैव दान्यपि॥

सर्वस्मिन् सर्व्वदा दा स्यात्तस्मिन्काले र्हिलीरितं।
तर्हि होऽस्मिन काल इह कर्हि कस्मिंश्च कालके॥ २०॥
यथा थालि थमि कथं पूर्व्वस्यान्दिशि सञ्चयेत्।
अस्तातिं चैव पूर्व्वस्याः पूर्व्वादिग्रामणीयकाः॥ २१॥

पुरस्तात सञ्चरेद् गच्छेन सद्यस्तुल्येऽहनीरितं। उति पूर्व्वाब्दे च परुत पूर्व्वतरे परार्य्यपि॥
ऐषमोऽस्मिन् संवत्सरे रूपं समसि चेरितं। एद्यवौ परेद्यवि स्यात् परस्मिन्नहनीरितं॥२३॥

अद्यास्मिन्नहनि द्ये स्यात् पूर्व्वेद्युश्च तथैद्युसि।
दक्षिणस्यान्दिशि वसेत् दक्षिणादक्षिणा द्युभौ॥ २४॥

उत्तरस्यान्दिशि वसेदुत्तरादुत्तराद्युभौ। उपरि वसेदुपरिष्टाद् भवेद्रिष्टाति ऊर्द्ध्वकात्॥२५॥

उत्तरेण च पित्रोक्तं आचि च स्याच्च दक्षिणा।
आहौ दक्षिणाहि वसेद् द्विप्रकारं द्विधा च धा॥ २६॥

ध्यमुञि चैकध्यं कुरु त्वं द्वैधन्धमुञि चेदृशं। द्वौ प्रकारौ द्विधा धाचि[1] आसुसुरतरं यथा[2]॥
निपातास्तद्धिताः प्रोक्ताः तद्धितो भाववाचकः। पटोर्भावः पटुत्वन्त्वे पटुता तलि चेरितं॥

प्रथिमा चेमनि पृथोः सौख्यं सुखात् ष्यञीरितम्।
स्तेयं यति च स्तेनस्य ये सख्युः सख्यमीरितं॥ २९॥

कपेर्भावश्च कापेयं सैन्यं पथ्यं यकीरितं। आश्वं कौमारकं चाणि रूपं चाणि च यौवनम्॥

आचार्य्यकं कणि प्रोक्तमेवमन्येपि तद्धिताः॥ ३०॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये व्याकरणे तद्धितसिद्धरूपं नाम षट्पञ्चाशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः।

सप्तपञ्चाशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः

उणादिसिद्धरूपम्।

कुमार उवाच

उणादयोऽभिधास्यन्ते प्रत्यया धातुतः परे।
उणि कारुश्च शिल्पी स्यात् जायुर्म्मायुश्च पित्तकं॥ १॥

गोमायुर्वायुर्वेदेषु बहुलं स्युरुणादयः। आयुः स्वादुश्च हेत्वाद्याः किंशारुर्धान्यशूककः॥२॥

---

१. पाठोऽयं पौनरुक्त्यदोषेण दुष्टः। २. स्वयं सुष्ठुतरा यथेति ज.। अमुमुत्तरा यथेति ट.।
* पाठोऽयं, एतत्पाठस्थलाभिषिक्तपाठान्तरञ्च न सम्यक् प्रतिभाति।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कृकवाकुः कुक्कुटः स्याद् गुरुर्भर्त्ता मरुस्तथा। शयुश्चाजगरो ज्ञेयः स हरायुधमुच्यते ॥३॥
स्वरुद्वेज्रं त्रपुरुसि समसारं फल्गुरीरितं। गृध्रश्च क्नि किरचि मन्दिरं तिमिरं तमः ॥४॥

इलचि सलिलं वारि कल्याणं भण्डिलं स्मृतं।
बुधो विद्वान् कसौ स्याच्च शिविरं गुप्तसंस्थितिः ॥ ५ ॥

ओतुर्विडालश्च तुनि अभिधानादुगादयः। कर्णः कामी च गृहभूर्वास्तुर्जैवातृकः स्मृतः॥

अनड्वान् वहतेर्विनि स्याज्जातौ जीवार्णवौषधं।
नौ वह्निरिननि हरिणः मृगः कामी च भाजनम्[१] ॥ ७ ॥

कम्बोजो भाजनम्भाण्डं सरण्डश्च चतुष्पदः। तरुरेरण्डः सङ्घातो वरूडः साम निर्भरं ॥८॥
स्फारं प्रभूतं स्यान्नान्तप्रत्यये चीरवल्कलं। कातरो भीरुरुग्रस्तु प्रचण्डो जवसं तृणं ॥९॥
जगच्चैव तु भूर्लोको कृशानुर्ज्योतिरर्क्ककः। वर्व्वरः कुटिलो धूर्त्तश्चत्वरश्च चतुष्पथं ॥१०॥
चीवरं भिक्षुप्रावृत्तिरादित्यो मित्र ईरितः। पुत्रः सूनुः पिता तातः पृदाकुर्व्याघ्रवृश्चिके ॥

गर्त्तोऽवटोऽथ भरतो नटोऽपरेप्युणादयः ॥ ११ ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये व्याकरणे उणादिसिद्धरूपं नाम सप्तपञ्चाशदधिक-

त्रिशततमोऽध्यायः।

अष्टपञ्चाशदधिकत्रिशततमोऽध्यायः

तिङ्विभक्तिसिद्धरूपम्।

कुमार उवाच

तिङ्विभक्तिं प्रवक्ष्यामि तथादेशं समासतः। तिङस्त्रिष्वपि वर्त्तन्ते भावे कर्म्मणि कर्त्तरि॥
सकर्म्मकाकर्म्मकाच्च कर्त्तरि द्विपदे स्मृताः। सकर्म्मकात्कर्म्मणि च तदादेशस्तथेरितः ॥२॥
वर्त्तमाने लडाख्यातो विध्याद्यर्थे लिङीरितः। विध्यादौ लोडाशिषि च भूतानद्यतने च लङ्॥

भूते लुङ् लिट् परोक्षेऽथ भाविन्यद्यतने च लुट्।
लिङाशिषि च शेषेऽर्थे लृट् भविष्यति लृङ्भवेत् ॥ ४ ॥
लिङ्निमित्ते क्रियातिपत्तौ परे नवात्मनेपदम्।
पूर्व्वं न परस्मैपदन्तिप्तसन्तीति प्रथमः पुमान् ॥ ५ ॥
सिप्थस्थ मध्यमनरो मिप्वस्मस्चोत्तमः पुमान्।
त आतां अन्तात्मने मुख्यः थासाथां ध्वञ्च मध्यमः ॥ ६ ॥

---

१. पाठोऽयं न साधु सङ्गच्छते।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उत्तम इ वहि महि भूवाद्या धातवः स्मृताः ।
भुविरेधिः पचिर्नन्दिर्ध्वंसिः श्रंसिः पदिस्त्वदिः ॥ ७ ॥

शीङः क्रीड़ो जुहोतिश्च जहातिश्च दधात्यपि । दीव्यतिः स्वपितिर्नहिः सुनोतिर्वसिरेच च ॥
तुदिर्मृशतिर्मुञ्चतिः रुधिर्भुजिस्त्यजिस्तनिः । शवादिके विकरणे मनिश्चैव करोत्यपि ॥९॥

क्रीड़तिर्वृङो ग्रहिश्चोरिः पा नीरर्च्चिश्च नायकाः ।
भुवि स्यात् तिङ् भवति सः भवतस्तौ भवन्ति ते ॥ १० ॥

भवसि त्वं युवां भवथो यूयं भवथ चाप्यहं । भवाम्यावां भवावश्च भवामो ह्येधते कुलं ॥११॥
एधेते द्वे तथैधन्ते एधसे त्वं हि मेधया । एधेथे च समेधध्वे एधे ह्येधावहे धिया ॥१२॥
एधामहे हरेर्भक्त्या पचतीत्यादि पूर्व्ववत् । भूयतेऽनुभूयतेऽसौ भावे कर्म्मणि वै यकि ॥१३॥
बुभूषति सनीत्येवं णिचि भावयतीश्वरं । यङि बोभूयते वाद्यं बोभोति स्याच्च यङ्लुकि ॥
पुत्रीयति पुत्रकाम्यत्येवं पटपटायते । घटयत्यऽथ सनि णिचि बुभूषयति रूपकं ॥१५॥
भवेद्भवेताश्च लिङि भवेयुश्च भवेः परे । भवेतञ्च भवेतैवं भवेयञ्च भवेव च भवेम च ॥१६॥
एधेत एधेयातामेधेरन् मनसा श्रिया । एधेथाश्च एधेयाथामेधेध्वमेधेय एधेवहि एधेमहि ॥
अस्तु तावद्भवतां लोटि भवन्तु भवताद्भव । भवतं भवत भवानि भवाव च भवाम च ॥१८॥
एधतामेधेतामेधन्तामेधै पचावहै पचामहै । अभ्यनन्ददपचतामपचन्नपचस्तथा ॥१९॥
अभवतमभवतापचमपचावापचाम च । ऐधतैधेतामैधध्वं ऐधे चैधामहीरितं ॥२०॥
अभूदभूतामभूवनभूश्चाभूवमेव लुङ् । ऐधिष्टैधिषातां नरावैधिष्ठा ऐधिषीदृशं ॥२१॥
लिटि बभूव बभूवतुः बभूवुश्च बभूविथ । बभूवथुर्बभूव च बभूविव बभूविम ॥२२॥
पेचे पेचाते पेचिरे त्वमेधाञ्चकृषे तथा । एधाञ्चक्राथे पेचिध्वे पेचे पेचिमहे तथा ॥२३॥
लुटि भविता भवितारौ भवितारो हरादयः । भवितासि भवितास्थो भवितास्मस्तथा वयं ॥
पक्ता पक्तारौ पक्तारः पक्तासे त्वं शुभौदनं । पक्ताध्वे पक्ताहे चाहं पक्तास्महे हरेश्वरं ॥२५॥

लिङाशिषि सुखं भूयात् भूयास्तां हरिशङ्करौ ।
भूयासुस्ते च भूयास्त्वं युवां भूयास्तमीश्वरौ ॥ २६ ॥

भूयास्त यूयं भूयासमहं भूयास्म सर्व्वदा । यक्षीष्ट ह्येधिषीयास्तां यक्षीरन्नेधिषीय च ॥
यक्षीवह्येधिषीमहि लिङि चायक्ष्यतेति लृङ् । अयक्ष्येतामयक्ष्यन्तायक्ष्येऽयक्ष्येथां युवां ॥
अयक्ष्यध्वमैधिष्यावह्यैधिष्यामह्यरेर्वयम् । लृटि स्याद्भविष्यतीति एधिष्यामह ईदृशम् ॥
एवं विभावयिष्यन्ति बोभविष्यति रूपकं । घटयेत् पटयेत्तद्वत पुत्रीयति च काम्यति ॥३०॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये व्याकरणे तिङ्विभक्तिसिद्धरूपं नामाष्टपञ्चाशदधिक-
त्रिशततमोऽध्यायः ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ऊनषष्ट्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः

कृत्सिद्धरूपम् ।

कुमार उवाच

कृतस्त्रिष्वपि विज्ञेया भावे कर्म्मणि कर्त्तरि । अज्ल्युट् क्तिन् घञो भावे युजकारत एव च ॥
अचि धर्म्मस्य विनय उत्करः प्रकरस्तथा । देवो भद्रः श्रीकरश्च ल्युटि रूपन्तु शोभनम् ॥
क्तिनि वृद्धिस्तुतिमतो घञि भावोऽथ युच्यपि ।
कारणा भावनेत्यादि अकारे च चिकित्सया ॥ ३ ॥
तथा तव्यो ह्यनीयश्च कर्त्तव्यं करणीयकम् । देयं ध्येयञ्चैव यति ण्यति कार्य्यञ्च कृत्यकाः ॥
कर्त्तरि क्तादयो ज्ञेया भावे कर्म्मणि च क्वचित् ।
गतो ग्रामं गतो ग्राम आश्लिष्टश्च गुरुस्त्वया ॥ ५ ॥
शतृङ् शानचौ भवन् एधमानो भवन्त्यपि । वुण् तृचौ सर्व्वधातुभ्यो भावको भविता तथा ॥
क्विपन्तश्च स्वयम्भूश्च भूते लिटः कन्सु कान च । बभूविवान् पेचिवांश्च पेचानः श्रद्दधानकः ॥
अणि स्युः कुम्भकाराद्या भूतेष्युणादयः स्मृताः । वायुः पायुश्च कारुः स्याद्वहुलं छन्दसीरितं ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये व्याकरणे कृत्सिद्धरूपं नामोनषष्ट्यधिक-
त्रिशततमोऽध्यायः ।

षष्ट्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः

स्वर्गपातालादिवर्गाः ।

अग्निरुवाच

स्वर्गादिनामलिङ्गो यो हरिस्तं प्रवदामि ते । स्वः स्वर्गनाकत्रिदिवा द्योदिवौ द्वे त्रिपिष्टपं ॥१॥
देवा वृन्दारका लेखा रुद्राद्या गणदेवताः । विद्याधरोऽप्सरोयक्षरक्षोगन्धर्वकिन्नराः ॥२॥
पिशाचो गुह्यकः सिद्धो भूतोऽमी देवयोनयः । देवद्विषोऽसुरा दैत्याः सुगतः स्यात्तथागतः ॥
ब्रह्मात्मभूः सुरज्येष्ठो विष्णुर्न्नारायणो हरिः । रेवतीशो हली रामः कामः पञ्चशरः स्मरः ॥
लक्ष्मीः पद्मालया पद्मा सर्व्वः सर्व्वेश्वरः शिवः ।
कपर्दोऽस्य जटाजूटः पिनाकोऽजगवन्धनुः ॥ ५ ॥
प्रमथाः स्युः पारिषदा मृड़ानी चण्डिकाऽम्बिका । द्वैमातुरो गजास्यश्च सेनानीरग्निभूर्गुहः ॥
आखण्डलः सुनासीरः सुत्रामाणो दिवस्पतिः । पुलोमजा शचीन्द्राणी देवी तस्य तु वल्लभा ॥
स्यात् प्रासादो वैजयन्तो जयन्तः पाकशासनिः । ऐरावतेऽभ्रमातङ्गैरावणाभ्रमुवल्लभाः ॥८।
ह्रादिनी वज्रमस्त्री स्यात् कुलिशम्भिदुरं पविः । व्योमयानं विमानोऽस्त्री पीयूषममृतं सुधा ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

स्यात् सुधर्म्मा देवसभा स्वर्गङ्गा सुरदीर्घिका ।
स्त्रियां बहुष्वप्सरसः स्वर्व्वेश्या उर्व्वशीमुखाः ॥ १० ॥

हाहा हूहूश्च गन्धर्व्वा अग्निर्वह्निर्धनञ्जयः । जातवेदाः कृष्णवर्त्मा आश्रयाशश्च पावकः ॥
हिरण्यरेताः सप्तार्च्चिः शुक्रश्चैवाशुशुक्षणिः । शुचिरप्पित्तमौर्व्वस्तु वाडवो वडवानलः ॥१२॥
वह्नेर्द्वयोर्ज्वालकीलावर्च्चिर्हेतिः शिखा स्त्रियां । त्रिषु स्फुलिङ्गोऽग्निकणो धर्म्मराजः परेतराट् ॥
कालोऽन्तको दण्डधरः श्राद्धदेवोऽथ राक्षसः । कौणपास्त्रपक्रव्यादा यातुधानश्च नैर्ऋतिः ॥
प्रचेता वरुणः पाशी श्वसनः स्पर्शनोऽनिलः । सदागतिर्मातरिश्वा प्राणो मरुत समीरणः ॥
जवो रंहस्तरसी तु लघुक्षिप्रमरन्द्रुतम् । सत्वरं चपलं तूर्णमविलम्बितमाशु च ॥१६॥
सततेऽनारताश्रान्तसन्ततविरतानिशं । नित्यानवरताजस्रमप्यथातिशयो भरः ॥१७॥
अतिवेलभृशात्यर्थातिमात्रोद्गाढनिर्भरम् । तीव्रैकान्तनितान्तानि गाढवाढदृढानि च ॥१८॥
गुह्यकेशो यक्षराजो राजराजो धनाधिपः । स्यात् किन्नरः किंपुरुषस्तुरङ्गवदनो मयुः ॥१९॥

निधिर्न्ना शेवधिर्व्योम त्वभ्रं पुष्करमम्बरम् ।
द्योदिवौ चान्तरीक्षं खं काष्ठाशाककुभो दिशः ॥ २० ॥

अभ्यन्तरन्त्वन्तरालञ्चक्रवाड़न्तु मण्डलं । तडित्वान् वारिदो मेघस्तनयित्नुर्वलाहकः ।२१॥
कादम्बिनी मेघमाला स्तनितं गर्जितं तथा । शम्पाशतह्रदाह्रादिन्यैरावत्यः क्षणप्रभाः ॥२२॥
तडित्सौदामिनी विद्युच्चञ्चला चपलाऽपि च । स्फूर्जथुर्व्वज्रनिष्पेषो वृष्टिघातस्त्ववग्रहः ॥
धारा सम्पात आशारः शीकरोऽम्बुकणाः स्मृताः । वर्षोपलस्तु करका मेघच्छन्नेऽह्नि दुर्दिनं ॥
अन्तर्धा व्यवधा पुंसि त्वन्तर्द्धिरपवारणं । अपिधानतिरोधानपिधानच्छदनानि च ॥२५॥

अब्जो जैवातृकः सोमो ग्लौर्मृगाङ्कः कलानिधिः ।
विधुः कुमुदबन्धुश्च विम्बोऽस्त्री मण्डलं त्रिषु ॥ २६ ॥
कला तु षोडशो भागो भित्तं शकलखण्डके ।
चन्द्रिका कौमुदी ज्योत्स्ना प्रसादस्तु प्रसन्नता ॥ २७ ॥

लक्षणं लक्ष्मकं चिह्नं शोभा कान्तिर्द्युतिश्छविः । सुषमा परमा शोभा तुषारस्तुहिनं हिमं ॥
अवश्यायस्तु नीहारः प्रालेयः शिशिरो हिमः । नक्षत्रमृक्षं भन्तारा तारकाप्युडु वा स्त्रियां ॥
गुरुर्जीव आङ्गिरस उशना भार्गवः कविः । विधुन्तुदस्तमो राहुर्ल्लग्नं राश्युदयः स्मृतः ॥
सप्तर्षयो मरीच्यत्रिमुखाश्चित्रशिखण्डिनः । हरिदश्वब्रध्नपूषद्युमणिर्म्मिहिरो रविः ।३१॥
परिवेषस्तु परिधिरुपसूर्य्यकमण्डले । किरणोऽस्त्रमयूखांशुगभस्तिघृणिधृष्णयः ॥३२॥

भानुः करो मरीचिः स्त्रीपुंसयोर्दीधितिः स्त्रियां ।
स्युः प्रभा रुग्रुचिस्त्विड्भाभाश्छविद्युतिदीप्तयः ॥ ३३ ॥
रोचिः शोचिरुभे क्लीवे प्रकाशो द्योत आतपः ।
कोष्णं कवोष्णं मन्दोष्णं कदुष्णं त्रिषु तद्वति ॥ ३४ ॥

तिग्मं तीक्ष्णं खरं तद्वद् दिष्टोऽनेहा च कालकः । घस्रो दिनाहनी चैव सायंसन्ध्या पितृप्रसूः ॥
प्रत्यूषोऽहर्मुखं कल्यमुषःप्रत्यूषसी अपि । प्राह्णापराह्णमध्याह्णास्त्रिसन्ध्यमथ शर्व्वरी ॥३६॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यामी तमी तमिस्रा च ज्यौत्स्नी चन्द्रिकयान्विता।
आगामिवर्त्तमानाहर्युक्तायां निशि पक्षिणी ॥ ३७ ॥
अर्द्धरात्रनिशीथौ द्वौ प्रदोषो रजनीमुखं। स पर्व्वसन्धिः प्रतिपत्पञ्चदश्योर्यदन्तरम् ॥३८॥
पक्षान्तौ पञ्चदश्यौ द्वे पौर्णमासी तु पूर्णिमा। कलाहीने सानुमतिः पूर्णे राका निशाकरे ॥
अमावास्या त्वमावस्या दर्शः सूर्य्येन्दुसङ्गमः।
सा दृष्टेन्दुः सिनीवाली सा नष्टेन्दुकला कुहूः ॥ ४० ॥
संवर्त्तः प्रलयः कल्पः क्षयः कल्पान्त इत्यपि। कलुषं वृजिनैनोऽघमंहोदुरितदुष्कृतम् ॥४१॥
स्याद्धर्म्ममस्त्रियां पुण्यश्रेयसी सुकृतं वृषः। मुत्प्रीतिः प्रमदो हर्षः प्रमोदामोदसम्मदाः ॥४२॥
स्यादानन्दथुरानन्दः शर्म्मशातसुखानि च। श्वःश्रेयसं शिवं भद्रं कल्याणं मङ्गलं शुभम् ॥
भावुकं भविकं भव्यं कुशलं क्षेममस्त्रियां। दैवं दिष्टं भागधेयं भाग्यं स्त्री नियतिर्व्विधिः ॥
क्षेत्रज्ञ आत्मा पुरुषः प्रधानं प्रकृतिः स्त्रियां। हेतुर्ना कारणं बीजं निदानं त्वादिकारणम् ॥
चित्तन्तु चेतो हृदयं स्वान्तं हृन्मानसम्मनः। बुद्धिर्म्मनीषा धिषणा धीः प्रज्ञा शेमुषी मतिः ॥
प्रेक्षोपलब्धिश्चित्सम्वित्प्रतिपज्ज्ञप्तिचेतनाः। धीर्धारणावती मेधा सङ्कल्पः कर्म्म मानसं ॥४७॥
सङ्ख्या विचारणा चर्चा विचिकित्सा तु संशयः।
अध्याहारस्तर्क्क ऊहः समौ निर्णयनिश्चयौ ॥ ४८ ॥
मिथ्यादृष्टिर्नास्तिकता भ्रान्तिर्म्मिथ्यामतिर्भ्रमः। अङ्गीकाराभ्युपगमप्रतिश्रवसमाधयः ॥४९॥
मोक्षे धीर्ज्ञानमन्यत्र विज्ञानं शिल्पशास्त्रयोः। मुक्तिः कैवल्यनिर्व्वाणश्रेयोनिःश्रेयसामृतं ॥
मोक्षोऽपवर्गोथाज्ञानमविद्याहम्मतिः स्त्रियां। विमर्दोत्थे परिमलो गन्धे जनमनोहरे ॥५१॥
आमोदः सोऽतिनिर्हारी सुरभिर्घ्राणतर्पणः। शुक्लशुभ्रशुचिश्येतविशदश्वेतपाण्डराः ॥५२॥
अवदातः सितो गौरो वलक्षो धवलोऽर्ज्जुनः। हरिणः पाण्डुरः पाण्डुरीषत्पाण्डुस्तु धूसरः ॥
कृष्णे नीलासितश्यामकालश्यामलमेचकाः। पीतो गौरो हरिद्राभः पालाशो हरितो हरित् ॥
रोहितो लोहितो रक्तः शोणः कोकनदच्छविः। अव्यक्तरागस्त्वरुणः श्वेतरक्तस्तु पाटलः ॥
श्यावः स्यात्कपिशो धूम्रधूमलौ कृष्णलोहिते। कड़ारः कपिलः पिङ्गपिशङ्गौ कद्रुपिङ्गलौ ॥
चित्रं किर्म्मीरकल्माषशवलैताश्च कर्व्वुरे। व्याहार उक्तिर्लपितमपभ्रंशोऽपशब्दकः ॥५७॥
तिङ्सुबन्तचयो वाक्यं क्रिया वा कारकान्विता। इतिहासः पुरावृत्तं पुराणं पञ्चलक्षणं ॥
आख्यायिकोपलब्धार्था प्रबन्धः कल्पना कथा। समाहारः संग्रहस्तु प्रवह्लिका प्रहेलिका ॥
समस्या तु समासार्था स्मृतिस्तु धर्म्मसंहिता।
आख्याह्वे चाभिधानञ्च वार्त्ता वृत्तान्त ईरितः ॥ ६० ॥
हूतिराकारणाह्वानमुपन्यासस्तु वाङ्मुखं। विवादो व्यवहारः स्यात् प्रतिवाक्योत्तरे समे ॥
उपोद्घात उदाहारो ह्यथ मिथ्याभिसंशनम्। अभिशापो यशः कीर्त्तिः प्रश्नः पृच्छानुयोगकः॥
आम्रेडितं द्विस्त्रिरुक्तं कुत्सानिन्दे च गर्हणे। स्यादाभाषणमालापः प्रलापोऽनर्थकं वचः ॥
अनुलापो मुहुर्भाषा विलापः परिदेवनं। विप्रलापो विरोधोक्तिः संलापो भाषणं मिथः ॥६४॥
सुप्रलापः सुवचनमपलापस्तु निह्नवः। उषती वागकल्याणी सङ्गतं हृदयङ्गमं ॥६५॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अत्यर्थमधुरं सान्त्वमबद्धं स्यादनर्थकं। निष्ठुराश्लीलपरुषं ग्राम्यं वै सूनृतं प्रिये ॥६६॥
सत्यं तथ्यमृतं सम्यङ्नादनिस्वानिस्वनाः। आरवारावसंरावविरावा अथ मर्म्मरः। ६७॥
स्वनिते वस्त्रपर्णानां भूषणानान्तु शिञ्जितं। वीणाया निक्कणः क्वाणः तिरश्चां वाशितं रुतं॥
कोलाहलः कलकलो गीतं गानमिमे समे। स्त्री प्रतिश्रुत् प्रतिध्वाने तन्त्रीकण्ठान्निसादकः॥

काकली तु कले सूक्ष्मे ध्वनौ तु मधुरास्फुटे।
कलो मन्द्रस्तु गम्भीरे तारोऽत्युच्चैस्त्रयस्त्रिषु ॥ ७० ॥

समन्वितलयस्त्वेकतालो वीणा तु वल्लकी। विपञ्ची सा तु तन्त्रीभिः सप्तभिः परिवादिनी॥
ततं वीणादिकं वाद्यमानद्धं मुरजादिकं। वंशयादिकन्तु शुषिरं कांस्यतालादिकं घनं ॥७२॥
चतुर्व्विधमिदं वाद्यं वादित्रातोद्यनामकं। मृदङ्गा मुरजा भेदास्त्वङ्क्यालिङ्ग्योर्द्धकास्त्रयः॥
स्याद्यशःपटहो ढक्का भेर्य्यामानकदुन्दुभिः। आनकः पटहो भेदा झर्झरीडिण्डिमादयः॥

मर्द्दलः पणवस्तुल्यौ क्रियामानन्तु तालकः।
लयः साम्यं ताण्डवन्तु नाट्यं लास्यञ्च नर्त्तनं ॥ ७५ ॥

तौर्य्यत्रिकं नृत्यगीतवाद्यं नाट्यमिदं त्रयम्। राजा भट्टारको देवः साभिषेका च देव्यपि॥
शृङ्गारवीरकरुणाद्भुतहास्यभयानकाः। वीभत्सरौद्रे च रसाः शृङ्गारः शुचिरुज्ज्वलः ॥७७॥
उत्साहवर्द्धनो वीरः कारुण्यं करुणा घृणा। कृपा दया चानुकम्पाऽप्यनुक्रोशोऽप्यथो हसः॥
हासो हास्यञ्च बीभत्सं विकृतं त्रिष्विदं द्वयं। विस्मयोऽद्भुतमाश्चर्य्यं चित्रमप्यथ भैरवं॥
दारुणं भीषणं भीष्मं घोरं भीमं भयानकं। भयङ्करं प्रतिभयं रौद्रस्तूग्रममी त्रिषु ॥८०॥
चतुर्दश दरत्रासौ भीतिर्भीः साध्वसम्भयं। विकारो मानसो भावोऽनुभावो भावबोधनः॥
गर्व्वोऽभिमानोऽहङ्कारो मानश्चित्तसमुन्नतिः। अनादरः परिभवः परिभावस्तिरस्क्रिया॥
व्रीडा लज्जा त्रपा ह्रीः स्यादभिध्यानं धने स्पृहा। कौतूहलं कौतुकञ्च कुतुकञ्च कुतूहलं॥
स्त्रीणां विलासविव्वोकविभ्रमा ललितन्तथा। हेला लीलेत्यमी हावाः क्रियाः शृङ्गारभावजाः॥
द्रवकेलिपरीहासाः क्रीड़ा लीला च कूर्दनं। स्यादाच्छुरितकं हासः सोत्प्रासःसमनाक्स्मितं॥
अधोभुवनपातालं च्छिद्रं श्वभ्रं वपा शुषिः। गर्त्तावटौ भुवि श्वभ्रे तमिस्रन्तिमिरं तमः॥
सर्पः पृदाकुर्भुजगो दन्दशूको विलेशयः। विषं क्ष्वेडश्च गरलं निरयो दुर्गतिः स्त्रियां ॥८७॥
पयः कीलालममृतमुदकं भुवनं वनं। भङ्गस्तरङ्ग ऊर्म्मिर्व्वा कल्लोलोल्लोलकौ च तौ ॥८८॥
पृषन्तिविन्दुपृषताः कूलं रोधश्च तीरकं। तोयोत्थितं तत् पुलिनं जम्बालं पङ्ककर्द्दमौ ॥८९॥
जलोच्छ्वासाः परीवाहाः कूपकास्तु विदारकाः। आतरस्तरपण्यं स्याद्द्रोणी काष्ठाम्बुवाहिनी॥
कलुषश्चाविलोऽच्छस्तु प्रसन्नोऽथ गभीरकं। अगाधं दासकैवर्त्तौ शम्बूका जलशुक्तयः॥
सौगन्धिकन्तु कह्लारं नीलमिन्दीवरं कजं। स्यादुत्पलं कुवलयं सिते कुमुदकैरवे ॥९२॥
शालूकमेषां कन्दः स्यात् पद्मं तामरसङ्कजं। नीलोत्पलं कुवलयं रक्तं कोकनदं स्मृतम्॥

करहाटः शिफा कन्दं किञ्जल्कः केशरोऽस्त्रियां।
खनिः स्त्रियामाकरः स्यात् पादाः प्रत्यन्तपर्व्वताः ॥ ९४ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उपत्यकाद्रेरासन्ना भूमिरूर्द्ध्वमधित्यका। स्वर्गपातालवर्गाद्या उक्ता नानार्थकान् शृणु ॥६५॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये स्वर्गपातालवर्गा नाम षष्ट्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः।

एकषष्ट्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः

अव्ययवर्गाः।

अग्निरुवाच

आङीषदर्थेऽभिव्याप्तौ सीमार्थे धातुयोगजे।
आ प्रगृह्यः स्मृतौ वाक्येऽप्यास्तु स्यात् कोपपीड़योः ॥ १ ॥

पापकुत्सेषदर्थे कु धिग्जुगुप्सननिन्दयोः। चान्वाचयसमाहारेतरेतरसमुच्चये ॥२॥

स्वस्त्याशीः क्षेमपुण्यादौ प्रकर्षे लङ्घनेऽप्यति।
स्वित्प्रश्ने च वितर्के च तु स्याद् भेदेऽवधारणे ॥ ३ ॥

सकृत्सहैकवारे स्यादाराद्दूरसमीपयोः। प्रतीच्यां चरमे पश्चादुताप्यर्थविकल्पयोः ॥४॥
पुनःसदार्थयोः शश्वत् साक्षात् प्रत्यक्षतुल्ययोः। खेदानुकम्पासन्तोपविस्मयामन्त्रणे वत ॥
हन्त हर्षेऽनुकम्पायां वाक्यारम्भविषादयोः। प्रति प्रतिनिधौ वीप्सालक्षणादौ प्रयोगतः ॥६॥
इति हेतौ प्रकरणे प्रकाशादिसमाप्तिषु। प्राच्यां पुरस्तात् प्रथमे पुरार्थेऽग्रत इत्यपि ॥७॥
यावत्तावच्च साकल्येऽवधौ मानेऽवधारणे। मङ्गलानन्तरारम्भप्रश्नकार्त्स्न्येष्वथो अथ च ॥८॥
वृथा निरर्थकाविध्योर्नानाऽनेकोभयार्थयोः। नु पृच्छायां विकल्पे च पश्चात्सादृश्ययोरनु ॥
प्रश्नावधारणानुज्ञाऽनुनयामन्त्रणे ननु। गर्हासमुच्चयप्रश्नशङ्कासम्भावनास्वऽपि ॥१०॥
उपमायां विकल्पे वा सामि त्वर्द्धे जुगुप्सिते। अमा सह समीपे च कं वारिणि च मूर्द्धनि ॥
इवेत्थमर्थयोरेवं नूनं तर्क्केऽर्थनिश्चये। तूष्णीमर्थे सुखे जोषं किम्पृच्छायां जुगुप्सने ॥१२॥
नाम प्राकाश्यसम्भाव्यक्रोधोपगमकुत्सने। अलं भूषणपर्य्याप्तिशक्तिवारणवाचकम् ॥१३॥
हुं वितर्क्के परिप्रश्ने समयाऽन्तिकमध्ययोः। पुनरप्रथमे भेदे निर्निश्चयनिषेधयोः ॥१४॥
स्यात्प्रबन्धे चिरातीते निकटागामिके पुरा। उरर्युरी चोररी च विस्तारेऽङ्गीकृते त्रयम् ॥१५॥
स्वर्गे परे च लोके स्वर्वार्त्तासम्भाव्ययोः किल। निषेधवाक्यालङ्कारे जिज्ञासावसरे[1] खलु ॥
समीपोभयतः शीघ्रसाकल्याभिमुखेऽभितः। नामप्रकाशयोः प्रादुर्मिथोऽन्योन्यं रहस्यपि ॥
तिरोऽन्तर्द्धौ तिर्यगर्थे हा विषादशुगर्त्तिषु। अहहेत्यद्भुते खेदे हि हेतावक्धारणे ॥१८॥
चिराय चिररात्राय चिरस्याद्याश्चिरार्थकाः। मुहुः पुनः पुनः शश्वदभीक्ष्णमसकृत् समाः ॥
स्राग्झटित्यञ्जसाह्नाय सपदि द्राङ्मङ्क्षु च द्रुते। बलवत् सुष्ठु किमुत विकल्पे किं किमूत च ॥

---

१. जिज्ञासानुनय इति ञ.।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तु हि च स्म ह वै पादपूरणे पूजनेऽप्यति । दिवाह्नीत्यथ दोषा च नक्तञ्च रजनाविति ॥२१॥

तिर्यगर्थे साचि तिरोऽप्यथ सम्बोधनार्थकाः ।
स्युः प्याट्पाडङ्ग हे है भोः समया निकषा हिरुक् ॥ २२ ॥
अतर्किते तु सहसा स्यात् पुरः पुरतोऽग्रतः ।
स्वाहा देवहविर्दाने श्रौषट् वौषट् वषट् स्वधा ॥ २३ ॥

किञ्चिदीषन्मनागल्पे प्रेत्याऽमुत्र भवान्तरे । यथा तथा चैव साम्ये अहो ही इति विस्मये ॥
मौने तु तूष्णीं तूष्णीकं सद्यः सपदि तत्क्षणे । दिष्ट्या शमुपयोपञ्चेत्यानन्देऽथान्तरेऽन्तरा ॥
अन्तरेण च मध्ये स्युः प्रसह्य तु हठार्थकम् । युक्ते द्वे साम्प्रतं स्थानेऽभीक्ष्णं शश्वदनारते ॥
अभावे नह्यनो नापि मास्म मालञ्च वारणे । पक्षान्तरे चेद्यदि च तत्त्वे त्वद्धाऽञ्जसा द्वयम् ॥
प्राकाश्ये प्रादुराविः स्यादोमेवं परमं मते । समन्ततस्तु परितः सर्वतो विश्वगित्यपि ॥२८॥
अकामानुमतौ काममसूयोपगमेऽस्तु च । ननु च स्याद्विरोधोक्तौ कच्चित् कामप्रवेदने ॥
निःषमं दुःषमं गर्ह्ये यथास्वन्तु यथायथं । मृषा मिथ्या च वितथे यथार्थन्तु यथातथं ॥३०॥
स्युरेवन्तु पुनर्वैवेत्यवधारणवाचकाः । प्रागतीतार्थकं नूनमवश्यं निश्चये द्वयं ॥३१॥
संवद्वर्षेऽवरे त्वर्वागामेवं स्वयमात्मना । अल्पे नीचैर्महत्युच्चैः प्रायोभूम्न्यऽद्रुते शनैः ॥३२॥
सना नित्ये बहिर्वाह्ये स्मातीतेऽस्तमदर्शने । अस्ति सत्त्वे रुषोक्तावूमुं प्रश्नेऽनुनये त्वयि ॥
हूं तर्के स्यादुषा रात्रेरवसाने नमो नतौ । पुनरर्थेऽङ्गनिन्दायां दुष्ठु सुष्ठु प्रशंसने ।३४॥
सायं साये प्रगे प्रातः प्रभाते निकषाऽन्तिके । परुत्परार्य्यैषमोऽब्दे पूर्वे पूर्वतरे यति ॥३५॥
अद्यात्राह्न्यथ पूर्वेह्नीत्यादौ पूर्वोत्तरा परान् । तथाऽधरान्यान्यतरेतरात्पूर्व्वेद्युरादयः ॥३६॥
उभयद्युश्चोभयेद्युः परे त्वह्नि परेद्यवि । ह्यो गतेऽनागतेऽह्नि श्वः परश्वः श्वः परेऽहनि ॥३७॥
तदा तदानीं युगपदेकदा सर्वदा सदा । एतर्हि सम्प्रतीदानीमधुना साम्प्रतन्तथा ॥३८॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये अव्ययवर्गो नाम एकषष्ट्यधिक-
त्रिशततमोऽध्यायः ।

द्विषष्ट्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः

नानार्थवर्गः ।

अग्निरुवाच

आकाशे त्रिदिवे नाको लोकस्तु भुवने जने । पद्ये यशसि च श्लोकः शरे खड्गे च सायकः ॥
आनकः पटहो भेरी कलङ्कोऽङ्कापवादयोः । मारुते वेधसि व्रध्ने पुंसि कः कं शिरोऽम्बुनोः ॥
स्यात् पुलाकस्तुच्छधान्ये संक्षेपे भक्तसिक्थके । महेन्द्रगुग्गुलूलूकव्यालग्राहिषु कौशिकः ॥
शालावृकौ कपिश्वानौ मानं स्यान्मितिसाधनं । सर्गः स्वभावनिर्मोक्षनिश्चयाध्यायसृष्टिषु ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

योगः सन्नहनोपायध्यानसङ्गतियुक्तिषु । भोगः सुखे स्त्र्यादिभृतावब्जौ शङ्खनिशाकरौ ॥
काकेभगण्डौ करटौ दुश्चर्मा शिपिविष्टकः । रिष्टं क्षेमाशुभाभावेष्वरिष्टे तु शुभाऽशुभे ॥६॥

व्युष्टिः फले समृद्धौ च दृष्टिर्ज्ञानेऽक्ष्णि दर्शने ।
निष्ठानिष्पत्तिनाशान्ताः काष्ठोत्कर्षे स्थितौ दिशि ॥ ७ ॥

भूगोवाचस्त्विडा इलाः प्रगाढं भृशकृच्छ्रयोः । भृशप्रतिज्ञयोर्वाढं शक्तस्थूलौ दृढौ त्रिषु ॥

विन्यस्तसंहतौ व्यूढौ कृष्णो व्यासेऽर्ज्जुने हरौ ।
पणो द्यूतादिषूत्सृष्टे भृतौ मूल्ये धनेऽपि च ॥ ९ ॥
मौर्व्यां द्रव्याश्रिते सत्वशुक्लसन्ध्यादिके गुणः ।
श्रेष्ठेऽधिपे ग्रामणीः स्यात् जुगुप्साकरुणे घृणे ॥ १० ॥

तृष्णा स्पृहापिपासे द्वे विपणिः स्याद्वणिक्पथे । विषाभिसरलोहेषु तीक्ष्णं क्लीवे खरे त्रिषु ॥
प्रमाणं हेतुमर्य्यादाशास्त्रेयत्ताप्रमातृषु । करणं क्षेत्रगात्रादावीरिणं शून्यसूषरं ॥१२॥
यन्ता हस्तिपके सूते वह्निज्वाला च हेतयः । श्रुतं शास्त्रावधृतयोर्युगपर्य्याप्तयोः कृतं ॥१३॥
ख्याते हृष्टे प्रतीतोऽभिज्ञातस्तु कुशले बुधे । विविक्तौ पूतविजनौ मूर्च्छितौ मूढसोच्छ्रयौ ॥
अर्थोऽभिधेयरैवस्तुप्रयोजननिवृत्तिषु । निदानागमयोस्तीर्थमृषिजुष्टजले गुरौ ॥१५॥
प्राधान्ये राजलिङ्गे च वृषाङ्गे ककुदोऽस्त्रियां । स्त्री सम्विज्ज्ञानसम्भाषाक्रियाकाराजिनामसु ॥
धर्म्मे रहस्युपनिषत् स्यादृतौ वत्सरे शरत् । पदं व्यवसितित्राणस्थानलक्ष्माङ्घ्रिवस्तुषु ॥
त्रिष्विष्टमधुरौ स्वादू मृदू चातीक्ष्णकोमलौ । सत्ये साधौ विद्यमाने प्रशस्तेऽभ्यर्हिते च सत् ॥
विधिर्विधाने दैवेऽपि प्रणिधिः प्रार्थने चरे । वधूर्जाया स्नुषा स्त्री च सुधालेपोऽमृतं स्नुही ॥
स्पृहा सम्प्रत्ययः श्रद्धा पण्डितम्मन्यगर्व्वितौ । ब्रह्मबन्धुरधिक्षेपे भानूरश्मिदिवाकरौ ॥२०॥
ग्रावाणौ शैलपाषाणौ मूर्खनीचौ पृथग्जनौ । तरुशैलौ शिखरिणौ तनुस्त्वग्देहयोरपि ॥२१॥
आत्मा यत्नो धृतिर्बुद्धिः स्वभावो ब्रह्म वर्ष्म च । उत्थानं पौरुषे तन्त्रे व्युत्थानं प्रतिरोधने ॥
निर्य्यातनं वैरशुद्धौ दाने न्यासार्पणेऽपि च । व्यसनं विपदि भ्रंशे दोषे कामजकोपजे ॥
मृगयाक्षो दिवास्वप्नः परिवादः स्त्रियो मदः । तौर्य्यत्रिकं वृथाट्या च कामजो दशको गणः ॥
पैशून्यं साहसं द्रोह ईर्ष्यासूयार्थदूषणम् । वाग्दण्डश्चैव पारुष्यं क्रोधजोऽपि गणोऽष्टकः ॥
अकर्म्मगुह्ये कौपीनं मैथुनं सङ्गतौ रतौ । प्रधानं परमार्था धीः प्रज्ञानं बुद्धिचिह्नयोः ॥२६॥
क्रन्दने रोदनाह्वाने वर्ष्म देहप्रमाणयोः । आराधनं साधने स्यादवाप्तौ तोषणेऽपि च ॥२७॥
रत्नं स्वजातिश्रेष्ठेऽपि लक्ष्म चिह्नप्रधानयोः । कलापो भूषणे बर्हे तूणीरे संहतेऽपि च ॥

तल्पं शय्याट्टदारेषु डिम्भौ तु शिशुबालिशौ ।
स्तम्भौ ‘स्थूणाजडीभावौ सभ्ये संसदि वै सभा ॥ २९ ॥

किरणप्रग्रहौ रश्मी धर्म्माः पुण्ययमादयः । ललामं पुच्छपुण्ड्राश्वभूषाप्राधान्यकेतुषु ॥३०॥
प्रत्ययोऽधीनशपथज्ञानविश्वासहेतुषु । समयाः शपथाचारकालसिद्धान्तसंविदः ॥३१॥
अत्ययोऽतिक्रमे कृच्छ्रे सत्यं शपथतथ्ययोः । वीर्य्यं बलप्रभावौ च रूप्यं रूपे प्रशस्तके ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दुरोदरो द्यूतकारे पणे द्यूते दुरोदरं । महारण्ये दुर्गपथे कान्तारः पुन्नपुंसकं ॥३३॥
यमानिलेन्द्रचन्द्रार्कविष्णुसिंहादिके हरिः । दरोऽस्त्रियां भये श्वभ्रे जठरः कठिनेऽपि च ॥
उदारो दातृमहतोरितरस्त्वन्यनीचयोः । चूड़ा किरीटं केशाश्च संयता मौलयस्त्रयः ॥३५॥
बलिः करोपहारादौ सैन्यस्थैर्य्यादिके बलं । स्त्रीकटीवस्त्रबन्धेऽपि नीवी परिपणेऽपि च ॥३६॥
शुक्ले मूषिके श्रेष्ठे सुकृते वृषभे वृषः । द्यूताक्षे सारिफलकेऽप्याकर्षोऽथाऽक्षमिन्द्रिये ॥३७॥

ना द्यूताङ्गे च कर्षे च व्यवहारे कलिद्रुमे ।
उष्णीषः स्यान् किरीटादौ कर्पूः कुल्याभिधायिनी ॥ ३८ ॥

प्रत्यक्षेऽधिकृतेऽध्यक्षः सूर्य्यवह्नी विभावसू । शृङ्गारादौ विषे वीर्य्ये गुणे रागे द्रवे रसः ॥
तेजःपुरीषयोर्वर्च्चं आगः पापापराधयोः । छन्दः पद्येऽभिलाषे च साधीयान् साधुबाढयोः ॥

व्यूहो वृन्देऽप्यहिर्वृत्रेऽप्यग्नीन्द्वर्कास्तमोनुदः ॥ ४० ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये नानार्थवर्गो नाम द्विषष्ट्यधिक-
त्रिशततमोऽध्यायः ।

त्रिषष्ट्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः

भूमिवनौषध्यादिवर्गाः ।

अग्निरुवाच

वक्ष्ये भूपुराद्रिवनौषधिसिंहादिवर्गकान् । भूरनन्ता क्षमा धात्री क्ष्माप्या कुः स्याद्धरित्र्यपि ॥
मृन्मृत्तिका प्रशस्ता तु मृत्सा मृत्स्ना च मृत्तिका । जगत्त्रिविष्टपं लोकं भुवनं जगती समा ॥
अयनं वर्त्म मार्गाध्वपन्थानः पदवी सृतिः । सरणिः पद्धतिः पद्या वर्त्तन्येकपदीति च ॥३॥
पूः स्त्री पुरीनगर्य्यौ वा पत्तनं पुटभेदनम् । स्थानीयं निगमोऽन्यत्तु यन्मूलनगरात्पुरम् ॥
तच्छाखानगरं वेशो वेश्याजनसमाश्रयः । आपणस्तु निषद्यायां विपणिः पण्यवीथिका ॥५॥
रथ्या प्रतोली विशिखा स्याच्चयो वप्रमस्त्रियां । प्राकारो वरणः शालः प्राचीरं प्रान्ततो वृतिः ॥

भित्तिः स्त्री कुड्यमेडूकं यदन्तर्न्यस्तकीकसं ।
वासः कुटी द्वयोः शाला सभा सञ्जवनन्त्विदम् ॥ ७ ॥

चतुःशालं मुनीनान्तु पर्णशालोटजोऽस्त्रियां । चैत्यमायतनन्तुल्ये वाजिशाला तु मन्दुरा ॥
हर्म्यादि धनिनां वासः प्रासादो देवभूभुजां । स्त्री द्वार्द्वारं प्रतीहारः स्याद्वितर्दिस्तु वेदिका ॥
कपोतपालिकायान्तु विटङ्कं पुंनपुंसकं । कवाटमररन्तुल्ये निःश्रेणिस्त्वधिरोहिणी ॥१०॥
सम्मार्जनी शोधनी स्यात् सङ्करोऽवकरस्तथा । अद्रिगोत्रगिरिग्रावा गहनं काननं वनं ॥११॥
आरामः स्यादुपवनं कृत्रिमं वनमेव यत् । स्यादेतदेव प्रमदवनमन्तःपुरोचितं ॥१२॥
वीथ्यालिरावलिः पङ्क्तिश्रेणीलेखास्तु राजयः । वानस्पत्यः फलैः पुष्पात्तैरपुष्पाद्वनस्पतिः ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ओषध्यः फलपाकान्ताः पलाशी द्रुद्रुमागमाः।
स्थाणु वा ना ध्रुवः शङ्कुः प्रफुल्लोत्फुल्लसंस्फुटाः॥ १४॥

पलाशं छदनं पर्णमिध्ममेधः समित् स्त्रियां। बोधिद्रुमश्चलदलो दधित्थग्राहिमन्मथाः॥१५॥
तस्मिन दधिफलः पुष्पफलदन्तशठावपि। उडुम्बरे हेमदुग्धः कोविदारे द्विपत्रकः॥१६॥
सप्तपर्णो विशालत्वक् कृतमालं सुवर्णकः। आरेवतव्याधिघातसम्पाकचतुरङ्गुलाः॥१७॥
स्याज्जम्बीरे दन्तशठो वरुणे तिक्तशावकः। पुन्नागे पुरुषस्तुङ्गः केशरो देववल्लभः॥१८॥
पारिभद्रे निम्बतरुर्मन्दारः पारिजातकः। वञ्जुलश्चित्रकृच्चाथ द्वौ पीतनकपीतनौ॥१९॥
आम्रातके मधूके तु गुडपुष्पमधुद्रुमौ। पीलौ गुडफलः स्रंसी नादेयी चाम्बुवेतसः॥२०॥
शोभाञ्जने शिग्रुतीक्ष्णगन्धकाक्षीरमोचकाः। रक्तोऽसौ मधुशिग्रुः स्यादरिष्टः फेणिलः समौ॥
गालवः शाबरो लोध्रस्तिरीटस्तिल्वमार्जनौ। शेलुः श्लेष्मातकः शीत उद्दालो बहुवारकः॥
वैकङ्कतः श्रुवावृक्षो ग्रन्थिलो व्याघ्रपादपि। तिन्दुकः स्फूर्जकः कालो नादेयी भूमिजम्बुकः॥

काकतिन्दौ पीलुकः स्यात् पाटलिर्मोक्षमुष्ककौ।
क्रमुकः पट्टिकाख्यः स्यात् कुम्भी कैटर्य्यकट्फले॥ २४॥

वीरवृक्षोऽरुष्करोऽग्निमुखी भल्लातकी त्रिषु। सर्जकासनजीवाश्च पीतसालेऽथ मालके॥२५॥
सर्जाश्वकर्णौ वीरेन्द्रौ इन्द्रद्रुः ककुभोऽर्जुनः। इङ्गुदी तापसतरुर्मोचा शाल्मलिरेव च॥
चिरविल्वो नक्तमालः करजश्च करञ्जके। प्रकीर्य्यः पूतिकरजो मर्कट्यङ्गारवल्लरी॥२७॥
रोही रोहितकः प्लीहशत्रुर्दाड़िमपुष्पकः। गायत्री बालतनयः खदिरो दन्तधावनः॥२८॥
अरिमेदो विट्खदिरे कदरः खदिरे सिते। पञ्चाङ्गुलो वर्द्धमानश्चञ्चुर्गन्धर्वहस्तकः॥२९॥
पिण्डीतको मरुवकः पीतदारु च दारु च। देवदारुः पूतिकाष्ठं श्यामा तु महिलाह्वया॥३०॥
लता गोवन्दनी गुन्दा प्रियङ्गुः फलिनी फली। मण्डूकपर्णपत्रोर्णनटकट्वङ्गटुण्टुकाः॥३१॥
श्योनाकशुकनासर्क्षदीर्घवृन्तकुटन्नटाः। पीतद्रुः सरलश्चाथ निचुलोऽम्बुज इज्जलः॥३२॥
काकोडुम्बरिका फल्गुररिष्टः पिचुमर्दकः। सर्व्वतोभद्रको निम्बे शिरीषस्तु कपीतनः॥

वकुलो वञ्जुलः प्रोक्तः पिच्छिलाऽगुरुशिंशपाः।
जया जयन्ती तर्कारी कणिका गणिकारिका॥ ३४॥
श्रीपर्णमग्निमन्थः स्याद्वत्सको गिरिमल्लिका।
कालस्कन्धस्तमालः स्यात् तण्डुलीयोऽल्पमारिषः॥ ३५॥

सिन्धुवारस्तु निर्गुण्डी सैवास्फोता वनोद्भवा। गणिका यूथिकाऽम्बष्ठा सप्तला नवमालिका॥
अतिमुक्तः पुण्ड्रकः स्यात्कुमारी तरणिः सहा। तत्र शोणे कुरुवकस्तत्र पीते कुरुण्टकः॥
नीला झिण्टी द्वयोर्बाणा झिण्टी सैरीयकस्तथा। तस्मिन् रक्ते कुरुवकः पीते सहचरी द्वयोः॥
धुस्तूरः कितवो धूर्त्तो रुचको मातुलङ्गके। समीरणो मरुवकः प्रस्थपुष्पः फणिज्झकः॥३९॥
कुठेरकस्तु पर्णासेऽथास्फोतो वसुकार्कके। शिवमल्ली पाशुपतो वृन्दा वृक्षादनी तथा॥४०॥
जीवन्तिका वृक्षरुहा गुडूची तन्त्रिकाऽमृता। सोमवल्ली मधुपर्णी मूर्वा तु मोरटी तथा॥४१॥
मधूलिका मधुश्रेणी गोकर्णी पीलुपर्ण्यपि। पाठाऽम्बष्ठा विद्धकर्णी प्राचीना वनतिक्तिका॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कटुः कटुम्भरा चाथ चक्राङ्गी शकुलादनी । आत्मगुप्ता प्रावृषायी कपिकच्छुश्च मर्कटी ॥
अपामार्गः शैखरिकः प्रत्यक्पर्णी मयूरकः । फञ्जिका ब्राह्मणो भार्गी द्रवन्ती शम्बरी वृषा ॥
मण्डूकपर्णी भण्डीरी समङ्गा कालमेषिका । रोदनी कच्छुराऽनन्ता समुद्रान्ता दुरालभा ॥
पृश्निपर्णी पृथक्पर्णी कलशिर्धावनिर्गुहा । निदिग्धिका स्पृशी व्याघ्री क्षुद्रा दुस्पर्शया सह ॥
अवल्गुजः सोमराजी सुवल्लिः सोमवल्लिका । कालमेषी कृष्णफला वाकुची पूतिफल्यऽपि ॥

कणोषणोपकुल्या स्याच्छ्रेयसी गजपिप्पली ।
चव्यन्तु चविका काकचिञ्ची गुञ्जे तु कृष्णला ॥ ४८ ॥

विश्वा विषा प्रतिविषा वनशृङ्गाटगोक्षुरौ । नारायणी शतमूली कालेयकहरिद्रवः ॥४६॥
दार्वी पचम्पचा दारु शुक्ला हैमवती वचा । वचोग्रगन्धा षड्ग्रन्था गोलोमी शतपर्विका ॥

आस्फोता गिरिकर्णी स्यात् सिंहास्यो वासको वृषः ।
मिशी मधुरिकाच्छत्रा कोकिलाक्षेक्षुरक्षुरा ॥ ५१ ॥
विडङ्गोऽस्त्री कृमिघ्नः स्यात् वज्रद्रुस्नुक्स्नुही सुधा ।
गृद्वीका गोस्तनी द्राक्षा वला वाट्यालकस्तथा ॥ ५२ ॥

काला मसूरविदला त्रिपुटा त्रिवृता त्रिवृत् । मधुकं क्लीतकं यष्टिमधुका मधुयष्टिका ॥५३॥

विदारी क्षीरशुक्लेक्षुगन्धा क्रोष्ट्री च या सिता ।
गोपी श्यामा शारिवा स्यादनन्तोत्पलशारिवा ॥ ५४ ॥

मोचा रम्भा च कदली भण्टाकी दुष्प्रधर्षिणी । स्थिरा ध्रुवा सालपर्णी शृङ्गी तु वृषभो वृषः ॥
गाङ्गेरुकी नागवला सुपली तालमूलिका । ज्योत्स्नी पटोलिका जाली अजशृङ्गी विषाणिका ॥

स्याल्लाङ्गलिक्यग्निशिखा ताम्बूली नागवल्ल्यपि ।
हरेणू रेणुका कौन्ती ह्रीवेरो दिव्यनागरं ॥ ५७ ॥

कालानुसार्य्यवृद्धाश्मपुष्पशीतशिवानि तु । शैलेयं तालपर्णी तु दैत्या गन्धकुटी मुरा ॥५८॥
ग्रन्थिपर्णं शुकं वर्हि वला तु त्रिपुटा त्रुटिः । शिवा तामलकी चाथ हनुर्हट्टविलासिनी ॥५९॥
कुटं नटं दशपुरं वानेयं परिपेलवम् । तपस्विनी जटामांसी पृक्का देवी लता लशूः ॥६०॥
कर्चुरको द्राविड़को गन्धमूली शठी स्मृता । स्याद्दक्षगन्धा छगलान्त्रा वेगी वृद्धदारकः ॥
तुण्डिकेरी रक्तफला त्रिम्बिका पीलुपर्ण्यऽपि । चाङ्गेरी चुक्रिकाम्बष्ठा स्वर्णक्षीरी हिमावती ॥
सहस्रवेधी चुक्रोऽम्लवेतसः शतवेध्यपि । जीवन्ती जीवनी जीवा भूमिनिम्बः किरातकः ॥
कूर्चशीर्षो मधुकरश्चन्द्रः कपिवृकस्तथा । दद्रुघ्नः स्यादेड़गजो वर्षाभूः शोथहारिणी ॥६४॥
कुनन्दती निकुम्भस्त्रा[1] यमानी वार्षिका तथा । लशुनङ्गृञ्जनारिष्टमहाकन्दरसोनकाः ॥६५॥
वाराही वदरा गृष्टिः काकमाची तु वायसी । शतपुष्पा सितच्छत्राऽतिच्छत्रा मधुरा मिसिः ॥
अवाक्पुष्पी कारवी च सरणा तु प्रसारणी । कटम्भरा भद्रवला कर्च्चूरश्च शटी ह्यथ ॥६७॥
पटोलः कुलकस्तिक्तः कारवेल्लः कटिल्लकः । कुष्माण्डकस्तु कर्कारुरिर्वारुः कर्कटी स्त्रियौ ॥

---

१. सकुलदन्ती निर्दंष्ट्रेति ख. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इक्ष्वाकुः कटुतुम्बी स्याद्विशाला त्विन्द्रवारुणी ।
अर्शोघ्नः शूरणः कन्दो मुस्तकः कुरुविन्दकः ॥ ६९ ॥

वंशे त्वक्सारकर्म्मारवेणुमस्करतेजनाः । छत्रातिच्छत्रपालघ्नौ मालातृणकभूस्तृणे ॥७०॥
तृणराजाह्वयस्तालो घोण्टा क्रमुकपुगकौ । शार्दूलद्वीपिनौ व्याघ्रे हर्य्यक्षः केशरी हरिः ॥
कोलः पोत्री वराहः स्यात् कोक ईहामृगो वृकः । लूतोर्णनाभौ तु समौ तन्तुवायश्च मर्कटे ॥
वृश्चिकः शूककीटः स्यात्सारङ्गस्तोककौ समौ । कृकवाकुस्ताम्रचूडः पिकः कोकिल इत्यपि ।
काके तु करटारिष्टौ वकः कह्व उदाहृतः । कोकश्चक्रश्चक्रवाको कादम्बः कलहंसकः ॥७४॥
पतङ्गिका पुत्तिका स्यात्सरघा मधुमक्षिका । द्विरेफपुष्पलिड्भृङ्गषट्पदभ्रमराऽलयः ॥७५॥
केकी शिखय्यस्य वाक्केका शकुन्तिशकुनिद्विजाः । स्त्री पत्ततिः पक्षमूलञ्चञ्चुस्तोटिरुभे स्त्रियौ ॥
गतिरुडडीनसण्डीनौ कुलायो नीड़मस्त्रियां । पेशी कोषो द्विहीनेऽण्डं पृथुकः शावकः शिशु ॥
पोतः पाकोऽर्भको डिम्भः सन्दोहव्यूहको गणः । स्तोमौघनिकरव्राता निकुरम्बं कदम्बकं ॥

सङ्घातसञ्चयौ वृन्दं पुञ्जराशी तु कूटकं ॥ ७८ ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये भूमिवनौषध्यादिवर्गा नाम त्रिषष्ट्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ।

चतुःषष्ट्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः

नृब्रह्मक्षत्रविट्शूद्रवर्गाः ।

अग्निरुवाच ।

नृब्रह्मक्षत्रविट्शूद्रवर्गान्वक्ष्येऽथ नामतः । नरः पञ्चजना मर्त्त्या यद्योषाऽवला वधूः ॥१॥

कान्तार्थिनी तु या याति सङ्केतं साऽभिसारिका ।
कुलटा पुंश्चल्यसती नग्निका स्त्री च कोटवी ॥ २ ॥

कात्यायन्यर्द्धवृद्धा या सैरिन्ध्री परवेश्मगा । असिक्नी स्यादवृद्धा या मलिनी तु रजस्वला ॥

वारस्त्री गणिका वेश्या भ्रातृजायास्तु यातरः ।
ननान्दा तु स्वसा पत्युः सपिण्डास्तु सनाभयः ॥ ४ ॥

समानोदर्य्यसोदर्य्यसगर्भसहजास्समाः । सगोत्रबान्धवज्ञातिबन्धुस्वस्वजनाः समाः ॥५॥
दम्पती जम्पती भार्य्यापती जायापती च तौ । गर्भाशयो जरायुः स्यादुल्वञ्च कललोऽस्त्रियां ॥

गर्भो भ्रुण इमौ तुल्यौ क्लीवं शण्डो नपुंसकम् ।
स्यादुत्तानशयो डिम्भो बालो माणवकः स्मृतः ॥ ७ ॥

पिचिण्डिलो वृहत्कुक्षिरवभ्रटो नतनासिके । विकलाङ्गस्तु पोगण्ड आरोग्यं स्यादनामयम् ॥
स्यादेडे वधिरः कुब्जे गडुलः कुकरे कुनिः । क्षयः शोषश्च यक्ष्मा च प्रतिश्यायस्तु पीनसः ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

स्त्री क्षुत्क्षुतं क्षयं पुंसि कासस्तु क्षवथुः पुमान् ।
शोथस्तु श्वयथुः शोफः पादस्फोटो विपादिका ॥ १० ॥

किलासं सिध्मकच्छान्तु पाम पामा विचर्चिका । कोठो मण्डलकं कुष्ठं श्वित्रो दुर्न्नामकार्शसी॥
अनाहस्तु विबन्धः स्याद्ग्रहणी रुक्प्रवाहिका । बीजवीर्य्येन्द्रियं शुक्रं पललं क्रव्यमामिषं ॥
वुक्काऽग्रमांसं हृदयं हृन्मेदस्तु वपा वसा । पश्चाद्ग्रीवा शिरा मन्या नाडी तु धमनिः शिरा ॥

तिलकं क्लोम मस्तिष्कं दूषिका नेत्रयोर्मलम् ।
अन्त्रं पुरी तद्गुल्मस्तु प्लीहा पुंस्यऽथ वस्नसा ॥ १४ ॥
स्नायुः स्त्रियां कालखण्डयकृती तु ऽसमे इमे ।
स्यात् कर्परः कपालोऽस्त्री कीकसङ्कुल्यमस्थि च ॥ १५ ॥
स्याच्छरीरास्थ्नि कङ्कालः पृष्ठास्थ्नि तु कशेरुका ।
शिरोऽस्थनि करोटिः स्त्री पार्श्वास्थनि तु पर्शुका ॥ १६ ॥

अङ्गं प्रतीकोऽवयवः शरीरं वर्ष्म विग्रहः । कटो ना श्रोणिफलकं कटिः श्रोणिः ककुद्मती ॥
पश्चान्नितम्बः स्त्रीकट्याः क्लीवे तु जघनं पुरः । कूपकौ तु नितम्बस्थौ द्वयहीने ककुन्दरे ॥
स्त्रियां स्फिचौ कटिप्रोथावुपस्थो वक्ष्यमाणयोः । भगं योनिर्द्वयोः शिश्नो मेढ्रो मेहनशेफसी ॥

पिचिण्डकुक्षी जठरोदरं तुन्दं कुचौ स्तनौ ।
चूचुकन्तु कुचाग्रं स्यान्न ना क्रोडं भुजान्तरम् ॥ २० ॥
स्कन्धो भुजशिरोंऽशोऽस्त्री सन्धी तस्यैव जत्रुणी ।
पुनर्भवः कररुहो नखोऽस्त्री नखरोऽस्त्रियां ॥ २१ ॥

प्रादेशतालगोकर्णास्तर्जन्यादियुते तते । अङ्गुष्ठे सकनिष्ठे स्याद्वितस्तिर्द्वादशाङ्गुलः ॥२२॥
पाणौ चपेटप्रतलप्रहस्ता विस्तृताङ्गुलौ । बद्धमुष्टिकरो रत्निररत्निः स कनिष्ठवान् ॥२३॥

कम्बुग्रीवा त्रिरेखा साऽवटुर्घाटा कृकाटिका ।
अधः स्याच्चिबुकत्त्वौष्ठादथ गण्डौ गलो हनुः ॥ २४ ॥

अपाङ्गौ नेत्रयोरन्तौ कटाक्षोऽपाङ्गदर्शने । चिकुरः कुन्तलो वालः प्रतिकर्म प्रसाधनम् ॥२५॥
आकल्पवेशौ नेपथ्यं प्रत्यक्षं खेलयोगजम् । चूडामणिः शिरोरत्नं तरलो हारमध्यगः ॥२६॥
कर्णिका तालपत्रं स्याल्लम्बनं स्याल्ललन्तिका । मञ्जीरो नूपुरं पादे किङ्किणी क्षुद्रघण्टिका ॥
दैर्घ्यमायाम आरोहः परिणाहो विशालता । पटच्चरं जीर्णवस्त्रं संव्यानञ्चोत्तरीयकम् ॥२८॥
रचना स्यात् परिस्पन्द आभोगः परिपूर्णता । समुद्गकः सम्पुटकः प्रतिग्राहः पतद्ग्रहः ॥

इत्याग्नेये महापुराणे आग्नेये नृवर्गो नाम चतुःषष्ट्यधिक-
त्रिशततमोऽध्यायः ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पञ्चषष्ट्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः

ब्रह्मवर्गः ।

अग्निरुवाच

वंशोऽन्ववायो गोत्रं स्यात् कुलान्यभिजनान्वयौ ।
मन्त्रव्याख्याकृदाचार्य्य आदेष्टा त्वध्वरे व्रती ॥ १ ॥
यष्टा च यजमानः स्यात् ज्ञात्वारम्भ उपक्रमः ।
सतीर्थ्याश्चैकगुरवः सभ्याः सामाजिकास्तथा ॥ २ ॥
सभासदः सभास्तारा ऋत्विजो याजकाश्च ते ।
अध्वर्यूद्गातृहोतारो यजुःसामर्ग्विदः क्रमात् ॥ ३ ॥

चषालो यूपकटकः समे स्थण्डिलचत्वरे। आमिक्षा सा शृतोष्णे या क्षीरे स्याद्दधियोगतः ॥
पृषदाज्यं सदध्याज्ये परमान्नन्तु पायसम् । उपाकृतः पशुरसौ योऽभिमन्त्र्य क्रतौ हतः ॥
परम्पराकं शमनं प्रोक्षणञ्च वधार्थकम् । पूजा नमस्याऽपचितिः सपर्य्यार्चार्हणाः समाः ॥
वरिवस्या तु शुश्रूषा परिचर्य्याप्युपासनम् । नियमो व्रतमस्त्री तच्चोपवासादि पुण्यकम् ॥

मुख्यः स्यात् प्रथमः कल्पोऽनुकल्पस्तु ततोऽधमः ।
कल्पे विधिक्रमौ ज्ञेयौ विवेकः पृथगात्मता ॥ ८ ॥

संस्कारपूर्वं ग्रहणं स्यादुपाकरणं श्रुतेः । भिक्षुः परिव्राट् कर्मन्दी पाराशर्य्यपि मस्करी ॥९॥
ऋषयः सत्यवचसः स्नातकश्चाप्लुतव्रती । ये निर्जितेन्द्रियग्रामा यतिनो यतयश्च ते ॥१०॥
शरीरसाधनापेक्षं नित्यं यत् कर्म्म तद्यमः । नियमस्तु स यत् कर्म्मानित्यमागन्तुसाधनम् ॥

स्याद् ब्रह्मभूयं ब्रह्मत्वं ब्रह्मसायुज्यमित्यपि ॥ ११ ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये ब्रह्मवर्गो नाम पञ्चषष्ट्यधिक-
त्रिशततमोऽध्यायः ।

षट्षष्ट्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः

क्षत्रविट्शूद्रवर्गाः ।

अग्निरुवाच

मूर्द्धाभिषिक्तो राजन्यो बाहुजः क्षत्रियो विराट् । राजा तु प्रणताशेषसामन्तः स्यादधीश्वरः ॥

चक्रवर्त्ती सार्वभौमो नृपोऽन्यो मण्डलेश्वरः ।
मन्त्री धीसचिवोऽमात्यो महामात्राः प्रधानकाः ॥ २ ॥

द्रष्टरि व्यवहाराणां प्राड्विवाकाऽक्षदर्शकौ । भौरिकः कनकाध्यक्षोऽथाध्यक्षाधिकृतौ समौ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अन्तःपुरे त्वधिकृतः स्यादन्तर्वंशिको जनः ।
सौविदल्लाः कञ्चुकिनः स्थापत्याः सौविदाश्च ते ॥ ४ ॥

षण्डो वर्षवरस्तुल्याः सेवकार्थ्यनुजीविनः । विषयानन्तरो राजा शत्रुमित्रमतः परं ॥५॥
उदासीनः परतरः पार्ष्णिग्राहस्तु पृष्ठतः । चरः स्पशः स्यात्प्रणिधिरुत्तरः काल आयतिः ॥
तत्कालस्तु तदात्वं स्यादुदर्कः फलमुत्तरं । अदृष्टं वह्नितोयादि दृष्टं स्वपरचक्रजम् ॥७॥
भद्रकुम्भः पूर्णकुम्भो भृङ्गारः कनकालुका । प्रभिन्नो गर्जितो मत्तो वमथुः करशीकरः ॥८॥

स्त्रियां सृणिस्त्वङ्कुशोऽस्त्री परिस्तोमः कुथो द्वयोः ।
कर्णीरथः प्रवहणं दोला प्रेङ्खादिका स्त्रियां ॥ ९ ॥
आधोरणा हस्तिपका हस्त्यारोहा निषादिनः ।
भटा योधाश्च योद्धारः कञ्चुको वारणोऽस्त्रियां ॥ १० ॥

शीर्षण्यञ्च शिरस्त्रेऽथ तनुत्रं वर्म्म दंशनं । आमुक्तः प्रतिमुक्तश्च पिनद्धश्चापिनद्धवन ॥११॥
व्यूहस्तु बलविन्यासश्चक्रञ्चानीकमस्त्रियां । एकेभैकरथा त्र्यश्वाः पत्तिः पञ्चपदातिकाः ॥
पत्त्यङ्गैस्त्रिगुणैः सर्वैः क्रमादाख्या यथोत्तरं । सेनामुखं गुल्मगणौ वाहिनी पृतना चमूः ॥

अनीकिनी दशानीकिन्योऽक्षौहिण्यो गजादिभिः ।
धनुः कोदण्डइष्वासौ कोटिरस्याटनी स्मृता ॥ १४ ॥

नस्तकस्तु धनुर्मध्यं मौर्वी ज्या शिञ्जिनी गुणः । पृषत्कबाणविशिखा अजिह्मगखगाशुगाः ॥
तूणोपासङ्गतूणीरनिषङ्गा इषुधिर्द्वयोः । असिऋर्ष्टिश्च निस्त्रिंशः करवालः कृपाणवत् ॥१६॥

सरुः खड्गस्य मुष्टौ स्यादीली तु करपालिका ।
द्वयोः कुठारः सुधितिः छुरिका चासिपुत्रिका ॥ १७ ॥

प्रासस्तु कुन्तो विज्ञेयः सर्वला तोमरोऽस्त्रियां । वैतालिका बोधकरा मागधा वन्दिनस्तुतौ ॥
संशप्तकास्तु समयात्सङ्ग्रामादनिवर्तिनः । पताका वैजयन्ती स्यात् केतनं ध्वजमस्त्रियां ॥
अहं पूर्वमहं पूर्वमित्यहंपूर्विका स्त्रियां । अहमहमिका सा स्याद्योऽहङ्कारः परस्परम् ॥

शक्तिः पराक्रमः प्राणः शौर्य्यं स्थानसहोबलं ।
मूर्छा तु कश्मलं मोहोऽप्यवमर्दस्तु पीड़नं ॥ २१ ॥

अभ्यवस्कन्दनन्त्वभ्यासादनं विजयो जयः । निर्वासनं संज्ञपनं सारणं प्रतिघातनं ॥२२॥
स्यात्पञ्चता कालधर्मो दिष्टान्तः प्रलयोऽत्ययः । विशो भूमिस्पृशो वैश्या वृत्तिर्वर्तनजीवने ॥
कृष्यादिवृत्तयो ज्ञेयाः कुसीदं वृद्धिजीविका । उद्धारोऽर्थप्रयोगः स्यात्कणिशं सस्यमञ्जरी ॥

किंशारुः सस्यशूकं स्यात् स्तम्बो गुत्सस्तृणादिनः ।
धान्यं व्रीहिः स्तम्बकरिः कड़ङ्गरो वुषं स्मृतं ॥ २५ ॥

माषादयः शमीधान्ये शुकधान्ये यवादयः । तृणधान्यानि नीवाराः शूर्पं प्रस्फोटनं स्मृतं ॥
स्यूतप्रसेवौ कण्डोलपिटौ कटकिलिञ्जकौ । समानौ रसवत्यान्तु पाकस्थानमहानसे ॥२७॥
पौरोगवस्तदध्यक्षः सूपकारास्तु वल्लवाः । आरालिका आन्धसिकाः सूदा औदनिका गुणाः ॥
क्लीवेऽम्बरीषं भ्राष्ट्रो ना कर्कर्य्यालुर्गलन्तिका । आलिञ्जरः स्यान्मणिकं सुषवी कृष्णजीरके ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आरनालस्तु कुल्माषं वाह्लीकं हिङ्गु रामठं। निशा हरिद्रा पीता स्त्री खण्डे मत्स्यण्डिफाणिते ॥
कूर्चिका क्षीरविकृतिः स्निग्धं मसृणचिक्कणं । पृथुकः स्याच्चिपिटको धाना भ्रष्टयवास्त्रियः ॥
जेमनं लेप आहारो माहेयी सौरभी च गौः । युगादीनाञ्च वोढारो युग्यप्रासङ्ग्यशाटकाः ॥
चिरसूता वष्कयणी धेनुः स्यान्नवसूतिका । सन्धिनी वृषभाक्रान्ता वेहद्गर्भोपघातिनी ॥

पण्याजीवो ह्यापणिको न्यासश्चोपनिधिः पुमान् ।
विपणो विक्रयः सङ्ख्या सङ्ख्येये ह्यादश त्रिषु ॥ ३४ ॥
विंशत्याद्याः सदैकत्वे सर्व्वाः संख्येयसंख्ययोः ।
संख्यार्थे द्विबहुत्वे स्तस्तासु चानवतेः स्त्रियः ॥ ३५ ॥

पङ्क्तेः शतसहस्रादि क्रमाद्दशगुणोत्तरं । मानन्तुलाङ्गुलिप्रस्थैर्गुञ्जाः पञ्चाद्यमाषकः ॥३६॥
ते षोड़शाक्षः कर्षोऽस्त्री पलं कर्षचतुष्टयम् । सुवर्णविस्तौ हेम्नोऽक्षे कुरुविस्तस्तु तत्पले ॥३७॥

तुला स्त्रियां पलशतं भारः स्याद्विंशतिस्तुलाः ।
कार्षापणः कार्षिकः स्यात् कार्षिके ताम्रिके पणः ॥ ३८ ॥
द्रव्यं वित्तं स्वापतेयं रिक्थमृक्थं धनं वसु ।
रीतिः स्त्रियामारकूटो न स्त्रियामथ ताम्रकम ॥ ३९ ॥

शुल्वमौदुम्बरं लौहे तीक्ष्णं कालायसायसी । क्षारः काचोऽथ चपलो रसः सूतश्च पारदे ॥
गरलं माहिषं शृङ्गं त्रपुसीसकपिच्चटं । हिण्डीरोऽब्धिकफः फेणो मधूच्छिष्टन्तु सिक्थकम् ॥

रङ्गवङ्गे पिचुस्थूलो कूलटी तु मनःशिला ।
यवक्षारश्च पाक्यः स्यात् त्वक्क्षीरा वंशलोचना ॥ ४२ ॥
वृषला जघन्यजाः शूद्राश्चाण्डालान्त्याश्च शङ्कराः ।
कारुः शिल्पी संहतैस्तैर्द्वयोः श्रेणिः सजातिभिः ॥ ४३ ॥

रङ्गाजीवश्चित्रकरस्त्वष्टा तक्षा च वर्धकिः । नाडिन्धमः स्वर्णकारो नापितान्तावसायिनः ॥
जावालः स्यादजाजीवो देवाजीवस्तु देवलः । जायाजीवास्तु शैलूषा भृतको भृतिभुक्तथा ॥
विवर्णः पामरो नीचः प्राकृतश्च पृथग्जनः । विहीनोपसदो जाल्मो भृत्ये दासेरचेटकाः ॥४६॥
पटुस्तु पेशलो दक्षो मृगयुर्लुब्धकः स्मृतः । चण्डालस्तु दिवाकीर्त्तिः पुस्तं लेप्यादिकर्म्मणि ॥
पञ्चालिका पुत्रिका स्याद्वर्करस्तरुणः पशुः । मञ्जूषा पेटकः पेडा तुल्यसाधारणौ समौ ॥
प्रतिमा स्यात् प्रतिकृतिर्वर्गा ब्रह्मादयः स्मृताः ॥ ४८ ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये क्षत्रविट्शूद्रवर्गा नाम षट्षष्ट्यधिक-
त्रिशततमोऽध्यायः ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सप्तषष्ट्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः

सामान्यनामलिङ्गानि ।

अग्निरुवाच

सामान्यान्यऽथ वक्ष्यामि नामलिङ्गानि तच्छृणु ।
सुकृती पुण्यवान् धन्यो महेच्छस्तु महाशयः ॥ १ ॥

प्रवीणनिपुणाभिज्ञविज्ञनिष्णातशिक्षिताः । स्युर्वदान्यस्थूललक्षदानशौण्डा बहुप्रदे ॥२॥
कृती कृतज्ञः कुशल आसक्तोद्युक्त उत्सुकः । इभ्य आढ्यः परिवृढो ह्यधिभूर्नायकोऽधिपः ॥

लक्ष्मीवान् लक्ष्मणः श्रीलः स्वतन्त्रः स्वैर्य्यऽपावृतः ।
खलपूः स्याद्बहुकरो दीर्घसूत्रश्चिरक्रियः ॥ ४ ॥
जाल्मोऽसमीक्ष्यकारी स्यात् कुण्ठो मन्दः क्रियासु यः ।
कर्म्मशूरः कर्म्मठः स्याद्भक्षको वस्मरोऽद्मरः ॥ ५ ॥

लोलुपो गर्धलो गृध्नुर्विनीतप्रश्रितौ तथा । धृष्टे धृष्णुर्वियातश्च निभृतः प्रतिभान्विते ॥६॥
प्रगल्भो भीरुको भीरुर्वन्दारुरभिवादके । भूष्णुर्भविष्णुर्भविता ज्ञाता विदुरविन्दुकौ ।७॥
मत्तशौण्डोत्कटक्षीवाश्चण्डस्त्वत्यन्तकोपनः । देवानञ्चति देवद्र्यङ् विश्वद्र्यङ् विश्वगञ्चति ॥

यः सहाञ्चति स सध्र्यङ् स तिर्य्यङ् यस्तिरोऽञ्चति ।
वाचोयुक्तिः पटुर्वाग्मी वावदूकश्च वक्तरि ॥ ९ ॥
स्याज्जल्पकस्तु वाचालो वाचाटो बहुगर्ह्यवाक् ।
अपध्वस्तो धिक्कृतः स्याद् बद्धे कीलितसंयतौ ॥ १० ॥

वरणः शब्दनो नान्दीवादी नान्दीकरः समाः। व्यसनार्त्तोपरक्तौ द्वौ बद्धे कीलितसंयतौ[1] ॥
विहस्तव्याकुलौ तुल्यौ नृशंसक्रूरघातुकाः । पापो धूर्त्तो वञ्चकः स्यान्मूर्खे वैदेहवालिशौ ॥
कदर्य्ये कृपणक्षुद्रौ मार्गणो याचकार्थिनौ । अहङ्कारवानहंयुः स्याच्छुभंयुस्तु शुभान्वितः ॥
कान्तं मनोरमं रुच्यं हृद्याभीष्टे ह्यभीप्सिते । असारं फल्गु शून्यं वै मुख्यवर्य्यवरेण्यकाः ॥
श्रेयान् श्रेष्ठः पुष्कलः स्यात्प्राग्र्याग्र्यग्रीयमग्रिमं । वड्रोरु विपुलं पीनपीव्नी तु स्थूलपीवरे ॥
स्तोकाल्पक्षुल्लकाः सूक्ष्मं श्लक्ष्णं दभ्रं कृशान्तनु । मात्राकुटीलवकणा भूयिष्ठं पुरुहं पुरु ॥
अखण्डं पूर्णसकलमुपकण्ठान्तिकाभितः । समीपे सन्निधाभ्यासौ नेदिष्ठं सुसमीपकं ॥१७॥
सुदूरे तु दविष्ठं स्याद्वृत्तं निस्तलवर्तुले । उच्चप्रांशून्नतोदग्रा ध्रुवो नित्यः सनातनः ॥१८॥
आविद्धं कुटिलं भुग्नं वेल्लितं वक्रमित्यपि । चञ्चलं तरलञ्चैव कठोरं जठरं दृढं ॥१९॥
प्रत्यग्रोऽभिनवो नव्यो नवीनो नूतनो नवः । एकतानोऽनन्यवृत्तिरुच्चण्डमविलम्बितं ॥२०।
उच्चावचं नैकभेदं सम्बाधकलिलं तथा । तिमितं स्तिमितं क्लिन्नमभियोगस्त्वभिग्रहः ॥२१॥

---

१. पाठोऽयं पुनरुक्तिदोषेण दुष्टः ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

स्फातिर्वृद्धौ प्रथा ख्यातौ समाहारः समुच्चयः। अपहारस्त्वपचयो विहारस्तु परिक्रमः॥२२॥

प्रत्याहार उपादानं निर्द्धारोऽभ्यवकर्षणं।
विघ्नोऽन्तरायः प्रत्यूहः स्यादास्या त्वासना स्थितिः॥ २३॥

सन्निधिः सन्निकर्षः स्यात्संक्रमो दुर्गसञ्चरः। उपलम्भस्त्वनुभवः प्रत्यादेशो निराकृतिः॥
परिरम्भः परिष्वङ्गः संश्लेष उपगूहनं। अनुमा पक्षहेत्वाद्यैर्डिम्बे भ्रमरविप्लवौ॥२५॥
असन्निकृष्टार्थज्ञानं शब्दाद्धि शाब्दमीरितं। सादृश्यदर्शनात्तुल्ये बुद्धिः स्यादुपमानकं॥
कार्य्य दृष्ट्वा विना नस्यादर्थापत्तिः परार्थधीः। प्रतियोगिन्यऽगृहीते भुवि नास्तीत्यभावकः॥

इत्यादिनामलिङ्गो हि हरिरुक्तो नृबुद्धये॥ २७॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये सामान्यनामलिङ्गानि नाम सप्तषष्ट्यधिक-
त्रिशततमोऽध्यायः।

अष्टषष्ट्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः

नित्यनैमित्तिकप्राकृतप्रलयाः।

अग्निरुवाच

चतुर्विधस्तु प्रलयो नित्यो यः प्राणिनां लयः।
सदा विनाशो जातानां ब्राह्मो नैमित्तिको लयः॥ १॥

चतुर्युगसहस्रान्ते प्राकृतः प्राकृतो लयः। लय आत्यन्तिको ज्ञानादात्मनः परमात्मनि॥२॥
नैमित्तिकस्य कल्पान्ते वक्ष्ये रूपं लयस्य ते। चतुर्युगसहस्रान्ते क्षीणप्राये महीतले॥३॥
अनावृष्टिरतीवोग्रा जायते शतवार्षिकी। ततः सत्त्वक्षयः स्याच्च ततो विष्णुर्जगत्पतिः॥४॥
स्थितो जलानि पिबति भानोः सप्तसु रश्मिषु। भूपातालसमुद्रादितोयं नयति संक्षयं॥५॥
ततस्तस्यानुभावेन तोयाहारोपबृंहिताः। त एव रश्मयः सप्त जायन्ते सप्त भास्कराः॥६॥
दहन्त्यऽशेषं त्रैलोक्यं सपातालतलं द्विज। कूर्म्मपृष्ठसमा भूः स्यात्ततः कालाग्निरुद्रकः॥७॥
शेषाहिश्वाससम्पातात् पातालानि दहत्यधः। पातालेभ्यो भुवं विष्णुर्भुवः स्वर्गं दहत्यतः॥
अम्बरीषमिवाभाति त्रैलोक्यमखिलं तथा। ततस्तापपरीतास्तु लोकद्वयनिवासिनः॥९॥
गच्छन्ति ते महर्लोकं महर्लोकाज्जनं ततः। रुद्ररूपी जगद्दग्ध्वा मुखनिश्वासतो हरेः॥१०॥
उत्तिष्ठन्ति ततो मेघा नानारूपाः सविद्युतः। शतं वर्षाणि वर्षन्तः शमयन्त्यग्निमुत्थितम्॥

सप्तर्षिस्थानमाक्रम्य स्थितेऽम्भसि शतं मरुत्।
मुखनिश्वासतो विष्णोर्नाशं नयति तान् घनान्॥ १२॥

वायुं पीत्वा हरिः शेषे शेते चैकार्णवे प्रभुः। ब्रह्मरूपधरः सिद्धैर्जलगैर्मुनिभिस्तुतः॥१३॥
आत्ममायामयीं दिव्यां योगनिद्रां समास्थितः। आत्मानं वासुदेवाख्यं चिन्तयन्मधुसूदनः॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कल्पं शेते प्रबुद्धोऽथ ब्रह्मरूपी सृजत्यसौ। द्विपरार्धन्ततो व्यक्तं प्रकृतौ लीयते द्विज ॥
स्थानात् स्थानं दशगुणमेकस्माद् गुण्यते स्थले। ततोऽष्टादशमे भागे परार्द्धमभिधीयते ॥
परार्धं द्विगुणं यत्तु प्राकृतः प्रलयः स्मृतः। अनावृष्ट्याऽग्निसम्पर्कात् कृते संज्वलने द्विज ॥
महदादेर्विकारस्य विशेषान्तस्य संक्षये। कृष्णेच्छाकारिते तस्मिन् सम्प्राप्ते प्रतिसञ्चरे ॥
आपो ग्रसन्ति वै पूर्व्वं भूमेर्गन्धादिकं गुणं। आत्मगन्धात्ततो भूमिः प्रलयत्वाय कल्पते ॥
रसात्मिकाश्च तिष्ठन्ति ह्यापस्तासां रसो गुणः। पीयते ज्योतिषा तासु नष्टास्वग्निश्च दीप्यते॥
ज्योतिषोऽपि गुणं रूपं वायुर्ग्रसति भास्करं। नष्टे ज्योतिषि वायुश्च बली दोधूयते महान् ॥
वायोरपि गुणं स्पर्शमाकाशं ग्रसते ततः। वायौ नष्टे तु चाकाशन्नीरवं तिष्ठति द्विज ॥२२॥
आकाशस्याथ वै शब्दं भूतादिर्ग्रसते च खं। अभिमानात्मकं खञ्च भूतादिं ग्रसते महान् ॥

भूमिर्याति लयञ्चाप्सु आपो ज्योतिषि तद्व्रजेत्।
वायौ वायुश्च खे खञ्च अहङ्कारे लयं स च ॥ २४ ॥

महत्तत्त्वे महान्तञ्च प्रकृतिर्ग्रसते द्विज। व्यक्ताऽव्यक्ता च प्रकृतिर्व्यक्तस्याव्यक्तके लयः ॥
पुमानेकाक्षरः शुद्धः सोऽप्यंशः परमात्मनः। प्रकृतिः पुरुषश्चैतौ लीयेते परमात्मनि ॥२६॥
न सन्ति यत्र सर्वेशे नामजात्यादिकल्पनाः। सत्तामात्रात्मके ज्ञेये ज्ञानात्मन्यात्मनः परे ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये नित्यनैमित्तिकप्राकृतप्रलया नामाष्टषष्ट्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः।

ऊनसप्तत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः

आत्यन्तिकलयगर्भोत्पत्तिनिरूपणम्।

अग्निरुवाच

आत्यन्तिकं लयं वक्ष्ये ज्ञानादात्यन्तिको लयः।
आध्यात्मिकादिसन्तापं ज्ञात्वा स्वस्य विरागतः ॥ १ ॥

आध्यात्मिकस्तु सन्तापः शारीरो मानसो द्विधा। शारीरो बहुभिर्भेदैस्तापोऽसौ श्रूयतां द्विज ॥
त्यक्त्वा जीवो भोगदेहं गर्भमाप्नोति कर्मभिः। आतिवाहिकसंज्ञस्तु देहो भवति वै द्विज ॥
केवलं स मनुष्याणां मृत्युकाल उपस्थिते। याम्यैः पुंभिर्मनुष्याणां तच्छरीरं द्विजोत्तमाः ॥
नीयते याम्यमार्गेण नान्येषां प्राणिनां मुने। ततः स्वर्य्याति नरकं स भ्रमेद्घटयन्त्रवत् ॥
कर्मभूमिरियं ब्रह्मन् फलभूमिरसौ स्मृता। यमो योनीश्च नरकं निरूपयति कर्मणा ॥६॥
पूरणीयाश्च तेनैव यमञ्चैवानुपश्यतां। वायुभूताः प्राणिनश्च गर्भन्ते प्राप्नुवन्ति हि। ७॥
यमदूतैर्मनुष्यस्तु नीयते तञ्च पश्यति। धर्म्मी च पूज्यते तेन पापिष्ठस्ताड्यते गृहे। ८॥
शुभाशुभं कर्म्म तस्य चित्रगुप्तो निरूपयेत्। बान्धवानामशौचे तु देहे खल्वातिवाहिके ॥९॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तिष्ठन्नयति धर्म्मज्ञ दत्तपिण्डाशनन्ततः । तन्त्यक्त्वा प्रेतदेहन्तु प्राप्यान्यं प्रेतलोकतः[१] ॥१०॥
वसेन् क्षुधा तृषा युक्त आमश्राद्धान्नभुङ्नरः । आतिवाहिकदेहात्तु प्रेतपिण्डैर्विना नरः ॥
न हि मोक्षमवाप्नोति पिण्डांस्तत्रैव सोऽश्नुते । कृते सपिण्डीकरणे नरः संवत्सरात्परं । १२॥
प्रेतदेहं समुत्सृज्य भोगदेहं प्रपद्यते । भोगदेहावुभौ प्रोक्तावशुभशुभसंज्ञितौ ॥१३॥
भुक्त्वा तु भोगदेहेन कर्म्मबन्धान्निपात्यते । तं देहं परतस्तस्माद्भक्षयन्ति निशाचराः ॥
पापे तिष्ठति चेन स्वर्गं तेन भुक्तं तदा द्विज । तदा द्वितीयं गृह्णाति भोगदेहन्तु पापिनां ॥
भुक्त्वा पापन्तु वै पश्चाद्येन भुक्तं त्रिपिष्टपं । शुचीनां श्रीमतां गेहे स्वर्गभ्रष्टोऽभिजायते ॥

पुण्ये तिष्ठति चेत्पापन्तेन भुक्तं तदा भवेत् ।
तस्मिन् सम्भक्षिते देहे शुभं गृह्णाति विग्रहम् ॥ १७ ॥

कर्म्मण्यल्पावशेषे तु नरकादपि मुच्यते । मुक्तस्तु नरकाद्याति तिर्य्यग्योनिं न संशयः ॥
जीवः प्रविष्टो गर्भन्तु कललेऽप्यत्र तिष्ठति[२] । घनीभूतं द्वितीये तु तृतीयेऽवयवास्ततः ॥१९॥
चतुर्थेऽस्थीनि त्वङ्मांसम्पञ्चमे रोमसम्भवः । षष्ठे चेतोऽथ जीवस्य दुःखं विन्दति सप्तमे ॥
जरायुवेष्टिते देहे मूर्द्ध्नि बद्धाञ्जलिस्तथा । मध्ये क्लीवस्तु वामे स्त्री दक्षिणे पुरुषस्थितिः ॥
तिष्ठत्युदरभागे तु पृष्ठस्याभिमुखस्तथा । यस्यां तिष्ठत्यसौ योनौ तां स वेत्ति न संशयः ॥
सर्वञ्च वेत्ति वृत्तान्तमारभ्य नरजन्मनः । अन्धकारञ्च महतीं पीडां विन्दति मानवः ॥२३॥
मातुराहारपीतन्तु सप्तमे मास्युपाश्नुते । अष्टमे नवमे मासि भृशमुद्विजते तथा ॥२४॥
व्यवाये पीड़ामाप्नोति मातुर्व्यायामके तथा । व्याधिश्च व्याधितायां स्यान्मुहूर्त्तं शतवर्षवत् ॥
सन्तप्यते कर्मभिस्तु कुरुतेऽथ मनोरथान् । गर्भाद्विनिर्गतो ब्रह्मन् मोक्षज्ञानं करिष्यति ॥
सूतिवातैरधोभूतो निःसरेद् योनियन्त्रतः । पीड्यमानो मासमात्रं करस्पर्शेन दुःखितः ॥२७॥

खशब्दात् क्षुद्रश्रोतांसि देहे श्रोत्रं विविक्तता ।
श्वासोच्छ्वासौ गतिर्वायोर्वक्रसंस्पर्शनं तथा[३] ॥ २८ ॥

अग्नेरूपं दर्शनं स्यादूष्मा पङ्क्तिश्च पित्तकं । मेधा वर्णं बलं छाया तेजः शौर्य्यं शरीरके ॥
जलात्स्वेदश्च रसनन्देहे वै संप्रजायते । क्लेदो वसा रसा रक्तं शुक्रमूत्रकफादिकं ॥३०॥
भूमेर्घ्राणं केशनखं गौरवं स्थिरतोऽस्थितः । मातृजानि मृदून्यत्र त्वङ्मांसहृदयानि च ॥

नाभिर्मज्जा[४] शकृन्मेदः क्लेदान्यामाशयानि च ।
पितृजानि शिरास्नायुशुक्रञ्चैवात्मजानि तु ॥ ३२ ॥

कामक्रोधौ भयं हर्षो धर्म्माधर्म्मात्मता तथा । आकृतिः स्वरवर्णौ तु मेहनाद्यं तथा च यत् ॥
तामसानि तथाऽज्ञानं प्रमादालस्यतृट्क्षुधाः । मोहमात्सर्य्यवैगुण्यशोकायासभयानि च ॥
कामक्रोधौ तथा शौर्य्यं यज्ञेप्सा बहुभाषिता । अहङ्कारः परावज्ञा राजसानि महामुने ॥३५॥

---

१. प्रेतलौकिके इति ख. ।
२. गच्छतीति क. ।
३. श्वासोच्छ्वासौ सनिर्वापौ वाह्यसंस्पर्शनमिति ञ. ।
४. नाभिर्मेदमिति ख. ञ. च ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

धर्म्मेप्सा मोक्षकामित्वं परा भक्तिश्च केशवे ।
दाक्षिण्यं व्यवसायित्वं सात्त्विकानि विनिर्दिशेत् ॥ ३६ ॥

चपलः क्रोधनो भीरुर्बहुभाषी कलिप्रियः । स्वप्ने गगनगश्चैव बहुवातो नरो भवेत् ॥३७॥
अकालपलितः क्रोधी महाप्राज्ञो रणप्रियः । स्वप्ने च दीप्तिमत्प्रेक्षी बहुपित्तो नरो भवेत् ॥

स्थिरमित्रः स्थिरोत्साहः स्थिराङ्गो द्रविणान्वितः ।
स्वप्ने जलसितालोकी बहुश्लेष्मा नरो भवेत् ॥ ३९ ॥

रसस्तु प्राणिनां देहे जीवनं रुधिरं तथा । लेपनञ्च तथा मांसमेहस्नेहकरन्तु तत् ॥४०॥
धारणन्त्वऽस्थि मज्जा स्यात्पूरणं वीर्य्यवर्धनं । शुक्रवीर्यकरं ह्योजः प्राणकृज्जीवसंस्थितिः ॥
ओजः शुक्रात् सारतरमापीतं हृदयोपगं । षडङ्गशक्थिनी बाहुर्मूर्धा जठरमीरितं ॥४२॥
षट्त्वचा बाह्यतो यद्वदन्या रुधिरधारिका । त्रिलासधारिणी चान्या चतुर्थी कुण्डधारिणी ॥
पञ्चमी विद्रधिस्थानं षष्ठी प्राणधरा मता । कला सप्तमी मांसधरा द्वितीया रक्तधारिणी॥४४॥
यकृत्प्लीहाश्रया चान्या मेदोधराऽस्थिधारिणी। मज्जाश्लेष्मपुरीषाणां धरा पक्वाशयस्थिता ॥
षष्ठी पित्तधरा शुक्रधरा शुक्राशयाऽपरा ॥ ४५ ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये आत्यन्तिकलयगर्भोत्पत्तिनिरूपणं नामोनसप्तत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ।

सप्तत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः

शरीरावयवाः ।

अग्निरुवाच

श्रोत्रं त्वक् चक्षुषी जिह्वा घ्राणं धीः खञ्च भूतगं ।
शब्दस्पर्शरूपरसगन्धाः खादिषु तद्गुणाः ॥ १ ॥

पायूपस्थौ करौ पादौ वाग्भवेन कर्मखन्तथा । उत्सर्गानन्दकादानगतिवागादि कर्म्म तत् ॥
पञ्चकर्म्मेन्द्रियाण्यत्र पञ्चबुद्धीन्द्रियाणि च । इन्द्रियार्थाश्च पञ्चैव महाभूता मनोऽधिपाः ॥
आत्माऽव्यक्तश्चतुर्विंशतत्त्वानि पुरुषः परः । संयुक्तश्च वियुक्तश्च यथा मत्स्योदके उभे ॥
अव्यक्तमाश्रितानीह रजःसत्त्वतमांसि च । आन्तरः पुरुषो जीवः स परं ब्रह्म कारणं ॥५॥
स याति परमं स्थानं यो वेत्ति पुरुषं परं । सप्ताशयाः स्मृता देहे रुधिरस्यैक आशयः ॥६॥
श्लेष्मणश्चामपित्ताभ्यां पक्वाशयस्तु पञ्चमः । वायुमूत्राशयः सप्तः स्त्रीणां गर्भाशयोऽष्टमः ॥
पित्तात्पक्वाशयोऽग्नेः स्याद्योनिर्विकशिता द्युतौ । पद्मवद्गर्भाशयः स्यात्तत्र धत्ते सरक्तकं ॥
शुक्रं स्वशुक्रतश्चाङ्गं कुन्तलान्यत्र कालतः । न्यस्तं शुक्रमतो योनौ नेति गर्भाशयं मुने ॥
ऋतावपि च योनिश्चेद्वातपित्तकफावृता । भवेत्तदा विकाशित्वं नैव तस्यां प्रजायते ॥१०॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वुक्कात्पुक्कसकप्लीहकृतकोष्ठाङ्गहृद्व्रणाः । तण्डकश्च महाभाग निबद्धान्याशये मतः ॥११॥
रसस्य पच्यमानस्य साराद्भवति देहिनां । प्लीहा यकृच्च धर्म्मज्ञ रक्तफेणाच्च पुक्कसः ॥
रक्तं पित्तञ्च भवति तथा तण्डकसंज्ञकः । मेदोरक्तप्रसाराच्च वुक्कायाः सम्भवः स्मृतः ॥
रक्तमांसप्रसाराच्च भवन्त्यन्त्राणि देहिनां । सार्धत्रिव्यामसंख्यानि तानि नृणां विनिर्दिशेत् ॥

त्रिव्यामानि तथा स्त्रीणां प्राहुर्वेदविदो जनाः ।
रक्तवायुसमायोगात् कामेयस्योद्भवः स्मृतः ॥ १५ ॥

कफप्रसाराद्भवति हृदयं पद्मसन्निभं । अधोमुखं तच्छुपिरं यत्र जीवो व्यवस्थितः ॥१६॥

चैतन्यानुगता भावाः सर्वे तत्र व्यवस्थिताः ।
तस्य वामे तथा प्लीहा दक्षिणे च तथा यकृत् ॥ १७ ॥

दक्षिणे च तथा क्लोम पद्मस्यैवं प्रकीर्त्तितं । श्रोतांसि यानि देहेऽस्मिन् कफरक्तवहानि च ॥
तेषां भूतानुमानाच्च भवतीन्द्रियसम्भवः । नेत्रयोर्मण्डलं शुक्लं कफाद्भवति पैतृकं ॥१९॥
कृष्णञ्च मण्डलं वातात्तथा भवति मातृकं । पित्तात्त्वङ्मण्डलं ज्ञेयं मातापितृसमुद्भवं ॥
मांसासृक्कफजा जिह्वा मेदोऽसृक्कफमांसजौ । वृषाणौ दश प्राणस्य ज्ञेयान्यायतनानि तु ॥२१॥
मूर्द्धा हृन्नाभिकण्ठाश्च जिह्वा शुक्रञ्च शोणितं । गुदं वस्तिश्च गुल्फञ्च कण्डुराः षोड़शेरिताः॥
द्वे करे द्वे च चरणे चतस्रः पृष्ठतो गले । देहे पादादिशीर्षान्ते जालानि चैव षोड़श ॥२३॥
मांसस्नायुशिरास्थिन्यः चत्वारश्च पृथक् पृथक् । मणिबन्धनगुल्फेषु निबद्धानि परस्परं ॥

षट्कूर्चानि स्मृतानीह हस्तयोः पादयोः पृथक् ।
ग्रीवायाञ्च तथा मेढ्रे कथितानि मनीषिभिः ॥ २५ ॥

पृष्ठवंशस्योपगताश्चतस्रो मांसरज्जवः । नवत्यश्च तथा पेश्यस्तासां बन्धनकारिकाः ॥२६॥
सीरण्यश्च तथा सप्त पञ्च मूर्द्धानमाश्रिताः । एकैका मेढ्रजिह्वास्ता अस्थि षष्टिशतत्रयं ॥२७॥
सूक्ष्मैः सह चतुःषष्टिदर्शना विंशतिर्नखाः । पाणिपादशलाकाश्च तासां स्थानचतुष्टयं ॥२८॥
षष्ट्यङ्गुलीनां द्वे पाष्ण्योर्गुल्फेषु च चतुष्टयं । चत्वार्य्यरत्न्योरस्थीनि जङ्घयोस्तद्वदेव तु ॥
द्वे द्वे जानुकपोलोरुफलकांशसमुद्भवं । अक्षस्थानांशकश्रोणिफलके चैवमादिशेत ॥३०॥
भगास्तोकं तथा पृष्ठे चत्वारिंशच्च पञ्च च । ग्रीवायाञ्च तथाऽस्थीनि जत्रुकञ्च तथा हनुः ॥
तन्मूलं द्वे ललाटाक्षिगण्डनासाङ्घ्र्यवस्थिताः । पर्शुकास्तालुकैः सार्द्धमर्वुदैश्च द्विसप्ततिः ॥३२॥
द्वे शङ्खके कपालानि चत्वार्येव शिरस्तथा । उरः सप्तदशास्थीनि सन्धीनां द्वे शते दश ॥३३॥
अष्टषष्टिस्तु शाखासु षष्टिश्चैकविवर्जिता । अन्तरा वै त्र्यशीतिश्च स्नायोर्न्नवशतानि च ॥
त्रिंशाधिके द्वे शते तु अन्तराधौ तु सप्ततिः । ऊर्द्ध्वगाः षट्शतान्येव शाखास्तु कथितानि तु ॥
पञ्चपेशीशतान्येव[1] चत्वारिंशत्तथोर्द्ध्वगाः । चतुःशतन्तु शाखासु अन्तराधौ च षष्टिका ॥
स्त्रीणां चैकाधिका वै स्याद्विंशतिश्चतुरुत्तरा । स्तनयोर्दश योनौ च त्रयोदश तथाशये ॥३७॥
गर्भस्य च चतस्रः स्युः शिराणाञ्च शरीरिणां । त्रिंशच्छतसहस्राणि तथान्यानि नवैव तु ॥

---

१. पञ्चपेशीशतान्यत्रेति ख. ञ. च ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

षट्पञ्चाशत्सहस्राणि रसन्देहे वहन्ति ताः । केदार इव कुल्याश्च क्लेदलेपादिकञ्च यत् ॥
द्वासप्ततिस्तथा कोष्ठ्यो व्योम्नामिह महामुने । मज्जाया मेदसश्चैव वसायाश्च तथा द्विज ॥
मूत्रस्य चैव पित्तस्य श्लेष्मणः शकृतस्तथा। रक्तस्य सरसस्यात्र क्रमशोऽञ्जलयो मताः ॥४१॥
अर्द्धार्द्धाभ्यधिकाः सर्व्वाः पूर्वपूर्वाऽञ्जलेर्मताः । अर्द्धाञ्जलिश्च शुक्रस्य तदर्धञ्च तथौजसः ॥
रजसस्तु तथा स्त्रीणाञ्चतस्रः कथिता बुधैः। शरीरं मलदोषादि पिण्डं ज्ञात्वात्मनि त्यजेद्[1]॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये शरीरावयवा नाम सप्तत्यधिक-

त्रिशततमोऽध्यायः ।

एकसप्तत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः

नरकनिरूपणम् ।

अग्निरुवाच

उक्तानि यममार्गाणि वक्ष्येऽथ मरणे नृणां । ऊष्मा प्रकुपितः काये तीव्रवायुसमीरितः ॥१॥
शरीरमुपरुध्याऽथ कृत्स्नान्दोषान्रुणद्धि वै । छिनत्ति प्राणस्थानानि पुनर्मर्माणि चैव हि ॥

शैत्यात् प्रकुपितो वायुश्छिद्रमन्विष्यते ततः ।
द्वे नेत्रे द्वौ तथा कर्णौ द्वौ तु नासापुटौ तथा ॥ ३ ॥

ऊद्ध्वन्तु सप्त च्छिद्राणि अष्टमं वदनं तथा । एतैः प्राणो विनिर्याति प्रायशः शुभकर्मणां ॥

अधः पायुरुपस्थञ्च अनेनाशुभकारिणां ।
मूर्द्धानं योगिनो भित्त्वा जीवो यात्यथ चेच्छया ॥ ५ ॥

अन्तकाले तु सम्प्राप्ते प्राणेऽपानमुपस्थिते । तमसा संवृते ज्ञाने संवृतेषु च मर्म्मसु ॥६॥
स जीवो नाभ्यधिष्ठानश्चाल्यते मातरिश्वना । बाध्यमाणश्चानयते अष्टाङ्गाः प्राणवृत्तिकाः ॥
च्यवन्तं जायमानं वा प्रविशन्तञ्च योनिषु । प्रपश्यन्ति च तं सिद्धा देवा दिव्येन चक्षुषा ॥
गृह्णाति तत्क्षणाद् योगे शरीरञ्चातिवाहिकम् । आकाशवायुतेजांसि विग्रहादूर्ध्वगामिनः ॥
जलं मही च पञ्चत्वमापन्नः पुरुषः स्मृतः । आतिवाहिकदेहन्तु यमदूता नयन्ति तं ॥१०॥
याम्यं मार्गं महाघोरं षड़शीतिसहस्रकम । अन्नोदकं नीयमानो बान्धवैर्दत्तमश्नुते ॥११॥
यमं दृष्ट्वा यमोक्तेन चित्रगुप्तेन चेरितान् । प्राप्नोति नरकान्रौद्रान्धर्मी शुभपथैर्दिवम् ॥१२॥
भुज्यन्ते पापिभिर्वक्ष्ये नरकांस्ताश्च यातनाः । अष्टाविंशतिरेवाधः क्षितेर्नरककोटयः ॥१३॥

सप्तमस्य तलस्यान्ते घोरे तमसि संस्थिताः ।
घोराख्या प्रथमा कोटिः सुघोरा तदधः स्थिता ॥ १४ ॥

अतिघोरा महाघोरा घोररूपा च पञ्चमी । षष्ठी तरलताराख्या सप्तमी च भयानका ॥१५॥

---

१. पिण्डं कृत्वा तु विन्यसेदिति ञ. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भयोत्कटा कालरात्री महाचण्डा च चण्डया। कोलाहला प्रचण्डाख्या पद्मा नरकनायिका॥
पद्मावती भीषणा च भीमा चैव करालिका। विकराला महावज्रा त्रिकोणा पञ्चकोणिका॥
सुदीर्घा वर्तुला सप्तभूमा चैव सुभूमिका। दीप्तमायाऽष्टाविंशतयः कोटयः पापिदुःखदाः॥
अष्टाविंशतिकोटीनां पञ्च पञ्च च नायकाः। रौरवाद्याः शतञ्चैकं चत्वारिंशच्चतुष्टयं॥१९॥
तामिस्रमन्धतामिस्रं महारौरवरौरवौ। असिपत्रं वनञ्चैव लोहभारं तथैव च॥२०॥
नरकं कालसूत्रञ्च महानरकमेव च। सञ्जीवनं महावीचि तपनं सम्प्रतापनं॥२१॥
सङ्घातञ्च सकाकोलं कुड्मलं पूतिमृत्तिकं। लोहशङ्कुमृजीपञ्च प्रधानं शाल्मलीं नदीम्॥२२॥
नरकान् विद्धि कोटीशनागान्वै घोरदर्शनान्। पात्यन्ते पापकर्म्माण एकैकस्मिन्बहुष्वपि॥
मार्जारोलूकगोमायुगृध्रादिवदनाश्च ते। तैलद्रोण्यां नरं क्षिप्त्वा ज्वालयन्ति हुताशनं॥२४॥
अम्बरीषेषु चैवान्यांस्ताम्रपात्रेषु चापरान्। अयःपात्रेषु चैवान्यान् बहुवह्निकणेषु च।२५॥
शूलाग्रारोपिताश्चान्ये छिद्यन्ते नरकेऽपरे। ताड्यन्ते च कशाभिस्तु भोज्यन्ते चाप्ययोगुडान्॥
यमदूतैर्नराः पांशून्विष्ठारक्तकफादिकान्। तप्तं मद्यं पाययन्ति पाटयन्ति पुनर्नरान्॥२७॥

यन्त्रेषु पीडयन्ति स्म भक्ष्यन्ते वायसादिभिः।
तैलेनोष्णेन सिच्यन्ते छिद्यन्ते नैकधा शिरः॥ २८॥

हा तातेति क्रन्दमानाः स्वकन्निन्दन्ति कर्म्म ते। महापातकजान्घोरान्नरकान्प्राप्य गर्हितान्॥
कर्म्मक्षयात्प्रजायन्ते महापातकिनस्त्विह। मृगश्वशूकरोष्ट्राणां ब्रह्महा योनिमृच्छति॥३०॥
खरपुक्कशम्लेच्छानां मद्यपः स्वर्णहार्य्यपि। कृमिकीटपतङ्गत्वं गुरुगस्तृणगुल्मतां॥३१॥
ब्रह्महा क्षयरोगी स्यात् सुरापः श्यावदन्तकः। स्वर्णहारी तु कुनखी दुश्चर्म्मा गुरुतल्पगः॥
यो येन संस्पृशत्येषां स तल्लिङ्गोऽभिजायते। अन्नहर्ता मायावी स्यान्मूको वागपहारकः॥

धान्यं हृत्वाऽतिरिक्ताङ्गः पिशुनः पूतिनासिकः।
तैलहृत्तैलपायी स्यात पूतिवक्त्रस्तु सूचकः॥ ३४॥

परस्य योषितं हृत्वा ब्रह्मस्वमपहृत्य च। अरण्ये निर्जने देशे जायते ब्रह्मराक्षसः॥३५॥
रत्नहारी हीनजातिर्गन्धान् छुछुन्दरी शुभान्। पत्रं शाकं शिखी हृत्वा मुखरो धान्यहारकः॥
अजः पशुंपयः काको यानमुष्ट्रः[1] फलं कपिः। मधु दंशः फलं गृध्रो गृहकाक उपस्करं॥३७॥
श्वित्री वस्त्रं सारसञ्च झिल्ली लवणहारकः। उक्त आध्यात्मिकस्तापः शस्त्राद्यैराधिभौतिकः॥
ग्रहाग्निदेवपीडाद्यैराधिदैविक ईरितः। त्रिधा तापं हि संसारं ज्ञानयोगाद्विनाशयेत्॥

कृच्छ्रैर्व्रतैश्च दानाद्यैर्विष्णुपूजादिभिर्नरः॥ ३९॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये नरकनिरूपणं नामैकसप्तत्यधिक-
त्रिशततमोऽध्यायः।

---

१. यानं वस्तइति च.।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

द्विसप्तत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः

यमनियमाः ।

अग्निरुवाच

संसारतापमुक्त्यर्थं वक्ष्याम्यष्टाङ्गयोगकं । ब्रह्मप्रकाशकं ज्ञानं[1] योगस्तत्रैकचित्तता ॥१॥
चित्तवृत्तिनिरोधश्च जीवब्रह्मात्मनोः परः । अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्य्यापरिग्रहौ ॥२॥
यमाः पञ्च स्मृता विप्र नियमाद्भुक्तिमुक्तिदाः । शौचं सन्तोषतपसी स्वाध्यायेश्वरपूजने ॥
भूतापीड़ा ह्यहिंसा स्यादहिंसा धर्म्म उत्तमः । यथा गजपदेऽन्यानि[2] पदानि पथगामिनां[3] ॥
एवं सर्वमहिंसायां धर्म्मार्थमभिधीयते । उद्वेगजननं हिंसा सन्तापकरणन्तथा ॥५॥
रुक्कृतिः शोनितकृतिः पैशुन्यकरणन्तथा । हितस्यातिनिषेधश्च मर्मोद्घाटनमेव च ॥६॥
सुखापह्नुतिः संरोधो बधो दशविधा च सा । यद्भूतहितमत्यन्तं वचः सत्यस्य लक्षणं ॥७॥
सत्यं ब्रूयात्प्रियं ब्रूयान्न ब्रूयात्सत्यमप्रियं । प्रियञ्च नानृतं ब्रूयादेष धर्म्मः सनातनः ॥८॥
मैथुनस्य परित्यागो ब्रह्मचर्य्यन्तदष्टधा । स्मरणं कीर्त्तनं केलिः प्रेक्षणं गुह्यभाषणं ॥९॥
सङ्कल्पोऽध्यवसायश्च क्रियानिर्वृत्तिरेव च । एतन्मैथुनमष्टाङ्गं प्रवदन्ति मनीषिणः ॥१०॥
ब्रह्मचर्य्यं क्रियामूलमन्यथा विफला क्रिया । वसिष्ठश्चन्द्रमाः शुक्रो देवाचार्य्यः पितामहः ॥

तपोवृद्धा वयोवृद्धास्तेऽपि स्त्रीभिर्विमोहिताः ।
गौड़ी पैष्टी च माध्वी च विज्ञेया त्रिविधाः सुराः ॥ १२ ॥

चतुर्थी स्त्री सुरा ज्ञेया ययेदं मोहितं जगत् । माद्यति प्रमदां दृष्ट्वा सुरां पीत्वा तु माद्यति ॥
यस्माद्दृष्टमदा नारी तस्मात्तान्नावलोकयेत् । यद्वा तद्वाऽपरद्रव्यमपहृत्य बलान्नरः ॥१४॥

अवश्यं याति तिर्य्यक्त्वं जग्ध्वा चैवाहुतं हविः ।
कौपीनाच्छादनं वासः कन्थां शीतनिवारिणीं ॥ १५ ॥

पादुके चापि गृह्णीयात् कुर्य्यान्नान्यस्य संग्रहं । देहस्थितिनिमित्तस्य वस्त्रादेः स्यात्परिग्रहः ॥
शरीरं धर्म्मसंयुक्तं रक्षणीयं प्रयत्नतः । शौचन्तु द्विविधं प्रोक्तं वाह्यमभ्यन्तरं तथा ॥१७॥
मृज्जलाभ्यां स्मृतं वाह्यं भावशुद्धेरथान्तरं । उभयेन शुचिर्यस्तु स शुचिर्नेतरः शुचिः ॥१८॥
यथा कथञ्चित्प्राप्त्या च सन्तोषस्तुष्टिरुच्यते । मनसश्चेन्द्रियाणाञ्च ऐकाग्र्यं तप उच्यते ॥
तज्जयः सर्वधर्म्मेभ्यः स धर्म्मः पर उच्यते । वाचिकं मन्त्रजप्यादि मानसं रागवर्ज्जनं ॥
शारीरं देवपूजादि सर्वदन्तु त्रिधा तपः । प्रणवाद्यास्ततो वेदाः प्रणवे पर्यवस्थिताः ॥२१॥
वाङ्मयः प्रणवः सर्वं तस्मात्प्रणवमभ्यसेत् । अकारश्च तथोकारो मकारश्चार्द्धमात्रया ॥२२॥
तिस्रो मात्रास्त्रयो वेदाः लोका भूरादयो गुणाः । जाग्रत् स्वप्नः सुषुप्तिश्च ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥

---

१. ब्रह्मप्रकाशनं ज्ञानमिति ञ. । २. यथा नागपदेऽन्यानीति क. ।
३. पदगामिनामिति ख. ञ. च ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रद्युम्नः श्रीर्वासुदेवः सर्वमोङ्कारकः क्रमात् । अमात्रो नष्टमात्रश्च द्वैतस्यापगमः शिवः ॥
ओङ्कारो विदितो येन स मुनिर्नेतरो मुनिः । चतुर्थी मात्रा गान्धारी प्रयुक्ता मूर्ध्नि लक्ष्यते ॥
तत्तुरीयं परं ब्रह्म ज्योतिर्दीपो घटे यथा । तथा हृत्पद्मनिलयं ध्यायेन्नित्यं जपेन्नरः । २६॥
प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते । अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत् ॥२७॥
एतदेकाक्षरं ब्रह्म एतदेकाक्षरं परं । एतदेकाक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तत् ॥२८॥

छन्दोऽस्य देवी गायत्री अन्तर्य्यामी ऋषिः स्मृतः ।
देवता परमात्मास्य नियोगो भुक्तिमुक्तये ॥ २९ ॥

भूरग्न्यात्मने हृदयं भुवः प्राजापत्यात्मने । शिरः स्वःसूर्य्यात्मने च शिखा कवचमुच्यते ॥
ओंभूर्भुवः स्वः कवचं सत्यात्मने ततोऽस्त्रकं। विन्यस्य पूजयेद्विष्णुं जपेद्वै भुक्तिमुक्तये ॥३१॥
जुहुयाच्च तिलाज्यादि सर्वं सम्पद्यते नरे । यस्तु द्वादशसाहस्रं जपमन्वहमाचरेत् ॥३२॥
तस्य द्वादशभिर्मासैः परं ब्रह्म प्रकाशते । अणिमादि कोटिजप्याल्लक्षात्सारस्वतादिकं ॥३३॥

वैदिकस्तान्त्रिको मिश्रो विष्णोर्वै त्रिविधो मखः ।
त्रयाणामीप्सितेनैकविधिना हरिमर्च्चयेत् ॥ ३४ ॥

प्रणम्य दण्डवद्भूमौ नमस्कारेण योऽर्चयेत् । स याङ्गतिमवाप्नोति न तां क्रतुशतैरपि ॥
यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ । तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये यमनियमा नाम द्विसप्तत्यधिक-
त्रिशततमोऽध्यायः ।

त्रिसप्तत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः

आसनप्राणायामप्रत्याहाराः ।

अग्निरुवाच

आसनं कमलाद्युक्तं तद्बद्ध्वा चिन्तयेत्परं । शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः ॥
नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चेलाजिनकुशोत्तरं । तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यतचित्तेन्द्रियक्रियः ॥२॥
उपविश्यासने युञ्ज्याद्योगमात्मविशुद्धये । समकायशिरग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः ॥३॥
सम्प्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वन्दिशश्चानवलोकयन् । पार्ष्णिभ्यां वृषणौ रक्षंस्तथा प्रजननं पुनः ॥
ऊरुभ्यामुपरिस्थाप्य वाहू तिर्य्यक् प्रयत्नतः । दक्षिणं करपृष्ठञ्च न्यसेद्वामतलोपरि ॥५॥
उन्नम्य शनकैर्वक्त्रं मुखं विष्टभ्य चाग्रतः । प्राणः स्वदेहजो वायुस्तस्यायामो निरोधनं॥
नासिकापुटमङ्गुल्या पीड्यैव च परेण च । औदरं रेचयेद्वायुं रेचनाद्रेचकः स्मृतः ॥७॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वाह्येन वायुना देहं दृतिवत् पूरयेद्यथा । तथा पूर्णश्च सन्तिष्ठेन् पूरणात् पूरकः स्मृतः ॥८॥
न मुञ्चति न गृह्णाति वायुमन्तर्वहिः स्थितम् । सम्पूर्णकुम्भवत्तिष्ठेदचलः स तु कुम्भकः ॥
कन्यकः[१] सकृदुद्घातः स वै द्वादशमात्रिकः । मध्यमश्च द्विरुद्घातश्चतुर्विंशतिमात्रिकः ॥
उत्तमश्च त्रिरुद्घातः षट्त्रिंशत्तालमात्रिकः । स्वेदकम्पाभिघातानां जननश्चोत्तमोत्तमः ॥
अजितान्नारुहेद्भूमिं हिक्काश्वासादयस्तथा । जिते प्राणे खल्पदोषविन्मूत्रादि प्रजायते ॥
आरोग्यं शीघ्रगामित्वमुत्साहः स्वरसौष्ठवम् । बलवर्णप्रसादश्च सर्वदोषक्षयः फलं ॥१३॥
जपध्यानं विनागर्भः स गर्भस्तत्समन्वितः । इन्द्रियाणां जयार्थाय स गर्भं धारयेत्परं ॥१४॥
ज्ञानवैराग्ययुक्ताभ्यां प्राणायामवशेन च । इन्द्रियांश्च विनिर्जित्य सर्वमेव जितं भवेत् ॥१५॥
इन्द्रियाण्येव तत्सर्वं यत् स्वर्गनरकावुभौ । निगृहीतविसृष्टानि स्वर्गाय नरकाय च ॥१६॥

शरीरं रथमित्याहुरिन्द्रियाण्यस्य वाजिनः ।
मनश्च सारथिः प्रोक्तः प्राणायामः कशः[२] स्मृतः ॥ १७ ॥

ज्ञानवैराग्यरश्मिभ्यां सायया विधृतं मनः । शनैर्निश्चलतामेति प्राणायामैकसंहितम् ॥१८॥
जलविन्दुं कुशाग्रेण मासे मासे पिवेत्तु यः । संवत्सरशतं साग्रं प्राणायामश्च तत्समः ॥१९॥
इन्द्रियाणि प्रसक्तानि प्रविश्य विषयोदधौ । आहृत्य यो निगृह्णाति प्रत्याहारः स उच्यते ॥
उद्धरेदात्मनात्मानं मज्जमानं यथाम्भसि । भोगनद्यतिवेगेन[३] ज्ञानवृक्षं समाश्रयेत् ॥२१॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये आसनप्राणायामप्रत्याहारा नाम त्रिसप्तत्यधिक-
त्रिशततमोऽध्यायः ।

चतुःसप्तत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः

ध्यानम् ।

अग्निरुवाच

ध्यै चिन्तायां स्मृतो धातुर्विष्णुचिन्ता मुहुर्मुहुः । अनाक्षिप्तेन मनसा ध्यानमित्यभिधीयते ॥
आत्मनः समनस्कस्य मुक्ताशेषोपधस्य च । ब्रह्मचिन्तासमा शक्तिर्ध्यानं नाम तदुच्यते ॥
ध्येयालम्बनसंस्थस्य सदृशप्रत्ययस्य च । प्रत्ययान्तरनिर्मुक्तः प्रत्ययो ध्यानमुच्यते ॥३॥
ध्येयावस्थितचित्तस्य प्रदेशे यत्र कुत्रचित् । ध्यानमेतत्समुद्दिष्टं प्रत्ययस्यैकभावना ॥४॥
एवं ध्यानसमायुक्तः स्वदेहं यः परित्यजत् । कुलं स्वजनमित्राणि समुद्धृत्य हरिर्भवेत् ॥
एवं मुहूर्त्तमर्धं वा ध्यायेद् यः श्रद्धया हरिं । सोपि यां गतिमाप्नोति न तां सर्वैर्महामखैः ॥

---

१ कन्यस इति ञ. । २. प्राणायामोऽङ्कुश इति ञ. ।
३ भोगनद्यभिवेशेनेति ञ. ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ध्याता ध्यानं तथा ध्येयं यच्च ध्यानप्रयोजनं। एतच्चतुष्टयं ज्ञात्वा योगं युञ्जीत तत्त्ववित् ॥७॥

योगाभ्यासाद्भवेन्मूक्तिरैश्वर्य्यञ्चाष्टधा महत्।
ज्ञानवैराग्यसम्पन्नः श्रद्दधानः क्षमान्वितः ॥ ८ ॥

विष्णुभक्तः सदोत्साही ध्यातेत्थं पुरुषः स्मृतः। मूर्तामूर्त्तं परम्ब्रह्म हरेर्ध्यानं हि चिन्तनम् ॥
सकलो निष्कलो ज्ञेयः सर्वज्ञः परमो हरिः। अणिमादिगुणैश्वर्य्यं मुक्तिर्ध्यानप्रयोजनम् ॥
फलेन योजको विष्णुरतो ध्यायेत् परेश्वरं। गच्छंस्तिष्ठन् स्वपन् जाग्रदुन्मिषन्निमिषन्नपि॥
शुचिर्वाप्यशुचिर्वापि ध्यायेत् सततमीश्वरम्। स्वदेहायतनस्यान्ते मनसि स्थाप्य केशवम् ॥
हृत्पद्मपीठिकामध्ये ध्यानयोगेन[1] पूजयेत। ध्यानयज्ञः परः शुद्धः सर्वदोषविवर्ज्जितः ॥१३॥
तेनेष्ट्वा मुक्तिमाप्नोति वाह्यशुद्धैश्च नाध्वरैः। हिंसादोषविमुक्तित्वाद्विशुद्धिश्चित्तसाधनः ॥
ध्यानयज्ञः परस्तस्मादपवर्गफलप्रदः। तस्मादशुद्धं सन्त्यज्य ह्यनित्यं वाह्यसाधनं ॥१५॥
यज्ञाद्यं कर्म्म सन्त्यज्य योगमत्यर्थमभ्यसेत्। विकारमुक्तमव्यक्तं भोग्यभोगसमन्वितं॥१६॥
चिन्तयेद्धृदये पूर्वं क्रमादादौ गुणत्रयं। तमः प्रच्छाद्य रजसा सत्त्वेन च्छादयेद्रजः ॥१७॥
ध्यायेत्त्रिमण्डलं पूर्वं कृष्णं रक्तं सितं क्रमात्। सत्त्वोपाधिगुणातीतः पुरुषः पञ्चविंशकः[2] ॥
ध्येयमेतदशुद्धञ्च त्यक्त्वा शुद्धं विचिन्तयेत्। ऐश्वर्य्यं पङ्कजं दिव्यं पुरुषोपरि संस्थितं ॥
द्वादशाङ्गुलविस्तीर्णं शुद्धं विकशितं सितम्। नालमष्टाङ्गुलं तस्य नाभिकन्दसमुद्भवं ॥२०॥
पद्मपत्राष्टकं ज्ञेयमणिमादिगुणाष्टकम्। कर्णिकाकेशरं नालं ज्ञानवैराग्यमुत्तमम् ॥२१॥
विष्णुधर्म्मश्च तत्कन्दमिति पद्मं विचिन्तयेत्। तद्धर्मज्ञानवैराग्यं शिवैश्वर्य्यमयं परं ॥२२॥
ज्ञात्वा पद्मासनं सर्वं सर्वदुःखान्तमाप्नुयात्। तत्पद्मकर्णिकामध्ये शुद्धदीपशिखाकृतिं[3] ॥
अङ्गुष्ठमात्रममलं ध्यायेदोङ्कारमीश्वरं। कदम्बगोलकाकारं तारं रूपमिव स्थितं ॥२४॥
ध्यायेद्वा रश्मिजालेन दीप्यमानं समन्ततः। प्रधानं पुरुषातीतं स्थितं पद्मस्थमीश्वरं ॥२५॥
ध्यायेज्जपेच्च सततमोङ्कारं परमक्षरं। मनःस्थित्यर्थमिच्छन्ति स्थूलध्यानमनुक्रमात् ॥२६॥
तद्भूतं निश्चलीभूतं लभेत् सूक्ष्मेऽपि संस्थितं। नाभिकन्दे स्थितं नालं दशाङ्गुलसमायतं॥
नालेनाष्टदलं पद्मं द्वादशाङ्गुलविस्तृतं। सकर्णिके केसराले सूर्य्यसोमाग्निमण्डलं ॥२८॥
अग्निमण्डलमध्यस्थः शङ्खचक्रगदाधरः। पद्मी चतुर्भुजो विष्णुरथवाष्टभुजो हरिः ॥२९॥
शार्ङ्गाक्षवलयधरः पाशाङ्कुशधरः परः। स्वर्णवर्णः श्वेतवर्णः सश्रीवत्सः सकौस्तुभः ॥३०॥
वनमाली स्वर्णहारी स्फुरन्मकरकुण्डलः। रत्नोज्ज्वलकिरीटश्च पीताम्बरधरो महान् ॥३१॥
सर्व्वाभरणभूषाढ्यो वितस्तिर्वा यथेच्छया। अहं ब्रह्म ज्योतिरात्मा वासुदेवो विमुक्त ओं॥

ध्यानाच्छ्रान्तो जपेन्मन्त्रं जपाच्छ्रान्तश्च चिन्तयेत्।
जपध्यानादियुक्तस्य विष्णुः शीघ्रं प्रसीदति ॥ ३३ ॥

---

१. ध्यानमार्गेणेति ख. ञ. च। २. सत्त्वोपाधिसमायुक्तः सदा ध्येयश्च केशव इति ख.।
३. लब्धदीपशिखाकृतिमिति ख. ञ. च।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जपयज्ञस्य वै यज्ञाः कलां नार्हन्ति षोड़शीं। जपिनं नोपसर्पन्ति व्याधयश्चाधयो ग्रहाः॥
भुक्तिर्मुक्तिर्मृत्युजयो जपेन प्राप्नुयात् फलं[1] ॥ ३४ ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये ध्यानं नाम चतुःसप्तत्यधिक-
त्रिशततमोऽध्यायः।

पञ्चसप्तत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः

धारणा।

अग्निरुवाच

धारणा मनसो ध्येये संस्थितिर्ध्यानवद् द्विधा। मूर्त्तामूर्तहरिध्यानमनोधारणतो हरिः ॥१॥
यद्बाह्यावस्थितं लक्ष्यं तस्मान्न चलते मनः। तावत् कालं प्रदेशेषु धारणा मनसि स्थितिः ॥
कालावधि परिच्छिन्नं देहे संस्थापितं मनः। न प्रच्यवति यल्लक्ष्याद्धारणा साऽभिधीयते ॥
धारणा द्वादशायामा ध्यानं द्वादशधारणाः। ध्यानं द्वादशकं यावत्समाधिरभिधीयते ॥४॥
धारणाभ्यासयुक्तात्मा यदि प्राणैर्विमुच्यते। कुलैकविंशमुत्तार्य्य स्वर्य्याति परमं पदं[2] ॥५॥

यस्मिन् यस्मिन् भवेदङ्गे योगिनां व्याधिसम्भवः।
तत्तदङ्गं धिया व्याप्य धारयेत्तत्त्वधारणं ॥ ६ ॥
आग्नेयी वारुणी चैव ऐशानी चामृतात्मिका।
साग्निः शिखा फडन्ता च विष्णोः कार्य्या द्विजोत्तम ॥ ७ ॥

नाड़ीभिर्विकटं दिव्यं शूलाग्रं वेधयेच्छुभम्। पादाङ्गुष्ठात् कपालान्तं रश्मिमण्डलमावृतं ॥८॥

तिर्य्यक्चाधोदूर्ध्वभागेभ्यः प्रयान्त्योऽतीव तेजसा[3]।
चिन्तयेत् साधकेन्द्रस्तं यावत्सर्वं महामुने ॥ ९ ॥

भस्मीभूतं शरीरं स्वन्ततश्चैवोपसंहरेत्। शीतश्लेष्मादयः पापं विनश्यन्ति द्विजातयः ॥१०॥

शिरो धीरश्च[4] कारञ्च कण्ठं चाधोमुखे स्मरेत्।
ध्यायेदच्छिन्नचित्तात्मा भूयो भूतेन चात्मना ॥ ११ ॥

स्फुरच्छीकरसंस्पर्शप्रभूते हिमगामिभिः। धाराभिरखिलं विश्वमापूर्य्य भुवि चिन्तयेत् ॥१२॥
ब्रह्मरन्ध्राच्च संक्षोभाद्यावदाधारमण्डलम्। सुषुम्नान्तर्गतो भूत्वा संपूर्णेन्दुकृतालयं ॥१३॥
संप्लाव्य हिमसंस्पर्श तोयेनामृतमूर्त्तिना। क्षुत्-पिपासाक्रमप्रायसन्तापपरिपीड़ितः ॥१४॥
धारयेद्वारुणीं मन्त्री तुष्ट्यर्थं चाप्यतन्त्रितः। वारुणी धारणा प्रोक्ता ऐशानीधारणां शृणु ॥
व्योम्नि ब्रह्ममये पद्मे प्राणापाने क्षयङ्गते। प्रसादं चिन्तयेद् विष्णोर्यावच्चिन्ता क्षयं गता ॥

---

१. प्राप्नुयाद्धरिमिति ख.। प्राप्यते फलमिति ञ.।
२. स्वयं याति परं पदमिति ख.।
३. पाठोऽयमादर्शदोषेण दुष्टः।
४. वीरञ्चेति ञ.।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

महाभावश्चपेत सर्व्वं ततो व्यापक ईश्वरः। अर्द्धेन्दुं परमं शान्तं निराभासन्निरञ्जनं ॥१७॥
असत्यं सत्यमाभाति तावत्सर्वं चराचरं। यावत् स्वस्यन्दरूपन्तु न दृष्टं गुरुवक्त्रतः ॥१८॥
दृष्टे तस्मिन् परे तत्त्वे आब्रह्म सचराचरं। प्रमातृमानमेयञ्च ध्यानहृत्पद्मकल्पनं ॥१९॥
मातृमोदकवत्सर्वं जपहोमार्चनादिकं। विष्णुमन्त्रेण वा कुर्य्यादमृतां धारणां वदे ॥२०॥
संपूर्णेन्दुनिभं ध्यायेत् कमलं तन्त्रिमुष्टिगं। शिरःस्थं चिन्तयेत् यत्नाच्छशाङ्कायुतवर्चसं ॥
सम्पूर्णमण्डलं व्योम्नि शिवकल्लोलपूर्णितं। तथा हृत्कमले ध्यायेत्तन्मध्ये स्वतनुं स्मरेत् ॥

साधको विगतक्लेशो जायते धारणादिभिः ॥ २२ ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये धारणा नाम पञ्चसप्तत्यधिक-
त्रिशततमोऽध्यायः।

षट्सप्तत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः

समाधिः।

अग्निरुवाच

यदात्ममात्रं निर्भासं स्तिमितोदधिवत् स्थितं। चैतन्यरूपवद्ध्यानं तत् समाधिरिहोच्यते ॥
ध्यायन्मनः सन्निवेश्य यस्तिष्ठेदचलस्थिरः। निर्वातानलवद्योगी समाधिस्थः प्रकीर्त्तितः ॥
न शृणोति न चाघ्राति न पश्यति न वश्यति। न च स्पर्शं विजानाति न सङ्कल्पयते मनः॥
न चाभिमन्यते किञ्चिन्न च बुध्यति काष्ठवत्। एवमीश्वरसंलीनः समाधिस्थः स गीयते ॥

यथा दीपो निवातस्थो नेङ्गते सोपमा स्मृता।
ध्यायतो विष्णुमात्मानं समाधिस्तस्य योगिनः ॥ ५ ॥

उपसर्गाः प्रवर्त्तन्ते दिव्याः सिद्धिप्रसूचकाः। पातितः श्रावणो धातुर्दर्शनस्वाङ्गवेदनाः ॥
प्रार्थयन्ति च तं देवा भोगैर्दिव्यैश्च योगिनं। नृपाश्च पृथिवीदानैर्धनैश्च सुधनाधिपाः ॥७॥
वेदादिसर्व्वशास्त्रञ्च स्वयमेव प्रवर्तते। अभीष्टछन्दोविषयं काव्यञ्चास्य प्रवर्त्तते ॥८॥

रसायनानि दिव्यानि दिव्याश्चौषधयस्तथा।
समस्तानि च शिल्पानि कलाः सर्वाश्च विन्दति ॥ ९ ॥

सुरेन्द्रकन्या इत्याद्या गुणाश्च प्रतिभादयः। तृणवत्तान्त्यजेद् यस्तु तस्य विष्णुः प्रसीदति ॥

अणिमादिगुणैश्वर्य्यः शिष्ये ज्ञानं प्रकाश्य च।
भुक्त्वा भोगान् यथेच्छातस्तनुन्त्यक्त्वालयात्ततः ॥ ११ ॥
तिष्ठेत् स्वात्मनि विज्ञान आनन्दे ब्रह्मणीश्वरे।
मलिनो हि यथादर्श आत्मज्ञानाय न क्षमः ॥ १२ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सर्वाश्रयाग्निजे देहे देही विन्दति वेदनां । योगयुक्तस्तु सर्व्वेषां योगान्नाप्नोति वेदनां ॥
आकाशमेकं हि यथा घटादिषु पृथग् भवेत् । तथात्मैको ह्यनेकेषु जलाधारेष्विवांशुमान् ॥
ब्रह्मखानिलतेजांसि जलभूक्षितिधातवः । इमे लोका एष चात्मा तस्माच्च सचराचरं ॥१५॥
मृद्दण्डचक्रसंयोगात् कुम्भकारो यथा घटं । करोति तृणमृत्काष्ठैर्गृहं वा गृहकारकः ॥१६॥
करणान्येवमादाय तासु तास्विह योनिषु । सृजत्यात्मानमात्मैवं सम्भूय करणानि च ॥१७॥

कर्मणा दोषमोहाभ्यामिच्छयैव स बध्यते ।
ज्ञानाद्विमुच्यते जीवो धर्माद् योगी न रोगभाक् ॥ १८ ॥

वर्त्याधारस्नेहयोगाद् यथा दीपस्य संस्थितिः । विक्रियापि च दृष्टैवमकाले प्राणसंक्षयः ॥

अनन्ता रश्मयस्तस्य दीपवद् यः स्थितो हृदि ।
सितासिताः कद्रुनीलाः कपिलाः पीतलोहिताः ॥ २० ॥

ऊर्द्ध्वमेकः स्थितस्तेषां यो भित्त्वा सूर्य्यमण्डलं । ब्रह्मलोकमतिक्रम्य तेन याति पराङ्गतिं ॥
यदस्यान्यद्रश्मिशतमूर्द्ध्वमेव व्यवस्थितम् । तेन देवनिकायानि धामानि प्रतिपद्यते ॥२२॥
ये नैकरूपाश्चाधस्ताद्रश्मयोऽस्य मृदुप्रभाः । इह कर्मोपभोगाय तैश्च सञ्चरते हि सः ॥२३॥
बुद्धीन्द्रियाणि सर्वाणि मनः कर्मेन्द्रियाणि च । अहङ्कारश्च बुद्धिश्च पृथिव्यादीनि चैव हि ॥
अव्यक्त आत्मा क्षेत्रज्ञः क्षेत्रस्यास्य निगद्यते । ईश्वरः सर्वभूतस्य सन्नसन् सदसच्च सः ॥
बुद्धेरुत्पत्तिरव्यक्ता ततोऽहङ्कारसम्भवः । तस्मात् खादीनि जायन्ते एकोत्तरगुणानि तु ॥
शब्दः स्पर्शश्च रूपञ्च रसो गन्धश्च तद्गुणाः । यो यस्मिन्नाश्रितश्चैषां स तस्मिन्नेव लीयते ॥
सत्त्वं रजस्तमश्चैव गुणास्तस्यैव कीर्त्तिताः । रजस्तमोभ्यामाविष्टश्चक्रवद्भ्राम्यते हि सः ॥
अनादिरादिमान् यश्च स एव पुरुषः परः । लिङ्गेन्द्रियैरुपग्राह्यः स विकार उदाहृतः ॥२९॥

यतो वेदाः पुराणानि विद्योपनिषदस्तथा ।
श्लोकाः सूत्राणि भाष्याणि यच्चान्यद्वाङ्मयं भवेत् ॥ ३० ॥

पितृयानोपवीथ्याश्च यदगस्त्यस्य चान्तरं । तेनाग्निहोत्रिणो यान्ति प्रजाकामा दिवं प्रति ॥
ये च दानपराः सम्यगष्टाभिश्च गुणैर्युताः । अष्टाशीतिसहस्राणि मुनयो गृहमेधिनः ॥३२॥
पुनरावर्त्तने बीजभूता धर्म्मप्रवर्त्तकाः । सप्तर्षिनागवीथ्याश्च देवलोकं समाश्रिताः ॥३३॥
तावन्त एव मुनयः सर्वारम्भविवर्ज्जिताः । तपसा ब्रह्मचर्येण सङ्गत्यागेन मेधया ॥३४॥
यत्र यत्रावतिष्ठन्ते यावदाहूतसंप्लवं । वेदानुवचनं यज्ञा ब्रह्मचर्य्यं तपो दमः ॥३५॥
श्रद्धोपवासः सत्यत्वमात्मनो ज्ञानहेतवः । स त्वाश्रमैर्न्निदिध्यास्यः समस्तैरेवमेव तु ॥
द्रष्टव्यस्त्वथ मन्तव्यः श्रोतव्यश्च द्विजातिभिः । य एवमेनं विन्दन्ति ये चारण्यकमाश्रिताः ॥
उपासते द्विजाः सत्यं श्रद्धया परया युताः । क्रमात्ते सम्भवन्त्यर्च्चिरहः शुक्लं तथोत्तरं ॥
अयनन्देवलोकञ्च सवितारं सविद्युतं । ततस्तान् पुरुषोऽभ्येत्य मानसो ब्रह्मलौकिकान् ॥
करोति पुनरावृत्तिस्तेषामिह न विद्यते । यज्ञेन तपसा दानैर्ये हि स्वर्गजितो जनाः ॥४०॥
धूमं निशां कृष्णपक्षं दक्षिणायनमेव च । पितृलोकं चन्द्रमसं नभो वायुं जलं महीं ॥४१॥
क्रमात्ते सम्भवन्तीह पुनरेव व्रजन्ति च । एतद्यो न विजानाति मार्गद्वितयमात्मनः ॥४२॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दन्दशूकः पतङ्गो वा भवेत्कीटोऽथवा कृमिः । हृदये दीपवद्ब्रह्म ध्यानाज्जीवो मृतो भवेत् ॥
न्यायागतधनस्तत्त्वज्ञाननिष्ठोऽतिथिप्रियः । श्राद्धकृत्सत्यवादी च गृहस्थोऽपि विमुच्यते ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये समाधिर्नाम षट्सप्तत्यधिक-
त्रिशततमोऽध्यायः ।

सप्तसप्तत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः

ब्रह्मज्ञानम् ।

अग्निरुवाच

ब्रह्मज्ञानं प्रवक्ष्यामि संसाराज्ञानमुक्तये । अयमात्मा परं ब्रह्म अहमस्मीति मुच्यते ॥१॥
देह आत्मा न भवति दृश्यत्वाच्च घटादिवत् । प्रसुप्ते मरणे देहादात्माऽन्यो ज्ञायते ध्रुवं ॥
देहः स चेद्व्यवहरेदविकार्य्यादिसन्निभः । चक्षुरादीनीन्द्रियाणि नात्मा वै करणं त्वतः ॥
मनो धीरपि आत्मा न दीपवत् करणं त्वतः ।
प्राणोऽप्यात्मा न भवति सुषुप्ते चित्प्रभावतः ॥ ४ ॥

जाग्रत्स्वप्ने च चैतन्यं सङ्कीर्णत्वान्न बुध्यते । विज्ञानरहितः प्राणः सुषुप्ते ज्ञायते यतः ॥५॥
अतो नात्मेन्द्रियं तस्मादिन्द्रियादिकमात्मनः । अहङ्कारोऽपि नैवात्मा देहवद्व्यभिचारतः ॥
उक्तेभ्यो व्यतिरिक्तोऽयमात्मा सर्वहृदि स्थितः ।
सर्वद्रष्टा च भोक्ता च नक्तमुज्ज्वलदीपवत् ॥ ७ ॥
समाध्यारम्भकाले च एवं सञ्चिन्तयेन्मुनिः । यतो ब्रह्मण आकाशं खाद्वायुर्वायुतोऽनलः ॥
अग्नेरापो जलात्पृथ्वी ततः सूक्ष्मं शरीरकं । अपञ्चीकृतभूतेभ्य आसन् पञ्चीकृतान्यतः ॥
स्थूलं शरीरं ध्यात्वास्माल्लयं ब्रह्मणि चिन्तयेत् ।
पञ्चीकृतानि भूतानि तत्कार्य्यञ्च विराट्स्मृतम् ॥ १० ॥

एतत् स्थूलं शरीरं हि आत्मनो ज्ञानकल्पितं । इन्द्रियैरथ विज्ञानं धीरा जागरितं विदुः ॥
विश्वस्तदभिमानी स्यात् त्रयमेतदकारकं । अपञ्चीकृतभूतानि तत्कार्यं लिङ्गमुच्यते ॥१२॥
संयुक्तं सप्तदशभिर्हिरण्यगर्भसंज्ञितं । शरीरमात्मनः सूक्ष्मं लिङ्गमित्यभिधीयते ॥१३॥
जाग्रत्संस्कारजः स्वप्नः प्रत्ययो विषयात्मकः । आत्मा तदुपमानी स्यात्तैजसो ह्यप्रपञ्चतः ॥
स्थूलसूक्ष्मशरीराख्यद्वयस्यैकं हि कारणं । आत्मा ज्ञानञ्च साभासं तदध्याहृतमुच्यते ॥
न सन्नासन्न सदसदेतत्सावयवं न तत् । निर्गतावयवं नेति नाभिन्नं भिन्नमेव च ॥१६॥
भिन्नाभिन्नं ह्यनिर्वाच्यं बन्धसंसारकारकं । एकं स ब्रह्म विज्ञानात् प्राप्तं नैव च कर्म्मभिः ॥
सर्वात्मना हीन्द्रियाणां संहारः कारणात्मनां ।
बुद्धेः स्थानं सुषुप्तं स्यात्तद्द्वयस्याभिमानवान् ॥ १८ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्राज्ञ आत्मा त्रयञ्चैतत् मकारः प्रणवः स्मृतः । अकारश्च उकारोऽसौ मकारो ह्ययमेव च ॥
अहं साक्षी च चिन्मात्रो जाग्रत्स्वप्नादिकस्य च ।
नाज्ञानञ्चैव तत्कार्यं संसारादिकबन्धनं ॥ २० ॥
नित्यशुद्धबन्धमुक्तसत्यमानन्दमद्वयं । ब्रह्माहमस्म्यहं ब्रह्म परं ज्योतिर्विमुक्त ओं ॥२१॥
अहं ब्रह्म परं ज्ञानं समाधिर्बन्धघातकः । चिरमानन्दकं ब्रह्म सत्यं ज्ञानमनन्तकं ॥२२॥
अयमात्मा परम्ब्रह्म तद् ब्रह्म त्वमसीति च । गुरुणा बोधितो जीवो ह्यहं ब्रह्मास्मि वाह्यतः ॥
सोऽसावादित्यपुरुषः सोऽसावहमखण्ड ओं । मुच्यतेऽसारसंसाराद् ब्रह्मज्ञो ब्रह्म तद्भवेत् ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये ब्रह्मज्ञानं नाम सप्तसप्तत्यधिक-
त्रिशततमोऽध्यायः ।

अष्टसप्तत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः

ब्रह्मज्ञानम् ।

अग्निरुवाच

अहं ब्रह्म परं ज्योतिः पृथिव्यप्वनलोज्झितं । अहं ब्रह्म परं ज्योतिर्वाय्वाकाशविवर्जितं ॥१॥
अहं ब्रह्म परं ज्योतिरादिकार्यविवर्जितम् । अहं ब्रह्म परं ज्योतिर्विराडात्मविवर्जितं ॥२॥
अहं ब्रह्म परं ज्योतिर्जाग्रत्स्थानविवर्जितम् । अहं ब्रह्म परं ज्योतिर्विश्वभावविवर्जितम् ॥३॥
अहं ब्रह्म परं ज्योतिराकाराक्षरवर्जितम्। अहं ब्रह्म परं ज्योतिर्वाक्पाण्यङ्घ्रिविवर्जितम्। ४॥
अहं ब्रह्म परं ज्योतिः पायूपस्थविवर्जितम्। अहं ब्रह्म परं ज्योतिः श्रोत्रत्वक्चक्षुरुज्झितम् ॥
अहं ब्रह्म परं ज्योतीरसरूपविवर्जितम् । अहं ब्रह्म परं ज्योतिः सर्वगन्धविवर्जितम् ॥६॥
अहं ब्रह्म परं ज्योतिर्जिह्वाघ्राणविवर्जितम् । अहं ब्रह्म परं ज्योतिः स्पर्शशब्दविवर्जितम ॥७॥
अहं ब्रह्म परं ज्योतिर्म्मनोबुद्धिविवर्जितम् । अहं ब्रह्म परं ज्योतिश्चित्ताहङ्कारवर्जितम् ॥८॥
अहं ब्रह्म परं ज्योतिः प्राणापानविवर्जितम्। अहं ब्रह्म परं ज्योतिर्व्यानोदानविवर्जितम् ॥९॥
अहं ब्रह्म परं ज्योतिः समानपरिवर्जितम्। अहं ब्रह्म परं ज्योतिर्जरामरणवर्जितम् ॥१०॥
अहं ब्रह्म परं ज्योतिः शोकमोहविवर्जितम । अहं ब्रह्म परं ज्योतिः क्षुत्पिपासाविवर्जितम् ॥
अहं ब्रह्म परं ज्योतिः शब्दोद्भूतादिवर्जितम्। अहं ब्रह्म परं ज्योतिर्हिरण्यगर्भवर्जितम् ॥
अहं ब्रह्म परं ज्योतिः स्वप्नावस्थाविवर्जितम्। अहं ब्रह्म परं ज्योतिस्तैजसादिविवर्जितम् ॥
अहं ब्रह्म परं ज्योतिरपकारादिवर्जितम् । अहं ब्रह्म परं ज्योतिः सभाज्ञानविवर्जितम् ॥
अहं ब्रह्म परं ज्योतिरध्याहृतविवर्जितम् । अहं ब्रह्म परं ज्योतिः सत्त्वादिगुणवर्जितम ॥
अहं ब्रह्म परं ज्योतिः सदसद्भाववर्जितम्। अहं ब्रह्म परं ज्योतिः सर्वावयववर्जितं ॥१६॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अहं ब्रह्म परं ज्योतिर्भेदाभेदविवर्जितं । अहं ब्रह्म परं ज्योतिः सुषुप्तिस्थानवर्जितम् ॥१७॥
अहं ब्रह्म परं ज्योतिः प्राज्ञभावविवर्जितम् । अहं ब्रह्म परं ज्योतिर्मकारादिविवर्जितम् ॥१८॥
अहं ब्रह्म परं ज्योतिर्मानमेयविवर्जितम् । अहं ब्रह्म परं ज्योतिर्मितिमातृविवर्जितम् ॥१९॥
अहं ब्रह्म परं ज्योतिः साक्षित्वादिविवर्जितम् । अहं ब्रह्म परं ज्योतिः कार्य्यकारणवर्जितम् ॥
देहेन्द्रियमनोबुद्धिप्राणाहङ्कारवर्जितं । जाग्रत् सप्नसुषुप्त्यादिमुक्तं ब्रह्म तुरीयकं ॥२१॥
नित्यशुद्धबुद्धमुक्तं सत्यमानन्दमद्वयम् । ब्रह्माहमस्म्यहं ब्रह्म सविज्ञानं विमुक्त ओं ॥

अहं ब्रह्म परं ज्योतिः समाधिर्मोक्षदः परः ॥ २२ ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये ब्रह्मज्ञानं नामाष्टसप्तत्यधिक-
त्रिशततमोऽध्यायः ।

ऊनाशीत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः

ब्रह्मज्ञानं ।

अग्निरुवाच

यज्ञैश्च देवानाप्नोति वैराजं तपसा पदं । ब्रह्मणः कर्मसन्न्यासाद्वैराग्यात् प्रकृतौ लयं ॥१॥
ज्ञानात् प्राप्नोति कैवल्यं पञ्चैता गतयः स्मृताः । प्रीतितापविषादादेर्विनिवृत्तिर्विरक्तता ॥
सन्न्यासः कर्मणान्त्यागः कृतानामकृतैः सह । अव्यक्तादौ विशेषान्ते विकारोऽस्मिन्निवर्त्तते ॥
चेतनाचेतनान्यत्वज्ञानेन ज्ञानमुच्यते । परमात्मा च सर्वेषामाधारः परमेश्वरः ॥४॥
विष्णुनाम्ना च देवेषु वेदान्तेषु च गीयते । यज्ञेश्वरो यज्ञपुमान् प्रवृत्तैरिज्यते ह्यसौ ॥५॥
निवृत्तैर्ज्ञानयोगेन ज्ञानमूर्त्तिः स चेद्यते । ह्रस्वदीर्घप्लुताद्यन्तु वचस्तत्पुरुषोत्तमः ॥६॥
तत्प्राप्तिहेतुर्ज्ञानञ्च कर्म चोक्तं महामुने । आगमोक्तं विवेकाच्च द्विधा ज्ञानं तथोच्यते ॥७॥
शब्दब्रह्मागममयं परं ब्रह्म विवेकजम् । द्वे ब्रह्मणी वेदितव्ये ब्रह्मशब्दपरञ्च यत् ।८॥
वेदादिविद्या ह्यपरमक्षरं ब्रह्म सत्परम् । तदेतद्भगवद्वाच्यमुपचारेऽर्च्चनेऽन्यतः ।।९॥
सम्भर्तेति तथा भर्त्ता भकारोऽर्थद्वयान्वितः । नेता गमयिता स्रष्टा गकारोऽयं महामुने ॥१०॥
ऐश्वर्य्यस्य समग्रस्य वीर्य्यस्य यशसः श्रियः । ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीङ्गना ॥

वसन्ति विष्णौ भूतानि स च धातुस्त्रिधात्मकः ।
एवं हरौ हि भगवान् शब्दोऽन्यत्रोपचारतः ॥ १२ ॥

उत्पत्तिं प्रलयञ्चैव भूतानामगतिं गतिं । वेत्ति विद्यामविद्याञ्च स वाच्यो भगवानिति ॥
ज्ञानशक्तिः परैश्वर्य्यं वीर्य्यं तेजांस्यशेषतः । भगवच्छब्दवाच्यानि विना हेयैर्गुणादिभिः ॥

खाण्डिक्यजनकायाह योगं केशिध्वजः पुरा ।
अनात्मन्यात्मबुद्धिर्या आत्मस्वमिति या मतिः ॥ १५ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अविद्याभवसम्भूतिर्बीजमेतद्द्विधा स्थितम् । पञ्चभूतात्मके देहे देही मोहतमाश्रितः ॥१६॥
अहमेतदितीत्युच्चैः कुरुते कुमतिर्मतिं । इत्थञ्च पुत्रपौत्रेषु तद्देहोत्पातितेषु च ॥१७॥
करोति पण्डितः साम्यमनात्मनि कलेवरे । सर्वदेहोपकाराय कुरुते कर्म्म मानवः ॥१८॥
देहश्चान्यो यदा पुंसस्तदा बन्धाय तत्परं । निर्वाणमथ एवायमात्मा ज्ञानमयोऽमलः ॥१९॥

दुःखज्ञानमयोऽधर्मः प्रकृतेः स तु नात्मनः ।
जलस्य नाग्निना सङ्गः स्थालीसङ्गात्तथापि हि ॥ २० ॥
शब्दास्ते कादिका धर्मास्तत् कृता वै महामुने ।
तथात्मा प्रकृतौ सङ्गादहंमानादिभूषितः ॥ २१ ॥
भजते प्राकृतान्धर्मान् अन्यस्तेभ्यो हि सोऽव्ययः ।
बन्धाय विषयासङ्गं मनो निर्विषयं धिये ॥ २२ ॥

विषयात्तत्समाकृष्य ब्रह्मभूतं हरिं स्मरेत् । आत्मभावं नयत्येनं तद्ब्रह्मध्यायिनं मुने ॥

विचार्य्य स्वात्मनः शक्त्या लौहमाकर्षको यथा ।
आत्मप्रयत्नसापेक्षा विशिष्टा या मनोगतिः ॥ २४ ॥

तस्या ब्रह्मणि संयोगो योग इत्यभिधीयते। विनिष्पन्दः समाधिस्थः परं ब्रह्माधिगच्छति ॥
यमैः सन्नियमैः स्थित्या प्रत्याहृत्या मरुज्जयैः । प्राणायामेन पवनैः प्रत्याहारेण चेन्द्रियैः ॥
वशीकृतैस्ततः कुर्य्यात् स्थितं चेतः शुभाश्रये । आश्रयश्चेतसो ब्रह्म मूर्त्तञ्चामूर्तकं द्विधा ॥
सनन्दनादयो ब्रह्मभावभावनया युताः । कर्मभावनया चान्ये देवाद्याः स्थावरान्तकाः ॥
हिरण्यगर्भादिषु च ज्ञानकर्मात्मिका द्विधा । त्रिविधा भावना प्रोक्ता विश्वं ब्रह्म उपास्यते ॥
प्रत्यस्तमितभेदं यत् सत्तामात्रमगोचरं । वचसामात्मसंवेद्यं तज्ज्ञानं ब्रह्म संज्ञितम् ॥३०॥
तच्च विष्णोः परं रूपमरूपस्याजमक्षरं । अशक्यं प्रथमं ध्यातुमतो मूर्त्तादि चिन्तयेत् ॥३१॥
सद्भावभावमापन्नस्ततोऽसौ परमात्मना । भवत्यभेदी भेदश्च तस्याज्ञानकृतो भवेत् ॥३२॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये ब्रह्मज्ञानं नामोनाशीत्यधिक-
त्रिशततमोऽध्यायः ।

अशीत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः

अद्वैतब्रह्मविज्ञानम् ।

अग्निरुवाच

अद्वैतब्रह्मविज्ञानं वक्ष्ये यद्भरतोऽगदत् । शालग्रामे तपश्चक्रे वासुदेवार्चनादिकृत ॥१॥

मृगसङ्गान्मृगो भूत्वा ह्यन्तकाले स्मरन् मृगं ।
जातिस्मरो मृगस्त्यक्त्वा देहं योगात्स्वतोऽभवत् ॥ २ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अद्वैतब्रह्मभूतश्च जडवल्लोकमाचरत् । क्षत्ताऽसौ वीरराजस्य विष्टियोगममन्यत ॥३॥
उवाह शिविकामस्य क्षत्तुर्वचनचोदितः । गृहीतो विष्टिना ज्ञानी उवाहात्मक्षयाय तं ॥४॥
ययौ जड़गतिः पश्चाद् ये त्वन्ये त्वरितं ययुः ।
शीघ्रान् शीघ्रगतीन् दृष्ट्वा अशीघ्रं तं नृपोऽब्रवीत् ॥ ५ ॥

राजोवाच

किं श्रान्तोऽस्यल्पमध्वानं त्वयोढ़ा शिविका मम ।
किमायाससहो न त्वं पीवानसि निरीक्ष्यसे ॥ ६ ॥

ब्राह्मण उवाच

नाहं पीवान्न वैषोढ़ा शिविका भवतो मया ।
न श्रान्तोऽस्मि न वायासो वोढव्योऽसि महीपते ॥ ७ ॥
भूमौ पादयुगन्तस्थौ जङ्घे पादद्वये स्थिते । उरू जङ्घाद्वयावस्थौ तदाधारं तथोदरम् ॥८॥
वक्षःस्थलं तथा बाहू स्कन्धौ चोदरसंस्थितौ ।
स्कन्धस्थितेयं शिविका मम भावोऽत्र किं कृतः ॥ ९ ॥
शिविकायां स्थितञ्चेदं देहं त्वदुपलक्षितं । तत्र त्वमहमप्यत्र प्रोच्यते चेदमन्यथा ॥१०॥
अहं त्वञ्च तथान्ये च भूतैरुह्याम[1] पार्थिव । गुणप्रवाहपतितो गुणवर्गो हि यात्ययं ॥११॥
कर्म्मवश्या गुणाश्चैते सत्त्वाद्याः पृथिवीपते । अविद्यासञ्चितं कर्म तच्चाशेषेषु जन्तुषु ॥१२॥
आत्मा शुद्धोऽक्षरः शान्तो निर्गुणः प्रकृतेः परः । प्रवृद्ध्यपचयौ नास्य एकस्याखिलजन्तुषु ॥
यदा नोपचयस्तस्य यदा नापचयो नृप । तदा पीवानसीति त्वं कया युक्त्या त्वयेरितं ॥
भूजङ्घापादकट्यूरुजठरादिषु संस्थिता । शिविकेयं तथा स्कन्धे तदा भावः समस्त्वया ॥
तदन्यजन्तुभिर्भूप शिविकोत्थानकर्मणा । शैलद्रव्यगृहोत्थोपि पृथिवीसम्भवोपि वा ॥१६॥
यथा पुंसः पृथग्भावः प्राकृतैः करणैर्नृप । सोढ़व्यः स महाभारः कतरो नृपते मया ॥१७॥
यद्द्रव्या शिविका चेयं तद्द्रव्यो भूतसंग्रहः । भवतो मेऽखिलस्यास्य समत्वेनोपबृंहितः ॥
तच्छ्रुत्वोवाच राजा तं गृहीत्वाङ्घ्री क्षमाप्य च ।
प्रसादं कुरु त्यक्त्वेमां शिविकां ब्रूहि शृण्वते ।
यो भवान् यन्निमित्तं वा यदागमनकारणम् ॥ १९ ॥

ब्राह्मण उवाच

श्रूयतां कोहमित्येतद्वक्तुं नैव च शक्यते । उपभोगनिमित्तञ्च सर्वत्रागमनक्रिया ॥२०॥
सुखदुःखोपभोगौ तु तौ देशाद्युपपादकौ । धर्माधर्मोद्भवौ भोक्तुं जन्तुर्देशादिमृच्छति ॥२१॥

राजोवाच

योऽस्ति सोहमिति ब्रह्मन् कथं वक्तुं न शक्यते ।
आत्मन्येष न दोषाय शब्दोहमिति यो द्विज ॥ २२ ॥

---

१. पाठोऽयं न समीचीनः ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ब्राह्मण उवाच

शब्दोहमिति दोषाय नात्मन्येष तथैव तत् । अनात्मन्यात्मविज्ञानं शब्दो वा भ्रान्तिलक्षणः ॥
यदा समस्तदेहेषु पुमानेको व्यवस्थितः । तदा हि को भवान् कोहमित्येतद्विफलं वचः ॥
त्वं राजा शिविका चेयं वयं वाहाः पुरःसराः । अयञ्च भवतो लोको न सदेतन्नृपोच्यते ॥
वृक्षाद्दारु ततश्चेयं शिविका त्वदधिष्ठिता । का वृक्षसंज्ञा जातास्य दारुसंज्ञाथ वा नृप ॥२६॥
वृक्षारूढ़ो महाराजो नायं वदति चेतनः । न च दारुणि सर्वस्त्वां ब्रवीति शिविकागतं ॥
शिविकादारुसङ्घातो रचनास्थितिसंस्थितः । अन्विष्यतां नृपश्रेष्ट तद्भेदे शिविका त्वया ॥
पुमान् स्त्री गौरयं वाजी कुञ्जरो विहगस्तरुः । देहेषु लोकसंज्ञेयं विज्ञेया कर्महेतुषु ॥२९॥
जिह्वा ब्रवीत्यहमिति दन्तौष्ठौ तालुकं नृप । एते नाहं यतः सर्व्वे वाङ्निपादनहेतवः ॥३०॥
किं हेतुभिर्वदत्येषा वागेवाहमिति स्वयं । तथापि वाङ्नाहमेतदुक्तं मिथ्या न युज्यते ॥३१॥
पिण्डः पृथग् यतः पुंसः शिरःपाय्वादिलक्षणः । ततोऽहमिति कुत्रैतां संज्ञां राजन् करोम्यहं ॥
यदन्योऽस्ति परः कोपि मत्तः पार्थिवसत्तम । तदेषोहमयं चान्यो वक्तुमेवमपीष्यते ॥३३॥
परमार्थभेदो न नगो न पशुर्नच पादपः । शरीराश्च विभेदाश्च य एते कर्मयोनयः ॥३४॥
यस्तु राजेति यल्लोके यच्च राजभटात्मकम् । तच्चान्यच्च नृपेत्थन्तु न सत् सम्यगनामयं ॥३५॥

त्वं राजा सर्वलोकस्य पितुः पुत्रो रिपोरिपुः ।
पत्न्याः पतिः पिता सूनोः कस्त्वां भूप वदाम्यहं ॥ ३६ ॥

त्वं किमेतच्छिरः किन्नु शिरस्तव तथोदरं । किमु पादादिकं त्वं वै तवैतत् किं महीपते ॥
समस्तावयवेभ्यस्त्वं पृथग्भूतो व्यवस्थितः । कोहमित्यत्र निपुणं भूत्वा चिन्तय पार्थिव ॥

तच्छ्रुत्वोवाच राजा तमवधूतं द्विजं हरिं ॥ ३८ ॥

राजोवाच

श्रेयोऽर्थमुद्यतः प्रष्टुं कपिलर्षिमहं द्विज । तस्यांशः कपिलर्षेस्त्वं मत् कृते ज्ञानदो भुवि ॥
ज्ञानवीच्युदधेर्यस्माद्यच्छ्रेयस्तच्च मे वद ॥ ३९ ॥

ब्राह्मण उवाच

भूयः पृच्छसि किं श्रेयः परमार्थन्न पृच्छसि । श्रेयांस्यपरमार्थानि अशेषाण्येव भूपते ॥४०॥
देवताराधनं कृत्वा धनसम्पत्तिमिच्छति । पुत्रानिच्छति राज्यञ्च श्रेयस्तस्यैव किं नृपः ॥

विवेकिनस्तु संयोगः श्रेयो यः परमात्मनः ।
यज्ञादिका क्रिया न स्यात् नास्ति द्रव्योपपत्तिता ॥ ४२ ॥

परमार्थात्मनोर्योगः परमार्थ इतीष्यते । एको व्यापी समः शुद्धो निर्गुणः प्रकृतेः परः ॥४३॥
जन्मवृद्ध्यादिरहित आत्मा सर्वगतोऽव्ययः । परं ज्ञानमयोऽसङ्गी गुणजात्यादिभिर्विभुः ॥

निदाघऋतुसंवादं वदामि द्विज तं शृणु[1] ।
ऋतुर्ब्रह्मसुतो ज्ञानी तच्छिष्योऽभूत् पुलस्त्यजः ॥ ४५ ॥

---

१. निदाघऋतुसंवादमद्वैतबुद्धये शृण्विति ख. ञ. च ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

निदाघः प्राप्तविद्योऽस्मान्नगरे वै पुरे स्थितः । देविकायास्तटे तञ्च तर्कयामास वै ऋतुः ॥
दिव्ये वर्षसहस्रेऽगान्निदाघमवलोकितुं । निदाघो वैश्वदेवान्ते भुक्त्वान्नं शिष्यमब्रवीत् ॥
भुक्तन्ते तृप्तिरुत्पन्ना तुष्टिदा साऽक्षया यतः ॥ ४७ ॥

ऋतुरुवाच ।

क्षुदस्ति यस्य भुक्तेऽन्ने तुष्टिर्ब्राह्मण जायते । न मे क्षुदभवत्तृप्तिं कस्मात्त्वं परिपृच्छसि ॥
क्षुत्तृष्णे देहधर्म्माख्ये न ममैते यतो द्विज । पृष्टोहं यत्त्वया ब्रूयां[१] तृप्तिरस्त्येव मे सदा ॥
पुमान् सर्वगतो व्यापी आकाशवदयं यतः । अतोऽहं प्रत्यगात्मास्मीत्येतदर्थे भवेत् कथं[२] ॥
सोऽहं गन्ता[३] न चागन्ता नैकदेशनिकेतनः ।
त्वं चान्यो न भवेन्नापि नान्यस्त्वत्तोऽस्मि वा प्यहं ॥ ५१ ॥

मृण्मयं हि गृहं यद्वन्मृदालिप्तं स्थिरीभवेत् । पार्थिवोऽयं तथा देहः पार्थिवैः परमाणुभिः ॥
ऋतुरस्मि तवाचार्य्यः प्रज्ञादानाय ते द्विज । इहागतोऽहं यास्यामि परमार्थस्तवोदितः ॥
...मेवमिदं विद्धि न भेदः सकलं जगत् । वासुदेवाभिधेयस्य स्वरूपं परमात्मनः ॥५४॥
ऋतुर्वर्षसहस्रान्ते पुनस्तन्नगरं ययौ । निदाघं नगरप्रान्ते एकान्ते स्थितमब्रवीत् ॥
एकान्ते स्थीयते कस्मान्निदाघं ऋतुरब्रवीत् ॥ ५५ ॥

निदाघ उवाच

भो विप्र जनसंवादो महानेष नरेश्वर । प्रविवीक्ष्य पुरं रम्यं तेनात्र स्थीयते मया ॥५६॥

ऋतुरुवाच

नराधिपोऽत्र कतमः कतमश्चेतरो जनः । कथ्यतां मे द्विजश्रेष्ठ त्वमभिज्ञो द्विजोत्तम ॥५७॥
योऽयं गजेन्द्रमुन्मत्तमद्रिशृङ्गसमुत्थितं । अधिरूढो नरेन्द्रोऽयं परिवारस्तथेतरः[४] । ५८॥
गजो योऽयमधो ब्रह्मन्नुपर्य्येष स भूपतिः । ऋतुराह गजः कोऽत्र राजा चाह निदाघकः ॥
ऋतुर्निदाघ आरूढो दृष्टान्तं पश्य वाहनं । उपर्य्यहं यथा राजा त्वमधः कुञ्जरो यथा ॥
ऋतुः[५] प्राह निदाघन्तं कतमस्त्वामहं वदे । उक्तो निदाघस्तन्नत्वा प्राह मे त्वं गुरुर्ध्रुवम् ॥
नान्यस्माद्द्वैतसंस्कारसंस्कृतं मानसं तथा । ऋतुः प्राह निदाघन्तं ब्रह्मज्ञानाय चागतः ॥
परमार्थं सारभूतमद्वैतं दर्शितं मया ॥ ६२ ॥

ब्राह्मण उवाच

निदाघोऽप्युपदेशेन तेनाद्वैतपरोऽभवत् । सर्वभूतान्यभेदेन ददृशे स तदात्मनि ॥६३॥
अवाप मुक्तिं ज्ञानात्स तथा त्वं मुक्तिमाप्स्यसि ।
एकः समस्तं त्वञ्चाहं विष्णुः सर्वगतो यतः ॥ ६४ ॥

---

१. ततः क्षुत्सम्भवाभावादिति ख. ञ. च ।

२. कुतः कुत्र क्व गन्तासीत्येतदप्यर्थवत् कथमिति ख. ञ. च ।   ३. भोक्तेति क. ।

४. आरूढोऽयं गजं राजा परलोकस्तथेतर इति ख. ञ. च ।

५. क. पुस्तके सर्व्वत्र ऋभुरिति ऋतुस्थानीयः पाठः ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पीतनीलादिभेदेन यथैकं दृश्यते नभः। भ्रान्तिदृष्टिभिरात्मापि तथैकः स पृथक् पृथक्।।

अग्निरुवाच

मुक्तिं ह्यवाप भवतो ज्ञानसारेण भूपतिः[१]। संसाराज्ञानवृक्षारिज्ञानं ब्रह्मेति चिन्तय ।।६६।।

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये अद्वैतब्रह्मविज्ञानं नामाशीत्यधिक-
त्रिशततमोऽध्यायः।

एकाशीत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः

गीतासारः।

अग्निरुवाच

गीतासारं प्रवक्ष्यामि सर्वगीतोत्तमोत्तमं। कृष्णोऽर्जुनाय यमाह पुरा वै भुक्तिमुक्तिदं[२] ।।१।।

श्रीभगवानुवाच

गतासुरगतासुर्वा न शोच्यो देहवानजः। आत्माऽजरोऽमरोऽभेद्यस्तस्माच्छोकादिकं त्यजेत्।।

ध्यायतो विषयान् पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते।
सङ्गात् कामस्ततः क्रोधः क्रोधात्सम्मोह एव च ।। ३ ।।
सम्मोहात् स्मृतिविभ्रंशो बुद्धिनाशात् प्रणश्यति।
दुःसङ्गहानिः सत्सङ्गान्मोक्षकामी च कामनुत् ।। ४ ।।

कामत्यागादात्मनिष्ठः स्थिरप्रज्ञस्तदोच्यते। या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी ।।

यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः।
आत्मन्येव च सन्तुष्टस्तस्य कार्यं न विद्यते ।। ६ ।।

नैव तस्य कृते नार्थो नाकृते नेह कश्चन। तत्त्ववित्तु महाबाहो गुणकर्मविभागयोः ।।७।।
गुणा गुणेषु वर्त्तन्ते इति मत्वा न सज्जते। सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं सन्तरिष्यति ।।८।।

ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात् कुरुतेऽर्जुन।
ब्रह्मण्याधाय कर्माणि सङ्गन्त्यक्त्वा करोति यः ।। ९ ।।

लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा। सर्वभूतेषु चात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि ।।१०।।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः। शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते ।।११।।
न हि कल्याणकृत् कश्चिद्दुर्गतिं तात गच्छति। दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया ।।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतान्तरन्ति ते। आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ ।।१३।।
चतुर्विधा भजन्ते मां ज्ञानी चैकत्वमास्थितः। अक्षरं ब्रह्म परमं स्वभावोऽध्यात्ममुच्यते ।।
भूतभावोद्भवकरो विसर्गः कर्मसंज्ञितः। अधिभूतं क्षरो भावः पुरुषश्चाधिदैवतं ।।१५।।

---

१. ज्ञानात् सौवीरभूपतिरिति ख. ञ. च। २. पठतां भुक्तिमुक्तिदमिति ख.।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अधियज्ञोहमेवात्र देहे देहभृतां वर। अन्तकाले स्मरन्माञ्च मद्भावं यात्यसंशयः ॥१६॥
यं यं भावं स्मरन्नन्ते त्यजेद्देहन्तमाप्नुयात्।
प्राणं न्यस्य भ्रुवोर्मध्ये अन्ते प्राप्नोति मत्परम् ॥ १७ ॥
ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म वदन् देहं त्यजन्तथा। ब्रह्मादिस्तम्भपर्यन्ताः सर्वे मम विभूतयः ॥१८॥
श्रीमन्तश्चोर्जिताः सर्वे ममांशाः[१] प्राणिनः स्मृताः।
अहमेको विश्वरूप इति ज्ञात्वा विमुच्यते ॥ १९ ॥
क्षेत्रं शरीरं यो वेत्ति क्षेत्रज्ञः स प्रकीर्तितः। क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्ज्ञानं यत्तज्ज्ञानं मतं मम ॥२०॥
महाभूतान्यहङ्कारो बुद्धिरव्यक्तमेव च। इन्द्रियाणि दशैकञ्च पञ्च चेन्द्रियगोचराः ॥२१॥
इच्छा द्वेषः सुखं दुःखं सङ्घातश्चेतना धृतिः। एतत्क्षेत्रं समासेन सविकारमुदाहृतम् ॥२२॥
अमानित्वमदम्भित्वमहिंसा क्षान्तिरार्जवं। आचार्योपासनं शौचं स्थैर्य्यमात्मविनिग्रहः ॥
इन्द्रियार्थेषु वैराग्यमनहङ्कार एव च। जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनं ॥२४॥
आसक्तिरनभिष्वङ्गः पुत्रदारगृहादिषु। नित्यञ्च समचित्तत्त्वमिष्टानिष्टोपपत्तिषु ॥२५॥
मयि चानन्ययोगेन भक्तिरव्यभिचारिणी। विविक्तदेशसेवित्वमरतिर्जनसंसदि ॥२६॥
अध्यात्मज्ञाननिष्ठत्वन्तत्त्वज्ञानानुदर्शनं। एतज्ज्ञानमिति प्रोक्तमज्ञानं यदतोऽन्यथा ॥२७॥
ज्ञेयं यत्तत प्रवक्ष्यामि यं ज्ञात्वाऽमृतमश्नुते। अनादि परमं ब्रह्म सत्त्वं नाम तदुच्यते ॥
सर्वतः पाणिपादान्तं सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्। सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥२९॥
सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम्। असक्तं सर्वभृच्चैव निर्गुणं गुणभोक्तृ च ॥३०॥
बहिरन्तश्च भूतानामचरञ्चरमेव च। सूक्ष्मत्वात्तदविज्ञेयं दूरस्थञ्चान्तिकेऽपि यत ॥३१॥
अविभक्तञ्च भूतेषु विभक्तमिव च स्थितम्। भूतभर्तृ च विज्ञेयं ग्रसिष्णु प्रभविष्णु च ॥
ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते। ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य धिष्ठितं ॥
ध्यानेनात्मनि पश्यन्ति केचिदात्मानमात्मना। अन्ये साङ्ख्येन योगेन कर्मयोगेन चापरे ॥
अन्ये त्वेवमजानन्तो श्रुत्वान्येभ्य उपासते। तेपि चाशु तरन्त्येव मृत्युं श्रुतिपरायणाः ॥३५॥
सत्त्वात्सञ्जायते ज्ञानं रजसो लोभ एव च। प्रमादमोहौ तमसो भवतो ज्ञानमेव च ॥३६॥
गुणा वर्तन्त इत्येव योऽवतिष्ठति नेङ्गते। मानात्रमानमित्रारितुल्यस्त्यागी स निर्गुणः ॥
ऊर्ध्वमूलमधः शाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययं। छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित् ॥
द्वौ भूतसर्गौ लोकेऽस्मिन् दैव आसुर एव च।
अहिंसादिः क्षमा चैव दैवीसम्पत्तितो नृणां ॥ ३९ ॥
न शौचं नापि वाचारो ह्यासुरीसम्पदोद्भवः।
नरकत्वात् क्रोधलोभकामस्तस्मात्त्रयं त्यजेत् ॥ ४० ॥
यज्ञस्तपस्तथा दानं सत्त्वाद्यैस्त्रिविधं स्मृतम्।
आयुः सत्त्वं बलारोग्यसुखायान्नन्तु सात्त्विकं ॥ ४१ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दुःखशोकामयायान्नं तीक्ष्णरूक्षन्तु राजसं। अमेध्योच्छिष्टपूत्यन्नं तामसं नीरसा

यष्टव्यो विधिना यज्ञो निष्कामाय स सात्त्विकः।
यज्ञः फलाय दम्भात्मी राजसस्तामसः क्रतुः ॥ ४३ ॥

श्रद्धामन्त्रादिविध्युक्तं तपः शारीरमुच्यते। देवादिपूजाऽहिंसादि वाङ्मयं तप उच्
अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं स्वाध्यायसज्जपः। मानसं चित्तसंशुद्धेर्मौनमात्मविनिग्रहः
सात्त्विकञ्च तपोऽकामं फलाद्यर्थन्तु राजसं। तामसं परपीड़ायै सात्त्विकं दानमुच्
देशादौ चैव दातव्यमुपकाराय राजसं। अदेशादावबज्ञातं तामसं दानमीरितं
ओंतत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः। यज्ञदानादिकं कर्म्म भुक्तिमुक्तिप्रदं

अनिष्टमिष्टं मिश्रञ्च त्रिविधं कर्मणः फलं।
भवत्यत्यागिनां[1] प्रेत्य न तु सन्न्यासिनां क्वचित ॥ ४९ ॥
तामसः कर्मसंयोगात मोहात्क्लेशभयादिकात।
राजसः सात्त्विकोऽकामात पञ्चैते कर्महेतवः ॥ ५० ॥

अधिष्ठानं तथा कर्त्ता करणञ्च पृथग्विधम्। त्रिविधाश्च पृथक् चेष्टा दैवञ्चैवात्र प

एकं ज्ञानं सात्त्विकं स्यात् पृथग् ज्ञानन्तु राजसं।
अतत्त्वार्थन्तामसं स्यात् कर्माकामाय सात्त्विकं ॥ ५२ ॥
कामाय राजसं कर्म मोहात् कर्म तु तामसं।
सिद्ध्यसिद्ध्योः समः कर्त्ता सात्त्विको राजसोऽत्यपि ॥ ५३ ॥
शठोऽलसस्तामसः स्यात् कार्य्यादिधीश्च सात्त्विकी।
कार्य्यार्थं सा राजसी स्याद्विपरीता तु तामसी ॥ ५४ ॥
मनोधृतिः सात्त्विकी स्यात् प्रीतिकामेति राजसी।
तामसी तु प्रशोकादौ सुखं सत्त्वात्तदन्तगं ॥ ५५ ॥

सुखं तद्राजसञ्चाग्रे अन्ते दुःखन्तु तामसं। अतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदन्ततं।

स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य विष्णुं सिद्धिञ्च विन्दति।
कर्मणा मनसा वाचा सर्वावस्थासु सर्वदा ॥ ५७ ॥

ब्रह्मादिस्तम्भपर्यन्तं जगद्विष्णुञ्च वेत्ति यः। सिद्धिमाप्नोति भगवद्भक्तो भागवतो

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये गीतासारो नामैकाशीत्यधिक-
त्रिशततमोऽध्यायः।

---

१. भवत्ययोगिनामिति ख.।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

न्तिकः ॥
स्मृताः ॥
तं ॥६३॥
॥६४॥
ादयः ॥
प ॥६६॥
ः ॥६७॥
नं ॥६८॥

द्व्यशीत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः

यमगीता ।

अग्निरुवाच

प्रवक्ष्यामि उक्ता या नाचिकेतसे । पठतां शृण्वतां भुक्त्यै मुक्त्यै मोक्षार्थिनां सतां ॥

यम उवाच

ासनं यानपरिधानगृहादिकम् । वाञ्छत्यहोऽतिमोहेन सुस्थिरं स्वयमस्थिरः ॥२॥
शक्तिः सततं तथैवात्मावलोकनं । श्रेयः परं मनुष्यानां कपिलोद्गीतमेव हि ॥३॥
मदर्शित्वं निर्म्ममत्वमसङ्गता । श्रेयः परं मनुष्याणां शीतं पञ्चशिखेन हि ॥४॥
मनाल्यादिवयोऽवस्थादिवेदनं । श्रेयः परं मनुष्याणां गङ्गाविष्णुप्रगीतकं ॥५॥
ात्मिकादिदुःखानामाद्यन्तादिप्रतिक्रिया । श्रेयः परं मनुष्याणां जनकोद्गीतमेव च ॥
योर्भेदकरः प्रत्ययो यः परात्मनः । तच्छान्तिपरमं श्रेयो ब्रह्मोद्गीतमुदाहृतं ॥७॥
मिति यत्कर्म्म ऋग्यजुःसामसंज्ञितं । कुरुते श्रेयसे सङ्गान् जैगीषव्येण गीयते ॥८॥
सर्व्वविधित्सानामात्मनः सुखहैतुकी । श्रेयः परं मनुष्याणां देवलोद्गीतमीरितं ॥९॥
ागात्तु विज्ञानं सुखं ब्रह्म परं पदं । कामिनां न हि विज्ञानं सनकोद्गीतमेव तत् ॥
व निवृत्तञ्च कार्य्यं कर्मपरोऽब्रवीत् । श्रेयसां श्रेय एतद्धि नैष्कर्म्यं ब्रह्म तद्धरिः ॥११॥
ाधिगतज्ञानो भेदं नाप्नोति सत्तमः । ब्रह्मणा विष्णुसंज्ञेन परमेणाव्ययेन च ॥१२॥
विज्ञानमास्तिक्यं सौभाग्यं रूपमुत्तमम् । तपसा लभ्यते सर्वं मनसा यद्यदिच्छति ॥

नास्ति विष्णुसमन्ध्येयं तपो नानशनात्परं ।
नास्त्यारोग्यसमं धन्यं नास्ति गङ्गासमा सरित् ॥ १४ ॥
न सोऽस्ति बान्धवः कश्चिद्विष्णुं मुक्त्वा जगद्गुरुं ।
अधश्चोर्द्ध्वं हरिश्चाग्रे देहेन्द्रियमनोमुखे ॥ १५ ॥
इत्येवं संस्मरन् प्राणान् यस्त्यजेत्स हरिर्भवेत् ।
यत्तद् ब्रह्म यतः सर्वं यत्सर्वं तस्य संस्थितम् ॥ १६ ॥

ह्य मनिर्देश्यं सुप्रतिष्ठञ्च यत्परं । परापरस्वरूपेण विष्णुः सर्व्वहृदि स्थितः ॥१७॥
ां यज्ञपुरुषं केचिदिच्छन्ति तत्परं । केचिद्विष्णुं हरं केचित् केचिद् ब्रह्माणमीश्वरं ॥

इन्द्रादिनामभिः केचित् सूर्य्यं सोमञ्च कालकम् ।
ब्रह्मादिस्तम्भपर्यन्तं जगद्विष्णुं वदन्ति च ॥ १९ ॥

विष्णुः परमं ब्रह्म यतो नावर्त्तते पुनः । सुवर्णादिमहादानपुण्यतीर्थावगाहनैः ॥२०॥
नैर्व्रतैः पूजया च धर्म्मश्रुत्या तदाप्नुयात् । आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु ॥
द्धिन्तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च । इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयांश्चेषुगोचरान् ॥२२॥
त्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः । यस्त्वविज्ञानवान् भवत्ययुक्तेन मनसा सदा ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

न सत्पदमवाप्नोति संसारञ्चाधिगच्छति । यस्तु विज्ञानवान् भवति युक्तेन मनसा सदा
स तत्पदमवाप्नोति यस्माद्भूयो न जायते । विज्ञानसारथिर्यस्तु मनःप्रग्रहवान्नरः ॥२५
सोऽध्वानं परमाप्नोति तद्विष्णोः परमं पदम् । इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्था अर्थेभ्यश्च परं मनः ॥
मनसस्तु परा बुद्धिः बुद्धेरात्मा महान् परः । महतः परमव्यक्तमव्यक्तात्पुरुषः परः ॥२७॥
पुरुषान्न परं किञ्चित् सा काष्ठा सा परा गतिः । एषु सर्वेषु भूतेषु गूढात्मा न प्रकाशते ॥

दृश्यते त्वग्र्यया बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः ।
यच्छेद्वाङ्मनसी प्राज्ञः तद्यच्छेज्ज्ञानमात्मनि ॥ २९ ॥

ज्ञानमात्मनि महति नियच्छेच्छान्त आत्मनि । ज्ञात्वा ब्रह्मात्मनोर्योगं यमाद्यैर्ब्रह्म सद्भवेत् ॥
अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यापरिग्रहौ । यमाश्च नियमाः पञ्च शौचं सन्तोषसत्तपः ॥३१॥
स्वाध्यायेश्वरपूजा च आसनं पद्मकादिकं । प्राणायामो वायुजयः प्रत्याहारः स्वनिग्रहः ॥
शुभे ह्येकत्र विषये चेतसो यत् प्रधारणं । निश्चलत्वात्तु धीमद्भिर्धारणा द्विज कथ्यते ॥३३
पौनःपुन्येन तत्रैव विषयेष्वेव धारणा । ध्यानं स्मृतं समाधिस्तु अहं ब्रह्मात्मसंस्थितिः ॥
घटध्वंसाद्यथाकाशमभिन्नं नभसा भवेत् । मुक्तो जीवो ब्रह्मणैवं सद्ब्रह्म ब्रह्म वै भवेत् ॥
आत्मानं मन्यते ब्रह्म जीवो ज्ञानेन नान्यथा । जीवो ह्यज्ञानतत्कार्य्यमुक्तः स्यादजरामरः ॥

अग्निरुवाच

वशिष्ठ यमगीतोक्ता पठतां भुक्तिमुक्तिदा । आत्यन्तिको लयः प्रोक्तो वेदान्तब्रह्मधीमयः ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये यमगीता नाम द्व्यशीत्यधिक-
त्रिशततमोऽध्यायः ।

त्र्यशीत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः

आग्नेयपुराणमाहात्म्यम् ।

अग्निरुवाच

आग्नेयं ब्रह्मरूपन्ते पुराणं कथितं मया । सप्रपञ्चं निष्प्रपञ्चं विद्याद्वयमयं महत् ॥१

ऋग्यजुःसामाथर्वाख्या विद्या विष्णुर्जगज्जनिः ।
छन्दः शिक्षा व्याकरणं निघण्टुज्योतिराख्यकाः ॥ २ ॥

निरुक्तधर्मशास्त्रादि मीमांसान्यायविस्तराः । आयुर्वेदपुराणाख्या धनुर्गन्धर्वविस्तराः ॥३
विद्या सैवार्थशास्त्राख्या वेदान्ताऽन्या हरिर्महान् । इत्येषा चापरा विद्या परविद्याऽक्षरं परं

यस्य भावोऽखिलं विष्णुस्तस्य नो बाधते कलिः ।
अनिष्ट्वा तु [illegible]ज्ञानकृत्वापि पितृस्वधां ॥ ५ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अहङ्कारो निघण्टुश्च शिक्षा कल्प इहोदितः। स्मृतः नैमित्तिकः प्राकृतिको लय आत्यन्तिकः ॥
वेदान्तं ब्रह्मविज्ञानं योगी ह्यष्टाङ्ग ईरितः । स्तोत्रं पुराणमाहात्म्यं विद्या ह्यष्टादश स्मृताः ॥
ऋग्वेदाद्याः परा ह्यत्र पराविद्याक्षरं परं । सप्रपञ्चं निष्प्रपञ्चं ब्रह्मणो रूपमीरितं ॥६३॥
इदं पञ्चदशसाहस्रं शतकोटिप्रविस्तरं । देवलोके दैवतैश्च पुरणं पठ्यते सदा ॥६४॥
लोकानां हितकामेन संक्षिप्योद्गीतमग्निना । सर्वं ब्रह्मेति जानीध्वं मुनयः शौनकादयः ॥
शृणुयाच्छ्रावयेद्वापि यः पठेत्पाठयेदपि । लिखेल्लेखापयेद्वापि पूजयेत्कीर्त्तयेदपि ॥६६॥
पुराणपाठकञ्चैव पूजयेत् प्रयतो नृपः । गोभूहिरण्यदानाद्यैर्वस्त्रालङ्कारतर्पणैः ॥६७॥
तं संपूज्य लभेच्चैव पुराणश्रवणात् फलं । पुराणान्ते च वै कुर्य्यादवश्यं द्विजभोजनं ॥६८॥

निर्म्मलः प्राप्तसर्व्वार्थः सकुलः स्वर्गमाप्नुयात् ।
शरयन्त्रं पुस्तकाय सूत्रं वै पत्रसञ्चयं ॥ ६९ ॥
पट्टिकाबन्धवस्त्रादि दद्याद् यः स्वर्गमाप्नुयात् ।
यो दद्याद्ब्रह्मलोकी स्यात् पुस्तकं यस्य वै गृहे ॥ ७० ॥
तस्योत्पातभयं नास्ति भुक्तिमुक्तिमवाप्नुयात् ।
यूयं स्मरत चाग्नेयं पुराणं रूपमैश्वरं ॥
सूतो गतः पूजितस्तैः शौनकाद्या हरिं ययुः ॥ ७१ ॥

इत्यादिमहापुराणे आग्नेये आग्नेयपुराणमाहात्म्यं नाम
त्र्यशीत्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ।

समाप्तमाग्नेयं पुराणम् ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वाल्मीकिविद्यापीठपुस्तकालयः

प्रत्यावर्तनतिथिः

~~२० ... २०३८~~ | ०४९।३।४ | ← Bhudevsharma (bhudev_sharma@yahoo.com)
~~२५ ... २०३८~~ | ०४...६।२ |
२५ आश्विन २०३८ | |
२५ आश्विन २०३८ | ~~०४१।७~~ |
| ०४०।९।१२ |
२ ज्येष्ठ २०४६ | ०४३।९।१।२४ |
०४६।९।१६ | |
~~०४१।१०।१५~~ | |
०४०।१०।२६ | |
०४१।३।१९ | |
०४३।१।१।२४ | |
०४३।१२।२० | |
०

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

८१४०

महेन्द्र संस्कृत विश्वविद्यालय
वाल्मीकि विद्यापीठ
पुस्तकालय

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कुछ वैदिक तथा पौरा[illegible] [illegible]ीय प्रकाशन

१ अथर्ववेद-[illegible]—संपादक जार्ज मेलि[illegible] [illegible] तथा जुलियस वॉन नेगालान, हिन्दी टिप्पणी तथा पा[illegible] संपादक- डॉ० रामकुमार राय ७५-००

२ अथर्ववेद-संहिता—[illegible]पाठ-संपादक—वेद[illegible] [illegible]ीराम शर्मा, भूमिका लेखक [illegible] भगवतीप्रसा[illegible] (काण्ड १-१०) प्रथम भाग २०-००

३ अथर्ववेद-[illegible]—वेदार्थबोधि[illegible] हिन्दी [illegible] सहित, व्याख्याकार- डॉ० रामकृष्ण शास्त्री, प्राक्कथन लेखक [illegible] विद्यानिवास मिश्र, भूमिका-डॉ० [illegible]तीप्रसाद राय, संपादक [illegible] विश्व [illegible]शास्त्री (काण्ड [illegible]) ८८-००

४ [illegible] ब्राह्मण —[illegible] हिन्दी [illegible] डॉ० सूर्यकान्त ३५-००

५ [illegible]—संपादक [illegible] खण्ड, १००-००

६ पुरुषसूक्त-[illegible]ाष्य, मह[illegible] तथा निम्बार्क [illegible]पूर्ण टिप्पणियों के साथ, सं[illegible] ढुण्ढिराज शास्त्री ६-००

७ [illegible] (शुक्लयजु[illegible] [illegible] की टीकासहि[illegible] [illegible]दक- महामहोपाध्याय पं० [illegible] अध्याय ११ ३०-००

८ [illegible]पुर[illegible]स्य [illegible])— -पं० मुकुन्दलाल शास्त्री, [illegible] का [illegible] २५-००

९ संस्कार-दीपक ([illegible] — महामहोपाध्याय [illegible] श्री नित्यानन्द पंत [illegible] खण्ड [illegible] ३२-००

१० लाट्यायन श्रौतसूत्र, [illegible] टिप्पणी सहित, संपादक-महामहोपा[illegible] श्री [illegible]न्द [illegible] ७-००

११ वेदभाष्य-भूमिका-संग्रह [illegible] टीका [illegible] की सुलभ भूमिकाओं का [illegible] भूमि[illegible] लेखक [illegible]० नन्ददेव उपाध्याय १५-००

१२ ताण्ड्य महाब्राह्मण [illegible]सायणाचार्य की टीका सहित, [illegible] ए० चिन्नस्वा[illegible], प्रथम खण्ड (प्रेस में), द्वितीय १००-००

१३ शतपथब्राह्मण ([illegible]दीय)—संपादक [illegible] [illegible] शास्त्री (दो भागों में) २०-००

१४ बृहद्देवता—हिन्दी अनुवाद और टिप्पणि[illegible] सहित, [illegible]दक-डॉ० [illegible]कुमार राय [illegible]०-००

१५ गरुडपु[illegible]ण—महर्षि वेदव्यास, भूमिका लेखक तथा सम्पादक-डॉ० [illegible]मशंकर भट्टाचार्य १५-००

१६ शुक्लयजुर्वेद-प्रातिशाख्य—कात्यायन, भूमिका लेखिका एवं संपादिका- श्रीमती इन्दु रस्तोगी, प्राक्कथन लेखक —डॉ० मंगल देव शास्त्री १५-००

प्राप्तिस्थान— चौखम्भा ओरियन्टालिया, वाराणसी—२२१००[illegible]
शाखा—बंगलो रोड, ९ यू० बी० जवाहर नगर, दिल्ली—११०[illegible]७

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu